श्रीः ।

याज्ञवल्क्यस्मृतिः ।

महर्षिवर्यश्रीयोगियाज्ञवल्क्यविरचिता ।

(धर्मशास्त्रम् ।)

[illegible]

इयं च

श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन

मुंबय्यां

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रायन्त्रे मुद्रयित्वा

प्रकाशिता

संवत् १९५१ शके १८१६

अस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणाद्यधिकारः १८६७ तमाब्दीय, २५

राजनियमानुसारेण यन्त्राध्यक्षाधीनाः सन्ति ।

भूमिका.

सम्प्रति यत्र तत्र भाषाप्रचारोऽधिकतरोऽस्तीति कस्य न विदितम्–अतः पण्डितवर्यैर्बहुशो ग्रन्था भाषायामुद्धृताः परन्तु तेषां ये कतिपये विज्ञास्ते भाषाभिज्ञास्तत्संस्थानचतुराश्च न भवन्ति ये च भाषाभिज्ञास्ते विज्ञा न भवन्ति द्वय चैकत्रासम्भवीति निश्चितम् यद्यपि तेषां भाषानभिज्ञत्वं तत्पाण्डित्यमङ्गितुं न क्षमते यतस्ते तुच्छादृति तान्नाद्रियन्ते. तथापि भाषाप्रियैर्न तत्तोऽर्थः सम्यगवबुध्यते तेष्वहमपि जगन्मतया पञ्चदशवर्षात्पूर्वं तादृश एवासम् किन्तु भारतबन्धुयन्त्राधिपभाषासंस्थानप्रवरवकीलहाईकोर्टेऽनुपाधिधारिणा श्रीयुपाद्वतोतारामवर्मणार्लीगढस्थेन निजयन्त्रकार्यकृन्मैनेजरेतिपदव्यां भाषासंवर्द्धिनीसभापसम्पादकपदव्यां च विद्वत्स्वीकारानर्हायामप्याहृत्य किञ्चित्काल नियतः तत्सङ्गमहिम्ना मे शास्त्रीयबुद्धिकौशल्यं भाषायामपि प्रसृतम् भाषासंवर्द्धिनीसभोपसंपादकेन च मया तत्रागतग्रंथावलोकनशोधने केषांचित्समालोचनश्च यथामत्यकारि–क्वचित् क्वचित् निर्माणकर्त्राज्ञया न्यूनाधिकभावोऽपि कृतः–परन्तु पूर्वोक्तद्वयस्यासंभव एव तत्रतत्र दृष्टः–यद्यप्यनेन भाषारचनाश्रमेण सततं शास्त्रविरोधिना तुच्छमपि पाण्डित्यं तुच्छतरमभूत तथापि बुद्धिप्रसरस्यानिवार्यत्वेनेदानीं तत्तो लेखनी न विरमति यतोऽनभिज्ञेऽपि मयि खेमराजादिश्रेष्ठिवृन्दैः भाषाभिज्ञोऽयमिति बुद्धिः–अतस्तत्प्रेरणतोऽपि मया बहवो ग्रन्थाः संशोधिता निर्मिताश्च सन्तीति जगद्विदितम्–तत्समयपणनशास्त्रनिर्माणकृतेयन्दीपिकापि याज्ञवल्क्यविज्ञानेश्वरान्तःकरणनिविष्टपदार्थानां सर्वसाधारणावगमसमवेतत्वं हृदन्तु द्योतयन्ती विद्भिः स्वीयबुद्धयांगीकरणीयेति मेऽर्थनमिति शम् ॥

विद्वदनुचरो मिहिरचंद्रः.

श्रीः।

अथ याज्ञवल्क्यमिताक्षराप्रकाशस्थविषयानुक्रमणिका।



इति दान प्रकरण ॥ ९ ॥

अथ श्राद्धप्रकरण ॥ १० ॥

इति श्राद्धप्रकरण ॥ १० ॥

अथ गणपतिकल्पप्रकरण ॥ ११ ॥

इति गणपतिकल्पप्रकरण ॥ ११ ॥

अथ ग्रहशांतिप्रकरण ॥ १२ ॥

इति ग्रहशांति प्रकरण ॥ १२॥

अथ राजधर्मप्रकरण ॥ १३ ॥

इति राजधर्मप्रकरण ॥१३॥

इति आचाराध्याय ॥ १ ॥

अथ व्यवहाराध्याय ॥ २ ॥

इति असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण ॥२॥

अथ ऋणादानप्रकरण ॥ ३ ॥

इति ऋणादान प्रकरण ॥ ३॥

अथ उपनिधि प्रकरण ॥ ४ ॥

इति उपनिधि प्रकरण ॥ ४ ॥

अथ साक्षिप्रकरण ॥ ५ ॥

इति साक्षि प्रकरण ॥ ५ ॥

अथ लेख्यप्रकरण ॥ ६ ॥

इति लेख्य प्रकरण ॥ ६ ॥

अथ दिव्य प्रकरण ॥ ७ ॥

इति दायविभाग प्रकरण ॥ ८ ॥

अथ सीमा विवाद प्रकरण ॥ ९ ॥

इति सीमाविवाद प्रकरण ॥ ९ ॥

अथ स्वामिपालविवाद प्रकरण ॥ १० ॥

इति आशौच प्रकरण ॥ १ ॥

अथ आपद्धर्म प्रकरण ॥ २॥

इति आपद्धर्म प्रकरण ॥ २ ॥

अथ वानप्रस्थधर्म प्रकरण ॥ ३ ॥

इति वानप्रस्थधर्म प्रकरण ॥ ३॥

अथ यतिधर्म प्रकरण ॥ ४ ॥

इति प्रायश्चित्त प्रकरण ॥ ६ ॥

इति याज्ञवल्क्यमिताक्षरास्थविषयानुक्रमणिका सवेरग्राम संपूर्णतामयासीत्। वास्तव्य परशुराम भट्टात्मज गोविंद शास्त्री विरचिता।



ध्यात्वा यस्मिन् देशे कृष्णः मृगः तस्मिन् धर्मान् निबोधत इति मुनीन् अब्रवीत् ॥२॥

तात्पर्यार्थ—पूर्वोक्त प्रकारसे पूछा है जिसको ऐसा मिथिला नाम नगरीमें स्थित वह याज्ञवल्क्य योगीश्वर क्षणभर ध्यान करिके अर्थात् कुछ कालतक इस लिये अपने मनका समाधान करिके कि सुननेके अधिकारीयें मुनि नम्र होकर पूछतेहैं इस लिये इनके प्रति धर्मका वर्णन करना युक्त है—यह बोले कि भो मुनिश्वरो जिस देशमें काला मृग होय उस देशके धर्मोंको तुम सुनो अर्थात् जिस देशमें कृष्णसार मृग यथेच्छ विचरता होय उसी देशमें वे धर्म करने योग्य है और अन्य देशमें नहीं जिन धर्मोंका वर्णन में आपको सन्मुख करूंगा इस वचनसे आचार्य ब्रह्मचारीको धर्मशास्त्र पढावे कि—शौच—आचरणोंकी शिक्षा आचार्य दे[1]—शौच और आचरणोंका ज्ञान धर्म शास्त्रके विना नहीं हो सकता ॥ २ ॥

भावार्थ—मिथिला नगरीमें टिके हुये और योगीजनोंके स्वामी वे याज्ञवल्क्य मुनि क्षण भर ध्यान करके मुनियोंको यह बोले कि जिस देशमें काला मृग यथेच्छ विचरता होय उस देशके धर्मोंको तुम सुनो ॥ २ ॥

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः । वेदाःस्थानानिविद्यानांधर्मस्यचचतुर्दश ॥ ३ ॥

पद—पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः १ वेदाः१ स्थानानि१ विद्यानां ६ धर्मस्य ६ च ऽ—चतुर्दश१— ॥ ३ ॥

योजना—पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः वेदाः एते चतुर्दश विद्यानां च पुनः धर्मस्य स्थानानि भवंति ॥ ३ ॥

तात्पर्यार्थ—यद्यपि आचार्य ब्रह्मचारीको धर्मशास्त्र पढावे यह विधि रहो परंतु शिष्य धर्मशास्त्रको पढे इसमें क्या कारण है इस शंकाके दूरकरनेके लिये यह तीसरे श्लोकहै ब्राह्मआदि१८पुराण—तर्कविद्यारूप न्याय—मीमांसा अर्थात् वेदवाक्यका विचार—धर्मशास्त्र (मनुस्मृति आदि)—वेदके छःओ अंग अर्थात् शिक्षा१ कल्प २ व्याकरण ३ निरुक्त ४ ज्योतिष ५ छंद ६ इन दसोंसमेत चारों वेद यें चौदह विद्या अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्षके हेतुरूप ज्ञानोंके और धर्मके स्थान (कारण) है— अर्थात् विद्या और धर्मका ज्ञान इन चौदहसेही होताहै और यें सब तीनों द्विजातियोंके पढने योग्य है इनके अंतरभूत (बीचमें) होनेसे धर्मशास्त्रभी पढने योग्य है—और इन सबको ब्राह्मण विद्याप्राप्ति और धर्म करनेके लिये पढे, क्षत्री और वैश्य धर्म करनेके लिये पढें— क्योंकि शंख ऋषिने[1] विद्यास्थानोंके प्रारंभके समयमें इस वचनसें यह कहा है कि इन विद्याके स्थानोंका ब्राह्मण अधिकारी है और वही अन्यवर्णोंके वर्तावको धर्मशास्त्रके अनुसार दिखावे अर्थात् इतर वर्णोंको धर्मोंका उपदेश करे—और मनुनेभी[2] इस वचनसे धर्म शास्त्रके पढने और वर्णन करनेमे ब्राह्मणकोही अधिकार कहाहै कि गर्भाधानसे लेकर श्मशानपर्यंत जिसके संपूर्ण विधिविधान वेदोक्त मंत्रोंसे कहे होय उसी द्विजातिका इस धर्म शास्त्रमें अधिकार है अन्य किसी वर्णका नहीं—विद्वान

---

१ शौचाचाराश्च शिक्षयेत् ।

१ एतानि ब्राह्मणोधिकुरुते स च वृत्तिं दर्शयती तरेषामिति ।

२ निषेकादिश्मशानांतो मंत्रैर्यस्योदितो विधिः । तस्य शास्त्रेऽधिकारोस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥ विदुषा ब्राह्मणेनेदं ध्येतव्यं च प्रयत्नतः । शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥

ब्राह्मणही इस धर्म शास्त्रको बडेयत्नसे पढ़े और अपने शिष्योंको भली प्रकार उपदेश करे (पढावे) और कोई वर्ण उपदेश न करे-इससे शिष्यको धर्म शास्त्रका पढना आवश्यकहै ॥ ३ ॥

भावार्थ-ये चौदह विद्या (ज्ञान) और धर्मके स्थान हैं कि पुराण-न्याय-मीमांसा धर्मशास्त्र-और शिक्षाआदि वेदके छः अंग और चारों वेद ॥ ३ ॥

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोंगिराः। यमापस्तंबसंवर्ताःकात्यायनबृहस्पती॥४॥

पद-मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनः१-अंगिराः१ यमापस्तंबसंवर्ताः१ कात्यायन-बृहस्पती १ ॥ ४ ॥

पराशरव्यासशंखलिखितादक्षगौतमौ। शातातपोवसिष्ठश्चधर्मशास्त्रप्रयोजकाः५

पद-पराशरव्यासशंखलिखिताः१-दक्षगौतमौ१ शातातपः१ वसिष्ठः१ चऽ- धर्मशास्त्रप्रयोजकाः १ ॥ ५ ॥

योजना-एते मन्वादयः विंशतिः धर्मशास्त्रप्रयोजकाः संति ॥ ४ ॥ ५ ॥

तात्पर्यार्थ-यह बात रही कि शिष्यको धर्मशास्त्रपढना फिरभी यह कैसे आया कि याज्ञवल्क्यका रचा यह शास्त्रभी पढना-इसशंका की निवृत्तिके लिये इन दो २ श्लोकोंसे धर्मशास्त्रके रचनेवालोंको कहते हैं कि-मनु-अत्रि विष्णु-हारीत-याज्ञवल्क्य-उशनाः-अंगिराः यम-आपस्तंब-संवर्त-कात्यायन-बृहस्पति पराशर-व्यास-शंख-लिखित-दक्ष-गौतम-शातातप-वसिष्ठ-ये २०वीस ऋषि धर्मशास्त्रके प्रयोजक (रचनेवाले) हैं-इससे याज्ञवल्क्य का रचाहुआ यह धर्मशास्त्रभी शिष्यको पढना चाहिये-यहभी इन श्लोकोंमें परिसंख्य (गिनती) नहीं है कि इतनेही धर्मशास्त्रके बनानेवाले हैं इतर नहीं किन्तु प्रदर्शन (दिखाना) के लिये है-इससे बौधायन आदिके रचेकोभी धर्मशास्त्र माननेमें कोई विरोधनहीं है-यद्यपि इनसंपूर्ण ऋषियोंके रचे हुये ग्रंथोंको प्रमाणता है तथापि जिन २ स्मृतियोंमें साकांक्षता है अर्थात् कोई धर्म वर्णन न कियाहो अथवा सूक्ष्म कियाहो उसको दूसरी स्मृतिसे पूर्ण करना और जहां दो स्मृतियोंका परस्पर विरोधहो वहां विकल्प समझना अर्थात् दोनों ऋषियोंका कथन प्रामाणिक मानना चाहे जिसके कथनको माने यह करनेवालेकी इच्छाहै दूसरेके कथनके न माननेमें दोष नहीं है॥४॥५॥

भावार्थ-ये बीस ऋषि धर्मशास्त्रके रचनेवाले हैं कि मनु-अत्रि-विष्णु-हारीत-याज्ञवल्क्य-उशना-अंगिराः-यम-आपस्तंब-संवर्त-कात्यायन-बृहस्पति-पराशर-व्यास-शंख-लिखित-दक्ष-गौतम-शातातप-और वसिष्ठ ॥ ४ ॥ ५ ॥

देशेकालउपायेनद्रव्यंश्रद्धासमन्वितम्। पात्रेप्रदीयतेयत्तत्सकलंधर्मलक्षणम्॥६॥

पद-देशे७ काले ७ उपायेन ३ द्रव्यं १ श्रद्धासमन्वितम् २ पात्रे७ प्रदीयते क्रि-यत्१ तत् १ सकलं १ धर्मलक्षणम् १ ॥ ६ ॥

योजना-यद्द्रव्यं देशे काले उपायेन श्रद्धासमन्वितं पात्रे प्रदीयते तत्सकलं धर्मलक्षणं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त देश (जिसमें काला मृग स्वच्छंद विचरे) में संक्रांतिआदिकालमें उपाय (शास्त्रोक्तदानकी विधिका समूह) से जो प्रतिग्रह आदिसे मिलाहुआ गौ आदि द्रव्य श्रद्धा (आस्तिक्यबुद्धि) से इस गुणवानको

भलीप्रकार दियाजाय जिसका लक्षण इस वचनसे आगे दानप्रकारणमें कहेंगे कि केवल विद्या और तपसे पात्र नहीं होता किंतु जिसमें विद्या और तप दोनों होंय वही पात्र कहा है– और वह इसप्रकार दिया जाय कि फिर लौटे नहीं और उसमें दूसरेके स्वत्वकी उत्पत्ति होजाय–ऐसे त्यागको धर्मका उत्पादक (पैदाकरनेवाला) कहतेहैं कुछ इतनाही धर्मका लक्षण नहीं किंतु सकल अर्थात् इसकी जो और कला(भाग) शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार याग और होमादिहैं उनसहित दानको धर्मका कारक कहतेहैं–इससे धर्मके कारक ये चारहैं कि जाति–गुण–द्रव्यक्रियाभाव–अर्थ (धन) ये संपूर्ण अथवा पृथक् २ शास्त्रोक्तके अनुसार धर्मके हेतु जानने और श्रद्धाका होना सबमें आवश्यकहै–इस श्लोकसे धर्मके कारक हेतुओंका वर्णन किया

भावार्थ–जो द्रव्य उत्तमदेश और श्रेष्ठकालमें शास्त्रोक्तरीति और श्रद्धासे पात्रको भलीप्रकार दिया जाय वह संपूर्ण धर्मका लक्षण होताहै ॥ ६ ॥

श्रुतिःस्मृतिःसदाचारःस्वस्यचप्रिय मात्मनः । सम्यक्संकल्पजःकामोधर्म मूलमिदंस्मृतम् ॥ ७ ॥

पद–श्रुतिः१ स्मृतिः१ सदाचारः१ स्वस्य ६ च–अ- प्रियं१ आत्मनः६ सम्यक्संकल्पजः१ कामः१ धर्ममूलं १ इदं १ स्मृतं १ ॥ ७ ॥

योजना–श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः च पुनः स्वस्य आत्मनः प्रियं सम्यक्संकल्पजः कामः इदं (सर्वं) मुनिभिः धर्ममूलं स्मृतं ॥ ७ ॥

तात्पर्यार्थ–अब धर्मके ज्ञापक (जतानेवाले) हेतुओंको कहतेहैं श्रुति (वेद) स्मृति (धर्मशास्त्र) क्योंकि इस मनुके वचनानुसार श्रुतिको वेद स्मृतिको धर्मशास्त्र कहतेहैं सदाचार (शिष्टोंका आचरण) अर्थात् जिनको कर्मके फलकी प्राप्तिमें संदेह न होय उन शिष्टोंका कर्तव्य और जो अपनेको अच्छा प्रतीत होय वह–इसमें यह शंका नहीं करनी कि किसीको मदिरापान आदि अनिष्टकर्म प्रिय होयतो वहभी धर्मका मूल क्यों न होय–क्योंकि अपनेको प्रिय वही कर्म धर्मका ज्ञापकहोताहै जिसको शास्त्रमें विकल्प (दोप्रकार) से कहाहोय–जैसेकि इस वचनसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे वा जन्मसे आठवे वर्षमें करै इनदोनोंमें करनेवालेकी इच्छाही नियामकहै चाहै गर्भसे आठवे वा जन्मसे आठवे वर्षमें करे–और अच्छेसंकल्पसे पैदाहुआ शास्त्रके अनुकूल काम जैसेकि कोई यह पण करिलेकि मैं भोजनके विना जलपान न करूंगा अर्थात् भोजन समयमें ही जलपीऊंगा ये सब पांचो धर्मके मूल (प्रमाण) ऋषियोंने कहेहैं–जहांकहीं इनका परस्पर विरोध प्रतीत होय वहां पहिला २ क्रमसे बलवान् समझना ॥ ७ ॥

भावार्थ–वेद, धर्मशास्त्र, शिष्टोंका आचरण अपने आत्माको प्रिय–अच्छे संकल्पसे पैदा हुई कामना ये सबधर्ममें प्रमाण ऋषियोंने कहेहैं ॥ ७ ॥

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्म णाम् । अयंतुपरमोधर्मोयद्योगेनात्म दर्शनम् ॥ ८ ॥

पद–इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ६ अयं १ तु–अ– परमः १ धर्मः १ यत् १ योगेन ३ आत्मदर्शनं १ ॥ ८ ॥

---

१ न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ।

१ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः

२ गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।

योजना-इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणां परमः धर्मः अयं (अस्ति) यत् योगेन आत्मदर्शनं(आत्मज्ञानं) भवेत्॥८॥

तात्पर्यार्थ-अथ पूर्वोक्त देश आदि कारक हेतुओंका अपवाद कहतेहैंकि इज्या (यज्ञकरना) आचार-दम (इंद्रियोंकादमन) अहिंसा-दान-स्वाध्याय (वेदपाठ) इन कर्मोंका यही परमधर्म (फल) है कि योगसे अर्थात् बाह्यविषयोंसे चित्तवृत्तिको रोकनेसे अपने आत्माके यथार्थस्वरूपको जानना अर्थात् योगसे आत्माके ज्ञानमें देशकाल आदिका कुछनियम नहीहै क्योंकि इस योगसूत्रमें यह लिखाहै कि जहां-मनकी एकाग्रताहै वहां देश आदिकी कोई विशेषता नही-

भावार्थ-यज्ञकरना-आचरण-इंद्रियोंका दमन-अहिंसा-दान-वेदपाठ-इनसब कर्मोंका यही परम धर्म है कि विषयोंसे चित्तवृत्तिको रोककर आत्माको जानना ॥ ८ ॥

चत्वारोवेदधर्मज्ञाःपर्षत्त्रैविद्यमेववा ।

१ यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ।

साब्रूतेयंसधर्मःस्यादेकोवाध्यात्मवित्तमः९

पद-चत्वारः१ वेदधर्मज्ञाः १ पर्षत् १ त्रैविद्यं१एव॰-वा॰-सा१ब्रूते क्रि-यं२सः१धर्मः१ स्यात् क्रि-एकः१वा॰-अध्यात्मवित्तमः१॥९॥

योजना-वेदधर्मज्ञाः चत्वारः वा त्रैविद्यं पर्षत्(सभा)भवति सा वा अध्यात्मवित्तमः१ एकः यं ब्रूते सः धर्मः स्यात् ॥ ९ ॥

तात्पर्यार्थ-जहां धर्मके कारक वा ज्ञापक हेतुओंमें संदेहहोय वहां निर्णयके हेतुको कहतेहैं कि वेद और धर्मशास्त्रके ज्ञाताचार ब्राह्मण जिसमें होय अथवा आन्वीक्षिकी आदि तीन विद्याओंके और धर्मशास्त्रके ज्ञाता की सभा पण्डित जिसमें होय उसे पर्षत् (सभा)कहतेहैं-वह पूर्वोक्तसभा जिसको कहै अथवा अध्यात्म ज्ञानियोंमें निपुण और वेद और धर्मशास्त्रका ज्ञाता एकभी जिसको कहै वही धर्म जानना ॥ ९ ॥

भावार्थ-वेद और धर्मशास्त्रके ज्ञाताचार अथवा तीनों विद्याओंके ज्ञाताओंका समूहरूपसभा, और ब्रह्मज्ञानीओंमें उत्तम वेद धर्मशास्त्रका ज्ञाता एकभी जिसको कहै वह धर्म होताहै ॥ ९ ॥

इति मिताक्षराप्रकाशसहितायां याज्ञवल्क्यस्मृतौ उपोद्घात-प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ ब्रह्मचारिप्रकरणम् २

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः। निषेकाद्याःश्मशानांतास्तेषां वैमंत्रतःक्रियाः ॥ १० ॥

पद–ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः १ वर्णाः १ तुऽ आद्याः १ त्रयः १ द्विजाः १–निषेकाद्याः १ श्मशानान्ताः १ तेषाम् ६ वैऽ- मंत्रतःऽ क्रियाः १ ॥ १० ॥

योजना–ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः वर्णाः तु पुनः आद्याः त्रयः द्विजाः भवंति– तेषां वै (एव) निषेकाद्याः श्मशानांताः क्रियाः मंत्रतः भवंति ॥ १० ॥

तात्पर्यार्थ–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारवर्ण हैं जिनके पृथक् २ लक्षण आगे वर्णन करेंगे उनमें आदिके तीन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज इसलिये कहाते हैं कि ये तीनों दोवार पैदा होते हैं एकवार मातासे और दूसरी वार आचार्यके द्वारा उपदेशके समय गायत्रीसे–उन द्विजोंके ही गर्भाधानसे लेकर श्मशानके अंततक (अंत्येष्टि) संपूर्ण कर्म मंत्रोंसे होते हैं अर्थात् इन तीनोंकेही पूर्वोक्त कर्मोंमें वेदोक्तमंत्रोंका उच्चारण होताहै और शूद्र आदिकेमें नहीं॥१०॥

भावार्थ–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारों वर्ण और इनमें पहिले तीन द्विज होते हैं और उन द्विजोंके ही गर्भाधान आदि मरण पर्यंत कर्म वेदोक्त मंत्रोंसे होते हैं ॥१०॥

गर्भाधानमृतौपुंसःसवनंस्पंदनात्पुरा। षष्ठेऽष्टमेवासीमंतोमास्येतेजातकर्म च११

पद–गर्भाधानं १ ऋतौ ७ पुंसः ६ स्पन्दनात् ५ पुराऽ- षष्ठे ७ अष्टमे ७ वाऽ- सीमन्तः १ मासि७ एते १जातकर्म १ चऽ॥११॥

अहन्येकादशेनामचतुर्थेमासि निष्क्रमः। षष्ठेन्नप्राशनं मासि चूडाकार्यायथाकुलम् ॥ १२ ॥

पद–अहनि ७ एकादशे ७ नाम १ चतुर्थे ७ मासि ७ निष्क्रमः १ षष्ठे ७ अन्नप्राशनं १ मासि ७ चूडा १ कार्या १ यथाकुलम्ऽ ॥ १२ ॥

योजना–ऋतौ गर्भाधानं– स्पन्दनात्पुरा पुंसः सवनम्–षष्ठे वा अष्टमे मासि सीमंतः–च पुनः एते (गर्भात् कुमारे बहिरागते) जातकर्म–एकादशे अहनि (दिने) नाम (नामकरणं) चतुर्थे मासि निष्क्रमः (गृहाद्बहिर्गत्वा बालस्य सूर्यदर्शनं)–षष्ठे मासि अन्नप्राशनं (अन्नभक्षणं) चूडा यथाकुलं कार्या–कुलाचारानुसारं कार्येति क्रिया प्रत्येकं योज्या ॥ ११ ॥ १२ ॥

तात्पर्यार्थ–अब उन क्रियाओंको क्रमसे कहतेहैं कि गर्भाधान यह अन्वर्थ (जिसका अर्थ कर्ममें मिले) कर्मका नामहै अर्थात् गर्भका स्थापन–यह कर्म सब कर्मोंमें प्रथम है और उस प्रथम ऋतु समय (रजोदर्शनसे १६ रात्रियोंके भीतर) किसी शुभदिनमें होताहै जिसका लक्षण आगे कहेंगे– पुंसवन कर्म गर्भमें बालकके हलने चलनेसे पूर्व, इसका प्रयोजन यहहै कि जिसके करनेसे पुरुषही पैदाहो कन्या नहो–छठे वा आठमें मासमें सीमंतोन्नयन कर्म करना–ये दोनों कर्म (पुंसवन सीमंत) क्षेत्र (गर्भ) के संस्कार (शोधक) होनेसे प्रथम गर्भमें करने प्रतिगर्भमें नहीं–क्योंकि देवलऋषिने इस वचनसे[1] यह कहाहै कि जिस स्त्रीका एक गर्भमें संस्कार होगयाहो वह प्रत्येक गर्भमें संस्कारवाली होतीहै और जब गर्भमेंसे बालक बाहिर आजाय उससमय जातकर्म करना जन्मसे ग्यारहवें दिन नामकर्म करना और वह नाम ऐसा

१ सकृत्सुसंस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ।

रखना जो पितामह वा मातामह आदिमें मिले अथवा कुलदेवतासे मिलताहो क्योंकि शंख ऋषिने इस वेचनसे यह कहाहै कि पिता कुलदेवसे मिलाहुआ नाम पुत्रका रक्खे और चौथे मासमें निष्क्रम नामका कर्म करे अर्थात् बालकको घरसे बाहिर निकासकर सूर्यका दर्शन करावे–और छठे मासमें अन्नप्राशनकर्म करे– अर्थात् बालकको प्रथम अन्नका भक्षण करावे– और चूडाकर्म (मुंडन) अपनी कुलरीतिके अनुसार करे–मनुनेभी इस श्लोकसे यह कहाहै कि पहिले वा तीसरे वर्षमें श्रुतिकी आज्ञा और धर्मके अनुसार सब द्विजातियोंका मुंडन करावे– इन दोनों श्लोकोंमें कार्या (करना) इस क्रियाका प्रत्येक कर्ममें संबंध होताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

भावार्थ–ऋतुसमयमें गर्भाधान– गर्भके चलने हिलनेसे पहिले पुंसवन– छठे वा आठवें महीनेमें सीमंत–गर्भसे बाहिर बालकके आनेपर जातकर्म–ग्यारहवें दिन नाम कर्म– चौथे महीनेमें निष्क्रम (बाहिर निकास कर सूर्यको दिखाना) और छठे महीनेमें अन्नप्राशन (अन्नका प्रथम भक्षण) औ कुलकी रीतिके अनुसार चूडाकर्म (मुंडन) करना ॥ ११ ॥ १२ ॥

एवमेनःशमंयातिबीजगर्भसमुद्भवम्।
तूष्णीमेताःक्रियाःस्त्रीणांविवाहस्तुसमंत्रकः ॥ १३ ॥

पद–एवं५– एनः१ शमं२ याति क्रि. बीजगर्भसमुद्भवम्१ तूष्णीं५– एताः१ क्रियाः१– स्त्रीणां६– विवाहः१ तु५–समंत्रकः ॥ १३ ॥

योजना–एवं बीजगर्भसमुद्भवं एनः (पापं) शमं याति– स्त्रीणां एताः (जातकर्मादिकाः) क्रियाः तूष्णीं (मंत्रं विना) कार्याः– विवाहस्तु समंत्रकः कार्यः ॥१३॥

तात्पर्यार्थ–यद्यपि ये कर्म नित्य हैं तथापि इनका यह फलभी है कि इस प्रकारसे किये गर्भाधान आदि कर्मोंसे बीज और गर्भसे उत्पन्न हुआ पाप अर्थात् माता पिताके गात्रकी व्याधिसे शुक्र शोणित द्वारा जो पाप गर्भमें आताहै वही पाप शांति (नष्टता) को प्राप्त हो जाता है– और जो पाप पतितसे उत्पन्न होनेसे होताहै वह शांत नहीं होता– स्त्रियोंके लिये यह विशेष है कि ये पूर्वोक्त जातकर्म आदि कर्म स्त्रियोंके मंत्रोंके विनाही शास्त्रोक्त समयपर करने और विवाह तो स्त्रियोंकाभी मंत्रोंसे ही होताहै ॥ १३ ॥

भावार्थ–इस प्रकार बीज और गर्भसे पैदा हुआ पाप नष्ट होताहै और स्त्रियोंके जातकर्म आदि कर्म मंत्रोंके विना और विवाह वेदोक्त मंत्रोंसे होताहै ॥ १३ ॥

गर्भाष्टमेष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनं।राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥१४॥

पद–गर्भाष्टमे७ अष्टमे७–वा५–अब्दे७ ब्राह्मणस्य ६ उपनायनं २ राज्ञां ६ एकादशे ७ सैके ७ विशां ६ एके ९ यथाकुलं५ ॥ १४ ॥

योजना–ब्राह्मणस्य उपनायनं (यज्ञोपवीतं) गर्भाष्टमे वाष्टमेऽब्दे राज्ञां एकादशे विशां सैके एकादशे(द्वादशे)ऽब्दे उपनयनं कुर्यात् एके (आचार्याः) यथा (कुलरीत्या) उपनयनं इच्छंति ॥

तात्पर्यार्थ–यज्ञोपवीतके समयको कहते हैं ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भा-

१ कुलदेवतासम्बद्धं पिता नाम कुर्यात् ।
२ चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्- म० अ० २ श्लो० ३५ ।

वा जन्मसे आठवें वर्षमें इन दोनोंमें कर्त्ताकी इच्छासे विकल्प समझना चाहे जब करे, क्षत्रियोंका यज्ञोपवीत ग्यारहवें और वैश्योंका बारहमें वर्षमें यज्ञोपवीत करे- और क्षत्री और वैश्योंके यज्ञोपवीतमें गर्भसे वर्षोंकी गिनती जाननी क्योंकि इस स्मृतिके वचनसे गर्भसेही ग्यारवें बारहमें क्षत्री और वैश्यका यज्ञोपवीत कहाहै-यह बात गर्भाष्टमें इस समस्त (मिलेहुये) पद- मेंसे गर्भ शब्दको बुद्धिसे पृथक् करिके और यहां एकादशे और सैके इनके संग मिलानेसे समझनी- अन्यथा पूर्वोक्त स्मृति और इस याज्ञवल्क्यके वचनका परस्पर विरोध होजाता कदाचित् कोई यह कहे कि समस्त पदमेंसे पृथक् हो कर दूसरेके संग मिलनही सकता सो ठीक नही-क्योंकि भाष्यकार पतंजलिने इसे वचनमेंसे षष्ठ्यंत शब्दानां इस शब्दका पृथक् लौकिक और वैदिक शब्दोंके संग अन्वय कियाहै- इस श्लोकमेंभी पूर्वोक्त कार्यकी अनुवृत्ति करनी कोई एक आचार्य कुलरीतिके अनु- सार यज्ञोपवीतकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ-गर्भसे वा जन्मसे आठवें वर्षमे [illegible]णका और गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रीका गर्भसे बारहमें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत [illegible]-कोई एक ऋषि कुलरीतिके अनुसार [illegible] करना कहते हैं- ॥१४ ॥

[illegible] गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकं।
[illegible]ध्यापयेद्वेदं शौचाचारांश्चशिक्षयेत् ॥

[illegible]-उपनीय० गुरुः१ शिष्यं२ महा- व्याहृतिपूर्वकं२ वेदं २ अध्यापयेत् क्रि० एनं२ शौचाचारान् २ च०-शिक्षयेत् क्रि० ॥

योजना- गुरुः शिष्यं उपनीय महा- व्याहृतिपूर्वकं वेदं एनं अध्यापयेत् च पुनः शौचाचारान् शिक्षयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- गुरूके धर्मोंको कहते हैं कि अपने गृह्य सूत्रमें उक्तविधिके अनुसार यज्ञोपवीत देकर गुरु शिष्यको प्रथम महाव्याहृति पश्चात् वेदको पढावे वे महा- व्याहृतिये भूः आदिसात वा गौतम ऋषिके वचनानुसार पाच होती हैं और यज्ञोपवी- तके अनंतर निम्न लिखित शौच और आचरणोंके शिक्षादे- इससे यह प्रकट है कि यज्ञोपवीतसे प्रथम शौच और आचा- रणके अन्यथा करनेमें बालकोंको काम- चार है अत एव अन्यथा करनेमें कोई प्रायश्चित्त नही और वर्णोंके धर्मोंको छोड- कर स्त्रियोंकोभी विवाहसे पहिले काम चारहै- क्योंकि स्त्रियोंके विवाहकोही उपन- यनके स्थानमें कहा है-

भावार्थ-गुरु अपने शिष्यको यज्ञोपवीत देकर व्याहृतिपूर्वक शिष्यको वेद पढावे और शौच आचरणोंकी शिक्षादे॥ १५॥

दिवासंध्यासुकर्णस्थब्रह्मसूत्रउदङ्मुखः ।
कुर्यान्मूत्रपुरीषेरात्रौचेद्दक्षिणामुखः १६

पद-दिवासंध्यासु७ कर्णस्थब्रह्मसूत्रः १ उदङ्मुखः१ कुर्यात् क्रि० मूत्रपुरीषे२ च०- रात्रौ ७ चेत०- दक्षिणामुखः१ ॥ १६ ॥

योजना-कर्णस्थब्रह्मसूत्रः ब्रह्मचारी दि- वासंध्यासु उदङ्मुखः रात्रौ चेत् (तु) दक्षि- णामुखः (सन्) मूत्रपुरीषे कुर्यात्॥ १६ ॥

तात्पर्यार्थ-अब शौचाचारको कहते हैं-कि कानपर ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)को रखकर दिन

पद-[illegible]रेकादशे राज्ञो गर्भाद्धि द्वादशे विशः ।
खानि २ [illegible] शब्दानुशासन केषां शब्दानां लौकि-
[illegible] प्रक्र[illegible]कानां ।

१ भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् ।

लिखाहै और याज्ञवल्क्य भी आगे यही कहेंगे ॥ १८ ॥

भावार्थ–हाथोंको गोडोंके भीतर करिके शुद्धदेशमें उत्तर वा पूर्वको मुखकिये हुये बैठा द्विज सदैव ब्राह्मतीर्थसे आचमन करे ॥ १८ ॥

कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रंकरस्य च ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् १९

पद–कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलानि१ अग्रं १ करस्य ६ चऽ– प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थानि१ अनुक्रमात् ५ ॥१९॥

योजना–कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलानि च पुनः करस्य अग्रं एतानि अनुक्रमात् प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थानि (ज्ञातव्यानि) ॥

तात्पर्यार्थ–अब तीर्थोंका वर्णन करते हैं– कनिष्ठा तर्ज्जनी अंगूठा इन तीनोंकी मूल और हाथका अग्रभाग ये चारो प्रजापतितीर्थ-पितृतीर्थ–ब्राह्मतीर्थ–देवतीर्थ क्रमसे जानने अर्थात् कनिष्ठाके मूलमें प्रजापतितीर्थ तर्ज्जनीके मूलमें पितृतीर्थ– और अंगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ–और कर के अग्रभागमें देवतीर्थ होता है ॥ १९ ॥

भावार्थ–कनिष्ठा–तर्ज्जनी–अंगूठा–इनतीनोंके मूल और करके अग्रभागमें क्रमसे प्रजापति–पितृ–ब्रह्म–देव–तीर्थ जानने॥१९॥

त्रिःप्राश्यापोद्विरुन्मृज्यखान्यद्भिः
समुपस्पृशेत् । अद्भिस्तु प्रकृतिस्था-
भिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ २० ॥

पद–त्रिःऽ–प्राश्यऽ–अपः द्विःऽ–उन्मृज्यऽ–खानि२ अद्भिः३ समुपस्पृशेत् क्रि०–अद्भिः३ तुऽ प्रकृतिस्थाभिः ३ हीनाभिः३ फेनबुद्बुदैः३

योजना–द्विजः अपः त्रिः (त्रिवारं) प्राश्य–द्विः (द्विवारं) उन्मृज्य प्रकृतिस्थाभिः फेनबुद्बुदैः हीनाभिः अद्भिः (जलैः) खानि (छिद्राणि) समुपस्पृशेत् ॥ २० ॥

तात्पर्यार्थ–तीनवार जलको पीकर और अंगूठेके मूलसे दोवार मुखका मार्जन करके–जिनमें और द्रव्य न मिला हो और फेन (झाग) और बुलबुलेभी जिनमें न हों ऐसे जलोंसे नासिका आदि ऊपरके छिद्रोंका भली प्रकार स्पर्श करे एकवार अद्भिः इस पदसे जलोंको कहकर फिर दुबारा उसी पदसे जलोंके कहनेका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक छिद्रमें स्पर्श करे–और वे जल प्रकृति (स्वभाव)में स्थितहों अर्थात् जिनके गंध-रूप रस स्पर्श न बिगडे हों और इस श्लोकमें तु शब्दके पढनेसे वर्षा और शूद्रके लाये जलसे स्पर्श (आचमन) करनेका निषेध है ॥ २० ॥

भावार्थ–तीन वार जलको पीकर और दोवार मुखका मार्जन करके स्वच्छ और झाग और बुलबुले जिनमें नहीं ऐसे निर्मल जलोंसे नासिका आदि ऊपरके छिद्रोंका स्पर्श करे अर्थात् उक्त जलसे नासिका आदिको शुद्ध करे ॥२०॥

हृत्कंठतालुगाभिस्तुयथासंख्यंद्विजा-
तयः । शुध्येरन्स्त्रीचशूद्रश्चसकृत्स्पृष्टा-
भिरंततः ॥ २१ ॥

पद–हृत्कंठतालुगाभिः३ तुऽ– यथासंख्यंऽ– द्विजातयः१ शुध्येरन् क्रि०– स्त्री १ चऽशूद्रः १ चऽ– सकृत्ऽ– स्पृष्टाभिः ३ अंततःऽ– ॥ ३ ॥

योजना–द्विजातयः (ब्राह्मणक्षत्रियविशः) यथासंख्यं (क्रमेण) हृत्कंठतालुगाभिः अद्भिः शुद्ध्येरन् च (पुनः)स्त्री– च(पुनः)

शूद्रः अंततः (तालुना) स्पृष्टाभिः शुद्धयेताम् ॥

तात्पर्यार्थ—हृदय कंठ तालुमें प्राप्तहुये आचमनके जलसे तीनो द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य क्रमसे शुद्ध होतेहैं—और स्त्री और शूद्र और चशब्दसे जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह ये सब तालुसे एकवारही जलके स्पर्श मात्रसे शुद्ध होते हैं ॥२१॥

भावार्थ—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों द्विज क्रमसे हृदय कंठ तालु इनमें पहुंचे हुये जलसे और स्त्री और शूद्र ये दोनों तालुसे एकवार जलके स्पर्शसे ही शुद्ध होते हैं २१—

स्नानमब्दैवतैर्मंत्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः । सूर्यस्यचाप्युपस्थानंगायत्र्याःप्रत्यहं जपः ॥ २२ ॥

पद—स्नानं१ अब्दैवतैः३ मंत्रैः३ मार्जनं १ प्राणसंयमः१ सूर्यस्य६ चऽ— अपिऽ— उपस्थानं १ गायत्र्याः ६ प्रत्यहंऽ— जपः१ ॥२२॥

योजना—स्नानं-अब्दैवतैः मंत्रैः मार्जनं-प्राणसंयमः—च (पुनः) सूर्यस्य अपि उपस्थानं (स्तुतिः) प्रत्यहं (प्रतिदिनं) गायत्र्याः जपः कार्यः—अत्र कार्यशब्दः तत्तल्लिंगानुसारेण प्रत्येकं योज्यः ॥ २२ ॥

तात्पर्यार्थ—शास्त्रोक्तरीतिसे प्रातःकाल स्नान और जल है देवता जिनका ऐसे आपोहिष्ठा-आदि मंत्रोंसे मार्जन (देहकी शुद्धि) और प्राणायाम (जिसका स्वरूप आगे वर्णन करेंगे) और सूर्यकीहै स्तुति जिनमें ऐसे उद्वयंतं आदि मंत्रोंसे सूर्यका उपस्थान (स्तुति) और गायत्री (तत्सवितुः) आदिका प्रतिदिन जप—इन पूर्वोक्त कर्मोंको तीनो द्विजाति करैं ॥२२ ॥

भावार्थ—प्रातःकाल स्नान वरुणके मंत्रोंसे मार्जन-प्राणायाम— सूर्यकी स्तुति-और प्रतिदिन गायत्रीका जप—इनको द्विज प्रतिदिन करैं ॥ २२ ॥

गायत्रींशिरसासार्द्धंजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तांत्रिरयं प्राणसंयमः ॥ २३ ॥

पद—गायत्रीं २ शिरसा३ सार्द्धम्ऽ— जपेत् क्रि०— व्याहृतिपूर्विकां २ प्रतिप्रणवसंयुक्तां२ त्रिःऽ—अयं १ प्राणसंयमः१॥२३॥

योजना—प्रतिप्रणवसंयुक्तां—व्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं शिरसा सार्द्धं त्रिः (त्रिवारं) जपेत्—अयं (पूर्वोक्तस्य त्रिर्जपः) प्राणसंयमः (प्राणायामः) ज्ञेयः ॥ २३ ॥

तात्पर्यार्थ—आपोज्योति इत्यादि जो शिरःसंज्ञक मंत्र उससे संयुक्त और उक्त ७ व्याहृति हैं पूर्व जिसके और प्रतिव्याहृति (भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्) हैं ओंकार पूर्व जिसमें उसका तीनवार मुख नासिकामें संचारी (रहनेवाली) वायुको मनसे रोककर जो जप उसको प्राणायाम कहते हैं—इस प्राणायामसे ही योगीजन अनेक सिद्धियोंको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—सात व्याहृति हैं पूर्व जिसके ऐसी जो ओंकार सहित और शिरः मंत्र सहित गायत्री उसका जो प्राणोंको रोककर तीनवार जप उसे प्राणायाम कहते हैं ॥ २३ ॥

प्राणानायम्यसंप्रोक्ष्यतृचेनाब्दैवतेन तु । जपन्नासीतसावित्रींप्रत्यगातारकोदयात् ॥ २४ ॥

१ ॐ आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वः । २ ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं—ॐतत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॐ आपोज्योती रसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्—अयं प्राणायामः ।

पद-प्राणान् २ आयम्य्ऽ-संप्रोक्ष्यऽ-तृचेन ३ अब्दैवतेन३ तुऽ-जपन्१आसीत क्रि-सावित्रीम् २ प्रत्यक् आऽ- तारकोदयात् ॥२४॥

योजना-प्राणान् आयम्य तुपुनः अब्दैवतेन तृचेन (देहं)संप्रोक्ष्य सावित्रीं जपन् सन् आ तारकोदयात् प्रत्यक् संध्यां आसीत-सायं प्रत्यङ्मुखो गायत्रीं जपेदित्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त प्राणायामको करके और जलहै देवता जिनका ऐसी आपोहिष्ठा आदि तीन ऋचाओंसे अपने देहका भलीप्रकार प्रोक्षण (छिडकना) करके गायत्री जपता हुआ द्विज प्रत्यङ्मुख (पश्चिमाभिमुख) होकर प्रत्यक् संध्या (सायंकालके संध्योपासन)को करै और वह सायंकालकी संध्या और जप तारकाओंके उदय पर्यंत करना दिन रात्रिकी संधिमें जो कर्म किया जाय उसे संध्या कहते हैं-और संपूर्ण सूर्य मंडलके दर्शन योग्य जो काल उसे दिन और उससे विपरीत समयको रात्रि कहते हैं और जिस कालमें सूर्य मंडल खंड (अपूर्ण) प्रतीत हो उसको संधि कहते हैं और वह समय सूर्यके उदय और अस्त होनेके समयमें ही होता हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ-प्राणायाम और जल है देवता जिनका ऐसी तीन ऋचाओंसे अंगका भली प्रकार प्रोक्षणकरके सायंकालकी संध्याके समय गायत्रीको जपताहुआ द्विज नक्षत्रोंके उदयपर्यन्त पश्चिमको मुखकिये बैठारहै २४

संध्यांप्राक्प्रातरेवंहितिष्ठेदासूर्यदर्शनात्।
अग्निकार्यंततःकुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि२५

पद-संध्यां२प्राक्२प्रातःऽ-एवंऽ-हिऽ-तिष्ठेत् क्रि०-आऽ-सूर्यदर्शनात्५अग्निकार्य २ ततःऽ-कुर्यात् क्रि०-संध्ययोः ७ उभयोः ७ अपिऽ-॥

योजना-एवं(पूर्वोक्त विधि आचरन्)प्राक् संध्यां प्रातः आ सूर्यदर्शनात् तिष्ठेत्-प्राङ्मुखः गायत्रीं जपेदित्यर्थः-ततः उभयोः अपि संध्ययोः अग्निकार्य (अग्निहोमादि) कुर्यात्-

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार पूर्वोक्तविधिको करता हुआ द्विज प्रातःकालके समयमें पूर्वाभिमुख स्थित होकर सूर्योदय पर्यंत गायत्रीका जप करै फिर संध्योपासनाके अनंतर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निमें समित् (काष्ठ) प्रक्षेप आदि कार्यको करै ॥२५॥

ततोभिवादयेद्वृद्धानसावहमितिब्रुवन्। गुरुंचैवाप्युपासीतस्वाध्यायार्थंसमाहितः॥२६

पद-ततःऽ-अभिवादयेत् क्रि०-वृद्धान्२ असौ१अहं १इतिऽ-ब्रुवन् १ गुरुं २ चऽ-एवऽ-अपिऽ-उपासीत क्रि०-स्वाध्यायार्थं २ समाहितः १ ॥ २६ ॥

योजना-ततः असौ अहं इति ब्रुवन् सन् वृद्धान् अभिवादयेत् च पुनः गुरुं अपि एवं (निश्चयेन) समाहितः सन् स्वाध्यायार्थं उपासीत (सेवेत) ॥

तात्पर्यार्थ-फिर संध्योपासना और अग्निहोत्रके अनंतर यह मैं हूं इस प्रकार अपने नामको कहता हुआ गुरु पिता आदि जो अपने बडे हैं उनको नमस्कार करै-और तिसी प्रकार गुरु (जिसका स्वरूप आगे कहेंगे)की स्वाध्याय (वेद आदिका पठन)के लिये चित्तको सावधान करके उपासनाकरै अर्थात् गुरुके समीप जाय कर इस प्रकार अध्ययन करैकि॥२६॥

भावार्थ-फिर यह मैंहूं यह कहता हुआ गुरु आदि वृद्धोंको नमस्कारकर और पढनेके अर्थ सावधानीसे गुरुकीभी इसी प्रकार उपासना (सेवा) करै कि ॥ २६ ॥

आहूतश्चाप्यधीयीतलब्धंतस्मैनिवेदयेत्।

१ असौ देवदत्तशर्माहं भो गुरो वा पितः त्वामभिवादये (नमस्करोमि)।

हितंतस्याचरेन्नित्यंमनोवाक्कायकर्मभिः २७

पद-आहूतः१ च- अपि- अधीयीत क्रि० लब्धं तस्मै४ निवेदयेत् क्रि- हितं २ तस्य६ आचरेत् क्रि-नित्यं२ मनोवाक्काय-कर्मभिः३ ॥

योजना-आहूतः सन् अपि (एव) अधीयीत-लब्धं (अन्नादि) तस्मै निवेदयेत् मनोवाक्कायकर्मभिः तस्य हितं नित्यं आचरेत् (कुर्वीत) ॥

तात्पर्यार्थ-अब गुरुके यहां पढनेके प्रकार कहते हैं कि गुरुके आह्वान (बुलाना) करने पर अध्ययन करे और पढनेके लिये गुरुको स्वयं प्रेरणा न करे-और जो कुछ द्रव्यआदि याचना आदि द्वारा कहींसे मिलजाय वह गुरुको ही निवेदन करदे और मन वाणी देह-और कर्मसे गुरुके हितकाही आचरण करे कदाचित् भी गुरुके प्रतिकूल आचरण नकरे और गुरुके दर्शन होनेपर कंठ आदि अपने अंगका प्रावरण (खोलना) नकरे अर्थात् निःशंक होकर न बोले ॥

भावार्थ-गुरुके बुलाने पर ही पढे और जो कुछ मिलै वह सब गुरुको निवेदन करे और मन वाणी देह कर्मसे गुरुके हितकाही नित्य आचरण करे ॥ २७ ॥

कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः।
अध्याप्याधर्मतःसाधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः

पद-कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः१ अध्याप्याः१ धर्मतः- साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः १॥

योजना-कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पान-सूयकाः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः धर्मतः अध्याप्या भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-कृतज्ञ जो हुये उपकारको विस्मरणनकरे(नभूले) अद्रोही जिसके हृदयमें दयाहो मेधावी जिसकी ऐसी सामर्थ्य हो की गुरुके पढाये हुये को धारण करसके-शुचिः जिसका बाह्य शुद्धिसे देह और अंतःशुद्धिसे अंतः-करण ये दोनों शुद्धहो-कल्प जिसको आधि (मनकी पीडा) और व्याधि (देहकी पीडा) नहीं-जो अनसूयक हो अर्थात् गुरुके दोषोंको प्रकट नकरे और गुणोंको प्रकट करे-और साधु जिसका आचरण श्रेठहो-जो शक्तहो अर्थात् गुरुकी सेवा करनेमें समर्थ हो और जो आप्तहो अपना बंधु हो और जो ज्ञानद हो अर्थात् किसी अन्य विद्याको दे-जो वित्तद जो अर्पण पूर्वक धनको दे- ये पूर्वोक्त गुण जिनमें संपूर्ण हों अथवा न्यूनाधिकहों वे शिष्य धर्मसे अर्थात् शास्त्रके अनुसार पढावे ॥ २८ ॥

भावार्थ-कृतज्ञ-अद्रोही-बुद्धिमान्-शुद्ध-नीरोग-अनिंदक-साधु-शक्त-आप्त-और-ज्ञान और धनके दाता-इनको धर्मसे पढावे ॥ २८ ॥

दंडाजिनोपवीतानिमेखलांचैवधारयेत्।
ब्राह्मणेषुचरेद्भैक्ष्यमनिंद्येष्वात्मवृत्तये २९

पद-दंडाजिनोपवीतानि २मेखलां २ च- एव-धारयेत् क्रि- ब्राह्मणेषु ७ चरेत् क्रि-भैक्ष्यं २ अनिंद्येषु ७ आत्मवृत्तये ४॥२॥

योजना-दंडाजिनोपवीतानि च पुनः मेखलां एव(अपि) धारयेत्-अनिंद्येषु ब्राह्मणेषु आत्मवृत्तये भैक्ष्यं चरेत् (कुर्यात्)॥२९॥

तात्पर्यार्थ-पालाश (ढाक) आदिके दंड और अजिन (कृष्ण मृगचर्म) और कपास आदिके यज्ञोपवीत-और मुंज आदिकी मेखला (कोंदनी) आदिको धारण करे यहां आदि शब्दसे कमंडलु आदि ब्रह्मचारीके उपकरण समझने- इसप्रकार दंड आदिसे

युक्त ब्रह्मचारी–पतित और शाप आदि दोषोंसे रहित जो अपने धर्ममे तत्पर ब्राह्मण उनके घरोंमेंसे अपने जीवनके अर्थ भिक्षाका आचरण करे अर्थात् किसी अन्यके लिये भिक्षा न मांगे उस भिक्षाको गुरुको निवेदन करके और गुरु न होय तो उनके पुत्र स्त्री आदिको अर्पण करके उनकी आज्ञासे भोजन करे इस श्लोकमें जो ब्राह्मणका ग्रहण इस नियमके लिये नही है कि ब्राह्मणोंके यहांहीसे मांगे किन्तु संभव होयतो ब्राह्मणोंसे नमिले तो तीनों द्विजातियोंसे भी भिक्षाटनमें दोष नही– जो किसीनि इस वैचनसे चारों वर्णोंमें भिक्षा मांगनी लिखी है वहभी तीनों वर्णोंमें ही समझनी क्योंकि यज्ञोपवीतका अधिकार तीनोंकोही शूद्रको नही अत एव उसका अन्नभी वर्जित लिखा है और जो इस वैचनसे चारों वर्णोंको भिक्षाटन लिखा है वह भी आपत्तिके समयमें ही समझना॥२९॥

भावार्थ–दंड मृगचर्म–जनेऊ–और मेखला-को धारण करे और निंदाके अयोग्य ब्राह्मणोंमें अपने जीवनके लिये भिक्षा मांगे॥२९॥

आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता।
ब्राह्मणक्षत्रियविशांभैक्ष्यचर्यायथाक्रमम् ॥ ३० ॥

पद–आदिमध्यावसानेषु ७ भवच्छब्दोपलक्षिता १ ब्राह्मणक्षत्रियविशां ६ भैक्ष्यचर्या१–यथाक्रमम्ऽ ॥ ३० ॥

योजना–ब्राह्मणक्षत्रियविशां आदिमध्यावसानेषु यथाक्रमं भवच्छब्दोपलक्षिता भैक्ष्यचर्या –कर्तव्येति शेषः–भवति भिक्षांदेहि–भिक्षां भवति देहि– भिक्षां देहि भवति ॥ ३० ॥

१ सार्ववर्णिकं भैक्ष्याचरणम् ।
२ चातुर्वर्णिकं चरेद्भैक्ष्यम् ।

तात्पर्यार्थ–भावार्थ–ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनोंको आदि मध्य अंतमे जिसके भवति शब्दहोय एसे वाक्योंको क्रमसे कहकर भिक्षा मांगनी अर्थात ब्राह्मण भवति भिक्षां देहि –क्षत्री भिक्षां भवति देहि- वैश्य भिक्षां देहि भवति–शब्दको कहै॥३०॥

कृताग्निकार्योभुंजीतवाग्यतोगुर्वनुज्ञया।
अपोशनक्रियापूर्वंसत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥ ३१ ॥

पद–कृताऽग्निकार्यः१भुंजीत क्रि–वाग्यतः१ गुर्वनुज्ञया ३ आपोशनक्रियापूर्वं२ सत्कृत्यऽ–अन्नं २ अकुत्सयन् १ ॥ ३१ ॥

योजना–कृताग्निकार्यः वाग्यतः ब्रह्मचारी अन्नं सत्कृत्य अकुत्सयन् (सन्) गुर्वनुज्ञया अपोशनक्रियापूर्वं भुंजीत ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्तविधिसे मिलि भिक्षाको गुरुको निवेदनकरिके अग्निहोत्रकरनेके अनंतर मौनहोकर अन्नका सत्कार करिके और अन्नकी निंदाको त्यागकर भोजनसे पूर्व अपोशन क्रियाको करिके अर्थात्–अमृतोपस्तरणमसि– इस वचनसे आचमनकरके गुरुकी आज्ञासे भोजनकोकरे–यद्यपि प्रथम पचीस २५ के श्लोकमें ब्रह्मचारीको अग्निहोत्र करना-लिखआयेहै इससे पुनः अग्निहोत्रका करना इसलिये नहीहै कि भोजनके समयमेंभी तीसरीवार अग्निहोत्र कियाजाय–किंतु इसलियेहै कि देववशसे संध्याके समयमें अग्निहोत्र नकियाहोयतो भोजनके समय करले ॥३१॥

भावार्थ–अग्निहोत्र–और अन्नका सत्कार करके–गुरुकी आज्ञासे अन्नकी निंदाको त्यागकर मौनहोकर और अपोशन (आचमन) करिके भोजनकरे ॥ ३१ ॥

ब्रह्मचर्येस्थितोनैकमन्नमद्यादनापदि ॥

ब्राह्मणःकाममश्नीयाच्छ्राद्धेव्रतमपीड
यन् ॥ ३२ ॥

पद–ब्रह्मचर्ये७ स्थितः१न०-एकं२ अन्नं२ अद्यात् क्रि– अनापदि७ ब्राह्मणः१ कामं २ अश्नीयात् क्रि– श्राद्धे७ व्रतं७ अपीडयन्१॥

योजना–ब्रह्मचर्ये स्थितः ब्राह्मणः अनापदि एकं अन्नं न अद्यात् श्राद्धे व्रतं अपीडयन् (सन्)कामं अश्नीयात् ॥

तात्पर्यार्थ–ब्रह्मचर्यमें स्थित ब्राह्मण आपत्तिकेविनाँ एकके अन्नको न खाय अर्थात् शरीरमें कोई व्याधि आदि होयतो दोषनहीं– और श्राद्धके विषय कोई निमंत्रण देतो ऐसे भोजनको यथेच्छ करिले जिससे अपने व्रतका भंग न होय अर्थात् मधु मांस आदिका भक्षण श्राद्धमेंभी न करै इस श्लोकमें ब्राह्मणका लेख इसलिये है कि क्षत्री, वैश्यको श्राद्धके भोजनका इस वैचनसे निषेध है कि क्षत्री वैश्यका यह काम नहींहै कि श्राद्धका भोजन करैं ॥ ३२ ॥

भावार्थ–ब्रह्मचारि विना आपत्तिके एकके अन्नको नखाय और ब्राह्मण आपने व्रतकी रक्षापूर्वक श्राद्धमें यथेच्छ भोजन करै॥ ३२

मधुमांसांजनोच्छिष्टशक्तस्त्रीप्राणिहिंस
नंभास्करालोकनाश्लीलपरिवादादिव-
र्जयेत् ॥ ३३ ॥

पद–मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणि–हिंसनं २ भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि २ वर्जयेत् क्रि– ॥

योजना–मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनं भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि (ब्रह्मचारी)वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ– ब्रह्मचारी इनसबवस्तु ओंको वर्जदे कि मधु (सहत) यहां मधु शब्दसे मदिराका ग्रहणनहीं क्योंकि इस वैचनसे ब्राह्मणको मदिराका सदैव निषेधहै मांस अंजन –अर्थात् घृत आदिको देहमें और कज्जल आदिको नेत्रमें लगाना– गुरुका उच्छिष्ट शुक्त (कठोरवचन) यहां शुक्तपदसे अन्नरस इसलिये नहीं लिया कि उसका अभक्ष्य प्रकरणमें निषेध कहेंगे– स्त्रीका संग-प्राणियोंका हिंसन– उदय और अस्तके समय सूर्यका दर्शन अश्लील (झूठबोलना) परिवाद् (सच्चे और झूठे पराये दोषोंको कहना) और आदिशब्दसे अन्य स्मृतियोंमें कहेहुये गंध और माल्य आदिकोभी वर्जदे ॥ ३३ ॥

भावार्थ– सहत–मांस– अंजन–गुरुका उच्छिष्ट–कठोरवचन– स्त्रीसंग– प्राणियोंकी हिंसा उदय अस्तके समय सूर्यको देखना और झूठ बोलना और गंध माल्यको धारना इनसबको ब्रह्मचारी वर्जिदे ॥ ३३ ॥

सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वावेदमस्मैप्रयच्छ-
ति । उपनीयददद्वेदमाचार्यःसउदा
हृतः ॥ ३४ ॥

पद–सः १ गुरुः१ यः१ क्रियाः२ कृत्वा० वेदं२ अस्मै४ प्रयच्छति–क्रि· उपनीय०–ददत् १वेदं२ आचार्यः१ सः१ उदाहृतः१ ॥

योजना–यः क्रियाः कृत्वा अस्मै वेदं प्रयच्छति स गुरुः यः उपनीय वेदं ददत् (भवति) स आचार्यः उदाहृतः

ता० भा०–जो गर्भाधान आदि उपनयन पर्यंत क्रियाओंको विधिसे कराकर ब्रह्मचारीको वेद पढावे उसे गुरु और जो यज्ञो पवीतही को कराकर वेद पढावे उसे आचार्य कहतेहै ॥ ३४ ॥

---

१ राजन्यवैश्ययोश्चैव नैतत्कर्म प्रचक्षते ।

१ नित्यं ब्राह्मणो मद्यं वर्जयेत् ।

एकदेशमुपाध्यायऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते ।
एतेमान्याययथापूर्वमेभ्योमातागरीयसी ३५

पद- एकदेशं२ उपाध्यायः१ ऋत्विक्१ यज्ञकृत्१ उच्यते क्रि-एते१ मान्याः१ यथा-पूर्वं-एभ्यः५ माता१ गरीयसी१ ॥

योजना- यः एकदेशं अध्यापयति सः उपाध्यायः-यज्ञकृत् ऋत्विक् उच्यते-एते गुर्वाचार्योपाध्यायर्त्विजः यथापूर्वं मान्याः (भवंति) एभ्यः (सर्वेभ्यः) माता गरीयसी (पूज्यतमा) ॥

तात्पर्यार्थभावार्थ-जो वेदके एकदेश मंत्र वा ब्राह्मण अथवा ६ अंग इनको पढावे वह उपाध्याय और जो वरण किया हुआ पाकयज्ञ आदि करै उसके ऋत्विज ये चारो (गुरु-आचार्य-उपाध्याय-ऋत्विग्) क्रमसे पूजा करनेके योग्यहै और इन सबसे अधिक पूजने योग्य माता होतीहै ॥ ३५ ॥

प्रतिवेदंब्रह्मचर्यंद्वादशाब्दानिपंचवा ।
ग्रहणांतिकमित्येकेकेशांतश्चैवषोडशे ३६

पद-प्रतिवेदं२ ब्रह्मचर्यं १ द्वादशाब्दानि२ पंच१ वा‍ऽ -ग्रहणांतिकं २ इति‍ऽ- एके१ केशांतः१ च‍ऽ -एव‍ऽ- षोडशे ७ ॥

योजना- ब्राह्मणेन प्रतिवेदं द्वादश वा पंच अब्दानि ब्रह्मचर्यं कार्यं एके आचार्याः ग्रहणांतिकं वदंति च पुनः केशांतः षोडशे वर्षे कार्यः ॥

तात्पर्यार्थ-जब विवाह न हुआ होय इस मनुके वचनानुसार चार वा २ दो वा एक वेद पढनेका ब्राह्मणको अधिकारहै तब एक२ वेदके पढनेमें बारह १२ वर्ष अथवा पांचवर्ष ब्रह्मचर्य करै और कोई वेदके ग्रहण आनेतक ब्रह्मचर्यको कहते है और केशांत गर्भसे१६ सोलहमें वर्षमें ब्राह्मणका करना- यह बात जभी है जब बारह वर्षका ब्रह्मचर्य होय- पांचवर्षके ब्रह्मचर्यमेंतो सोलह वर्षसे पहिलेमी केशांत कर्म करले- क्षत्री और वैश्यकोतो जनेऊके समान बाईस २२ या चोवीस २४ वर्षमें केशांत कर्म करना ॥

भावार्थ- प्रत्येक वेदके पढनेमें १२ बारह या पांचवर्षतक ब्रह्मचर्य वा जबतक वेद आवे तबतक ब्रह्मचर्य करना- और केशांत कर्म सोलहमें वर्षमें करना ॥ ३६ ॥

आषोडशादाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्चवत्सरात् ।
ब्रह्मक्षत्रविशांकालऔपनायनिकःपरः ३७

पद-आ‍ऽ-षोडशात् ५आ‍ऽ-द्वाविंशात् ५ चतुर्विंशात् ५ च‍ऽ- वत्सरात् ५ ब्रह्मक्षत्र-विशां ६ कालः १ औपनायनिकः १ परः १ ॥

योजना-आषोडशात् आद्वाविंशात् चपुनः चतुर्विंशात् वत्सरात् ब्रह्मक्षत्रविशां औपनायनिकः परः कालः (स्मृतः) ॥

ता०भा०-सोलह वर्षतक ब्राह्मणके बाईस वर्षतक क्षत्रीके चोवीस वर्षतक वैश्यके यज्ञोपवीतका समय उत्तम कहा है इससे परे उपनयनका समय नही रहता ॥ ३७ ॥

अतऊर्ध्वंपतंत्येतेसर्वधर्मबहिष्कृताः ।
सावित्रीपतिताव्रात्याव्रात्यस्तोमादृतेक्रतोः

पद-अतऊर्ध्वं २ पतंति क्रि-एते १ सर्वधर्मबहिष्कृताः १ सावित्रीपतिताः१ व्रात्याः१ व्रात्यस्तोमात्५ ऋते‍ऽ- क्रतोः ५ ॥

योजना- अतऊर्ध्वं सर्वधर्मबहिष्कृताः एते पतंति व्रात्यस्तोमात् क्रतोः ऋते सावित्री पतिताः संतः व्रात्याः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ- पूर्वोक्तकालसे परे संपूर्ण धर्मोके अनधिकारी ये तीनो पतित होते हैं और व्रात्यस्तोम यज्ञ किये विना सावित्रीसे पतित होजातेहैं अर्थात् गायत्रीके उपदेश

१ वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वेति प्रवर्त्तेत ।

योग्य नही रहते यदि ये व्रात्यस्तोम यज्ञ करले तो यज्ञोपवीतके अधिकारी पूर्वोक्त गौणकालके अनंतरभी होते हैं ॥ ३८ ॥

भावार्थ– इससे आगे ये तीनों संपूर्ण धर्मके अनधिकारी पतित होजाते हैं– और व्रात्यस्तोम यज्ञ किये विना व्रात्यहोनेसे गायत्रीके अधिकारी नही रहते ॥ ३८ ॥

मातुर्यदग्रेजायंतेद्वितीयंमौंजिबंधनात्
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेतेद्विजाः
स्मृताः ॥ ३९ ॥

पद–मातुः५ यतऽ– अग्रे७ जायंते क्रि– द्वितीयं १ मौंजिबंधनात् ५ ब्राह्मणक्षत्रियविशः१ तस्मात्५ एते१ द्विजाः १ स्मृताः१॥

योजना–यस्मात् अग्रे एते मातुः सकाशात् जायंते एषां द्वितीयं जन्म मौंजिबंधनात् भवति तस्मात् एते ब्राह्मणक्षत्रियविशः द्विजाः स्मृताः ॥

ता० भा०–जिससे ये तीनों प्रथम माताके सकाशसे और दुबारा मौंजिबंधन (यज्ञोपवीत) के समय पैदा होते हैं तिससे ये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विजाति कहलाते हैं ॥ ३८ ॥

यज्ञानांतपसांचैवशुभानांचैवकर्मणाम् ।
वेदएवद्विजातीनांनिःश्रेयसकरःपरः॥४०॥

पद–यज्ञानां६ तपसां६ चऽ- एवऽ- शुभानां६ चऽ- एवऽ- कर्मणां ६ वेदः १ एवऽ- द्विजातीनां ६ निःश्रेयसकरः १ परः १ ॥

योजना–द्विजातीनां यज्ञानां चपुनः तपसां चपुनः शुभानां कर्मणां निःश्रेयसकरः परः वेद एव–नान्य इति यावत् ॥

ता० भा० श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपाद्य (कहीहुयी) यज्ञोंके– और कायसंताप आदि तपोंके और चांद्रायण आदि शुभकार्य और यज्ञोपवीतआदि संस्कारोंका बोध कहनेसे वेदही द्विजातियोंके परम निःश्रेयस (मोक्ष)का कर्ता है अन्य नही और एव शब्दसे वेदमूल स्मृतिभी मोक्षफलके देनेवाली होती हैं ॥ ४० ॥

मधुनापयसाचैवसदेवांस्तर्पयेद्विजः ।
पितृन्मधुघृताभ्यांचऋचोधीतेचयोन्व
हम् ॥ ४१ ॥

पद–मधुना३ पयसा ३ चऽ– एवऽ– सः १ देवान् तर्पयेत् क्रि– द्विजः १ पितृन् २ मधुघृताभ्यां३–चऽ– ऋचः२अधीते क्रि –चऽ– यः१ अन्वहम्ऽ ॥

योजना–यः अन्वहं ऋचः (ऋग्वेदं) अधीते सः देवान् मधुना चपुनः पयसा चपुनः पितृन् मधुघृताभ्यां तर्पयेत् ॥

ता० भा० जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेदको पढताहै वह मधु (सहत वा मिष्ट) और दूधसे देवताओंको और मधु और घृतसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४१ ॥

यजूंपिशक्तितोधीतेयोन्वहंसघृतामृतैः ।
प्रीणातिदेवानाज्येनमधुनाचपितॄं
स्तथा ॥ ४२ ॥

पद–यजूंपि२ शक्तितःऽ अधीते क्रि– यः१ अन्वहंऽ सः१ घृतामृतैः ३ प्रीणाति क्रि– देवान् २ आज्येन ३ मधुना ३ चऽ– पितॄन् २ तथाऽ– ॥

योजना–यः शक्तितः अन्वहं यजूंपि अधीते सः घृतामृतैः देवान्–तथा आज्येन चपुनः मधुना पितॄन् प्रीणाति (तर्पयति) ॥

ता० भा० जो द्विज अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन यजुर्वेदको पढता है वह घृत और अमृतसे देवताओंको और घृत और मधुसे पितरोंको–तृप्त करता है ॥ ४२ ॥

सतुसोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद्योऽन्वहंपठेत् ।
सामानितृप्तिंकुर्याच्चपितॄणांमधुसर्पिषा ४३

पद-सः१ सु॰- सोमघृतैः ३ देवान् २ तर्पयेत् क्रि- यः१ अन्वहम्॰- पठेत् क्रि- सामानि २ तृप्तिं२ कुर्यात् क्रि- च॰- पितॄणां६ मधु सर्पिषा ३ ॥

योजना-यः अन्वहं सामानि पठेत् सः सोमघृतैः देवान् तर्पयेत्- चपुनः मधुसर्पिषा पितॄणां तृप्तिं कुर्यात्॥

ता॰ भा॰ जो द्विज प्रतिदिन सामवेदको पढता है वह सोम (अमृतलता) और घृतसे देवताओंको तृप्त करताहै- और मधु और घीसे पितरोंकी तृप्तिको करता है ॥ ४३ ॥

मेदसातर्पयेद्देवानथर्वांगिरसःपठन् ।
पितॄंश्चमधुसर्पिर्भ्यामन्वहंशक्तितो
द्विजः ॥ ४४ ॥

पद-मेदसा ३-तर्पयेत् क्रि- देवान् २ अथर्वांगिरसः२ पठन्१ पितॄन् २ च॰- मधुसर्पिर्भ्याम्३ अन्वहं॰- शक्तितः॰- द्विजः१ ॥

योजना-द्विजः शक्तितः अथर्वांगिरसः पठन् सन् अन्वहं मेदसा देवान्-चपुनः मधुसर्पिर्भ्यां पितॄन् तर्पयेत्॥

ता॰ भा॰ जो द्विज अपनी शक्तिके अनुसार अथर्वांगिरस (अथर्वणवेद)को प्रति दिन पढता है वह मेद (मज्जा)से देवताओंको मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४४ ॥

वाकोवाक्यंपुराणंचनाराशंसीश्च
गाथिकाः । इतिहासांस्तथाविद्याः
शक्त्याधीतेहियोऽन्वहम् ॥ ४५ ॥

पद-वाकोवाक्यं२पुराणं२च॰-नाराशंसीः२ ॰-गाथिकाः२ इतिहासान्२ तथा॰-विद्याः२ शक्त्या ३ अधीते क्रि-हि॰-यः१ अन्वहम्॰॥

योजना-यः द्विजः वाकोवाक्यं चपुनः पुराणं चपुनः नाराशंसीः गाथिकाः तथा इतिहासान्-विद्याः शक्त्या अन्वहं अधीते (पठति)॥

ता॰ भा॰ जो द्विज वाकोवाक्य (प्रश्नोत्तररूप वेदके वाक्य) ब्राह्म आदि पुराण और चकारपढनेसे मानवआदि धर्मशास्त्र और नाराशंसी (रुद्र है देवता जिनका ऐसे मंत्र) और गाथा (इंद्रगाथाआदि यज्ञगाथा)-महाभारतआदि इतिहास-वारुणि आदि विद्या-इन सबको अपनी शक्तिके अनुसार पढता है ॥ ४५ ॥

मांसक्षीरौदनमधुतर्पणंसदिवौकसाम् ।
करोतितृप्तिंकुर्याच्चपितॄणांमधुसर्पिषा ४६ ॥

पद-मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं २ सः १ दिवौकसाम्६ करोति क्रि- तृप्तिं २ कुर्यात् क्रि- च॰- पितॄणां६मधुसर्पिषा३ ॥

योजना-सः द्विजः दिवौकसां मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं करोति-चपुनः पितॄणां तृप्तिं मधुसर्पिषा कुर्यात्॥

ता॰ भा॰ वह द्विज-मांस-दूध-ओदन (भात)- मधु-इनसे देवताओंको-और मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४६ ॥

तेतृप्तास्तर्पयंत्येनंसर्वकामफलैःशुभैः । यं यंक्रतुमधीतेसौतस्यतस्याप्नुयात्फलम् ॥

पद-ते १ तृप्ताः १ तर्पयंति क्रि- एनं २ सर्वकामफलैः ३ शुभैः ३ यं२ यं २ क्रतुं २ अधीते क्रि- असौ १ तस्य ६ तस्य ६ आप्नुयात् क्रि- फलम्२॥

योजना-तृप्ताः सन्तः ते (देवाः पितरः) एनं शुभैः सर्वकामफलैः तर्पयंति-असौ

कांतहो अर्थात् वरके मन और नेत्रोंको आनंद दे क्योंकि आपस्तंब ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि जिसमें मन और चक्षु ये दोनो निरंतर लगे रहें उस कन्याके विवाह नेसे ऋद्धि होती है परन्तु न्यून वा अधिक बाह्य अंगोंके दोष न होनेपरही यह समजनी यदि वेदोष होंयतो पूर्वोक्त कांताकोभी न विवाहै —और जो असपिंडा हो अर्थात् जिसका देह अपने देहके संग एक नहो क्योंकि सपिंडता तभी होती है जब शरीरके अवयव एक हो— सोई दिखाते हैं कि पुत्रका पिताके संग इससे सापिंड्य है कि पिताके शरीरके अवयवोंका संबंध वीर्यद्वारा पुत्रमें है इसी प्रकार पिताके द्वारा पितामह आदिके संगभी सपिंडता समझनी—इसी प्रकार माताके शरीरके संम्बंधसे माताके संग—और माताके द्वारा मातामह आदिके संग समझनी—इसी प्रकार परंपरासे एक शरीरका संबंध होनेसे मोसी और मातुल— और चाचा पिताकी स्वसाके संग समझना— इसी प्रकार पतिके संग पत्नीकी सपिंडता है उसके संग अंगकी एकता हेनिवाली है—इसी प्रकार भ्राताकी स्त्रियोंके संग अपनी सपिंडता है क्योंकि भ्राताओंकि संग अपने शरीरकी एकता है और उनके देहोंके संग उनकी स्त्रियोके देहोंकी—इस प्रकार जहां२ सपिंड शब्द हो वहां २ साक्षात् वा परंपरा संबंधसे शरीरके अवयवोंका एकही संबंध जानना— इसमें यह शंका होती है कि जो मातामह आदिभी सपिंड हैं तो इस वचनके अनुसार उनको दशदिनकाही सूतक मरनेका होना चाहिये सो शंका ठीक नही हैं क्योंकि उसका यह विशेष वचन बाधक है कि विवाही हुयी कन्याओंका अशौच वेही माने जिनके विवाही हो—इससे जिन सपिंडोंमें विशेष वचन नहो तहांही पूर्वोक्त वचन दशदिनके अशौचका बोधक समझना—इसीसे एक शरीरके अवयवोंकि अन्वयसे सपिंडता अवश्य कहनी—क्योंकि इन श्रुतियोंमेंभी यही कहा है कि आत्माहि [illegible])

[illegible]

यह कहा है वहां पिता आदि पैदा हो कर प्रत्यक्षसे दीखता है तिसी प्रकार गर्भोपनिषद्में लिखा है कि इस शरीरमें छः कोस (वस्तु) है तीन पितासे और तीन मातासे अस्थि स्नायु मज्जा पितासे—त्वचा मांस रुधिर मातासे—होते हैं—इस प्रकार तहां २ शास्त्रोंमें अन्वयका प्रतिपादन किया है—यदि साक्षात् पिताके ही संबंधसे सपिंडता मानोगे तो माताकी संतान और भ्राताके पुत्रोंमें सपिंडता न होगी—क्योंकि समुदायशक्तिसे रूढि मानोगे तो जहां तहां मानी हुयी अवयवशक्ति त्यागनी पडेगी—और परंपरासे एक शरीरके अवयवसंबंधसे सपिंडता माननेमें दोषका अभाव आगे कहेंगे—और जो कन्या अपनेसे यवीयसी हो अर्थात् अवस्था और देहके प्रमाणसे न्यून होय उसको अपनी गृह्यसूत्रमें कही हुई विधिसे विवाहै ॥ ५२ ॥

भावार्थ—नही नष्ट हुआ है व्रत जिसका ऐसा ब्रह्मचारी श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त—और— स्त्री—जिसका पर पुरुषके संग संबंध न होय —और जो मनोहर हो और अपने सपिंडोंमे

१ यस्या मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः ।
२ दशाहं शावमाशौच सपिंडेषु विधीयते ।
३ प्रत्तानामितरे कुर्युः ।

१ आत्माहि जज्ञे आत्मनः—प्रजामनुप्रजायते ।
२ सएवायं विरुद्धः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते ।
३ एतत् पाट्कौशिकं शरीरं त्रीणि पितृतः त्रीणि मातृतः अस्थिस्नायुमज्जानः पितृतः त्वङ्मांस रुधिराणि मातृतइति ।

न होय और जो अवस्था वा देह प्रमाणसे न्यून होय ऐसी कन्याको विवाहे ॥ ५२ ॥

अरोगिणींभ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ।
पंचमात्सप्तमादूर्ध्वंमातृतःपितृतस्तथा ५३

पद–अरोगिणीं २ भ्रातृमतीं २ असमानार्षगोत्रजां २ पंचमात् ५ सप्तमात् ७ उर्ध्वम् २ मातृतः ५ पितृतः ५ तथा ५– ॥

योजना–अरोगिणीं भ्रातृमतीं असमानार्षगोत्रजां कन्यां (उद्वहेत्) मातृतः पंचमात् पितृतः सप्तमात् ऊर्ध्वं सापिंड्यं निवर्तते इति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–जो कन्या ऐसे रोगवाली न होय जिसकी चिकित्सा न हो सके–और जिसका भ्राता विद्यमान होय और अपने प्रवर गोत्रकी न होय क्योंकि गौतम ऋषिने उनका विवाह नही लिखा कि जिनका प्रवर एक होय–और मनुजीनेभी माता और पिताके सपिंडकी कन्याके संग विवाह नहि लिखा–और माताके गोत्रकाभी कन्याका विवाह कोई नही चाहते–क्योंकि इस वचनसे उक्त कन्याके विवाहमें प्रायश्चित्त लिखा है–कि मामाकी पुत्री माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याको विवाह लेतो उसे त्यागकर चांद्रायण प्रायश्चित्त करे– पिछले श्लोकके असपिंडा पदसे पिता–और माताकी बहिनकी पुत्रीयोंका निषेध है और यहां असगोत्रा पदसे उसका निषेध है जो भिन्नकुलमें पैदाहुई असपिंड तो होय पर गोत्र एक होय–असमानप्रवरा इससे उसका निषेध है जो असपिंड और असमानगोत्रकीभी होय पर जिसका प्रवर एक होय–और असपिंडा इस पदसे सपिंड कन्याका विवाह चारों वर्णोंको निषिद्ध है क्योंकि सपिंडता सबमें होसकती है और एक गोत्र और एक प्रवरकी कन्याका जो निषेध है वह द्विजातीयोंके ही लिये है–यद्यपि क्षत्री और वैश्योंका कोई प्रातिस्विक (भिन्न २) गोत्रके न होनेसे प्रवर नही हो सकता तथापि, पुरोहितके गोत्र और प्रवरोंको वर्जदे– क्योंकि आश्वलायन ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि यजमानके प्रवरोंका विभाग करे यह कहकर क्षत्री और वैश्यको पुरोहितकही प्रवरोंका विभाग होता है सिद्धांत यह है कि सपिंडा–समानगोत्रा–समानप्रवरा ये तीनों भार्या ही नही होसकती और रोगवाली और जिसका भ्राता न होय ये दोनों भार्या हो सकती है परंतु लौकिक विरोध है अर्थात् रोगिणीमें संतानके न होनेकी- जिसके भाई न होय उसमें पुत्रिका करनेकी शंका बनी रहती है–और माताके वंशमें मातासे पांचवी पीढीसे और पिताके वंशमें सातवी पीढीसे ऊपर सपिंडता नहीं रहती है–इससे यद्यपि यह सपिंड शब्द अवयव शक्ति (अर्थके अनुसारसे) सबका बोधक होनेपर मथकर पंकज आदि शब्दके समान इनही परिमितोंका बोधक है कि पिता आदि छः ६ वा पुत्र आदि छः ६ और सातवा आत्मा (आप) और संतानके भेदमेंभी जिससे संतान भेद होय उससे सातवी पीढीतक गिनले तिससे मातासे लेकर माताके पिता और पितामहकी गिनतीमें जो पांचवी पीढी होय उसे मातृतः पांचमी कहते है इसी प्रकार पितासे लेकर पितामह आदिकी गिनतीमें जो सात-

१ असमानप्रवरैर्विवाहः ।

२ असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।

३ मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।

१ यजमानस्यार्षेयान् प्रवृणीत इत्युक्त्वा पौरोहित्यान् राजविशान् प्रवृणीते ।

वी पीढी हो वह पितृतः सप्तमी कहाती है—परंपरा संबंधसे भगिनी—भ्राता—भ्राताकी पुत्री और पितृव्य (चाचा) इनके विवाहमें भिन्न २ कुलसे उत्पन्न होनेसे शाखाका भेद गिना जाताहै—वशिष्ठजीने जो यह कहा है कि मातासे पांचवी पितासे सातवी और पैठीनसीने[1] मातासे तीन और पितासे पांच पीढीमें न होय उसे विवाहे यह भी उससे इधरकी कन्याको निषेधके लिये है कुछ प्राप्तिके लिये नहीं—इससे सब स्मृतियोंका अविरोध है यह बातभी सजातीयोंमें जाननी विजातियोंमे तो शंखऋषिने यह कहा है कि ब्राह्मण आदि एक जातिसे भिन्न २ जातिकी स्त्रियोंमे पैदा हुये जन पृथक् २ होते हैं और जो सजातीय भिन्न २ स्त्रियोंमें पैदा हुये वे सपिंड होते हैं इन सबका शौच (शुद्धि) पृथक् २ होता है जिसको अशौच प्रकरणमें कहेंगे—और सपिंडतो तीन पुरुष पर्यंतही होते हैं—यद्यपि इन श्लोकोंसे माताके गोत्रकी कन्याके संग विवाह कहा है तथापि यह किसी २ दक्षिण आदि देशोंमें ही प्रचलित है सर्वत्र नहीं ॥ ५३ ॥

भावार्थ—जिस कन्याके रोग न होय और भ्राता होय और जो अपने गोत्र और प्रवर की न होय उसे विवाहे और मातासे पांचवी और पितासे सातवी पीढीतक सपिंडता रहती है ॥ ५३ ॥

दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणांमहाकुलात्
स्फीतादपिनसंचारिरोगदोषसमन्वितात् ॥

पद—दशपूरुषविख्यातात् ५ श्रोत्रियाणां ६ महाकुलात् ५ स्फीतात् ५ अपि॰— न॰— संचारिरोगदोषसमन्वितात् ५ ॥

योजना—श्रोत्रियाणां दशपूरुषविख्यातात् महाकुलात् (कन्या) आहर्त्तव्या संचारिरोगदोषसमन्वितात् स्फीतादपि न आहर्त्तव्या ॥

तात्पर्यार्थ—वेदपाठियोंका मातासे और पितासे पांच २ पुरुषोंतक विख्यात जो महान् कुल अर्थात् पुत्र पौत्र पशु दासी ग्राम आदिसे प्रसिद्ध उससे कन्याको विवाह कर लावे और जिसमें कुछ अपस्मार (मृगी) आदि संचारी रोग और माता पिताके शुक्रशोणितद्वारा संतानमें प्रवेश करनेवाले दोष होय वो चाहे महाकुलभी होय तो उसकी कन्याको न विवाहे—क्योंकि मनुजीने इस श्लोकसे[1] ये दशकुल विवाहमें वर्जित किये हैं—कि क्रियाहीन—पुरुषहीन—वेदरहित—रोमश—(जिस कुलके मनुष्योंके देहपर अधिक रोमहों) अर्श (बवासीर) की व्याधिसे युक्त—क्षयी—मंदाग्नि—अपस्मारी—श्वित्री (सफेद दाद) कुष्ठी ॥ ५४ ॥

भावार्थ—दशपुरुषोंतक विख्यात वेदपाठियोंके महान् कुलकी कन्याको विवाहे और संचारी रोग और दोषसे युक्त बडे कुलकीभी कन्याको न विवाहे ॥ ५४ ॥

एतैरेवगुणैर्युक्तःसवर्णःश्रोत्रियोवरः ।
यत्नात्परीक्षितःपुंस्त्वेयुवाधीमान्जनप्रियः

पद—एतैः ३ एव॰— गुणैः ३ युक्तः १ सवर्णः१ श्रोत्रियः१ वरः१ यत्नात्१ परीक्षितः१ पुंस्त्वे ७ युवा १ धीमान् १ जनप्रियः१ ॥

---

१ पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा ।

२ पैठीनसिस्त्रीन्मातृतः पंचातीत्य च पितृतः ।

३ यद्येकजाता बहवः पृथक् क्षेत्राः पृथग्जनाः । एकपिंडाः पृथक्शौचाः पिंडस्त्वावर्तते त्रिषु ।

१ हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ।

योजना-एतैः एव गुणैः युक्तः सवर्णः श्रोत्रियः, यत्नात् पुंस्त्वे परीक्षितः युवा धीमान् जनप्रियः वरः (द्रष्टव्य इति शेषः)॥

तात्पर्यार्थ-अब कन्याके ग्रहणमें नियमों को कहकर कन्याके दानमें वरके नियमोंको कहते हैं कि इन पूर्वोक्त गुणोंसे ही युक्त और दोषोंसे जो वर्जित होय और जो अपनेसे उत्कृष्ट वा समान वर्णका होय हीन वर्णका न होय और जो स्वयं वेदपाठी होय और जिसके पुंस्त्वकी यत्नसे इस नारदोक्त वचनके अनुसार परीक्षा करिली होय कि जिसका वीर्य्य जलमें तैरे और जिसका मूत्र सुखसे ऐसा निकसे कि पृथ्वी पर गिरनेके समय झाग उठें इन लक्षणोंसे जो युक्त वह पुरुष और विपरीत लक्षणोंसे युक्त वह नपुंसक होता है-और जो युवा होय वृद्ध न होय और जो लौकिक और वेदोक्त व्यवहारोंमें निपुण होय और जो हास्यपूर्वक कोमल भाषण आदिसे सबको प्यारा प्रतीत होय ऐसा वर देखना चाहिये ॥ ५५ ॥

भावार्थ-जो इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त, सवर्ण, वेदपाठी यत्नसे की हुई परीक्षामें पुरुष युवा-व्यवहारोंमें निपुण जनोंको प्रिय होय वही वर देखना ॥ ५५ ॥

यदुच्यतेद्विजातीनांशूद्राद्दारोपसंग्रहः ।
नैतन्ममसतंयस्मात्तत्रायंजायतेस्वयम् ॥

पद-यत् १ उच्यते क्रि- द्विजातीनां ६ शूद्रात् ५ दारोपसंग्रहः ६ न ा एतत् १ मम ६ मतं १ यस्मात् ५ तत्र ा-अयं १ जायते क्रि- स्वयं १ ॥

योजना-यत् द्विजातीनां शूद्रात् दारोपसंग्रहः उच्यते एतत् मम मतं न (अस्ति) कुतः यस्मात् अयं (द्विजातिः) तत्र स्वयं जायते ॥

तात्पर्यार्थ-विवाहके तीन भेद हैं १ रतिके लिये २ पुत्रके लिये ३ धर्मके लिये-उन तीनोंमें पुत्रार्थ विवाहके दो भेद हैं-एक नित्य दूसरा काम्य नित्यमें प्रजाके लिये सवर्ण वेदपाठी वर देखना इससे सवर्णा कन्या ही मुख्य दिखाई अब काम्यमें नित्य संयोग होनेसे अनुकल्प (गौण)ताको कहते हैं कि जो काम्य विवाहमें मनुजीने ब्राह्मणको इस प्रकरणमें लिखा है कि कामनासे प्रवृत्त हुये-द्विजातियोंकी क्रमसे ये स्त्री श्रेष्ठ होती हैं कि ब्राह्मणकी चारों वर्णकी क्षत्रीकी तीन वर्णकी वैश्यकी दो वर्णकी शूद्रकी एक वर्णकी भार्या होती हैं यह जो द्विजातियोंको शूद्राका विवाह है यह मुझे (याज्ञवल्क्यको) संमत नहीं- क्योंकि यह द्विजाति भार्यासे स्वयं पैदा होता है और इस श्रुतिमेंभी यह लिखा है कि वही जाया होती है जिसमें यह पुत्ररूपसे पुनः पैदा होय-इस श्लोकसे जो आवश्यक पुत्रोत्पादनमें प्रवृत्त हुये द्विजातीको शूद्राके विवाहका निषेध किया उससे यह प्रकट आज्ञा प्रतीत हुई कि आवश्यक पुत्रोत्पत्ति के लिये काम्य विवाहमें ब्राह्मणको क्षत्रिया वैश्याके, क्षत्रीको वैश्याके विवाहमें दोष नहीं क्योंकि वेभी द्विजाति हैं परंतु यहभी विवाह अब प्रचलित नहीं हैं किंतु समान वर्णकी कन्याका विवाहही उत्तम समझा जाता है ॥ ५६ ॥

---

१ यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्रादि मूत्रं च फेनिलम् । पुमान् स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतस्तु षण्ढकः ।

१ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः । शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते । ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ।

२ तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ।

भावार्थ-जो मनु आदिकोंने द्विजातियोंकोभी शूद्रसे स्त्रीका विवाह करना लिखा है वह मेरा मत नहीं अर्थात् याज्ञवल्क्यको संमत नहीं क्योंकि यह द्विजाति जायामें स्वयं पैदा होता है ॥ ५६ ॥

तिस्रोवर्णानुपूर्व्येणद्वेतथैकायथाक्रमं ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशांभार्यास्वाशूद्रजन्मनः ॥

पद-तिस्रः१ वर्णानुपूर्व्येण ३ द्वे २ तथा९- एका १ यथाक्रमं९- ब्राह्मणक्षत्रियविशां ६ भार्या १ स्वा १ शूद्रजन्मनः६ ॥

योजना-ब्राह्मणक्षत्रियविशां वर्णानुपूर्व्येण तिस्रः द्वे तथा एका यथाक्रमं भार्याः भवंति शूद्रजन्मनः स्वा-(शूद्रा एव) ॥

तात्पर्यार्थ-अब उस मनुष्यके विवाहका क्रम कहते हैं जिसको रतिकी कामना होय और पुत्रवान् होय और भार्या नष्ट होगई होय और जो अन्य आश्रमका अधिकारी न होय और जिसको गृहस्थाश्रममें टिकनेकीही आकांक्षा होय कि वर्णके क्रमसे तीनों द्विजातियोंमें ब्राह्मणकी तीन ३ क्षत्रीकी दो २ वैश्यकी एक १ शूद्रकीभी एकही भार्या होती है- और सवर्णा तो सबको मुख्यहै- और पूर्व पूर्व वर्णकी कन्याके अभावमें उत्तर २ वर्णकी भार्या होसकती है और यही क्रम नित्य विवाहके समान पुत्रोत्पत्तिके लिये कियेहुये काम्य विवाहमें भी समझना । अतएव शूद्रापुत्रका पुत्रोंके मध्यमें गिनना और उसके विभागको कहनाभी उसकाही है जो रतिकी कामनासे गृहस्थाश्रमवालेकी आकांक्षासे उत्पन्न होय और जो अकस्मात् शूद्रामें पैदा होय वह नपुत्र है और न उसको धनका विभाग मिलता है ॥ ५७ ॥

भावार्थ- ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनों द्विजातियोंकी क्रमसे तीन ३ दो २ एक१ और शूद्रकी शूद्राही एक भार्या होती है ॥ ५७ ॥

ब्राह्मोविवाहआहूयदीयतेशक्त्यलंकृता।
तज्जःपुनात्युभयतःपुरुषानेकविंशतिम्॥

पद-ब्राह्मः १ विवाहः१ आहूय ९- दीयते क्रि-शक्त्यलंकृता १ तज्जः १ पुनाति क्रि-उभयतः ९- पुरुषान् १ एकविंशतिं॥२॥

योजना-यस्मिन् आहूय शक्त्यलंकृता कन्या दीयते सः ब्राह्मः विवाहः तज्जः पुत्रः उभयतः एकविंशतिं पुरुषान् पुनाति ॥

ता० भा०-अब आठ प्रकारोंके विवाहोंमें प्रथम ब्राह्म विवाहका लक्षण कहते है कि जिस विवाहमें पूर्वोक्त वरको बुलाकर शक्तिसे अलंकृत की हुई कन्या संकल्प करके दी जाय उस विवाहको ब्राह्म विवाह कहते हैं उस कन्यामें पैदा हुआ पुत्र यदि सुपात्र होय तो दोनो तरफ इक्कीस २१ कुलोंको अर्थात् दस पिता आदि और दस पुत्र आदि इक्कीसवां अपना आत्मा पवित्र करता है५८

यज्ञस्थऋत्विजेदैवआदायार्षस्तुगोद्वयं ।
चतुर्दशप्रथमजःपुनात्युत्तरजश्चषट् ५९

पद-यज्ञस्थे ७ ऋत्विजे ४ दैवः १ आदाय९- आर्षः १ तु९- गोद्वयं १ चतुर्दश १ प्रथमजः १ पुनाति क्रि-उत्तरजः १ च९- षट् ॥१॥

योजना-यस्मिन् यज्ञस्थे ऋत्विजे कन्या दीयते स दैवः तुपुनः यस्मिन् वरात् गोद्वयं आदाय कन्या दीयते सः आर्षः प्रथमजः चतुर्दश उत्तरजः षट् पुनाति ॥

ता० भा०-जिस विवाहमें यज्ञ कराते हुये ऋत्विजको कन्यादीजाय वह दैव और जिस विवाहमें वरसे आवश्यक और विवाहमें करने योग्य धर्मके लिये दो बैल लेकर कन्यादी जाय वह आर्ष विवाह होता है

क्योंकि मनुजीनें इसे वचनसे धर्मके लिये ही १ गोमिथुन वा २ गोमिथुन लेने कहे हैं- देव विवाहसे पैदा हुआ चौदह कुलोंको ७ पहिले-७ पिछले और आर्ष विवाहसे पैदा हुआ छः कुलोंको अर्थात् तीन पिछले तीन अगलोंको पवित्र करताहै ॥ ५९ ॥

इत्युक्त्वाचरतांधर्मंसहयादीयतेर्थिने।
सकायःपावयेत्तज्जःषट्षड्वंश्यान्सहात्मना॥

पद-इति ऽ- उक्त्वा ऽ- चरतां क्रि- धर्मं २सहऽ-या १ दीयते क्रि- अर्थिने ४ सः१ कायः १ पावयेत् क्रि- तज्जः १ षट् २ षट् वंश्यान् २ सहऽ- आत्मना ३ ॥

योजना-सह धर्मं चरतां इति उक्त्वा या कन्या अर्थिने दीयते सः विवाहः कायः (प्राजापत्यः) तज्जः पुत्रः आत्मना सह षट् षट् वंश्यान् पावयेत् ॥

ता० भा० तुम दोनो मिलकर अपने २ धर्मोंका आचरण करो यह कहकर जो याचनाकरनेवाले वरको कन्या दीजाय वह विवाह प्राजापत्य होताहै उससे पैदाहुआ पुत्र छः पिछले और छः अगले और एक अपनी आत्मा इसप्रकार तेरह १३को पवित्र करता है ॥ ६० ॥

आसुरोद्रविणादानाद्गांधर्वःसमयान्मिथः।
राक्षसोयुद्धहरणात्पैशाचःकन्यकाछलात्॥

पद-आसुरः१ द्रविणादानात् ५ गांधर्वः१ समयात् ५ मिथःऽ- राक्षसः १ युद्धहरणात्५ पैशाचः१ कन्यकाछलात् ५ ॥

योजना-द्रविणादानात् आसुरः-मिथः समयात् गांधर्वः युद्धहरणात् राक्षसः- कन्यका छलात्-पैशाचः विवाहः स्मृतः-बुधैरिति शेषः॥

ता० भा० वरसे द्रव्यको लेकर कन्याका जो दान वह आसुर-परस्पर कन्या और वरकी प्रीतिसे जो विवाह वह गांधर्व-और युद्धसे कन्याको हरनेसे जो विवाह सो राक्षस- और छलसे स्वापआदिके समयमें जो कन्याका ग्रहण वह पैशाच विवाह कहाता है ॥ ६१ ॥

पाणिर्ग्राह्यःसवर्णासुगृह्णीयात्क्षत्रियाशरम्।
वैश्यप्रतोदमादद्याद्वेदनेत्वग्रजन्मनः ६२

पद-पाणिः१ ग्राह्यः१ सवर्णासु ७ गृण्हीयात् क्रि-क्षत्रिया १ शरम् २ वैश्या १ प्रतोदं२ आदद्यात् क्रि-वेदने ७ तुऽ- अग्रजन्मनः६॥

योजना-अग्रजन्मनः (ब्राह्मणस्य) वेदने सवर्णासु पाणिर्ग्राह्यः क्षत्रिया शरं गृण्हीयात वैश्या प्रतोदं आदद्यात् ॥

ता० भा० सवर्णा स्त्रियोंके विवाहमें अपने गृहमें उक्तविधिसे पाणि (हाथ) कोही और अपनेसे उत्कृष्ट (उत्तम) वरके विवाहमें क्षत्रियकी कन्या बाणको-और वैश्या प्रतोद (कोरडा)को-और इस मनुवचनके अनुसार शूद्रा वस्त्रकी दशाको-ग्रहण करे ॥ ६२ ॥

पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा।
कन्याप्रदःपूर्वनाशेप्रकृतिस्थःपरःपरः ॥

पद-पिता१ पितामहः१ भ्राता १ सकुल्यः१ जननी १ तथाऽ- कन्याप्रदः १ पूर्वनाशे ७ प्रकृतिस्थः१ परः१ परः १ ॥

योजना-पिता पितामहः भ्राता सकुल्यः तथा जननी-एषां मध्ये पूर्वनाशे सति प्रकृतिस्थः परः परः कन्याप्रदः भवति ॥

ता०-भा०-पिता-बाबा-भाई-कुलमें उत्पन्न-और माता-इन सबमें यदि पूर्व २ न होय तो पर २ (अग्रिम) कन्याका दान करै परन्तु यदि वह प्रकृतिस्थ हो अर्थात् उन्माद आदि दोषसे रहित हो ॥ ६३ ॥

१ एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः। कन्याप्रदान विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।

१ वसनस्य दशा माह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने।

अप्रयच्छन्समाप्नोतिभ्रूणहत्यामृतावृतौ ।
गम्यंत्वभावेदातॄणांकन्याकुर्यात्स्वयंवरम् ॥

पद–अप्रयच्छन् १समाप्नोति क्रि– भ्रूण-हत्यां २ ऋतौ ७ ऋतौ ७ गम्यं २ तु॰– अभावे ७ दातॄणां ६ कन्या १ कुर्यात् क्रि– स्वयं १ वरम् २ ॥

योजना–यस्य दानाधिकारः सः कन्यां अ-प्रयच्छन् सन् ऋतौ ऋतौ भ्रूणहत्यां अवा-प्नोति–दातॄणां अभावे तु कन्या स्वयं गम्यं वरं कुर्यात् ॥

ता॰ भा॰ इन पूर्वोक्त पिता आदि दाताओं में जो ऋतुसमयमें कन्याका दान न करे वह एक २ ऋतुमें भ्रूण (बाल) हत्याको प्राप्त होता है–और इनसबके अभावमें कन्या गमन के योग्य वरके संग स्वयं विवाह करले॥६४॥

सकृत्प्रदीयते कन्याहरंस्तांचोरदंडभाक् ।
दत्तामपिहरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत् ॥

पद–सकृत॰– प्रदीयते क्रि– कन्या १ हरन् १ तां २ चोरदंडभाक् १ दत्तां २ अपि॰– हरेत् क्रि–पूर्वात् ५, श्रेयान् १ चेत्॰– वरः १ आव्रजेत् क्रि– ॥

योजना–कन्या सकृत् प्रदीयते–तां हरन् सन् चोरदंडभाक् भवति– चेत् (यदि) पूर्वात् श्रेयान् वरः आव्रजेत् तर्हि दत्तां अपि हरेत् ॥

ता॰ भा॰ शास्त्रका नियम यह है कि क-न्याका दान एक वारही होताहै इससे दिये पीछे उसको जो हरै वह चोरदंडका भागी होताहै–यदि प्रथम वरकी अपेक्षा विद्या अ-भिजन (कुल) आदिसे उत्तम वर आजाय अ.. प्रथम वर पातकी और दुराचारी होय तो दीहुयी कन्याकोभी हरले यहभी सप्तप-दीसे प्रथम वा वाग्दानसे दीहुयी कन्याके विषयमें समझना–क्योंकि इस मनुवचनके अनुसार सप्तपदी होनेपरही विवाहकी समाप्ति होती है ॥ ६५ ॥

अनाख्यायददद्दोषंदंडउत्तमसाहसम् ।
अदुष्टांतुत्यजन्दंड्योदूषयंस्तुमृषाशतम् ॥६६

पद– अनाख्याय॰–ददत्१ दोषं२ दंडः १ उत्तमसाहसम् २ अदुष्टां २ तु॰– त्यजन् १ दंड्यः १ दूषयन् १ तु॰– मृषा॰– शतम्२ ॥

योजना– यः (कन्यायाः) दोषं अना-ख्याय ददत् सन् भवति सः पिता उत्तम-साहसं दंड्यः अदुष्टां कन्यां त्यजन् तुपुनः मृषा दूषयन् वरः शतम् दंड्यः ॥

तात्पर्यार्थ– जो पिता कन्याके ऐसे दोषको न कहकर दान करता है जो नेत्रोंसे दीखसके उसको और जोवर निर्दोष कन्याको प्रतिग्रह लेकर त्यागदे उसको उत्तम साह-सका यह दंड राजादे उत्तम साहसका दंड कमसे कम सहस्रपण लेना– या सर्वस्व हरना–अथवा देहमें दाग देकर पुरसे नि-कालना अथवा उसके अंगको छेदन करना –होता हैं और इसको उत्तम साहस कहते हैं– कि विष– वा शस्त्रसे मारना–परदाराका संग– और जिससे प्राणोंका नाश होनेकी संभावना होय वह– और जो विवाहसे पहि-लेही द्वेष आदिसे कन्याको झूठे दोष लगावे उसको राजा सौपण दंडदे ॥ ६६ ॥

भावार्थ–कन्याके दोषको न कहकर दान देनेवालेको और निर्दोष कन्याके त्यागनेवाले वरको उत्तम साहस दंडदे– और जो

१ तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ।

२ उत्तमे साहसे दंडः सहस्रपण इष्यते । वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनांकने । तदंगच्छेद इत्युक्तो दंड उत्तमसाहसे । व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनं प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम् ।

कन्याको झूठा दोष लगावे उसको सौपण दंडदे ॥ ६६ ॥

अक्षताचक्षताचैवपुनर्भूःसंस्कृतापुनः
स्वैरिणीयापतिंहित्वासवर्णकामतःश्रयेत्

पद- अक्षता १ चऽ- क्षता १ चऽ-एवऽ- पुनर्भूः १ संस्कृता १ पुनःऽ- स्वैरिणी १ या१ पतिं २ हित्वाऽ- सवर्णं २ कामतःऽ- श्रयेत् क्रि- ॥

योजना- अक्षता चपुनः क्षता या पुनः संस्कृता भवेत् सापुनर्भूः या पतिं हित्वा कामतः सवर्णं श्रयेत् सा स्वैरिणी ॥

ता० भा० प्रथम ५२ श्लोकमें वह कन्या विवाहनी लिखी है जो अन्यपूर्वा न होय अब उस अन्यपूर्वाके दो भेद कहते हैं १ पहिली पुनर्भूः दूसरीर स्वैरिणी- और पुनर्भूभी दो प्रकारकी होती है विवाहसे पहिले पुरुष संबंधसे जो दूषित वह क्षता और पुनः संस्कारसे जो दूषित वह अक्षता और जो कौमार अवस्थाहीमें अपने पतिको त्यागकर अन्य सवर्ण किसी पुरुषका आश्रयलेले वह स्वैरिणी कहाती है ॥६७ ॥

अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया। सपिं-
डोवासगोत्रोवाघृताभ्यक्तऋतावियात् ६८

पद- अपुत्रां २ गुर्वनुज्ञातः १ देवरः १ पुत्रकाम्यया ३ सपिंडः१ वाऽ- सगोत्रः१ वाऽ- घृताभ्यक्तः १ ऋतौ ७ इयात् क्रि- ॥ ६८ ॥

आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्
अनेनविधिनाजातःक्षेत्रजोस्यभवेत्सुतः॥

पद- आऽ- गर्भसंभवात्५ गच्छेत क्रि- पतितः१ तुऽ- अन्यथाऽ- भवेत् क्रि- अनेन ३ विधिना ३ जातः १ क्षेत्रजः १ अस्य ६ भवेत् क्रि- सुतः १ ॥ ६९ ॥

योजना- गुर्वनुज्ञातः देवरः सपिंडः वा सगोत्रः पुत्रकाम्यया घृताभ्यक्तः (सन्) ऋतौ अपुत्राम् इयात्-गच्छन् (सन्) आगर्भसंभवात् गच्छेत् अन्यथा तु पतितः भवेत् अनेन विधिना जातः पुत्रः अस्य (पूर्ववोढुः) क्षेत्रजः पुत्रो भवेत् ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

ता० भा० जिस स्त्रीके पुत्र न हुआ होय उस स्त्रीके संग पिता आदिकी आज्ञासे पुत्रकी कामनाके लिये घृतसे अपने अंगको लपेट कर ऋतुके समयमें देवर वा सापिंड वा सगोत्र गमनकरै और तबतक गमनकरै जबतक गर्भ न रहै- गर्भके अनंतर पुत्र होनेपर जो गमनकरै वह पतित होता है इस विधिसे पैदा हुआ जो पुत्र है वह प्रथम पतिका क्षेत्रज पुत्र होता है- आचार्य तो यह कहते हैं कि यह वचन उसी कन्याके विषयमें है जो वाग्दत्ता होय क्योंकि मनुजीने इस श्लोकसे यह कहा है कि जिस कन्याका वाग्दान किये पीछे पति मरजाय तिसको इस विधिसे अपना निजका देवर विवाह ले- परंतु इस मनुजीके श्लोकमें अपुत्रा पदसे वागदानके अनंतर विवाहसे प्रथम पुत्र न होनेका निश्चय यद्यपि दुर्घट है तथापि वरमें जो ऐसे दोष प्रथमही प्रतीत हो जाय कि जिनसे पुत्र न होयतो उस वाग्दत्ता कन्याको देवर विवाहले॥६८॥६९॥

हृताधिकारांमलिनां पिंडमात्रोपजीवि-
नीम्। परिभूतामधः शय्यांवासयेद्व्यभि-
चारिणीं ॥ ७० ॥

पद- हृताधिकाराम् २ मलिनां २ पिंडमात्रोपजीविनीं २ परिभूतां २ अधःशयां २ वासयेत् क्रि- व्यभिचारिणीं २ ॥

---

१ यस्या म्रियेत कन्यायाः वाचा सत्येकृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः।

योजना—व्यभिचारिणीं (स्त्रियं) हृताधिकाराम् मलिनाम् पिंडमात्रोपजीविनीं परिभूतां—अधःशय्यां (स्वगृहे एव) वासयेत् ॥

ता० भा० जो स्त्री व्यभिचारिणी होय उसको इस प्रकार अपने घरमेंही बसावे कि भृत्योंके भरण, पोषणका, अधिकार, उससे छीनले, और देहके निर्वाहमात्र भोजन दे—धिक्कार आदिसे उसका तिरस्कार करे और भूतलपर शयन करावे यह सब वैराग्य केही लिये हैं क्योंकि इस वेचनसे यह कहा है कि उसका वही प्रायश्चित्त है जो पुरुषको परस्त्रीगमनमें करना पडता है ॥ ७० ॥

सोमःशौचंददावासांगंधर्वश्चशुभांगिरम् ।
पावकः सर्वमेध्यत्वंमेध्यावैयोषितोह्यतः॥

पद— सोमः१ शौचं२ ददौ क्रि— आसां६ गंधर्वः १ च०— शुभां २ गिरम् २ पावकः १ सर्वमेध्यत्वं२ मेध्याः १ वै०— योषितः १ हि०— अतः५—॥

योजना—आसां (स्त्रीणां) सोमः शौचं गंधर्वः शुभां गिरम् पावकः सर्वमेध्यत्वं यतः ददौ अतः योषितः मेध्याः वै (एव) ॥

ता० भावार्थ—जिससे इन स्त्रियोंको विवाहसे पहिले भोगनेके अनंतर चंद्रमाने शुद्धि गंधर्वोंने मधुर वचन अग्नि ने संपूर्ण अंगोंकी पवित्रता दी है इससे स्त्री पवित्रही होती हैं— यह वचन अर्थवादरूप है॥ ७१ ॥

व्यभिचारादृतौशुद्धिर्गर्भेत्यागोविधीयते ।
गर्भभर्तृवधादौचतथामहतिपातके॥७२॥

पद—व्यभिचारात्५ ऋतौ७ शुद्धिः १ गर्भे ७ त्यागः १ विधीयते क्रि— गर्भभर्तृवधादौ७ च०—तथा०— महति ७ पातके ७ ॥

योजना—व्यभिचारात् स्त्रियाः ऋतौ शुद्धिः विधीयते गर्भे त्यागः पुनः गर्भभर्तृवधादौ तथा महति पातके त्यागः विधीयते ॥

तात्पर्यार्थ—यदि स्त्री अपने मनमें पुरुषांतरके संग भोगका ऐसा संकल्प करे कि जिसका प्रकाश न होय—उससे जो पाप उसकी शुद्धि रजोदर्शनके अनंतर होजातीहै और यदि शूद्र आदिके संगसे गर्भ रहजाय अथवा गर्भ और भर्त्ताको नष्ट करदे याकोई महापातक करे तो उसस्त्रीको उपभोग—और धर्म कार्य इनसे त्यागदे अर्थात् ये इससे न करावे कुछ घरसे न निकासदे क्योंकि इस वेचनसे एकघरमें उसका रोकना लिखाहै और इस वेचनसे द्विजातीयोंकी भार्याओंका शूद्रके संग भोगहोनेपर उनकाही प्रायश्चित्त लिखाहै जिनके संतान न हुई होय और ये चार स्त्रीभी इस वैचनसे त्यागने योग्य लिखीहैं कि शिष्यके और गुरूकेसंग जो गमनकरे और पतिकेमारनेवाली—और जो चर्मकार आदिका संगकरे सिद्धांत यह है कि मनके व्यभिचारसे शुद्धि है शरीरकेसे नही ॥ ७२ ॥

भावार्थ—मनके व्यभिचारमें ऋतुसे गर्भकी स्थिति गर्भ और भर्त्ताका नाश और ब्रह्महत्या आदि करनेसे स्त्रीका त्याग करदे ॥ ७२ ॥

सुरापीव्याधिताधूर्तावंध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा॥

पद—सुरापी १ व्याधिता १ धूर्ता१ वंध्या१ अर्थघ्नी १ अप्रियंवदा१ स्त्रीप्रसूः१ च०— अधिवेत्तव्या १ पुरुषद्वेषिणी १ तथा०—॥

योजना—सुरापी—व्याधिता— धूर्ता—वंध्या अर्थघ्नी—अप्रियंवदा— स्त्रीप्रसूः तथा पुरुष-

---

१ परगृहः परदारेषु तथैवा भार्यैत्वम् ।

१ निरुंध्यादेकवेश्मनि ।

२ ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः । अप्रजातास्ता विशुध्यंति प्रायश्चित्तेन नेतराः ।

३ चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या पतिघ्नी च विशेषेण जुंगितोपगता च या ।

द्वेषिणी-एवं अष्टप्रकारा स्त्री अधिवेत्तव्या तस्याः सत्वेपि अन्या स्त्री परिणेया ॥

ता० भावार्थ-इन आठ प्रकारकी स्त्रियोंके होने परभी मनुष्य अन्य स्त्रीको विवाहले जो मदिराको पीवै वा शूद्राहो क्योंकि इस वचनसे उस मनुष्यका आधा शरीर पतित होजाता है जिसकी भार्या मदिराको पीवै-सामान्यसे सबका निषेध है इससे सुरापी शब्दसे शूद्रा लेनी-दीर्घरोगसे ग्रस्त-धूर्ता (कपटित) वंध्या-(निष्फळ) धनको जो नष्टकरै - कठोर वचन - जिसके लडकीही होतीहों-जो पुरुषका हित न करै-अर्थात् ये आठस्त्री अधिवेदन करने योग्य होतीहैं-अन्य भार्य्याके स्वीकारको अधिवेदन कहते हैं७३॥

अधिविन्नातुभर्तव्यामहदेनोन्यथाभवेत् । यत्रानुकूल्यंदंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्रवर्धते ७४

पद-अधिविन्ना १ तु ऽ- भर्त्तव्या १ महत् १ एनः१अन्यथाऽ- भवेत् क्रि-यत्रऽ- आनुकूल्यं १ दंपत्योः ६ त्रिवर्गः१ तत्रऽ-वर्धते क्रि-

योजना-अधिविन्ना (स्त्री) पत्या भर्त्तव्या अन्यथा (अपालने) महत् एनः भवेत् दंपत्योः यत्र आनुकूल्यं तत्र त्रिवर्गः वर्धते ॥

ता० भा०-अधिविन्ना (जिसके होते विवाह कीया जाय) स्त्रीकी पालना दानमानसत्कारसे अवश्य करनी जो न करै तो महान् पाप दंडके योग्य होताहै क्यों कि जिस घरमें स्त्रीपुरुषका एकचित्त होताहै वहां धर्म अर्थ काम तीनो बढते हैं ॥ ७४ ॥

मृतेजीवतिवापत्यौयानान्यमुपगच्छति । सेहकीर्त्तिमवाप्नोतिमोदतेचोमयासह७५

पद-मृते ७ जीवति ७वाऽ- पत्यौ७ या १ नऽ- अन्यं २ उपगच्छति क्रि-सा १इहऽ- कीर्तिं २ अवाप्नोति क्रि- मोदते क्रि- चऽ- उमया ३ सहऽ- ॥

योजना-पत्यौ मृते वा जीवति सति या स्त्री अन्यं न उपगच्छति सा इह (लोके) कीर्तिं अवाप्नोति चपुनः उमया सह मोदते॥

ता० भा० पतिके जीते हुये वा मरने पर जो स्त्री अन्यपुरुषका संग नही करती वह इस लोकमें कीर्तिको प्राप्त होतीहै और पुण्यके प्रतापसे पार्वतीसंग क्रीडा करतीहै अर्थात् आनंद भोगतीहै ॥ ७५ ॥

आज्ञासंपादिनींदक्षांवीरसूंप्रियवादिनीम् । त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्योभरणंस्त्रियाः

पद-आज्ञासंपादिनीं २ दक्षां २ वीरसूं २ प्रियवादिनीम् २ त्यजन् १दाप्यः१ तृतीयांशं२ अद्रव्यः १ भरणं २ स्त्रियाः ६ ॥

योजना-आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीं त्यजन् (पुरुषः) तृतीयांशं-अद्रव्यः स्त्रियाः भरणं दाप्यः (दंड्यः) राज्ञेति शेषः॥

ता० भा० जो पुरुष आज्ञाकारिणी दक्ष (चतुर) पुत्रवती मधुरभाषिणी स्त्रीको त्यागताहै अर्थात् उसके होते हुये द्वितीय विवाह करताहै उसको राजा धनका तीसरा भागका और निर्धन होय तो पहिली स्त्रीके भरण पोषणका दंडदे ॥ ७६ ॥

स्त्रीभिर्भर्तृवचःकार्यमेषधर्मःपरःस्त्रियाः । आशुद्धेःसंप्रतीक्ष्योहिमहापातकदूषितः॥

पद-स्त्रीभिः ३ भर्तृवचः १ कार्यं १ एषः१ धर्मः १ परः १ स्त्रियाः ६ आऽशुद्धेः५ संप्रतीक्ष्यः १ हिऽ महापातकदूषितः १ ॥

योजना- स्त्रीभिः भर्तृवचः कार्यं यतः स्त्रियाः एष धर्मः परः अस्ति महापातकदूषितः हि (अपि) आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यः ॥

ता० भा० स्त्रियोंको अपने पतिका वचन मानना क्योंकि स्त्रीका परम धर्म यही है-यदि पति महापातक (ब्रह्महत्या) आदिसे

१ पततयर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ।

दूषित होजाय तो तबतक उसकी प्रतीक्षा करे जबतक महापातकसे शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार जिसकी शुद्धि न हुई होय–शुद्धिके अनंतर उसी प्रकार पतिके परतंत्र हो जाती है– निदान महापातकके समय वचन न माने तो दोष नहीं ॥ ७७ ॥

लोकानंत्यंदिवःप्राप्तिःपुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्स्त्रियःसेव्याःकर्तव्याश्चसुरक्षिताः ॥ ७८ ॥

पद– लोकानंत्यं १ दिवः ६ प्राप्तिः १ पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ३ यस्मात् ५ तस्मात् ५ स्त्रियः ६ सेव्याः १ कर्त्तव्याः १ च–सुरक्षिताः १ ॥

योजना– यस्मात् पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः लोकानंत्यं दिवःप्राप्तिर्भवति तस्मात् स्त्रियः सेव्याः चपुनः सुरक्षिताः कर्त्तव्याः ॥

तात्पर्यार्थ– अब शास्त्रीय दारपके संग्रहका फल कहते हैं जिससे स्त्रियोंकेही प्रतापसे पुत्र– पौत्र– प्रपौत्रोंसे लोकानंत्यः (वंशकी स्थिरता) और अग्निहोत्र आदि करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है तिससे प्रजाके लिये स्त्रियोंके संग उपभोग करना और धर्मके लिये स्त्रियोंकी भली प्रकार रक्षा करनी क्योंकि आपस्तंब ऋषिनें इस वचनसे दारसंग्रह (विवाह)का प्रयोजन धर्म और प्रजाका होनाही कहा है– कि यदि धर्मशील– और पुत्रवती भार्याके विद्यमान रहते दूसरी स्त्रीको नविवाहै– रतिका फल तो केवल लौकिक है ॥

भावार्थ– जिससे पुत्र– पौत्र– प्रपौत्रोंसे वंशका विस्तार और स्वर्गकी प्राप्ती स्त्रियोंसेही होती है तिससे स्त्रियोंको भोगना और भली प्रकार रक्षा करनी ॥ ७८ ॥

१ धर्मप्रजासंपन्नेषु दारेषु नान्यां कुर्वीत ।

षोडशर्तुनिशाःस्त्रीणांतस्मिन्युग्मासुसंविशेत् । ब्रह्मचार्येवपर्वाण्याद्याश्चतस्रश्चवर्जयेत्

पद– षोडश १ ऋतुनिशाः १ स्त्रीणां ६ तस्मिन् ७ युग्मासु ७ संविशेत् क्रि–ब्रह्मचारी १ एव०– पर्वाणि २ आद्याः २ चतस्रः २ च०–वर्जयेत् क्रि– ॥

योजना– स्त्रीणां ऋतुनिशाः षोडश भवंति तस्मिन् युग्मासु संविशेत् यः पर्वाणि चपुनः आद्याः चतस्रः वर्जयेत् सः ब्रह्मचारी एव (अस्ति) ॥

तात्पर्यार्थ– गर्भ धारणके योग्य समयको ऋतु कहते हैं वह रजोदर्शनके दिनसे षोडश १६ अहोरात्र होता है– उस ऋतुमें जो रात्री युग्म (सम) ६।८।१०। आदि हों उनमें ही पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रीका संग करे इस श्लोकमें युग्मासु यह बहुवचन समुच्चयके लिये है। इस लियेही नही कि तीन रात्रियोंमें गमनकरे दिनमें न करे इससे एक ऋतुमें यदि संपूर्ण युग्म रात्री अनिषिद्ध (शुद्ध) मिलजांय तो सबमें गमनकरे इस प्रकार गमन करताहुआ ग्रहस्थ ब्रह्मचारी होता है– अतएव जहां श्राद्ध आदिमें गृहस्थीको ब्रह्मचर्यसे रहना लिखा है वहांभी स्त्रीके संगसे ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं होता। और आमावस्या आदि पर्व और प्रथमकी चारि रात्री इनको वर्जिदे– इस श्लोकमें पर्वाणि इस बहु वचनसे अष्टमी और चतुर्दशीभी समझनी क्योंकि मनुजीने इस श्लोकसे अमावस्या–अष्टमी–चतुर्दशी– पौर्णमासी– इनकाभी ऋतु समयमें गृहस्थी द्विजको त्याग लिखकर ब्रह्मचारी कहा है निदान पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रियोंको इस नियमसेही भोगे ॥

१ आमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीं । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ।

भावार्थ- स्त्रियोंकी ऋतु रजोदर्शनसे सोलह १६ रात्रि होती हैं उनमें सम रात्रियोंमें गमनकरे और आदिकी चार रात्रियोंको जो वर्जदे वह ब्रह्मचारीही होता है ॥ ७९ ॥

एवंगच्छन्स्त्रियंक्षामांमघांमूलंचवर्जयेत् ।
सुस्थइंदौसकृत्पुत्रंलक्षण्यंजनयेत्पुमान् ॥

पद- एवं- गच्छन् १ स्त्रियं २ क्षामां २ मघां २ मूलं २ च- वर्जयेत् क्रि- सुस्थे ७ इंदौ ७ सकृत्- पुत्रं २ लक्षण्यं २ जनयेत् क्रि- पुमान् १ ॥

योजना- एवं क्षामां स्त्रियं गच्छन् पुमान् इंदौ सुस्थे (सति) सकृत् (एकरात्रौ) लक्षण्यं पुत्रं जनयेत् चपुनः मघां मूलं च वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- इस पूर्वोक्त प्रकारसे स्त्रीका संग करता हुआ पुरुष क्षामा (निर्बल) स्त्रीकाही संग करे यद्यपि उस समय निर्बलता रजोदर्शनके व्रतसेही स्त्रियोंको हो जाती है यदि न होय तो अल्प भोजन वा स्निग्ध भोजनसे पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रीको निर्बल करनी चाहिये क्योंकि इस वचनमें यह लिखा है पुरुषका वीर्य अधिक होय तो पुरुष और स्त्रीका अधिक होय तो स्त्री होती है- जिस समय युग्म रात्रिमेंभी स्त्रीका शोणित अधिक होता है तब स्त्री होती है परंतु उसका आकार पुरुषके समान होता है और विषम रात्रिमेंभी जब पुरुषका वीर्य अधिक होता है उस समय पुरुष होता है परंतु उसका आकार स्त्रीके समान होता है क्योंकि काल तो निमित्तमात्र है गर्भके उपादान कारण होनेसे शुक्रशोणित ही प्रबल है तिससे ऋतुके समय स्त्रीको निर्बल करना आवश्यक है। मघा मूल इन दों नक्षत्रोंको वर्जदे और चंद्रमा एकादश आदि शुभस्थानोंमें स्थित होय चकारसे पुंनक्षत्रयोग लग्नभी शुद्ध होय तो एकही रात्रिमें पुमान् जिसके पुरुषपनमें कुछ बाधा न होय शोभन लक्षणोंसे युक्त पुत्रको पैदा करता है ॥

भावार्थ-इसप्रकार निर्बल स्त्रीके संग गमन करे मघा और मूल इन दो नक्षत्रोंको वर्जदे और चंद्रमा शुभस्थान (११ आदि) में स्थित होय तो पुरुष उत्तम लक्षणवाले पुत्रको पैदा करताहै ॥ ८० ॥

यथाकामीभवेद्वापिस्त्रीणांवरमनुस्मरन् ।
स्वदारनिरतश्चैवस्त्रियोरक्ष्यायतःस्मृताः

पद-यथाकामी १ भवेत् क्रि-वा- अपि- स्त्रीणां ६ वरं २ अनुस्मरन् १ स्वदारनिरतः१ च- एव- स्त्रियः १ रक्ष्याः १ यतः- स्मृताः १ ॥

योजना-वा स्त्रीणां वरं अनुस्मरन् स्वदारनिरतः पुरुषः यथाकामी भवेत् यतः स्त्रियः रक्ष्याः स्मृताः- मन्व दिभिरितिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ-यथा कामी उसको कहतेहैं जो भार्याकी इच्छाके अनुसार भोगमें प्रवृत्त हो इंद्रने जो स्त्रियोंको वर दिया है उसका स्मरण करता हुआ पुरुष यथाकामी हो- वह वर यह है कि जो तुम्हारी कामनाको न करेगा वह पातकी होगा-वे स्त्री बोली कि हम वरको स्वीकार करतीहैं और ऋतुसे हमारे प्रजाहो और प्रजाके होनेतक

१ पुमान् पुंसोधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियः ।

१ भवतीनां कामविहंता पातकी स्यात् इति यथा ता अब्रुवन् वरं वृणीमहै ऋत्वियात्प्रजां विंदामहै काममाविजनितोः संभवामीति तस्मात् ऋत्वियात् स्त्रियः प्रजां विंदंति काममाविजनितोः संभवति वर वृत्तंतासामिति ।

कामकी चेष्टा रहै तिससेही स्त्री ऋतुसही प्रजाको प्राप्तहोतीहै और संतान होनेतक कामचेष्टा रहतीहै यही स्त्रियोंका वर है-और अपनी ही स्त्रीमें मनुष्य रत रहै (मन रक्खे) और प्रायश्चित्तके भयसे अन्यस्त्रीका संग न-करै-इन दोनोंके लौकिक प्रयोजन को कहते हैं कि जिससे धर्मशास्त्रमें स्त्री रक्षाकरने योग्य कहीहै-तिससे सुरक्षिता करनी और उनकी भली प्रकार रक्षा तभी होसकहतीहै जब मनुष्य अन्य स्त्रीके संगको त्यागै और अपनी स्त्रीमें यथाकामी रहै इसीसे पूर्वकह आये हैं कि (तस्मिन् युग्मासु संविशेत्) तिसऋतुमें युग्म रात्रियोंमें ही स्त्रीका संग करै-क्या ऋतुमें गमन करै यह वाक्य विधि है वा नियमहै अथवा परिसंख्याहै-विधि वहां होतीहै जहां सर्वथा प्राप्ति नहो- और नियम वहां होताहै जहां कहीं पावै कहीं नहीं-और परिसंख्या वहां होती है जहां तिसमेंभी पावे और अन्यत्रभी पावै क्योंकि इस वचनसे यही कहाहै-यह विधि तो नहीं है क्योंकि स्त्रीका गमन रागसे प्राप्त है- परिसंख्याभी नहीं है क्योंकि परिसंख्याके माननेमें तीन दोष आवेंगे कि प्राप्तका बाध-परार्थ कल्पना-स्वार्थका त्याग-इससे न्यायके ज्ञाता नियमको मानते है-इन तीनों पूर्वोक्त विधियोंमें भेद (फरक) क्याहै इनका भेद यह है कि-जहां विधेयकी सर्वथा प्राप्ति नहो वहां विधि होती है जैसे इन वाक्योंसे अग्निहोत्र करै अष्टका श्राद्ध करै-अग्निहोत्र और अष्टकाश्राद्धका करना किसी अन्य वचनसे प्राप्त नथा-और जिस-जगे प्राप्तहो उससे अन्य ऐसे पक्षमें प्राप्तिको बोध न करै जहां प्राप्ति नहो वह नियम होता है जैसे इन वाक्योंसे समदेशमें यज्ञ करै-दर्श और पौर्णमास यज्ञ करै-यज्ञका करना कहाहै वह देश विना नहीं होसकता इससे अर्थात् देशपाया-वहदेश दोप्रकारका है एक सम और दूसरा विषम-यदि यजमान समदेशमें ही यज्ञकरा चाहै तो (समे यजेत) यहवचन उदासीन होताहै क्योंकि इसके अर्थका त्याग होगया-जब यजमान विषमदेशमें यज्ञ करा चाहै तब (समे यजेत) यह वचन स्वार्थको करता है क्योंकि उससमय समदेशमें यज्ञ प्राप्त नथा-और विषम देशकी निवृत्ति तो अर्थात् होजायगी श्रुतिमें कहे समदेशसेही यज्ञ होजायगा-यदि अशास्त्रोक्त (विषम) देशका स्वीकार यजमान करेगा तो शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार यज्ञका अनुष्ठान (करना) नहोगा-इसीप्रकार यह स्मृतिकोभी नियम विधिमे समझना कि पूर्वाभिमुख होकर अन्नोंका भोजन करै-जहां एक ही विधेय अनेक जगह प्राप्तहो उसकी एकसे निवृत्तिकरके पुनः एकमें जो विधान वह परिसंख्या विधि होती है जैसे इस मंत्रसे अश्वाभिधानी और गर्दभाभिधानी रसनाका ग्रहण प्राप्त है पुनः (अश्वाभिधानी आदत्ते) इसमंत्रसे अश्वाभिधानीका ग्रहण होताहै गर्दभाभिधानीकी निवृत्ति होतीहै अर्थात् अश्वकी जिह्वाका ग्रहण और गर्दभकी जिह्वाकी निवृत्ति होतीहै तिसीप्रकार पंचपंचनखा भक्ष्याः यहांभी यदृच्छा (स्वेच्छा) श्वा आदि और शश आदिका भक्षण रागसे प्राप्तथा शश आदिकोंका मंत्रमें श्रवणहै इससे श्वा आदिके भक्षणकी निवृत्ति होती है-फिर यहां नियमविधि

-माननीकी परिसंख्याविधि कोई कहताहै कि परिसंख्या क्योंकि कियाहै विवाह जिसनें ऐसे पुरुषको अपनी इच्छासे ऋतुमें गमन प्राप्तहै इससे विधिका यह विषय नही और इस गृह्यस्मृतिके विरोधसे नियमविधिभी नही कहसकते—क्योंकि विवाहके अनंतर तीनरात्र द्वादशरात्र वा संवत्सर ब्रह्मचारी रहै यदि द्वादशरात्र वा संवत्सरसे पूर्वही ऋतु होजाय तो ऋतुमें गमन करैही इस नियमसे ब्रह्मचर्य खंडित होजायगा और जिसवचनका भावार्थ प्राप्त होजाय वह विशेषण पर होजाताहै यहांभी ऋतुमें भार्यागमन इच्छासे प्राप्त है इससे यह अर्थ करना पडेगा कि गमन करै तो ऋतुहीमें करै और पुत्रोत्पत्तिविधि नियमित है उसी सो ऋतुगमन नित्य प्राप्तही है जो ऋतुमें गमन करै ही यह नियम निरर्थक होजायगा । और नियममें अदृष्ट (एव) की कल्पना करनी पडेगी क्योंकि इस वाक्यमें एवपद नही है—किंच ऋतुमें गमन करे ही यह नियम स्वीकार करोगे तो जो पति परदेशमें है वाव्याधि आदिसे असमर्थ है वा भोगका अनभिलाषी है उसको ऐसे अर्थका उपदेश होजायगा जो वह न कर सकै और नियम मानोगे तो नियममें विधिका अनुवादरूप विरोधभी होगा क्योंकि एक वार पढा हुआ शब्द एकपक्षमें उसी अर्थका अनुवाद करेगा और एकपक्षमें उसीका विधान तिससे ऋतुहीमें— गमन करै अन्यत्र न करै यह परिसंख्याही युक्त है यहां भारुचि विश्वरूप आदि परिसंख्याको नही मानते इससे नियमविधिही युक्त है क्योंकि पक्षमें अपने अर्थका उसमें विधान है और इस स्मृतिसे ऋतुमें गमन न करनेमें दोषभी है कि जो ऋतुस्नानवाली भार्याके समीप न जाय तो उसको घोर भ्रूणहत्या लगती है कदाचित् कहो कि नियममें विधिके अनुवादका विरोध है सो ठीक नही यह अनुवाद नही है किंतु यह वचन विध्यर्थही है क्योंकि विधिके अनुवादका विरोध वहांही होता है जहां विधेय पर्यंत उसीको उतनाही फिर दुवारा कहा जाय और अन्यके उद्देशसे अप्राप्तका विधान किया जाय जैसे वाजपेयाधिकरण पूर्वपक्षमें इस वाक्यमें कि स्वाराज्य (चक्रवर्ती)की कामनावाला पुरुष वाजपेय यज्ञ करै वाजपेयरूप गुणके विधान पर्यंत तो यागका अनुवाद है फिर स्वाराज्यके फलके लिये उसका विधान है—इससे ऋतौ भार्यां उपेयात् इस वाक्यमें अनुवादका कोई काम नही और यह कहोगे कि नियममें अदृष्टकी कल्पना करनी होयगी वह परिसंख्यामेंभी समान है और ऋतुभिन्नमें गमन करनेवालेको दोषकी कल्पना करनी होयगी—जो कोई यह कहै कि नियमसे पुत्रोत्पत्तिकी जो विधि उसके आक्षेपसेही नित्य गमन प्राप्त है इससे नियम नही—सो ठीक नही क्योंकि वही यह नियमसे पुत्रोत्पत्तिकी विधि मानोगे कि इस प्रकार दुर्बल स्त्रीका संग करताहुआ पुरुष सुलक्षण पुत्रको पैदा करता है पुत्रके उत्पादनकी विधि स्त्रीके गमनसे भिन्न है सो ठीक नही क्योंकि गमन है करण जिसमें ऐसा पुरुषका

१ दारसंग्रहानतर त्रिरात्र द्वादशरात्रं संवत्सरं वा ब्रह्मचारी स्यात् ।

१ ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ।

२ वाजपेयेन स्वाराज्यकामो यजेत ।

३ एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां लक्षण्यं पुत्रं जनयेत ।

व्यापारही पुत्रोत्पत्तिका कर्म उक्त वचनमें दीखता है जैसे अग्निहोत्रको करताहुआ स्वर्गको प्राप्त होता है–कदाचित् वह पूर्वोक्त दोष होगा कि दूर परस्थित और असमर्थ पतिको अशक्य स्त्रीभोगकी विधिका उपदेश शास्त्र करेगा–वह दोषभी नहीं क्योंकि समीपवर्ती और समर्थ पतिके लिये ही शास्त्रका उपदेश है क्योंकि इन वचनोंमें विशेषकर यह कहा हैं कि समीपमें वर्तमान जो पति स्त्रीके ऋतुस्नान किये पीछे गमन नहीं करता–जो स्वस्थ पुरुष ऋतुस्नानके अनंतर अपनी स्त्रीके समीप नहीं जाता वह हत्याका भागी होता है– इच्छाके अभावकी निवृत्तिभी नियमके बलसे होजायगी–जब नियम है तो इच्छाके अभावमेंभी गमन करना पडेगा–और इस विधिको पूर्वोक्त विशेषणपरताभी नहीं कह सकते–क्योंकि पक्षमें भावार्थ विधिही यह हो सकती है–पूर्वोक्त गृह्यस्मृतिकाभी विरोध नहीं क्योंकि वर्षदिनसे पूर्वही ऋतुके समय होनेपर गमन करनेवालेको श्राद्ध आदिमेंभी ब्रह्मचर्यहानिका दोष नहीं तिससे अपने अर्थकी हानि– अन्य अर्थकी कल्पना– प्राप्तका बाध–इन तीन दोषवाली परिसंख्या विधि युक्त नहीं–यद्यपि पंच पंचनखा भक्ष्याः यहां शश आदिका भक्षण प्राप्त है इससे पक्षमें नियम–और शशआदि और श्वाआदि दोनोंका भक्षण प्राप्त है इससे पक्षमें परिसंख्या इसप्रकार नियम–परिसंख्या दोनोंका संभव है–तथापि नियम पक्षमें शश आदिका भक्षण न करोगे तो दोषका प्रसंग होगा– और श्वाआदिका भक्षण न करोगे तो दोष न होनेका प्रसंग होगा इससे प्रायश्चित्त स्मृतिके विरोधसे परिसंख्याही मानी है–इसी प्रकार यहांभी नियमें विधिही है कि सायंकाल और प्रातःकालके समयमें भोजन द्विजातियोंका स्मृतिमें कहा है यदि परिसंख्या मानोगे तो बीचमें भोजन न करे यह पुनः उक्त दोष आवेगा– इससे नियम होनेपर ऋतु२में गमन करे यह वीप्सा (द्विवचन)भी लब्ध होती है निमित्त ऋतुकी आवृत्ति (पुनः पठन) होगी तो नैमित्तिक (स्त्रीगमन)कीभी आवृत्ति हो जायगी–इसी प्रकार–यथाकामी भवेत्–यह भी नियमही है कि अनृतु (ऋतुके विना) मेंभी स्त्रीकी कामना होय तो स्त्रीके संग रमण करे ही–ऋतुमें गमन करेही–वा निषिद्धको छोडकर सर्वत्र गमन करेही इन गौतमके दोनों सूत्रोंमेंभी नियमही है–इससे ऋतौ उपेयात् तस्मिन् युग्मासु संविशेत् यहां नियम है परिसंख्या नहीं–इस प्रकार अत्यंत विस्तारसे अलं (समाप्ति) है–अर्थात् इतनाही बहुत है ॥ ८१ ॥

भावार्थ–अथवा स्त्रियोंके वरको स्मरण करताहुआ पुरुष स्त्रियोंकी इच्छाके अनुसार गमन करे और जिससे स्त्री रक्षा करनेयोग्य कही हैं इससे अपनी स्त्रियोंमें रत रहै ॥ ८१ ॥

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः। बंधुभिश्चस्त्रियःपूज्याभूषणाच्छादनाशनैः॥८२॥

पद–भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ३ बंधुभिः ३ च०–स्त्रियः१ पूज्याः१ भूषणाच्छादनाशनैः३ ॥

१ अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः।
२ ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। यस्तु दारानृतुस्नातान् स्वस्थः समीपगच्छति।

१ सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं स्मृतिनोदितम्।
२ नान्तरा भोजनं कुर्यात्।
३ ऋतौ उपेयात् सर्वत्र प्रतिषिद्धवर्जम्।

योजना- भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः च पुनः बंधुभिः स्त्रियः भूषणाच्छादनाशनैः पूज्याः ॥

ता॰भा॰ पति भाई पिता ज्ञातिके मनुष्य सासु और श्वशुर और देवर और बंधु ये सब साधवी स्त्रियोंका पूजन अपनी२ शक्तिके अनुसार भूषण वस्त्र पुष्प आदिसे करै क्योंकि पूजितकी हुई स्त्री धर्म अर्थ कामको बढाती हैं ॥ ८२ ॥

संयतोपस्करादक्षाहृष्टाव्ययपराङ्मुखी ।
कुर्याच्छ्वशुरयोःपादवंदनंभर्तृतत्परा ॥

पद-संयतोपस्करा १ दक्षा १ हृष्टा १ व्ययपराङ्मुखी १ कुर्यात् क्रि- श्वशुरयोः६ पादवंदनं २ भर्तृतत्परा १ ॥

योजना-संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी भर्तृतत्परा स्त्री श्वशुरयोः पादवंदनं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-रक्खे हैं जहांके तहां उपस्कर (गृहसामग्री) जिसने जैसा ऊखल मूसल और सूप ये कंडनके स्थानमें और चक्की और हाथा ये पीसनेके स्थानमें-और गृहके व्यापारमें कुशल और सदैव प्रसन्न और व्यय (खर्च)में पराङ्मुख और अपने पतिके वशमें रहती हुई सास और श्वशुरके चरणोंको प्रतिदिन नमस्कार करै जिस स्त्रीको घरका व्यापार सोपा जाय वह इस प्रकारही रहै ॥

भावार्थ-सावधानीसे गृहकी सामग्री रक्खै और चतुर प्रसन्नमुख और कम खर्च करै और पतिके वशमें रहकर सास और श्वशुरके चरणोंको नमस्कार करै ॥ ८३ ॥

क्रीडांशरीरसंस्कारंसमाजोत्सवदर्शनं ।
हास्यंपरगृहेयानंत्यजेत्प्रोषितभर्तृका ८४

पद-क्रीडां २ शरीरसंस्कारं२ समाजोत्सवदर्शनं २ हास्यं २ परगृहे ७ यानं २ त्यजेत् क्रि- प्रोषितभर्तृका १ ॥

योजना-प्रोषितभर्तृका (स्त्री) क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनं हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् ॥

ता॰ भा॰-जिस स्त्रीका पति परदेशमें होय वह गेंद आदिसे क्रीडा और उबटने आदिसे शरीरका संस्कार जनोंका समूह और विवाह आदि उत्सवोंका दर्शन हंसी और पराये घरमें गमन इन सबको त्यागदे ॥ ८४ ॥

रक्षेत्कन्यांपितावित्रांपतिःपुत्रास्तुवार्धके ।
अभावेज्ञातयस्तेषांनस्वातंत्र्यंक्वचित्स्त्रियाः॥

पद-रक्षेत् क्रि-कन्यां२ पिता१ विन्नां२ पतिः १ पुत्राः १ तु अ- वार्धके७ अभावे ७ ज्ञातयः १ तेषां ६ न अ- स्वातंत्र्यं १ क्वचित् स्त्रियाः६ ॥

योजना-पिता कन्यां पतिः विन्नां रक्षेत् तुपुनः वार्द्धके पुत्राः तेषां अभावे ज्ञातयः रक्षेयुः स्त्रियाः क्वचित् अपि स्वातंत्र्यं नास्ति॥

ता॰ भा॰-विवाहसे पहिले कन्याकी निंदित कर्मोंसे पिता विवाहके अनंतर पति और पतिके अभावमें पुत्र रक्षा करे और यदि वृद्ध अवस्थामें ये न होय तो ज्ञातिके मनुष्य और ज्ञातिके मनुष्यभी नहोंय तो राजा रक्षा करै क्योंकि इस वचनसे पितृकुल और पतिकुलके अभावमें राजाकोहि प्रभु और रक्षक लिखा है इससे स्त्रियोंका किसी अवस्थामें स्वतंत्रता नहीं ॥ ८५ ॥

पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः । ही
नानस्याद्विनाभर्त्रागर्हणीयान्यथाभवेत् ॥

पद-पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः३ हीना १ न अ- स्यात् क्रि- विना अ- भर्त्रा ३ गर्हणीया १ अन्यथा अ- भवेत् क्रि- ॥

१ पक्षद्वयाभावे तु राजा भर्ता प्रभुः स्त्रियः ।

संरक्ष्या–भर्त्रा विना पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रू श्वशुरमातुलैः स्त्री हीना न स्यात् अन्यथा गर्हणीया भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि पति समीपमें न होय तो ऐसे रक्षामें रहै जहां पिता, माता, पुत्र, भ्राता, सास, ससुर, और मामा, न होंय इनके विना रहै तो निंदाके योग्य होती है–यह कथन उसी पक्षमें है जब स्त्री पतिके मरणानंतर ब्रह्मचारिणी रहै क्योंकि विष्णुस्मृतिमें विधवाव स्थामें ब्रह्मचर्य और सती होना लिखा है और व्यासजीने कपोतिनीके इतिहासमें इस श्लोकसे महान् पुण्य दिखाया है कि कपोतिनी पतिव्रता जलती हुई चिताकी अग्निमें प्रविष्ट होगई वहां चित्रां गदधर अपने पतिको प्राप्त हुई फिर वह पक्षी भार्याके मिलकर स्वर्गमें गया और बडी पूजाके भार्या सहित रमता भया और तिसी प्रकार हारीत और अंगिरा ऋषिनेभी यह कहा है कि जो स्त्री पतिके संग सती होती है–वह उतने कालतक स्वर्गमें वसती है जितने मनुष्यके शरीरमें रोम है जैसे सर्पका पकडनेवाला बिलमेंसे सांपको निकालता है इस प्रकार वहभी अपने पतिका नरकसे उद्धार करके पतिके संग आनंद भोगती है–और पतिमें तत्पर हुई अप्सराओंके गण स्तुति करते है जिसकी ऐसी वह स्त्री अपने पतिके संग तावत् कालपर्यंत क्रीडा करती है इतने चोदह १४ इंद्र राज्य भोगें जो स्त्री विधवा होनेसे प्रथम पतिके मरतेही अग्निमें पतिके संग मरती हैं । चाहै वह पति ब्रह्म हत्यारा वा मित्रका हत्यारा होय वा कृतघ्नी होय उसकोभी पवित्र करती है । पतिके मरे पीछे जो स्त्री सती होती है वह अरुंधतीके समान स्वर्ग लोकमें पूजती है । इतने स्त्री पतिके मरे पीछे देहको अग्निमें दग्ध न करे इतने वह स्त्रीके शरीरसे नही छुटती हारीत ऋषिनेभी–यह लिखा है कि जो स्त्री सती होती है वह मता पिता और पतिके कुलको पवित्रकरती है जो स्त्री दुःखित पतिके संग दुखी प्रसन्नके समय प्रसन्न परदेश जानेके समय मलीन और कृश होती है और पतिके मरतेही मरती है वही स्त्री पतिव्रता जाननी यह धर्म चांडाल पर्यंत इन स्त्रियोंका है जो गर्भवती न होय और जिनकी संतान बालक न होय–क्योंकि सब वचनोंमें यही सामान्यसे लिखा है कि भर्ताके संग जो सती होती है जो ब्राह्मणीको सती होनेके यह निषेध हैं वे दूसरी चितामें जलनेके ही निषेध कहे कि ब्राह्मणीको मृत पतिके संग होना नही है और तीनो वर्णोंमे सती होना परम तप है यही वेदकी आज्ञा है । जीती हुई पतिके हितको करे पतिके मरे पीछे आत्मघात करे । जो ब्राह्मणी मरे हुये पतिके साथ सती होती है वह आत्म-

१ भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा ।

२ पतिव्रता संप्रदीप्तं प्रविवेश हुताशनम् । तत्र चित्रां गदधरं भर्तारं सान्वपद्यत । ततः स्वर्गगतः पक्षी भार्यया सह संगतः । कर्मणा पूजितस्तत्र रेमेच सह भार्यया ।

३ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छती । व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् । तद्वदुद्धृत्य सा नारी सह तेनैव मोदते ॥ तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमाना प्सरोगणैः । क्रीडते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ब्रह्मघ्नो वाथ मित्रघ्नः कृतघ्नो वा भवेत् पतिः । पुनात्य विधवा नारी तमादाय मृतंतु या । मृते भर्तरि यानारी समारोहेद्धुताशनं । सारुन्धतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते । यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् । तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात् कथंचन ।

१ मातृकं पैतृकं चापि यत्रचैव प्रदीयते । कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं यानुगच्छति ।

इत्यादि पति और अपने आत्माको स्वर्ग में नही पहुंचाति इत्यादि वचन जो ब्राह्मणीको सती होनेके निषेधके है वे सब पृथक् चितामेंही सती होनेके (निषेध कहे क्योंकि) इस वचनसे पृथक् चितामेंही निषेध है कि पृथक् चितामें ब्राह्मणी सती न हो इससे यहभी स्पष्ट है कि क्षत्रिय आदि कोंकी स्त्रियोंको पृथक् चितामेंभी दोष नही —कोई यह जो कहते है कि पुरुषोंके समान स्त्रियोंकोभी आत्महत्या निषिद्ध है इससे श्येनयागके समान यह उपदेश उसी स्त्रीको है जिसको बडी भारी स्वर्गकी इच्छा है और जो निषेध शास्त्रको नही मानती—श्येनका उपदेश (शत्रुके मारनेका अभिलाषी पुरुष श्येनयज्ञ करै)भी उसी पुरुषको है जिसके अंतःकरणमें तीव्र क्रोध हो और हिंसाके निषेधको न मानै—यह उनका कहना ठीक नही है क्योंकि जो मनुष्य श्येन है करण जिसमें ऐसी जो भावना (करना) जिसमें प्राणीकी हिंसा होनेवाली उसमें विधिका तो स्पर्श नहो और निषेधका स्पर्श होनेसे श्येनको अनर्थता (बुरा) इससे कहतेहै कि उसका फल बुरा है उनके मतमें स्त्रीका सती होना शास्त्रसे विहित है इससे हिंसाही स्वर्गके अर्थ है । क्योंकि अग्नीषोमके पशुवत् निषेधका स्पर्श नही है इससे सतीका होना श्येनके समान नही है—जो कोई यह मानते है कि मारनेके पैदा करनेवाले व्यापारको हिंसा कहतेहै श्येनको परके मरणानुकूल व्यापार होनेसे हिंसा कह सकते है क्योंकि कामनाके अधिकारमें करणमें रागसे प्रवृत्ति हो सकती है इससे विधिको प्रवर्तकता नही है रागके द्वारा हिंसारूप होनेसे श्येनयाग निषिद्ध (बुरी) है इससे उसका स्पष्टही अनर्थ है—उनके मतमेंभी सती होनेके शास्त्रनें मरणकोही स्वर्गका साधन कहा है यद्यपि मरणमें रागसे प्रवृत्ति है तथापि अग्निमें प्रवेशरूप मरणके पैदा करनेवाले व्यापारमें विधिसेही प्रवृत्ति है इससे भूतोंकी हिंसा न करै इस निषेधका अवकाश नही है जैसे भूति(धन)की कामनावाला पुरुष वायव्य श्वेत पशुकी हिंसा करै तिससे यह बात स्पष्ट है कि सती होना श्येनके समान नही है—जो कोई यह कहते है कि स्वर्गकी कामनासे अपनी अवस्थाके प्रथम न मरै इस श्रुतिके विरोधसे सती होना मने है सो ठीकनही है क्योंकि उक्त श्रुतिका यह तात्पर्य है कि स्वर्गकी कामनासे अपनी अवस्थाके पूर्व वही मनुष्य न मरै जिसको मोक्षकी अभिलाषा हो क्योंकि अवस्थाके शेष रहनेपर नित्य और नैमित्तिक कर्मोंके करनेसे अंतःकरणका मल जब नष्ट होजायगा तो श्रवण मनन—निदिध्यासनकी प्राप्तिके द्वारा नित्य निरतिशय (सर्वोत्तम) ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष होनेके संभव है—तिससे वह अनित्य अल्पसुखरूप स्वर्गके लिये अपनी अवस्थाका व्यय (नाश) न करै इससे जो स्त्री मोक्षको नही चाहती और अनित्य अल्प सुखरूप स्वर्गकोही चाहती है उसको अन्य काम्यकर्मोंके समान सती होना युक्त है—इससे संपूर्ण निर्दोष है ॥

१ मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् । इतरेषु तु वर्णेषु तपः परममुच्यते । जीवंती तद्धितं कुर्या न्मरणादात्मघातिनी । या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् सास्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ।

२ पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गंतुमर्हति ।

३ श्येनेनाभिचरन्यजेत ।

१ नाहिंस्यात्सर्वाभूतानि ।

२ वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः ।

३ तस्मादुहन पुरायुषः स्वः कामी प्रेयात ।

भावार्थ–स्त्री पतिके मरनेपर पिता माता पुत्र भाई सास श्वशुर मामा इनसे हीन (इन के बिना) न रहै जो रहती है वह निंदाको प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

पतिप्रियहितेयुक्तास्वाचाराविजितेंद्रिया।
सेहकीर्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमांगतिम् ॥

पद–पतिप्रियहिते ७ युक्ता १ स्वाचारा १ विजितेंद्रिया १ सा इह ऽ–कीर्त्ति २ अवाप्नोति क्रि–प्रेत्य ऽ– च ऽ– अनुत्तमां २ गतिम् २ ॥

योजना–या स्त्री पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेंद्रिया भवति सा इह कीर्तिं च–पुनः प्रेत्य अनुत्तमां (सर्वोत्तमां) गतिं अवाप्नोति–

तात्पर्यार्थ–जो स्त्री पतिके प्रिय (निर्दोष मनके अनुकूल आचरण)में और हित (परलोकमें हितकारी)में युक्त होतीहै और जिसका आचरण शोभन है– शंख ऋषिने इस वेचनसे शोभन आचरण यह कहा है कि विना कहे घरसे वाहिर न जाय–विना दुपट्टा ओढे न जाय–शीघ्र न चले–पर पुरुषके संग न बोले–और व्यापारी वैद्य संन्यासी वृद्ध इनसे बोलनेमें दोष नही है–नाभिको न दिखावे–टकनों तक वस्त्रको पहिने–स्तनोंको न खोले–न हसे न नग्नहो पति और पतिके बंधुओंके संग वैर न करे –गणिका धूर्त कुटिनी–संन्यासिनी–प्रेक्षणिक –(यह्वातद्वा फिरै)– मायासे कपट करने वाली– दुष्टस्वभाव– इनके संग न बैठे क्योंकि संसर्गसेभी दुष्टचरित्र हो जाता है और श्रोत्र– और वाक आदि इंद्रियोंको जीते– ऐसी स्त्री इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होती है– यह संपूर्ण स्त्रीका धर्म विवाहसे पीछे समझना क्योंकि इस वेचनसे विवाहसे पूर्व स्त्रियोंको यथेच्छ आचरण कहा है और विवाहकी विधिही स्त्रियोंका यज्ञोपवीत कहा है ॥

भावार्थ– पतिके प्रिय और हितमें लगी रहै– शुद्ध आचरण करे– इंद्रियोंको जीते ऐसी स्त्री इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होतीहै ॥ ८७ ॥

सत्यामन्यांसवर्णायांधर्मकार्यंनकारयेत् ।
सवर्णासुविधौधर्म्येज्येष्ठयानविनेतरा ८८॥

पद– सत्यां ७ अन्यां २ सवर्णायां ७ धर्मकार्यं २ न ऽ– कारयेत् क्रि– सवर्णासु ७ विधौ ७ धर्म्ये ७ ज्येष्ठया ३ न ऽ– विना ऽ– इतरा १ ॥

योजना– सवर्णायां सत्यां अन्यां धर्मकार्यं न कारयेत्– सवर्णासु बह्वीषु मध्ये ज्येष्ठया विना धर्म्ये विधौ इतरा न नियोज्या ॥

भावार्थ– सवर्णा (सजातीय) स्त्रीके विद्यमान होनेपर अन्य वर्णकी स्त्रीसे धर्म संबंधी कार्य न करावे और बहुतसी सवर्णा स्त्रियोंके होनेपर ज्येष्ठा पत्नीके विना अन्य स्त्रीको धर्मकार्यमें नियुक्त नकरै ॥ ८८ ॥

दाहयित्वाग्निहोत्रेणस्त्रियंवृत्तवतींपतिः ।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलंबयन् ८९॥

पद– दाहयित्वा ऽ–अग्निहोत्रेण ३ स्त्रियं २ वृत्तवतीं २ पतिः १ आहरेत् क्रि– विधिवत् ऽ–

१ नानुक्ता गृहान्निर्गच्छेत नानुत्तरीया न त्वरित व्रजेत । नपरपुरुष माषेतान्यत्र वणिक्प्रव्रजित वृद्धेभ्यः न नाभिं दर्शयेत् आगुल्फाद्वासः परिदध्यात् न स्तनौ विवृतौ कुर्यात् नहसेदनपावृता भर्तारं तद्बन्धून्वा न द्विष्यात् नगणिकाधूर्ताभिसारिणीप्रव्रजिता प्रेक्षणिकामायामूलकुहककारिकादुःशीलादिभिः सहैकत्र तिष्ठेत् संसर्गेणापि हि चारित्रं दुष्यति ।

१ प्रागुपनयनात्कामचारकामवादकामभक्षाः वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः ।

दारन् २ अग्नीन् २ च५- एव५- अविलं चयन् ॥

योजना- पतिः वृत्तवतीं स्त्रियं अग्निहोत्रेण विधिवत् दाहयित्वा चपुनः अविलंबयन् सन् दारान् चपुनः अग्नीन् विधिवत् आहरेत् (स्वीकुर्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ- पूर्वोक्त आचरणवाली स्त्री यदि मरजाय तो उसको अग्निहोत्रकी अग्निसे- वह अग्नि न मिले तो स्मार्त (लौकिक) अग्निसे भस्म करके- यदि पुत्र उत्पन्न न हुआ हो और कोई यज्ञभी न कियाहो और- अन्य कोई स्त्रीभी न होय तो पुनः स्त्री और अग्निहोत्रको शीघ्रही विधिसे स्वीकारकरै क्योंकि दक्षऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि द्विज एकदिनभी विना आश्रम न रहै यह धर्म उसही स्त्रीका है जिसको अग्निके आधानका सहअधिकारहो अन्यका नही और जो इन वचनोंसे यह कहा है कि जो मनुष्य पहिली भार्याके जीवते हुये दूसरी भार्याको वैतानिक (वैदिक) अग्निसे दग्ध करता है वह दग्धकरना मदिरापानके समान है- जो मनुष्य दूसरी स्त्रीके मरनेपर और जो अपनी इच्छासे अग्निहोत्रको त्यागता है इन दोनोंको ब्रह्महत्यारे जाने- वह निषेध उसही दूसरीस्त्रीके लिये है जिसको पतिके संग अग्निके आधान करनेका अधिकार न हो- अर्थात् जो भिन्नवर्णकी हो ॥

भावार्थ- श्रेष्ठ आचरणवाली स्त्रीको पति अग्निहोत्रसे भस्म करके- शीघ्रही विधिसे अग्निहोत्र और दारा (स्त्री)ओंको स्वीकार करै अर्थात् विवाह करै॥ ८९ ॥

१ अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः ।

१ द्वितीयां चैव योभार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः । जीवत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमंहि तत् । मृतायांतु द्वितीयायां योग्निहोत्रं समुत्सृजेत् । ब्रम्हघ्नं विजानीयात् यश्च कामात्समुत्सजेत् ।

इति विवाहप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ वर्णजातिविवेकप्रकरणम् ४

सवर्णेभ्यःसवर्णासुजायंतेहिसजातयः ॥
अनिंद्येषुविवाहेषुपुत्राःसंतानवर्धनाः ९०॥

पद- सवर्णेभ्यः ५ सवर्णासु ७ जायन्ते क्रि--हि- सजातयः १ अनिंद्येषु७ विवाहेषु७ पुत्राः १ संतानवर्द्धनाः १ ॥

योजना- सवर्णासु स्त्रीषु सवर्णेभ्यः पतिभ्यः अनिंद्येषु विवाहेषु संतानवर्द्धनाः सजातयः पुत्राः जायंते ॥

तात्पर्यार्थ- ब्राह्मण आदि सवर्ण पतियोंसे ब्राह्मणी आदि विवाही हुयी सवर्णा स्त्रियोंमें जो पुत्र पैदा होते हैं वे मातापिताके सजातीय होते हैं क्योंकि इस वचन से विवाहित स्त्रियोंमेंही पूर्वोक्त विधि मानी है और उक्तवचनमें विन्नापद संबंधिशब्द है इससे अपने दूसरे शब्दकी अपेक्षा करनेसे सवर्ण पतिके संग जिसका विवाह हुआ हो उस सवर्णा स्त्रीकोही जनावेगा इससे इस श्लोकमें एक सवर्ण पद स्पष्टार्थ है इससे यह अर्थ सिद्ध हुआकि उक्त विधिसे विवाही हुयी सवर्णामें सवर्ण विवाहनेवाले वरसे जो उत्पन्न हुयेहों वे समानजातीय होते हैं- इससे कुंड- गोलक- कानीन- सहोढज आदि सवर्ण नहीं हो सकते और सवर्ण अनुलोमज प्रतिलोमजोंसे भिन्न उनका अहिंसा आदि साधारण धर्मोंमें अधिकार है क्योंकि इस वचनसे यह कहा है कि जो अपध्वंस (व्यभिचार)से पैदा हुये हैं वे सब शूद्रोंके समान धर्मवाले कहे हैं अर्थात् द्विजोंकी सेवा आदिही वे करें- कदाचित् कोई यह शंका करै कि कुन्ड और गोलकको ब्राह्मण न मानोंगे तो श्राद्धमें निषेध क्यों कहा क्योंकि प्राप्ति होनेपर निषेध होता है और इस न्यायका विरोध है कि जो जिस जातिके मनुष्यसे जिस जातिकी स्त्रीमें पैदा होता है वह इस प्रकार उसही जातिवाला होता है जैसे गौसे गौमें पैदा हुयीगौ- और अश्वसे घोडीमें पैदा हुआ अश्वही होता है तिससे ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें पैदा हुआ ब्राह्मण यह विरुद्ध नहीं है और कानीन पौनर्भव आदि पुत्रोंके प्रकरणमें जो यह वचन कहा है कि यह विधिमें सजातीय पुत्रोंमें कही है-उस वचनकाभी विरोध होगा-यह शंका उनकी अच्छी नहीं है क्योंकि श्राद्धमें निषेध इस भ्रमकी निवृत्तिके लिये है कि ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें पैदा हुआ ब्राह्मणही होता है जैसे अत्यंत अप्राप्तभी पतितका श्राद्धमें निषेध है-और न्यायकाभी विरोध नहीं है क्योंकि वहांही न्याय विरोध होता है जहां जाति प्रत्यक्ष जानी जाय-ब्राह्मण आदि जाति तो स्मृतियोंसे जानी जाती है जैसे ब्राह्मणत्वके समान होनेपरभी कुंडिनका वशिष्ठ और अत्रिका गौतम गोत्र इस स्मृतिसे होता है तैसे मनुष्यके समान होनेपरभी ब्राह्मण आदि जाति स्मृतिसेही जानी जाती है और माता पिताकोभी जातिका लक्षण यही है कदाचित् कहो अनवस्था होगी सो नहीं संसारके अनादि होनेसे शब्द और अर्थका व्यवहार है-सजातीय पुत्रोंकी यह विधि में कही इस उक्त वचनका व्याख्यान भी उसके अनुवादरूपसे करेंगे-क्षेत्रज पुत्रतो नियोगको शास्त्रोक्त होनेसे और शिष्टाचारसे माताका सजातीय होता है जैसे धृतराष्ट्र पांडु विदुर क्षेत्रज माताके

१ विवाहेष्व विधिः स्मृतः।
२ शूद्रायां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः।
१ सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः।
२ कुंडिनो वशिष्ठोत्रिर्गौतमः।

सजातीय हुये-और शुद्ध विवाहों (ब्राह्म-आदि)में संतानके बढानेवाले-रोगहीन दीर्घायु-धर्म प्रजासे संयुक्त-पुत्र होते हैं ॥

भावार्थ-सजातीय पुरुषोंसे सजातीय स्त्रियोंमें शुद्ध विवाहोंसे संतानके बढानेवाले सजातीयही पुत्र पैदा होते हैं ॥ ९० ॥

विप्रान्मूर्द्धावसिक्तोहिक्षत्रियायांविशः स्त्रियाम् । अंबष्ठःशूद्र्यांनिषादोजातः पारशवोपिवा ॥ ९१ ॥

पद-विप्रात् ५ मूर्द्धावसिक्तः १ हि5- क्षत्रियायां ७ विशः ६ स्त्रियाम् ७ अंबष्ठः १ शूद्र्यां ७ निषादः १ जातः १ पारशवः १ अपि5- वा5- ॥

योजना-विप्रात् क्षत्रियायां मूर्द्धावसिक्तः विशः स्त्रियाम् अंबष्ठः शूद्र्यां जातः निषादः वा पारशवः अपि स्मृतः॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणसे विवाही हुयी क्षत्रियामें जो पुत्र पैदा होता है वह मूर्द्धावसिक्त होता है और विवाही हुयी वैश्यकन्यामें जो पुत्र पैदा होता है वह अंबष्ठ होता है और विवाही हुई शूद्रामें निषाद नाम पुत्र होता है -यह वह निषाद् नही जो मत्स्योंको मारता है और प्रतिलोमसे पैदा होता है किंतु यह निषाद् नामके भेदसे वह है जिसको पारशव कहते हैं जो शंख ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि ब्राह्मणसे क्षत्रियामें[1] पैदा हुआ क्षत्रियही होता है और क्षत्रिहसे वैश्यामें पैदा हुआ वैश्य-और वैश्यसे शूद्रामें पैदा हुआ शूद्र-वह शंखका कथन इस लिये है कि उनको क्षत्रियके करने योग्य कर्म करने कुछ इस लिये नही है कि मूर्द्धावसिक्त आदि जातिही नही होती इससे इन मुर्द्धाभिषिक्त आदिकोंको यज्ञोपवीत उनही दंड-चर्म-यज्ञोपवीत आदिसे होता है जो क्षत्रिय आदिकोंको कहे है और इनकोभी क्षत्रिय आदिकोंके समान यज्ञोपवीतसे पहिले यथेच्छ आचरण करना कुछ विशेष शुद्धिकी अपेक्षा नही है ॥

भावार्थ-ब्राह्मणसे विवाही हुयी क्षत्रियामें मूर्द्धावसिक्त-और विवाही हुयी वैश्य कन्यामें अंबष्ठ-और विवाही हुयी शूद्रकन्यामें निषाद वा पारसव पुत्र पैदा होता है ॥ ९१ ॥

वैश्याशूद्र्योस्तुराजन्यान्माहिष्योग्रौसुतौ-स्मृतौ । वैश्यात्तुकरणःशूद्र्यांविन्नास्वेषविधिः स्मृतः ॥ ९२ ॥

पद-वैश्याशूद्र्योः ७ तु5- राजन्यात् ५ माहिष्योग्रौ १ सुतौ १ स्मृतौ १ वैश्यात् ५ तु5- करण १ शूद्र्यां ७ विन्नासु ७ एषः १ विधिः १ स्मृतः ॥ १ ॥

योजना-राजन्यात् वैश्याशूद्र्योः माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ-वैश्यात् शूद्र्यां करणः सुतः स्मृतः एषः पूर्वोक्तः विधिः विन्नासु (विवाहितासु) स्मृतः (संमतः) ऋषिभिरितिशेषः।

तात्पर्यार्थ-विवाही हुयी वैश्य और शूद्र-की कन्याओंमें क्षत्रियके सकाशसे माहिष्य और उग्र नामके दो पुत्र क्रमसे पैदा होते है और वैश्यसे विवाही हुयी शूद्रामें करण नामका पुत्र पैदा होता है-यह संपूर्ण मूर्द्धावसिक्त आदि संज्ञाओंका विधान विवाही हुयी स्त्रियोंमेंही जानना और मूर्द्धावसिक्त-अंबष्ठ-निषाद-माहिष्य-उग्र-करण ये छः पुत्र अनुलोमज जानने अर्थात् ऊंचे वर्णके पुरुषसे नीच वर्णकी कन्यामें पैदा होते हैं ॥

भावार्थ-विवाही हुयी वैश्य और शूद्रकी कन्यामें क्षत्रियसे माहिष्य और उग्र दो पुत्र

[1] ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्यायामुत्पादितो वैश्य एव भवति वैश्येन शूद्रायामुत्पादितःशूद्र एव भवति।

हुआ पांचवी पीढीमें वैश्यको पैदा करता है-ऐसेही वैश्यभी शूद्रवृत्तिसे जीवता होय और उसको न त्यागे तो पांचवी पीढीमें शूद्रको पैदा करता है-और अधर और उत्तर जो वर्णसंकरोंसे पैदा होते हैं वे पूर्वके समानही समझने अर्थात् अधर असत् और उत्तर सत् होते हैं इससे पहिले अनुलोमज और प्रतिलोमज वर्ण संकर दिखाये और रथकार आदि संकीर्ण संकरोंसे पैदा हुये दिखाये अब इस अधरोत्तर पदसे वर्णसंकरोंसे पैदा हुये दिखाते हैं कि जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंसे मूर्द्धावसिक्ता कन्यामें पैदा हुये पुत्र-और अंबष्ठामें वैश्य शूद्रोंसे पैदा हुये पुत्र-और निषादीमें शूद्रसे पैदा हुये पुत्र अधर प्रतिलोमज होते हैं तिसी प्रकार मूर्द्धावसिक्ता अंबष्टा और निषादीमें ब्राह्मणसे पैदा हुये पुत्र-और माहिष्य और उग्रकी कन्याओंमें ब्राह्मण और क्षत्रियसे. पैदा हुये पुत्र-और करणीमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यसे पैदा हुये पुत्र उत्तर अनुलोमज होते हैं इसी प्रकार अन्यभी समझने ये अधर प्रतिलोमज और उत्तर अनुलोमज असत् और सत् जानने अर्थात् अधर निकृष्ट और उत्तर उत्तम होते हैं ॥

भावार्थ-पूर्वोक्त मूर्द्धावसिक्त आदि जातियोंको *पांचवीं वा छठी वा सातवी पीढीमें* जातिकी उत्तमता जाननी-यदि कर्मोंकी विपरीतता होयतो जातिकी साम्यता (वहकी वह) होती है और अधर प्रतिलोमज और उत्तर अनुलोमजभी पूर्वके समानही असत् और सत् जानने ॥ ९६ ॥

इति वर्णजातिविवेकप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ गृहस्थधर्मप्रकरणम् ५

कर्मस्मार्तंविवाहाग्नौकुर्वीतप्रत्यहंगृही ॥
दायकालाहृतेवापिश्रौतंवैतानिकाग्निषु९७

पद-कर्म २ स्मार्तं २ विवाहाग्नौ ७ कुर्वीत क्रि- प्रत्यहं २ गृही १ दायकालाहृते ७ वा०-अ०- श्रौतं२- वैतानिकाग्निषु ७॥

योजना-गृही स्मार्तं कर्म विवाहाग्नौ वा दायकालाहृते अग्नौ प्रत्यहं कुर्वीत- श्रौतं कर्म वैतानिकाग्निषु कुर्वीत ॥

तात्पर्यार्थ-वेद और स्मृतिमें कहे हुये कर्म अग्निसे होतेहैं यह दिखानेके लिये कहतेहैं किस अग्निमें कौनकर्म करना-स्मृतिमें उक्त वैश्वदेव आदि कर्म और प्रतिदिनके पाक आदि लौकिक कर्म इनको गृहस्थी विवाहमें संस्कारकीहुई अग्निमें वा विभागके समयमें लाई हुई अग्निमें करै क्योंकि वैश्य कुलसे अग्निको लाकर विवाहरूप संस्कार करै यहभी शास्त्रमें कहाहै और अग्निशब्दसे जब गृहका स्वामी मरजाय तब लाकरजो अग्नि संस्कृत की हो उसमें पूर्वोक्त कर्म करै फिरभी तीनों कालोंका अतिक्रम होजाय तो द्विज प्रायश्चित्तके योग्य होताहै- और श्रुतिमें कहे हुये अग्निहोत्र आदिकर्म वैतानिक (अहवनीय आदि) अग्नियोंमें करै॥

भावार्थ-स्मृतिमें कहे कर्म विवाहकी वा दाय (वांटा) कालमें लाई अग्निमें और वेदोक्त कर्म आहवनीय आदि अग्निमें- गृहस्थी प्रतिदिन करै ॥ ९७ ॥

शरीरचिंतांनिर्वर्त्यकृतशौचविधिर्द्विजः ॥
प्रातःसंध्यामुपासीतदंतधावनपूर्वकम्९८

पद- शरीरचिंतां २ निर्वर्त्य०- कृतशौचविधिः १ द्विजः१ प्रातः०- संध्यां २ उपासीत क्रि- दन्तधावनपूर्वकम् २ ॥

योजना-कृतशौचविधिः द्विजः शरीरचिन्तां निर्वर्त्य दन्तधावनपूर्वकं प्रातःसंध्यां उपासीत ॥

तात्पर्यार्थ- अब गृहस्थके धर्म कहतेहैं आवश्यक इस शरीरकी चिन्ताको (दिन और संध्यामें यज्ञोपवीत कानपर रख और उत्तराभिमुख होकर मूत्र और मलका त्याग करै इत्यादि विधिसे कही)- निवृत्त करके- गंध और लेपके क्षय करनेवाले शौचको करै इत्यादि वचनसे कही विधिसे कीहै शौचकी विधि जिसने ऐसा द्विज दंतधावनपूर्वक प्रातःकाल संध्याकी विधिको करै- दन्तधावनकी विधि यह हैकि कांटे और दूधवाले वृक्षकीहो और बारह अंगुलकी हो- औरजो कनिष्ठा अंगुलीके अग्रभागके समान मोटीहो और जिसका कूर्च (कूंची) आधेपर्व (अंगुल)काहो ऐसी दतोन और जिव्हाकी उल्लेखिनी कहीहै- इस वचनमें वृक्षको कहनेसे तृण डेला अंगुली आदिका और ढाक और पीपल आदिकाभी निषेध अन्य स्मृतियोंमें कहाहुआ जानना- दंतधावनका मंत्र यहहै कि अवस्था-बल-यश-तेज-प्रजा- पशु-धन-वेद पढनेकी बुद्धि-और बुद्धि इनको हे वनस्पते (वृक्ष) तू हमेंदे-ब्रह्मचारी प्रकरणमें कहेभी संध्यावंदनका पुनः वचन दंतधावन पूर्वक करनेके लियेहै-क्योंकि ब्रह्मचारि दतोन नृत्य गीत आदिको वर्जदे इस वचनसे ब्रह्मचारीको दतोनका निषेधहै-

भावार्थ-मलमूत्र त्यागनेके अनंतर विधिसे शौचको करके द्विज दतोन करके प्रातःकालकी संध्याको करै ॥ ९८ ॥

हुत्वाग्नीन्सूर्यदैवत्याञ्जपेन्मंत्रान्समाहितः ।
वेदार्थानधिगच्छेच्चशास्त्राणिविविधानिच ॥

हुआ पांचवी पीढीमें वैश्यको पैदा करता है–ऐसेही वैश्यभी शूद्रवृत्तिसे जीवता होय और उसको न त्यागे तो पांचवी पीढीमें शूद्रको पैदा करता है–और अधर और उत्तर जो वर्णसंकरोंसे पैदा होते हैं वे पूर्वके समानही समझने अर्थात् अधर असत् और उत्तर सत् होते हैं इससे पहिले अनुलोमज और प्रतिलोमज वर्ण संकर दिखाये और रथकार आदि संकीर्ण संकरोंसे पैदा हुये दिखाये अब इस अधरोत्तर पदसे वर्णसंकरोंसे पैदा हुये दिखाते हैं कि जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंसे मूर्द्धावसिक्ता कन्यामें पैदा हुये पुत्र–और अंबष्ठामें वैश्य शूद्रोंसे पैदा हुये पुत्र–और निषादीमें शूद्रसे पैदा हुये पुत्र अधर प्रतिलोमज होते हैं तिसी प्रकार मूर्द्धावसिक्ता अंबष्ठा और निषादीमें ब्राह्मणसे पैदा हुये पुत्र–और माहिष्य और उग्रकी कन्याओंमें ब्राह्मण और क्षत्रियसे पैदा हुये पुत्र–और करणीमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यसे पैदा हुये पुत्र उत्तर अनुलोमज होते हैं इसी प्रकार अन्यभी समझने ये अधर प्रतिलोमज और उत्तर अनुलोमज असत् और सत् जानने अर्थात् अधर निकृष्ट और उत्तर उत्तम होते हैं ॥

भावार्थ–पूर्वोक्त मूर्द्धावसिक्त आदि जातियोंको पांचवी वा छठी वा सातवी पीढीमें जातिकी उत्तमता जाननी–यदि कर्मोंकी विपरीतता होयतो जातिकी साम्यता (वहकी वह) होती है और अधर प्रतिलोमज और उत्तर अनुलोमजभी पूर्वके समानही असत् और सत् जानने ॥ ९६ ॥

इति वर्णजातिविवेकप्रकरणम् ॥ ४ ॥

पद-हुत्वा-अग्नीन् २ सूर्यदैवत्यान् २ जपेत् क्रि-मंत्रान् २ समाहितः १. वेदार्थान् २ अधिगच्छेत् क्रि-च-शास्त्राणि २ विविधानि २ च- ॥

योजना- अग्नीन् हुत्वा समाहितः सन् सूर्यदैवत्यान् मंत्रान् जपेत्-वेदार्थान् चपुनः विविधानि शास्त्राणि अधिगच्छेत् ॥

तात्पर्यार्थ- प्रातःकाल संध्यावंदनके अनंतर आहवनीय आदि अग्नियोंमें वा औपासन अग्निमें शास्त्रोक्त विधिसे होम करके सूर्य है देवता जिनका ऐसे- उदुत्यंजातवेदसं० इत्यादि मंत्रोंको चित्तको सावधान करके जपे फिर निरुक्त और व्याकरण आदिके श्रवणसे वेदके अर्थको पढे और चकारसे पढे हुयेका अभ्यास (विचार) करे- फिर धर्म अर्थ आरोग्य आदिके बोधक मीमांसा आदि अनेक शास्त्रोंको जाने ॥

भावार्थ- अग्निहोत्र करके सूर्यदेवताके मंत्रोंको जपे और वेदका अर्थ और अनेक शास्त्रोंको जाने ॥ ९९ ॥

उपेयादीश्वरंचैवयोगक्षेमार्थसिद्धये ॥
स्नात्वादेवान्पितृंश्चैवतर्पयेदर्चयेत्तथा १००

पद-उपेयात् क्रि-ईश्वरं २ च-एव-योगक्षेमार्थसिद्धये ४ स्नात्वा-देवान् २ पितॄन् २ च-एव-तर्पयेत् क्रि-अर्चयेत् क्रि-तथा-

योजना- चपुनः योगक्षेमार्थसिद्धये ईश्वरं उपेयात्-स्नात्वा देवान् चपुनः पितॄन् अर्चयेत् तथा तर्पयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- तिसके अनन्तर अभिषेक (राजतिलक) आदिगुणोंसे युक्त राजाके वा अन्य श्रीमान्के- अनिंदित (शुद्ध) योगक्षेम (अलभ्य वस्तुके लाभको योग और लब्ध वस्तुके पालनको क्षेम कहतेहैं)केलिये धनकी सिद्धिके अर्थ-समीप जाय-समीप जाय यह कहनेसे सेवाके निषेधको आचार्य कहताहै क्योंकि वेतनको ग्रहण करके आज्ञा करनेको सेवा कहते हैं वह श्वा (कुत्ता) की वृत्ति होनेसे निषिद्धहै- फिर मध्याह्नमें शास्त्रोक्त विधिसे नदी आदिमें स्नान करके देवता (जो अपने गृह्यसूत्रमें कहेहों) पितर और चकारसे ऋषि इनका देव आदि तीर्थसे तर्पण करे- फिर गंध पुष्प अक्षतोंसे हरिहरब्रह्मा आदि देवोंमें किसी एकका अपनी वासनाके अनुसार ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेदके मंत्रोंसे वा पूजाके प्रकाशक चतुर्थी विभक्ति और नमःपद जिनके अन्तमें ऐसे नामोंसे (हरये नमः आदि) शास्त्रोक्त विधिसे आराधन (पूजन) करे ॥

भावार्थ- योगक्षेम (निर्वाह)के लिये राजा वा धनीके समीप जाय और स्नान करके देवता पितर ऋषि इनका तर्पण और पूजन करे ॥ १०० ॥

वेदाथर्वपुराणानिसेतिहासानिशक्तितः ।
जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थविद्यांचाध्यात्मिकींजपेत्

पद-वेदाथर्वपुराणानि २ सेतिहासानि २ शक्तितः ऽ- जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थः- विद्यां २ च- आध्यात्मिकीं २ जपेत् क्रि- ॥

योजना- सेतिहासानि वेदाथर्वपुराणानि चपुनः आध्यात्मिकीं विद्यां जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं शक्तितः जपेत् ॥

ता० भा०- फिर वेद अथर्वण इतिहास पुराण व्यस्त (एकदो) वा समस्त (सब) इनको और आध्यात्मिकी (ब्रह्म) विद्याको जपयज्ञकी सिद्धिके लिये जपे अर्थात् विचार करे ॥ १०१ ॥

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाःभूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणांमहामखाः

पद- बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्याया तिथि

सत्क्रियाः १ भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां ६ महामखाः १ ॥

योजना- बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां क्रमेण महामखाः भवन्तीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ- बलि वैश्वदेवकर्म भूतयज्ञ- और स्वधा (तर्पणश्राद्ध) पितृयज्ञ- होमं देवयज्ञ- स्वाध्याय (वेदपाठ) ब्रह्मयज्ञ- और अतिथिका सत्कार मनुष्ययज्ञ- ये पांच महायज्ञ प्रतिदिन करने क्योंकि ये सबकर्म नित्य हैं काम्य नहीं हैं- जो कहीं २ इनके फलका श्रवण है वह इनकी पवित्रता बोधनके लिये है कुछ काम्य बोधनके लिये नहीं है- नित्यकर्म वह होता है जिसके न करनेमें पापही और करनेमें कुछ फल नहो- और काम्य कर्म वह होता है जिसके करनेका कुछ फल हो ॥

भावार्थ- बलि- वैश्वदेव- स्वधा- होम- वेदपाठ- अतिथिका सत्कार - ये पांचों क्रमसे भूत पितर अमर (देव) ब्रह्म- मनुष्य- इनके महायज्ञ होते हैं ॥ १०२ ॥

देवेभ्यश्चहुतादन्नाच्छेपाद्भूतबलिंहरेत् ॥
अन्नंभूमौश्वचांडालवायसेभ्यश्चनिक्षिपेत् ॥

पद- देवेभ्यः ४ च- हुतात् ५ अन्नात् ५ शेषात्५ भूतबलिं २ - हरेत् क्रि अन्नं २ भूमौ ७ श्वचांडालवायसेभ्यः ४ च- निक्षिपेत् क्रि- ॥

योजना- देवेभ्यः हुतात् शेषात् अन्नात् भूतबलिं हरेत्- चपुनः श्वचाण्डालवायसेभ्यः भूमौ अन्नं निक्षिपेत् ॥

तात्पर्यार्थ- अपने गृह्यमें कही विधिसे वैश्वदेव होमको करके उससे शेष जो अन्न उसमेंसे भूतोंको बलिदे- अन्न पदका कहना अपक्वके निषेधार्थ है- तिसके अनंतर शक्तिके अनुसार- श्वा- चांडाल- काकोंके लिये और चशब्दसे कीट पापरोगी पतितोंके लिये भूमिमें अन्न गेरदे- सोई मनुने इस वचनसे कहा है कि कुत्ते पतित चांडाल पाप रोगी काक कृमि (कीडे) इनको अन्न शनैः २ (विनामंत्र) भूमिपर गेरदे- यह कर्म सायंकाल और प्रातःकाल करना-क्योंकि आश्वलायनका वचन है कि सायंकाल और प्रातःकाल बनेहुये हविष्य अन्नमेंसे होमकरे-यहां कोई आचार्य वैश्वदेव कर्मको पुरुषार्थ और अन्नका संस्कारक कहते हैं क्योंकि सायंकाल और प्रातःकाल सिद्ध हविष्य अन्नमेंसे होमकरे इससे तो संस्कार कर्म प्रतीत होता है- इसके अनंतर पांच महायज्ञ कहते हैं इसप्रकरणमें उनको ही प्रतिदिन करे इस वचनसे नित्य कहाहै इससे पुरुषार्थभी जानाजाताहै सो ठीक नहीं क्योंकि पुरुषार्थ कहोगे तो अन्नसंस्कार कर्म नहीं हो सकता-जैसे द्रव्यसंस्कार पक्षमें वैश्वदेव कर्मको अन्नार्थता है और पुरुषार्थ पक्षमें वैश्वदेव कर्मार्थ द्रव्य होगा इस परस्पर विरोधसे पुरुषार्थ ही मानना युक्त है क्योंकि मनुकी स्मृति है कि महायज्ञ और यज्ञोंसे ब्राह्मणका शरीर बनाया जाताहै तैसेही वैश्वदेव किये पीछे यदि अन्य अतिथि आजाय तो उसकोभी यथा शक्ति अन्नदे पुनः बलि वैश्वदेव न करे पुरुषार्थ होनेसे वैश्वदेव कर्मका प्रति पाकमें करना योग्य नहीं है-तिससे पूर्वोक्त सायंकाल और प्रातःकाल करे इत्यादि वचनसे उत्पत्ति और प्रयोग दिखाये-तिन इन यज्ञोंको प्रतिदिन करे यह अधिकारका विधान है-इससे सब निर्दोष है ॥

१ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणां। वायसानां कृमीणां च शनकैर्निक्षिपेद्भुवि।

२ हविष्यान्नस्याहुतिं कुर्यात्।

भावार्थ-देवताओंके होमसे शेष अन्नसे भूतोंको बलिदे-और कुत्ते चांडाल काकइनको भी भूमिमें अन्न डालदे ॥ १०३ ॥

अन्नंपितृमनुष्येभ्योदेयमप्यन्वहंजलम् ॥
स्वाध्यायंचान्वहंकुर्यान्नपचेदन्नमात्मने ॥

पद-अन्नं १ पितृमनुष्येभ्यः ४ देयम् १-अपि-अन्वहं २ जलम् १-स्वाध्यायं २ च-अन्वहं २ कुर्यात् क्रि- न- पचेत् क्रि- अन्नं २ आत्मने ४ ॥

योजना-पितृमनुष्येभ्यः अपि अन्वहं अन्नं जलं देयम्- चपुनः अन्वहं स्वाध्यायं कुर्यात्-आत्मने अन्नं न पचेत् ॥

तात्पर्यार्थ-पितर और मनुष्योंको अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन अन्नदे अन्न न होय तो कंद मूल फल आदि दे- वहभी न होय तो जलदे-और अपिशब्दसे अविस्मरण (न भूलना)के लिये निरंतर स्वाध्याय (वेदपाठ) करे और केवल अपने निमित्त अन्नको न पकावे किन्तु देवताओंके निमित्त ही पकावे-यहां अन्न पदका ग्रहण संपूर्ण भक्षणके योग्य द्रव्योंके दिखाने (जताने) के लिये है ॥

भावार्थ-पितर और मनुष्योंको प्रतिदिन अन्न जलदे-और प्रतिदिन वेदको पढे और अपने लिये अन्न न पकावे ॥ १०४ ॥

बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ।
संभोज्यातिथिभृत्यांश्चदंपत्योः शेषभोजनम् ॥ १०५ ॥

पद-बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः २-संभोज्य- अतिथिभृत्यान् २ च- दंपत्योः ६ शेषभोजनम् २ ॥

योजना-बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुर कन्यकाः चपुनः अतिथिभृत्यान् संभोज्य दंपत्योः शेषभोजनं-कर्तव्यमिति शेषः ॥

ता॰ भावार्थ-बालक-स्ववासिनी-वृद्ध-गर्भिणी-आतुर (रोगी) और कन्या और अतिथि और भृत्य-इन सबको भोजन कराकर-शेष भोजनको स्त्री और पुरुष करे-जो विवाही हुयी कन्या पिताके घरमें रहै वह स्ववासिनी कहाती है ॥ १०५ ॥

आपोशनेनोपरिष्टादधस्तादश्नतातथा ।
अनग्नममृतंचैवकार्यमन्नंद्विजन्मना १०६

पद-आपोशनेन ३-उपरिष्टात्-अधस्तात्-अश्नता ३ तथा- अनग्नं १ अमृतं १ च- एव- कार्यं १ अन्नं १ द्विजन्मना ३ ॥

योजना-अश्नता द्विजन्मना आपोशनेन उपरिष्टात् चपुनः अधस्तात्-अनग्नं चपुनः अमृतं-अन्नं कार्यम् ॥

ता॰ भा॰-भोजन करता हुआ ब्राह्मण आपोशन भोजनसे पूर्व आचमन कर्मसे पीछे और पहिले अन्नको अनग्न (ढका) और अमृत रूप करना-यहां द्विजन्मा पदके ग्रहणसे उपनयन आदि सब आश्रमोंका यह साधारण धर्म है ॥ १०६ ॥

अतिथित्वेनवर्णानांदेयंशक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योतिथिःसायमपिवाग्भूतृणोदकैः ॥

पद-अतिथित्वेन ३ वर्णानां ६ देयम् १ शक्त्या ३ अनुपूर्वशः- अप्रणोद्यः १ अतिथिः १ सायं- अपि- वाग्भूतृणोदकैः ३ ॥

योजना-वर्णानां अथितित्वेन शक्त्या अनुपूर्वशः देयम्-सायं अपि अतिथिः वाग्भूतृणोदकैः अप्रणोद्यः ॥

तात्पर्यार्थ-वैश्वदेवके अनंतर ब्राह्मण आदि वर्ण युगपत् (इकट्ठे) अतिथि आजांयतो ब्राह्मण आदि क्रमसे सामर्थ्यके अनुसार अन्नदे और सायंकालके समयभी यदि अतिथि आजांयतो वहभी अप्रणोद्य (नाहींके अयोग्य) है सोई मनुने इस

बैल वा बडा बकरा अर्पणकरे और पीछे बैठे और स्वादु भोजनदे और मीठे वचनसे बोले ॥ १०९ ॥

प्रतिसंवत्सरंत्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः ।
प्रियोविवाह्यश्चतथायज्ञंप्रत्यृत्विजः पुनः ॥

पद- प्रतिसंवत्सरं२- तु०- अर्घ्याः १ स्नातकाचार्यपार्थिवाः १ प्रियः १ विवाह्यः १ च०- तथा०-यज्ञं२ प्रति०- ऋत्विजः१पुनः०-॥

योजना- स्नातकाचार्यपार्थिवाः प्रियः चपुनः विवाह्यः एते प्रतिसंवत्सरं- ऋत्विजः पुनः यज्ञं प्रति अर्घ्याः (पूजनयोग्याः) भवन्तीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ- स्नातक तीन होते हैं - १ विद्यास्नातक -२ व्रतस्नातक- ३ विद्याव्रतस्नातक- वेदको समाप्त करके और व्रतको समाप्त न करके जो समावर्तन (गृहस्थ) करे अर्थात् गृहस्थमें आवे वह विद्यास्नातक- और जो व्रतको समाप्त करके और वेदको समाप्त न करके समावर्तन करे वह व्रतस्नातक- और दोनोंको समाप्त करके जो समावर्तन करे वह विद्याव्रतस्नातक कहता है- आचार्य वह जिसका लक्षण कह आये हैं- और पार्थिव (राजा) वह जिसका लक्षण आगे कहेंगे- प्रिय (मित्र) विवाह्य (जामाता) चकारसे श्वशुर- चाचा मातुल आदि लेने-क्योंकि आश्वलायनका वचन है कि वरणके अनंतर ऋत्विजोंको और स्नातकको और आये हुये राजाको और आचार्य श्वशुर पितृव्य मातुल इनको मधुपर्क दे- ये स्नातक आदि सब अपने घर आये हुये प्रतिवर्ष मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं यहां अर्घ शब्द मधुपर्कका उपलक्षण (बोधक) है- और पूर्वकह आये हैं लक्षण जिनका ऐसे ऋत्विज तो वर्षसे पहिलेभी यज्ञ२में मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं ॥

भावार्थ-स्नातक- आचार्य- राजा-प्रिय जामाता ये घर आये प्रतिवर्ष मधुपर्कसे और ऋत्विजतो यज्ञ २ में वर्षसे पहिलेभी पूजने योग हैं- ॥ ११० ॥

अध्वनीनोतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियोवेदपारगः ।
मान्यावेतौगृहस्थस्यब्रह्मलोकमभीप्सतः ॥

पद-अध्वनीनः१अतिथिः१ज्ञेयः श्रोत्रियः१ वेदपारगः १ मान्यौ१ एतौ १ गृहस्थस्य६ ब्रह्मलोकं २ अभीप्सतः ६ ॥

योजना-अध्वनीनः अतिथिः- वेदपारगः श्रोत्रियः ज्ञेयः- एतौ ब्रह्मलोकं अभीप्सतः गृहस्थस्य मान्यौ स्त इतिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ-मार्गमें जो वर्तमान (फिरता) वह अतिथि और वेदका पारगामी श्रोत्रिय जानना-मार्गमें वर्तमान ये पूर्वोक्त दोनों ब्रह्मलोककी आकांक्षा करनेवाले गृहस्थी को मान्य हैं अर्थात् अतिथिरूपसे सत्कारके योग्य है-यद्यपि केवल अध्ययनसेभी श्रोत्रिय होता है तथापि यहां श्रुत और पढनेसे संपन्न श्रोत्रिय जानना- और एक शाखाके अध्ययनमें जो समर्थ वह वेदपारग जानना॥

भावार्थ-मार्गमें वर्तमान द्विज और वेदका पारगामी वेदपाठी अतिथि जानने ये दोनों ब्रह्मलोकके अभिलाषी गृहस्थीको मानने योग्य हैं ॥ १११ ॥

परपाकरुचिर्नस्यादनिंद्यामंत्रणादृते ॥
वाक्पाणिपादचापल्यंवर्जयेच्चातिभोजनम् ॥

पद-परपाकरुचिः १ न०- स्यात् क्रि- अनिंद्यामंत्रणात् ५ ऋते०- वाक्पाणिपादचापल्यं २ वर्जयेत् क्रि-च०-अतिभोजनम् २॥

योजना-अनिंद्यामंत्रणात् ऋते परपाक-

---

१ ऋत्विग्भ्यो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् स्नातकायोपस्थिताय राज्ञे चाचार्य च श्वशुरपितृव्यमातुलानाच ।

रुचिः नस्यात्- वाक्पाणिपादचापल्यं चपुनः अतिभोजनं वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अनिंद्यके आमंत्रण (नोता)को छोडकर परपाकमें रुचि न करे-क्योंकि यह स्मृति है कि अनिंद्यके निमन्त्रणको स्वीकार करके नहटे-वाणी, हाथ, पाद इन तीनों का चापल्य वर्जदे-असभ्य (अयोग्य) और अनृत (झूठ) बोलनेको वाक्चापल्य कहते हैं -हाथोंके बजानेको पाणिचापल्य कहते हैं और लंघने कूदनेको पादचापल्य कहते हैं -चकार पढनेसे नेत्रोंका चापल्य लेते हैं- क्योंकि गौतमका वचन है कि-लिंग उदर हाथ नेत्र पाणी इनका चापल्य न करे-और रोगका हेतु होनेसे अतिभोजनकोभी वर्जदे ॥

भावार्थ-शुद्ध निमंत्रणके विना अन्यके बनाये पाकमें रुचि न करे-और वाणी हाथ पैर इनकी चपलता और अतिभोजन इनको वर्जदे ॥ ११२ ॥

अतिथिंश्रोत्रियंतृप्तमासीमांतमनुव्रजेत् ।
अहःशेषंसमासीतशिष्टैरिष्टैश्चबंधुभिः ११३

पद- अतिथिं २ श्रोत्रियं २ तृप्तं २ आसीमांतं २ अनुव्रजेत् क्रि- अहःशेषं २ समासीत क्रि- शिष्टैः ३ इष्टैः ३ च- बंधुभिः ३ ॥

योजना- तृप्तं अतिथिं श्रोत्रियं आसीमांतं अनुव्रजेत्- अहःशेषं शिष्टैः चपुनः इष्टैः बंधुभिः समासीत ॥

तात्पर्यार्थ- पूर्वोक्त श्रोत्रिय अतिथि और वेदके पारगामी अतिथिको भोजन आदिसे तृप्तकरके सीमाके अंततक उसके पीछे जाय- फिर इतिहास पुराणके ज्ञाता शिष्ट-और काव्योंकि कथा कहनेमें चतुर इष्ट- और अनुकूल बोलनेमें कुशल बंधु इनके संग शेष दिनमें बैठे-

भावार्थ- तृप्तहुये अतिथि और श्रोत्रियके पीछे सीमापर्यंत जाय और शेषदिनमें शिष्ट- इष्ट- और बंधुओंके संग बैठे ॥ ११३ ॥

उपास्यपश्चिमांसंध्यांहुत्वाग्नींस्तानुपास्यच।
भृत्यैः परिवृतोभुक्त्वानातितृप्यायसंविशेत्॥

पद- उपास्य- पश्चिमां २ संध्यां २ हुत्वा- अग्नीन् २ तान् २ उपास्य- च- भृत्यैः ३ परिवृतः १ भुक्त्वा- न- अतितृप्य- अथ- संविशेत् क्रि- ॥

योजना- पश्चिमां संध्यां उपास्य अग्नीन् हुत्वा चपुनः तान् उपास्य भृत्यैः सह भुक्त्वा- न अतितृप्य- अथ (अनंतरं) संविशेत् (स्वप्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ- फिर पूर्वोक्त विधिसे सायंकालकी संध्याके अनंतर अग्निहोत्र करके और उन अग्नियोंकी पूजाकरके और पूर्वोक्त भृत्य और स्ववासिनी आदि सहित भोजनकरके और चकारसे घरके आय व्यय (लाभ खर्च)की चिंतासे निवृत्त होकर शयन करे- ॥

भावार्थ- सायंकालकी संध्या अग्निहोत्र और अग्नियोंकी पूजा और भृत्योंसहित भोजनके अनंतर अत्यंत तृप्त न होकर शयनकरे ॥ ११४ ॥

ब्राह्मेमुहूर्तेचोत्थायचिंतयेदात्मनोहितम् ॥
धर्मार्थकामान्स्वेकालेयथाशक्तिनहापयेत्॥

पद- ब्राह्मे ७ मुहूर्ते ७ च- उत्थाय- चिंतयेत् क्रि- आत्मनः ६ हितम् २ धर्मार्थकामान् २ स्वे ७ काले ७ यथाशक्ति- न- हापयेत् क्रि- ॥

योजना-चपुनः ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय आत्मनः हितं चिंतयेत्-स्वे काले धर्मार्थकामान् यथाशक्ति न हापयेत् [न त्यजेत्] ॥

१ अनिंद्येनामंत्रितो नापक्रामेत् ।
२ नदीभोदरपाणिपादचक्षुश्चापल्यानि कुर्यात् ।

तात्पर्यार्थ-फिर ब्राह्म मुहूर्त (पिछला आधापहर)में उठकर किये और करने योग्य अपने हितकी और वेदके अर्थमें संदेहोंकी चिंता करे क्योंकि उस समय चित्तको अव्याकुल होनेसे तत्त्वके समझनेकी योग्यता होती है-फिर अपने उचित समयमें धर्म अर्थ कामोंको यथाशक्ति न त्यागे-किंतु यथासंभव (जैसे होसके) पुरुषार्थ होनेसे सबकरे-सोई गौतमने कहा है कि पूर्वाह्न-मध्यदिन-अपराह्न-इनको वृथा न करे और धर्म अर्थ कामोंमेंभी धर्मको मुख्य समझे-यहां यद्यपि सामान्यसे करना कहा है तथापि काम और अर्थको धर्मके अनुकूल करे वे दोनो धर्म मूल है-इसी प्रकार प्रतिदिन करे ॥

भावार्थ-ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर अपने हितकी चिंता करे और धर्म अर्थ कामोंको अपने २ समयमें शक्तिके अनुसार न त्यागे ॥ ११५ ॥

विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैर्मान्यायथाक्रमम् । एतैःप्रभूतैःशूद्रोपिवार्धकेमानमर्हति ११६

पद-विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैः ३ मान्याः १ यथाक्रमम्- एतैः ३ प्रभूतैः ३ शूद्रः १ अपि- वार्धके ७ मानं २ अर्हति क्रि-॥

योजना-विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैः युक्ताः यथाक्रमम् मान्याः भवंति-प्रभूतैः एतैः युक्तः शूद्रः अपि वार्द्धके मानं अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त विद्या-वेद और धर्मशास्त्रोक्त कर्म अपनेसे वा सत्तर वर्षसे अधिक अवस्था-अपने स्वजन बांधवोंकी संपदा-ग्राम रत्न आदि धन-इनसे युक्त पुरुष क्रमसे मान्य [पूजने योग्य] होते हैं और अत्यंत अधिक विद्या कर्म वयो बंधु धनसे युक्त ये चाहे समस्त हो वा एक दो हों-शूद्रभी वृद्ध [अस्सी वर्षसे अधिक] मानके योग्य है-क्योंकि गौतमका वचन है कि अस्सी वर्षका शूद्रभी श्रेष्ठ है॥

भावार्थ- विद्या कर्म अवस्था बांधव धनसे युक्त मनुष्य क्रमसे मानने योग्य होते हैं- और अधिक विद्या आदिसे युक्त होयतो शूद्रभी वृद्ध अवस्थामें मानके योग्य होता है ॥ ११६ ॥

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगीवरचक्रिणाम् । पंथादेयोनृपस्तेषांमान्यःस्नातश्चभूपतेः ॥

पद- वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगीवरचक्रिणाम् ६ पंथाः १ देयः १ नृपः १ तेषां ६ मान्यः १ स्नातः १ च- भूपतेः ६ ॥

योजना- वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगी वरचक्रिणां पन्थाः देयः तेषां वृद्धादीनां नृपः मान्यः चपुनः स्नातः भूपतेः मान्यः भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ- जिसका पका शरीरहो वह वृद्ध भार(बोझा)वान्- नृप (राजा) कुछ क्षत्रिय मात्र नही. विद्या- और व्रत दोनोंसे स्नातक- स्त्री- रोगी- वर (विवाहके लिये उद्यत) चक्री (गाडीवान्) चकारसे मत्त और उन्मत लेने- क्योंकि शंखकी यह स्मृति है कि बालक-वृद्ध-मत्त-उन्मत- पीडासंयुक्त- भारसे आक्रांत-स्त्री- स्नातक- संन्यासी इनको मार्ग छोडदे अर्थात ये सन्मुख आते होंयतो एकतरफको हटजाय- इन सबको मार्गदे- यदि वृद्ध आदिकोंके संग राजाका समवाय (मेल) हो जायतो राजाको मार्गछोडदे- राजाकोभी स्नातक (ब्रह्मचारी) मानने योग्य है- यहां

१ नपूर्वाह्नमध्यंदिनापराह्णानफलान् कुर्यात् धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु धर्मोत्तरः स्यात् ।

१ शूद्रोप्यशीतिको वरः ।

२ बालवृद्धमत्तोन्मत्तपीडितदेहभारवाक्स्त्रीस्नातक प्रव्रजितेभ्यः ।

स्नातकसे सब स्नातकलेने कुछ ब्राह्मणही नही क्योंकि स्नातक सदैव गुरु (बडा) है- सोई शंखने कहा है कि ब्राह्मणको आगे मार्गदे और कोई कहते है कि राजाको मार्गदे- सो ठीकनहीं क्योंकि गुरु और ज्येष्ठ ब्राह्मण राजासे अधिक है इससे उनको मार्गदे- यदि वृद्ध आदिकोंका मार्गमें परस्पर समागम होजायतो अत्यंत वृद्धकी अपेक्षासे वा विद्या आदिकी अपेक्षासे विशेषको देखले अर्थात जो विद्या आदिसे अधिकहो उसको मार्ग छोडदें ॥

भावार्थ- वृद्ध- भारवाला- राजा- स्नातक- स्त्री- रोगी- वर- गाडीवान्- इनको मार्गदेदे- और वृद्ध आदि राजाको और राजा स्नातकको मार्ग छोडदें ॥ ११७ ॥

इज्याध्ययनदानानिवैश्यस्यक्षत्रियस्यच ।
प्रतिग्रहोधिकोविप्रेयाजनाध्यापनेतथा ॥

पद- इज्याध्ययनदानानि १ वैश्यस्य ६ क्षत्रियस्य ६ च ऽ - प्रतिग्रहः १ अधिकः १ विप्रे ७ याजनाध्यापने १ तथाऽ- ॥

योजना- वैश्यस्य चपुनः क्षत्रियस्य इज्याध्ययनदानानि कर्माणि सन्ति विप्रे प्रतिग्रहः अधिकः अस्ति- तथा याजनाध्यापने अधिके स्तः इतिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ- वैश्य क्षत्रिय चकारसे ब्राह्मण और अनुलोमज- और प्रतिलोमज इनके यज्ञ अध्ययन दान साधारण कर्म हैं- और ब्राह्मणके प्रतिग्रह यज्ञ कराना और पढाना अधिक हैं-तथा इसके कहनेसे अन्यस्मृतियोंमें कही जीविका लेनी- सोई गौतमने कहा है कि अपने आप किये खेती और व्यापार और व्याज ये वैश्यके धर्म हैं और क्षत्रिय और वैश्यका पढना धर्मतो ब्राह्मणकी आज्ञासे होताहै अपनी इच्छासे नहीं क्यों कि गौतमका वचनहै आपत्तिके समय ब्राह्मण भिन्नसेभी ब्राह्मण विद्या पढे विद्याकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मणही गुरु होजाताहै ये छः कर्म ब्राह्मणके अनापत्तिमें है तिनमेंयज्ञ आदि तीन धर्मार्थ हैं और प्रतिग्रह आदि तीन जीविकार्थ हैं क्योंकि मनुका वचन है कि ब्राह्मणके छः कर्मोंमें-यज्ञ कराना पढाना और शुद्ध जातिका प्रतिग्रह ये तीन कर्म जीविकाहैं-इससे यज्ञ आदि अवश्य करने और प्रतिग्रह आदि आवश्यकतासे न करने-क्योंकि गौतमका वचन है कि द्विजातियोंके पढना यज्ञ दान ये तीन कर्म हैं और ब्राह्मणके ये तीन अधिकहैं कि पढाना यज्ञ करना और प्रतिग्रह इन छओंमें पहिले तीनोंमें नियमहै ॥

भावार्थ-यज्ञ पढना दान ये तीन कर्म वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मणके हैं और ब्राह्मणके ये तीन अधिकहै कि प्रतिग्रह यज्ञ कराना और पढाना ॥ ११८ ॥

प्रधानंक्षत्रियेकर्मप्रजानांपरिपालनम् ।
कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यंविशःस्मृतम् ॥

पद-प्रधानं१ क्षत्रिये७ कर्म १ प्रजानाम्६ परिपालनम् १ कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यम् १ विशः ६ स्मृतम् १ ॥

योजना-क्षत्रिये प्रधानं कर्म प्रजानां परिपालनम्-विशः प्रधान कर्म कुसीदकृषिवा-

धनहो वह न करे क्योंकि इस वचनसे [1] यह दोष सुना जाता है कि अल्प द्रव्य होनेपर जो द्विज सोमपान करता है वह सोमपीने परभी सोमपानके फलको प्राप्त नही होता यहभी काम्य कर्मके अभिप्रायसे है– नित्य कर्मको अवश्य कर्तव्य होनेसे उसमें नियम नही है–और जिसके घरमें एक वर्षके जीव ने योग्य अन्नहो वह सोम यज्ञसे पहिले करने योग्य कर्मोंको (अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास पशु चातुर्मास्य) करे क्योंकि ये सब सोमयज्ञके विकार (अंग) हैं ॥

भावार्थ–जिसके तीन वर्षके जीवनसे अधिक अन्नहो वही द्विज सोम पान करे– और जिसके यहां एक वर्षका अन्नहो वह सोमयज्ञसे प्रथम करने योग्य कर्मोंको करे ॥ १२४ ॥

प्रतिसंवत्सरंसोमःपशुःप्रत्ययनंतथा ।
कर्तव्याग्रयणेष्टिश्चचातुर्मास्यानिचैवहि ॥

पद–प्रतिसंवत्सरं २ सोमः १ पशुः १ प्रत्ययनं २ तथा ऽ– कर्तव्या १ आग्रायणेष्टिः १ च ऽ–चातुर्मास्यानि १ च ऽ–एव ऽ–हि ऽ– ॥

योजना–सोमः प्रतिसंवत्सरं कार्यः पशुः प्रत्ययनं तथा (प्रतिसंवत्सरं) कार्यः–च पुनः आग्रायणेष्टिः कर्तव्या चपुनः प्रतिसंवत्सरं चातुर्मास्यानि कर्तव्यानि ॥

तात्पर्यार्थ–इस प्रकार वेदोक्त काम्य कर्मोंको कहकर वेदोक्त नित्य कर्मोंको कहतेहैं सोमयज्ञ वर्ष २में करना और पशुयज्ञ दक्षिणायन और उत्तरायणमें या प्रतिवर्षमें करना– क्योंकि यह स्मृति है कि [2] पशुयज्ञ प्रतिवर्षमें या छः छः मासमें करे– और आग्रायण यज्ञ अन्नकी उत्पत्ति होने वर्ष२में करना– और चातुर्मास्य यज्ञ प्रतिवर्ष करना ॥

भावार्थ– सोमयज्ञ वर्षमें और पशुयज्ञ अयन२में वा प्रतिवर्ष करना– आग्रयण यज्ञ और चातुर्मास्य यज्ञ वर्ष२में करने ॥ १२५ ॥

एषामसंभवेकुर्यादिष्टिंवैश्वानरींद्विजः ।
हीनकल्पंनकुर्वीतसतिद्रव्येफलप्रदम् १२६

पद– एषां ६ असंभवे ७ कुर्यात् क्रि– इष्टिं २ वैश्वानरीं २ द्विजः १ हीनकल्पं २ न ऽ– कुर्वीत क्रि– सति ७ द्रव्ये ७ फलप्रदम् २ ॥

योजना– एषां असंभवे द्विजः वैश्वानरीं इष्टिं कुर्यात्– द्रव्ये सति हीनकल्पं न कुर्वीत फलप्रदं कर्मापि हीनकल्पं न कुर्वीत ॥

तात्पर्यार्थ– पूर्वोक्त इन सोम आदि यज्ञोंका किसी प्रकारसे असंभव होयतो उस समय द्विज वैश्वानरी (अग्निहोत्रआदि) यज्ञ करे– और जो यह हीनकल्प कहा है उसको द्रव्य होय तो न करे– और जो फलका दाता काम्यकर्म है उसकोभी हीनकल्प (न्यूनप्रकारसे) न करे ॥

भावार्थ– यदि किसी प्रकार ये सोमयज्ञ आदि न होसके तो द्विज वैश्वानरी यज्ञकरे और द्रव्यके होते इस हीनकल्प (प्रकार) को न करे– और फलके दाता कर्मकोभी हीनप्रकारसे न करे ॥ १२६ ॥

चांडालोजायतेयज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् ।
यज्ञार्थलब्धमददद्भासःकाकोपिवाभवेत् ॥

पद– चाण्डालः १ जायते क्रि– यज्ञकरणात् ५ शूद्रभिक्षितात् ५ यज्ञार्थ ऽ– द्रव्यं २ अददत् १ भासः १ काकः १ अपि ऽ– वा ऽ– भवेत् क्रि– ॥

[1] अतः स्वल्पतरे द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः। स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ।

[2] पशुना त्वयने संवत्सरे पशुं षट्सु वा मासेष्विति ।

योजना– शूद्रभिक्षितात् यज्ञकरणात् चांडालः जायते– यज्ञार्थं लब्धं धनं अददत् भासः वा काकः अपि भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ– यज्ञके लिये शूद्रसे धनकी याचना करके जो यज्ञ करै वह अन्यजन्ममें चांडाल होता है जो यज्ञके अर्थ मांगेहुये संपूर्ण धनको नही लगाता वह भास (शकुंत) वा काक सौवर्षतक होता है क्योंकि मनुने यह कहा है कि यज्ञके लिये धनको मांगकर सबको जो नही देता है वह ब्राह्मण सौवर्षतक भास वा काक होता है ॥

भावार्थ– शूद्रसे भिक्षा मांगकर यज्ञ करनेसे चांडाल होता है– यज्ञके लिये मांगेहुये संपूर्ण धनको जो नही लगाता है वह सौवर्षतक भास वा काक होता है ॥ १२७ ॥

कुशूलकुंभीधान्योवात्र्याहिकोश्वस्तनोपिवा जीवेद्वापिशिलोंछेनश्रेयानेषांपरःपरः १२८

पद– कुशूलकुंभीधान्यः १ वाऽ–त्र्याहिकः १ अश्वस्तनः १ अपिऽ– वाऽ– जीवेत् क्रि– वाऽ– अपिऽ– शिलोञ्छेन ३ श्रेयान् १ एषां ६ परः १ परः १ ॥

योजना– कुशूलकुंभीधान्यः वा अश्वस्तनः अपि स्यात्– वा शिलोञ्छेन जीवेत् एषां मध्ये परः परः श्रेयान् भवति ॥

तात्पर्यार्थ– कोठीभर वा टंटनीभर अन्नको रक्खै अपने कुटुंबके द्वादश १२ दिनतक भोजनके योग्य जिसके अन्नहो उसे कुशूल धान्य कहते हैं और छः६ दिनके खाने योग्य जिसके धान्यहो उसे कुंभी धान्य कहते हैं– और तीन दिनके भक्षण योग्य जिसके धान्यहो उसे त्र्याहिक धान्य कहते हैं– जिसके अग्रिमदिनके भक्षण योग्य अन्न नही उसे अश्वस्तन कहते हैं– इन कुशूल धान्य आदिके संचयका उपाय कहते है कि कुशूल धान्य आदि चारप्रकारका गृहस्थी शिल वा उञ्छसे जीवै व्रीहि आदिकी पडीहुई और खेतके स्वामीकी त्यागीहुई वालोंके संचयको शिल और त्यागेहुए एकर दानेके ग्रहणको उञ्छ कहते है– इन दोवृत्तियोंसे गृहस्थी कुशूल धान्य आदि रहै– इन चारों ब्राह्मणोंके मध्यमें परला २ अत्यंत श्रेष्ठ है– यह द्विजका प्रकरण होनेसेभी ब्राह्मणकेही लिये समझना. क्योंकि विद्या और शांतिका योग ब्राह्मणकोही है– सोई मनुने कहा है कि भूतोंके द्रोहका त्याग वा अल्पद्रोहसे जो जीविका उसको करके ब्राह्मण आपत्तिके विना जीवै इस वचनसे ब्राह्मणके प्रकरणमेंही मनुनें कहा है कि कुशूलधान्यक वा कुंभीधान्यक रहै यहभी अत्यंत संपन्न और संयमी जो यायावर उसके प्रति कहा है ब्राह्मणमात्रके अभिप्रायसे नही ब्राह्मणमात्रके प्रति मानोगेतो इस वचनके संग विरोध होगाकी तीन वर्षसे अधिक जिसके अन्नहो वह द्विज सोमपान करै–ऐसेही दोप्रकारके गृहस्थी तहांर कहे है सोई देवलने कहा है कि यायावर और शालीन इन दोप्रकारका गृहस्थी है– दोनोंमें याजन अध्यापन प्रतिग्रह धनसंचय इनके त्यागसे यायावर श्रेष्ठ है– छः कर्मोका

१ यज्ञार्थमर्थंभिक्षित्वा यः सर्वं न प्रयच्छति । स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतंसमाः ।

लक्षण मनुने यह केहाहै कि धर्मध्वजी सदा लोभी कपटी दंभी हिंसक सर्वाभिसंधि (झूठासचको धोखादे) शठ(सचसे टेढा)-इनके संग संसर्गके निषेधसे आप ऐसानहो ॥

भावार्थ-राजा-अंतेवासी-यज्ञकराने योग्य इनसे धनकी इच्छा क्षुधासे दुखी होनेपर करे-दंभी हेतुक पाखंडी और बकवृत्तियोंको वर्ज दे-अर्थात् उनसे धन नले॥१३०॥

शुक्लांवरधरोनीचकेशश्मश्रुनखःशुचिः ।
नभार्यादर्शनेश्नीयान्नैकवासानसंस्थितः ॥

पद-शुक्लाम्बरधरः १ नीचकेशश्मश्रुनखः १ शुचिः १ न॰-भार्यादर्शने ७ अश्नीयात् क्रि-न॰-एकवासाः१न॰- संस्थितः१॥

योजना- शुक्लाम्बरधरः नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः स्यात्-भार्यादर्शने एकवासाः संस्थितः न अश्नीयात् ॥

तात्पर्यार्थ-शुक्ल (धुलेहुए) वस्त्रोंको धारण करै और केश श्मश्रु (डाढी) नख इनको कटाए रक्खे-बाहिर और भीतरसे शुद्ध रहै और स्नान चंदन धूप माला आदिसे सुगंधित रहै- सोई गौतमने केहाहै-स्नातक नित्य शुद्ध-सुगंधिमान् और स्नान में शीलवान् रहै-सुगंधिरहनेकी विधिसेही गंधसे हीन मालाका निषेधहै सोई गोभिलने कहाहैकि सुवर्ण और रत्नकी मालाको छोडकर गंधसे हीन मालाको न धारै-स्नातकको सदैव इस प्रकार रहनाभी धनहोनेपर समझना क्योंकि यह स्मृति-का वचनहै कि जीर्ण और मलैवस्त्रोंको धन होयतो न पहरे और भार्याके आगे देखतेहुए वीर्यसे हीन संतानकी उत्पत्तिके भयसे भोजन न करै सोई श्रुति हैकि जायाके समीप भोजन नकरै क्योंकि करै तो वीर्यसे हीन संतान होतीहै इससे भार्याके संग भोजन तो सर्वथा निषिद्धहै और एकवस्त्र धारण किये और खडा होकर भोजन करै ॥

भावार्थ-शुक्लवस्त्रोंको धारै नख केश श्मश्रु इनको कटाये रक्खै शुद्ध रहै और भार्याके देखते हुए और एकवस्त्र धारण किये और खडा होकर भोजन न करै ॥ १३१ ॥

नसंशयंप्रपद्येतनाकस्मादप्रियंवदेत् ।
नाहितंनानृतंचैवनस्तेन स्यान्नवार्धुषी१३२

पद-न॰-संशयं २ प्रपद्येत क्रि-न॰-अकस्मात्॰-अप्रियं २ वदेत् क्रि-न॰-अहितं २ न॰- अनृतं २ च॰- एव॰- न॰- स्तेनः १ स्यात् क्रि-न॰- वार्धुषी १ ॥

योजना-संशयं न प्रपद्येत-अकस्मात् अप्रियं अहितं अनृतं नवदेत्-स्तेनः वार्धुषी न स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जिसमें प्राणोंकी विपत्तिका संशय हो उस कर्मको कदाचित् नकरे जैसे सिंह चौर आदि जिस देशमें हो वहां गमन और कारणके विना अत्यंत कठोर और उद्वेग करनेवाले अप्रिय वचनको कदाचित् भी नकहै और अहित अनृत असभ्य भयानक प्रियवचनकोभी नकहै-यहभी हांसीके विना समझना क्योंकि यह स्मृति है कि कुटिलताको छोडकर गुरुके साथभी हास्य करना और चौर नहो अर्थात् विना दिये पराई वस्तुको ग्रहण न करै-और वार्धुषी नहो अर्थात् निषिद्धवृद्धि (ब्याज)से जीविका नकरै ॥

भावार्थ-जिसमें प्राणोंका संदेहहो उस कर्मको नकरै और अप्रिय अहित अनृत वचनको विना विचारे न कहै चोरी और वृद्धि (सूद)से आजीविका नकरै ॥१३२॥

दाक्षयणीब्रह्मसूत्रीवेणुमान्सकमंडलुः ।
कुर्यात्प्रदक्षिणंदेवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् १३३

पद-दाक्षायणी-ब्रह्मसूत्री१- वेणुमान् १ सकमण्डलुः१ कुर्यात् क्रि- प्रदक्षिणं२ देव मृद्गोविप्रवनस्पतीन् २ ॥

योजना-दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान् सकमण्डलुः स्यात्-देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् प्रदक्षिणीकुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-दाक्षायण (सुवर्ण)को जो धारण करै उसे दाक्षायणी कहतेहैं और ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) जो धारै उसे ब्रह्मसूत्री कहतेहैं अर्थात् स्नातक सुवर्ण और यज्ञोपवीतको धारण करै-और वैणव (बांसकी) यष्टि (लाठी) और कमंडलु इनको धारण करै- यहां ब्रह्मचारि प्रकरणमें कहे हुये यज्ञोपवीतका पुनः कहना दूसरे यज्ञोपवीतकी प्राप्तिके लियेहै सोई वसिष्ठने कहाहै कि स्नातकोंके अंतर्वस्त्र और उत्तर वस्त्र दो वस्त्र- और दो यज्ञोपवीत यष्टि और जलसहित कलंडलु होतेहैं-यद्यपि यहां दाक्षायणी पदसे सामान्य रीतिसे सुवर्णका धारण कहा है तथापि कुंडलका धारणही करना क्योंकि मनुकी स्मृति है कि बांसकी यष्टि-जलसहित कमंडलु-यज्ञोपवीत-वेद-और सुंदरसुवर्णके कुंडल-इनको स्नातक धारण करै-और देवताकी पूजा-तीर्थकी मिट्टी-गौ-ब्राह्मण-और पीपल आदि वनस्पति इनको दक्षिणभागमें करके गमन करै इसी प्रकार चैतुप्पथकोभी समझना-क्योंकि मनुका वचन है कि- मिट्टी-गौ-देवता-ब्राह्मण- घृत-मधु- चतुप्पथ (चौराहा)-और प्रसिद्ध २ वनस्पति (वृक्ष) इनको प्रदक्षिण भागमें करके गमन करै ॥

भावार्थ- सुवर्ण- जनेऊ- बांसकी यष्टि- कमंडलु- इनको धारणकरै- और देव- मिट्टी- गौ- ब्राह्मण- वनस्पति- इनको दक्षिणभागमें करके गमन करै ॥ १३३ ॥

नतुमेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठांबुभस्मसु ।
नप्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्यांबुस्त्रीद्विजन्मनः ॥

पद- न॰- तु॰- मेहेत् क्रि- नदीछायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु७ - न॰ -प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः २ ॥

योजना-नदीछायावर्त्मगोष्ठांबुभस्मसु अग्न्यर्कगोसोमसंध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः प्रति नतु मेहेत्-(मूत्र पुरीषं न कुर्यात्)

तात्पर्यार्थ- नदी- वृक्षकी छाया- मार्ग- गोशाला- जल- भस्म- इनमें मूत्र और मलका त्याग न करै- इसीप्रकार श्मशान आदिमेंभी न करै सोई शंखने कहा हैकि- गोमय- जुता और बोया खेत- घास- चिता- श्मशान- मार्ग- खलियान- पर्वत- नदीका तट-इनमें मूत्रपुरीष न करै- क्योंकि ये सब भूतोंके जीवनके आधार हैं-और तैसेही अग्नि-सूर्य-गौ-चंद्रमा -संध्या-जल-स्त्री- ब्राह्मण-इनके सन्मुख और इनको देखताहुआ मूत्र और पुरीष नकरै- सोई गौतमने

१ स्नातकानां द्वितीय स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् । यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमंडलुः ।

२ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्-यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ।

१ मृदं गां देवतां विप्रंघृतं मधु चतुष्पथम्-प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ।

२ न गोमयकृष्टोप्तशाद्वलचितिश्मशानवर्त्मखल पर्वतपुलिनेषु मेहेत् भूताधारत्वात् ।

कहा है कि– वायु– अग्नि– ब्राह्मण– सूर्य– जल– देवता– गौ– इनके सन्मुख और देखता हुआ मूत्र– मल– और अपवित्र वस्तु न गेरै और देवताके सन्मुख चरण न फैलावै– इन पूर्वोक्त देशोंको छोडकर और भूमिको यज्ञके अयोग्यतृणोंसे ढककर मूत्र पुरीष करै–सोई वसिष्ठने कहा है कि शिरके ऊपर वस्त्र लपेटकर और यज्ञके अयोग्य तृणोंसे भूमिको ढककर मूत्र पुरीष करै ॥

भावार्थ– नदी– छाया– मार्ग– गोष्ठ– जल– भस्म– इनमें और अग्नि–सूर्य– गौ– चंद्रमा– संध्या– जल– स्त्री– ब्राह्मण– इनके संमुख– और इनको देखता हुआ मलमूत्र- का त्याग न करै ॥ १३४ ॥

नेक्षेतार्कंननग्नांस्त्रींनचसंसृष्टमैथुनाम् ।
नचमूत्रंपुरीषंवानाशुचीराहुतारकाः १३५॥

पद– नऽ– ईक्षेत क्रि– अर्कं २ नऽ– नग्नां २ स्त्रीं २ नऽ– चऽ – संसृष्टमैथुनाम् २ नऽ– चऽ – मूत्रपुरीषं २ वाऽ – नऽ– अशुचिः १ – राहुतारकाः २ ॥

योजना– अर्कं– नग्नां संसृष्टमैथुनां स्त्रीं चपुनः मूत्रं वा पुरीषं अशुचिः सन् राहु- तारकाः न ईक्षेत (पश्येत्) ॥

तात्पर्यार्थ– यद्यपि सूर्यको न देखै यह सामान्यसे सूर्यके दर्शनका निषेध कहा है तथापि इस मनुके वचनानुसार उदय और अस्त राहुग्रहण– जलमें प्रतिबिंब और मध्यान्हके समयही सूर्यका दर्शन निषिद्ध है सर्वदा नहीं– और इस आ- श्वलायनके वचनसे भोगको छोडकर नग्नस्त्रीको न देखै– और भोगके अंतमें अनग्नभी स्त्रीको और चकारसे भोजन करतीहुयीको न देखै– सोई मनुने कहा है कि भार्याकेसंग भोजन न करै और न भोजन करतीहुयी भार्याको देखै और छींकती– जंभाई लेती–सुखसे बैठीहुई– नेत्रोंमें अंजन लगाती–उबटना करती–नंगी– और बालक जनतीहुई स्त्रीको कल्याणका अभिलाषी द्विजोंमें उत्तम न देखै– और मूत्र और मलको और अशुद्धिके समय राहु और तारागणोंको न देखै– और चकारसे इस वचनके अनुसार जलमें अपने प्रतिबिम्बको न देखै ॥

भावार्थ– सूर्य– नग्नस्त्री–मैथुनके अनंतर स्त्री– मूत्र– मल– इनको और अशुद्धिके समय राहु और तारागणोंको न देखै॥१३५॥

अयंमेवज्रइत्येवंसर्वंमंत्रमुदीरयेत् ।
वर्षत्यप्रावृतोगच्छेत्स्वपेत्प्रत्यक्शिरानच ॥

पद– अयंमेवज्रः १ इतिऽ – एवंऽ – सर्वं २ मंत्रं २ उदीरयेत् क्रि– वर्षति ७ अप्रावृतः १ गच्छेत् क्रि– स्वपेत् क्रि– प्रत्यक्शिराः १ नऽ – चऽ– ॥

योजना– वर्षति सति अयंमेवज्र इत्येवं सर्वं मंत्रं उदीरयेत्– अप्रावृतः गच्छेत्– चपुनः प्रत्यक्शिराः न स्वपेत् ॥

---

१ नवाय्वग्निविप्रमादित्यापो देवतागाश्च प्रतिपश्यन्वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येन्न देवताः प्रतिपादौ प्रसारयेत् एतद्देशव्यतिरेकेण भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात् ।

२ परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात् ।

३ नेक्षेतोद्यंतमादित्यं नास्तं यांतं कदाचन–नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ।

१ अन्यत्र मैथुनात् ।

२ नाश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् । क्षुवतीं जृंभमाणां च नचासीनां यथासुखम् । नांजयंतीं स्वके नेत्रे नचाभ्यक्तामनावृताम् । न पश्येत्प्रसवंतीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ।

३ न चोदके निरीक्षेत स्वरूपमिति धारणा ।

तात्पर्यार्थ- वर्षतेहुये अयमेवज्रः यह वज्र मेरे पापको नष्टकरो इस सबै-मंत्रको पढ़े और वस्त्रोंके विना पहिन गमन करे- क्योंकि यह निषेध है कि वर्षतेहुये गमन न करे- और पश्चिमको शिरकिये न सोवे- और चकारसे नग्न और एकाकी शून्यघरमें न सोवै क्योंकि मनुका यह निषेध है कि नंगा और शून्यघरमें अकेला न सोवै ॥

भावार्थ- वर्षतेहुये अयमेवज्र इसमंत्रको पढे और वस्त्रोंको न पहिन कर गमन करे और पश्चिमको शिरकिये न सोवे ॥ १३६ ॥

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सुननिक्षिपेत्।
पादौप्रतापयेन्नाग्नौनचैनमभिलंघयेत् १३७

पद- ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांसि २ अप्सु ७ नऽ- निक्षिपेत् क्रि- पादौ २ प्रतापयेत् क्रि- नऽ- अग्नौ ७ नऽ- चऽ- एनं२ अभिलंघयेत् क्रि- ॥

योजना- अप्सु ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांसि न निक्षिपेत्- अग्नौ पादौ न प्रतापयेत चपुनः एनं न अभिलंघयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- ष्ठीवन (थूक वा वमन) - रुधिर- मल- मूत्र- वीर्य इनको और इस शंखवर्चनसे तुष आदिको जलमें न फेंके कि तुष... , मल भस्म हाड थूक नख लोम इनको जलमें न फेंके- और चरण और हाथसे जलको न ताडे- और अग्निमें चरण न तपावे और न अग्निको लंघे और चकार थूक आदिको अग्निमें न फेंके और न मुखसे अग्निको धमे- सोई मनुने लिखा है कि मुखसे अ-ग्निको न धमे नग्नस्त्रीको न देखे अग्निमें अपवित्रवस्तु न फेंके न चरण तपावे अग्निको अपने नीचे न रक्खे न लंघे- और न पैरके नीचे रक्खे और ऐसा कर्म करे जिसमें प्राणान्त कष्टहो ॥

भावार्थ- थूक रुधिर मल मूत्र वीर्य इनको जलमें न फेंके- और अग्निमें चरण न तपावे और नलंघे ॥ १३७ ॥

जलंपिबेन्नांजलिनानशयानंप्रबोधयेत् ।
नाक्षैःक्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वानसंविशेत् ॥

पद- जलं २ पिबेत् क्रि- नऽ -अंजलिना ३ नऽ- शयान २ प्रबोधयेत् क्रि- नऽ - अक्षैः ३ क्रीडेत् क्रि-नऽ-धर्मघ्नैः ३ व्याधितैः ३ वाऽ- नऽ- संविशेत् क्रि- ॥

योजना- अंजलिना जलं न पिबेत्- शयानं न प्रबोधयेत् अक्षैः धर्मघ्नैः न क्रीडेत् व्याधितैः सह न संविशेत्- (नशयीत) ॥

तात्पर्यार्थ- मिलेहुये हाथोंसे जल न पीवे- और विद्या आदिसे जो अपनेसे अधिकहो उसे सोतेसे न उठावे क्योंकि यह विशेष वचन है कि अपनेसे श्रेष्ठको न जगावे-अक्ष (फांसे) और धर्मके नाशक पशुलंभन आदिसे क्रीडा न करे- और ज्वर आदिसे युक्त रोगियोंके संग एकशय्यापर न सोवे ॥

भावार्थ- अंजलिसे जल न पीवे सोतेसे न जगावे फांसोंसे और धर्मके नाशकोंके संग न खेले और रोगियोंके संग न सोवे ॥ १३८ ॥

१ अयमेवज्रः पाप्मानमपहन्तु ।

२ न प्रधावेच्च वर्षति ।

३ नच नग्नः शयीत नैकः स्वप्याच्छून्यगृहे ।

४ तुषकेशपुरीषभस्मास्थिश्लेष्मनखलोमान्यप्सु न निक्षिपेत् पादेन पाणिना वा जलं नाभिहन्यात् ।

१ नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नांनेक्षेतचस्त्रियम् । नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौप्रतापयेत् । अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत्-नचैनं पादतः कुर्यान्न प्राणा बाधमाचरेत् ।

२ श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।

विरुद्धंवर्जयेत्कर्मप्रेतधूमंनदीतरम् ।
केशभस्मतुषांगारकपालेषुचसंस्थितिम् ॥

पद- विरुद्धं २ वर्जयेत् क्रि- कर्म २ प्रेतधूमं २ नदीतरं २ केशभस्मतुषांगारकपालेषु ७ च ऽ- संस्थितिं २ ॥

योजना- विरुद्धं कर्म प्रेतधूमं चपुनः केशभस्मतुषांगारकपालेषु संस्थितिं वर्जयेत् ॥

ता० भा० - देश ग्राम कुल आचारके विरुद्ध कर्म प्रेतका धूम भुजाओंसे नदीको तरना और केश भस्म तुष अंगार कपाल और चकारसे अस्थि कपाल और अपवित्र-स्थान इनमें स्थिति इनको वर्जदे ॥ १३९ ॥

नाचक्षीतधयंतींगांनाद्वारेणविशेत्क्वचित् ।
नराज्ञःप्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः

पद- नऽ- आचक्षीत क्रि- धयंतीं २ नऽ- अद्वारेण ३ विशेत् क्रि- क्वचित्ऽ- नऽ- राज्ञः ६ प्रतिगृह्णीयात् क्रि- लुब्धस्य ६ उच्छास्त्रवर्तिनः ६ ॥

योजना- परस्मै धयंतीं गां न आचक्षीत- अद्वारेण क्वचित् न विशेत् लुब्धस्य राज्ञः उच्छास्त्रवर्तिनः न प्रतिगृह्णीयात् ॥

ता० भा० - परके दूध आदि पीवती गौको परको न कहै- किसीभी नगर ग्राम वा मंदिरमें विनाद्वार न घुसै- और कृपण और शास्त्रकी मर्यादाके अवलंघन करनेवाले राजासे प्रतिग्रह नले ॥ १४० ॥

प्रतिग्रहेसूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः ।
दुष्टादशगुणंपूर्वात्पूर्वादेतेयथाक्रमम् १४१

पद- प्रतिग्रहे ७ सूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः १ दुष्टाः १ दशगुणं २ पूर्वात् ५ पूर्वात् ५ एते १ यथाक्रमंऽ- ॥

योजना- सूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः एते पूर्वात् पूर्वात् यथाक्रमं प्रतिग्रहे दशगुणं दुष्टा भवंति ॥

ता० भा० - सूनि (प्राणिहिंसक) चक्री (तेली) ध्वजी (मदिराबेचनेवाला) वेश्या (रंडी) और राजा ये पांचों क्रमसे पूर्व२सें दशगुणे प्रतिग्रहमें दुष्ट हैं अर्थात् पूर्व२ सें परला २ दुष्ट है ॥ १४१ ॥

अध्यायानामुपाकर्मश्रावण्यांश्रवणेनवा ।
हस्तेनौषधिभावेवापंचम्यांश्रावणस्यतु ॥

पद- अध्यायानां ६ उपाकर्म १ श्रावण्यां ७ श्रवणेन ३ वाऽ- हस्तेन ३ ओषधिभावे ७ वाऽ- पंचम्यां ७ श्रावणस्य ६ तुऽ- ॥

योजना- श्रावण्यां वा श्रवणेन युक्ते दिने हस्तेन युक्तायां वा श्रावणस्य पंचम्यां वा ओषधिभावे अध्यायानां उपाकर्म कर्तव्यम् ॥

ता०- अब अध्ययनके धर्मोंको कहते हैं-जो पढेजांय उनें अध्याय (वेद) कहते हैं उनका उपाकर्म- उपक्रम (प्रारंभ) ओषधियोंके जमनेपर श्रावणमासकी पूर्णिमाको वा श्रवणनक्षत्रयुक्त दिनमें वा हस्त नक्षत्र युक्त पंचमीको अपने गृह्यसूत्रमें कही विधिसे करै और जिसवर्ष श्रावणमासमें ओषधियोंकी उत्पत्ति न हों तब भाद्रपदमासमें श्रवण नक्षत्रमें करै- फिर साढेचारमासतक वेदोंको पढै- सोई मनु ने लिखा है कि श्रावणी श्रावण वा भाद्रपदकी पूर्णिमाको ब्राह्मण विधिसें उपाकर्म करके सावधानीसे साढेपांचमासतक वेदोंको पढै ॥

भावार्थ- श्रावणमासकी पूर्णिमा वा श्रवण नक्षत्र युक्त दिनमें वा हस्तनक्षत्र युक्त पंचमीको ओषधियोंके जमनेपर उपाकर्म करै ॥ १४२ ॥

पौषमासस्यरोहिण्यामष्टकायामथापिवा ।
जलांतेछंदसांकुर्यादुत्सर्गंविधिवद्बहिः १४३

१ श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा उपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्छंदांस्यधीयीत मासान्विप्रोर्द्धपंचमान् ।

पद- पौषमासस्य ६ रोहिण्यां ७ अष्टकायां ७ अथऽ- अपिऽ- वाऽ- जलांते ७ छंदसां ६ कुर्यात् क्रि- उत्सर्गं २ विधिवत्ऽ- बहिःऽ-

योजना- पौषमासस्य रोहिण्यां अथवा अष्टकायां जलांते छंदसां उत्सर्गं ग्रामाद्बहिः विधिवत् कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब उत्सर्ग संस्कारके समयको कहतेहैं-पौषमासकी रोहिणी वा अष्टकाको ग्रामसे बाहिर जलके समीप अपने गृह्यसूत्रमें कही विधिसे वेदोंका उत्सर्ग करै और जब भाद्रपद मासमें उपाकर्म हो तब माघशुक्लके प्रथम दिनमें उत्सर्ग करै सोई मनुने कहाहैकि पौषमासमें वा माघमासमें शुक्लपक्षके प्रथमदिनके पूर्वाह्नमें ग्रामसे बाहिर वेदोंका उत्सर्ग करै उसके अनंतर पक्षिणी (दो दिन एक रात्रि) वा अहोरात्र अनध्याय करके शुक्लपक्षमें वेद और कृष्णपक्षमें वेदाङ्गोंको पढै-सोई मनुने कहा है कि शास्त्रके अनुसार ग्रामसे बाहिर वेदोंका उत्सर्ग करके परिक्षणी वा अहोरात्र अनध्याय करै-इसके अनंत शुक्लपक्षमें वेद और कृष्णपक्षमें सब वेदांगोंको पढै ॥

भावार्थ-पौषमासकी रोहिणी वा अष्टकाको जलके समीप ग्रामसे बाहिर वेदोंका उत्सर्ग करै ॥ १४३ ॥

त्र्यहंप्रेतेष्वनध्यायःशिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु ।
उपाकर्मणिचोत्सर्गेस्वशाखाश्रोत्रियेतथा ॥

पद-त्र्यहं २ प्रेतेषु ७ अनध्यायः १ शिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु ७ उपाकर्मणि ७ चऽ- उत्सर्गे ७ स्वशाखाश्रोत्रिये ७ तथाऽ- ॥

योजना- शिष्यर्त्विग्गुरुबंधषु प्रेतेषु- उपाकर्मणि-चपुनः उत्सर्गे-तथा-स्वशाखाश्रोत्रिये मृते सति त्र्यहं अनध्यायः कर्तव्यः ॥

तात्पर्यार्थ- अब अनध्यायोंको कहतेहैं-उक्त प्रकारसे वेदपाठियोंके शिष्य ऋत्विग् गुरु और बंधु इनके मरनेपर और उपाकर्म और उत्सर्ग कर्म करनेके अनंतर और अपनी शाखा पढनेवाले वेदपाठीके मरनेपर तीन दिन अनध्याय करना और उत्सर्गमें मनुनें जो पक्षिणी-और अहोरात्र अनध्याय कहाहै उसके संग इसका विकल्पहै॥

भावार्थ-शिष्य-ऋत्विग्-गुरु-बंधु अपनी शाखाका वेदपाठी इनके मरने और उपाकर्म उत्सर्गमें तीन दिन अनध्याय करना॥ १४४॥

संध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने ।
समाप्यवेदंद्युनिशमारण्यकमधीत्यच १४५

पद-संध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने ७ समाप्यऽ- वेदं २ द्युनिशंऽ- आरण्यकं २ अधीत्यऽ-चऽ- ॥

योजना-संध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने वेदं समाप्य चपुनः आरण्यकं अधीत्य द्युनिशं अनध्यायो भवति ॥

ता॰ भा॰-संध्याके समय मेघके गर्जनेमें आकाशमें उत्पात शब्द भूमिका चलना-उल्काका पतन मंत्र वा ब्राह्मणकी समाप्ति और आरण्यकका अध्ययन इनमें अहोरात्र अनध्याय होताहै ॥ १४५ ॥

पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांराहुसूतके ।
ऋतुसंधिषुभुक्त्वावाश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच ॥

पद-पंचदश्यां७ चतुर्दश्यां ७ अष्टम्यां ७ राहुसूतके ७ ऋतुसंधिषु ७ भुक्त्वाऽ- वाऽ- श्राद्धिकं२- प्रतिगृह्यऽ- चऽ- ॥

१ पौषे तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं बुधः । माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ।

२ यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः । विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्वाप्येकमहर्निशं । अतऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् । वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ।

योजना–पंचदश्यां चतुर्दश्यां अष्टम्यां राहुसूतके द्युनिशं अनध्यायो भवति ऋतुसंधिषु श्राद्धिकं भुक्त्वा वा प्रतिगृह्य द्युनिशं अनध्यायो भवति ॥

तात्पर्यार्थ– आमावास्या पूर्णिमा चतुर्दशी अष्टमी और चंद्रसूर्यका ग्रहण इनमें अहोरात्र अनध्याय होताहै जो यह वचन[1] है कि राजा और राहुसूतकमें तीन दिन वेदको नपढै वह ग्रस्तास्तके विषयमें जानना-और ऋतुकी संधिकी प्रतिपदाको और श्राद्धके भोजन और प्रतिग्रहमें अहोरात्र अनध्याय होताहै–यहभी एकोद्दिष्ट श्राद्धसे भिन्नमें समझना–क्योंकि यह स्मृति[2] है कि बुद्धिमान् मनुष्य एकोदिष्टके निमंत्रणको ग्रहण करके तीन दिन वेद न पढै ॥

भावार्थ– अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी अष्टमी, ग्रहण, ऋतुकी संधि, श्राद्धका भोजन और प्रतिग्रह लेकर अहोरात्र भोजन करै ॥ १४६ ॥

पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः ।
कृतेंतरेत्वहोरात्रंशक्रपातेतथोच्छ्रये १४७॥

पद–पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः ३ कृते ७ अंतरे ७ तु ऽ– अहोरात्रं २ शक्रपाते ७– तथा ऽ– उच्छ्रये ७ ॥

योजना–पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः अंतरे कृते सति शक्रपाते तथा उच्छ्रये अहोरात्रं अनध्यायः भवति– ॥

तात्पर्यार्थ–यदि पढनेवालोंके बीचमें पशु मेंडक नकुल कुत्ता सर्प बिलाव मूसा निकलजाय और इंद्रकी ध्वजाके बांधने और उतारनेके दिन अहोरात्र अनध्याय होताहै यद्यपि द्युनिशं इस पदसे अहोरात्रका प्रकरण था फिर अहोरात्रपदका ग्रहण इस लिये है कि संध्याका गर्जन भूकम्प उल्काका पात इनमें जो अनध्याय है वह अकालिकहै– यही इस गौतम वचनमें[1] लिखाहै कि अनध्यायके निमित्त. कालसे परले दिन इतने वही काल आवै उसे अकाल कहतेहैं और उसका अनध्याय अकालिक कहाताहै यहभी प्रातःकालकी संध्याके गर्जनेमें समझना रात्रिकी संध्याके गर्जनेमें तो रात्रिकाही अनध्याय होताहै क्योंकि हारीत का वचनहै[2] कि सायंकालकी संध्याके गर्जनेमें रात्रि और प्रातःकालकी संध्याके गर्जनेमें अहोरात्र अनध्याय होताहै–और जो गौतमने[3] यह कहाहै कि श्वान–नौला–सर्प–मेंडक–मार्जार–इनके बीचको निकसनेमें तीन दिन उपवास, परदेशमें गमन करै–वह प्रथम पढनेमें समझना ॥

भावार्थ–पशु–मेंडक –नौला–कुत्ता–सर्प–मार्जार– मूसा–ये बीचको निकसजांय–और इंद्रकी ध्वजाके बांधने– और उतारनेमें अहोरात्र अनध्याय होताहै ॥ १४७ ॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ।
अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके ॥

पद–श्वक्रोष्टगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ७ अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके ७ ॥

योजना– श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके–तत्कालं अनध्यायः भवति ॥

१ त्र्यहं न कीर्त्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ।
२ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनं त्र्यहमकीर्त्तयेद्ब्रह्म ।

१ आकालिकानिर्घातभूकम्पराहुदर्शनोल्काः ।
२ सायं स्तनिते रात्रिः प्रातः स्तनितेऽहोरात्रं ।
३ श्वनकुलसर्पमण्डूकमार्जाराणा त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ।

पद-देवर्त्विग्स्नातकाचार्यराज्ञां६ छायां२ परस्त्रियाः ६ नऽ- आक्रामेत् क्रि- रक्त-विण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि २ चऽ- ॥

योजना-देवर्त्विग्स्नातकाचार्यराज्ञां परस्त्रियाः छायां चपुनः रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि न आक्रामेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इसप्रकार अनध्यायोंको कहकर पूर्वोक्त स्नातकके वृतोंको फेर कहतेहैं-देवता ऋत्विज स्नातक आचार्य राजा और पराई स्त्री इनकी छायाको जानकर न लंघे और न बैठे- सोई मनुने कहाहै कि देवता गुरु स्नातक राजा आचार्य और नकुलके समानहै वर्ण जिसका ऐसा गौ अश्व आदि पशु इनकी छायाको जानकर न लंघे और रुधिर मल मूत्र थूक मल स्नान वमन इनकोभी न लंघे ॥

भावार्थ-देवता ऋत्विज स्नातक आचार्य राजा पराईस्त्री रुधिर मल मूत्र इनकी छायाको न लंघे ॥ १५२ ॥

विप्राहिक्षत्रियात्मानोनावज्ञेयाःकदाचन । आमृत्योः श्रियमाकांक्षेन्नकंचिन्मर्मणिस्पृशेत् ॥ १५३ ॥

पद-विप्राहिक्षत्रियात्मानः १ नऽ- अवज्ञेयाः १ कदाचनऽ- आमृत्योःऽ-श्रियं २ आकांक्षेत् क्रि- नऽ- कंचित्ऽ- मर्मणि७ स्पृशेत् क्रि- ॥

योजना-विप्राहिक्षत्रियात्मानः न कदाचित् अवज्ञेयाः आमृत्योः श्रियं आकांक्षेत् कंचित् मर्माणि न स्पृशेत् ॥

ता० भा०- बहुश्रुत ब्राह्मण सर्प राजा और अपना आत्मा इनका तिरस्कार कदाचित्भी न करै और जबतक जीवै तबतक लक्ष्मीकी इच्छा करै- और किसीके मर्म और दुष्टचरित्रका प्रकाश न करै ॥ १५३ ॥

दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसिसमुत्सृजेत् । श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यक्नित्यमाचारमाचरेत्

पद-दूरात्ऽ- उच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि२ समुत्सृजेत् क्रि- श्रुतिस्मृत्युदितं २ सम्यक्ऽ- नित्यं२ आचारं २ आचरेत् क्रि-॥

योजना- उच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि दूरात् समुत्सृजेत् श्रुतिस्मृत्युदितं आचारं सम्यक् नित्यं आचरेत् ॥

ता० भा०- उच्छिष्ट मल मूत्र चरणोंका-जल इनको घरसे दूरडाले- वेद और धर्मशास्त्रमें कहेहुए आचारको भलीप्रकार नित्य करै ॥ १५४ ॥

गोब्राह्मणानलान्नानिनोच्छिष्टोनपदा स्पृशेत् । ननिंदाताडनेकुर्यात्पुत्रंशिष्यं चताडयेत् ॥ १५५ ॥

पद- गोब्राह्मणानलान्नानि २ नऽ- उच्छिष्टः १ नऽ- पदा ३ स्पृशेत् क्रि- नऽ- निन्दाताडने २ कुर्यात् क्रि- पुत्रं २ शिष्यं २ चऽ- ताडयेत् क्रि- ॥

योजना- उच्छिष्टः सन् गोब्राह्मणानलान्नानि न स्पृशेत् च पदा न स्पृशेत्- निंदाताडने न कुर्यात् चपुनः पुत्रं शिष्यं ताडयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- गौ ब्राह्मण अग्नि और भोजनका अन्न और विशेषकर पक्वान्न इनको अशुद्धहुआ स्पर्श न करै- और बिना उच्छिष्टभी चरणसें स्पर्श न करै- यदि प्रमादसे इनका स्पर्श करै तो आचमनके पीछे मनुके कहेहुए इस प्रायश्चित्तको

१ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोरपि । नाक्रामेत् कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ।

१ स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत्- गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ।

करै- कि अशुद्ध मनुष्य इनका स्पर्श करके जलोंसे प्राणायाम और गात्रोंका स्पर्श करके हस्ततलसे नाभिका स्पर्श करै- इसीप्रकार हस्ततलसे प्राणोंकाभी स्पर्श करै और किसीकीभी निंदा और ताडना न करै यहभी उसके लिये है जिसनें अपराध न कियाहो- क्योंकि यह वचन है कि युद्धको न करतेहुए ब्राह्मणके आज्ञानसें रुधिर निकासकर मनुष्य मरनेके अनंतर महान् दुःखको प्राप्त होता है 'पुत्र और शिष्य और चकारसे दास इनकी तो शिक्षाके लिये ताडना करै- और ताडनाभी रज्जु आदिसे उत्तम अंगको छोडकर करनी- क्योंकि यह गौतमका वचन है कि शिष्यकी शिक्षा उसप्रकार करै जिससे मरण नहो और जो शिष्य पीडाको न सह सकै उसकी ताडना रज्जु वांस विदल (वकलआदि) कोमलोंसे करै- अन्यसे करै तो राजा उसे दंडदे- और यहभी वचन है कि शरीरकी पीठपर ताडै और मुख आदि उत्तम अंगोंमें कदाचित् न ताडै ॥

भावार्थ- गौ ब्राह्मण अग्नि भोजनका अन्न उच्छिष्ट हुआ और चरणसे इनका स्पर्श न करै- किसीकी निंदा और ताडना न करै पुत्र और शिष्यकी ताडना करै१५५॥

कर्मणामनसावाचायत्नाद्धर्मंसमाचरेत् ।
अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्म्यमप्याचरेन्नतु ॥

पद- कर्मणा ३ मनसा ३ वाचा ३ यत्नात्५ धर्मं २ समाचरेत् क्रि- अस्वर्ग्यं २ लोकविद्विष्टं २ धर्म्यं २ अपिऽ- आचरेत् क्रि- नऽ -तुऽ- ॥

१ अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृग ततः । दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याऽप्राज्ञतया नरः ।

२ शिष्यशिष्टिरवधेन अशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यते ।

३ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन ।

योजना- कर्मणा मनसा वाचा यत्नात् धर्मं समाचरेत्- तुपुनः लोकविद्विष्टं अस्वर्ग्यं धर्म्यं अपि कर्म न आचरेत् ॥

ता० भा०- देहसे यथाशक्ति धर्मको करै और उसकाही मनसे ध्यान और वाणीसे कथन करै और शास्त्रोक्तभी लोकमें निंद्य (मधुपर्कमें गोवधआदि) कर्मको न करै क्योंकि उससे अग्निष्टोमके समान स्वर्ग नही होता ॥ १५६ ॥

मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसंबंधिमातुलैः ।
वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः १५७

पद- मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसंबंधिमातुलैः ३ वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः ३ ॥

ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः ।
विवादंवर्जयित्वातुसर्वान्लोकान्जयेद्गृही ॥

पद- ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः ३ विवादं २ वर्जयित्वाऽ -तुऽ- सर्वान् २ लोकान् २ जयेत् क्रि- गृही १ ॥

योजना-मातृपित्रअतिथिभ्रातृजामिसंबंधिमातुलैः वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः॥ ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः सह विवादं वर्जयित्वा गृही सर्वान् लोकान् जयेत् ॥

ता० भा०- माता पिता अतिथि भिन्नोदरभाई सुहागिनस्त्री संबंधि मातुल वृद्ध (७०सत्तर वर्षसे अधिक) बाल (सोलहवर्षसे न्यून) वैद्य (विद्यावान् वा भिषक्) संश्रित (सेवक) पिता और माताके पक्षके बांधव- मातुलका पृथक् पढना आदरके लिये है ऋत्विज- पुरोहित- संतान- भार्या- दास- सहोदरभाई- और भगिनी इनके संग वाणीके कलहको छोडकर

गृहस्थी प्राजापत्य आदि सब लोकोंमें प्राप्त होता है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

पंचपिंडाननुद्धृत्यनस्रायात्परवारिषु ।
स्रायान्नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषुच १५९॥

पद- पंच २ पिण्डान् २ अनुद्धृत्यऽ- नऽ- स्नायात् क्रि- परवारिषु ७ स्नायात् क्रि- नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषु ७ चऽ- ॥

योजना- परवारिषु पंच पिंडान् अनुद्धृत्य न स्नायात् चपुनः नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषु स्नायात् ॥

तात्पर्यार्थ- पराये उन जलोंमें जो सब जीवोंके निमित्त न त्यागे होंय पांच पिंडोंके बिना निकासें स्नान करै- इससे अपने और सब भूतोंके निमित्त त्यागेहुए तडाग आदिकोंमें पिण्डोंके बिना उद्धार कियेभी स्नान करै- यह अनुज्ञात हुआ और जो साक्षात् वा परंपरासे समुद्रमें जातीहो उन नदीयोंमें और देवताओंके बनाये पुष्कर आदि देवखातोंमें और जलप्रवाहके जोरसे हुए जलसहित बडे गहरे ह्रदों (कुण्ड)में और पर्वत आदि ऊंचे देशसे निकसे प्रस्रवण (झरना)के जलोंमें पांच पिण्डोंके बिना निकासेभी स्नान करले- यहभी संभव होयतो नित्य स्नानके विषयमें समझना- क्योंकि इस वचनमें नित्यपदका ग्रहण है कि नदी देवखात तडाग सर गर्त प्रस्रवण इनमें नित्य स्नान करै- और शौच आदिके लियेतो यथासंभव पराये जलोंके वर्तावमें पांच पिण्डोंके निकासे बिनाभी दोष नही है ॥

भावार्थ- पराये जलोंमें पांच पिंडोंके निकासे बिना स्नान न करै- और नदी देवखात ह्रद और प्रस्रवणोंमें पांच पिंडोंके निकासे बिनाभी स्नान करै- ॥ १५९ ॥

परशय्यासनोद्यानगृहयानानिवर्जयेत् ।
अदत्तान्यग्निहीनस्यनान्नमद्यादनापदि ॥

पद- परशय्यासनोद्यानगृहयानानि २ वर्जयेत् क्रि- अदत्तानि २ अग्निहीनस्य ६ नऽ- अन्नं २ अद्यात् क्रि- अनापदि ७ ॥

योजना- अदत्तानि परशय्यासनोद्यान- गृहयानानि वर्जयेत् अग्निहीनस्य अन्नं अनापदि न अद्यात् ॥

ता० भा०- बिनादिये पराई शय्या आसन, उद्यान (बगीचा), गृह- यान- इनको वर्जदे- और श्रौत और स्मार्त अग्निका जिसे अधिकार नही उस शूद्रका और अग्निहोत्रके अधिकारी अग्निसे रहित प्रतिलोमजका आपत्तिके बिना भोजन न करै और प्रतिग्रह नले- तिससे गौतमके वचनानुसार अपने कर्मसे शुद्ध श्रेष्ठ जातियोंका ब्राह्मण भोजन करै और प्रतिग्रहले॥ १६० ॥

कदर्यबद्धचौराणांक्लीवरंगावतारिणाम् ।
वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम्॥

पद- कदर्यबद्धचौराणां ६ क्लीबरंगावतारिणां ६ वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिका- गणदीक्षिणां ॥ ६ ॥

योजना- कदर्यबद्धचौराणां- क्लीबरंगा- वतारिणां- वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागण- दीक्षिणां अन्नं न अद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ- कदर्य- (लुब्ध) जो इस- वचनमें कहा है कि आत्मा धर्मकार्य पुत्र स्त्री माता पिता भृत्य इनको जो लोभसे

---

१ नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणादिषु ।

१ तस्मात्प्रशस्तानां स्वकर्मणा शुद्धजातीनां ब्राह्मणो भुंजीत प्रतिगृह्णीयाच ।

२ आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत् । लोभायः पितरौ भृत्यान्स कदर्य इति स्मृतः ।

दुखी रक्खे उसे कदर्य कहते हैं वेडी और वाणीसे जो रोकमेंहो उसे बद्ध- ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न जो अन्यके धनको चुरावे वह चौर कहते है और नपुंसक रंगावतारि (नट चारण मल्लआदि) वेण (वासोंको काटकर जो जीवे) अभिशस्त (जिसको पातककर्म लगाहो) वार्धुष्य (निषिद्ध सूदलेने वाला) गणिका (वेश्या) गणदीक्षी (जो बहुतोंको यज्ञ करावे) इनके अन्नको न खाय॥

भावार्थ-कदर्य-बद्ध-चौर- नपुंसक-नर चारण-मल्ल-वांसवेचनेवाले-पतित-निषिद्ध-व्याज लेनेवाले- वेश्या- बहुयाजक- इनके अन्नको भक्षण न करे ॥ १६१ ॥

चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ।
क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनाम्

पद- चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषां ६ क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनां ६ ॥

योजना- चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चली मत्तविद्विषां, क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्ट भोजिनां, अन्नं न अद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-वैद्यवृत्तिसे जीनेवाला चिकित्सक- और इस वेचनमें कहे महारोगोंसे युक्त अतुरकि-वातव्याधि-पथरी-कुष्ठ-प्रमेह-महोदर-भगंदर-अर्श-गृहणी-ये आठ महारोग कहे हैं- क्रोधी व्यभिचारिणी स्त्री विद्या आदिसे मत्त-विद्विट् (शत्रु)-क्रूर (जिसके भीतर अत्यंत कोप हो) वाणी और कायाके व्यापारसे दूसरेको कपानेवाला उग्र ब्रह्महा आदि पतित-व्रात्य-(जिसका उचित कालमें संस्कार न हुआ हो)- दांभिक (वंचक) उच्छिष्टभोजी इनके अन्नको भक्षण न करे ॥

१ वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः ॥ अर्शांसि ग्रहणी त्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ।

भावार्थ-वैद्य-रोगी- क्रोधी-वेश्या- मत्त शत्रु-क्रूर-उग्र- पतित व्रात्य-दंभी-उच्छिष्ट-भोजी इनके अन्नको न खाय ॥ १६२ ॥

अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ।
शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनाम् १६३

पद- अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्राम याजिनां ६ शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनां ६ ॥

योजना- अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजित-ग्रामयाजिनां शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनां अन्नं न अद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-व्यभिचारके विनाभी पतिपुत्रसे रहित स्वतंत्र स्त्री-सुनार-स्त्रीका वशीभूत स्त्रीजित-ग्रामयाजी-(ग्रामकी शांति आदिका कर्त्ता वा बहुतोंको यज्ञोपवीत देनेवाला) शस्त्र वेचनेवाला-कर्मार-(लुहार वा तक्षा आदि) तंतुवाय-श्ववृत्ति (जो कुत्तोंसे आजीविका करे) इनके अन्नको न खाय ॥

भावार्थ-अवीरा स्त्री-सुनार-स्त्रीके वशीभूत ग्रामयाजी-शस्त्रविक्रेता-लुहार-तंतुवाय-श्व वृत्ति-इनके अन्नको न खाय ॥ १६२ ॥

नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् ।
चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् १६४

पद-नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनां ६ चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनां ६ ॥

पिशुनानृतिनोश्चैवतथाचाक्रिकवंदिनाम् ।
एषामन्नंनभोक्तव्यंसोमविक्रयिणस्तथा ॥

पद-पिशुनानृतिनोः ६ च० -एव० -तथा० -चाक्रिकवंदिनां ६ एषां ६ अन्नं १ न० -भोक्तव्यं १ सोमविक्रयिणः ६ तथा० - ॥

योजना- नृशंसराजरजककृतघ्नवध-जीविनां, चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनां चपुनः पिशुनानृतिनोः, तथा चाक्रिक-

बंदिनां–तथा सोमविक्रयिणः एषां अन्नं न भोक्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–नृशंस (निर्दयी) राजा और उसका पुरोहित– क्योंकि शंखने इस वैचनसे पुरोहितका अन्नभी वर्जित लिखा है-कि भयभीत–निंदित–रोनेवाला–आक्रं-दित (बद्ध) अवघुष्ट (शापित) क्षुधित–(यद्वातद्वाभोक्ता) विस्मित–उन्मत्त–अव-धूत–राजा और पुरोहित इनके अन्नको वर्जे दे–वस्त्रआदिको नीलआदि रंगसे रंगनेवाला रजक–कृतघ्न (उपकारको जो न माने) प्राणियोंको हिंसासे जीनेवाला वधजीवी–चैलधाव (धोबी) सुराजीव (मदिरा वेचकर जो जीवे) जिसके घरमें जार रहता हो–पिशुन (चुगलखोर) अनृती (मिथ्यावादि) चाक्रिक (तेली वा गाडीवान्) क्योंकि इस वचनमें अभिशस्तको पतित और चाक्रिकको तेली कहा है–बंदीजन (जो वंशआ-दिकी स्तुति करतेहों) सोमलताके वेचने-वाला–इनके अन्नका भोजन न करे–ये सब-कदर्य और कायरता आदि दोषोंसे दुष्ट द्विजही लेने–क्योंकि इतर जातिकी प्राप्ति नही है और निषेध प्राप्तिपूर्वकही होताहै॥

भावार्थ–निर्दयी राजा रंगरेज कृतघ्नी हिंसक धोबी कलार जिसके घरमें जार हो–चुगल मिथ्यावादी तेली वंदीजन तथा सोम-विक्रयी इनके अन्नको न खाय१६४॥१६५॥

१ भीतावगीतरुदिताक्रदितावघुष्टक्षुधितपरिभुक्त–विस्मितोन्मत्तावधूतराजपुरोहितान्नानि वर्जयेत् ।

२ अभिशस्तः पतितश्चाक्रिकस्तैलकः ।

शूद्रेषुदासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः ।
भोज्यान्नानापितश्चैवयश्चात्मानंनिवेदयेत्॥

पद–शूद्रेषु ७ दासगोपालकुलमित्रार्द्ध-सीरिणः१भोज्यान्नाः १ नापितः१ चऽ–एवऽ–यः१–चऽ–आत्मानं२–निवेदयेत् क्रि– ॥

योजना–दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः चपुनः नापितः चपुनः यः आत्मानं निवेद-येत् एते शूद्रेषु भोज्यान्नाः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–आपत्तिके विना अग्निहीनके अन्नको न खाय इस वचनसे शूद्रको अभोज्यान्न कहा है–अब उसका प्रतिप्रसव (निषेधका निषेध) कहते हैं–दास (गर्भ-दासआदि) गोपाल (जो गोओंकी पालनासे जीवे–) पितापितामह आदिक्रमसे चला आया कुलका मित्र–अर्द्धसीरी (जो कृषिके आधे अन्न आदिको ले और उघाई नले) –नापित (घरके व्यापार करनेवाला वा नाई) और जो में तेराहूं यह कहकर वाणी मन कायाको निवेदन करे और चकारसे कुंभकार–शूद्रोंमें इनका अन्न भोजन करने योग्य है क्योंकि इस वैचनमें कुंभकार भी भोज्यान्नोंमें पढा है–कि गोप नापित कुंभकार कुलमित्र अर्द्धसीरी निवेदितात्मा शूद्रोंमें इनका अन्न भोजन करने योग्य है ॥

भावार्थ–दास गोपाल कुलमित्र अर्द्धसीरी कुंभकार शूद्रोंमें इनका अन्न भोजनके योग्य है–

१ गोपनापितकुंभकारकुलमित्रार्द्धिकनिवेदितात्मानो भोज्यान्नाः ।

इति स्नातकधर्मप्रकरणम् ॥ ६ ॥

अथ भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम् ७

अनर्चितंवृथामांसंकेशकीटसमन्वितम् ।
शुक्तंपर्युषितोच्छिष्टंश्वस्पृष्टंपतितेक्षितम् ॥

पद-अनर्चितं २ वृथामांसं २ केशकीटसमन्वितं २ शुक्तं २ पर्युषितोच्छिष्टं२ श्वस्पृष्टं २ पतितेक्षितं २

उदक्यास्पृष्टसंघुष्टंपर्यायान्नंचवर्जयेत् ।
गोघ्रातंशकुनोच्छिष्टंपदास्पृष्टंचकामतः ॥

पद-उदक्या स्पृष्टसंघुष्टं२ पर्यायान्नं२ च-वर्जयेत् क्रि-गोघ्रातं२ शकुनोच्छिष्टं२ पदा ३ स्पृष्टं२ च- कामतः- ॥

योजना- अनर्चितं वृथामांसं केशकीटसमन्वितं शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितं उदक्या स्पृष्टं संघुष्टं पर्यायान्नं गोघ्रातं च पुनः कामातः पदा स्पृष्टं अन्नं वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणके स्नातक व्रतोंको कहकर अब द्विजातीयोंके धर्मोंको कहतेहैं कि तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ पदार्थ-वृथामांस (जो वक्ष्यमाण प्राणान्त कष्टके विना देवपूजनसे शिष्ट न हो) किंतु अपने लिये ही बनायाहो-केश और कीट आदिसे युक्त वस्तु-शुक्त जो अम्ल नहो अधिककाल वा अन्यद्रव्यके मिलनेसे अम्ल (खट्टा) होजाय-वहभी दधि आदिको छोडकर समझना क्योंकि यह शंखका वचनहै कि पापीका अन्न-द्विपक्व-शुक्त-पर्युषित इनको न खाय और राग-खांड-चुक्र-दही-गुड-गेहूं जौं-इनके विकारके खानेका दोष नहीं-पर्युषित-(बासी) उच्छिष्ट-(भोजनका शेष) कुत्तेका छुआ-पतितका देखा-उदक्या (रजस्वला)का छुआ-उदक्या पदसे यहां चांडाल आदि लेने-क्योंकि यह शंखका वचनहैकि अपवित्र-पतित-चाण्डाल-पुल्कस-रजस्वला-कुनखी-कुष्ठी-इनकेछुये अन्नको -और संघुष्ट अन्न कोई भोजन करे है,यह शब्द कहकर जो दियाजाय उसे संघुष्टान्न कहतेहैं-पर्य्यायान्न जो अन्यका अन्न अन्यके नामसे दियाजाय उसे पर्यायान्न कहते हैं-जैसे कि इस वचनमें लिखाहै कि ब्राह्मणान्नको देता हुआ शूद्र और शूद्रान्नको देताहुआ ब्राह्मण उन दोनोंका अन्न भक्षण योग्य नहीं और भक्षण करे तो चान्द्रायण करे पर्याचांत यह पाठ होय तो कुल्ला करनेके अनंतर भोजन न करे-अर्थात् गण्डूष (कुरला)सेपीछे और आचमनसे पहिले भोजन करना अयोग्यहै-और जब पार्श्वाचान्त पाठहै तब यह अर्थहै कि एक पंक्तिमें बैठे हुओंमें पासका आचमन जब करले और भस्म आदिकी मर्य्यादा न होतो भोजन न करे गौका सूंघा-और शकुनोच्छिष्ट (काकआदि पक्षीयोंका झूंठ-) और जानकर पैरोंसे छुआ इतने अन्नोंको वर्जदे ॥

भावार्थ-तिरस्कारसे दिया अन्न-वृथामांस केशकीटसे युक्त अन्न-शुक्त- पर्युषित-उच्छिष्ट कुत्तेका छुआ और पतितका देखा अन्न-रजस्वलाका छुआ-संघुष्ट और पर्य्यायान्न-गौका सूंघा-पक्षीयोंका झूंठा-और जानकर पैरोंसे छुआ अन्न- इतने अन्नोंको वर्जदे ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

अन्नंपर्युषितंभोज्यंस्नेहाक्तंचिरसंस्थितं ।
अस्नेहाअपिगोधूमयवगोरसविक्रियाः१६९

१ न पापीयसोऽन्नमश्नीयान्न द्विपक्वं न शुक्तं न पर्युषितं अन्यत्रागखाण्डवचुक्रदधिगुडगोधूमयवपिष्टविकारेभ्यः ।

१ अमेध्यपतितचाण्डालपुल्कसरजस्वलाकुनखिकुष्ठिसंस्पृष्टमन्नं वर्जयेत् ।

२ ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् । उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।

पद- अन्नं १ पर्युषितं १ भोज्यं १ स्नेहाक्तं१ चिरसंस्थितं१अस्नेहाः१ अपि- गोधूमयवगोरसविक्रियाः१ ॥

योजना- स्नेहाक्तं चिरसंस्थितं पर्युषितमप्यन्नं भोज्यं भवति- गोधूमयवगोरसविक्रियाः अस्नेहा अपि भोज्या भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ- अब पर्युषितका प्रतिप्रसव कहतेहैं कि घृतआदि स्नेहसे युक्त चिरकालका संस्थितभी पर्युषित अन्न भोजन करने योग्य होताहै-और गोधूम जो गोरस इनके विकार चिरकालकेभी स्थित मंडक सत्तू किलाट कूर्चिका आदि भोजन करने योग्यहैं यदि वे विकारको प्राप्त न हुए हों क्योंकि यह वसिष्ठकी[1] स्मृतिहै कि अपूप धान करंभ सत्तू पाचक तेल पायस शाक ये शुक्त (खट्टे) होगये होंतो वर्जदे ॥

भावार्थ-स्नेहसे युक्त चिरकालकाभी बासी अन्न भोजन करने योग्यहै-और स्नेहसे रहितभी गेहूं जों गोरसके विकार भोजन करने योग्यहैं ॥ १६९ ॥

संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयःपरिवर्जयेत् ।
औष्ट्रमैकशफंस्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥

पद-संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयः २ परिवर्जयेत् क्रि- औष्ट्रं २ ऐकशफं२ स्त्रैणं२ आरण्यकं२ अथ्- आविकं २ ॥

योजना- संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयः अथ औष्ट्रं ऐकशफं स्त्रैणं आरण्यकं आविकं पयः परिवर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- संधिनी (जो गौ दूध देतीहुई धनचढे) क्योंकि यह त्रिकांडी स्मृतिहै कि वशाको[2] वंध्या और वृषाक्रांताको संधिनी कहते हैं-और जो एक समयको छोडकर दूसरे समय दूध देना बछडे बिनाही दूधदे उसेभी संधिनी कहतेहैं-अनिर्दिशा (जिसके प्रसवको दशदिन न बीते हों) अवत्सा- (जिसका वत्स मरगया हो) इन तीन प्रकारकी गौओंका दूध वर्जदे-यहां संधिनी पदसे स्यंदिनी और यमलसूभी लेनी-सोई गोतमनें कहाहै कि स्यंदिनी[1] यमलसू संधिनीका दूध वर्जितहै जिसका सदैव दूध निकसताहै उसे स्यंदिनी और जिसके दो वत्स पैदाहों उसे यमलसू कहतेहैं इसी प्रकार बकरी और भैसका दूध दशदिन तक वर्जितहै-क्योंकि वसिष्ठकी[2] यह स्मृति है कि बकरी और भैंस और गौका दूध दशदिनतक वर्जितहै-दूधके ग्रहणसे उसके विकार दही आदिकाभी निषेधहै-जैसे मांसके निषेधमें उसके विकारकाभी निषेधहै-और जहां विकारका निषेध है वहां प्रकृतिका निषेध नही और दूधके निषेधसे गोवर और मूत्रका निषेध नही-और ऊंटनी-और घोडी आदिका दूध स्त्रीका दूध-क्योंकि ग्रहणसे अजासे भिन्न सब द्विस्तनीयोंका निषेधहै-क्योंकि शंखनें[3] यह कहाहै कि बकरीको छोडकर सर्व द्विस्तनीयोंका दूध अभोज्यहै-भैसको छोडकर और वनके पशुओंका दूध-क्योंकि यह वचनहै[4] कि महिषीको छोडकर वनके सब पशुओंका दूध वर्जितहै और आविक ये सब दूध वर्जितहै औष्ट्र इस पदमें विकारमें अण् प्रत्यय होनेसे ऊंटनीके विकार दूध मूत्र आदिका सर्वदा निषेधहै

१ अपूपधानाकरंभसक्तुपाचकतैलपायसशाकानि शुक्तानि वर्जयेत् ।

२ वशां वध्यां विजानीयाद्वृषाक्रांतां च संधिनीं ।

१ स्यंदिनीयमलसूसंधिनीनां च ।

२ गोमहिष्यजानामनिर्दशानां ।

३ सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरमभोज्यमजावर्ज्यं ।

४ आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ।

क्योंकि गोतमका वचन है कि भेड ऊंटनी एक खुरके जीव इनके दूध आदिविकार वर्जितहै ॥

भावार्थ-संधिनी-अनिर्दशा और अवत्सा गौका दूध-और ऊंटनी-एक खुरवाली घोडी आदिका दूध-स्त्री-वनके पशु-भेड-इनका दूध वर्जितहै ॥ १७० ॥

देवतार्थहविःशिग्रुंलोहितान्व्रश्चनांस्तथा । अनुपाकृतमांसानिविड्जानिकवकानिच ॥

पद-देवतार्थ२ हविः२ शिग्रुं२ लोहितान्२ व्रश्चनान् २ तथा०-अनुपाकृतमांसानि२ विड्जानि २ कवकानि २ च०- ॥

योजना-देवतार्थं हविः शिग्रुं-तथा लोहितान् व्रश्चनान् चपुनः अनुपाकृतमांसानि विड्जानि कवकानि वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-देवताकी बलि देनेके लिये बनाई हुई जो हवि वह होमसे पहिले अभक्ष्यहै शिग्रु (सोहजना) और वृक्षका लाल गूंद-और वृक्षके छेदनसे पैदा हुए सब प्रकारके गूंद-सोई मनुने कहाहै कि वृक्षके लाल गूंद और छेदनसे पैदा हुए गूंद वर्जितहैं-लोहितके ग्रहणसे हींग और कपूर आदिका दोष नही-अनुपाकृतमांस (यज्ञमें न होमें पशुका) विड्ज-(मनुष्यके भक्षित बीजसे पैदा हुए तण्डुल आदि) और कवक (छत्राक) ये सब वर्जितहै ॥

भावार्थ-देवताके लिये हवि सोहजना-लाल और वृक्षके छेदनसे पैदा हुए गूंद और यज्ञमें न होमे पशुका मांस विष्ठामें पैदा हुए अन्न और छत्राक इन सबको वर्जदे॥१७१॥

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान् । सारसैकशफान्हंसान्सर्वांश्चग्रामवासिनः ॥

पद-क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान् २ सारसैकशफान् २ हंसान्२ सर्वान्२ च०-ग्रामवासिनः २ ॥

योजना-क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान्- सारसैकशफान्-हंसान् चपुनः सर्वान् ग्रामवासिनः वर्जयेत् ॥

ता- भा०-क्रव्याद (कच्चे मांसके भक्षक जीव) गीध आदिपक्षी-दात्यूह (चातक) शुक (तोता) प्रतुद (जो चोंचसे तोडकर खाते हैं वे श्येन आदि) टिट्टिभ (टटीरी) सारस-एक शफ (अश्वआदि) हंस-और-ग्राममें बसनेवाले कबूतर आदि संपूर्ण जीव ये सब वर्जितहैं ॥ १७२ ॥

कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान् । वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः १७३

पद-कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान्२वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः २

योजना-कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान्-वृथा कृसर संयावपायसापूप शष्कुलीः वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-कोयष्टि (क्रौंच) प्लव (जलमुरगा) चक्राह्व (चकवा) बलाका (बगला) विष्किर (जो नखोंसे फाडकर भक्षण करतेहैं वे चकोर आदि) लेने क्योंकि लावक मयूर आदि भक्ष्यहैं और ग्रामके कुक्कुटका ग्रामवासी होनेसे निषेधहै-इन कोयष्टिआदि जीवोंको वर्जदे-और देवताओंके निमित्त विनाबनाये कृशर संयाव पायस अपूप शष्कुलिभी वर्जितहै-तिल और मूंगमिले ओदनको कृशर कहतेहैं-क्षीर गुड घृत आदिमें पकाये चूर्णको संयाव (मोहनभोग) कहतेहैं- दूधमें पकाये ओदनको पायस (खीर) कहतेहैं-अपूप (पूडे) शष्कुली (पूरी) ये दोनों घीआदि स्नेहमें पके गोधूम-

---

१ नित्यमास्यं शुचिस्त्रीणामित्युक्तेः सम्भवतीति स्त्रीपयश्च ।

२ लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथा ।

का विकार है-ये सब भक्षणमें वर्जित है-यद्यपि अपने लिये अन्नको न पकावे इस[1] वचनसे कृशर आदिकोंका निषेध सिद्धथा पुनः कहना अधिक प्रायश्चितके लियेहै ॥

भावार्थ- क्रौंच- जलकुक्कुट-चक्रवाक-बलाका-बगला-चकोर आदि-इनको वर्जदे और देवताके निमित्तविना, बनाये कृशर संयाव पायस अपूप शष्कुलि इनकोभी वर्जदे ॥ १७३ ॥

कलविंकंसकाकोलंकुररंरज्जुदालकम् । जालपादान्खंजरीटानज्ञातांश्चमृगद्विजान्

पद-कलविंकं २ सकाकोलं २ कुररं २ रज्जुदालकं २ जालपादान् २ खंजरीटान् २ अज्ञातान् २ चऽ- मृगद्विजान् २ ॥

योजना- सकाकोलं-कलविंकं-कुररं र-ज्जुदालकं-जालपादान्-खंजरीटान्- चपुनः अज्ञातान् मृगद्विजान् वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- कलविंक (ग्रामका चिडा) यद्यपि ग्रामवासी होनेसे निषेध सिद्धथा तथापि पुनः वचन सब चटकोंके निषेधार्थ है काकोल (द्रोणकाक) कुरर (उत्क्रोश) रज्जुदालक (वृक्षकुट्टक) जालपाद (जिनके पैर जालके समानहों) हंसोंके विना जालभी पैर होतेहैं इससे पुनर्वचनहै-खंजरीट (खंजन) और जिन मृगपक्षीयोंकी जाति का ज्ञान न होवे-इन सबको वर्जदे ॥

भावार्थ- ग्रामका चिडा-द्रोणकाक, कुरर वृक्षकुट्टक जालपाद खंजन और अज्ञात मृग और पक्षी इनको वर्जदे ॥ १७४ ॥

चापांश्चरक्तपादांश्चसौनंवल्लूरमेवच । मत्स्यांश्चकामतोजग्ध्वासोपवासस्त्र्यहंवसेत्

पद- चापान् २ चऽ-रक्तपादान् २ चऽ- सौनं २ वल्लूरं २ एवऽ- चऽ-मत्स्यान् २चऽ- कामतःऽ- जग्ध्वाऽ- सोपवासः १ त्र्यहं २ वसेत् क्रि- ॥

योजना- चापान् च पुनः रक्तपादान् च पुनः सौनं च पुनः वल्लूरं च पुनः मत्स्यान् कामतः जग्ध्वा त्र्यहं सोपवासः वसेत् ॥

तात्पर्यार्थ- चाप (पपीहा) रक्तपाद (कादंब) सौन (घातस्थान) का मांस-वल्लूर (सूकामांस) मत्स्य- इन चाप आदिको वर्जदे, चकारसे नाली सण कुसुंभ आदि-भी वर्जितहैं-क्योंकि ये वचनहै[1] कि नाली सण छत्राक कुसुंभ अलाम्बू विष्ठामें उत्पन्न कुंभी (तर्बूज) कंदुक वेगन- कोविदार-इनको वर्जदे-तैसेही अकालमें पैदा हुये फल और पुष्प- और विकार करनेवालोंको प्रयत्नसे वर्जदे-तैसेही वट, पिलखन, पीपल, कदंब, कैत, मातुलिंग-इनके फलोंको वर्जदे-इन पूर्वोक्त संधिनी आदिके दूध आदिको जानकर भक्षण करे तो तीन- रात्र उपवास करे-और अज्ञानसे भक्षण करे तो अहोरात्र उपवास करे- क्योंकि शेषोंमें[2] अहोरात्र व्रत करे यह मनुका वचनहै-और जो शंखने यह कहा है[3] कि बक, बलाका, हंस, प्लव, चक्रवाक-कारंडव-गृहचटक (चिडा) कपोत, कबूतर, पाण्डु, शुक, सारिका,

१ नपचेदन्नमात्मने ।

१ नालिकाशणछत्राककुसुंभालाबुविड्भवान् । कुंभीकंदुकवृन्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् । तथा कालप्ररूढानि पुष्पाणि च फलानि च । विकारवच यत्किंचित् प्रयत्नेन विवर्जयेत् । वटप्लक्षाश्वत्थकपित्थनीपमातुलिंगफलानि वर्जयेत् ।

२ शेषेष्वत्रसेदहः ।

३ बकबलाकाहंसप्लवचक्रवाककारण्डवगृहचटककपोतपारावतपांडुशुकसारिकासारसटिट्टिभोलूककंकरक्तपादचापभासवायसकोकिलशाङ्गलिकुक्कुटहारीतभक्षणे-द्वादशरात्रमनाहारः पिबेद्गोमूत्रयावकं ।

सारस, टिट्टिभ, उलूक, कंक, रक्तपाद, चाक, भास, वायस, कोकिल, शाद्वलि, कुक्कुट, हारीत-इनके भक्षणमें द्वादश रात्र-तक भोजनको छोडकर गोमूत्र और जौं-को पीवै-यह शंखका प्रायश्चित्त बहुत कालके अभ्यासमें वा जानकर सबके भक्षणमें जानना ॥

भावार्थ-चाक रक्तपाद कसाईका और सूका मांस और मत्स्य इनको ज्ञानसे खाकर तीन दिन उपवास करै ॥ १७५ ॥

पलांडुंविड्वराहंचछत्राकंग्रामकुक्कुटम् ।
लशुनंगृंजनंचैवजग्ध्वाचांद्रायणंचरेत् १७६

पद-पलांडुं२ विड्वराहं२च॰-छत्राकं २ ग्रामकुक्कुटं२ लशुनं २ गृंजनं २ च॰- एव॰-जग्ध्वा॰- चांद्रायणं २ चरेत् क्रि- ॥

योजना-पलांडुं-चपुनः विड्वराहं-छत्राकं ग्रामकुक्कुटं लशुनं चपुनः गृंजनं जग्ध्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-पलांडु (लसुनके समान स्थूल कंद आदि) विड्वराह (ग्रामसूकर) छत्राक (सर्पछत्र) ग्रामकुक्कुट (मुर्गा) लसुन (लहसन) गृंजन (गाजर) इन छःको एकवार ज्ञानसे खाकर चांद्रायण करै-यद्यपि ग्रामकुक्कुट और छत्राकका पहिले निषेध कर आये हैं फिर यहां कहना पलांडु आदिके समान प्रायश्चित्तके लिये है-जानकर चिरकालतक भक्षण किये होंय तो यह मनुका कहा प्रायश्चित्त है-कि छत्राक विड्वराह लसुन ग्रामकुक्कुट पलांडु गृंजन इनको ज्ञानसे खाकर द्विज पतित होता है-अज्ञानसे इनके भक्षणका अभ्यास किया होतो इसे वचनमें कहाहुआ प्रायश्चित्त करै कि अज्ञानसे इन छःको खाकर सांतपन कृच्छ्र वा यतिचांद्रायण करै -वा इसके कहे प्रायश्चित्तको करै कि लसुन पलांडु-गृंजन-विड्वराह-ग्रामकुक्कुट-कुंभीक इनके भक्षणमें द्वादश रात्रतक दुग्धपान करै-

भावार्थ-पलांडु-सलगैम-विड्वराह-छत्राक-ग्रामकुक्कुट-लहसन और गाजर इनको खाकर चांद्रायण करै ॥ १७६ ॥

भक्ष्याःपंचनखाःसेधागोधाकच्छपशल्लकाः
शशश्चमत्स्येष्वपिहिसिंहतुंडकरोहिताः ॥

पद-भक्ष्याः १ पंचनखाः १ सेधागोधा-कच्छपशल्लकाः १ शशः१ च॰- मत्स्येषु ७ अपि॰-हि॰-सिंहतुण्डकरोहिताः १ ॥

तथापाठीनराजीवसशल्काश्चद्विजातिभिः ।
अतःशृणुध्वंमांसस्यविधिंभक्षणवर्जने १७८

पद-तथा॰-पाठीनराजीवसशल्काः १च॰-द्विजातिभिः ३ अतः॰- शृणुध्वं क्रि- मांसस्य ६ विधिं २ भक्षणवर्जने ७ ॥

योजना-सेधागोधाकच्छपशल्लकाः चपुनः शशः एते पंचनखाः मत्स्येषु अपि सिंहतुण्डकरोहिताः तथा पाठीनराजीव सशल्काः द्विजातिभिः भक्ष्याः भवंति-अतः अनंतरं हेमुनयःमांसस्यभक्षणवर्जने विधिं यूयंशृणुध्वं॥

तात्पर्यार्थ-सेधा (सेह श्वाविध) गोधा (गोह) कच्छप-शल्लक-(शल्लकी) और शश ये पांच नखवाले पांचों-और कुत्ता मार्जार वानर आदि और चकारसे गैंडा ये पांच नखवालोंमें भक्षण करने योग्य हैं-सोई गौतमने कहा है कि शशा शल्लक सेह

१ छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटं । पलांडुं गृंजनंचैव मत्या जग्ध्वा पतेद्विजः ।

२ अमत्यैतानि षड्जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।

१ लशुनपलांडुगृंजनविड्वराहग्रामकुक्कुटकुंभीक-भक्षणे द्वादशरात्रं पयः पिबेत् ।

२ पंचनखाः शशशल्लकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपाः ।

गोह खड्ग–कच्छप ये पंचनखोंमें छः भक्ष्य हैं–मनुनेभी कहा है कि सेह शल्लक गोह गेंडा कछवा शशा पंचनखोंमें ये और ऊंटको छोडकर एक दांतवाले भक्षणके योग्य हैं–जो वशिष्ठने इस वचनसे खड्गको अभक्ष्य कहा है कि खड्गके भक्ष्य माननेमें विवाद करते हैं वह श्राद्धसे अन्यत्र समझना क्योंकि श्राद्धमें खड्गके मांसका यह फल लिखा है कि पितृकर्ममें खड्गका मांस देनेसे अक्षय होता है–तैसेही मत्स्योंके मध्यमें सिंहतुंड–(सिंहमुख) रोहित–(रक्तवर्ण) पाठीन (चंद्रक) राजीव (पद्मवर्ण) सशल्क–जिसके शरीरपर सीपके समान आकारहों–ये सब नियुक्तही –अर्थात् श्राद्धआदिके लिये बनायेही भक्ष्य हैं आत्मार्थ नहीं– क्योंकि मनुका यह वचन है कि पाठीन रोहित सिंहतुण्ड राजीव सशल्क ये सब हव्यकव्यमें नियुक्त हैं– ये सब द्विजातियोंको भक्षण करने योग्य हैं– इस वचनमें द्विजातिका ग्रहण शूद्रको भक्षणका दोष न हैं इस लिये है–अब द्विजातियोंके धर्मोंको कहकर चार वर्णोंके धर्मको कहते हैं–कि इसके अनंतर प्रोक्षित मांसके भक्षणमें और उससे भिन्न निषिद्ध मांसके वर्जनमें हे मुनिओ–तुम विधिको सुनो ॥

भावार्थ–सेह, गोह, कछवा, शल्लक, और कच्छ ये पंचनख, और मत्स्योंमें सिंहतुण्ड–रोहित, तथा पाठीन, राजीव, सशल्क, ये द्विजातिओंको भक्षण करने योग्य हैं–हे मुनिओ इसके अनंतर तुम मांसभक्षण और निषेधकी विधिको सुनो ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

प्राणात्ययेतथाश्राद्धेप्रोक्षितंद्विजकाम्यया । देवान्पितॄन्समभ्यर्च्यखादन्मांसंनदोषभाक् ॥ १७ ॥

पद–प्राणात्यये७ तथा॰–श्राद्धे॰–प्रोक्षितं२ द्विजकाम्यया३ देवान् २ पितॄन् २ समभ्यर्च्य॰–खादन् १ मांसं २ न दोषभाक् १॥

योजना–प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य मांसं खादन् दोषभाक् न भवति ॥

तातपर्यार्थ–अन्नका अभाव हो वा व्याधि हो और मांसके भक्षणके विना प्राणोंको बाधा होय तो मांसका भक्षण नियमसे करे–क्योंकि यह आत्माके रक्षाकी विधि है कि–सबसे देहकी रक्षाकरै– और इसवचनसे मरणका निषेध है कि स्वर्गकी इच्छासेभी अवस्थासे पहिले न मरै– तैसेही श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण नियमसे मांसका भक्षण करै क्योंकि भक्षण न करनेमें मनुने यह दोष कहा है कि जो श्राद्धमें नियुक्त ब्राह्मण मांस नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्मतक पशु होता है– और जिस पशुका अग्नि–सोम– आदि यज्ञके लिये वेदोक्त प्रोक्षण संस्कार हुआ है होमसे बचे उस पशुके प्रोक्षित मांसका भक्षणकरै क्योंकि भक्षणके विना यज्ञकी सिद्धि नहीं होसकती– और ब्राह्मणभोजनार्थ वा देव पितरोंके अर्थ जो बनायाहो उसके भोजन और पूजाके शेष मांसभक्षणसे दोषभागी नहीं होता– इसीप्रकार भृत्योंके भरण पोषणके शेषमेंभी

१ श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा । भक्ष्यान्पंचनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ।

२ खड्गे तु विवदंते ।

३ खड्गमांसैर्भवेद्दत्तमक्षय्य पितृकर्मणि ।

४ पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः । राजीवाः सिंहतुंडाश्च सशल्काश्चैव सर्वशः ।

१ सर्वत एवात्मनो गोपायेत् ।

२ तस्मादिह न पुरायुपः स्वकामी प्रेयात् ।

३ यथाविधि नियुक्तस्तु यो मांसं नात्ति मानवः । सप्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिं ।

दोष नही– क्योंकि यह मनुका वचन है कि ब्राह्मण [1] यज्ञके लिये और भृत्योंके जीवनके लिये प्रशस्त मृग और पक्षीयोंको हते क्योंकि अगस्त्यनें तैसेही आचरण किया है– पूर्वोक्त मांसके भक्षणमें दोषभागी नही होता यह कहनेसे अतिथिके पूजनसे शेषमांसकोभी आज्ञामात्र है कुछ प्रोक्षितके- समान नियम नही– न खायतो कुछ दोष- नही– इसीप्रकार जिनका निषेध नही वे शश आदिभी प्राणबाधाकेविना अभक्ष्य हैं– इससे शूद्रकोभी मांसकी संपूर्ण विधि- निषेधका अधिकार है यह सिद्ध भया ॥

भावार्थ– प्राणोंकी बाधा और श्राद्धमें और प्रोक्षित और ब्राह्मणकी इच्छासे और देवता और पितरोंको पूजकर मांसभक्षण करनेवाला दोषभागी नही होता ॥१७९॥

वसेत्सनरकेघोरेदिनानिपशुरोमभिः । संमि- तानिदुराचारोयोहंत्यविधिनापशून् ॥१८०

पद– वसेत् क्रि– सः १ नरके ७ घोरे७ दिनानि २ पशुरोमभिः ३ संमितानि २ दुराचारः १ यः १ हन्ति क्रि – अविधिना ३ पशून् २ ॥

योजना– यः दुराचारः अविधिना पशून् हंति सः पशुरोमभिः संमितानि दिनानि घोरे नरके वसेत् ॥

तात्पर्यार्थ– जो दुराचारी अविधिसे पशुओंको हनता है वह पशुओंके रोमोंके तुल्य दिनोंतक घोर नरकमें वसता है यहां आठप्रकारके घातक मनुनें कहे हुये [2] हैं– अनुमतिका दाता– कहनेवाला– मारने- वाला– लेने और बेचनेवाले– पकानेवाला– और लानेवाला– और भक्षणका कर्ता १८०॥

१ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः । भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ।

२ अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी । संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ।

सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलंतथा । गृहे पिनिवसन्विप्रोमुनिर्मांसविवर्जनात् १८१॥

पद– सर्वान्२ कामान् २ अवाप्नोति क्रि– हयमेधफलं२ तथा॰– गृहे७ अपि॰– निवसन्१ विप्रः १ मुनिः १ मांसविवर्जनात्५ ॥

योजना– विप्रः मांसविवर्जनात् सर्वान् कामान् तथा हयमेधफलं अवाप्नोति– गृहेपि निवसन् सन् मुनिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ– जो मनुष्य प्रोक्षित मांसको छोडकर में मांसभक्षण नही करूंगा यह सत्यसंकल्प करता है वह जिस कार्यकी सिद्धिमें प्रवृत्त होगा वह शुद्धांतःकरण होनेसें उसको अवश्य प्राप्त होगा– सोई [1] मनुने लिखा है कि जो मनुष्य किसीकी हिंसा नही करता वह जो ध्यान करता है जिसको करता है जिसमें प्रीति करता है उसके फलको निर्विघ्न प्राप्त होता है– यह फल प्रासंगिक है मुख्य फलको कहते हैं कि वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है– यह फलभी एकवर्षके संकल्पका है क्योंकि मनुका वचन [2] है कि जो सौवर्षतक अश्व- मेधयज्ञ करे और जो मांस न खाय उन दोनोंका पुण्यफल समान है– तैसेही घरमेंभी वसताहुआ ब्राह्मण आदि वर्ण मांसके त्यागसे मानने योग्य मुनि होता है– यहभी न निषिद्धमांसके विषयमें है न प्रोक्षितमांसके विषयमें है किंतु परिशेषसे अतिथिपूजनसे शेषमांसके विषयमें समझना ॥

भावार्थ– ब्राह्मण मांसके त्यागसे सब कामनाओंको अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है और घरमें वसताहुआभी मुनि होता है ॥ १८१ ॥

१ यद्ध्यायति यत्कुरुते रतिं बध्नाति यत्र च । तद- वाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन ।

२ वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ।

इति भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम् ॥७॥

सुवर्ण आदिको पात्र स्मार्त और लौकिक कर्मके शौच करनेसेही अंग होसक्तेहैं-और यज्ञके अंगपात्रोंका यह मार्जन शुद्ध करनेके अनंतर संस्कारके लियेहै ॥

भावार्थ-काठ सींग-अस्थियोंके पात्रकी छीलनेसे और फलके पात्रोंकी गोवालोंसे मार्जन करनेसे- और यज्ञके पात्रोंकी हाथसे मार्जन करनेसे यज्ञकर्ममें शुद्धि होतीहै१८५॥

सोखैरुदकगोमूत्रैःशुद्ध्यत्याविककौशिकम्। सश्रीफलैरंशुपट्टंसारिष्टैःकुतपंतथा १८६॥

पद-सोखैः३ उदकगोमूत्रैः३ शुद्ध्यति क्रि- आविककौशिकं१ सश्रीफलैः ३ अंशुपट्टं१ सारिष्टैः३ कुतपं१ तथाऽ- ॥

योजना- आविककौशिकं सोखैः उदकगोमूत्रैः अंशुपट्टं सश्रीफलैः तथा कुतपं सारिष्टैः शुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ-ऊन और कोशसें पैदाहुए कंबल और टसरी पट्ट आदि-उखरकी मट्टीसहित गोमूत्र और जलसें शुद्ध होतेहैं-उदकगोमूत्रैः यह बहुवचन इस लिये है कि मट्टी लगाकर पीछे जल और गोमूत्रसे धोवै और वक्कलके तंतुओंसे बना अंशुपट्ट बेलके फल सहित जलोंसे और पर्वतकी बकरीके रोमोंसे बना कुतपनामका कंबल रीठेके फलोंसहित जल और गोमूत्रसें शुद्ध होताहै-यहभी उच्छिष्ट और स्नेह आदिक लगनेपर जानना-और अल्प अशुद्धि होयतो-प्रोक्षणही करना क्योंकि धोनेको ये पूर्वोक्त वस्त्र नहीं सहसक्ते क्योंकि सर्वत्र वही शुद्धि इष्ट है जिसमें द्रव्यका नाश नहो-सोई देवलनें कहाहै कि ऊन कोशेय कुतप पट्ट क्षौम दुकूल इनके वस्त्र अल्पशुद्धिवाले होते हैं इससे सुकाने और प्रोक्षणसे शुद्ध होजाते हैं यह कहकर फिर देवलनें कहाहै कि यदि वेही वस्त्र अपवित्रतासे युक्तहों तो अपनी शुद्धि करनेवाले पदार्थ-और अन्नकी खल और फलके रस और खार इनसें धोवै-और क्षौमके समानही शणके वस्त्रोंकी शुद्धि होतीहै-ऊन आदिका ग्रहण ऊनके और रुईके वस्त्रोंके लियेहै-यदि उसमें अपवित्र वस्तु न लगी हो और अल्प अशुद्धि होयतो जलसे पूर्वोक्त प्रकारसे धोवै क्योंकि देवलनें यह कहाहै कि-रुई-पहरनेका वस्त्र और पुष्प-रक्तवस्त्र-इनको धूपमें कुछ सुकाकर हाथोंसे मार्जन करै-और फिर जलसे छिडककर यज्ञ कर्ममेंले-और वे अत्यंत मलीन होंय तो यथावत् शुद्धिकरै-कुंकुम और कुसुमसे रंगे वस्त्रको पुष्परक्त कहतेहै-पुष्परक्तके ग्रहणसे हरिद्रा आदिसे रंगा वह वस्त्र लेना जो धोनेको न सहसके-क्योंकि शंखने कहाहै कि रंगेहुए द्रव्य प्रोक्षणसे शुद्ध होते हैं ॥

भावार्थ-भेडकी ऊनका-और तसरिपट्ट आदिकौशिक वस्त्र-उखरकी मट्टी सहित जल और गोमूत्रसे वक्कलके वस्त्र बेल और जल गोमूत्रसे पर्वतकी छागका कंबल रीठे सहित जल गोमूत्रसे शुद्ध होतेहैं ॥ १८६ ॥

सगौरसर्षपैःक्षौमंपुनःपाकान्महीमयम्। कारुहस्तःशुचिःपण्यंभैक्ष्यंयोषिन्मुखंतथा॥

पद-सगौरसर्षपैः३ क्षौमं२ पुनःऽ- पाका-

१ ऊर्णाकौशेयकुतपपट्टक्षौमदुकूलजाः । अल्पशौचा भवन्त्येते शोषणप्रोक्षणादिभिः ।

१ तान्येवामेध्ययुक्तानि क्षालयेच्छोधनैःस्वकैः । धान्यकल्कैस्तु फलजैः रसैः क्षारानुगैरपि ।

२ तूलिकाद्युपधानं च पुष्परक्ताम्बरं तथा । शोषयित्वातपे किंचित्करैः समार्जयेन्मुहुः । पश्चाच्च वारिणा प्रोक्ष्य विनियुञ्जीत कर्मणि । तान्यप्यतिमलिष्टानि यथावत्परिशोधयेत् ।

३ रागद्रव्याणि प्रोक्षितानि शुचीनि ।

त् ५ महीमयम्१ कारुहस्तः१ शुचिः१ पण्यं २ भैक्ष्यं१ योषिन्मुखं१ तथा०-

योजना- क्षौमं सगौरसर्षपैः उदकगोमूत्रैः महीमयं पुनः पाकात् शुद्ध्यति-कारुहस्तः शुचिः भवति तथा पण्यं भैक्ष्यं योषिन्मुखं शुद्धं भवति ॥

तात्पर्यार्थ- क्षौम-(अतिसीके सूतका) वस्त्र गौरसर्षपसहित जल और गोमूत्रसे शुद्ध होताहै-और मिट्टीके घटआदि दुवारा पकानेसे शुद्ध होतेहैं-यहभी तब जानना जब उच्छिष्ट स्नेह आदि लगेहो क्योंकि यह स्मृतिहै कि मदिरा मूत्र मल कफ राध आंशु रुधिर इनसे स्पर्श किया मट्टीका पात्र फिर शुद्ध नही होता-यदि चांडाल आदि छूलें तो त्यागने योग्य होताहै-सोई पराशरने कहाहै कि चाण्डाल आदिका छुआ अन्न और वस्त्र जल छिडकनेसें शुद्ध होताहै-और मट्टीका पात्र त्यागने योग्यहै-रजक और धोबी, सूपकार आदि कारुओंका हाथ सदैव शुद्धहै और शुद्धभी सूतक आदि होनेपर वस्त्रके धोवन आदिकोंमें उनके करने योग्यकर्ममेंही समझना सोईअन्य स्मृतिमें भी लिखाहै कि कारु, शिल्पी, दासी, दास, राजा, राजाके भृत्य-इनकी शुद्धि उसी समय होतीहै- पण्य (बेचने योग्य जो व्रीहि आदि) लेनेवाले अनेक मनुष्योंके हाथसें छूने और व्यापारियोंके सूतक आदिसे अशुद्ध नही होता-और ब्रह्मचारी आदिके हाथमें आया भिक्षाका अन्न आचमन करनेसे पहिले स्त्री आदिके देनेसे वा अशुद्ध मार्गके गमनसे अशुद्ध नही होता और संभोग(रति)के समय स्त्रीका मुख शुद्धहै-सोई इस स्मृतिमें कहाहै कि रतिके संगममें स्त्री शुद्धहै ॥

भावार्थ- क्षौमका वस्त्र, गौरसरसौं और जल गोमूत्रसे और मट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्ध होताहै-कारीगरका हाथ बेचने योग्य द्रव्य भिक्षाका अन्न और रतिके समय स्त्रीका मुख शुद्ध होते हैं ॥ १८७ ॥

भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहंमार्जनलेपनात्१८८

पद- भूशुद्धि १ मार्जनात् ५ दाहात् ५ कालात्५ गोक्रमणात्५ तथा०- सेकात्५ उल्लेखनात्५ लेनात्५ गृहं१ मार्जनलेपनात् ॥

योजना- मार्जनात्-दाहात्- कालात् तथा गोक्रमणात् सेकात् उल्लेखनात् लेपनात् भूशुद्धिर्भवति गृहं मार्जनलेपनात् शुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ- मार्जन-अर्थात्-मार्जनी (बुहारी)से धूल और तृण आदिके दूर करनेसे और तृण और काष्ठ आदिसे दाह करनेसे, और जितने कालमें अशुद्ध लेप आदिका नाशहो उतने कालसे, और गौके क्रमण-(फिरना)से और दूध गोमूत्र जल गोमयसे वा वर्षासे, उल्लेखन (खुरचना वा-खोदना)से और गोमय आदिके लीपनेसे इन संपूर्ण वा एकदोसें अपवित्र और मलिन भूमि शुद्ध होतीहै-सोई देवलने कहाहै कि जहां नारीके प्रसवहो मरै-वा दाह कियाजाय, जहां चांडाल वसैं हों वा विष्ठाआदिका संसर्ग हो, उस भूमिको अमेध्य कह-

१ मद्यमूत्रपुरीषैश्च श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः । संस्पृष्टं नैवशुध्येत पुनः पाकेन मृन्मयं ।

२ चाण्डालैश्चस्तु संस्पृष्टं धान्यं वस्त्रमथापि वा । प्रक्षालनेन भक्ष्येत परित्यागान्महीमयं ।

३ कारवः शिल्पिनो वैद्याःदासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ।

१ स्त्रियश्च रतिसंसर्गे ।

२ यत्र प्रसूयते नारीम्रियते दह्यतेऽपिवा।चाण्डालाध्युषितं यत्र यत्र विष्ठादिसंगतिः । एवं कश्मलभूयिष्ठाभूरमेध्या प्रकीर्तिता । श्वसूकरखरोष्ट्रादिसंस्पृष्टां दुष्टतां भजेत् ।भगारतुषकेशास्थिभस्माद्यैर्मलिना भवेत्।

तेहैं–और कुत्ता सूकर गधा ऊंठ आदिका जहां स्पर्शहों वह भूमि दुष्ट होतीहै अंगार तुष केश अस्थि भस्म आदिका जहां स्पर्श हो वह भूमि मलिन होतीहै इस प्रकार अमेध्य दुष्ट मलिन तीन प्रकारकी शुद्धि योग्य भूमिको कहकर यह शुद्धिका विभाग देवलने दिखायाहै कि पांच वा चार प्रकारसे अमेध्यभूमि, तीन वा दो प्रकारसे दुष्टभूमि, और एक प्रकारसे मलिन भूमि, शुद्ध होती है अर्थात् जहां मनुष्य भूखे जाय चाण्डाल वसेहों उनदो भूमियोंका दाहकाल, गौओंका गमन, सेक, और छीलना, इन पांच प्रकारसे और जहां मनुष्य पैदाहों, वा मरैं, और जहां अत्यंत मल मूत्रका संगहो, वहभूमि दाहको छोडकर पूर्वोक्त चार प्रकारसे और कुत्ता सूकर खर ये जहां बहुत दिनतक वसेहों वह गौओंके गमन छिडकना और छीलना इन तीन प्रकारसे, और जहां ऊंठ ग्रामके मुर्गाआदि चिरकाल तक वसेहैं वह छिडकना और छीलना इनदो प्रकारसे, अंगार और तुप आदि जहां बहुत दिनतकरहे हों वह छीना इस एक प्रकारसे, शुद्ध होतीहै मार्जन और लीपनातो सब शुद्धियोंमें समझना इसी प्रकार मार्जन और लीपनेसे गृह शुद्ध होताहै गृहका पृथक् पढना इसलिये है कि उसका मार्जन लेपन प्रतिदिन शुद्धिके अर्थ करना ॥

भावार्थ–मार्जन–दाह–काल–गौओंका गमन–छिडकना–छीलना–लीपना इनसे भूमिकी, और मार्जन–लेपन इनसे गृहकी शुद्धि होती है ॥ १८८ ॥

गोघ्रातेऽन्नेतथाकेशमक्षिकाकीटदूषिते ।
सलिलंभस्ममृद्वापिप्रक्षेप्तव्यंविशुद्धये १८९·

पद–गोघ्राते७ अन्ने७ तथा० –केशमक्षिकाकीटदूषिते ७ सलिलं १ भस्म १ मृत् १ वा०–अपि०–प्रक्षेप्तव्यं १ विशुद्धये ४ ॥

योजना–गोघ्राते तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते अन्ने सलिलं भस्म वा मृत् विशुद्धये प्रक्षेप्तव्यं ॥

ता०भा०– गौके सूघें और केशमक्षिकाकीट (पिपीलिकाआदि) से दूषित अन्नमें जल भस्म वा मिट्टीको शुद्धिके लिये यथा संभव फैंके–जो गौतमने कहा है कि केशकीटसे युक्त अन्न भोजन करने योग्य नहीं वह वहां समझना जहां अन्न केशकीटोंके संग पकायाहो ॥ १८९ ॥

त्रपुसीसकताम्राणांक्षाराम्लोदकवारिभिः ।
भस्माद्भिःकांस्यलोहानांशुद्धिः प्लावोद्रवस्यतु ॥ १९० ॥

पद–त्रपुसीसकताम्राणां ६ क्षाराम्लोदकवारिभिः ३ भस्माद्भिः ३ कांस्यलोहानां ६ शुद्धिः १ प्लावः१ द्रवस्य ६ तु० ॥

योजना–त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः कांस्यलोहानां भस्माद्भिः तुपुनः द्रव्यस्य प्लावः शुद्धिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ–लाख शीशा तामा इनकी शुद्धि खारे वा अम्लजलसे वा केवल जलसे–उपघात (अशुद्धि)की अपेक्षा सब वा एकर से शुद्धि होती है–कांसी–औरलोहेकी शुद्धि भस्म और जलसे होती है– यहां ताम्रके ग्रहणसे रांग और पित्तलभी लेने क्योंकि ये सब एकसेही उत्पन्नहैं– यह ताम्र आदिकोंकी शुद्धिका अम्लोदक आदिसे कहना नियमके लिये नहीं है क्योंकि इस वचनसे

१ प्रचारा वा चतुर्धा वा भूमेरपापि शुध्यति। दुष्टा त्रिधा द्विधा हेधा शुध्यते मलिनैकधा ।

१ नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नं ।

२ मलसंयोगजं तज्जं यत्रयेनोपहन्यते । तस्मात्प्रोक्तं प्रोक्तं सामान्यं द्रव्यशुद्धिषु ।

यह शुद्धि अभिषेकसे कहीहै कि जिस द्रव्य-के मलका संयोग जिस द्रव्यसे दूरहोय वही उसकी शुद्धि सामान्य रीतिसे सब द्रव्य-शुद्धियोंमें कहीहै—इससे यदि तामा आदिका उच्छिष्ट जलका लेप अन्यसे नजासकेतो नियमसे अम्लोदकसेही शुद्धि करनी इसीसे मनुने यह सामान्यसे कहाहै कि तामा लोहा कांसी रांग लाख शीशा इनका शौच यथा-योग्य खारे वा खट्टे वा केवल जलसे करना और जो यह वचनहै कि भस्मसे कांशी और अम्लसे तामा शुद्ध होताहै वह अत्यंत शुद्धिके लियेहै कुछ अन्य शुद्धिके निषेधा-र्थ नहीहै—और जब उपघात अधिक होय तब अम्लोदक आदिकोंसे वारंवार शुद्धिकरै क्योंकि यह स्मृति है कि गौके सूंघे कांसीके पात्र और शूद्रके उच्छिष्ट और कुत्ता और काकके छुए पात्र दशवार खार लगानेसे शुद्ध होते हैं और द्रवद्रव्य (घृत आदि) प्रस्थ-परिमाणसे अधिक हो और उसे काक आदि छूलें वा अपवित्र वस्तुका स्पर्श होजाय प्लाव (बहाना) शुद्धि है अर्थात् सजातीय द्रव्यसे पात्रको भरे जब उसमेंसे बहने लगै तब शुद्ध हो जाताहै उससे अल्प होयतो त्याग कहाहै बहुत और अल्पतो देश वा कालकी अपेक्षा जानने सोई बौधायनने कहाहै कि देशकाल अपना आत्मा–द्रव्य द्रव्यका प्रयोजन–उप-पत्ति और अवस्था इनको जानकर शौचक-रै–कीट आदि छूलें तो छानले क्योंकि मनुने कहाहै कि संपूर्ण द्रवद्रव्योंकी शुद्धि उत्पवन (छानना) कहीहै अन्यथा कीट आदि नही निकस सकते– शूद्रके पात्रमें स्थित मधु और उदक आदिकी शुद्धि दूसरे पात्रमें लानेसे होती है–क्योंकि बौधायनको वचन है कि मधु जल–दूध–और इनके विकार एक पात्रसे दूसरे पात्रमें लानेसे शुद्ध होते हैं– यदि मधु और घृतादि नीचवर्णके हाथसे मिले होय तो दूसरे पात्रमें रखकर फिर त-पावे यही शंखने कहाहै– कि भोजन करने योग्य घृतके पदार्थोंको फिर पकावे इसी प्रकार स्नेह और रसोंको समझना ॥

भावार्थ–लाख–शीशा–तांबा–खारखट्टेजल वा शुद्ध जलोंसे कांशी– लोहा–भस्म–और जलोंसे घृत आदि द्रव द्रव्य–प्लाव(बहाना) से शुद्ध होते हैं ॥ १९० ॥

अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैःशुद्धिर्गंधादिकर्षणात् वाक्शस्तमंबुनिर्णिक्तमज्ञातंचसदाशुचिः ॥

पद–अमेध्याक्तस्य ६ मृत्तोयैः ३ शुद्धिः १ गंधादिकर्षणात् ५ वाक्शस्तं १ अंबुनिर्णिक्तं १ अज्ञातं १ च ऽ–सदा ऽ–शुचिः १ ॥

योजना–अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः गंधादिक-र्षणात् शुद्धिः भवति वाक्शस्तं–अंबुनिर्णिक्तं चपुनः अज्ञातं सदा शुचिर्भवति–

तात्पर्यार्थ– सुवर्ण और चांदीके सब पात्रोंकी शुद्धिको कहकर अब अमेध्यसे उच्छिष्ट लिप्त इनकीही शुद्धिको कहते हैं अमेध्य (शरीरसे पैदाहुये वसा शुक्र आदि-मल) उनसे लिप्त पदार्थकी शुद्धि मिट्टी और जलसे करनी वे मल मनु और

१ ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ।

२ भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।

३ गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि च । शुध्यंति दशभिः क्षारैः श्वकाकोपहतानि च ।

४ देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् । उप-पत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ।

५ द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम् ।

१ मधूदके पयस्तद्विकाराश्च पात्रात्पात्रांतरानयने शुद्धाः ।

२ अभ्यवहार्याणां घृतेनाभिघारितानां पुनः पचनं एवं स्नेहानां स्नेहवद्रसानाम् ।

देवलने आदिने ये कहे हैं कि वसा शुक्र रुधिर मज्जा मूत्र विष्ठा कर्णविष्ठा नख-थूक-अश्रु-ढीढ पसीना-ये बारह मनुष्योंके मल हैं-और मनुष्यका अस्थि-शव-विष्ठा-वीर्य-मूत्र-स्त्रीका रज-वसा-पसीना-अश्रु ढीड-कफ-मद्य-ये अमेध्य कहाते हैं और शुद्धि गंधके कर्षण (दूरकरना)से होती है-और आदिपदसे लेपभी लेना सोई गौतमने कहा है कि अमेध्यलिप्तकी शुद्धि गंधके दूरकरनेसे होती है-सब शुद्धियोंमें पहिलेतो मिट्टी और जलसे लेप और गंधको दूर करना और उनसे नहोसकेतो अन्यसे करना सोई गौतमकी स्मृति है कि मट्टी और जलसे प्रथम शुद्धि होती है वसा आदिका ग्रहण सबको अमेध्य बतानेके लिये है कुछ समान उपघातके लिये नही क्योंकि उपघातमें विशेष यह कहा है कि तत्कालके मूत्र पुरीष श्लेष्म पूय-शोणित-अश्रु-इनसे स्पर्श किया हुआ मिट्टीका पात्र पुनः पाकसे शुद्ध नही होता- अपवित्रभी ये देहसे पृथक् होनेसे होते हैं क्योंकि यह वचन है कि देहसे पृथक् हुए मल अमेध्य होते हैं-हाथोंको छोडकर पुरुषकी नाभिके ऊपरके अंगोंमें यदि अमेध्यका स्पर्श हो जाय तो स्नान करै-सोई देवलने कहा है कि दूसरेके अस्थि-वसा-विष्ठा-रज-मूत्र-वीर्य-मज्जा-रुधिरको स्पर्श करके स्नान करै-और अपनोंका स्पर्श करके धोने और आचमनसे शुद्ध होता है-और-नाभिसे ऊपर हाथोंको छोडकर जिस अंगमें उपघात होय तो स्नानसे और नीचेके अंगमें उपघात होय तो प्रक्षालन और आचमनसे शुद्ध होता है-शास्त्रोक्त शौच करनेपरभी जहां मनके असंतोषसे शुद्धिका संदेह होय वह वाक्शस्त कहनेसे अर्थात् यह शुद्ध है इस ब्राह्मण वचनसे शुद्ध होता है-और जहां कोई शुद्धि नही कही वहां अंबुनिर्णिक्त (जलमें धोना) होनेसे शुद्धि होती है-और जो द्रव्य जलमें धोना न सहे उसकी छिडकनेसे शुद्धि होती है-जो पदार्थ अज्ञात हो अर्थात् काक आदिका छुवा प्रतीत नहो वह शुद्ध है उसके खानेमें अदृष्ट दोष नही और उसमें कुछ विरोध नही क्योंकि जिसका दोष न देखाहो उसका यह प्रायश्चित्त कहा है कि अज्ञात भोजनकी शुद्धि-और विशेषकर ज्ञातकी शुद्धिके लिये ब्राह्मण एक कृच्छ्र करै यह ठीक नही क्योंकि प्रायश्चित्त भोजनके विषयमें है और दोषका अभाव अन्यके उपयोगमें है ॥

भावार्थ-अमेध्यसे युक्त पदार्थकी शुद्धि मट्टी और जलसे गंध आदिके दूर करनेसे होती है वाणीसे श्रेष्ठ कहा, और जलसे धुला, और अज्ञात, सदैव शुद्ध होता है ॥१९१॥

शुचिगोतृप्तिकृत्तोयंप्रकृतिस्थंमहीगतम् ।
तथामांसंश्वचांडालक्रव्यादादिनिपातितम्

पद-शुचि १ गोतृप्तिकृत् १ तोयं १ प्रकृतिस्थं १ महीगतं १ तथा०-मांसं १ श्वचाण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् १ ॥

१ वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविण्नखाः। श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥ मानुष्यास्थि शव विष्ठा रेतो मूत्रार्तवं वसा। स्वेदोश्रुदूषिका श्लेष्ममद्यमामेध्यमुच्यते।

२ शौचममेध्यलिप्तस्य लेपगन्धापकर्षणैः ।

३ तदद्भिः पूर्वं मृदा च ।

४ मूत्रपुरीषश्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः संस्पृष्टं नैवशुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयं ।

५ अमेध्यानि भवन्त्येते देहाच्चैव मलाश्च्युताः ।

६ मानुषास्थिवसाविष्ठामार्तवं मूत्ररेतसी । मज्जानं शोणितं स्पृष्ट्वा परस्य स्नानमाचरेत् । तान्येव स्वानि संस्पृश्य प्रक्षाल्याचम्य शुध्यति ।

१ संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः । अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ।

ता०भा०–बकरी और अश्वका मुख पवित्र है और गौ और देहके वसा आदि मल पवित्र नही हैं–और चांडाल आदिके स्पर्श कियेभी मार्ग रात्रिमें चंद्रमाकी किरण और पवनसे–और दिनमें सूर्यकी किरण और पवनसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ १९४ ॥

मुखजाविप्रुषोमेध्यास्तथाचमनबिंदवः ।
श्मश्रुचास्यगतंदंतसक्तंत्यक्त्वाततःशुचिः ॥

पद–मुखजाः १ विप्रुषः १ मेध्याः १ तथाऽ– आचमनबिंदवः १ श्मश्रु १ च– आस्यगतं १ दंतसक्तं १ त्यक्त्वाऽ– ततःऽ– शुचिः १ ॥

योजना–मुखजाः विप्रुषः तथा आचमनबिंदवः मेध्याः भवंति चपुनः आस्यगतं श्मश्रु मेध्यं भवति–दन्तसक्तं त्यक्त्वा ततः शुचिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ–मुखमें पैदा हुये कफकी बूंद पवित्र हैं अर्थात् उच्छिष्ट नही करती यदि वे अंगमें न पडें क्योंकि गौतमका वचन है मुखकी बूंद अंगमें न पडें तो उच्छिष्ट नहीं करती तोभी जो आचमनके जलकी बूंद हैं वे चरणोंका स्पर्श करलें तो पवित्र हैं और मुखपर लगीहुयी श्मश्रु मुखमें प्रविष्ट होजायतो उच्छिष्ट नहीकरती–दांतोंमें लगे उस अन्नको जो स्वयं गिरजाय– त्यागकर शुद्ध होजाता है और जो अन्न न गिरे वह दांतोंके समान है सोई गौतमने कहा है कि दंतोंमें लगा अन्न जिह्वाके स्पर्शसे गिरनेसे पहिले शुद्ध है जब गिरजायतो जलके स्रावके समान समझे उसके निगलनेसे शुद्ध होता है– और निगलनेकाभी इसीश्लोकमें याज्ञवल्क्यने कहे त्यागके संग विकल्प है और निगरन्नेव यह एवपद इस विष्णुके वचनमें कहे आचमनके निषेधार्थ है कि पानके चर्वणको छोडकर चर्वणमें नित्य आचमन करे और ओष्ठोंको उलटे करके और वस्त्रोंको पहनकरभी आचमनकरे– तांबूलका ग्रहण फल आदिके उपलक्षणार्थ है सोई शातातपने कहाहै कि तांबूल– फल इनका और स्नेहसे शेषको भोजनमें और दांतोंमें लग्नके स्पर्शमें द्विज उच्छिष्ट नही होता ॥

भावार्थ–मुखकी बूंद– और आचमनकी–बूंद और मुखमेंगई श्मश्रु शुद्ध हैं और दांतोमें लगेको त्यागकर मनुष्य शुद्ध होता है॥ १९५॥

स्नात्वापीत्वाक्षुतेसुप्तेभुक्त्वारथ्योपसर्पणे ।
आचांतःपुनराचामेद्वासोविपरिधायच ॥

पद– स्नात्वाऽ–पीत्वाऽ–क्षुते ७ सुप्ते ७ भुक्त्वाऽ– रथ्योपसर्पणे ७ आचान्तः १ पुनःऽ– आचामेत् क्रि–वासः २ विपरिधायऽ– चऽ–॥

योजना– स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे चपुनः वासः विपरिधाय आचांतः पुनः आचामेत् ॥

तात्पर्यार्थ– स्नान– जलपान क्षुत (छींक) सोना–भोजन–गलीमें गमन– वस्त्रोंका धारण इनको करके आचमनके अनंतरभी आचमनकरे अर्थात् दोवार आचमनकरे और चकारसे रोना पढनेका प्रारंभ और अलप-झूट– इनमेंभी करे सोई वसिष्ठने कहा है– सोना– भोजन– छीकना– स्नान– पान– रोना– इनमें आचमनकरके आचमनकरे

१ मुखविप्रुषउच्छिष्टं कुर्वंति नचेदंगेनिपतंति ।
२ दंतश्लिष्टं तुदंतवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात्प्राक्–

१ चर्वणे त्वाचमेन्नित्यमुद्धृत्वा ताम्बूलचर्वणम् । ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वावासोविपरिधायच ।
२ ताम्बूले च फले चैव भुक्तस्नेहावशिष्टके । दंतलग्नस्य संस्पर्शे नोच्छिष्टो भवति द्विजः ।
३ सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा स्नात्वा पीत्वा रुदित्वा चाचांतः पुनराचामेत् ।

मनुनेभी कहा है कि सोना- छींकना- भोजन- थूकना- झूठ वचन कहना जलपीना- पढना इनमें सावधानभी मनुष्य आचमन- करै- भोजनमें तो आदिमेंभी दो आचमन- करै क्योंकि आपस्तंबकी स्मृति है कि भोजनकरनेवाला सावधानीसे प्रथम दो आचमनकरै- स्नान और जलपानमें पहिले एकवार- पढनेके प्रारंभमें दोवार- और शेषोंमें अंतमेंही दोवार आचमनकरै ॥

भावार्थ- स्नान-जलपान-छींक- सोना- भोजन- गलीमें गमन इनको करके और वस्त्रोंको पहिनकर आचमनके अनंतरभी फिर आचमनकरै ॥ ११६ ॥

१ सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च ष्ठीवित्वोक्त्वानृतं वचः । पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोपि सन् ।

२ भोक्ष्यमाणस्तुप्रयतोद्विराचामेत् ।

रथ्याकर्दमतोयानिस्पृष्टान्यंत्यश्ववायसैः ।
मारुतेनैवशुद्ध्यंतिपकेष्टकाचितानिच ११७

पद- रथ्याकर्दमतोयानि १ स्पृष्टानि १ अंत्यश्ववायसैः ३ मारुतेन ३ एव ऽ- शुद्ध्यंति क्रि- पक्वेष्टकचितानि १ च ऽ- ॥

योजना- अंत्यश्ववायसैः स्पृष्टानि रथ्याकर्दमतोयानि चपुनः पक्वेष्टकचितानि गृहाणि मारुतेनैव शुद्ध्यंति ॥

ता० भा०- (सबमार्ग) के कर्दम (पंक) तोय (जल) को चांडाल, कुत्ता, काक, स्पर्श करलेंतो पवनसे- और पक्कीईंटोंसे चिने सपेद्घर (महल) भी चांडाल आदिके स्पर्श- करनेसे पवनसेही शुद्ध होते हैं यहभी संहतों (इकट्ठे) का प्रोक्षणकरै, इस पूर्वोक्त प्रोक्षणके निषेधार्थ है तृणकाष्ठ आदिक परतो प्रोक्षण सेही शुद्ध होते हैं ॥ ११७ ॥

॥ इति द्रव्यशुद्धिप्रकरणम् ॥

अथ दानप्रकरणम् ९

तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्माब्राह्मणान्वेदगुप्तये ।
तृप्त्यर्थंपितृदेवानांधर्मसंरक्षणायच १९८॥

पद- तपः २ तप्त्वाऽ- असृजत् क्रि- ब्रह्मा १ ब्राह्मणान् २ वेदगुप्तये ४ तृप्त्यर्थंऽ- पितृदेवानां ६ धर्मसंरक्षणाय ४ चऽ- ॥

योजना- ब्रह्मा तपः तप्त्वा वेदगुप्तये पितृदेवानां तृप्त्यर्थं चपुनः धर्मसंरक्षणाय ब्राह्मणान् असृजत् ॥

ता० भा०- कल्पकी आदिमें ब्रह्माने तपकरके वेदकी रक्षा और पितर और देवताओंकी तृप्ति और धर्मकी रक्षाके लिये सबसे पहिले ब्राह्मणोंको रचा इससे ब्राह्मणोंको दियेका अक्षयफल होता है ॥ १९८ ॥

सर्वस्यप्रभवोविप्राःश्रुताध्ययनशीलिनः ।
तेभ्यःक्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योप्यध्यात्मवित्तमाः ॥ १९८ ॥

पद- सर्वस्य ६ प्रभवः १ विप्राः १ श्रुताध्ययनशीलिनः१तेभ्यः२क्रियापराः १श्रेष्ठाः१ तेभ्यः २ अपिऽ- अध्यात्मवित्तमाः १ ॥

योजना- श्रुताध्ययनशीलिनः विप्राः-सर्वस्य प्रभवः संति तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठाः तेभ्यः अध्यात्मवित्तमाः श्रेष्ठाः भवंति ॥

ता० भा०- ब्राह्मण, सब क्षत्रिय आदिवर्णोंसे जाति और कर्मसे श्रेष्ठ हैं-ब्राह्मणोंमेंभी वेदपाठी- और वेदपाठियोंमें वेदोक्तकर्मके कर्त्ता, और उनमेंभी शमदम आदियोगसे आत्मतत्वके ज्ञाता- श्रेष्ठ है ॥ १९९ ॥

नविद्ययाकेवलयातपसावापिपात्रता ।
यत्रवृत्तमिमेचोभेतद्धिपात्रंप्रकीर्तितम् ॥

पद-नऽ- विद्यया ३ केवलया ३ तपसा३ वाऽ- अपिऽ- पात्रता१यत्रऽ- वृत्तं १ इमे १ चऽ-उभे१तत् १हिऽ-पात्रं १ प्रकीर्तितं १ ॥

योजना- केवलया विद्यया वा केवलेन तपसा अपि पात्रता नभवति यत्र वृत्तं चपुनः इमे उभे (विद्यातपसी) स्तः हि निश्चयेन तत् पात्रं प्रकीर्त्तितं ॥

तात्पर्यार्थ-अब जाति विद्यानुष्ठान तप इनमें एक२ की प्रशंसासे पात्रताको कहकर सबसे पूर्ण पात्रताको कहते है केवल विद्या (वेदाध्ययन) और केवल तप (शम दम आदि) और आदि पदसे केवल कर्मका अनुष्ठान और केवलजातिसें पूर्णपात्रता नही होती किंतु जिसपुरुषमें वृत्त (कर्मका अनुष्ठान) और दोनों विद्या और तप और चशब्दसे ब्राह्मणजाति हो वही मन्वादिकोंने यथार्थ पात्र कहा है-हि (निश्चय) है कि उससे परे पात्र नही है-और जाति विद्या अनुष्ठान तपसे ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठहैं उसीके अनुसार दानका फलभी होता है-

भावार्थ-केवल विद्या और तपसे पात्र नही होता जिसमें कर्मका अनुष्ठान और विद्या तप ये दोनों हों वही पात्र मनुआदिकोंने कहा है ॥ २०० ॥

गोभूतिलहिरण्यादिपात्रेदातव्यमर्चितम् ।
नापात्रेविदुषाकिंचिदात्मनःश्रेयइच्छता ॥

पद-गोभूतिलहिरण्यादि १ पात्रे ७ दातव्यं१ अर्चितं १ नऽ- अपात्रे ७ विदुषा ३ किंचित्ऽ- आत्मनः ६ श्रेयः २ इच्छता३ ॥

योजना-आत्मनः श्रेयः इच्छता विदुषा पुरुषेण गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे अर्चितं दातव्यं अपात्रे किंचित् नदातव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त पात्रको और पात्रविशेषके फलविशेषको जानता हुआ और अपने संपूर्ण फलका अभिलाषी पुरुष, गौ पृ-

थिवी तिल सुवर्ण आदिको शास्त्रोक्त संकल्पआदि विधिपूर्वक पूजासे दे-और अपात्र क्षत्री आदि और पतित ब्राह्मणको अल्पभी नदे यहां कल्याणका अभिलाषी कहनेसे यह सूचित कियाकि अपात्रके दानमेंभी तमोगुणी फलहै सोई व्यासने कहा है कि देशकालके अभावमें वा अपात्रको और असत्कार तिरस्कारपूर्वक जो दियाजाता है वह दान तमोगुणी कहा है और अपात्रको नदेय वह कहनेसे यहभी सूचितकिया कि देशकाल और द्रव्य उत्तमहों और पूर्वोक्त पात्र समीप नहो तो उसपात्रके निमित्त द्रव्यका त्याग वा प्रतिज्ञा करके समर्पण करदे अपात्रको कदाचित्‌नदे और प्रतिज्ञा कियेहुए द्रव्यकोभी पीछेसे पातक आदि लगनेपर नदे- क्योंकि यह निषेध है कि प्रतिज्ञाकरकेभी अधर्मीको नदे ॥

भवार्थ-गौ पृथिवी तिल सुवर्ण ये चार सत्पात्रको सत्कारसे दे और अपने कल्याणका अभिलाषी मनुष्य अपात्रको कदाचित् न दे ॥ २०१ ॥

विद्यातपोभ्यांहीनेननतुग्राह्यःप्रतिग्रहः ।
गृह्णन्प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेवच २०२

पद-विद्यातपोभ्यां ३ हीनेन ३ न्ऽ- तुऽ- ग्राह्यः १ प्रतिग्रहः १ गृह्णन् १ प्रदातारं २ अधःऽ-नयति क्रि-आत्मान२ एवऽ-चऽ- ॥

योजना-विद्यातपोभ्यांहीनेन प्रतिग्रहः न तु ग्राह्यः गृह्णन् सन् आत्मानं चपुनः प्रदातारं अधः नयति ॥

ता० भा०- विद्या और तपसे हीन मनुष्य सुवर्ण आदिका प्रतिग्रह नले- क्योंकि विद्या तपसे हीन मनुष्य लेनेसे दाताको और आत्माको नरकमें लेजाता है॥ २०२ ॥

१ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतं ।

२ प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ।

दातव्यंप्रत्यहंपात्रेनिमित्तेतुविशेषतः ।
याचितेनापिदातव्यंश्रद्धापूतंतुशक्तितः ॥

पद- दातव्यं१ प्रत्यहंऽ- पात्रे७ निमित्ते७ तुऽ- विशेषतःऽ- याचितेन३ अपिऽ-दातव्यं श्रद्धापूतं १ तुऽ- शक्तितःऽ- ॥

योजना-पात्रे प्रत्यहं तु पुनः निमित्ते विशेषतः दातव्यं-याचितेनापि तुपुनः श्रद्धापूतं शक्तितः दातव्यं ॥

ता० भा०-पात्रको शक्तिके अनुसार शास्त्रोक्त विधिसे कुटुंबकी अनुकूलतासे प्रतिदिन दे और चंद्रग्रहण आदि निमित्तोंमें तो विशेषकरदे-और याचनासेभी श्रद्धासे पवित्र द्रव्यको शक्तिसेदे-याचितेन-इसपदसे यह सूचित है कि यथार्थ पात्रके समीप जाकर वा बुलाकर जो दान वह महाफल होता है- सोई स्मृतिमे कहा है कि जाकर जोदान दियाजाता है उसका अनंत फल है पात्रको बुलाकर जो दियाजाता है वह सहस्रगुणा और मांगनेपर पाचसौ ५०० गुणा होता है ॥ २०३ ॥

हेमशृंगीखुरैरौप्यैःसुशीलावस्त्रसंयुता ।
सकांस्यपात्रादातव्याक्षीरिणीगौःसदक्षिणा

पद-हेमशृंगी१ खुरैः३ रौप्यैः३ सुशीला १ वस्त्रसंयुता१ सकांस्यपात्रा दातव्या१ क्षीरिणी१ गौः१ सदक्षिणा१ ॥

योजना-हेमशृंगी रौप्यैः खुरैः युक्ता, सुशीला, वस्त्रसंयुता, सकांस्यपात्रा, क्षीरिणी, सदक्षिणा गौः दातव्या ॥

ता० भा०-गोदानमें विशेष कहते हैं कि सुवर्णके जिसके सींगहों रूपे (चांदी) के खुर हों और जो सुशील वस्त्रोंसे युक्त होय-

१ गत्वायद्दीयते दानं तदनन्तफलं स्मृतं । सहस्रगुणमाहूय याचितेतु तदर्द्धकं ।

कांशीके पात्र और दक्षिणासहित ऐसी दूधदेती गौको दे ॥ २०४ ॥

दातास्याःस्वर्गमाप्नोतिवत्सरान्रोमसंमितान् । कपिलाचेत्तारयतिभूयश्चासप्तमंकुलम् ॥ २०५ ॥

पद–दाता१ अस्याः ६ स्वर्गं २ आप्नोति क्रि– वत्सरान् २ रोमसंमितान् २ कपिला१ चेत्ऽ– तारयति क्रि– भूयःऽ–चऽ– आसप्तमंऽ–कुलं २ ॥

योजना–अस्याः दाता रोमसंमितान् वत्सरान् स्वर्गं आप्नोति कपिला चेत् आसप्तमं कुलं भूयः (अपि) तारयति ॥

ता० भा०–इस गौकी रोमोंके तुल्य वर्षोंतक गौका दाता स्वर्गमें जाता है यदि वह कपिला होयतो पिताआदि ६ सातमी अपनी आत्मा इन ७ कुलोंको तारती है–इसश्लोकमें भूयः पद अधिक अर्थमें है ॥ २०५ ॥

सवत्सारोमतुल्यानियुगान्युभयतोमुखीम् । दातास्याःस्वर्गमाप्नोतिपूर्वेणविधिनाददत् ॥

पद–सवत्सारोमतुल्यानि २ युगानि २ उभयतोमुखीं२ दाता१अस्याः६ स्वर्गं२ आप्नोति क्रि–पूर्वेण ३ विधिना ३ ददत् १ ॥

योजना–उभयतोमुखीं पूर्वेण विधिना ददत् सवत्सारोमतुल्यानि युगानि अस्याः दाता स्वर्गं आप्नोति ॥

ता०भा०–उभयतोमुखी गौको पूर्वोक्तविधिसे देता हुआ इस गौका दाता वत्स और गौके रोमोंके तुल्य युगोंतक स्वर्गमें प्राप्त होता है ॥ २०६ ॥

यावद्वत्सस्यपादौद्वौमुखंयोन्यांचदृश्यते । तावद्गौःपृथिवीज्ञेयायावद्गर्भंनमुंचति २०७

पद–यावत्ऽ–वत्सस्य६ पादौ१द्वौ१ मुखं१ योन्यां ७ चऽ– दृश्यते क्रि– तावत्ऽ–गौः १ पृथिवी १ ज्ञेया १ यावत्ऽ– गर्भं २ नऽ– मुंचति क्रि– ॥

योजना–यावत् वत्सस्य द्वौ पादौ चपुनः मुखं योन्यां दृश्यते–यावत् गर्भं नमुंचति तावत् गौः पृथिवी ज्ञेया ॥

ता०भा०– उभयतोमुखीका लक्षण और उसके दानका फल कहतेहैं– कि जब गर्भसे निकलते हुए वत्सके दो पाद और मुख योनिमें दीखतेहों तबतक गौ उभयतोमुखी होतीहै–और इतने वह गर्भको नही छोडती तबतक पृथिवीके समान जाननी–इससे उसके दानका अधिक फलहै२०७॥

यथाकथंचिद्दत्वागांधेनुंवाधेनुमेववा । अरोगामपरिक्लिष्टांदातास्वर्गेमहीयते २०८

पद– यथाकथंचित्ऽ–दत्वाऽ–गां२ धेनुं२ वाऽ–अधेनुं२ एवऽ– वाऽ– अरोगां२ अपरिक्लिष्टां२ दाता१ स्वर्गे७ महीयते क्रि– ॥

योजना–धेनुं वा अधेनुं अरोगां अपरिक्लिष्टां गां यथाकथंचित् दत्वा दाता स्वर्गे महीयते॥

ता० भा०– धेनु (दूधदेती) वा अधेनु और रोगरहित और अत्यंत दुर्बलतासे हीन गौको यथाकथंचित् देकर–अर्थात् सुवर्णआदि शृंगके अभावमेंभी पूर्वोक्त विधिसे गौका दाता स्वर्गमें पूजताहै ॥ २०८ ॥

श्रांतसंवाहनंरोगिपरिचर्यासुरार्चनम् । पादशौचंद्विजोच्छिष्टमार्जनंगोप्रदानवत् ॥

पद– श्रांतसंवाहनं१ रोगिपरिचर्या १सुरार्चनं१ पादशौचं १ द्विजोच्छिष्टमार्जनं १गोप्रदानवत्ऽ– ॥

योजना–श्रांतसंवाहनं–रोगिपरिचर्या–सुरार्चनं–द्विजानां पादशौचं–द्विजोच्छिष्टमार्जनं–गोप्रदानवत् ज्ञेयं ॥

ता० भा०– श्रांत (थका) का शय्या

आसन आदि दानसें श्रमका अपनयन (दूरकरना) और यथाशक्ति औषधी आदि दानसे रोगियोंकी परिचर्या-विष्णु आदि देवका गंधमाल्यसे पूजन, द्विजोंके चरणोंका धोना-और उनकेही उच्छिष्टका मार्जन ये सब पूर्वोक्त गोदानके तुल्य जानने॥२०९॥

भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान्। नैवेशिकंस्वर्णधुर्यंदत्वास्वर्गेमहीयते २१०॥

पद- भूद्वीपान् २ ऽच-अन्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान्२ नैवेशिकं२ स्वर्णधुर्यं२ दत्वाऽ- स्वर्गे७ महीयते क्रि- ॥

योजना- भूद्वीपान् चपुनः अन्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् नैवेशिकं स्वर्णधुर्य्यं दत्वा दाता स्वर्गे महीयते ॥

तात्पर्यार्थ-फल देनेवाली भूमि-देवमंदिर आदिमें दीपक-अन्न वस्त्र जल तिल घी परदेशियोंका आश्रय (धर्मशाला) और गृहस्थके लिये कन्या-सुवर्ण और धोरी बैल इनको देकर दाता स्वर्ग लोकमें पूजताहै-यहां भूमिदान आदिका स्वर्गफल अन्य फलोंकी निवृत्तिके लिये समझना क्योंकि इन वचनोंसें अन्यभी फल कहाहै कि जानकर वा अज्ञानसे जो पाप करताहै-गोचर्ममात्र पृथिवीके दानसें उसपापसे छुटताहै-जलका दाता तृप्तिको अन्नका दाता अक्षय सुखको-तिलका दाता इष्ट प्रजाको-दीपकका दाता उत्तम नेत्रोंको और वस्त्रका दाता चंद्रलोकको और अश्वका दाता अश्विनी कुमारके लोकको प्राप्त होताहै गोचर्मका लक्षण बृहस्पतिनें यह कहाहै कि सात हाथके दंडसें तीस दंडमांप-ऐसे दश गोचर्म होतेहैं-उसको देकर स्वर्गमें पूजताहै ॥

भावार्थ- भूमि दीपक अन्न वस्त्र जल तिल घी धर्मशाला विवाहके अर्थ कन्या सुवर्ण धोरी बैल इनको देकर स्वर्गमें पूजताहै ॥ २१० ॥

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् । यानंवृक्षंप्रियंशय्यांदत्वात्यंतंसुखीभवेत् ॥

पद- गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनं२ यानं२ वृक्षं२ प्रियं२ शय्यां२ दत्वाऽ- अत्यन्तंऽ- सुखी१ भवेत् क्रि- ॥

योजना- गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनं-यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्वा नरः अत्यन्तं सुखी भवेत ॥

तात्पर्यार्थ- गृह-धान्य (शाली शाठीचांवल) गोधूम आदि अन्न-अभय (भयभीतकी रक्षा) उपानहछत्र-माल्लिका (चमेली) आदिके पुष्पोंकी माला कुंकुम चंदन आदिअनुलेपन रथआदि यान (सवारी आम्रआदि) उपकारी वृक्ष धर्म आदिप्रिय और शय्या इनको देकर मनुष्य अत्यंत सुखी होताहै-यहां कोइ यह शंका करै कि धर्म आदिको सुवर्ण आदिके समान हाथमें नही देसकते इससे इनका दान असंभवहै तो ठीक नही, क्योंकि भूमिदान आदिकोंमेंभी ऐसाहीहै-और अन्यस्मृतिमेंभी धर्मदान सुनाहै कि-देवता गुरु माता पिता इनको प्रयत्नसे पुण्यको दे और अपुण्यका दान कहीं नही लिखा-लोभ आदिसे लेनेवाले और दाताको पापके देनेमें पापही बढताहै

१ यत्किंचित्कुरुते पाप ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा॥ अपिगोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति॥ वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रद प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमं। वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः।

२ सप्तहस्तेन दंडेनत्रिंशद्दंडनिवर्तनं दश तान्येव गोचर्म दत्वास्वर्गेमहीयते।

१ देवतानां गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च। पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं क्वचित्।

क्योंकि यह स्मृति है कि जो दुर्मति पापको निर्बल जानकर लेताहै उसको निंदित आचरणसे उसके समान पाप लगताहै–और दाताओंको दूना, सहस्रगुणा, अनंत पाप होताहै–यहां सब जगह देश काल पात्र–देनेयोग्य वस्तु और दाता इनके विशेषसे दानमें फल मनें कहा, हिंसामेंभी इसी प्रकार पाप समझना–इससें प्रतिगृहीताकी वृत्तिके विशेषसे दाता और प्रतिगृहीताको न्यून, अधिक फल जानना ॥

भावार्थ– गृह धान्य अभय उपानह छत्र माला अनुलेपन सवारी वृक्ष प्रिय (धर्मआदि) और शय्या इनको देकर दाता अत्यंत सुखी होताहै ॥ २११ ॥

सर्वधर्ममयंब्रह्मप्रदानेभ्योधिकंयतः ।
तद्ददत्समवाप्नोतिब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥

पद– सर्वधर्ममयं१ ब्रह्म१ प्रदानेभ्यः ५ अधिकं१ यतःऽ–तत् २ ददत् १ समवाप्नोति क्रि– ब्रह्मलोकं२ अविच्युतं२ ॥

योजना– यतः सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्यः अधिकं अस्ति तत् ददत् सन् अविच्युतं ब्रह्मलोकं समवाप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ–दानका फल कह आये अब दानके विनाभी दानके फलकी प्राप्तिमें कारणको कहतेहैं कि जिससे ये वेदधर्मोंका अवबोधक (ज्ञापक) होनेसे सर्व धर्ममय (धर्मरूप)है इससे इसका दान सब दानोंसे श्रेष्ठहै इससे अध्यापनद्वारा इस वेदको देताहुआ मनुष्य जिससे कभी नहीं गिरे ऐसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होताहै अर्थात् प्रलय पर्यंत ब्रह्मलोकमें टिकताहै इस ब्रह्म दानमें अन्यके स्वत्वको पैदा करना मात्र दानहै क्योंकि अपने स्वत्वकी निवृत्ति करनेको अशक्यहै ॥

भावार्थ– सब धर्मोंको बोधक वेदका दान सब दानोंसे अधिकहै इससे उसका दाता सदैवकेलिये ब्रह्म लोकको प्राप्त होताहै २१२

प्रतिग्रहसमर्थोपिनादत्तेयःप्रतिग्रहम् ।
येलोकादानशीलानांसतानाप्नोतिपुष्कलान् ॥

पद–प्रतिग्रहसमर्थः १ अपिऽ–नऽ–आदत्ते क्रि–यः १ प्रतिग्रहम् २ ये१ लोकाः१ दानशीलानां ६ सः १ तान् २ आप्नोति क्रि–पुष्कलान् २ ॥

योजना–यः प्रतिग्रहसमर्थः अपि सन् प्रतिग्रहं न आदत्ते स दानशीलानां ये लोकाः तान् पुष्कलान् आप्नोति ॥

ता॰ भा॰ दानके विनाभी दान फलकी प्राप्तिको कहते हैं कि जो मनुष्य प्रतिग्रहमें समर्थ (पात्र) होकरभी प्रतिग्रह नहीं लेता अर्थात् सुवर्ण आदिका स्वीकार नहीं करता– वह दानियोंके जो स्वर्गआदि लोकहैं उन सबको प्राप्त होताहै ॥ २१३ ॥

कुशाःशाकंपयोमत्स्यागंधाःपुष्पंदधिक्षितिः
मांसंशय्यासनंधानाःप्रत्याख्येयंनवारिच ॥

पद–कुशाः १ शाकं १ पयः १ मत्स्याः १ गंधाः १ पुष्पं १ दधि १ क्षितिः १ मांसं १ शय्या १ आसनं १ धानाः १ प्रत्याख्येयं १ नऽ वारि १ चऽ– ॥

योजना–कुशाः शाकं पयः मत्स्याः गंधाः पुष्पं दधि क्षितिः मांसं शय्या आसनं धानाः चपुनः वारि न प्रत्याख्येयम् ॥

तात्पर्यार्थ–कुशा शाक दूध मत्स्य गंध पुष्प दही भूमि मांस शय्या आसन धान (भुनेजौ) ये और चकारसे गृह आदि स्वयं प्राप्त हुये ये सब और जल इनको ग्रहण

१ यः [illegible]

करनेकी नादी न करे क्योंकि मनुका वचनहै कि शय्या घर कुशा गंध जल पुष्प मणि दही मत्स्य धान दूध मांस शाक इनको नाही न करे- और तैसेही वचनहै कि गंध जल मूल फल अन्न मधु घी अभय दक्षिणा प्राप्त हुये इनको सबसे लेले ॥

भावार्थ-कुशा शाक दूध मत्स्य गंध पुष्प दही भूमि मांस शय्या आसन धान और जल इनको सबसे ग्रहण करले ॥ २१४ ॥

अयाचिताहृतंग्राह्यमपिदुष्कृतकर्मणः ।
अन्यत्रकुलटापंढपतितेभ्यस्तथाद्विषः ॥

पद-अयाचिताहृतं १ ग्राह्यं १ अपि ऽ- दुष्कृतकर्मणः ६ अन्यत्र ऽ- कुलटापंढपतितेभ्यः ५ तथा ऽ- द्विषः ५ ॥

योजना-कुलटापंढपतितेभ्यः तथा द्विषः अन्यत्र दुष्कृतकर्मणः अपि अयाचिताहृतं ग्राह्यं भवति ॥

ता०भा०-कुलटा (व्यभिचारिणी) नपुंसक पतित शत्रु इनको छोडकर विना मांगनेके मिले पूर्वोक्त कुशा आदिको कुकर्मीसेभी ग्रहण करलेतो दोष नही ॥ २१५ ॥

देवातिथ्यर्चनकृतेगुरुभृत्यार्थमेवच ।
सर्वतःप्रतिगृण्हीयादात्मवृत्त्यर्थमेवच २१६

पद-देवातिथ्यर्चनकृते ४ गुरुभृत्यार्थं २ एव ऽ- च ऽ- सर्वतः ऽ- प्रतिगृह्णीयात् क्रि- आत्मवृत्त्यर्थं- एव ऽ- च ऽ- ॥

योजना-देवातिथ्यर्चनकृते च पुनः गुरुभृत्यार्थं चपुनः आत्मवृत्त्यर्थं सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् ॥

ता०भा०-आवश्यक जो देवता और अतिथिका पूजन- उसके और गुरु और भृत्य और अपने जीवनके लिये पतित और अत्यंत निंदितोंको छोडकर सबसे प्रतिग्रहको ले ॥ २१६ ॥

१ शय्यां गृहान्कुशान्गंधानापः पुष्पं मणीन्दधि । मत्स्यान् धानाः पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत् ।

२ गंधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् । सर्वतः प्रतिगृण्हीयान्मध्वाज्यामयदक्षिणाम् ।

इति दानधर्मप्रकरणम् ॥ ९ ॥

अथ श्राद्धप्रकरणम् १०

अमावास्याष्टकावृद्धिःकृष्णपक्षोयनद्वयम् ।
द्रव्यंब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः २१७

पद–अमावास्या १ अष्टका १ वृद्धिः १ कृष्णपक्षः १ अयनद्वयम् १ द्रव्यं १ ब्राह्मण-संपत्तिः १ विषुवत् १ सूर्यसंक्रमः ॥ १ ॥

व्यतीपातोगजच्छायाग्रहणंचंद्रसूर्ययोः ।
श्राद्धंप्रतिरुचिश्चैवश्राद्धकालाःप्रकीर्तिताः।

पद–व्यतीपातः १ गजच्छाया १ ग्रहणं १ चंद्रसूर्ययोः ६ श्राद्धं २ प्रति– रुचिः १ च– एव– श्राद्धकालाः १ प्रकीर्तिताः १ ॥

योजना–अमावास्या अष्टका वृद्धिः कृष्ण-पक्षःअयनद्वयं द्रव्यं ब्राह्मणसंपत्तिः विषुवत् सूर्यसंक्रमः व्यतीपातः गजच्छाया चंद्रसू-र्ययोः ग्रहणं चपुनः श्राद्धं प्रति रुचिः एते बुधैः श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥

तात्पर्यार्थ–अब श्राद्धप्रकरणका प्रारंभ करते हैं–भोजन करने योग्य वा उसके स्थानीय (प्रतिनिधि)द्रव्यका प्रेतके निमित्त जो त्याग उसे श्राद्ध कहते हैं वह दो प्रकार काहै पार्वण और एकोद्दिष्ट, तीन पुरुषोंके निमित्त जो किया जाय वह पार्वण और एक पुरुषके निमित्त जो किया जाय वह एको-द्दिष्ट कहाताहै फिर श्राद्ध तीन प्रकारकाहै नित्य नैमित्तिक काम्य– जिसके करनेके समयका नियमहो उस प्रति दिनके और अमावस्या अष्टका श्राद्धको नित्य– जिसके समयका नियम नहो उस पुत्र जन्म आदिके श्राद्धको नैमित्तिक– जो फलकी कामनासे किया जाय उस स्वर्गकी कामनासे करने योग्य कृत्तिका नक्षत्रके श्राद्धको काम्य कहते हैं–फिर वह पांच प्रकारकाहै कि नित्य श्राद्ध–पार्वण– वृद्धिश्राद्ध– एकोद्दिष्ट– और सपिंडीकरण–उनमें नित्य श्राद्ध इस वच-नसे कह आये कि पितर और मनुष्योंको प्रतिदिन अन्नदे–सोई मनुने कहाहै कि अन्न आदिसे वा जलसे वा दूध और मूलफलोंसे श्राद्ध पितरोंकी अक्षय प्रीतिका अभिलाषी करै अब पार्वण और वृद्धि श्राद्धके कालोंको कहते हैं–जिस दिन चंद्रमा न दीखे उसे अमा-वास्या कहते हैं यदि वह दोनों दिन होयतो पितरोंको देनेका समय अपराह्ण होताहै इसे वचनसे अपराह्णव्यापिनी लेनी–और पांच प्रकारसे विभाग किये दिनके चौथे भागको अपराह्ण कहते हैं–और हेमंत शिशिरके चारों मासोंमें कृष्ण पक्षकी चार अष्टमी आश्व-लायनने अष्टका कही हैं–और वृद्धि (पुत्र जन्म आदि) कृष्णपक्ष– दक्षिणायन– उत्तरायण– द्रव्य (कृष्णसार मृगका मांस आदि) उत्तम २ ब्राह्मणोंकी संपत्ति (मिलना) दोनों विषुवत् (मेषतुलकी संक्रांति) – सूर्यकी संक्रांति– अर्थात् एकराशीसे दूसरी राशीपर सूर्यका गमन– यद्यपि मेष और तुलसी संक्रांतिसे आजाते तथापि उनका पृथक् कहना अधिक फलकेलिये है– व्यतीपात योग– गजच्छाया इस-वचनमें कही है कि जब चंद्रमा मघापरहो और सूर्य हस्तपरहो और त्रयोदशीतिथिहो वह गजच्छाया कही है– जो कोई हाथीकी-छाया कहते हैं वह यहां कालके प्रकरणसे नहीलेनी– चंद्रमा और सूर्यका ग्रहण– और जब कर्ताकी श्राद्धकरनेमें रुचिहो वह–

और चशब्दसे युगादि आदितिथि- ये सबश्राद्धके काल बुद्धिमानोंने कहे हैं- यद्यपि चंद्रमा और सूर्यके ग्रहणमें भोजन न करे[1] इसवचनसे ग्रहणमें भोजनका निषेध है तथापि भोजनकरनेवालेको निषेधका दोष है दाताको पुण्यवृद्धिहै॥

भावार्थ- अमावास्या- अष्टका- वृद्धि- कृष्णपक्ष- उत्तरायण- दक्षिणायन- द्रव्य- ब्राह्मणोंकी संपत्ति- मेषतुलकी और सूर्यकी संक्रांति- व्यतीपात- गजच्छाया- चंद्रमा और सूर्यका ग्रहण और श्राद्धकरनेमें रुचि-ये सब श्राद्धके काल कहे हैं ॥२१७॥२१८॥

अग्र्याःसर्वेषुवेदेषुश्रोत्रियोब्रह्मविद्युवा ।
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामात्रिमधुस्त्रिसुपर्णिकः ॥

पद- अग्र्याः १ सर्वेषु ७ वेदेषु ७ श्रोत्रियः १ ब्रह्मवित्१ युवा १ वेदार्थवित् १ज्येष्ठसामा १ त्रिमधुः १ त्रिसुपर्णिकः १ ॥

योजना- सर्वेषु वेदेषु अग्र्याः-श्रोत्रियः -ब्रह्मवित्- युवा- वेदार्थवित्- ज्येष्ठसामा- त्रिमधुः-त्रिसुपर्णिकः एते ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः संति ॥

तात्पर्यार्थ- संपूर्ण ऋग्वेद आदिवेदोंमें अनन्यमन होकर एकरस पढनेमें जो समर्थ वे अग्र्य- और वेदके पढनेमें समर्थ श्रोत्रिय- और ब्रह्मज्ञानी- युवा जिसकी मध्यम अवस्थाहो- युवापद सबका विशेषण है- मंत्र और ब्राह्मणरूप वेदके अर्थको जो जाने वह वेदार्थवित्- ज्येष्ठसामवेदके पढनेके व्रतको करके जो ज्येष्ठसामकोपढे वह ज्येष्ठसामा- त्रिमधु (ऋग्वेदकाभाग) उसके व्रतको करके उसे जो पढे- त्रिसुपर्ण (ऋग्वेद और यजुर्वेदकाभाग) उसके पठनमें व्रतको करके जो उसे पढे वह त्रिसुपर्णिक- ये ब्राह्मण श्राद्धकी संपदा (सिद्ध करनेवाले) हैं ॥

भावार्थ- सब वेदोंमें मुख्य- वेदपाठी- ब्रह्मज्ञानी- युवा- वेदार्थका ज्ञाता- ज्येष्ठसामकापाठी- त्रिमधु और त्रिसुपर्णिक- ये ब्राह्मण श्राद्धके साधक हैं ॥ २१९ ॥

स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः ॥

पद- स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः १ त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः ॥ १ ॥

योजना- स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदो भवंति॥

तात्पर्यार्थ- स्वस्रीय (भानजा) ऋत्विज- जामाता- याज्य- (यज्ञकराइनेयोग्य) श्वशुर मातुल- त्रिणाचिकेत अर्थात् यजुर्वेदके एकदेशको उसके व्रतको करके जो पढे- दौहित्र शिष्य संबंधि बांधव ये सब पूर्वोक्त अग्र्य और श्रोत्रिय आदिके आभावमें जानने- क्योंकि मनुने[1] इसवचनसे स्वस्रीय आदिको गौण कहा है- कि हव्यकव्यके देनेमें यह प्रथम कल्पमें कहा और यह स्वस्रीय आदिकोंका अनुकल्प (गौण) सत्पुरुषोंमें यहभी निन्दित नहीं ॥

भावार्थ- भानजा ऋत्विज जामाता याज्य श्वशुर मामा त्रिणाचिकेत दौहित्र शिष्य संबंधि बांधव ब्राह्मण ये सब श्राद्धकी संपदा हैं॥

कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाःपंचाग्निर्ब्रह्मचारिणः ।
पितृमातृपराश्चैवब्राह्मणाःश्राद्धसंपदः ॥

पद-कर्मनिष्ठाः-तपोनिष्ठाः-पंचाग्निः१

---

१ चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यात् ।

१ एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः अनुकल्पस्त्वयंज्ञेयः सदा सद्भिरगर्हितः ।

ब्रह्मचारिणः १ पितृमातृपराः १ च१–एव१– ब्राह्मणाः १ श्राद्धसंपदः १ ॥

योजना– कर्मनिष्ठाः – तपोनिष्ठाः पंचाग्निः ब्रह्मचारिणः चपुनः पितृमातृपराः ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः संति ॥

ता० भा०– शास्त्रोक्त कर्मकरनेमें तत्पर तपस्वी– और पंचाग्नि अर्थात् सभ्य आवसथ्य और त्रेता ये पांच अग्नि जिसमेंहो अथवा पंचाग्नि विद्या पढताहो– ब्रह्मचारी (उपकुर्वाण वा नैष्ठिक) पितामाताके भक्त– और चकारसे ज्ञाननिष्ठ आदि– ये ब्राह्मण श्राद्धकी संपदा हैं अर्थात् श्राद्धमें अक्षयफलके दाता हैं ॥ २२१ ॥

रोगीहीनातिरिक्तांगःकाणःपौनर्भवस्तथा । अवकीर्णीकुंडगोलौकुनखीश्यावदंतकः ॥

पद– रोगी१ हीनातिरिक्तांगः १ काणः १ पौनर्भवः १ तथा१–अवकीर्णीः १ कुंडगोलौ१ कुनखी१ श्यावदंतकः १ ॥

योजना– रोगी– हीनातिरिक्तांगः काणः पौनर्भवः तथा अवकीर्णीः कुंडगोलौ कुनखी श्यावदंतकः एते ब्राह्मणाः श्राद्धे निंदिताः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ– रोगी (महारोगसेयुक्त) हीन वा अधिक जिसका अंगहो– एक नेत्रसे जो देखे वह काणा इसीसे अंध बधिर वृद्ध प्रजनन खंज दुश्चर्म आदिभी निंदित हैं और पौनर्भव अर्थात् पूर्वोक्त पुनर्भूकापुत्र अवकीर्णि (ब्रह्मचर्यअवस्थामें जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट होगयाहो) कुंडगोलक जिनके लक्षण– इसवचनमें ये कहे हैं कि पराई स्त्रीमें कुंडगोलक ये दोपुत्र पैदा होते हैं– पतिके जीवते कुंड और मरेपीछे गोलक पैदा होता है– कुनखी (जिसके नख संकुचितहों) श्यावदंतक (जिसके दांतस्वभावसे कालेहों) ये ब्राह्मण श्राद्धमें निंदित हैं ॥

भावार्थ–महारोगी–हीन वा अधिक जिसका अंगहो–काणा–पुनर्भूकापुत्र–अवकीर्णी–कुंड गोलक–कुनखी और श्यावदंत ये ब्राह्मण श्राद्धमें निंदितहैं ॥ २२२ ॥

भृतकाध्यापकःक्लीबःकन्यादूष्यभिशस्तकः मित्रध्रुक्पिशुनःसोमविक्रयीपरिविंदकः ॥

पद–भृतकाध्यायकः१ क्लीबः १ कन्यादूषी१ अभिशस्तकः १ मित्रध्रुक् १ पिशुनः १ सोमविक्रयी१ परिविंदकः १ ॥

योजना– भृतकाध्यापकः–क्लीबः कन्यादूषी अभिशस्तकः मित्रध्रुक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविंदकः एते ब्राह्मणाः श्राद्धे निंदिताः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ– वेतनको लेकर जो पढावे वह भृतकाध्यापक और वेतन देकर जो पढे वह भृतकाध्यापित–क्लीब (नपुंसक) असत् वा सत् दोषोंसे जो कन्याको दूषित करे वह कन्यादूषी ब्रह्महत्यादिसे जो युक्त वह अभिशस्त–मित्रध्रुक्–मित्रद्रोही–पराये दोषोंको कहनेवाला पिशुन (चुगल) सोमविक्रयी यज्ञमें सोम बेचनेवाला–परिविंदक–(परिवेत्ता) जो ज्येठेभाईसे पहिले अग्नि होत्रले वा विवाह करे वह परिवेत्ता और ज्येठा परिवित्ति होताहै सोई मनुने कहाहै कि जो छोटाभाई बडेभाईके रहते उससे पहिले अग्निहोत्रका ग्रहण और विवाह करताहै उसे परिवेत्ता और ज्येष्ठको परिवित्ति जानना–इसी प्रकार दाता और याजकभी निंदितहैं क्योंकि यह वचनहै की परिवित्ति और

१ परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ । पत्यौजीवति कुंडस्तु मृते भर्तरि गोलकः ।

१ दाराग्निहोत्रसंयोगं यः करोत्यग्रजे स्थिते।परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ।

२ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते।सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ।

परिवेत्ता और जिस कन्यासे विवाह हुआ हो वह विवाही कन्या दाता और याजक ये पांचों सबके सब नरकमें जाते हैं ॥

भावार्थ- भृतकाध्यापक क्लीब- कन्या-दूषी अभिशस्त मित्रध्रुक् पिशुन सोमविक्रयी ये ब्राह्मण श्राद्धमें निंदित हैं ॥ २२३ ॥

मातापितृगुरुत्यागीकुंडाशीवृषलात्मजः । परपूर्वापतिःस्तेनःकर्मदुष्टाश्चनिंदिताः ॥

पद- मातापितृगुरुत्यागी १ कुंडाशी १ वृषलात्मजः१ परपूर्वापतिः१ स्तेनः१ कर्मदुष्टाः१ चऽ- निंदिताः१ ॥

योजना- मातापितृगुरुत्यागी कुंडाशी वृषलात्मजः परपूर्वापतिः स्तेनः चपुनः कर्मदुष्टाः एते श्राद्धे निंदिताः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ- विना कारण जो माता पिता गुरुओंको त्यागे, इसी प्रकार भार्या पुत्रोंको त्यागीभी समझने क्योंकि मनुने इस वचनसे इनको समान दिखायाहै-कि वृद्धमाता पिता और साध्वी भार्या और बालक पुत्र इनकी सौ अकार्य करकेभी पालना करे यह मनुने कहाहै-कुंडके अन्नको भोजन जो करे वह कुण्डाशी-इसी प्रकार गोलकका अन्नभक्षकभी समझना-क्योंकि यह वचन है कि कुंडगोलकके अन्नको जो खाय उसे कुंडाशी कहतेहैं-वृषल (विधर्मी)का जो पुत्र परपूर्वा (पुनर्भू)का पति- चोर कर्मदुष्ट अर्थात् शास्त्रविरुद्ध कर्मके कर्ता- और चकारसे कितव देवलक आदिलेने ये श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मणहैं-यद्यपि अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु इत्यादि पूर्वोक्त वचनोंसे श्राद्धयोग्य ब्राह्मणोंके कहनेसेही-उनसे भिन्न अयोग्य सिद्धथे फिरभी रोगी आदिकोंका निषेध इस लियेहै कि पूर्वोक्त योग्य ब्राह्मण न मिलसके तो निषिद्धसे भिन्न ब्राह्मणोंको श्राद्धमें भोजन करादे ॥

भावार्थ-पिता माता गुरु इनका त्यागी कुंडके अन्नको भोक्ता वृषलका पुत्र-पुनर्भूका पति चोर और कर्मसे दुष्ट ये श्राद्धमें निन्दितहैं ॥ २२४ ॥

निमंत्रयेतपूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान्शुचिः । तैश्चापिसंयतैर्भाव्यंमनोवाक्कायकर्मभिः ॥

पद-निमंत्रयेत क्रि-पूर्वेद्युःऽ-ब्राह्मणान् २ आत्मवान् १ शुचिः १ तैः३ चऽ-अपिऽ-संयतैः ३ भाव्यं १ मनोवाक्कायकर्मभिः ३ ॥

योजना-आत्मवान् शुचिः सन् पूर्वेद्युः ब्राह्मणान् निमंत्रयेत च पुनः तैः अपि मनोवाक्कायकर्मभिः संयतैः भाव्यं ॥

तात्पर्यार्थ-अब पार्वणश्राद्धके प्रयोगको कहतेहैं शोक और उन्मादसे रहित अथवा जितेन्द्रियरूप आत्मवान् और शुद्ध होकर, पूर्वोक्त ब्राह्मणको पूर्व दिनमें वा उसीदिन श्राद्धके लिये निमंत्रण दे-कि श्राद्धमें भोजनके लिये अवसर रखियो क्योंकि मनुने इस वचनसे यह कहाहै कि श्राद्धकर्मके आनेपर पूर्वदिन वा उसीदिन कमसे कम तीन पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको निमंत्रणदे-और वे निमंत्रित ब्राह्मणभी मन वाणी काया कर्मसे नियतरहै ॥

भावार्थ-आत्मवान् शुद्धहोकर पहिले दिन ब्राह्मणोंको निमंत्रणदे और वे ब्राह्मणभी मन वाणी काया कर्मसे नियत शुद्ध रहै ॥ २२५ ॥

अपराह्णेसमभ्यर्च्यस्वागतेनागतांस्तुतान् । पवित्रपाणिराचांतानासनेषूपवेशयेत् २२६

१ वृद्धौचमातापितरौ साध्वीभार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ।

२ यस्तयोरन्नमश्नाति स कुंडाशीप्रकीर्तितः ।

१ पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते निमंत्रयेत-त्र्यवरान् सम्यग् विप्रान् यथोदितान् ।

पद–अपराह्णे ७ समभ्यर्च्य– स्वागतेन ३ आगतान् २ तु– तान् २ पवित्रपाणिः १ आचांतान् २ आसनेषु ७ उपवेशयेत् क्रि– ॥

योजना–आगतान् तान् अपराह्णे स्वागतेन समभ्यर्च्य पवित्रपाणिः सन् आचांतान् आसनेषु उपवेशयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–उन निमंत्रित ब्राह्मणोंको अपराह्णके समय स्वागत वचनसे पूजकर और उनके पैर धोकर और आचमन कराकर बिछाये हुए आसनोंपर हाथोंको पवित्र करके बैठादे–यद्यपि यहां सामान्यसे अपराह्ण कहाहै तथापि कुतुपमें प्रारंभ करके कुतुप आदि पांच मुहूर्तोंमें श्राद्धकी समाप्तिसे कल्याण होताहै क्योंकि यह वचनहै कि दिनके पंद्रह मुहूर्त्त सदैव होतेहै उनमें आठमें मुहूर्तको कुतुप कहते हैं–जिससे मध्याह्नमें सूर्य सदैव मंद होताहै इससें मध्याह्नमें आरंभ अनंत फलका दाताहै–कुतुप मुहूर्तसे पीछेके चार मुहूर्त और एक कुतुप ये पांचमुहूर्त स्वधा भवन कहे हैं तिसी प्रकार अन्यभी श्राद्धके उपयोगी कुतुप इन वचनोंमें कहेहैं कि मध्याह्न गैंडेका पात्र नेपाल कंबल चांदी कुशा तिल गौ और आठवा दौहित्र कहाहै–पापको कुत्सित कहतेहैं जिससें ये आठ उसपापके संताप करनेवाले हैं तिससें कुतुप नामसें विख्यातहै ॥

भावार्थ–अपराह्ण अयेहुए ब्राह्मणका स्वागतसें सत्कार पूर्वक पूजन और हाथोंको पवित्रकरके ब्राह्मणोंको आचमन कराकर आसनोंपर बिठावे ॥ २२६ ॥

युग्मान्दैवेयथाशक्तिपित्र्येयुग्मांस्तथैवच ।
परिस्त्रृतेशुचौदेशेदक्षिणाप्रवणेतथा २२७॥

पद–युग्मान् २ दैवे ७ यथाशक्ति अ– पित्र्ये ७ अयुग्मान् २ तथा अ–एव अ–च अ–परिस्तृते ७ शुचौ ७ देशे ७ दक्षिणाप्रवणे ७ तथा अ– ॥

योजना–दैवे युग्मान् तथा पित्र्ये अयुग्मान् ब्राह्मणान् यथाशक्ति परिस्तृते शुचौ तथा दक्षिणाप्रवणे देशे उपवेशयेत्– ॥

तात्पर्यार्थ–दैव (आभ्युदयिक) श्राद्धमें युग्म (सम) ब्राह्मणोंको यथाशक्ति बैठावे यहां वैश्वदेवमें दोदो और माताआदि तीनोंमें एक एकके दोदो वा तीनोंके दोदो इस प्रकार पिताआदि तीनोंमें एक एकके दोदो वा तीनोंके दोदो इसीप्रकार मातामहआदिमेंभी समझना–अथवा तीनोंमें वैश्वदेवश्राद्धतन्त्रसें (एक) करे– पित्र्य (पार्वण) श्राद्धमें अयुग्म (विषम) ब्राह्मणोंको बैठावे और इस श्राद्धको चारों तरफ वस्त्र आदिसें ढके और गोमय आदिसे लिंपे और दक्षिणको नीचे शुद्धदेशमेंकरै ॥

भावार्थ–आभ्युदयिक श्राद्धमें सम और पार्वण श्राद्धमें विषम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति बैठावे–और वस्त्र आदिसें ढके और शुद्ध दक्षिणदिशाको नीचे देशमें श्राद्धकरे–२२७

द्वौदैवेप्राक्त्रयःपित्र्येउदगेकैकमेववा ।
मातामहानामप्येवंतंत्रंवावैश्वदेविकम् ॥

पद–द्वौ १ दैवे ७ प्राक् १ त्रयः १ पित्र्ये ७ उदक् १ एकैकं १ एव अ– वा अ– मातामहानां ६ अपि अ– एवं अ– तंत्रं १ वा अ– वैश्वदेविकं १ ॥

---

१ अह्नो मुहूर्ता विख्याताः दशपंच च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तोयः स कालः कुतुप स्मृतः॥ मध्यान्हे सर्वदा यस्मात् मंदीभवतिभास्करः । तस्मादनंतफलदस्तत्रारंभो विशेष्यते ॥ ऊर्ध्वमुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयं । मुहूर्तपंचकं ह्येतत् स्वधाभवनमिष्यते ।

२ मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकंबलः । रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः । पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः । अष्टावेतेयतस्तस्मात् कुतुपा इति विश्रुताः ।

योजना–दैवे द्वौ प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रयः उदङ्मुखाः उपवेश्याः वा उभयत्र एकैकं उपवेशयेत् मातामहानामपि श्राद्धे एवं कर्त्तव्यं वा वैश्वदेविकं तंत्रं कर्त्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–वैश्वदेवमें दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख बैठावै और पिताआदिके स्थानमें तीन ब्राह्मण उत्तराभिमुख बैठावै अथवा विश्वेदेवा और पितरोंके श्राद्धमें एक एकही ब्राह्मण बैठावै यहां संभवसे विकल्प समझना मातामहोंके श्राद्धमें इसीप्रकार निमंत्रणसे लेकर ब्राह्मणोंकी संख्या और बैठनाका प्रकार समझना–अर्थात् पितृश्राद्धके समान सब कर्मको करना–अथवा पितृश्राद्ध और मातामह श्राद्धमे विश्वेदेवाओंका श्राद्ध एकतंत्रसें करना अर्थात् एकही विश्वेदेवाओंके स्थानमें दो ब्राह्मण बैठावै–और जब दोही ब्राह्मण मिले तो विश्वेदेवाओंके श्राद्धमे पात्ररखकर पितृपक्ष और मातृपक्षमें एकएक ब्राह्मण बैठादे सोई वशिष्ठने कहा है कि यदि श्राद्धमें एक ब्राह्मणको जिमावै तो वहां दैवश्राद्ध कैसेंहो बनाये हुये संपूर्ण अन्नको पात्रमें विश्वेदेवाओंके आगे रखकर फिरश्राद्धको करै और उसविश्वेदेवाओंके अन्नको अग्निमें होमदे– अथवा ब्रह्मचारीको दे॥

भावार्थ–दैवश्राद्धमें दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितृश्राद्धमें तीन ब्राह्मण उत्तराभिमुख वा दोनों जगे एक एक बैठावै और इसीप्रकार मातामहोंका श्राद्ध करै अथवा–पितृ और मातृ श्राद्धमें तंत्रसे विश्वेदेवाओंका श्राद्ध करै ॥ २२८ ॥

पाणिप्रक्षालनंदत्त्वाविष्टरार्थंकुशानपि ।
अवाहयेदनुज्ञातोविश्वेदेवासइत्यृचा२२९॥

पद–पाणिप्रक्षालनं २ दत्वा᳚– विष्टरार्थं᳚–कुशान्२ अपि᳚–आवाहयेत् क्रि–अनुज्ञातः१ विश्वेदेवासइत्यृचा ३ ॥

योजना–पाणिप्रक्षालनं विष्टरार्थं कुशान् अपि दत्वा ब्राह्मणैः अनुज्ञातः सन् विश्वेदेवासइत्यृचा विश्वेदेवान् आवाहयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–उसके अनंतर विश्वादेवाओंके लिये ब्राह्मणोंके हाथमें जल और आसन केलिये युग्म कुशाओंको देकर और विश्वेदेवाओंका आवाहनकरताहूं ऐसें ब्राह्मणोंसें पूछकर आवाहन कर इस ब्राह्मणोंकी आज्ञासें विश्वेदेवास इस ऋचासें वा आगच्छंतु महाभागाः इस स्मार्त मंत्रसें विश्वेदेवा ओंका आवाहन करैं–यह विश्वेदेवा ओंका आवाहन यज्ञोपवीती और सव्यहोकर प्रदक्षिण क्रमसे करना क्योंकि पितृश्राद्धमें यह विशेष वचनें है कि फिर अपसव्यहोकर *पितरोंका श्राद्ध और आवाहन अप्रदक्षिण* क्रमसे करै॥

भावार्थ–ब्राह्मणको हाथमें जल और आसनके लिये कुशादेकर ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनंतर विश्वेदेवास इसमंत्रसें विश्वेदेवाओंका आवाहन करै ॥ २२९ ॥

यवैरन्ववकीर्याथभाजनेसपवित्रके ।
शन्नोदेव्यापयःक्षित्वायवोसीतियवांस्तथा॥
यादिव्याइतिमंत्रेणहस्तेष्वर्घ्यंविनिक्षिपेत् ।

पद–यवैः३अन्ववकीर्य –अथ᳚ –भाजने७ सपवित्रके७शन्नोदेव्याः ३ पयः२–क्षिप्त्वा᳚–

१ यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथंभवेत्।अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च। दैवतायतनेकृत्वा ततः श्राद्धंप्रवर्तयेत्। प्रास्येदग्नौतदन्नंतु दद्याद्वाब्रह्मचारिणे॥

१ विश्वान्देवानहमावाहयिष्ये ।

२ विश्वेदेवा सआगतशृणुताम इमᳲहवं एदबर्हिर्निषीदत ।

३ आगच्छंतु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ये यत्र योजिताः श्राद्धे सावधानाः भवन्तु ते ।

४ अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणं।

यवोसीतिऽ-यवान् २ तथाऽ-यादिव्या इतिऽ-मंत्रेण३ हस्तेपु ७अर्घ्यं २विनिक्षिपेत् क्रिऽ- ॥

योजना-अथ यवैः अन्ववकीर्य सपवित्रके भाजने शन्नोदेव्याः पयः यवोसीतिमंत्रेण यवान्ऽ क्षिप्त्वा तथा यादिव्याइति मंत्रेण हस्तेपु अर्घ्यं विनिक्षिपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर विश्वेदेवाओंके लिये ब्राह्मणके समीप भूमिमें प्रदक्षिण क्रमणसे जौं बखेरकर फिर चांदी आदिके और दो कुशाओंकी पवित्रीसे ढके पात्रमें शन्नोदेवी ईस मंत्रसे जल और यवोसि इसमंत्रसे यव डाल कर अर्घ्यपात्र और पवित्रीसे ढके ब्राह्मणों के हाथमें या दिव्या इस मंत्रसे हे विश्वेदेवाओ यह अर्घ्य आपके लिये हैं यह कहकर अर्घ्यका जल छोडदे ॥

भावार्थ-भूमिपर यवोंको बखेर पवित्री सहित अर्घ्यपात्रमें शन्नोदेवी इस मंत्रसे जल और यवोसिइसमंत्रसे जौं डालकर फिर उसअर्घ्यको यादिव्या इसमंत्रसे ब्राह्मणोंके हाथपर छोडे ॥ २३० ॥

दत्त्वोदकंगंधमाल्यंधूपदानंसदीपकम् २३१
तथाच्छादनदानंचकरशौचार्थमंबुच ।
अपसव्यंततःकृत्वापितृणामप्रदक्षिणम् ॥

पद- दत्वाऽ -उदकं २ गंधमाल्यं २ धूपदानं २ सदीपकं २ तथाऽ- आच्छादनदानं २ चऽ- करशौचार्थ २ अम्बु २ चऽ- अपसव्यं १ततःऽ- कृत्वाऽ- पितृणां ६ अप्रदक्षिणं १ ॥

योजना-उदकं गंधमाल्यं सदीपकं धूपदानं तथा आच्छादनदानं चपुनः करशौचार्थं अंबु दत्वा ततः अपसव्यं कृत्वा पितृणां कर्म अप्रदक्षिणं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर हाथोंकी शुद्धिके लिये जल देकर क्रमसे गंध पुष्प धूप दीप तथा आच्छादन वस्त्र इनकोदे-गंध आदिमें अन्य स्मृतियोंमें कहाहुआ यह विशेष समझना-विष्णुने कहा है कि चंदन कुंकुम कपूर अगुरु पद्मक (कमल) येउपलेपनके लियेदे-पुष्पभी इस वचनमें कहे हुये लेनें कि श्राद्धमें जाती मल्लिका श्वेतयूथिका (जुही) जलमें पैदाहुये पुष्प और चमेली ये श्रेष्ठहैं-और ईस वचनमें कहे पुष्पवर्जित जानने-कि जिनमें अधिक गंधहो वा गंध नहो जो चैत्य (चबूतरा) वृक्षकेहों, वा रक्तवर्णहों, कांटेवाले वृक्षका नहो, और अकंटकवृक्षका शुक्र और सुगंधिहो, वहदे-और रक्तनहो और रक्तभी कुंकुम और जलजकोदे और धूपमें यह विशेष विष्णुने कहाहै कि संपूर्ण प्राणियोंके अंगकी धूपनदे घृत मधु संयुक्त गुग्गुल चंदन अगर देवदारु सरल आदिकी धूपदे दीपकमें यह विशेष शंखने कहाहै घृत वा तिलोंके तेलका दीपकदे और वसा (चर्बी) और मेदाके दीपकको वर्जदे और आच्छादनका वस्त्र शुक्र और नवाहो और जो जीर्ण नहो ऐसा दशा (छोर) सहितदे-यह संपूर्ण वैश्वदेव श्राद्धका कर्म उत्तराभिमुखहोकर करै-

१ शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवंतु पीतये। शंय्योरभिस्रवंतुनः ।

२ यवोसियवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः ।

३ यादिव्याआपः पयसासंबभूवुर्याअंतरिक्षा उतपार्थिवीर्याः हिरण्यवर्णास्तानआपः शिवाःसशस्योनाः सुहवा भवंतु ।

१ चंदनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्युपलेपनार्थे ।

२ श्राद्धेजात्यः प्रशस्ताः स्युर्मल्लिकाश्वेतयूथिका।जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च पुष्पकं ।

३ उग्रगंधीन्यगंधानिचैत्यवृक्षोद्भवानि च ।पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ।

४ प्राण्यंगं सर्वं धूपार्थे न दद्यात् घृतमधुसंयुक्तं गुग्गुलुश्रीखण्डागरुदेवदारुसरलादि ।

५ घृतेनदीपो दातव्यस्तिलतैलेनवा पुनः। वसामेदोद्भवंदीपं प्रयत्नेनविवर्जयेत्।आच्छादनंच शुभ्रंनवमहतं सदशंदद्यात् ।

और पितृ श्राद्धका कर्म दक्षिणाभिमुख होकरकरै-ऐसेही वृद्ध शातातपने कहा है कि देवताओंको उत्तराभिमुख होकर और पितरोंको दक्षिणाभिमुख होकर पार्वणश्राद्धमें विधिसे देवपूजनपूर्वक संपूर्णहै ॥

भावार्थ-जल गंध माला धूप दीप आच्छादन वस्त्र और हस्तप्रक्षालनके लिये जल देकर फिर अपसव्य होकर पितरोंका श्राद्ध अप्रदक्षिण करै ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

द्विगुणांस्तुकुशान्दत्वाह्युशंतस्त्वेत्यृचा-
पितॄन् । आवाह्यतदनुज्ञातोजपेदायंतुन-
स्ततः ॥ २३३ ॥

पद-द्विगुणान् २ तु- कुशान्२ दत्वा-हि-उशन्तस्त्वेत्यृचा ३ पितॄन् २ आवाह्य-तदनुज्ञातः१जपेत्-क्रि-आयन्तुनः२ततः-॥

योजना-द्विगुणान् कुशान् दत्वा ततः तदनुज्ञातःसन् पितॄन् आवाह्य आयन्तुनः इतिमंत्रं जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-वैश्वदेव कर्मके अनंतर अपसव्य हुये यज्ञोपवीतको सव्य करके-यहां ततः यह कहनेसे देव काण्डका अनुसमय (उत्तरकाल) सूचन किया-पिता आदि तीनोंको द्विगुण भुमहों ऐसी विषम कुशा ओंको वाम भागमें जलदानपूर्वक आसनोंपरदेकै फिर यहदे क्योंकि आश्वलायनकी स्मृति है कि जल देकर द्विगुन भुग्न कुशा और जलदे- यह आर्चनमें जलदान वैश्वदेव और पितृश्राद्धमें पदार्थ २ के साथ देना यह सूचना करनेके लिये समझना-पिता पितामह प्रपितामह इनका आवाहन करनाहु यह ब्राह्मणोंसे पूछकर आवाहन कर इस ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पितरोंका आवाहन उश-न्तस्त्वानिधीमहि इसे ऋचासें करके आयन्तुनःपितरः इसे मंत्रसे स्तुतिकरै ॥

भावार्थ-द्विगुणी भुग्न कुशाओंको देकर फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उशन्त इत्यादि ऋचासे पितरोंका आवाहन करके आयन्तुनः इत्यादि मंत्रको जपै ॥ २३३ ॥

अपहताइतितिलान्विकीर्यचसमंततः ।
यवार्थास्तुतिलैःकार्याःकुर्यादर्ध्यादिपूर्ववत् ॥

पद- अपहताइति-तिलान्२विकीर्य-च-समंततः-यवार्थाः१तु-तिलैः३ कार्याः१ कुर्यात् क्रि- अर्घ्यादि २ पूर्ववत् ॥

दत्वार्घ्यंसंस्रवांस्तेषांपात्रेकृत्वाविधानतः ।
पितृभ्यःस्थानमसीतिन्युब्जंपात्रंकरोत्यधः

पद-दत्वा-अर्घ्यं १ संस्रवान् २ तेषां ६ पात्रे ७ कृत्वा- विधानतः-पितृभ्यःस्थानमसीति-न्युब्जं२पात्रं२करोति क्रि- अधः-॥

योजना-चपुनःअपहता इति मंत्रेण समंततः तिलान् विकीर्य्य यवार्थाः तिलैः कार्याः पुनः अर्घ्यादि पूर्ववत् कुर्यात्- अर्घ्य दत्वा तेषां (अर्घ्याणां) संस्रवान् विधानतः पितृपात्रे निधाय पितृभ्यःस्थानमसीति मंत्रेण पात्रं अधः न्युब्जं कुर्यात्- ॥

तात्पर्यार्थ-जैसे जो लिखदों कर अर-क्षित (वर्जना) आदिकार्य तिलोंसे करने फिर अर्घ्यपात्रके आसनसे लेकर आच्छादनपर्यन्त कर्मको पूर्ववत् करै- जिसमें यह लिखा है कि तिलोंको अपहता असुरारक्षांसि इत्यादि मंत्रसे ब्राह्मणोंके चारों तरफ अव-

१ [illegible]

२ [illegible]

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

यवोसीति५-यवान्२ तथा५-यादिव्या इति५-मंत्रेण३ हस्तेषु ७अर्घ्यं २विनिक्षिपेत् क्रि५- ॥

योजना-अथ यवैः अन्ववकीर्य सपवित्रके भाजने शन्नोदेव्याः पयः यवोसीतिमंत्रेण यवान्५ क्षिप्त्वा तथा यादिव्याइति मंत्रेण हस्तेषु अर्घ्यं विनिक्षिपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर विश्वेदेवाओंके लिये ब्राह्मणके समीप भूमिमें प्रदक्षिण क्रमणसे जौं वखेरकर फिर चांदी आदिके और दो कुशाओंकी पवित्रीसे ढके पात्रमें शन्नोदेवी इस मंत्रसे जल और यवोसि इसमंत्रसे यव डाल कर अर्घ्यपात्र और पवित्रीसे ढके ब्राह्मणों के हाथमें या दिव्या इस मंत्रसे हे विश्वेदेवाओ यह अर्घ्य आपके लिये है यह कहकर अर्घ्यका जल छोडदे ॥

भावार्थ-भूमिपर यवोंको वखेर पवित्री सहित अर्घ्यपात्रमें शन्नोदेवी इस मंत्रसे जल और यवोसिइसमंत्रसे जौं डालकर फिर उसअर्घ्यको यादिव्या इसमंत्रसे ब्राह्मणोंके हाथपर छोडे ॥ २३० ॥

दत्त्वोदकंगंधमाल्यंधूपदानंसदीपकम् २३१
तथाच्छादनदानंचकरशौचार्थमंबुच ।
अपसव्यंततःकृत्वापितृणामप्रदक्षिणम् ॥

पद-दत्वा५-उदकं २ गंधमाल्यं २ धूपदानं २ सदीपकं २ तथा५-आछादनदानं २ च५-करशौचार्थं २ अम्बु २ च५-अपसव्यं १ततः५- कृत्वा५- पितृणां ६ अप्रदक्षिणं १ ॥

योजना-उदकं गंधमाल्यं सदीपकं धूपदानं तथा आच्छादनदानं चपुनः करशौचार्थं अंबु दत्वा ततः अपसव्यं कृत्वा पितृणां कर्म अप्रदक्षिणं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर हाथोंकी शुद्धिके लिये जल देकर क्रमसे गंध पुष्प धूप दीप तथा आच्छादन वस्त्र इनकोदे-गंध आदिमे अन्य स्मृतियोंमें कहाहुआ यह विशेष समझना-विष्णुने कहा है कि चंदन कुंकुम कपूर अगुरु पद्मक (कमल) येउपलेपनके लियेदे-पुष्पभी इस वचनमें कहे हुये लेनें कि श्राद्धमें जाती मल्लिका श्वेतयूथिका (जुही) जलमें पैदाहुये पुष्प और चमेली ये श्रेष्ठहैं-और इस वचनमें कहे पुष्पवर्जित जानने-कि जिनमें अधिक गंधहो वा गंध नहो जो चैत्य (चबूतरा) वृक्षकेहों, वा रक्तवर्णहों, कांटेवाले वृक्षका नहो, और अकंटकवृक्षका शुक्ल और सुगंधिहो, वहदे-और रक्तनहो और रक्तभी कुंकुम और जलजकोदे और धूपमे यह विशेष विष्णुने कहाहै कि संपूर्ण प्राणियोंके अंगकी धूपनदे घृत मधु संयुक्त गुग्गुल चंदन अगर देवदारु सरल आदिकी धूपदे दीपकमें यह विशेष शंखने कहाहै घृत वा तिलोंके तेलका दीपकदे और वसा (चर्वी) और मेदेके दीपकको वर्जदे और आच्छादनका वस्त्र शुक्ल और नवाहो और जो जीर्ण नहो ऐसा दशा (छोर) सहितदे-यह संपूर्ण वैश्व देव श्राद्धका कर्म उत्तराभिमुख होकर करे-

१ शन्नोदेवीरभिष्टय आपोभवंतु पीतये । शंय्योरभिस्रवंतुनः ।

२ यवोसियवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः ।

३ यादिव्याआपः पयसासंबभूवुर्याअंतरिक्षा उतपार्थिवीर्याः हिरण्यवर्णास्तानआपः शिवाःसश्स्योनाः सुहवा भवंतु ।

१ चंदनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्युपलेपनार्थं ।

२ श्राद्धेजात्यः प्रशस्ताः स्युर्मल्लिकाश्वेतयूथिका।जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च पुष्पकं ।

३ उग्रगंधीन्यगंधानिचैत्यवृक्षोद्भवानि च ।पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ।

४ प्राण्यंगं सर्वं धूपार्थं न दद्यात् घृतमधुसंयुक्तं गुग्गुलुंश्रीखंडागरुदेवदारुसरलादि ।

५ घृतेनदीपो दातव्यस्तिलस्तैलेनवा पुनः। वसामेदोद्भवदीपं प्रयत्नेनविवर्जयेत्।आच्छादनंच शुभ्रंनवमहतं सदशंदद्यात् ।

दक्षिण वखेरकर अयुग्म कुशाओंसे बनाई हुई कूचीसे ढके तीन चांदीके पात्रोंमें शन्नो-देवी० इस मंत्रसे जल और तिलोंसे सोम देवत्य इस मंत्रसे तिल पुष्प गंध इनको डालकर उन पात्रोंको स्वधार्घ्या इस मंत्रसे ब्राह्मणोंके आगे स्थापन करे फिर यादिव्या इस मंत्रके अंतमें हेपितः यह अर्घ्य आपको मिलो–हेपितामह यह अर्घ्य आपको मिलो–हे प्रपितामह यह अर्घ्य आपको मिलो–यह कहता हुआ उस अर्घ्यको ब्राह्मणोंके हाथपर छोडदे दोनों स्थानोंमें एकरक्खै इस पक्षमेंभी तीन पात्र करने–इस प्रकार अर्घ्यको देकर उन अर्घ्योंके संस्रवो (ब्राह्मणोंके हाथसें गिराहुआ

जिसका

(कूंची)

ऊपर पितृ

पात्रको न्यु

पात्र और

पुष्प धूप ... को

हेपितः यह ... तःयह

पुष्प आपव ... हुआदे ॥

भावार्थ ... से ब्राह्मणोंके

चारोंतरफ ... और यव (जौं) के

स्थानमें ति ... और अर्घ्य आदिको

पूर्ववत् करे ... र और उनके संस्रवको

पात्रमें करके पितृभ्यःस्थानमसि इस अपरपे उस पात्रको न्युब्ज (अधो मुख) प्रदक्षिण २३५॥

योजना–

...न्नादायपृच्छत्यन्नंघृतप्लुतम् ।

...तोहुत्वाग्नौपितृयज्ञवत् ॥

पद–अग्नौ ७ करिष्यन् १ आदाय–पृच्छति क्रि–अन्नं २ घृतभृतं २ कुरुष्व क्रि– इति– अभ्यनुज्ञातः१ हुत्वा– अग्नौ७ पितृयज्ञवत्– ॥

हुतशेषंप्रदद्यात्तुभाजनेषुसमाहितः ।
यथालाभोपपन्नेषुरौप्येषुचविशेषतः२३७॥

पद–हुतशेषं २प्रदद्यात् क्रि–तु–भाजनेषु–समाहितः २ यथालाभोपपन्नेषु ७ रौप्येषु ७ च–विशेषतः– ॥

योजना–अग्नौ करिष्यन् घृतप्लुतं अन्नं आदाय पृच्छति कुरुष्व इति अभ्यनुज्ञातः सन् पितृयज्ञवत् अग्नौहुत्वा हुतशेषं समाहितः सन् यथालाभोपपन्नेषु चपुनः विशेषतः ...षु दद्यात् ॥

...र्थ–फिर अग्नौकरण करनेकी इ- ...गी मिले अन्नको लेकर ब्राह्मणोंको यह ... कि मैं अग्नौकरणकर्ताहूं–यहां घृतका ग्रहण सूपशाक आदिकी निवृत्तिके लियेहै जब ब्राह्मण करो यह आज्ञादें तब प्राचीनावीती (सव्य)होकर अग्निका स्थापन करकै और मेक्षणसें घीको लेकर अवदानके समान इन मंत्रोंसे होम करे कि सोमायपितृमतेस्वधा नमः–अग्नयेकव्यवाहनाय स्वधानमः– पिंड-पितृयज्ञके प्रकारसे यह अग्निहोत्र करकै और मेक्षणको अग्निके समीप रखकर होमसें शेष अन्नको मिट्टिके पात्रोंको छोडकर यथाशक्ति मिलेहुये पात्रोंमें और विशेषकर चांदीके पिता आदिके पात्रोंमें परसदे विश्वेदेवाओंके पात्रमे नपरसे और परसताहुआ समाहित रहै अर्थात् अन्यत्र मनको न लगावै–यहां यद्यपि अग्नौ यह अविशेषसे कहाहै तथापि जिसने अग्निहोत्र लेरक्खाहै उसको सर्वाधानपक्षमें औपासन अग्निका अभावहै इससे पिण्डपितृयज्ञके अंतर्भावि पार्वण श्राद्धमे शास्त्रोक्त दक्षिणाग्नि समीपहै इससें दक्षिणाग्निमे

१ शन्नोदेवीरभि... सवंतुनः ।

२ यवोसियवयास्मद्द्वेषो ...

३ यादिव्याआपः पयसासंबभूवे देवनिर्मितः अन्त... पिवीर्याः हिरण्यवर्णास्तानआप.प्रणीहि नः स्वाहा । सुहवा भवंतु ।

होमकरै क्योंकि स्मार्त कर्म विवाह अग्निमें करै इसका यह अपवाद है सोई मार्कण्डेय ने कहाहै आहिताग्नि मनुष्य सावधानीसे दक्षिणाग्निमें अग्नौकरण होम करे अनाहिताग्नितो औपसद अग्निमें औपसद नहोयतो ब्राह्मणका मुख वा जलमें करै और जब अर्धाधानपक्षहै तब औपासन अग्निभी होमकर्ताहै तब आहिताग्नि और अनाहिताग्नि दोनोंका होम औपासनअग्निमें होताहै–इसी प्रकार अन्वष्टका आदि तीनोंमें पिंडपितृयज्ञकाही प्रकार मानाहै और काम्य आदि चार श्राद्धमें ब्राह्मणके हाथमेंही अग्नौकरण होम होताहै–सोई गृह्यकारोंने कहाहैकि अन्वष्टका श्राद्ध पूर्वदिन (सप्तमी) में होताहै–और पार्वण मास २ में होताहै–काम्य अभ्युदयमें और एकोद्दिष्ट आठमां होताहै–पहिले चारो श्राद्धोंमें साग्नियोंका होम वह्निमें होताहै और पिछले चारोंमें ब्राह्मणोंके हाथमें होताहै इसका अर्थ स्पष्ट यहहै कि हेमंतशिशिरके चारों मासोंमे कृष्णपक्षकी अष्टमी चारों अष्टका होतीहैं–नौमीमें जो श्राद्ध किया जाय वह आन्वष्टक्य कहताहै–सप्तमीमें जो किया जाय वह पूर्वेद्यु कहाताहै–मास २ के कृष्णपक्षकी पंचमी आदि जिस किसी तिथि में अन्वष्टकाश्राद्धके अतिदेशसे जो किया जाय वह, और अमावास्याके पिंड पितृयज्ञके अनंतर जो किया जाय वहपार्वण स्वर्ग आदिकी इच्छासे कृत्तिका आदिमें जो किया जाय वह काम्य पुत्रकी उत्पत्ति तडाग आदि की प्रतिष्ठामें जो कियाजाय वह अभ्युदय– पूर्वोक्त चार ४ अष्टकाओंमें अष्टका श्राद्ध और एकोद्दिष्ट यहां एकोद्दिष्ट शब्दसे सपिंडी लेतेहैं–उसमेभी एकका उद्देश्यहै–केवल पार्वणका ग्रहण नहीं क्योंकि साक्षात् एकोद्दिष्टमें अग्नौकरणका अभावहै–अथवा गृह्यभाष्यकारके मतसे साक्षात् एकोद्दिष्टमेंभी पाणिहोम होताहै–इससे एकोद्दिष्टसे साक्षातही एकोद्दिष्ट लेना. इन आठों में पहिले चार श्राद्धोंमें साग्निकका अग्निमें होम और पिछले चारों निरग्नि वा साग्निक पितृ ब्राह्मणके हाथमे होम होताहै– जिसका पिता मरगयाहो उसको पार्वण सदैव करना इससे वहभी ब्राह्मणके हाथमें होमकरे क्योंकि यह वचनहैकि मरगया है पिता जिस्का ऐसा जो द्विज वह मास २की प्रतिपदाको जो पार्वण नही देता वह प्रायश्चित्तकाभागी होताहै इसी प्रकार काम्य अभ्युदय अष्टका एकोद्दिष्ट इनमेंभी हाथमें होम होताहै–क्योंकि यह मनुका वचनहै कि अग्निनहो तो ब्राह्मणके हाथमें अन्नदेदे परंतु ब्राह्मणके हाथमें दिये अन्नका पृथक् ग्रास का निषेध कहतेहैं–अर्थात् उस अन्नको सब अन्नमें मिलाकर खाय– सोई गृह्यकारोंने कहाहै कि हाथमें दिये अन्नको निर्बुद्धि खातेहैं उससे पितर तृप्त नही और शेष अन्न पितरोंको नहीं मिलता जो हाथमे दिया अन्नहै और जो परसाहुआ अन्नहै उसे मिलाकर खाय पृथक् भावनकरै ॥

१ आहिताग्निस्तु जुहुयात् दक्षिणाग्नौ समाहितः अनाहिताग्निस्त्वौपसद अग्न्यभावेद्विजेप्सु वा ।

२ अन्वष्टक्यच पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणं । काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमे । चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ।

१ न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः । इंदुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ।

२ अग्न्यभावेतु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।

३ अन्नं पाणितले दत्तं पृथगश्नन्त्यबुद्धयः । पितरस्तेन तृप्यंति शेषान्नं न लभंति ते । यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितं । एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ।

भावार्थ- अग्नौकरण करता हुआ मनुष्य घीसें मिलें अन्नको लेकर ब्राह्मणोंसें अग्नौकरण की पूछे जब करनेकी आज्ञा देदे तब पितृ यज्ञके समान अग्निमें होमकरै- होमसें शेष अन्नको जैसे मिलें वा विशेषकर चांदिके पात्रोंमे सावधानीसे परसै ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

दत्वान्नंपृथिवीपात्रमितिपात्राभिमंत्रणम् ।
कृत्वेदंविष्णुरित्यन्नेद्विजांगुष्ठंनिवेशयेत् ॥

पद-दत्वाऽ अन्न २ पृथिवीपात्रंइति ऽ- पात्राभिमंत्रणं २ कृत्वाऽ- इदंविष्णुरितिऽ- अन्ने ७ अंगुष्ठं२-निवेशयेत् क्रि- ॥

योजना-अन्नं दत्वा पृथिवीपात्रं इति मंत्रेण पात्राभिमंत्रणं कृत्वा इदंविष्णुः इति मंत्रेण अन्ने अंगुष्ठं निवेशयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-भा०-ओदन सूप पायस आदि अन्नको पात्रमें देकर पृथिवीतिपात्रं[1] ईस मंत्रसे पात्रोंका अभिमंत्रण करके इदंविष्णुः[2] इस मन्त्रसे अन्नके ऊपर ब्राह्मणके अंगुष्ठका स्पर्श करावे-और विश्वेदेवा ओंके आगे सव्य होकर हव्यकी रक्षाकरो और पितरोंके आगे अपसव्य होकर हे विष्णो कव्यकी रक्षा करो यह कहे ऐसेही मनुने कहाहै२३८

सव्याहृतिकांगायत्रींमधुवाताइतित्र्यृचम् ।
जप्त्वायथासुखंवाच्यंभुंजीरंस्तेपिवाग्यताः

पद-सव्याहृतिकां २ गायत्रीं १ मधुवाताइतिऽ-तृचं२ जप्त्वाऽ- यथासुखंऽ-वाच्यं १भुंजीरन् क्रि- ते १ अपिऽ- वाग्यताः१॥

योजना- सव्याहृतिकां गायत्रीं- मधुवाता इति तृचं जप्त्वा यथासुखं जुषध्वं इति- वाच्यं ते ब्राह्मणाः अपि वाग्यताः (मौनिनः) भुंजीरन् ॥

तात्पर्यार्थ- उसके अनंतर परसाहुआ और परसने योग्य यह अन्न तृप्तिपर्यंत विश्वेदेवाओंको प्राप्तहो यह कहकर जौं और जलसे देव श्राद्धमें निवेदनकरके और तैसेही पिता पितामह प्रपितामहोंको अमुकगोत्र अमुकशर्माको परसाहुआ और परसनेयोग्य यह अन्न तृप्तिपर्यंत प्राप्तहो यह कहकर तिल और जलदानसे निवेदनकरके आपोशानदेकर और पूर्वोक्त व्याहृतियोंसहित गायत्री और मधुवाता इन तीन ऋचाओंको जपकर और तीनवार मधु कहकर सुखसे भोजनकरो यह कहै और वे ब्राह्मणभी मौन होकर भोजनकरैं- पारस्करको यह वचन है कि पितर और देवताओंके निमित्त अन्नका संकल्प करके सावित्री और मधुवाता ऋचाओंको जपै- फिर श्राद्धका निवेदन आपोशान- यथा सुख भोजन करो कहना- भोजन- तीन वा एकवार व्याहृतिसहित गायत्रीका और मधुवाता इन तीन ऋचाओंका जप और तीनवार मधु३ जपकरै[1] ॥

भावार्थ- भू आदि व्याहृतियोंसहित गायत्री और मधुवाता इन तीन ऋचाओंका जप करके कहै कि सुखसे भोजन करो वे ब्राह्मणभी मौनहोकर भोजनकरैं ॥२३९॥

अन्नमिष्टंहविष्यंचदद्यादक्रोधनोत्वरः ।
आतृप्तेस्तुपवित्राणिजप्त्वापूर्वजपंतथा २४०

पद-अन्नं २-इष्टं २हविष्यं २चऽ-दद्यात् क्रि-अक्रोधनः १ अत्वरः १आऽ-तृप्तेः ५ तुऽ-पवित्राणि २ जप्त्वाऽ-चऽ-एवऽ-अनुमान्यऽ-चऽ- ॥

१ पृथिवीते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेमृते मृतं जुहोमि स्वाहा ।

२ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांसुरे ।

१ संकल्प्यपितृदेवेभ्यः सावित्रीं मधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशानं सुखमेवेति भोजनम् । गायत्री त्रिःसकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्विकां । मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्येतत्रिकंतथा ।

योजना-अक्रोधनः अत्वरः सन् इष्टं अन्नं चपुनः हविष्यं दद्यात् तुपुनः आतृप्तेः पवित्राणि जप्त्वा तथा पूर्वजपं जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य पेयरूप पांचप्रकारके और ब्राह्मण प्रेत वा यजमानको इष्ट (रोचक), हविष्य (श्राद्धहविके योग्य) जो इस अन्यस्मृतिमें प्रसिद्ध है कि व्रीहि शाली यव गेहूं मूंग उडद मुनियोंका अन्न कालकेशाक- महाशल्क-इलायची-सूंठ-मिरच-हींग-गुड-शर्करा-कपूर-सैंधव-सांभर-पनस-नारीयल-कदली-बेर-गव्य-दूध-दही घृत-पायस-मधुमांस आदि-इन सबकोदे और हविष्यके कहनेसे इस अन्य स्मृतिमें कहे अयोग्य अन्नोंकी निवृत्ति समझनी कि कोदूं- मसूर-चणा-कुलथी-पुलाक-निष्पाव राजमाष (लोबिया) कूष्मांड-बेंगन-दोनों कटेहली-उपोदकी-बांसके अंकुर-पीपल-वच-सौंफ-ऊषरलवण-माहिष (भैंस) चमरीगौका दूध-घी पायस आदि श्राद्धमें निषिद्धहैं और उक्त अन्नको क्रोध और शीघ्रताको छोडकर तृप्तिपर्यंत दे-और तु शब्दसे जो कुछ उच्छिष्टहो वहदे क्योंकि वह दासोंका भागहोताहै क्योंकि मनुका वचनहै कि भूमिमें पडा, उच्छिष्ट कपट और शठतासे हीन दास और उसके पिताका भाग कहाताहै-तैसेही तृप्तिपर्यंत पुरुषसूक्त आदि पवित्रोंको जपकर और तृप्त ब्राह्मणोंको जानकर व्याहृतियों सहित पूर्वोक्त गायत्रीको जपे ॥

भावार्थ-क्रोध और शीघ्रतासे रहित इष्ट और हविष्य अन्नको तृप्तिपर्यंत देकर पवित्रमंत्रोंको जपकर पूर्वोक्त प्रकारसे गायत्रीको जपे ॥ २४० ॥

अन्नमादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच ।
तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत् ॥

पद-अन्नं २ आदाय-तृप्ताः१ स्थ क्रि-शेषं २च-एव-अनुमान्य-च-तत् २अन्नं विकिरेत् क्रि-भूमौ ७ दद्यात् क्रि- च-अपः २ सकृत्-सकृत्- ॥

योजना-अन्नं आदाय तृप्ताः स्थ इति पृच्छेत्-चपुनः शेषं अन्नं अनुमान्य तत् अन्नं भूमौ विकिरेत् चपुनः सकृत् सकृत् अपः दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर सब अन्नको लेकर ब्राह्मणोंको तृप्तहुये ऐसेपूछे जब वे तृप्तहुये ऐसे कहदें तब यह पूछे कि शेषभी कुछ अन्नहै उसे क्याकरैं-इष्टमित्रों सहित भोजन करो इस उनकी आज्ञासे उस अन्नको पितृ-ब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप ऐसी भूमिमें तिलजल पूर्वक इस मंत्रसे दे कि जो दक्षिणाग्रकुशाओंसे ढकी हो-कि मेरे कुलमें जिनको अग्निका दाह मिलाहै वानहीं मिलावे भूमिमें दिये अन्नसे तृप्त होकर परमगतिको प्राप्तहो और ब्राह्मणोंके हाथमें एकर वा कुल्लेके लिये जल दे ॥

भावार्थ-अन्नको लेकर ब्राह्मणोंसे तृप्तहुये यह पूछे जबवे तृप्तहुये यह कहदे तब उनकी आज्ञासे उस अन्नको कुशारखकर भूमिपर विकिरदे-फिरकुल्लेके लिये एक २ वार ब्राह्मणोंको जलदे ॥ २४१ ॥

१ व्रीहिशालियवगोधूममुद्गमाषमुन्यन्नकालशाकमहाशल्कैलासुंठीमरीचहिंगुगुडशर्कराकर्पूरसैंधवसाम्भरपनसनालिकेरकदलीबदरगव्यपयोदधिघृतपायसमधुमांसप्रभृति ।

२ कोद्रवमसूरचणककुलित्थपुलाकनिष्पावराजमाषकूष्मांडवार्ताकबृहतीद्वयोपोदकीवंशांकुरपिप्पलीवचाशतपुष्पोषरविडालवणमाहिषचामरक्षीरदधिघृतपाय॰ ।

३ उच्छेषणभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच । दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयंप्रचक्षते ।

१ अग्निदग्धाश्च ये जीवाः येप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यांतु कुले मम ।

सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः ।
उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् ॥

पद– सर्वं२ अन्नं २ उपादाय ऽ–सतिलं२ दाक्षिणामुखः १ उच्छिष्टसन्निधौ७ पिण्डान् २ दद्यात् क्रि– वैऽ–पितृयज्ञवत्ऽ– ॥

योजना–सतिलं सर्वं अन्नं उपादाय दक्षिणामुखः सन् उच्छिष्टसन्निधौ पितृयज्ञवत् पिण्डान् दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ–पिंडपितृयज्ञके समान चरु पकाया होय तो अग्नौकरणसे बचा जो चरु उसको और सब अन्नको मिलाकर अग्निके समीप पिण्डदे चरु नपकाया होयतो ब्राह्मणके भोजनार्थ बनाए सब अन्नको लेकर उच्छिष्टके समीप तिलसहित पिण्डोंको दक्षिणको मुख करके पितृयज्ञके समान पिण्डोंको दे ॥ २४२ ॥

मातामहानामप्येवंदद्यादाचमनंततः ।
स्वस्तिवाच्यंततःकुर्यादक्षय्योदकमेवच ॥

पद–मातामहानां ६ अपिऽ एवंऽ–दद्यात् क्रि– आचमनं २ ततःऽ–स्वस्तिऽ–वाच्यं १ ततःऽ–कुर्यात् क्रि–अक्षय्योदकं२ एवऽ–चऽ–॥

योजना–मातामहानां अपि एवं कुर्यात् ततः आचमनं दद्यात्–ततः स्वस्तिवाच्यं च पुनः अक्षय्योदकं कुर्यात् ॥

ता० भा०– मातामहोंका आवाहनसे पिंडदानपर्यंत कर्म ऐसेही करै–फिर ब्राह्मणोंको आचमनदे–फिर ब्राह्मणोंको स्वस्तिकहो ऐसे कहै फिर वे स्वस्ति कहदें फिर अक्षय्य हो यह कहकर ब्राह्मणोंको हाथपर जलदान करै ब्राह्मणभी अक्षय हो यह कहदे ॥ २४३ ॥

दत्वातुदक्षिणांशक्त्यास्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातःप्रकृतेभ्यःस्वधोच्यतां

पद–दत्वाऽ–तुऽ–दक्षिणां२ शक्त्या ३ स्वधाकारं२ उदाहरेत् क्रि–वाच्यतां क्रि– इतिऽ– अनुज्ञातः१प्रकृतेभ्यः४स्वधा उच्यतां क्रि–॥

योजना–तुपुनः शक्त्या दक्षिणां दत्वा स्वधाकारं उदाहरेत्–वाच्यतां इति अनुज्ञातः सन् प्रकृतेभ्यः स्वधा उच्यतां इति उदाहरेत्॥

ता० भा० फिर यथाशक्ति सुवर्ण आदि दक्षिणादेकर स्वधाको कहा बताहूं यह कहै जब ब्राह्मण स्वधावाचन कराओ यह कहदें तब ब्राह्मणोंको यह कहै कि पिता-आदि और मातामह आदिको दिया स्वधा (पहुचे) होय ॥ २४४ ॥

ब्रूयुरस्तुस्वधेत्युक्तेभूमौसिंचेत्ततोजलम् ।
विश्वेदेवाश्चप्रीयंतांविप्रैश्चोक्तमिदंजपेत् ॥

पद–ब्रूयुः क्रि–अस्तु क्रि–स्वधाऽ–इतिऽ–उक्ते ७ भूमौ७ सिंचेत् क्रि– ततःऽ–जलं २ विश्वेदेवाः १ चऽ–प्रीयंतां क्रि–विप्रैः३ चऽ–उक्तं इतिऽ–जपेत् क्रि– ॥

योजना– ते ब्राह्मणा अस्तु स्वधा इति ब्रूयुः तैः उक्ते सति ततः भूमौ जलं सिंचेत् च पुनः विश्वेदेवाः प्रीयंतां इति विप्रैः उक्तं जपेत् ॥

ता० भा०–वे ब्राह्मण स्वधाहो जब ऐसे कहदें तब कमण्डलुसे भूमिमें जल सींचे–फिर विश्वेदेवा प्रसन्नहों ऐसे कहैं जब ब्राह्मणभी प्रसन्नहों ऐसे कहदें तब इसको जपैकि२४५

दातारोनोभिवर्धतांवेदाःसंततिरेवच ।
श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोस्तु २४६॥

पद–दातारः १ नः ६ अभिवर्द्धतां क्रि. वेदाः १ संततिः १ एवऽ–चऽ –श्रद्धा १ चऽ– नः ६ माऽ–व्यगमत् क्रि–बहु १ देयं १ चऽ– नः ६ अस्तु–क्रि ॥

योजना–नः (अस्माकं) दातारः वेदाः

संततिः अभिवर्द्धन्तां च पुनः श्रद्धामाव्यगमत् च पुनः नः (अस्माकं) बहुदेयं अस्तु॥

ता० भा०—हमारे कुलमें दाताओंकी वृद्धिहो पठन पाठन आदिसे वेदकी पुत्र पौत्र आदिसे संतानकी वृद्धिहो और पितृकर्ममेंसे हमारी श्रद्धा मत जाओ और हमें बहुत देनेको सुवर्ण आदिमिले इस तरह ब्राह्मणोंसें प्रार्थनाकरे ॥ २४६ ॥

इत्युक्तोक्त्वाप्रियावाचःप्रणिपत्यविसर्जयेत्। वाजेवाजइतिप्रीतःपितृपूर्वंविसर्जनम् २४७

पद—इत्युक्तः१ उक्त्वाऽ—प्रियाः २ वाचः२ प्रणिपत्यऽ—विसर्जयेत् क्रि—वाजेवाजेइतिऽ—प्रीतः १ पितृपूर्वं १ विसर्जनं ॥ १ ॥

योजना—इत्युक्तः सन् प्रियाः वाचः उक्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् कथं विसर्जयेदित्याह वाजे वाजे इति मंत्रेण प्रीतः सन् पितृपूर्वं विसर्जनं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ— इस पूर्वोक्त मंत्रको जपकर और आपके दोनों चरणोंकी रजसे गृह जिनके पवित्र हुए और शाक आदिके भोजनके दुःखको नमान करजो आपने अनुगृहीत किये हैं ऐसे हमको धन्य इस तरह मधुर वाणीयोंको कहकर परिक्रमापूर्वक नमस्कार करके विसर्जन इस प्रकारकरे कि वाजेवाजे इसे ऋचासें पितृपूर्वक प्रपितामह और विश्वेदेवापर्यंतोंका विसर्जन, प्रसन्न हुआ हे पितर तुम उठो यह कहता हुआ करे॥

भावार्थ—इस कहनेके अनंतर मधुर वाणीयोंको ब्राह्मणोंके प्रति कहकर वाजेवाजे इस ऋचासे पिता आदिका विसर्जन करे॥ २४७॥

यस्मिंस्तेसंस्रवाःपूर्वमर्घ्यपात्रेनिवेशिताः । पितृपात्रंतदुत्तानंकृत्वाविप्रान्विसर्जयेत् ॥

१ वाजे वाजे वतवाजिनोनोधनेषुविप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबतमादयध्वंतृप्तायात पथिभिर्देवयानैः ।

पद—यस्मिन् ७ ते १ संस्रवाः १ पूर्वं २ *अर्घ्यपात्रे ७ निवेशिताः १ पितृपात्रं२ तत् २* उत्तानं२कृत्वाऽ—विप्रान् २ विसर्जयेत् क्रि—

योजना—यस्मिन् अर्घ्यपात्रे ते संस्रवाः पूर्वं निवेशिताः तत् पितृपात्रं उत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत् ॥

ता०भा०—जिस अर्घ्य पात्रमें पहिले अर्घ दानके पीछे ब्राह्मणके हाथसें गिराहुआ अर्घ्यका जल रक्खा था उस औंधेहुए पितृपात्रको सूधा रखकर ब्राह्मणोंका विसर्जन करे—यह विसर्जन आशीर्वादके मंत्रसे पीछे वाजे २ इस मंत्रके उच्चारणसे पूर्व समझना—क्योंकि कृत्वा विसर्जयेत् यहां पूर्वकालबोधक क्त्वाप्रत्ययका श्रवणहै ॥ २४८ ॥

प्रदक्षिणमनुव्रज्यभुञ्जीतपितृसेवितम् । ब्रह्मचारीभवेत्तांतुरजनींब्राह्मणैःसह२४९॥

पद— प्रदक्षिणं२ अनुव्रज्यऽ—भुंजीत क्रि—पितृसेवितं २ ब्रह्मचारी १ भवेत् क्रि—तां २ तुऽ—रजनीं २ ब्राह्मणैः ३ सहऽ— ॥

योजना—प्रदक्षिणं अनुव्रज्य पितृसेवितं भुंजीत—तुपुनः तांरजनीं ब्राह्मणैः सह ब्रह्मचारी भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ—इसके अनंतर सीमापर्यंत ब्राह्मणोंके पीछे जाय फिर आप जाओ बैठो इस उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे लौटकर पितृ सेवित श्राद्धके शेष अन्नको इष्ट मित्रोंके साथ भोजनकरे· यह नियम है परिसंख्या नहीं मांसमें तो यथा रुचि हो वह-द्विज काम्यया—यहां कह आये जिस दिन श्राद्ध किया उस रात्रिको भोक्ता (भोजन करनेवाले) ब्राह्मणोंसहित ब्रह्मचारी (विषय आदिसे रहित) रहे—और तुशब्दसे यह समझना कि पुनर्भोजन आदिकोभी न करे—

क्योंकि यह वचनै है कि दंतधावन-तांबूल-स्निग्ध स्नान (तैलाभ्यंग) पुनर्भोजन-रमण-औषध परया अन्न इनको श्राद्धका कर्त्ता वर्ज दे- पुनर्भोजन अध्वा भार (बोझा) अध्ययन मैथुन दान प्रतिग्रह होम इन आठको श्राद्धका भोक्ता वर्जदे ॥

भावार्थ-ब्राह्मणोंके पीछे चलकर पितरोंके भोगे श्राद्धके अन्नको खावे और ब्राह्मणों सहित उस रात्रिमें ब्रह्मचारी रहैं॥२४१॥

एवंप्रदक्षिणावृत्कोवृद्धौनांदीमुखान्पितृन् ।
यजेतदधिकर्कंधुमिश्रान्पिंडान्यवैःक्रियाः॥

पद- एवं-प्रदक्षिणावृत्कः १ वृद्धौ ७ नांदीमुखान्२ पितृन्२यजेत् क्रि-दधिकर्कंधुमिश्रान्२ पिंडान्२ यवैः३ क्रियाः १ ॥

योजना- एवं प्रदक्षिणावृत्कः सन् वृद्धौ नांदीमुखान् पितॄन् दधिकर्कन्धुमिश्रान् पिंडान् दत्वा यजेत क्रियाः यवैः कर्तव्याः ॥

तात्पर्यार्थ- अब वृद्धिश्राद्धको कहतेहैं पुत्र जन्म आदि निमित्तोंमें जो किया जाताहै उस वृद्धिश्राद्धमें इस पूर्वोक्त प्रकारसे पितरोंका पूजन करे-तिसमें विशेष कहतेहैं कि यह कर्म प्रदक्षिणावृत्कहै अर्थात् इस कर्मको अनुष्ठानका मार्ग प्रदक्षिणाक्रमसे है-यहां नांदीमुखान् यह पितृन् इस पदका विशेषणहै इससे आवाहन आदिमें नांदीमुख पितरोंका आवाहन करताहूं नांदीमुख पितामहोंका आवाहन करताहूं इत्यादि वचन कहने-किस प्रकार पूजनकरे इस अपेक्षासे कहतेहैं कि दधिकर्कन्धुमिश्र अर्थात् वेर और दधिसे मिश्रित पिण्डोंको देकर पूजन करै और तिलसें जितने कर्महैं वे सब जौंसें करने यहां ब्राह्मणोंकी संख्या- देवश्राद्धमें युग्म ब्राह्मण यथाशक्ति करै यह पूर्व कह आये-यहां प्रदक्षिणक्रम आदिके गिननेसे अन्य स्मृतियोंमें कहै औरभी विशेष धर्म लेनें सोई आश्वलायननें कहाहै कि आभ्युदयिक श्राद्धमें युग्म ब्राह्मण, मूल रहित कुशा, पूर्वाभिमुख, सव्य प्रदक्षिण होकर क्रम, तिलोंके स्थानमें जौं-गंध आदि और आसनमें दो२ ऋजु कुशादे यवोसि इस मंत्रसें जौं दे हे विश्वेदेवा यह आपको अर्घ्य है हे नांदीमुख पितरो यह आपको अर्घ्यहै ऐसे अर्घ्यदे- कव्यवाहन अग्निको स्वाहादे पितृमान् अग्निको स्वाहादे इन दो मंत्रोंसे ब्राह्मणोंके हाथपर होमकरै-मधुवाता इन तीन ऋचाओंके स्थानमें-उपास्मै गायत ये पांच मधुमती और अक्षन्नमीमदंत यह छठी ऋचा सुनावे-जब ब्राह्मणभोजनके अंतमें आचमन करलें तब गोवरसे लीपकर और पूर्वाग्र कुशाको बिछाकर वहां वेर और घी मिले भोजनके शेष अन्नसे एक२को दो२ पिण्ड दे-यद्यपि यहां पितरोंकी पूजा करै यह सामान्यसे कहाहै तथापि तीन श्राद्धकरै उसका क्रम अन्यस्मृतियोंसे जानना-सोई शातातपनें कहाहै कि पहिले माताका श्राद्ध फिर पिताओंका फिर मातामहोंका ये तीन श्राद्धवृद्धिमें कहे हैं ॥

१ दतधावनताम्बूलं स्निग्धस्नानमभोजन। रत्यौषधपरान्नानि श्राद्धकृत् सप्तवर्जयेत्। पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम्। दान प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभुक्त्वष्ट वर्जयेत्।

१ अथाभ्युदयिके अमूला दर्भाः प्राङ्मुखो यज्ञोपवीतीसात्प्रदक्षिणमुपचारोयवैस्तिलार्थो गंधादिदानम्।

२ यवोसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः प्रत्नमद्भिः संपृक्तः पुष्ट्या दानं द्विर्द्विः ऋजुदर्भान् आसने नान्दीमुखान् पितॄन् लोकान् प्रीणयाहिनः दद्यात् स्वाहा।

३ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा-सोमाय पितृमते स्वाहा।

४ मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनंतरं। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतं।

भावार्थ– इस प्रकार वृद्धिमें नांदीमुख पितरोंको प्रदक्षिण क्रमसे दर्हीबेर मिले पिण्डोंसे पूजे और तिलोंके कर्मको जोंसें करै ॥ २५० ॥

एकोद्दिष्टंदेवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितंह्यपसव्यवत्२५१॥

पद– एकोद्दिष्टं१ देवहीनं १ एकार्घ्यैकपवित्रकं १ आवाहनाग्नौकरणरहितं १ हि॰– अपसव्यवत्॰–॥

योजना– देवहीनं– एकार्घ्यैकपवित्रकं आवाहनाग्नौकरणरहितं अपसव्यवत् एकोद्दिष्टं भवति ॥

ता॰ भा॰– एकोद्दिष्ट श्राद्धको कहते हैं एकका उद्देश जिसमें हो उसे एकोद्दिष्ट कहतेहैं शेष कर्मको पूर्वके समान करै इससे पार्वणके सब धर्म पाये एकोद्दिष्टके विशेषको कहते हैं कि देवसे रहित और एक अर्घ्य एक पात्र एक कुशाकी पवित्री–आवाहन– अग्नौकरण होमसे रहित और अपसव्यसे एकोद्दिष्ट होताहै ॥ २५१ ॥

उपतिष्ठतामक्षय्यस्थानेविप्रविसर्जने ।
अभिरम्यतामितिवदेद्ब्रूयुस्तेभिरताःस्मह

पद–उपतिष्ठतां क्रि–अक्षय्यस्थाने७विप्रविसर्जने७ अभिरम्यतां क्रि–इति॰– वदेत् क्रि– ब्रूयुः क्रि–ते१ अभिरताः१ स्मः क्रि–ह॰– ॥

योजना– अक्षय्यस्थाने उपतिष्ठतां–विप्रविसर्जने अभिरम्यतां इति वदेत्–ते (ब्राह्मणाः) अपि अभिरताःस्मः इति ब्रूयुः ॥

तात्पर्यार्थ– जो यह कहाहै कि स्वस्तिवाचनके अनंतर अक्षय्योदकदे वहां अक्षय्यके स्थानमें उपतिष्ठतां (प्राप्तहो) कहै और वाजेर मंत्रसे ब्राह्मणोंके विसर्जनमें अभिरम्यतां (रमण करो) कहै वे ब्राह्मणभी रमण करते हैं ऐसे कहैं–शेष कर्म पूर्वके समान समझना–यह मध्याह्नमें करना सोई देवलने कहाहै कि देवकर्म पूर्वाह्नमें पितृकर्म अपराह्नमें एकोद्दिष्ट मध्याह्नमें वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालमें करै–पितरोंके शेषको भोजन करै इस शेषभोजनका किसी एकोद्दिष्टमें निषेधभी देखेतेहैं कि नवश्राद्धका शेष–और गृहका वासा अन्न और स्त्रीपुरुषके भुक्तका शेष इनको भोजन न करै–नवश्राद्ध तो यह है कि प्रथम तृतीय पंचम सप्तम नवम और एकादशदिनोंके श्राद्धको नवश्राद्ध कहते हैं॥

भावार्थ– अक्षय्यके स्थानमें उपतिष्ठतां और ब्राह्मणोंके विसर्जनमें अभिरम्यतां कहै वे ब्राह्मणभी अभिरत हुये (जातेहैं) ऐसे कहैं ॥ १५२ ॥

गंधोदकतिलैर्युक्तंकुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थंपितृपात्रेषुप्रेतपात्रंप्रसिंचयेत् २५३

पद– गंधोदकतिलैः ३ युक्तं १ कुर्यात् क्रि– पात्रचतुष्टयम्२ अर्घ्यार्थं२ पितृपात्रेषु७ प्रेतपात्रं२ प्रसिंचयेत् क्रि– ॥

येसमानाइतिद्वाभ्यांशेषंपूर्ववदाचरेत् ॥
एतत्सपिंडीकरणमेकोद्दिष्टंस्त्रियाअपि२५३

पद– येसमानाइति॰–द्वाभ्याम् ३ शेषं २ पूर्ववत्॰–आचरेत् क्रि– एतत्१ सपिंडीकरणं१ एकोद्दिष्टं१ स्त्रियाः६ अपि॰– ॥

योजना– गंधोदकतिलैः युक्तं पात्रचतुष्टयं अर्घ्यार्थं कुर्यात्–प्रेतपात्रं पितृपात्रेषु ये समानाइतिद्वाभ्यां प्रसिंचयेत्–शेषं पूर्ववत् आचरेत्–एतत्सपिंडीकरणं एकोद्दिष्टं स्त्रियाः अपि–भवति ॥

---

१ पूर्वाह्णे दैविकं कर्म अपराह्णे तु पैतृकं । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ।

२ नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहे पर्युषितं च यत् । दंपत्योर्भुक्तशिष्टंच न भुंजीत कदाचन ।

३ प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पंचमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ।

तात्पर्यार्थ- अब सपिंडी करण श्राद्धको कहतेहैं-गंध जल तिलोंसे युक्त चार पात्र अर्घ्य देनेके लिये पूर्वोक्त प्रकारसे करे चार पात्रोंके कहनेसे पितृवर्गमें चार ब्राह्मण दिखाये- दो विश्वेदेवाओंके थे ही-यहां किंचित् शेष प्रेतपात्रके जलको तीन प्रकारसे विभाग करके पितरोंके पात्रोंमे ये समाना इन दो मंत्रोंसे सींचे और शेष विश्वेदेवाओंके आवाहन आदि विसर्जन पर्यंत कर्मको पार्वणके समान करे और प्रेतके अर्घ्यपात्रके शेषजलको प्रेतब्राह्मणके हाथमें देकर शेषकर्मको एकोद्दिष्टके समान समाप्तकरे और तीनों पितरोंके अर्घोमें पार्वणके समान कर्मको करो-यह सपिंडीकरण और पूर्वोक्त एकोद्दिष्ट स्त्री (माता)काभी करना- यह कहनेसे यह जानागयाकी पार्वणमें माताका श्राद्ध पृथक् नकरे-यहां प्रेतशब्दको पिताके प्रपितामहका बोधक कोई कहते हैं क्योंकी वह तीनके मध्यमें है और इसीसे सपिंडीके पीछे उसके पिंडदानकीभी निवृत्ति हो सकती हैं जो क्रमपूर्वक मरा हो उसके पिंडजलदानका अंतर्भाव युक्तनहीं इसीसे यमने कहाहै कि जो सपिंडी किये प्रेतको पृथक् पिंडमें मिलाता है विधिका नाशक वह पितरोंका नष्ट करनेवाला होताहै-प्रकर्षसे (भली प्रकार) जो इत (गया) हो उसे प्रेत कहतेहैं इससे चौथेमेंभी प्रेतशब्द हो सकताहै और यहभी लिखाहै कि पितरोंकोहीदे-और इस वचनसे कि सपिंडीकरण श्राद्ध देवपूर्वक करे और उसमें पितरोंको जिमावे फिर प्रेतशब्दका उच्चारण न करे-सपिंडी किये पीछे प्रेतको श्राद्ध आदिका निषेध देखते हैं वह अनंतर (तत्काल) मरेका नही हो सकता क्यों कि अमावस्या आदिमें उसका श्राद्ध कहाहै और सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त होजातीहै यह वचनभी तभी घट सकताहै जब चौथेका तीनमें अंतर्भाव मानो कि चौथा तीन पिंडोंमें पांचवां दोपिंडोंमें छठा एक पिंडमे अधिकारीहै और सातवेंमें पिंडकी निवृत्ति होजातीहै पितृपात्रोंमें सींचे यह पूर्वोक्त वचनभी इसी पक्षमे पिताको मुख्यहोनेसे घट सकताहै और प्रपितामह आदि होनेसे अन्यथा नही घटसकता तिससे पितृपात्रोंमें उस प्रेतपात्रको सींचे-यह सब कोईका कहना ठीकनहीं क्योंकि यहां पिंड मिलानेका यह प्रयोजन नहीहै कि पिताके प्रपितामहके पिंडकी निवृत्तिहो किंतु पिताको प्रेतत्वकी निवृत्ति और पितृत्वकी प्राप्ति है प्रेतत्व यह है कि क्षुधा तृषा आदि अत्यंत दुःख भोगनेकी अवस्था-सोई मार्कंडेयने कहाहै कि हे भृगुनंदन प्रेतलोकमें मनुष्य एक वर्ष वसतेहैं वहां प्रतिदिन क्षुधा तृषा होतीहै-और वसु आदि श्राद्ध देवताओंके संबंधको पितृत्व प्राप्ति कहतेहैं-पूर्वोक्त एकोद्दिष्ट सहित सपिंडी करनेसे जब प्रेतत्वकी निवृत्ति होगई तब पितृत्वको प्राप्तहो जाताहै यह ज्ञातभया-क्योंकि ये वचन है कि

१ ये समाना समनसो जीवा जीवेषु मामकाः तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शत ँ्समाः ॥ ये समानाः समनसो पितरो यमराज्ये तेषां लोकः स्वधानमः यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।

२ यः सपिंडीकृतं प्रेत पृथक्पिंडे नियोजयेत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥

३ सपिंडीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत् । पितॄने वाशयेत्तत्र पुनः प्रेतं न निर्दिशेत् ।

१ सपिंडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।

२ प्रेतलोके तु वसतिर्नृणां वर्षं प्रकीर्तिता क्षुत्तृष्णे प्रत्यह तत्र भवेतां भृगुनंदन ।

३ यस्यैतानि न दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश ।प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥चतुरोनिर्वपेत्पिण्डान् पूर्वंतेषु समापयेत । ततःप्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते ।

ये सोलह प्रेत श्राद्ध जिसको नहीं दिये जाते उसका सौ श्राद्धदेने परभी प्रेतत्व स्थिर रहताहै प्रथम चार पिंड दे पहिला पिंड तीनमें मिलादे उससे आदि लेकर प्रेत पितरोंके समान होजाता है-और जो सपिंडी किये प्रेतको इस पूर्वोक्त वचनसे भी यह जाना गया कि पृथक् एकोद्दिष्टका निषेध है और पार्वणकी विधि है तिससे पितरोंके संग पिंडदान होता है-यहभी वार्षिक और पाक्षिक एकोद्दिष्ट विधिके लिये कहते हैं-और जो यह वचन है कि फिर प्रेत शब्दका निर्देश न करै वह प्रेतशब्दका उच्चारण न करै किंतु पितृशब्दका उच्चारण करै इस लिये है-और जिसका प्रकर्ष गमन हो उसमें प्रेतशब्द नहीं जिससे अधिक दुःखके अनुभवकी अवस्थाका प्रेत शब्द रूढिसे कहता है यह कह आये-और जो सब मरे ये प्रेत शब्दका प्रयोग है वहभी भूतपूर्वगतिसे है-अर्थात् वेभी कभी प्रेतथे सातमें पुरुषमें सापिण्डता निवृत्त होती है इसका यह अभिप्राय है कि पहिला पिंड चौथेतक दूसरा पांचमें तक तीसरा छठे तक व्याप्त होताहै-और सातवेंमें निवृत्त होजाता है अर्थात् जिन पिण्डोंको देता है वे सपिण्डीमें छठेतक ही मिले हैं-और यहभी बात है कि दियेहुये पिंडोंके संबंधसे सापिण्ड्य नहीं-क्योंकि वहां व्यापकता नहीं अपि तु एक शरीरके जो अवयव उनके अन्वयसे है यह पहिले कह आए-और पितृशब्दभी प्रेतत्वकी निवृत्तिसे श्राद्ध देवता जो होगये पितामह आदि तीनोंके मरनेपर जानना पिता मरगया हो और पितामह वा प्रपितामह जीवता हो तो सपिण्डीकरण नहीं होता क्योंकि यह वचन है कि जो क्रमसें नमरे हों उनकी सपिण्डी न करै-जो यह मनुका वचन है कि जिसका पिता मरगया हो और पितामह जीता हो वह पिताके नामको लेकर पितामहके नामको ले यहभी पितृशब्दके उच्चारणके लिये नियमार्थ है दो पिण्ड देनेके लिये नहीं क्योंकि यह वचन है कि पिता जीता होय तो वा पिता मरगया हो और पितामह जीता हो वह भी उनको पिण्ड दे जो पूर्व मरेहों दोनों पक्षमें भी कैसे दे इस शंकामें यही कहा है कि पिताका नाम लेकर प्रपितामहका नामले-इस आदि और अंतके ग्रहण (उच्चारण)से सब जगह पिताको पितामहको प्रपितामहको यह पिण्ड है यही कहै-और कदाचित्भी पितामह और प्रपितामह आदि नहीं हो सकते और वृद्ध प्रपितामह वा उसका पिता अन्त नहीं हो सकते-इससे पिता आदि शब्द संबंधके बोधक हैं-इससे पिता जीता होय तो पिताके पिता पितामह प्रपितामहको और पितामह जीता होयतो वह पितामहके पिता पितामह प्रपितामहको यह पिन्डहै एसे प्रयोग करै इससे पिण्डपितृयज्ञमें शुन्धन्तां पितर इत्यादि मंत्रोंमें ऊह नहीं होता-अर्थात् पितरके स्थानमें पितामह यह बदलना नहीं

पडता जो विष्णुका यह वचन है कि जिसका पिता मरगयाहो वह पितृपिण्डको देकर पितामहसे परले दोको पिण्डदे-इस वचनका यह अर्थ है कि पितामह जीताहो और पिता मर गयाहो वह पिताके एक पिण्डको एकोद्दिष्ट विधिसे मिलाकर पिताके पितामहको और उसके परले दोकोदे क्योंकि अपना प्रपिता मह जो पिताका पितामह वह संप्रदानरूप विद्यमानहै-इससें प्रपितामह और उससें परले दोकोदे शब्दोंके उच्चारणका नियमतो पूर्वोक्तहीहै- इसी प्रकार गो ब्राह्मणसे हतेकी भी सपिण्डिका अभाव जानना-सोई कात्यायनेने कहाहै कि ब्राह्मण आदिसे पिता माहो पतित वा सन्यासी हो वा क्रमसे न मराहो तो पुत्रभी उनकोही श्राद्धदे जिनको पिता देताथा इस वचनसे पिताकी सपिण्डीके संभवमें पिताको लंघकर-पितामह आदिको पार्वणकी विधि सिद्धहुई-इससे पिताकी सपिण्डीका अभाव जानागया-अन्य स्मृतिमेंभी लिखाहै कि जो नर संततिसें हीनहैं उनकी सपिण्डी नही होती और उनके संग सोलह१६एकोद्दिष्ट नही करने माताके पिण्डदान आदिमें गोत्रका विवादहै-कि पतिके गोत्रसे वा उसके पिताके गोत्रसे-दोनों प्रकारके वचनें दीखते हैं कि विवाहकी सप्तपदीमें नारी अपने गोत्रमें नही रहती उसके पिण्ड और जलदान पतिके गोत्रसे करने-इससे भर्ताका गोत्र और पिताके गोत्रको छोडकर भर्ताके गोत्रसे न करें क्योंकि जन्म और मरणमें स्त्रीको पिताका गोत्रहै-इस प्रकारके विवादमें आसुर आदि विवाहोंमें और पुत्रिकाके करनेमें पिताका गोत्रही रहताहै-क्योंकि तहां २ विशेष वचन है और इन पूर्वोक्त विवाहोंमें दानकीभी निवृत्ति नही हुयी-और ब्राह्म आदि विवाहोंमें व्रीहि यवके और बृद्रथंतर सामके समान विकल्पहै अर्थात् दोनों गोत्रोंमे कोईसामानों-उनमेंभी इसे वचनके अनुसार वंशपरंपराके आचरणसे व्यवस्था जाननी कि जिसमार्गसे इसके पिता पितामहके चलेहों सत् पुरुषोंके मार्गसे चलता हुआ उसी मार्गको चले- इस प्रकारके विना इस वचनका अन्य विषय नही है-और जहां शास्त्र वा आचारसे व्यवस्था नहो वहां आत्मनस्तुष्टिरेवच, इस वचनसे अपने संतोषसेही व्यवस्था जाननी जैसे गर्भसे वा जन्मसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीतका करना-माताकी सपिंडी करनेमें विरुद्ध२वचन दीखते हैं-वहां पितामही आदिके संग सपिंडीकरण कहाहै तैसे भर्ताके संग और अपनी माता आदिके संग सपिंडीकरण पैठीनसिने कहाहै कि अपुत्र स्त्री मरजायतो पति सास आदिके संग सपिंडीकरण होताहै-पतिके संग सपिंडी यमने कहाहै कि स्त्रीको सपिंडी एक पतिके संग करे क्योंकि मरीभी वह मंत्र आहुति व्रतोंसे पतिके संग एकताको प्राप्त हुई है-उशनाने

१ यस्य पिता प्रेतः स्यात् स पितापिंड निधाय पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात् ।

२ ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते व्युत्क्रमाच मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

३ ये नराः संततिच्छिन्नाः नास्ति तेषां सपिंडता । नच तैः सह कर्तव्यान्येकोद्दिष्टानि षोडश ॥

४ स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे । स्वामिगोत्रेण कर्तव्यास्तस्याः पिंडोदकक्रियाः॥पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः ॥ जन्मन्येव विपत्तौच नारीणां पैतृकं कुलम् ।

१ येनास्यपितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गंतेन गच्छन्न दुष्यति ॥

२ अपुत्रायां मृतायांतु पतिः कुर्यात्सपिंडताम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिंडीकरणं भवेत् ।

३ पत्या चैकेन कर्तव्य सपिंडीकरणं स्त्रियाः । सामृतापि हि तेनैक्य गता मंत्राहुतिव्रतैः ।

तो मातामहके संग सपिण्डी कही है कि जैसे पूर्ण वर्ष होनेसे पिताकी पितामहमें सपिंडी होती है इसी प्रकार माताकी मातामहमें करनी-तैसेही वचनै है कि पुत्र पूरे वर्ष दिनमें पिताको जैसे पितामहमें मिलाते है तैसेही माताको मातामहमें मिलावे-यह भगवान् शिवने कहाहै-इस प्रकार अनेक वचनोंके होत सन्ते पुत्रहीन भार्या मर जायतो पति अपनी माताके संग सपिण्डी करे-अन्वारोहण (सतीहोना) मे तो पुत्र अपने पिताके संगही सपिण्डी करे-आसुर आदि विवाहोंसे उत्पन्न हुआ पुत्र और पुत्रिकाका-पुत्र मातामहके संग करे-ब्राह्म आदिविवाहोंसे पैदा हुआ पुत्र पिता वा मातामह वा पितामही इनके संग विकल्पसे करे अर्थात् इनमेंसे किसी एकके साथ करदे-इसमेंभी जो वंशका समाचार नियतहो उसी आचरणसे करे और जो नियत नहो तो अपनी प्रसन्नताके अनुसार रुचिसे करे-उसमेंभी चाहे जिस किसीके संग माताको सपिण्डीहो जिन अन्वष्टका आदिमें माताका श्राद्ध पृथक् इसै वचनसे कहाहै वहां पितामही आदिके संगही पार्वण श्राद्ध करे-कि अन्वष्टका वृद्धि क्षयी इनमें माताका श्राद्ध पृथक् करे अन्यत्र पतिके संग करे-क्योंकि पतिके संग सपिण्डी होनेसेही उसे उसका अंश मिलताहै-और मातामहके अंशभागिनी होनेसे मातामहके संग करे-सोई शातातपने कहाहै कि सपिण्डी किये पीछे पत्नी पति और पिताके संग एकताको प्राप्तहो जातीहै तिससे उनके अंशका भागिनी होतीहै-जब ऐसे है तो माताकी सपिण्डी जब मातामहके संगहै तब मातामहका श्राद्ध पितृश्राद्धके समान नित्य (अवश्य करने योग्य) है जब पति वा पितामहीके संग सपिंडी हो तब मातामहका श्राद्ध नित्य नही अर्थात् करे तो पुण्य है और न करे तो कुछ दोष नही ॥

भावार्थ-गंध जल तिलोंसहित अर्घ्यके लिये चार पात्रकरे-प्रेत पात्रका येसमाना इन दो ऋचाओंसे पितरोंके पात्रोंमें सींचे-शेष कर्मको पूर्वकी समान करे-यह सपिंडीकरण और एकोद्दिष्ट माताकाभी करना ॥ २५३ ॥ ॥ २५४ ॥

अर्वाक्सपिंडीकरणंयस्यसंवत्सराद्भवेत् ।
तस्याप्यन्नंसोदकुंभंदद्यात्संवत्सरंद्विजे ॥

पद-अर्वाक् १ सपिंडीकरणं १ यस्य ६ संवत्सरात् ५ भवेत् क्रि- तस्य ६ अपि०-अन्नं २ सोदकुंभं २ दद्यात् क्रि- संवत्सरं २ द्विजे ७ ॥

योजना-यस्य सपिंडीकरणं संवत्सरादर्वाक् भवेत् तस्य अपि सोदकुंभं अन्नं द्विजे सवत्सरं दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-वर्षदिनसे पहिले जिसकी सपिंडी की हो उसके निमित्त वर्षदिनतक वा प्रतिदिन वा प्रतिमास जलघट सहित अन्न ब्राह्मणको दे-वर्षदिनसे पहिले सपिण्डी कहनेसे यह बात दिखाई कि पूरे वर्षदिनमें वा पहिले करे सोई आश्वलायनने कहा है कि इसके अनंतर सपिण्डी वर्षदिनके अंतमें वा द्वादशदिनमें करे कात्यायनने

१ पितुः पितामहे यद्वत्पूर्णे संवत्सरे सुतैः। मातुर्मातामहे तद्वदेषा कार्यासपिण्डता ।

२ पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः । माता मातामहे तद्वदित्याह भगवान् शिवः ।

३ अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयाया च क्षयेहनि। मातुःश्राद्ध पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह ।

४ एकमूर्तित्वमायाति सपिण्डीकरणे कृते । पत्नीपतिपितॄणां च तस्मादशेन भागिनी ।

१ अथ सपिंडीकरणं संवत्सरांते द्वादशाहे वा ।

२ ततः संवत्सरे पूर्णे सपिंडीकरणं भवेत् । त्रिपक्षेवा यदा चार्वाक् वृद्धिरापद्यते तदा ॥

कहा है कि तिसके अनंतर पूर्ण वर्षके होने पर वा त्रिपक्षमें अथवा पहिले जबवृद्धि (उत्सव) आनपडे तब सपिण्डी होती है-सपिण्डीमें ये चार पक्ष दिखाये कि द्वादशदिन-त्रिपक्ष-वृद्धिकी प्राप्ति-और वर्षकी पूर्ति-उन चारोंमें बारवे दिन पिताकी सपिण्डी अग्निहोत्री करे-क्योंकि सपिण्डीके विना पिण्डपितृयज्ञ नहीं होसकेगा- क्यों कि यह वचन है कि जब कर्ता वा प्रेत अग्नि होत्री हों तब बारमेंदिन पिताकी सपिण्डी करे-और निरग्नि तो त्रिपक्षवा वृद्धिके प्राप्तिमें करे जब संवत्सरसें पहिले सपिण्डी करे तब षोडश श्राद्ध करके सपिण्डी करे अथवा सपिण्डी करके अपने २ कालमें षोडशश्राद्धकरे यह सन्देह होता है-और दोनों प्रकारके वचन देखते हैं षोडे शश्राद्ध दिये विना सपिण्डी न करे-किंतु षोडशश्राद्ध देकर करे षोडशश्राद्ध येह हैं कि द्वादशदिन-त्रिपक्ष-षण्मास-मासिक और वार्षिक ये षोडश श्राद्ध विद्वानोंने कहे हैं-तैसेही वेचन हैं कि वर्षदिनसे पहिले जिसकी सपिण्डीहो उसकोभी वर्षदिनतक मासिकश्राद्ध और जलका घटदे-उसमें मुख्य पक्ष यह है कि सपिण्डी करके अपने २ कालमें षोडश श्राद्ध करे क्योंकि कालके न आनेसे पहिले अधिकार नहीं जो यह पक्ष है कि षोडश श्राद्ध करके वर्षदिनसे पहिलेभी सपिण्डी करे वह आपत्तिका पक्ष है जब इस आपत्तिके पक्ष को मानकर सपिण्डीसे पहिले प्रेत श्राद्धोंको करे तब एकोद्दिष्ट विधिसे करे-और जब पूर्वोक्त मुख्य पक्षको मानकर अपने कालमें ही करे तब जो मनुष्य वार्षिक श्राद्धको पार्वण वा एकोद्दिष्ट जैसे करता हो उसी-प्रकार मासिकको करे-क्योंकि यह स्मृति है कि सपिंडीसे पहिले षोडश श्राद्ध-करे तो सबको एकोद्दिष्टविधिसे करे-सपिण्डीसें पीछे करे तो प्रतिवर्ष क्षयी श्राद्ध को जैसे करता हो तैसेही षोडशश्राद्धोंको करे-यह प्रेत श्राद्ध सहित सपिण्डीकरण जिनोंने धन वाटलियाहो ऐसे भाइयोंके होते भी एक २के करनेसे ही सब पूर्ण होता है इसको सब पृथक्२-नकरे क्योंकि यह वचन है कि नवश्राद्ध सपिण्डी और षोडशश्राद्ध भाईयोंके पृथक् २ होनेपरभी एककोही करने-और प्रेत श्राद्ध सहित यह सपिण्डीकरण संन्यासीसें भिन्न पिताओंका पुत्र नियमसेंकरे-क्योंकि यह प्रेतकी मुक्तिके लिये हैं-और संन्यासीयोंका न करे सोई उशनाने कहा है कि संन्यासीयोंका एकोद्दिष्ट न करे किंतु एकादशाहके दिन पार्वण श्राद्ध करे-पुत्र आदि सन्यासीयोंकी सपिण्डी न करे त्रिदण्डके ग्रहणसे ही वे प्रेत नहीं होते-पुत्र आदिके समीप न होनेपर जिस सगोत्री

१ साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्याग्निमान् भवेत्। द्वादशाहे तदा कार्यं सपिंडीकरणं पितुः ॥

२ श्राद्धानि षोडशादत्वा नैव कुर्यात्सपिण्डताम्। श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डता ।

३ द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासि चाब्दिके। श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः ।

४ यस्यापि वत्सरादर्वाक् सपिंडीकरणं भवेत्। मासिकं चोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरम् ।

१ सपिंडीकरणादर्वाक् कुर्वञ्छ्राद्धानि षोडश । एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदापुनः-प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि ॥

२ नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैवतु कार्याणि सविभक्तधनेष्वपि ।

३ एकोद्दिष्टं च कर्तव्यं यतीनां चैव सर्वदा। अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते । सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः । त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ।

आदिने दाहकर्म कियाहो वहही दशदिनतक प्रेत कर्म करे-क्योंकि यह स्मृति है कि असगोत्र हो वा सगोत्रहो स्त्रीहो वापुरुषहो जो पहिले दिन पिण्डदे वही दशदिनतकके कर्मको समाप्त करे- शूद्रोंकी भी यह सपिण्डी विना मंत्र बारवें दिन करनी क्योंकि यही विष्णुकी स्मृतिमें लिखा है सपिंडीके पीछे वार्षिक और पार्वण आदि पुत्र नियमसे करे और अन्य करे चाहे न करे ॥

भावार्थ-जिसकी सपिण्डी वर्ष दिनसे पहिले होजाय उसकोभी वर्षदिनतक ब्राह्मणको अन्न और जलका घटदे ॥ २५५- ॥

मृतेहनितुकर्त्तव्यंप्रतिमासंतुवत्सरम् ।
प्रतिसंवत्सरंचैवमाद्यमेकादशेहनि॥२५६॥

पद-मृते ७ अहनि ७ तुऽ-कर्त्तव्यं १ प्रतिमास २ तुऽ-वत्सरं २ प्रतिसंवत्सरम् २ चऽ-एवंऽ-आद्यं १ एकादशे ७ अहनि ७ ॥

योजना-वत्सरं मृते अहनि प्रतिमासं, चपुनः प्रतिसंवत्सरं एकोद्दिष्टं एकादशे अहनि आद्यं, कर्त्तव्यं ॥

तात्पर्यार्थ- अबएकोद्दिष्टके कालको कहते हैं-मरनेके दिन वर्षदिनतक प्रतिमास में एकोद्दिष्टकरे और सपिण्डीके पीछे प्रतिवर्ष मरनेके दिन एकोद्दिष्टकरे और सब एकोद्दिष्टोंके मूल आद्य श्राद्धको मरने से ग्यारवेंदिन करे-- यदि मरनेके दिनका ज्ञान नहो तो जिसदिन मरनेकी सुने उसदिन वा अमावास्याको एकोद्दिष्ट करे-यह स्मृतिमे लिखा है और अमावास्याभी उसमासकी लेनी जिस मासमे परदेशमें गयाहो क्योंकि यह स्मृति है कि परदेशमें जानेके दिन वा उस मासकी अमावास्याको पिंडदे और मरनेके दिनकाभी विशेष जातुकर्ण्य ने कहा है कि त्रिपक्षसे पीछेका जो श्राद्धहै वह मरणदिनमें और त्रिपक्षसे पहिलेका श्राद्ध दाहके दिनसे अग्निहोत्री ब्राह्मणका होताहै तात्पर्य यहहै कि त्रिपक्षसे पहिले प्रेतकर्म दाहके दिनसे और त्रिपक्षसे पीछेका श्राद्ध मरण दिनमें करे-और जो अग्निहोत्री नहो उसके सब श्राद्ध मरण दिनमेंही होते हैं और आद्य श्राद्ध ग्यारवें दिन होताहै यह अशौचका उपलक्षणहै यह कोई कहते हैं-शुद्ध होकर कर्मको करे यह वचन शुद्धिका अंगहै और अशौचके जानेपर इसका प्रारंभ करके सामान्यसे सब वर्णोंको एकोद्दिष्ट करना विष्णुने कहाहै-यह ठीक नही क्योंकि पैठीनसिकी यह स्मृति है कि एकादशेका जो श्राद्धहै वह चारोंवर्णोंका सामान्य कहाहै और सूतक पृथक्२ होताहै और इस शंख वचनकाभी विरोधहै कि अशुद्धभी मनुष्य एकादशाहको आद्य श्राद्धकरे श्राद्धके समयतक कर्ता शुद्धहै और फिर वह अशुद्धहीहै और सामान्यके प्रकरणका विष्णुवचन दश दिनके अशौचमेंभी घट सकताहै और प्रतिवर्ष ऐसे ही मरण दिनमें एकोद्दिष्ट करना याज्ञवल्क्यने इसी वचनमें कहाहै-सोई अन्यस्मृतिमें

१ असगोत्रः सगोत्रोवा स्त्री दद्याचदि वा पुमान् । प्रथमेहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ।

२ एव सपिण्डीकरणं मंत्रवर्ज्यं शूद्राणां द्वादशेहि

३ अपरिज्ञाते मृतेहनि अमावास्यायां श्रवण दिवसेवा ।

१ प्रवासदिवसे देयं तन्मासेन्दुक्षयेपि वा ।

२ ऊर्द्ध्वंत्रिपक्षायच्छ्राद्धं मृतेहन्येव तद्भवेत्। अधस्तु कार्य्यदाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ।

३ अपाशौचापगमे ।

४ एकादशेह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतं चतुर्णामपि वर्णानां सूतकंच पृथक् पृथक् ॥

५ आद्यश्राद्धं मशुद्धोपि कृत्वाचैकादशेहनि कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ।

६ वर्षे वर्षे तु कर्तव्या मातापित्रोस्तु सत्क्रिया अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ।

कहा है कि वर्ष २ में माता पिताकी सत्क्रिया करे विश्वेदेवाओंसे रहित श्राद्ध करे और एकोपिंडदे–यमने भी कहाहै कि सपिंडीके पीछे प्रतिवर्ष पुत्र मातापिताके निमित्त मरण दिनमे एकोद्दिष्ट करे–व्यासनेतो पार्वणका निषेध कहाहैकि जो मनुष्य एकोद्दिष्टको छोडकर पार्वण करताहै वह विना किया जानना और वह पितृघातक होताहै–जमदग्निने तो पार्वण कहाहै कि औरसपुत्र विधिसे सपिंडी करके मातापिताके मरण दिनमें अमावस्याके समान पार्वणश्राद्ध करे–शातातपनेभी कहाहै कि सपिंडी करके सदैव पार्वण प्रतिवर्ष करे यह विधि छागलेयने कहाहै–इस पूर्वोक्त प्रकारसे जब वचनोंका विवादहै इसमें दक्षिणी ऐसे व्यवस्था कहतेहैं औरस और क्षेत्रज पुत्र मातापिताके क्षयाहमें पार्वणही करें और दत्तक आदि एकोद्दिष्टको जातूकर्ण्यके वचनसे करें कि क्षेत्रज और सपुत्र प्रतिवर्ष पार्वण विधिसे और इतर दशपुत्र एकोद्दिष्ट करें–सो ठीक नही क्योंकि इसमें क्षयाह वचन नही किंतु प्रत्यब्द वचनहै और क्षयाहको छोडकर प्रतिवर्षके श्राद्ध अक्षय तृतीया–माघपूर्णिमा वैशाखी आदिहै इससे यह वचन क्षयाहमें पार्वण और एकोद्दिष्टकी व्यवस्था करनेको समर्थ नही–और जो पराशरका वचनहै कि मरेहुये पिताका देवत्व औरसको तीन पुरुषतक और अनेकगोत्रपुत्रोंका देवता एकही मरण दिनमें होताहै वहभी व्यवस्थाका बोधक नही जिससे उसका यह अर्थहै कि देवत्वको प्राप्त हुये (सपिंडकिये) पिताका सदैव औरसपुत्र तीन पुरुषतक पार्वण करे और भिन्न गोत्र (मातुलआदि)का जो श्राद्ध वह एककेहि निमित्त और एकोद्दिष्ट ही होताहै और सपिंडी किये पीछे औरसभी एकोद्दिष्टही करे यह पैठीनसिने कहाहै कि औरस मरनेके दिनमें एकोद्दिष्ट करे और सपिंडी किये पीछे पार्वण न करे–और उदीच्य इस प्रकार व्यवस्था कहते हैंकि अमावास्या और भाद्रपदके कृष्णपक्षमें मरणदिन होय तो पार्वण और अन्यत्र होयतो एकोद्दिष्ट होताहै–यही स्मृतिमें लिखाहै कि अमावास्या और प्रेतपक्षमें जिसका मरण होयतो पार्वण करे एकोद्दिष्ट कदाचित् नकरे–इस व्यवस्थाकाभी वृद्ध आदर नही करते–क्योंकि जिसके मूलका निश्चय नही ऐसे इस वचनसे जिनके मूलका निश्चयहै ऐसे अनेक और क्षयाह मात्रमें पार्वणके बोधक वचनोंका अमावस्या प्रेतपक्ष– मृताहविषयक मानकर संकोच अयुक्तहै और सामान्यवचनभी अनर्थक हो जायगें वहांही सामान्यवचनसे विशेष वचनका उपसंहार होताहै जहां सामान्य और विशेषके संबंध ज्ञानसे दोनों वचन अर्थवाले हो–जैसे[४] सत्रह सामधेनीयोंको

१ सपिंडीकरणादूर्द्धं प्रतिसंवत्सरं सुतः। मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ।

२ एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः। अकृतं तद्विजानीयात्स भवेच पितृघातकः ।

३ अमाया च सपिंडत्वमौरसो विधिवत्सुतः। कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

४ सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरं विद्वांश्छागलेयोदितो विधिः ।

५ प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ। कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश ।

१ पितुर्गतस्य देवत्वमौरसस्य त्रिपौरुषं। सर्वत्रानेकगोत्राणामेकस्यैव मृतेऽहनि ।

२ एकोद्दिष्टंहि कर्तव्यमौरसेन मृतेऽहनि । सपिंडीकरणादूर्ध्वं मातापित्रोर्न पार्वणं ।

३ अमावास्याक्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः। पार्वणं तत्र कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन ।

४ सप्तदशसामधेनीमनु ब्रूयात् ।

पीछेसे कहे प्रारंभ किये विना पढे और विकृतिमात्र विषयक ससदश १७ वाक्यका सामधेनीलक्षणद्वारा संबंधसे जो अर्थ उसके वश मित्रविंदाआदिप्रकरणमें पढे ससदश वाक्यसे मित्रविंदा अधिकारसे पूर्वर संबंधके बोधसे सार्थकताहै और मित्रविंदाआदि प्रकरणमें उपसंहार (समाप्ति) है अर्थात् मित्रविंदाप्रकरणसे पहिले २ ससदश सामधेनीयोंका पठनहै यहां तो दोनों वचन मृताहके विषय होनेसे अर्थवान् नही होसकते इससे यहां पाक्षिक एकोद्दिष्टकी निवृत्तिके लिये पार्वणके नियमका विधान युक्तहै और एकोद्दिष्टके वचनोंको मातापिताके क्षयाहविषयक और पार्वणके वचनोंको मातापितासे अन्यके क्षयाहविषयक माननेसे व्यवस्था युक्त नही-क्योंकि दोनों जगे माता पिता सुत पदका ग्रहण विद्यमान है कि ये वचने हैंकि सपिण्डीके पीछे पुत्र मातापिताके मरण दिनमें पृथक् २ एकोद्दिष्ट करे और औरसपुत्र विधिसे सपिण्डी करके मातापिताके मरण दिनमें अमावास्याके समान (पार्वण) श्राद्धकरे-और जो कोई यह कहते है कि इस सुमंतुके वचनसे मातापिताके मरणदिनमें अग्निहोत्री पार्वण और निरग्नि एकोद्दिष्ट करे-यहभी सत्प्रतिपक्ष (विरुद्ध) होनेसे त्यागने योग्य है-क्योंकि यह स्मृति है कि जो ब्राह्मण अनेक अग्निवाले वा एक अग्निवाले हैं वे सपिण्डीके पीछे एकोद्दिष्ट करैं पार्वण नही यहां यह निर्णय है कि संन्यासीयोंका क्षयाहमें पुत्र पार्वण ही करैं-क्योंकि यह प्रचेताका वचनहै कि निर्दंडके ग्रहणसे संन्यासीयोंकि सपिण्डीका अभाव है इससे एकोद्दिष्ट नही होता सदैव पार्वण होता है-अमावस्या वा प्रेतपक्षमें क्षयाह हो तो पूर्वोक्त वचनको नियम बोधक होनेसे पार्वण ही होताहै अन्यत्र क्षयाहमें पार्वण और एकोद्दिष्टका व्रीहि और यवके समान विकल्पहै और वंशके आचारसे व्यवस्था होय तो विकल्पकी व्यवस्थाहै अन्यथा अपनी इच्छा है अतिप्रसंगके कहनेको समाप्त करते हैं- ॥

भावार्थ-एकवर्षतक प्रतिमासके और प्रतिवर्षसे मरण दिनमें एकोद्दिष्ट करे और एकादशाहको आद्यश्राद्ध करे ॥ २५६ ॥

पिंडांस्तुगोजविप्रेभ्योदद्यादग्नौजलेपिवा ।
प्रक्षिपेत्सत्सुविप्रेषुद्विजोच्छिष्टंनमार्जयेत् ॥

पद-पिण्डान् २ तु अ-गोजविप्रेभ्यः ४ दद्यात् क्रि-अग्नौ ७ जले ७ अपि अ- वा अ- प्रक्षिपेत् क्रि- सत्सु ७ विप्रेषु ७ द्विजोच्छिष्टं २ न अ- मार्जयेत् क्रि- ॥

योजना-तुपुनः पिण्डान् गोजविप्रेभ्यः दद्यात् अग्नौ वा जले अपि प्रक्षिपेत् विप्रेषु सत्सु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् ॥

ता॰ भा॰-पिण्डोंको गौ, बकरी, ब्राह्मणको दे अथवा अग्नि वा जलमें फेंक दे और ब्राह्मण भोजनके स्थानमें बैठे होय तो उनके उच्छिष्टका मार्जन न करे ॥ २५७ ॥

हविष्यान्नेनवैमासंपायसेनतुवत्सरम् ।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥

१ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक् कार्य्यमेकोद्दिष्टं मृतेहनि ॥ आपाद्य सह पिण्डत्वमौरसो विधिवत्सुतः । कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेहनि ।

२ वर्षे वर्षे सुतः कुर्यात्पार्वणं योऽग्निमान् द्विजः । पित्रोरनग्निमान्धीरः एकोद्दिष्टं मृतेहनि ॥

३ बह्वग्नयस्तु ये विप्रा येचैकाग्नय एव च । तेषां सपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं न पार्वणं ।

१ एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदंडग्रहणादिह । सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा ॥

पद-हविष्यान्नेन ३ वैऽ-मासं २ पायसेन ३ तुऽ- वत्सरं २ मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥ ३ ॥

ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्याभितृप्यंतिदत्तैरिहपितामहाः ॥

पद-ऐणरौरववाराहशाशैः ३ मांसैः ३ यथाक्रमंऽ-मासवृद्ध्या ३ अभितृप्यंति ३ दत्तैः ३ इहऽ-पितामहाः १ ॥

योजना-हविष्यान्नेन मासं तुपुनः पायसेन वत्सरं मात्स्यहारिणकौरभ्रच्छागपार्षतैः ऐणरौरववाराहशाशैः दत्तैः मांसैः पितामहाः यथाक्रमं-मासवृद्ध्या अभितृप्यंति ॥

तात्पर्यार्थ-हविके योग्य तिल ब्रीहि आदि हविष्यसे पितर एक मासतक तृप्तहोतेहैं-सोई मनुने कहाहै कि तिल ब्रीहि जौ उडद जल मूल फल विधिपूर्वक इनके देनेसो मनुष्योंके पितर एकमासतक तृप्तहोतेहैं-और गौके दूधसे बनाये पायस (खीर)से इस वचनके अनुसार एक वर्षतक तृप्त होतेहैं और पाठीन आदि भक्षणके योग्य मत्स्य हरिण (ताम्रमृग) क्योंकि एण कालामृग और हरिण ताम्रमृग आयुर्वेदमें कहाहै उरभ्र (भेड) शकुन (पक्षी) छाग (बकरी) पृषत (चित्रमृग) एण रुरु संबर वराह (वनका शूकर) शशा (खरगोस) पितरोंके निमित्त दिये इनके मांससे पितर क्रमसे एक २ मासकी वृद्धितक पितर तृप्त होतेहैं ॥

भावार्थ-हविष्यान्नसे मासतक पायससे वर्षतक मत्स्य ताम्रमृग भेड बकरी चित्रमृग एण रुरु वाराह शशा इनके मांसके देनेसे एक २ मासकी वृद्धितक पितर यथाक्रम तृप्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ २५८ ॥ २५९ ॥

१ तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेनवा । दत्तेन मांसं प्रीयन्तो विधिवत् पितरो नृणां ।

२ संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ।

३ एणः कृष्णमृगो ज्ञेयस्ताम्रो हरिण उच्यते ।

खड्गामिषंमहाशल्कंमधुमुन्यन्नमेवच ।
लोहामिषंमहाशाकंमांसंवार्ध्रीणसस्यच ॥

पद-खड्गामिषं २ महाशल्कं २ मधु २ मुन्यन्नं २ एवऽ-चऽ-लोहामिषं २ महाशाकं २ मांसं २ वार्ध्रीणसस्य ६ चऽ- ॥

यद्ददातिगयास्थश्चसर्वमानंत्यमश्नुते ।
तथावर्षात्रयोदश्यांमघासुचविशेषतः २६१

पद-यत् २ ददाति क्रि-गयास्थः १ चऽ-सर्वं २ आनन्त्यं २ अश्नुते क्रि-तथाऽ-वर्षात्रयोदश्यां ७ मघासु ७ चऽ-विशेषतःऽ- ॥

योजना-खड्गामिषं महाशल्कं मधु चपुनः मुन्यन्नं लोहामिषं-महाशाकं-च पुनः-वार्ध्रीणसस्य मांसं च पुनः गयास्थः तथा वर्षात्रयोदश्यां च पुनः विशेषतः मघासु यत् ददाति तत्सर्वं अनन्त्यं अश्नुते ॥

तात्पर्यार्थ-खड्ग (गेंडा)का मांस-महाशल्क रूप मत्स्यका मांस- मधु (सहत) नीवार आदि मुनियोंके अन्न-लोह (लाल-बकरी)का मांस महाशाक वार्ध्रीणसका मांस (जो यज्ञके कर्ताओंमें इस वचनके अनुसार प्रसिद्धहै) कि जो जल तीनसें पीवै अर्थात्-जिसकी जिव्हा और कान जल पीते हुए जलसे स्पर्श करैं-ऐसे निर्बल इंद्रियवाले, श्वेत, वृद्ध, बकरीयोंके पति, बकरेको यज्ञके कर्त्ता श्राद्धकर्ममें वार्ध्रीणसकहतेहैं. और गयामें जाकर जो शाकआदि देताहै और चकारसे हरिद्वारआदिमें जो देताहै-वह सब अनंत फलका दाता होताहै-क्योंकि

१ त्रिपिबंत्विंद्रियक्षीणं श्वेत वृद्धमजापतिम् । वार्ध्रीणसंतुतं प्राहुर्याज्ञिका यज्ञकर्मणि ।

यह वचन है कि गंगाद्वार प्रयाग नैमिष पुष्कर अर्बुद सन्निहित–गया–इनमें दिया–श्राद्ध अक्षय होताहै– तैसेही वर्षात्रयोदशी अर्थात् भाद्रपद वदी १३ और विशेषकर मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीको जो कुछ दिया जाता है वह सब अनंतफलदायी होता है– यद्यपि यहां मुनियोंके अन्न मांस मधु आदि सब वर्णोंके लिये सामान्यसे श्राद्धयोग दिखाये हैं तौभी इस वचनसे पुलस्त्यकी कहीहुई व्यवस्था– आदर करने योग्य है– कि नीवार आदि–मुनियोंका अन्न जो श्राद्ध योग्य कहा वह ब्राह्मणके लिये प्रधान और समग्र फलका दाता है, और जो मांस कहा है वह क्षत्रिय वैश्यके लिये प्रधान है और जो मधु (सहत) कहा है वह शूद्रके लिये प्रधान है अब इन तीनोंको छोडकर जो शास्त्र निषिद्धनही वह और शास्त्रोक्त वास्तूक आदि वह सब वर्णोंको समग्र फलका दाताहै॥

भावार्थ– गैंडेका मांस और महाशल्कका मांस और मधु मुनियोंका अन्न लालबकरीका मांस समयका शाक वार्ध्रीणसका मांस गयाका श्राद्ध यह सब और भाद्रपदवदी और मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीका श्राद्ध यह सब अनंत फलका दाताहै ॥ २६० ॥ २६१ ॥

कन्यांकन्यावेदिनश्चपशून्वैसत्सुतानपि।
द्यूतंकृषिंचवाणिज्यंद्विशफैकशफंतथा ॥

पद– कन्यां २ कन्यावेदिनः ६ च– पशून् २ वै– सत्सुतान् २ अपि– द्यूतं २ कृषिं २ च– वाणिज्यं २ द्विशफैकशफं २ तथा– ॥

ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्स्वर्णरौप्येसकुप्यके।
जातिश्रैष्ठ्यंसर्वकामानाप्नोतिश्राद्धदः सदा

पद– ब्रह्मवर्चस्विनः १ पुत्रान् २ स्वर्णरौप्ये २ सकुप्यके २ जातिश्रैष्ठ्यं २ सर्वकामान् २ आप्नोति क्रि– श्राद्धदः १ सदा– ॥

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकांवर्जयित्वाचतुर्दशीम्।
शस्त्रेणतुहतायेवैतेभ्यस्तत्रप्रदीयते २६४ ॥

पद– प्रतिपत्प्रभृतिषु ७ एकां २ वर्जयित्वा– चतुर्दशीं २ शस्त्रेण ३ तु– हताः १ ये १ वै– तेभ्यः ४ तत्र– प्रदीयते क्रि– ॥

योजना–ये शस्त्रेण हताः तत्र तेभ्यः प्रदीयते तां एकां चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रतिपत्प्रभृतिषु श्राद्धदः सदा कन्यां कन्यावेदिनः पशून् चपुनः सत्सुतान्– द्यूतं कृषिं चपुनः वाणिज्यं द्विशफैकशफं तथा ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् सकुप्यके स्वर्णरौप्ये जातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामान् क्रमेण अवाप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ– रूपलक्षणशीलवाली कन्या–रूपलक्षणसे युक्त कन्याके वेदी (जमाई) और अजाआदि क्षुद्रपशु सन्मार्गमें वर्तनेवाले पुत्र द्यूतकाविजय कृषिकाफल वाणिज्य (व्यापार) में लाभ– द्विशफ (गौ आदि) और एक शफ (अश्वआदि) पशु वेदके पठन और वेदोक्तकर्मके करनेसे पैदाहुआ जो ब्रह्मतेज– सुवर्ण चांदी– और (त्रपु सीस आदि) कुप्य जातिमें श्रेष्ठता और स्वर्ग पुत्र पशु आदि संपूर्ण कामना– इन कन्या आदि संपूर्णफलोंको कृष्ण प्रतिपदासे आमावास्यापर्यन्त चतुर्दशीसे वर्जित चौदह तिथियोंमें श्राद्धका दाता क्रमसे प्राप्त होता है क्योंकि चतुर्दशीको जो कोई शस्त्रसे मरेहो उनकोही श्राद्धदे यदि वे ब्राह्मणसे न मरेहों क्योंकि

१ गंगाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करेऽर्बुदे । सन्निहित्यां च गयायां श्राद्धमक्षय्यतां व्रजेत् ॥

२ मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधु प्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत् ॥

यह स्मृति है कि सपिण्डी कियेभी शस्त्रसे-मेरे पिताका एकोद्दिष्ट महालयमें चतुर्दशीको पुत्र करैं- यहां यह नियम है कि भाद्रपद-वदि१४ चतुर्दशीको शस्त्रहतकाही श्राद्ध-करै अन्यको न करै और यह नियमनही शस्त्रहतका आद्धहो तो चतुर्दशीकोहीहो, तिससे क्षयाह आदिमें शस्त्रहतकाभी श्राद्ध श्रद्धाके अनुसार करै भाद्रपदवदी चतुर्दशीको करै यह विधि नही- यह बात मानने योग्य है- क्योंकि शौनकको यह स्मृति है कि भाद्रपदके कृष्णपक्षमें और मासमें २ शस्त्रके हतका श्राद्धकरै ॥

भावार्थ- कन्या जमाई पशु श्रेष्ठपुत्र जूआ खेती व्यापारमें लाभ गौ अश्व आदि पशु ब्रह्मतेजवाले पुत्र- सुवर्ण चांदी त्रपु (शीश) जातिमें श्रेष्ठता और संपूर्ण कामना इन चौदह फलोंको चतुर्दशीको छोडकर प्रतिपदा आदि चौदह तिथियोंमें मनुष्य प्राप्त होता है- क्योंकि चतुर्दशीको जो शस्त्रसेमरे उनकोही श्राद्ध दियाजाता है ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

स्वर्गंह्यपत्यमोजश्चशौर्यंक्षेत्रंबलंतथा ।
पुत्रंश्रेष्ठ्यंससौभाग्यंसमृद्धिंमुख्यतांशुभं ॥

पद- स्वर्गं २ हि॰- अपत्यं २ ओजः २ च॰ शौर्य्यं २ क्षेत्रं २ बलं २ तथा॰- पुत्रं- श्रेष्ठ्यं २ ससौभाग्यं २ समृद्धिं २ मुख्यतां२ शुभं २ ॥

प्रवृत्तचक्रतांचैववाणिज्यप्रभृतीनपि ।
अरोगित्वंयशोवीतशोकतांपरमांगतिम् ॥

पद- प्रवृत्तचक्रतां २ च॰- एव॰- वाणि-ज्यप्रभृतीन् २ अपि॰- अरोगित्वं २ यशः२ वीतशोकतां२ परमां२ गतिं२ ॥

धनंवेदान्भिषक्सिद्धिंकुप्यं गा अप्यजाविकम् । अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सं प्रयच्छति ॥ २६७ ॥

पद- धनं२ वेदान्२ भिषक्सिद्धिं २ कुप्यं२ गाः २ अपि॰- अजाविकं२ अश्वान्२ आयुः २ च॰- विधिवत्॰- यः १ श्राद्धं२ संप्रयच्छति क्रि-

कृत्तिकादिभरण्यंतंसकामानाप्नुयादिमान् ॥
आस्तिकःश्रद्दधानश्चव्यपेतमदमत्सरः ॥

पद- कृत्तिकादिभरण्यन्तं २सः१ कामान् २ आप्नुयात् क्रि- इमान् २ आस्तिकः १ श्रद्दधानः १ च॰- व्यपेतमदमत्सरः १ ॥

योजना- चपुनः आस्तिकः श्रद्धधानः यः कृत्तिकादिभरण्यन्तं विधिवत् श्राद्धं प्रयच्छ-ति सः इमान् कामान् अवाप्नुयात्-स्वर्गं अ-पत्यं- चपुनः- ओजः शौर्य्यं- क्षेत्रं- तथा- बलं- पुत्रं- ससौभाग्यं- श्रेष्ठ्यं- समृद्धिं- मुख्यतां-शुभं-चपुनः प्रवृत्तचक्रतां वाणिज्य-प्रभृतीन् अरोगित्वं- यशः- वीतशोकतां परमां गतिं- धनं- वेदान्- भिषक्सिद्धिं- कुप्यं- गाः- अजाविकं- अश्वान्- आयुः ॥

ता॰ भा॰- जो आस्तिक (विश्वासी) और श्रद्धावान् और गर्व और ईर्ष्यासे रहित जो कृत्तिकासे- भरणीतक श्राद्ध देता है वह क्रमसे स्वर्ग (अधिक सुख) संतान- ओज- (अधिकशक्ति) शौर्य्य (निर्भयता) फलवालाक्षेत्र-शरीरमें बल गुणीपुत्र जातिमें-श्रेष्ठता सौभाग्य (जनोंकाप्यार) धनआदिकी वृद्धि मुख्यता शुभ-प्रवृत्तचक्रता (आज्ञाका-प्रचार) कृषि कुसीद गोरक्षा आदि वाणिज्य रोगका अभाव-यश-शोकका नाश-(अर्थात् इष्ट वियोगआदि दुःखकानाश) परमगति (ब्रह्म लोककी प्राप्ति) सुवर्णआदिधन- ऋग्वेद आदिवेद-भिषक्सिद्धि (औषधके फलकी

१ समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्यवै । एकोद्दिष्ट पितुः कार्यं चतुर्दश्यां महालये ।
२ प्रौष्ठपद्यामपरपक्षे मासि मासि चैवम् ।

प्राप्ति) कुप्य (सुवर्णरजतसे भिन्न ताम्रआदि धन) गौ अजा (बकरी) अवि (भेड)अश्व अवस्था (अधिक जीना) क्रमसे इन फलोंको प्राप्त होताहै॥२६५॥२६६॥२६७॥२६८॥

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ।
प्रीणयंतिमनुष्याणांपितॄन्श्राद्धेनतर्पिताः ॥

पद–वसुरुद्रादितिसुताः १पितरः१श्राद्धदेवताः१–प्रीणयंति क्रि–मनुष्याणां ६ पितॄन्२ श्राद्धेन३ तर्पिताः १ ॥

आयुः प्रजांधनंविद्यांस्वर्गंमोक्षंसुखानिच ।
प्रयच्छंतितथाराज्यंप्रीतानृणांपितामहाः ॥

पद–आयुः २ प्रजां२ धनं २ विद्यां १ स्वर्गं२ मोक्षं२ सुखानि२ च॰–प्रयच्छंति क्रि–तथा॰–राज्यं२ प्रीताः १नृणां६पितामहाः १॥

योजना–श्राद्धेन तर्पिताः श्राद्धदेवताः वसुरुद्रादितिसुताः पितरः मनुष्याणां पितॄन् प्रीणयन्ति– तथा प्रीताः नृणां पितामहाः आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं तथा राज्यं प्रयच्छन्ति ॥

तात्पर्यार्थ–यहां दिये हुये श्राद्ध आदिसे मास वृद्धिसें पितामह तृप्त होतेहैं इस पूर्वोक्त प्रकारसे पितरोंको तृप्तकही सो ठीक नही क्योंकी जो अपने २ कर्मवश स्वर्ग नरक आदिमें गतहैं उनके पुत्र आदिके दिये अन्नसे तृप्तिका असंभवहै और संभवभी होतोभी स्वयं असमर्थ वे कैसे स्वर्ग आदि फलको देतेहै इससे यह समाधानहै कि यहां पितृ आदि शब्दोंसे श्राद्धकर्ममें संप्रदानरूप (दानके पात्र) देवदत्त आदि नही समझने किंतु पितृ पितामह प्रपितामहके अधिष्ठाता वसुरुद्र आदित्य सहितहीका बोध होताहै– जैसे देवदत्त आदि शब्दोंसे शरीरमात्र वा आत्ममात्रका बोधनही होता किंतु शरीरविशिष्ट आत्माका बोध होताहै– इसी प्रकार अधिष्ठातृ देवताओं सहित देवदत्त आदि पितृ आदिशब्दोंसे कहे जाते हैं इससे वसुआदि अधिष्ठाता देवता पुत्र आदिके दिये अन्नपान आदिसे तृप्त हुए उन देवदत्त आदिको तृप्तकरतेहैं जैसे माता गर्भपोषणके लिये अन्यके दिये दोहद अन्न पान आदिसे स्वयं भोजन करके तृप्त हुई अपने उदरमे स्थित बालकको भी तृप्तकरती है और दोहदअन्नके देनेवालोंकोभी प्रत्युपकारका फलदेतीहै– तिसीप्रकार वसु रुद्र आदित्यही वे पितर पिता पितामह प्रपितामह शब्दसे कहे जातेहैं केवल देवदत्त ही श्राद्धकर्मके संप्रदानरूपनहीं वे स्वयंभोजन किये श्राद्धसे तृप्तहुए मनुष्योंके पितरोंको ज्ञानशक्ति देकर तृप्त करतेहैं–और केवल पितरोंकोही तृप्त नही करते किंतु श्राद्ध करनेवाले मनुष्योंको अवस्था प्रजा धन विद्या स्वर्ग मोक्ष और राज्य इनको प्रसन्न होकर मनुष्योंके पितामह देतेहैं और चकारसे शास्त्रमें तहां तहां कहे अन्यफलोंकोभी देतेहैं।

भावार्थ–श्राद्धसें तृप्तहुए वसु रुद्र आदि श्राद्ध देवता मनुष्योंके पितरोंको तृप्तकरतेहै और तैसेही प्रसन्न हुए पितामह जनोंको आयु– प्रजा–धन–विद्या–स्वर्ग–मोक्ष और राज्य इनको देतेहैं ॥ २६९ ॥ २७० ॥

इति श्राद्धप्रकरणम् ॥१० ॥

अथ गणपतिकल्पप्रकरणम् ११

विनायकः कर्मविघ्नसिद्धयर्थविनियोजितः
गणानामाधिपत्येचरुद्रेणब्रह्मणातथा २७१

पद–विनायकः १ कर्मविघ्नसिद्धयर्थऽ–विनियोजितः १ गणानां ६–आधिपत्ये ७चऽ–रुद्रेण ३ ब्रह्मणा ३ तथाऽ– ॥

योजना–रुद्रेण तथा ब्रह्मणा कर्मविघ्न सिद्धयर्थ चपुनः गणानां आधिपत्ये विनायकः विनियोजितः ॥

ता० भा०–दृष्ट और अदृष्टफलके साधन कहे और कहेंगे उनका करना और फलकी सिद्धि अविघ्नसे होती है–इससें अविघ्नके लिये कर्म करनेकी इच्छासे विघ्नके कारक हेतु ओंको कहते हैं विनायक इत्यादि श्लोकसे दोनों प्रकारके हेतुओंका ज्ञान है इससे विघ्नके प्राक् होनेकी पालना और हुए विघ्नके नाशके लिये जानकर करनेवाले प्रवृत्त होते हैं और रोगही दोनों प्रकारके विघ्नोंका हेतुहै–विनायक (गणेश) पुरुषार्थके साधन कर्मोंकी विघ्नसिद्धिके लिये अर्थात् विघ्नोंके स्वरूप और फलसाधनके नाशार्थ रुद्र ब्रह्मा और चकारसे विष्णुने पुष्पदंत आदि गणोंका अधिपति नियुक्त किया ॥ २७१ ॥

तेनोपसृष्टोयस्तस्यलक्षणानिनिबोधत ।
स्वप्नेवगाहतेत्यर्थंजलंमुंडांश्चपश्यति २७२

पद–तेन–३–उपसृष्टः १यतस्तस्य ६ लक्षणानि २ निबोधत क्रि–स्वप्ने ७ अवगाहते क्रि– अत्यर्थ २ जलं २ मुण्डान् २ चऽ–पश्यति क्रि–

कापायवाससश्चैवक्रव्यादांश्चाधिरोहति ।
अंत्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैःसहैकत्रावतिष्ठते॥२७३॥

पद–कापायवाससः २ चऽ–एवऽ– क्रव्यादान् २ चऽ–अधिरोहति क्रि–अंत्यजै ३ गर्दभैः३ उष्ट्रै३ःसहऽ–एकत्रऽ–अवतिष्ठते क्रि–॥

व्रजन्नपितथात्मानंमन्यतेनुमतंपरैः ।
विमनाविफलारंभःसंसीदत्यनिमित्ततः ॥

पद–व्रजन् १ अपिऽ– तथाऽ– आत्मानं २ मन्यते क्रि–अनुमतं २ परैः३ विमनाः१विफलारंभः १ संसीदति क्रि–अनिमित्ततः १ ॥

योजना–यः तेन (विनायकेन) उपसृष्टः तस्य लक्षणानि यूयं निबोधत स्वप्ने अत्यर्थं जलं अवगाहतेच पुनः मुण्डान् चपुनः काषायवाससः पश्यति– चपुनःक्रव्यादान् अधिरोहति अंत्यजैः गर्दभैः उष्ट्रैः सह एकत्र अवितिष्ठते तथा व्रजन् अपि आत्मानं परैः अनुमतं मन्यते–विमनाः विफलारंभः सन् अनिमित्ततः संसीदति ॥

ता०भा०–इसप्रकार विघ्नके कर्ता हेतुओंको कहकर ज्ञापकहेतुओंको कहतेहैं–उस विनायकसे ग्रहण किये मनुष्यके लक्षणोंको हे मुनियों जानो–फिर मुनियोंका संबोधनशांति प्रकरणके प्रारंभार्थ जानो–स्वप्नमें अत्यंतजलका अवगाहन (डूबनातिरना) करताहै और सिरमुंडे गेरुसे रंगे वस्त्रवालोंको देखताहै–और मांस भक्षक गीध आदि पक्षी और मृगपर चढताहै–चाण्डालादि गर्दभ ऊंट इनके बीचमें बैठताहै–और चलताहुआभी पीछे दोडते हुए शत्रुओंसे अपनेको तिरस्कार प्राप्त हुआ देखताहै–और विक्षिप्तचित्त निष्फल आरंभ हुआ किसीभी फलको प्राप्त नहीं होता–इससे विनानिमित्त दुखी होताहै अर्थात् कारणके विना दीनमन हो जाताहै ॥ २७२ ॥ २७३ ॥ २७४ ॥

तेनोपसृष्टोलभतेनराज्यंराजनंदनः ।
कुमारीचनभर्तारमपत्यंगर्भमंगना॥२७४॥

पद-तेन ३ उपसृष्टः १ लभते क्रि-नऽ-राज्यं २ राजनंदनः १ कुमारी १ चऽ-नऽ-भर्तारं २ अपत्यं २ गर्भं २ अंगना १॥

आचार्यत्वंश्रोत्रियश्चनशिष्योध्ययनंतथा ।
वणिग्लाभंनचाप्नोतिकृषिंचापिकृषीवलः ॥

पद-आचार्यत्वं २ श्रोत्रियः १ चऽ-नऽ-शिष्यः १ अध्ययनं २ तथाऽ-वणिक् १ लाभं २ नऽ-चऽ-आप्नोति-क्रि-कृषिं२ च ऽ-अपिऽ-कृषीवलः १ ॥

योजना-तेन उपसृष्टः राजनंदनः राज्यं न लभते-कुमारी भर्तारं अंगना अपत्यं गर्भं, श्रोत्रियः आचार्यत्वं च पुनः शिष्यः अध्ययनं-तथाऽ-वणिक् लाभं च पुनः कृषीवलः कृषिं न आप्नोति ॥

ता० भा०-विनायकसे युक्त-राजनंदन (राजपुत्र) राज्यको प्राप्त नही होता चाहे वह विद्या शूरवीरता धैर्य आदि गुणोंसे युक्तहो, रूप लक्षण आदिसे युक्तभी कुमारी पतिको, और गर्भिणी स्त्री संतानको, और ऋतुमती स्त्री गर्भको, और पठन और अर्थका ज्ञाताभी वेदपाठी आचार्यत्वको, और विनय और आचारसे युक्तभी शिष्य पढनेको-और वणिक् (वैश्य) लाभ (नफे) को, और किशान कृषिके फलको प्राप्त नही होता-इसी प्रकार जो मनुष्य जिस वृत्तिसे जीता हो वह विघ्नेश्वरसे युक्त होनेसे उसके आरंभमें निष्फल समझना ॥ २७५ ॥२७६॥

स्नपनंतस्यकर्तव्यंपुण्येह्निविधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केनसाज्येनोत्सादितस्यच ॥

पद-स्नपनं १ तस्य ६ कर्त्तव्य १ पुण्येह्नि ७ विधिपूर्वकं २ गौरसर्षपकल्केन ३ साज्येन ३ उत्सादितस्य ६ चऽ- ॥

सर्वौषधैः सर्वगंधैर्विलिप्तशिरसस्तथा ।
भद्रासनोपविष्टस्यस्वस्तिवाच्याद्विजाः शुभाः ॥ २७८ ॥

पद-सर्वौषधैः ३ सर्वगंधैः ३ विलिप्तशिरसः ६ तथाऽ-भद्रासनोपविष्टस्य ६ स्वस्तिवाच्याः १ द्विजाः१ शुभाः १ ॥

योजना-तस्य पुण्येन्हि विधिपूर्वकं स्नपनं कर्त्तव्यं-साज्येन गौरसर्षपकल्केन उत्सादितस्य- च पुनः सर्वौषधैः सर्वगंधैः विलिप्तशिरसः तथा भद्रासनोपविष्टस्य शुभाः द्विजाः स्वस्तिवाच्याः कर्त्तव्याः ॥

ता० भा०-इस प्रकार कारक और ज्ञापक हेतुओंको कहकर विघ्नशान्तिका कर्म कहते हैं- उस विनायकसे उपसृष्टको अथवा विनायक उपसर्गकी निवृत्तिके अभिलाषी मनुष्यको अनुकूल नक्षत्र आदि दिनमें विधिसे स्नान करना वह विधि यह है कि गौर सरसोंके चूनमें घी मिलाकर उवटना करें और प्रियंगु नागकेशर आदि सर्वौषधि और चंदन अगर आदि सर्व गंधोंसे शिरको लीपकर-और भद्रासन (जो आगे कहैंगे)पर बैठाकर वेदाध्ययनसे युक्त सुंदर चार ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करें-और उसी समय गृह्योक्त मंत्रसे पुण्याहवाचन करें ॥ २७७ ॥ २७८ ॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् ।मृत्तिकांरोचनांगंधान्गुग्गुलुंचाप्सुनिक्षिपेत् ॥ २७९ ॥

पद-अश्वस्थानात् ५ गजस्थानात् ५ वल्मीकात् ५ संगमात् ५ ह्रदात् ५ मृत्तिकां २ रोचनां २ गंधान् २ गुग्गुलुं २ चऽ-अप्सु७ निक्षिपेत् क्रि-॥

याआहृताह्येकवर्णैश्चतुर्भिःकलशैर्ह्रदात ।
चर्मण्यानडुहेरक्तेस्थाप्यंभद्रासनंततः २८०

पद- याः १ आहृताः १ एकवर्णैः ३ चतुर्भिः ३ कलशैः ३ ह्रदात् ५ चर्मणि७ आ-

नडुहे ७ रक्ते ७ स्थाप्यं १ भद्रासनं १ ततः५- ॥

योजना-अश्वस्थानात् गजस्थानात् वल्मीकात् संगमात् तथा ह्रदात् मृत्तिकां आनीय रोचनां च पुनः गुग्गुलुं गंधान् तासु अप्सु निक्षिपेत्-याः आपः एकवर्णैः चतुर्भिः कलशैः ह्रदात् आहृताः ततः आनडुहे रक्ते चर्मणि भद्रासनं स्थाप्यं ॥

ता० भा०-अश्व हाथी वमि नदीयोंका संगम इनसे लाई पांच प्रकारकी मट्टी गोरोचन गुग्गुलु गंध इनको उन जलोंमें डाल जो एक वर्णके चार कलशोंमें ह्रद (कुण्ड) सें भरके लाये हों-फिर बैलके लाल उस चर्मपर जिसकी उत्तर दिशामें लोम-और पूर्वको ग्रीवाहो मनोरम श्रीपर्णीसे बनाए आसनका स्थापन करे फिर पूर्वोक्त मृत्तिका आदि सहित आमके पत्ते अनेक प्रकारकी माला चंदन नवीन वस्त्रसे शोभित उन घटोंको पूर्वआदि चार दिशाओंमें स्थापन करके-शुद्ध और लिपे स्थंडिलमें रचे पांच वर्णके स्वस्तिक पर लाल बैलको चर्मको पूर्वोक्त प्रकारसे विछाकर उसके ऊपर-श्वेत वस्त्रसे ढके आसनको स्थापन करे इसकोही भद्रासन कहते हैं इसपर बैठे यजमानको ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करें॥२७९॥२८०॥

सहस्राक्षंशतधारमृषिभिः पावनंकृतम् ।
तेनत्वामभिषिंचामिपावमान्यः पुनंतुते ॥

पद-सहस्राक्षं १ शतधारं १ ऋषिभिः ३ पावनं १ कृतं १ तेन ३ त्वां २ अभिषिंचामि क्रि-पावमान्यः १ पुनंतु क्रि-ते ६ ॥

योजना- सहस्राक्षं- शतधारं ऋषिभिः पावनं कृतं यज्जलं तेन त्वां अभिषिंचामि पावमान्यः ऋचः ते (त्वां) पुनंतु ॥

ता० भा०-स्वस्तिवाचनके अनंतर सुहागिन रूप, सुवेषवाली स्त्रियोंके मंगल करनेके अनंतर पूर्व दिशाके कलशको लेकर गुरु इस मंत्रसे अभिषेक करे कि सहस्राक्ष अनेक शक्तिवाला-शतधार (अनेक प्रवाहवाला) जो जल ऋषियोंने पवित्र किंयाहै-उस जलसे विनायकके उपसर्ग शांत्यर्थ-तेरा अभिषेक करताहूं-ये पवित्र जल तुझे पवित्र करो-फिर दक्षिण दिशामें रक्खे दूसरे कलशको लेकर इस मंत्रसे सींचे-कि ॥ २८१ ॥

भगंतेवरुणोराजाभगंसूर्योबृहस्पतिः ।
भगमिंद्रश्चवायुश्चभगंसप्तर्षयोददुः २८२

पद-भगं २ ते ६ वरुणः १ राजा १ भगं २ सूर्यः १ बृहस्पतिः १ भगं २ इंद्रः १ च- वायुः १ च- भगं २ सप्तर्षयः १ ददुः क्रि- ॥

योजना-वरुणः राजा ते तुभ्यं भगं-सूर्यो बृहस्पतिः ते भगं इंद्रः च पुनः वायुः सप्तर्षयः ते तुभ्यं भगं ददुः ॥

ता० भा०-राजा वरुण सूर्य बृहस्पति इंद्र वायु और सप्तर्षि तुझे कल्याण दो फिर तीसरे कलशको लेकर इस मंत्रसे सींचे कि ॥

यत्तेकेशेषुदौर्भाग्यंसीमंतेयच्चमूर्धनि। ललाटेकर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नंतुसर्वदा ॥२८३॥

पद- यत् १ ते ६ केशेषु ७ दौर्भाग्यं १ सीमंते ७ यत् १ च-मूर्द्धनि ७ ललाटे ७ कर्णयोः ७ अक्ष्णोः ७ आपः १ तत् २ घ्नंतु क्रि-सर्वदा ०-॥

योजना- ते केशेषु-सीमंते यत् दौर्भाग्यं अस्ति यत् सीमंते च पुनः मूर्द्धनि ललाटे कर्णयोः अक्ष्णोः अस्ति तत् आपः सर्वदा घ्नंतु ॥

ता० भा०- तेरे केशोंमें और सीमंत मस्तक ललाट कर्ण और नेत्रोंमें जो दौर्भाग्य ('अकल्याण) है उस सबको ये जल शांत

करो फिर चौथे कलशको लेकर पूर्वोक्त तीनों मंत्रोंसे अभिषेक करै-क्योंकि इसे मंत्रमें यही लिखाहै कि सब मंत्रोंको पढकर चौथे घटसे अभिषेक करै ॥ ३८३ ॥

स्नातस्यसार्षपंतैलंस्रुवेणौदुंबरेणतु ।
जुहुयान्मूर्धनिकुशान्सव्येनपरिगृह्यतु २८४

पद- स्नातस्य६ सार्षपं२ तैलं२ स्रुवेण ३ औदुम्बरेण३ तु- जुहुयात् क्रि-मूर्धनि ७ कुशान् २ सव्येन३ परिगृह्य-तु- ॥

योजना- स्नातस्य मूर्द्धनि सव्येन कुशान् परिगृह्य औदुम्बरेण स्रुवेण सार्षपं तैलं तुपुनः सव्येन कुशान् परिगृह्य जुहुयात् ॥

ता० भा०- उक्त प्रकारसे कियाहै अभिषेक जिसका ऐसे यजमानके उस मस्तकपर जो सव्य (वाम) हाथसे पकडी कुशाओंसे ढकाहो गूलरके स्रुवेसे सरसोंके तेलको वक्ष्यमाण मंत्रोंसे डाले ॥ २८४ ॥

मितश्चसंमितश्चैवतथाशालकटंकटौ ।
कूश्मांडोराजपुत्रश्चेत्यंतेस्वाहासमन्वितैः ॥

पद- मितः१ च- संमितः१ च-एव- तथा- शालकटंकटौ१ कूश्मांडः१ राजपुत्रः १च- इति- अन्ते७ स्वाहासमन्वितैः ३ ॥

नामभिर्बलिमंत्रैश्चनमस्कारसमन्वितैः ।
दद्याच्चतुष्पथेशूर्पेकुशानास्तीर्यसर्वतः२८६

पद- नामभिः ३ बलिमंत्रैः३ च- नमस्कारसमन्वितैः ३ दद्यात् क्रि-चतुष्पथे ७ शूर्पे ७ कुशान् २ आस्तीर्य- सर्वतः- ॥

कृताकृतांस्तंदुलांश्चपललौदनमेवच ।
मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान्मांसमेतावदेवतु ॥

पद- कृताकृतान्२ तन्दुलान्२ च-पललौदनं२ एव- च- मत्स्यान्२पक्वान्२तथा- एव- आमान्२मांसं२ एतावत्२एव- च- ॥

पुष्पंचित्रंसुगंधंचसुरांचत्रिविधामपि ।
मूलकंपूरिकापूपंतथैवोंडेरकस्रजः ॥२८८॥

पद- पुष्पं२ चित्रं२ सुगंधं२ च- सुरां२ च- त्रिविधां२ अपि- मूलकं२ पूरिकापूपं२ तथा- एव- उण्डेरकस्रजः२ ॥

दध्यन्नंपायसंचैवगुडपिष्टंसमोदकम् ।
एतान्सर्वान्समाहृत्यभूमौकृत्वाततःशिरः ॥

पद- दध्यन्नं२पायसं२च- एव- गुडपिष्टं२ समोदकं२एतान्२सर्वान्२ समाहृत्य- भूमौ७ कृत्वा- ततः- शिरः २ ॥

विनायकस्यजननीमुपतिष्ठेत्ततोंबिकाम् ।
दूर्वासर्षपपुष्पाणांदत्वार्घ्यंपूर्णमंजलिम् ॥

पद- विनायकस्य ६ जननीं२ उपतिष्ठेत् क्रि- ततः- अंबिकां२ दूर्वासर्षपपुष्पाणां२ दत्वा- अर्घ्यं२ पूर्णं२ अंजलिं२ ॥

योजना- अन्ते स्वाहासमन्वितैः मितः संमितः तथा शालकटंकटौ कूश्मांडः राजपुत्रः इति विनायकस्य नामभिः जुहुयात् च पुनः हुतशेषं नमस्कारसमन्वितैः नामभिः बलिमंत्रैः (बलिमंत्ररूपैः) दशलोकपालेभ्यः दद्यात् ततः शिरः भूमौ कृत्वा कृताकृतान् तंदुलान् पललौदनं पक्वान् तथा आमान् मत्स्यान् तुपुनः एतावदेव मांसं-सुगंधं चित्रं पुष्पं-चपुनः त्रिविधां अपि सुरां-मूलकं-पूरिकापूपं-तथा उण्डेरकस्रजः-दध्यन्नं-चपुनः पायसं समोदकं गुडपिष्टं एतान् सर्वान् समाहृत्य सर्वतः शूर्पे कुशान् आस्तीर्य चतुष्पथे दद्यात् ततः दूर्वासर्षपपुष्पाणां पूर्णं अंजलिं दत्वा विनायकस्य जननीं अम्बिकां उपतिष्ठेत् ॥

तात्पर्य- स्वाहा शब्द जिनके अंतमें और ॐकार आदिमें हो ऐसे विनायकके मित संमित आदि नामोंसे होमकरै-स्वाहा शब्दके योगमें चतुर्थी होतीहै इससे ॐमि-

तायस्वाहा इत्यादि छः मंत्र सिद्ध होतेहैं—इसके अनंतर लौकिक अग्निमें स्थालीपाककी विधिसे चरुको पकाकर इन पूर्वोक्त छः ६ मंत्रोंसेही तिसी अग्निमें होमकरे फिर उस होमके शेष अन्नकी नमःशब्दसे अन्वित (युक्त) चतुर्थी विभक्ति जिनके अंतमें हो ऐसे बलिके मंत्ररूप इंद्र-अग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-वायुसोम-ईशान- ब्रह्मा-अनंत- इनके नामोंसे इन पूर्वोक्त देवताओंको बलिदे-इसके अनंतर क्या करे इस अपेक्षासे कहतेहैं कि कृताकृत तंदुल आदि बलिके समूहको विनायक और उसकी माताको देकर और भूमिपर शिरको रखकर इन दो मंत्रोंको पढकर विनायक और अंबिकाको नमस्कार करे फिर बलिसे शेष बचे अन्नको बिछाई हुई कुशाओंपर रखके सूपमें रखकर चौराहेमेंदे—और कहैकि ये देवता बलिको ग्रहण करो कि आदित्य- वसु- मरुत्- अश्विनीकुमार-रुद्र- सुपर्ण- पन्नग-ग्रह-असुर- यातुधान-पिशाच-उरग-मातर-शाकिनी-यक्ष-वेताल-योगिनी-पूतना-शिवा-जृंभक-सिद्ध गंधर्व-माया-विद्याधर-नर-दिक्पाल-लोकपाल-विघ्नविनायक-और जगत्की शान्तिके कर्त्ता ब्रह्मा आदि महर्षि-तृप्त हो और विघ्न पाप-शत्रु मेरे नहों और तृप्तहुए भूतप्रेत आदि सब सुखदायी और सौम्यहो-एकवार छडे हुए तन्दुलोंको कृताकृत कहतेहैं- पलल (तिलकी पिष्टी)से मिले ओदनको पललौदन कहतेहैं पके और विनापके मत्स्य-और विनापका मांस रक्त पीत आदि नाना प्रकारके पुष्प और चंदन आदि सुगंधिवाला द्रव्य-और गौडी-माध्वी-पैष्टी तीन प्रकारकी मदिरा मूलक (मूली) पूरीपूए उण्डेरक माला अर्थात् पिरोहीहुई पिष्टीकी माला-दही मिला अन्न पायस (खीर) गुडपिष्ट-अर्थात् गुडमिली शाली आदिकी पिष्टी मोदक (लड्डू) इन सबको देकर विनायककी जननी अंबिकाको दूर्वा पुष्प सर्षपकी पूर्ण अंजलिसे जल देकर इन मंत्रोंसे स्तुति करे ॥

१ ॐमितायस्वाहा—ॐसमिता॰ ॐशालाय॰ ॐकटंकटा॰ ॐकूश्मांडा॰ ॐराजपुत्रायस्वाहा ।

२ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुंडाय धीमहि । तन्नोदंती प्रचोदयात्—सुभगायै विद्महे सुमालिन्यै धीमहि तन्नोगौरी प्रचोदयात् ।

३ बलिं गृह्णंत्विमे देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगमातरः । शाकिन्यो यक्षवेतालाः योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माया विद्याधरा नराः । दिक्पाला लोकपालाश्च येच विघ्न विनायकाः ॥ जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः । माविघ्नमाचरेत्पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥ सौम्या भवंतु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ।

भावार्थ- अंतमें स्वाहासे युक्त मित संमित शाल कटंकट कूश्मांड राजपुत्र इन नामोंसे और नमस्कारसे युक्त बलिके मंत्रोंसे होमकरे फिर चतुष्पथमें सूपके ऊपर कुशा रखकर पके और विनापके तंडुल-पललौदन-पके और विना पके मत्स्य और मांस अनेक रंगके पुष्प सुगंध और तीनप्रकारकी मदिरा मूली पूरी अपूप-सूतमें पुरोही पिष्टीकी माला-दही मिला अन्न-पायस (खीर) गुड मिली पिष्टी मोदक इन सबको पूर्वोक्त सूपमें रखकर और भूमिमें शिरको टेककर और दूर्वासरसों पुष्पोंसे भरी अंजलिसे अर्घ्य देकर विनायककी माता अंबिकाकी इन मंत्रोंसे स्तुति करे कि॥२८५।२८६।२८७।२८८।२८९।२९०

रूपंदेहियशोदेहिभगंभवतिदेहिमे ।
पुत्रान्देहिधनंदेहिसर्वकामांश्चदेहिमे २९१

पद-रूपं २ देहि क्रि-यशः २ देहि क्रि-भगं २ भवति १ देहि क्रि-मे ४ पुत्रान् २

देहि क्रि– धनं २ देहि क्रि– सर्वकामान् २ च०–देहि क्रि–मे ४ ॥

ततः शुक्लांबरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मंगुरोरपि ॥

पद–ततः०– शुक्लांबरधरः १ शुक्लमाल्यानुलेपनः १ ब्राह्मणान् २ भोजयेत् क्रि–दद्यात् क्रि–वस्त्रयुग्मं २ गुरोः ६ अपि०– ॥

योजना–हे भवति रूपंदेहि–मे (मह्यं) यशः देहि–भगंदेहि– पुत्रान्देहि–धनं देहि–चपुनः सर्वान् कामान् मेदेहि–ततः शुक्लांबरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः यजमानः ब्राह्मणान् भोजयेत् गुरोः अपि वस्त्रयुग्मं दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–हे भवति (पूजने योग्य) मुझे रूप यश ऐश्वर्य पुत्र संपूर्ण कामना धन दे–यह स्तुतिका मंत्र है–विनायककी स्तुतिमें हे भवतिकी जगे हे भगवन् कहै–फिर अभिषेकके अनंतर यजमान शुक्लवस्त्र और शुक्ल-
[illegible]
दो वस्त्रदे और अपिशब्दसे ब्राह्मणोंकीभी यथाशक्ति भोजनकी दक्षिणादे–इसके प्रयोगका यह क्रम है कि मंत्रका ज्ञाता और उक्तलक्षण गुरु चार ब्राह्मणोंसहित भद्रासनकी रचनाके अनंतर भद्रासनके समीप विनायक और उसकी माताका उक्त मंत्रोंसे पूजन करके और चरुको पकाकर और भद्रासनपर बैठे यजमानका पुण्याहवाचन और चार कलशोंसे अभिषेक करके और उसके शिरपर शिरसोंके तेलको डालकर और चरुको होमकर–अभिषेक शालाकी चारों दिशाओंमें इंद्रादिदेवताओंको बलिदे– यजमान तो स्नानके अनंतर शुक्लमाला और वस्त्रोंको धारणकर गुरु सहित विनायक और अंबिकाको भेंटदेकर और भूमिमे शिरको लगाकर पुष्पगलसे अर्घ्य और दूर्वासिरसोंकी अंजलि देकर विनायक और अंबिकाकी स्तुतिकरै–और आचार्य बलिके शेषको भूमिमें रखकर और शिरको भूमिमे झुकाकर चौराहेमें रखदे फिर यजमान गुरुको दक्षिणा और दोवस्त्र दे और ब्राह्मणभोजन करावै–

भावार्थ–हे भगवति मुझे रूप यश ऐश्वर्य पुत्र धन और संपूर्ण कामनादे फिर शुक्लवस्त्र धारण किये और शुक्लमाला और चंदन लगाकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै और गुरुको दो वस्त्रदे ॥ २९१ । २९२ ॥

इति विनायकस्नानविधिः ॥

एवंविनायकंपूज्यग्रहांश्चैवविधानतः ।
कर्मणांफलमाप्नोतिश्रियंचाप्नोत्यनुत्तमाम्

पद–एवं०–विनायकं २ पूज्य०– ग्रहान् २ च०–एव०–विधानतः०–कर्मणां ६ फलं २ आप्नोति क्रि–श्रियं २ च०–एवं०–अनुत्तमां २ ॥

योजना–एवं विनायकं चपुनः ग्रहान् संपूज्य कर्मणां फलं चपुनः अनुत्तमां श्रियं आप्नोति॥

ता०भा०– इस उक्तप्रकारसे विनायक और विधिसे ग्रहोंकी पूजा करके कर्मोंके फल और सर्वोत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है यहां ग्रहपूजा इस लिये कही है कि ग्रहपीडाओंको शान्ति और लक्ष्मीकी कामनाके लिये ग्रहपीडाको आगे कहेंगे २९३ ॥

आदित्यस्यसदापूजांतिलकंस्वामिनस्तथा
महागणपतेश्चैवकुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् २९४

पद– आदित्यस्य ६ सदा०– पूजां २ तिलकं २ स्वामिनः ६ तथा०–महागणपतेः ७ च०–एव०–कुर्वन् १ सिद्धिं आवाप्नुयात् क्रि–॥

योजना–आदित्यस्य सदा पूजां चपुनः तिलकं तथा स्वामिनः पूजां चपुनः महागणपतेः पूजां कुर्वन् सिद्धिं अवाप्नुयात् ॥

ता०भा०–सूर्यकी रक्तचंदन कुंकुम आदिसे पूजा और स्कंदकी और महागणपतिकी नित्य पूजा और इन सबका तिलक करता हुआ मनुष्य आत्मज्ञानकेद्वारा सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ २९४ ॥

इति महागणपतिकल्पः ॥११॥

अथ ग्रहशान्तिप्रकरणम् १२

श्रीकामः शांतिकामोवाग्रहयज्ञंसमाचरेत् ।
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामोवातथैवाभिचरन्नपि ॥

पद–श्रीकामः १ शांतिकामः १ वा॰–ग्रहयज्ञं २ समाचरेत् क्रि–वृष्ट्यायुःपुष्टिकामः १ वा॰–तथा॰–एव॰–अभिचरन् १ अपि॰– ॥

योजना–श्रीकामः वा शांतिकामः वृष्ट्यायुःपुष्टिकामः तथा अभिचरन् अपि ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥

ता॰ भा॰–अब ग्रहपूजाके अन्यभी फल कहते हैं–लक्ष्मी दुःखकी शांति और सस्यकी वृद्धिके लिये वृष्टि अवस्था निरोग शरीर इन सबकी कामना करनेवाला और अभिचार (परपीडा)का अभिलाषी मनुष्य ग्रहयज्ञको करे ॥ २९५ ॥

सूर्यः सोमोमहीपुत्रः सोमपुत्रोबृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरोराहुः केतुश्चेतिग्रहाः स्मृताः

पद–सूर्यः१ सोमः१ महीपुत्रः१सोमपुत्रः१ बृहस्पतिः १ शुक्रः १ शनैश्चरः १ राहुः १ केतुः १ च॰–इति॰– ग्रहाः १ स्मृताः१ ॥

योजना–सूर्यः सोमः महीपुत्रः सोमपुत्रः बृहस्पतिः शुक्रः शनैश्चरः राहुः केतुः इति नवग्रहाः स्मृताः॥

ता॰ भा॰–सूर्य सोम मंगल बुध बृहस्पति। शुक्र शनैश्चर राहु केतु ये नवग्रह कहे हैं ॥

ताम्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचंदनात्स्वर्णकादुभौ राजतादयसः सीसात्कांस्यात्कार्याग्रहाः क्रमात्॥ २९७ ॥

पद–ताम्रकात् ५ स्फाटिकात् ५ रक्तचंदनात् ५ स्वर्णकात् ५ उभौ १ राजतात् ५ अयसः ५ सीसात् ५ कांस्यात् ५ कार्याः १ ग्रहाः १ क्रमात् ५ ॥

स्ववर्णैर्वापटेलेख्यागंधैर्मंडलकेपुवा ।
यथावर्णंप्रदेयानिवासांसिकुसुमानिच२९८

पद–स्ववर्णैः३ वा॰–पटे ७ लेख्याः१गंधैः ३ मंडलकेषु ७ वा॰– यथावर्णं॰– प्रदेयानि १ वासांसि १ कुसुमानि १ च॰–॥

गंधश्चवलयश्चैवधूपोदेयश्चगुग्गुलुः ।
कर्तव्यामंत्रवंतश्चचरवःप्रतिदैवतम् २९९॥

पद–गंधः १ च॰– बलयः १ च॰–एव॰– धूपः १ देयः १ च॰–गुग्गुलुः १ कर्तव्याः १ मंत्रवन्तः १ च॰– चरवः १ प्रतिदैवतम् २ ॥

योजना–ताम्रकात् स्फाटिकात् रक्तचंदनात् स्वर्णकात् उभौ राजतात्–अयसः सीसात् कांस्यात् ग्रहाः क्रमात् कार्याः–स्ववर्णैः वागंधैः पटे वा मंडलकेषु लेख्याः यथावर्णं वासांसि चपुनः कुसुमानि प्रदेयानि–गंधः चपुनः वलयः चपुनः गुग्गुलुः धूपः देयः चपुनः प्रतिदैवतं मंत्रवन्तः चरवः कर्तव्याः ॥

तात्पर्यार्थ–सूर्य आदिनव ग्रहोंकी मूर्ति–तांबा स्फटिक रक्तचंदन सुवर्ण सुवर्ण चांदी लोहा सीसा कांसी इनकी क्रमसे बनावावे–ये न मिलेंतो अपने २ वर्णसे वस्त्रके ऊपर–वा रक्तचंदन आदि गंधोंसे मंडलमें लिखने–और इनके दोभुजा आदि विशेष मत्स्यपुराणमें

१ पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वरथसंस्थश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥ श्वेतः श्वेतांबरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः। गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥ रक्तमाल्यांबरधरः शक्तिशूलगदाधरः । चतुर्भुजो मेषगमः वरदः स्याद्धरासुतः ॥ पीतमाल्यांबरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥देवदैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ। दंडिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमंडलू ॥ इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योर्कसुतः सदा॥ करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः । नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते॥ धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः। गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥ सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः । स्वांगुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा ।

कहे जानने कि सूर्यका पद्मके समान आसन और हाथहैं और पद्मके गर्भकी तुल्य कांतिहै सात अश्ववाले रथसे युक्तहै और दोभुजाहैं– और चंद्रमा श्वेतवस्त्रधारी दश अश्ववाला–श्वेतभूषण–गदा हाथमें जिसके ऐसा बनाना–और मंगल रक्तपुष्प और रक्तवस्त्रधारी–शक्तिशूलगदाधारी–चतुर्भुजी मेषवाहन–वरका दाता–होताहै–और बुध पीतमाला और पीतवस्त्रका धारी–कनेरके समान कांति–खड्गचर्म गदा जिसके हाथमें–सिंहवाहन–वरका दाता है–देवता–और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्र पीत श्वेत चतुर्भुजी–दंडधारी और अक्षसूत्र कमंडलुके धारी क्रमसे बनाने–और शनैश्वर इंद्रनील मणिके समान कांति–शूलधारी–वरका दाता–गीधवाहन बाण और धनुषधारी–सदैव करना–और राहु कपालमुख–खड्गचर्म शूलधारी–वरका दाता–नीलरंग–सिंहासनपर स्थित–करना कहाहै– और केतु–धूम्ररंग–दोभुजा–गदाधारी–विकृतमुख–गीधवाहनपर स्थित वरके दाता कहेहैं–और जगत्के हितकारी सब ग्रहोंके मुकुट बनाने–और अपने अंगुलसे ऊंचे अष्ट उत्तर सौ बनाने–और इनके स्थापनका देश–भी वहांही कहाहै कि मध्यमें सूर्य–दक्षिणमें मंगल–उत्तरमें बृहस्पति– पूर्वोत्तरमें बुध– पूर्वमें शुक्र–दक्षिणपूर्वमें चंद्रमा–पश्चिममें शनैश्वर–पश्चिमदक्षिणमें राहु–पश्चिमउत्तरमें केतुका–श्वेत चावलोंसे स्थापन करे–अब पूजाकी विधिको कहते हैं–जिस ग्रहका जो रंगहै उसी वर्णके गंध वस्त्र पुष्प देने और बली देनी और धूप सबको गुग्गुलकी देनी–

१ मध्ये तु भास्करं विद्यालोहितं दक्षिणे नतु। उत्तरेण गुरुं विद्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु। पूर्वेण भार्गवं विद्यात्सोमं दक्षिणपूर्वके। पश्चिमेन शनिं विद्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे। पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थाप्या वै शुक्लतण्डुलैः॥

और देवता २ के प्रति चार२ मुष्टि चरु इस मंत्रसे देनी और अग्निस्थापन अन्वाधान पूर्वक चरु बनावनाकर भली प्रकार प्रज्वलित अग्निमें इध्मका आधान आदि आघारांत कर्म करके आदित्य आदिके निमित्त क्रमसे वक्ष्यमाण मंत्र और वक्ष्यमाण प्रकारसे होमकर चरुओंका होमकरे ॥

भावार्थ–तांबा–स्फटिक–रक्तचंदन–सुवर्ण–सुवर्ण–चांदी–लोहा–सीसा–कांसी इनके क्रमसे ग्रह बनावे–अथवा अपने २ वर्णके वा गंधसे वस्त्र और मंडलमें लिखने और वर्णके अनुसारही वस्त्र और देने–गंध–बली–गुग्गुलका धूप देना–और देवतारके प्रतिमंत्रोंसे चरु बनाने ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ २९९ ॥

आकृष्णेनइमंदेवाअग्निर्मूर्द्धादिवःककुत्। उद्बुध्यस्वेतिचऋचोयथासंख्यंप्रकीर्तिताः॥

पद–आकृष्णेन ३ इमंदेवा १ अग्निर्मूर्द्धा–दिवःककुत् १ उद्बुध्यस्व इति–च–ऋचः १ यथासंख्यं–प्रकीर्तिताः १ ॥

बृहस्पतेअतियदर्यस्तथैवान्नात्परिस्रुतः। शन्नोदेवीस्तथाकांडात्केतुंकृण्वन्निमांस्तथा

पद–बृहस्पतेअतियदर्यः १ तथा–एव–अन्नात्परिस्रुतः १ शन्नोदेवीः १ तथा–कांडात् ५ केतुंकृण्वन् १ इमान् २ तथा– ॥

योजना–आकृष्णेन–इमंदेवाः–अग्निर्मूर्द्धा–उद्बुध्यस्व इति ऋचः बृहस्पते अतियदर्यः–तथैव अन्नात्परिस्रुतः तथा शन्नोदेवीः काण्डात्–केतुं कृण्वन् तथा इमान् मंत्रान् ग्रहाणां यथासंख्यं विदुः ॥

ता०भा०– आकृष्णेनरजसावर्तमान इत्यादि वेदोक्त नौ मंत्र सूर्य आदि ग्रहोंके क्रमसे जानने ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥

१ धनुरध्वजौ मुधीः निर्वरत्नमूर्ध्न त्वा जुष्टं निर्वपामि।

अर्कःपलाशःखदिरअपामार्गोथपिप्पलः ।
औदुंबरःशमीदूर्वाकुशाश्चसमिधःक्रमात् ॥

पद-अर्कः १ पलाशः १ खदिरः१अपामार्गः १ अथऽ- पिप्पलः १ औदुम्बरः १ शमी १ दूर्वा १ कुशाः १ चऽ- समिधः १ क्रमात् ॥ ५ ॥

-योजना-अर्कः पलाशः खदिरः अपामार्गः अथ पिप्पलः औदुम्बरःशमी दूर्वा चपुनःकुशाः समिधःएताः क्रमात् ग्रहाणां समिधो भवंति ॥

ता०भा०-आक ढाक खैर औंगा पीपल गूलर शमी (छोंकर) दूब और कुशा ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंकी समिध होतीहै और वे गीली बिनाटूटी और त्वचा सहित प्रादेशमात्र लेनी ॥ ३०२ ॥

एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव च ।
होतव्यामधुसर्पिर्भ्यांदध्नाक्षीरेणवायुताः ॥

पद-एकैकस्य ६ तुऽ-अष्टशतं १ अष्टाविंशतिः १ एवऽ-चऽ- होतव्याः १ मधुसर्पिर्भ्यां ३ दध्ना ३ क्षीरेण ३ वाऽ-युताः १ ॥

योजना- एकैकस्य तु मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा क्षीरेण युताः अष्टशतं अष्टाविंशतिः आहुतयः होतव्याः ॥

ता०भा०-सूर्य आदि ग्रहोंमें एक एककी एकसौ आठ १०८ वा अट्ठाईस २८ लेकर मधु- घी- दूध वा दधिसे युक्त समिध होमनी ॥ ३०३ ॥

गुडौदनंपायसंचहविष्यंक्षीरषाष्टिकं ।
दध्योदनंहविश्चूर्णमांसंचित्रान्नमेवच ३०४

पद-गुडौदनं २ पायसं २ चऽ-हविष्यं २ क्षीरषाष्टिकं २ दध्योदनं २ हविश्चूर्णं २ मांसं २ चित्रान्नं २ एवऽ-चऽ- ॥

दद्याद्ग्रहक्रमादेवद्विजेभ्योभोजनंद्विजः ।
शक्तितोवायथालाभंसत्कृत्याविधिपूर्वकम् ॥

पद-दद्यात् क्रि-ग्रहक्रमात् ५ एवऽ- द्विजेभ्यः ४ भोजनं २ द्विजः १ शक्तितःऽ- वाऽ-यथालाभंऽ-सत्कृत्यऽ-विधिपूर्वकंऽ-

योजना-द्विजः ग्रहक्रमात् गुडौदनं चपुनः पायसं हविष्यं क्षीरषाष्टिकं दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चपुनः चित्रान्नं एतानि शक्तितः यथालाभं विधिपूर्वकं सत्कृत्य द्विजेभ्यः भोजनं दद्यात् ॥

ता०भा०-गुडसे मिश्रित ओदन (भात) पायस हविष्य (मुनियोंका अन्न) दुग्धसे मिश्रित साठी चावलोंका ओदन-दध्योदन (दहीसे मिला भात) हविः (घृतमिश्रित भात) चूर्ण (तिलोंके चूर्णसे मिश्रित ओदन) मांस अर्थात् भक्षण करने योग्य मांससे मिलाहुआ ओदन-चित्रौदन (अनेक वर्णका भात) ये गुडौदन आदि संपूर्ण क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंके उद्देशसे ब्राह्मणोंको भोजनके लिये दे-ब्राह्मणोंकी संख्या अपनी शक्तिके आनुसार समझनी-गुडौदन आदि नमिले तो प्राप्तिके अनुसार ओदन आदिको ब्राह्मणोंको पादोंके प्रक्षालन आदि विधिपूर्वक सत्कारसे दे ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

धेनुः शंखस्तथानड्वान्हेमवासोहयःक्रमात् ।
कृष्णागौरायसंछागएतावैदक्षिणाःस्मृताः

पद-धेनुः १ शंखः १ तथाऽ-अनड्वान् १ हेम १ वासः १ हयः १ क्रमात् ५ कृष्णा १ गौः १ आयसं १ छागः १ एताः १ वैऽ- दक्षिणाः १ स्मृताः १ ॥

योजना-धेनुः शंखः तथा अनड्वान् हेम वासः हयः कृष्णा गौः आयसं छागः एताः क्रमात् ग्रहाणां दक्षिणाः मुनिभिः स्मृताः ॥

ता० भा०-दूध देतीहुई गौ भार लेजानेमें समर्थ हो ऐसा बलवान् अनड्वान् (बैल) हेम (सुवर्ण) वासः (वस्त्रपीला) हय (सफेद लाल वर्णका अश्व) कालीगौ

आयस (लोहेका शस्त्र) छाग (बकरी) ये धेनु आदि दक्षिणा सूर्य आदिके उद्देशसे मनु आदिकोंने ब्राह्मणोंको कहीहैं– यह सब देनेकी शक्ति हो तो समझना–न मिल-सके तो लाभके अनुसार शक्तिसे और ही कुछ देना ॥ ३०६ ॥

यस्ययःस्याद्यदादुःस्थःसतंयत्नेनपूजयेत्।
ब्रह्मणैषांवरोदत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ ॥

पद–यस्य ६ यः १ स्यात् क्रि– यदा०– दुःस्थः१ सः१ तं २ यत्नेन ३ पूजयेत् क्रि– ब्रह्मणा ३ एषां ६ वरः ६ दत्तः ६ पूजिताः१ पूजयिष्यथ क्रि– ॥

योजना–यस्य (पुरुषस्य) यः यदा दुःस्थः स्यात् सः तं ग्रहं यत्नेन पूजयेत्–एषां(ग्रहाणां) ब्रह्मणा वरः दत्तः पूजिताः यूयं पूजयिष्यथ॥

ता०भा०–जो ग्रह जिस पुरुषके दुष्ट (अष्टम आदि) स्थानमें जब स्थित हो वह मनुष्य तब उस ग्रहका यत्नसे पूजन करे– क्योंकि जिससे इन ग्रहोंको पूर्व ब्रह्मानें यह वर दियाहै की पूजा किये हुये तुम पूजन करनेवालोंको इष्ट वस्तुके देने और अनिष्ट वस्तुके नाश करनेसे प्रसन्न करो ॥ ३०७॥

ग्रहाधीनानरेंद्राणामुच्छ्रायाः पतनानिच ।
भावाभावौचजगतस्तस्मात्पूज्यतमाग्रहाः॥

पद–ग्रहाधीना१ नरेन्द्राणां६ उच्छ्रायाः१ पतनानि १ चऽ –भावाभावौ १ चऽ–जगतः६ तस्मात् ५ पूज्यतमाः १ ग्रहाः १ ॥

योजना–नरेन्द्राणां उच्छ्रायाः चपुनः पतनानि चपुनः जगतः भावाभावौ ग्रहाधीनाः संति तस्मात् पूज्यतमाः ग्रहाः संति ॥

तात्पर्यार्थ– शान्तिक पौष्टिक आदि कर्मोंका अधिकार अविशेषसे द्विजोंको कहकर तिसमें अभिषेकसे युक्त राजाको विशेषसे अधिकार कहते हैं–नरेन्द्र (जिनका अभिषेक हुआ हो ऐसे क्षत्रिय) के ग्रह अतिशय पूज्य (श्रेष्ठ) होतेहैं–इसमें अन्योंके-भी ग्रहपूज्य होतेहैं यह प्रतीत हुआ–उभयत्र (ऐश्वर्य–और पडना) कारणोंको कहतेहैं– कि प्राणिओंकी ऐश्वर्यकी वृद्धि और विनिपात (ऐश्वर्यसे गिरना) ग्रहोंके अधीन होतेहैं इससे इनके अधिकारियोंको ये ग्रह पूजने योग्यहैं–और स्थावर जंगमरूप इस जगत्के भावाभाव (उत्पत्ति मरण)भी ग्रहोंके अधीनहै तिस समयमें यदि ये पूजे जांयतो अपने समयानुसार उत्पत्ति और निरोध होते हैं अन्यथा नहीं–तिससे तिस जगत्के योग क्षेम करनेवाले राजाओंको जगत्के ईश्वर होनेसे ये ग्रह पूजने योग्यहैं इससे शांति आदि कर्मोंमें विशेषकर अधिकार राजाओंको है–सोई गौतमने इस प्रकार शांतिक आदि दिखायेहैं कि राजा ब्राह्मणसे अतिरिक्त संपूर्णोंका ईश्वर है यहां राजाका अधिकार करके वर्ण और आश्रमोंकी न्यायसे रक्षाकरे और इन सबको अपने २ धर्ममें नियुक्त रक्खे और इत्यादि राजाके धर्मोंको कहकर फिर कहाहै कि जो देव उत्पातके विचार करने वाले (ज्योतिर्विद्) कहें उनको माने और कोई यह मानतेहैं कि योगक्षेम उनके ही अधीनहै–अब शांतिक पौष्टिक आदि अनुष्ठानके हेतुओंको कहकर–शान्तिक पुण्याहवाचन स्वस्त्ययन–आयुष्य मंगल इनके और शत्रुके स्तभंन (निरोध) अभिचार और शत्रुओंकी वृद्धि इनसे युक्त जो अन्य आभ्युदयिक कर्महैं उनको शालामिमेंकरे ॥

इति ग्रहशान्तिप्रकरणम् ॥१२॥

१ राजासर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्ज्यमिति राजानमधिकृत्य वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोभिरक्षेच्च चलतश्चैतान्स्वधर्मे स्थापयेदित्यादीन्राजधर्मानुक्त्वा यानि च देवोत्पातचिंतकाः प्रब्रुयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके योगक्षेममभिजानते इति शान्तिकपौष्टिकाद्यनुष्ठानहेतुमभिधाय शांतिकपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमंगलसंयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषिणः स्तंभनाभिचारद्विषद्वृद्धियुक्तानि च शालाग्नौ कुर्यादिति शांतिकादीनि दर्शितानि ।

अथ राजधर्मप्रकरणम् १३

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञोवृद्धसेवकः।
विनीतःसत्वसंपन्नःकुलीनःसत्यवाक्शुचि॥

पद–महोत्साहः १ स्थूललक्षः १ कृतज्ञः १ वृद्धसेवकः १ विनीतः १ सत्वसंपन्नः १ कुलीनः १ सत्यवाक् १ शुचिः १ ॥

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोपरुपस्तथा।
धार्मिकोव्यसनश्चैवप्राज्ञःशूरोरहस्यवित् ॥

पद–अदीर्घसूत्रः १ स्मृतिमान्१ अक्षुद्रः१ अपरुषः १ तथाऽ–धार्मिकः १ अव्यसनः १ चऽ–एवऽ–प्राज्ञः १ शूरः १ रहस्यवित् १॥

स्वरंध्रगोप्तान्वीक्षिक्यांदंडनीत्यांतथैवच ।
विनीतस्त्वथवार्तायांत्रय्यांचैवनराधिपः॥

पद–स्वरंध्रगोप्ता १ आन्वीक्षिक्यां ७ दंड-नीत्यां ७ तथाऽ– एवऽ– चऽ– विनीतः १ तुऽ– अथऽ– वार्त्तायां ७ त्रय्यां ७ चऽ–एवऽ–नराधिपः १ ॥

योजना–नराधिपः महोत्साहाद्युक्तलक्षणकः स्यात् तथा अन्वीक्षिक्यां दंड-नीत्यां चपुनः वार्तायां तथा त्रय्यां विनीतः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–बहुत जिसे उत्साह अर्थात् पुरुषार्थसे जो सिद्ध कर्म उसके प्रारंभ कर-नेका निश्चय हो–और स्थूल लक्ष–बहु देय अर्थका दर्शीहो और कृतज्ञ अर्थात् दूसरे-के किये उपकार और अपकार (तिरस्कार)-को जो न भूलताहो–और तप और ज्ञानसे जो वृद्ध (अधिक ज्ञान और तपवाले) हैं उनका सेवक हो–विनीत अर्थात् विनय (नम्रता)से युक्तहो–यहां विनय शब्दसे शा-स्त्रसे अविरुद्ध पूर्व कहे हुए स्नातकके –संशयको न प्राप्तहो और अकस्मात् कि-सीको कठोर वचन न कहै इत्यादि वच-नसे पूर्वकहे धर्म लेतेहैं–सत्वसंपन्न अर्थात् संपत्ति और आपत्तिमें सुख दुखःसे रहितहो और कुलीन अर्थात् माता और पितासे जिसका अभिजन हो– सत्यवाक्–अर्थात् सत्य वचन कहनेवाला हो–शुचि अर्थात् बाह्य और भीतरकी शुद्धियुक्तहो–अदीर्घ सूत्र–अर्थात् अवश्य करने योग्य कर्मोंके प्रारंभमें और प्रारंभ किये कर्मोंकी समा-प्तिमें जो विलम्ब (देर) न करताहो और जानेहुए अर्थको जो न भूले ऐसा स्मृतिवालाहो– अक्षुद्र अर्थात् जो असत् (खोटे) गुणोंकी निंदा करताहो अपरुष–अर्थात् पराए दोषको जो न कहताहो–धार्मिक (वर्णाश्रमके धर्मोंसे युक्त) हो–और अव्यसन अर्थात् जो व्यसनोंसे रहितहो– व्यसन ये अठारह१८ प्रकारके मनुने कहे हैं कि मृगया (सिकार) १ अक्षों (फांसों)से खेलना– २ दिनमें सोना– ३ निंदा करनी ४ दिनमें स्त्रीसेवन– ५ मदिरा आदिसे मद (नसा) करना– ६ तौर्यत्रिक (नाचना७ गाना८ बजाना९) वृथा पात–१० ये दश व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं–पैशुन्य– साहस– द्रोह– ईर्ष्या– (कपटसे-मारना) असूया (दूसरेके गुणोंकी निंदा) दूषण– वाणी और दण्डसे उत्पन्नहुई कठो-रता अर्थात्– आक्रोश आदि– और–ताडनादि ये आठ व्यसन क्रोधसे उत्पन्न होते हैं– तिन अठारहमें ये सात कष्टसाध्य कहे है कि मदिरा आदिका पान– फासोंसे

१ मृगयाक्षाः दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।तौर्य-त्रिकं वृथाघातः कामजो दशकोगणः । पैशुन्यं साह-सं द्रोहः ईर्ष्यासूयाय दूषणं । वाग्दंडजं च पारुष्यं क्रोध जोपि गणोऽष्टकः।

२ पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमं।एतत्कष्ट-तमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणं क्रोधजेपि गणे विद्यात्कष्टमे-तत्त्रिकं सदा ।

खेलना– स्त्रीसेवन और मृगया ये चार क्रमसे कामसे पैदाहुए व्यसनगणमें कष्टतम समझने– दण्डका पातन– वाक्पारुष्य (कठोरवचन) अर्थमें दोष देना ये तीन क्रोधसे उत्पन्न व्यसनगणमें कष्ट (कष्टसाध्य) समझने– प्राज्ञ– अर्थात् जो गंभीर (कूट) अर्थके जाननेमें समर्थहो– जो शूर (निर्भय) हो–रहस्यवित्–अर्थात् गोपनीय(छिपानेयोग्य) अर्थके गुप्त रखनेमें चतुरहो– जो स्वरंध्रगोप्ता अर्थात् अपनेसातों अंगोंमें जो दूसरेके प्रवेश होनेके द्वारकी शिथिलता (आलस्य) उस स्वरंध्र कहते हैं उसका जो प्रच्छादन (छिपाना) करले– अर्थात् जैसे अपने सातों अंगोंमें प्रवेश होनेका द्वार दूसरेको न मिले– और आन्वीक्षिकी जो (आत्मविद्या) और दंडनीति जो अर्थ और योगक्षेममें उपकार करनेवाली है उसमे और धनकी वृद्धिमें कारण जो कृषि–वाणिज्य– पशुपालनरूपवार्त्ता और ऋक्–यजुः – साम– ये वेदत्रयी इनमें जो विनीत अर्थात् इन दंडनीति आदि विद्याओंके जाननेवालोंने जो इनमें चतुरकररक्खाहो– जैसे मनुने कहा है कि [1]त्रिविद्यों (वेदत्रयीके ज्ञाता)से वेदत्रयी और नीतिके जानने वालोंसे नीति आत्मविद्याके ज्ञाता आत्मविद्या और लोकसे वार्त्ताओंको जाने– ऐसा राज्याभिषेक जिसको हुआहो ऐसा नराधिपहो–

भावार्थ– बड़ा उत्साही– स्थूललक्ष (अतिज्ञानी) कृतज्ञ और वृद्धोंका सेवक विनययुक्त– सत्वसपन्न– कुलीन– सत्यवादी– शुद्ध–अदीर्घसूत्र (जो कार्यमें देर न करै) स्मृतिमान्– अक्षुद्र– (खोटेगुणोंका द्वेषी) अपरुष (जो कठोरनहो) धार्मिक–व्यसनरहित– प्राज्ञ– शूरवीर– रहस्यवित्–स्वरंध्रगोप्ता– और आत्मविद्या– दंडनीति और वेदत्रयी इनमें विनीत ऐसे लक्षणवाला राजाहो ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥

समंत्रिणःप्रकुर्वीतप्राज्ञान्मौलान्स्थिराञ्छुचीन् ।तैःसार्द्धंचितयेद्राज्यंविप्रेणाथततःपरं

पद–सः१ मंत्रिणः२ प्रकुर्वीत क्रि– प्राज्ञान्२ मौलान्२ स्थिरान्२ शुचीन्२ तैः ३ सार्द्धं– चिंतयेत् क्रि– राज्यं२ विप्रेण३ अथऽ– ततः ऽ– परं२ ॥

योजना– सः प्राज्ञान्– मौलान्– स्थिरान्– शुचीन्– मंत्रिणः प्रकुर्वीत– पुनः तैः सार्द्धं राज्यं चिंतयेत् अथ ततः परं विप्रेण सार्द्धं राज्यं चिंतयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–वह महोत्साह आदि गुणोंसे युक्त राजा जो हित और अहितके विवेकमें कुशल हो उन प्राज्ञोंको, जो वंशपरम्परासे चले आएहों उन मौलोंको और जो बडेभी आनन्द और दुःखके स्थानमें विकार रहित हो उन स्थिरोंको, और जो धर्म अर्थ काम भयसे शुद्धहो उन शुद्धोंको मंत्री करै–और वेभी इस मनुके वचनानुसार[1] सात वा आठ करने कि मौल शास्त्रके ज्ञाता शूरवीर लक्ष्यके ज्ञाता कुलीन भलीप्रकार परीक्षा करके सात वा आठ मंत्री करै–इस प्रकार मंत्रियोंको रखकर उन सबके वा एकदोके संग संधि विग्रह आदि राज्यकी चिंता करै–उनके अभिप्रायको जानकर संपूर्ण शास्त्रोंके विचारमें कुशल ब्राह्मण (पुरोहित)के संग कार्यको विचार कर फिर अपनी वृद्धिसे विचारकर काम करै ॥

भावार्थ–वह राजा बुद्धिमान् मौल और स्थिर शुद्ध मंत्रियोंको करै उनके संग फिर ब्राह्मणके संग राज्यकी चिंता करै ॥ ३१२ ॥

---

[1] त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दंडनीतिं च शाश्वतीम् । आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारंभांश्च लोकतः ।

[1] मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् । सचिवान् सप्त चाष्टौ वा कुर्वीत सुपरी–क्षितान् ।

पुरोहितंप्रकुर्वीतदैवज्ञमुदितोदितम्।
दंडनीत्यांचकुशलमथर्वांगिरसेतथा॥३१३

पद–पुरोहितं २ प्रकुर्वीत क्रि–दैवज्ञं २ उदितोदितं २ दंडनीत्यां ७ चऽ–कुशलं २ अथर्वांगिरसे ७ तथाऽ– ॥

योजना–दैवज्ञं–उदितोदितं चपुनः दंड-नीत्यां तथा अथर्वांगिरसे कुशलं पुरोहितं कुर्वीत ॥

ता० भा० ग्रहोंके उत्पात और शांतिके ज्ञाता–और विद्या अभिजन अनुष्ठान आदि शास्त्रोक्त लक्षणोंसे युक्त और दंडनीति शांति आदि कर्म में जो कुशल ऐसे पुरोहित-को करै अर्थात् दृष्ट और अदृष्ट कर्ममें दान मान सत्कारोंसे अपने संग मिलकर जो आगेसे आगे हित करै ॥ ३१३ ॥

श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोर्वृणुयादेवचर्त्विजः।
यज्ञांश्चैवप्रकुर्वीतविधिवद्भूरिदक्षिणान्॥

पद–श्रौतस्मार्त्तक्रियाहेतोः ५ वृणुयात् क्रि–एवऽ– चऽ– ऋत्विजः २ यज्ञान् २ चऽ–एवऽ–प्रकुर्वीत क्रि– विधिवत्ऽ– भूरिदाक्षिणान् २ ॥

योजना– चपुनः श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोः ऋत्विजः वृणुयात् चपुनः भूरिदक्षिणान् यज्ञान् कुर्यात् ॥

ता० भा०– अग्निहोत्र आदि श्रौत कर्म और उपासन आदि स्मार्त कर्मके लिये ऋत्विजोंका वरण करै और अधिक दाक्षि-णासे युक्त राजसूय आदि यज्ञोंको करै ३१४॥

भोगांश्चदत्वाविप्रेभ्योवसूनिविविधानिच।
अक्षयोयंनिधीराज्ञांयद्विप्रेषूपपादितम्॥

पद–भोगान्२चऽ–दत्वाऽ– विप्रेभ्यः ५ वसूनि २ विविधानि २ चऽ–अक्षयः १अयं १ निधिः १ राज्ञां ६ यत् १ विप्रेषु ७ उप-पादितं २ ॥

योजना–विप्रेभ्यः भोगान् दत्वा चपुनः विविधानि वसूनि दद्यात् चपुनः यत् विप्रेषु उपपादितं अयं राज्ञां निधिः अक्षयः भवति॥

ता० भा०–ब्राह्मणोंको भोग (सुख) और सुवर्ण चांदी आदि अनेक धनोंको दे क्योंकि यह राजाओंकि अक्षय निधि (खजान) है कि जो ब्राह्मणोंको देना ॥३१५ ॥

अस्कन्नमव्ययंचैवप्रायश्चित्तैरदूषितम्।
अग्नेःसकाशाद्विप्राग्नौहुतंश्रेष्ठमिहोच्यते॥

पद–अस्कन्नं २ अव्ययं १ चऽ– एवऽ– प्रायश्चित्तैः ३ अदूषितं १ अग्नेः ५ सकाशात् ५ विप्राग्नौ ७ हुतं १ श्रेष्ठं १ इहऽ– उच्यते क्रि–॥

योजना–अग्नेः सकाशात् विप्राग्नौ हुतं अस्कन्नं अव्ययं चपुनः प्रायश्चित्तैः अदूषितं इह श्रेष्ठं उच्यते ॥

ता० भा०–ब्राह्मणरूप अग्निमें किया है होम (भोजन) जिससे क्षरण (शोषण) और नाशरहित और पशुहिंसादीन होनेसें प्रायश्चित्त योग्य इससें आग्निमें करने योग्य राजसूय आदि कर्मोंसे श्रेष्ठ कहा है ॥३१६॥

अलब्धमीहेद्धर्मेणलब्धंयत्नेनपालयेत्।
पालितंवर्द्धयेन्नीत्यावृद्धंपात्रेषुनिक्षिपेत्॥

पद– अलब्धं२ ईहेत् क्रि–धर्मेण३ लब्धं २ यत्नेन ३ पालयेत् क्रि– पालितं२ वर्द्धयेत् कि–नीत्या३ वृद्धं२ पात्रेषु७ निक्षिपेत् क्रि–॥

योजना– अलब्धं धनं धर्मेण ईहेत लब्धं धनं यत्नेन पालयेत् पालितं धनं नीत्या वर्द्धयेत् वृद्धं धनं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥

ता० भा० अलब्धधन आदिका धर्मशास्त्रके अनुसार यत्न करै लब्ध धनकी यत्नसे पालना (रक्षा) करै–और रक्षा किये धनको व्यापार आदि नीतिसे बढावे और बढेहुये धनको धर्मअर्थकामरूप तीन प्रकारके पात्रोंको दे ॥ ३१७ ॥

दत्त्वाभूमिंनिबंधंवाकृत्वालेख्यंतुकारयेत् ।
आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ३१८

पद- दत्त्वा ऽ-भूमिं२ निबंधं२ वा ऽ-कृत्वा ऽ-लेख्यं२ तु ऽ-कारयेत् क्रि-आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय ४ पार्थिवः १ ॥

योजना- भूमिं दत्त्वा वा निबंधं कृत्वा पार्थिवः आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय लेख्यं कारयेत् ॥

ता० भा०- शास्त्रोक्त विधिसे भूमिका दान देकर और निबंधको करके अर्थात् एकभाण्ड भारके इतने रुपये और एकपर्ण भारके इतने पर्ण यह प्रबंध करके राजा आगे होनेवाले श्रेष्ठ राजाओंके ज्ञानार्थ लेख्य करादे इससे यह बात सूचितहै कि भूमिके दान और निबंधमें राजाका अधिकारहै भोगनेवालेका नहीं ॥ ३१८ ॥

पटेवाताम्रपट्टेवास्वमुद्रोपरिचिह्नितम् ।
अभिलेख्यात्मनोवंश्यानात्मानंचमहीपतिः

पद- पटे७ वा ऽ-ताम्रपट्टे७ वा ऽ-स्वमुद्रोपरिचिह्नितं२अभिलेख्य ऽ-आत्मनः ६वंश्यान्२ आत्मानं२ च ऽ-महीपतिः १ ॥

प्रतिग्रहपरीमाणंदानच्छेदोपवर्णनम् ।
स्वहस्तकालसंपन्नंशासनंकारयेस्थिरः ॥

पद- प्रतिग्रहपरीमाणं२दानच्छेदोपवर्णनं२ स्वहस्तकालसंपन्नं२ शासनं२ कारयेत् क्रि- स्थिरं २ ॥

योजना- पटे वा ताम्रपट्टे आत्मनः वंश्यान् चपुनः आत्मानं स्वमुद्रोपरिचिह्नितं-प्रतिग्रहपरीमाणं-दानछेदोपवर्णनं स्वहस्तकालसंपन्नं स्थिरं शासनं महीपतिः कारयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- वस्त्रवा तांबेके पट्टेपर अपने वंशके पितामह प्रपितामह आदिकोंको वीर्य और विद्या आदि गुणोंके वर्णन और प्रतिष्ठापूर्वक लिखकर और चशब्दसे प्रतिग्रह लेनेवालेको लिखकर और प्रतिग्रहका परिमाण और दानछेदका उपवर्णन-अर्थात् रूपक आदिनिबंधका प्रमाण और देने योग्य क्षेत्र आदिकाछेद (निवर्तन) उसके नदी और आवाटसे प्रमाण उसका वर्णन इस प्रकार लिखेकि अमुक नदीसे दक्षिण वा वाम यह क्षेत्रहै और अमुक ग्रामके पूर्व इतना निवर्तनहै- और नदी नगर मार्ग आदि आवाटकी भूमिका न्यूनाधिक भाव होसकताहै उसकी निवृत्तिके लिये-अपने हस्तसे यह लिखदे कि जो इस पत्रके ऊपर लिखाहै वह मुझे संमतहै और युक्त है औरवह लेख शक संवत्सररूप दो प्रकारके कालसे और चंद्रसूर्यके ग्रहणसे युक्त हो और गरुड वाराह आदि अपनी राजमुद्रासे अंकितहो ऐसे स्थिर (दृढ) शासन (*शिक्षा*)को इस लिये करे कि आगे होनेवाले राजा जानजाय और महीपति कहनेसे यह सूचित कियाकि भोगनेवालेका अधिकार नहीं, और यह लेखभी संधिविग्रह करनेवाले किसी अपने मुख्य अधिकारीसे करावे क्योंकि यह स्मृतिहै कि संधि विग्रह करनेवाला उसका लेखकहोतो राजाके शासनको लिखै ॥

भावार्थ- वस्त्र वा तामेंके पत्रपर अपने वंशके पुरुष और अपनी आत्माको और प्रतिग्रहके परिमाण और दानछेदके उपवर्णनको लिखकर अपनी राजमुद्रासे ऊपर अंकित और अपने हाथ और कालसे युक्त दृढ शासनको राजा करवावे ॥३१९॥३२०॥

रम्यंपशव्यमाजीव्यंजांगलंदेशमावसेत् ।
तत्रदुर्गाणिकुर्वीतजनकोशात्मगुप्तये३२१

पद- रम्यं २ पशव्यं२आजीव्यं जांगलं २

१ संधिविग्रहकारीतु भवेद्यस्तस्य लेखकः । स्वयं राज्ञा समादिष्टः संमलेद्राजशासनम् ॥

देशं २ आवसेत् क्रि–तत्र९–दुर्गाणि२ कुर्वीत क्रि– जनकोशात्मगुप्तये ४ ॥

योजना– राजा रम्यं पशव्यं आजीव्यं जांगलं देशं आवसेत्–तत्र जनकोशात्मगुप्तये दुर्गाणि कुर्वीत ॥

तात्पर्यार्थ– अशोक चंपक आदिसे रमणीक और पशुओंकी वृद्धि करनेसे पशुआंको हित–और कंद मूल फल पुष्प आदिसे मनुष्योंको हित जांगल देशमें वसे यद्यपि अल्पजल तरु और पर्वत जिसमें हों ऐसे देशको जांगल कहतेहैं तथापि यहां जल तरु जिसमें हों ऐसा देशही लेना–उस देशमें जन और सुवर्ण आदिका कोश इनकी रक्षाके लिये दुर्ग बनावे वह किला छः प्रकारका इस मनुवचनमें कहाहै कि धन्वदुर्ग-महीदुर्ग-जलदुर्ग-वृक्षदुर्ग–नृदुर्ग-गिरिदुर्ग इन छः प्रकारके किलोंसे पुरको ढककर वसे-जलरहित पांच योजनका देश जिसके चारोंतरफ हो वह धन्वदुर्ग–जो पत्थर और ईंटोंसे युक्त, बारह हाथ ऊंचा और बहुत विस्तृत युद्धके लिये ऊपर फिरने योग्य और साधारण झरोंके आदिसे युक्त, और चारोंतरफ परकोटे और दरवाजोंसे युक्तहो, ऐसा महीदुर्ग–जिसके चारोंतरफ अगाध जल हो वह जलदुर्ग और वृक्षोंसे युक्त वृक्षदुर्ग–चतुरंगिणी सेना नृदुर्ग–पर्वतसे युक्त गिरिदुर्ग कहाताहै ॥

भावार्थ– रमणीक–पशुओंको हित–ऐसे जांगल देशमें वसे और वहां जन और कोश और आत्माकी रक्षाके लिये किले बनावै ॥ ३२१ ॥

तत्रतत्रचनिष्णातानध्यक्षान्कुशलाञ्छुचीन् ।
प्रकुर्यादायकर्मांतव्ययकर्मसुचोद्यतान् ॥

पद– तत्र९–तत्र९–च९–निष्णातान् २ अध्यक्षान्२ कुशलान्२ शुचीन्२ प्रकुर्यात् क्रि- आयकर्मांतव्ययकर्मसु७ च९– उद्यतान् २ ॥

योजना– तत्रतत्र च निष्णातान् कुशलान् शुचीन् च पुनः आयकर्मांतव्ययकर्मसु उद्यतान् अध्यक्षान् कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ– तहां तहां धर्म अर्थ काम आदिमें योग्य अधिकारीयोंको नियुक्त करै क्योंकि यहै कहाहै कि धर्मकार्योंमें धर्मके ज्ञाता और अर्थके कार्योंमें पण्डित स्त्रीयोंमें नपुंसक निन्दित कर्मोंमें नीचोंको नियुक्त करै– जो निष्णातहो अर्थात् जिनको अन्यव्यापार नहो–और जो सब व्यापारोंमें कुशल (चतुर)हों और जो चार-प्रकारकी उपधासें शुद्धहो और जो सुवर्ण आदिके उत्पत्तिके स्थानरूप आय कर्मोंमें सुवर्ण आदि दानस्थान रूप व्ययकर्मोंमें उद्यत और चकारसे प्राज्ञ हो सोई कहाहै कि विद्वान् उपधा (छल)से शुद्ध– अप्रमाद अभियुक्त (प्रतिष्ठा)ता–कार्योंमें व्यसनका अभाव-स्वामीकी भक्ति-इनसे योग्यता होतीहै ॥

भावार्थ–तहां २ कुशल–शुद्ध–चतुर आयकर्म और व्ययकर्मोंमें उद्यत अध्यक्षोंको नियतकरै ॥ ३२२ ॥

नातःपरतरोधर्मोनृपाणांयद्रणार्जितम् ।
विप्रेभ्योदीयतेद्रव्यंप्रजाभ्यश्चाभयंसदा ॥

पद–न९–अतः९–परतरः १ धर्मः १ नृपाणां ६ यत् १ रणार्जितम् १ विप्रेभ्यः ४ दीयते क्रि– द्रव्यं १ प्रजाभ्यः ४ च९–अभयं १ सदा९– ॥

योजना–यत् रणार्जितं द्रव्यं विप्रेभ्यः च पुनः सदा प्रजाभ्यः अभयं दीयते अतः परतरः धर्मः नृपाणां नास्ति ॥

---

१ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरं ।

१ धर्मकार्येषु धर्मज्ञानर्थकार्येषु पण्डितान् । स्त्रीषु क्लीबान् नियुञ्जीत नीचान् निन्द्येषु कर्मसु ।

ता॰ भा॰–इससे अधिक राजाओंका अन्य कोई धर्म नहीं कि जो रण (युद्ध)से संचित किया धन ब्राह्मणोंको और प्रजाओंको अभय सदैव देना ॥ ३२३ ॥

यआहवेषुवध्यंतेभूम्यर्थमपराङ्मुखाः ।
अकूटैरायुधैर्यांतितेस्वर्गंयोगिनोयथा ३२४

पद–ये१ आहवेषु७ वध्यंते क्रि–भूम्यर्थं२ अपराङ्मुखाः १ अकूटैः ३ आयुधैः ३ यांति क्रि–ते १ स्वर्गं २ योगिनः १ यथाऽ– ॥

योजना–ये भूम्यर्थं अपराङ्मुखाः संतः अकूटैः आयुधैः आहवेषु वध्यंते ते यथा सुकृतिनः तथा स्वर्गं यांति ॥

ता॰भा॰–जो भूमि आदिके अर्थ प्रवृत्त हुये अपराङ्मुख (संमुख) होकर मारे जातेहैं वे योगियोंके समान स्वर्गमें जातेहैं यदि वे कूट (विपलगे) आयुधोंसे युद्ध न करें ॥ ३२४ ॥

पदानिक्रतुतुल्यानिभग्नेष्वप्यनिवर्तिनाम् ।
राजासुकृतमादत्तेहतानांविपलायिनाम् ॥

पद–पदानि १ क्रतुतुल्यानि १ भग्नेषु ७ अपिऽ– अनिवर्तिनाम् ६ राजा १ सुकृतं २ आदत्ते क्रि–हतानां ६ विपलायिनाम् ॥ ६ ॥

योजना–भग्नेषु अपि अनिवर्तिनां पदानि क्रतुतुल्यानि भवंति– विपलायिनां हतानां सुकृतं राजा आदत्ते ॥

ता॰ भा॰–अपने हाथी अश्व रथ आदिके भग्न (टूट)होने परभी जो अनिवर्ती (न हटते) हैं अर्थात् पराई सेनाके सन्मुख चलते हैं उनके पद अश्वमेध यज्ञके तुल्य हैं–और जो पलायन करते हैं अर्थात् पराङ्मुख हो जाते हैं मरे हुये उनके पुण्यको राजा ले लेताहै ॥ ३२५ ॥

तवाहंवादिनंक्लीबंनिर्हेतिंपरसंगतम् ।
नहन्याद्विनिवृत्तंचयुद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥

पद–तव ६ अहं १ वादिनं २ क्लीबं २ निर्हेतिं २ परसंगतं २ नऽ–हन्यात् क्रि–विनिवृत्तं २चऽ– युद्धप्रेक्षणकादिकम् २ ॥

योजना–अहं तव अस्मि इति वादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसंगतम् च पुनः विनिवृत्तं युद्धप्रेक्षणकादिकं न हन्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–जो मैं तेराहूं ऐसे कहे–नपुंसक–आयुधसे रहितहो–अन्यके संग युद्ध करता हो युद्ध करके बैठ रहाहो–और जो युद्धको देख रहाहो इतने शत्रुओंको न मारे आदि पदके ग्रहणसे अश्व और सारथि आदिका ग्रहण है सोई गौतमने कहा है कि संग्राममें हिंसाका दोष इनको छोड करहै–कि अश्व–सारथि–अनायुध– (शस्त्ररहित) कृतांजलि–केशोंको फैलाएहुए–पराङ्मुख–बैठाहुआ–स्थल और वृक्षपर चढाहुआ–दूत–गौ–ब्राह्मण– वादी (कहै) शंखनेभी कहाहै कि राजासे अतिरिक्त पुरुष–पानी–पीता हुआ–भोजन करताहुआ–क्षत्रियसे अतिरिक्त–जूतोंको छोडता हुआ (छोडकर भागता हुआ) स्त्री हथनी अश्व–सारथि दूत–ब्राह्मण–और राजा इनको नमारे ॥

भावार्थ–तेराहूं ऐसे कहता हुआ–नपुंसक–निरायुध– दूसरेसे युद्धकरताहुआ– युद्धसे निवृत्तहुआ–युद्धके देखनेवाला और आदिशब्दसे अश्व सारथि इनको नमारे ॥ ३२६ ॥

कृतरक्षःसमुत्थायपश्येदायव्ययौस्वयम् ।
व्यवहारांस्ततोदृष्ट्वास्नात्वाभुंजीतकामतः ॥

---

१ न दोषोहिंसायामाहवे ऽन्यत्राश्वसारथ्यनायुध• कृतांजलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षारूढदूत• गोब्राह्मणवादिभ्यः ।

२ न पानीयं पिबन्तं न भुंजानं नात्मर्माणं मोपानहौ मुंचंतं न सवर्मां न स्त्रियं न करेणुं न वाजिनं न सारथिं न दूतं न ब्राह्मणं न राजानमराजा हन्यात् । और

पतिसहित तिसकी देशकालमें उचित रक्षा आदिका विचार करै ॥

भावार्थ-फिर-अकेला वा मंत्रीयोंसे सहित अन्तःपुरमें विहारकरै फिर सेनाओंको देखकर सेनापति सहित उसकी रक्षा आदिकी चिंता करै ॥ ३२९ ॥

संध्यामुपास्यशृणुयाच्चाराणांगूढभाषितम् ।
गीतनृत्यैश्चभुंजीतपठेत्स्वाध्यायमेवच ॥

पद-संध्यां २ उपास्य-शृणुयात् क्रि-चाराणां ६ गूढभाषितं २ गीतनृत्यैः ३ च-॥ भुंजीत क्रि-पठेत् क्रि-स्वाध्यायं२ एव-च-

योजना-संध्यां उपास्य चाराणां गूढभाषितं शृणुयात् चपुनः गीतनृत्यैः क्रीडित्वा भुंजीत च पुनः स्वाध्यायं पठेत् ॥

ता०भा०-फिर सायंकालके समय संध्योपासन करै-संध्योपासन सामान्यसेही प्राप्त था फिर लिखना इस लिये है कि बहुतसे कार्योंमें व्याकुल होनेसे विस्मरण नहो-फिर जो पूर्व (प्रातःकाल) देखकर किसी स्थानमें जो बैठा रक्खेथे उन चार पुरुषोंके गुप्तभाषणको किसी मकानके भीतर शस्त्रको धारण किये हुये सुनै- वही इस वचनमें कहाहै कि शस्त्रधारी राजा संध्योपासन करके गुप्तभाषी चारोंके चेष्टितको गृहके भीतर सुनै-फिर नृत्य गीत आदिसे कुछकाल खेलकर अन्यगृहमें प्रविष्ट होकर भोजन करै- क्योंकि यह वचनहै कि इस (रणवासके) मनुष्यको अनुज्ञा देकर अन्य गृहमें जाकर भोजनके लिये स्त्रीओं सहित अंतःपुरमे प्रवेशकरै फिर जैसे विस्मरण नहो इस लिये यथाशक्ति स्वाध्याय (वेदको) पढै ॥

भावार्थ-फिर संध्योपासन करै चारपुरुषोंके गुप्त भाषणको सुनै-फिर नृत्यगीत आदिसे मन प्रसन्न करके भोजनकरै फिर वेदको पढै ॥ ३३० ॥

संविशेत्तूर्यघोषेणप्रतिबुध्येत्तथैवच ।
शास्त्राणिचिंतयेद्बुद्ध्यासर्वकर्तव्यतास्तथा ॥

पद-संविशेत् क्रि-तूर्यघोषेण ३ प्रतिबुध्येत् क्रि-तथा-एव-च-शास्त्राणि २ चिन्तयेत् क्रि-बुद्ध्या-सर्वकर्तव्यताः २ तथा-॥

प्रेषयेच्चततश्चारान्स्वेष्वन्येषुचसादरान् ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैराशीर्भिरभिनंदितः ॥

पद-प्रेषयेत् क्रि-च-ततः-चारान् २ स्वेषु७ अन्येषु७ च-सादरान् २ ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः ३ आशीर्भिः ३ अभिनंदितः १

दृष्ट्वाज्योतिर्विदोवैद्यान्दद्याद्गांकांचनंमहीं ।
नैवेशिकानिचततःश्रोत्रियेभ्योगृहाणिच ।

पद-दृष्ट्वा-ज्योतिर्विदः २ वैद्यान् २ दद्यात् क्रि-गां २ कांचनं २ महीं २ नैवेशिकानि२ च-ततः-श्रोत्रियेभ्यः ४ गृहाणि च- ॥

योजना-तूर्यघोषेण संविशेत् चपुनः तथैव प्रतिबुध्येत्-तथा शास्त्राणि सर्वकर्तव्यताः चिंतयेत् च पुनः स्वेषु अन्येषु च चारान् प्रेषयेत् ततः ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः आशीर्भिः अभिनंदितः सन् ज्योतिर्विदः वैद्यान् दृष्ट्वा श्रोत्रियेभ्यः गां कांचनं महीं नैवेशिकानि गृहाणि दद्यात् ॥

द्देभिः न्वपुनः विशेषतः कायस्थैः पीड्यमानाः प्रजाः राजा रक्षेत् ॥

तात्पर्यार्थ–चाट जो विश्वास देकर धनको हरते हैं वे ठग–और छिपकर जो धनको हरैं वे तस्कर (चोर) और दुर्वृत्त–(इंद्रजालिक और कितव आदि) और बलसे धन हरनेवाले महासाहसिक–आदि शब्दसे मोल कुहकवृत्ति लेने इनसे पीडित और विशेषकर कायस्थ– अर्थात् गणक और लेखक उनसे पीडित प्रजाकी रक्षाकरै क्योंकि वे राजाके प्यारे और बडे मायावी होते हैं उनसे बचना कठिनहै ॥

भावार्थ–ठग–चौर– इंद्रजाली– महासाहसिक–और विशेषकर कायस्थ इनसे पीडित प्रजाकी राजा रक्षा करै ॥ ३३६ ॥

अरक्ष्यमाणाःकुर्वंतियत्किंचित्किल्बिषंप्रजा तस्मात्तुनृपतेरर्धंयस्माद्गृह्णात्यसौकरान् ॥

पद–अरक्ष्यमाणाः १ कुर्वंति क्रि– यत्२ किंचित्– किल्बिषं २ प्रजाः १ तस्मात् ५ तु–नृपतेः ६ अर्द्धं १ यस्मात् ५ गृह्णाति क्रि– असौ १ करान् २ ॥

योजना–यस्मात् असौ राजा करान् गृह्णाति तस्मात् अरक्ष्यमाणाः प्रजाः यत् किंचित् किल्बिषं कुर्वन्ति–तस्मात् नृपतेः अर्द्धं भवति ॥

ता॰भा॰–जिससे राजा प्रजाओंसे कर लेताहै तिससे नहीं रक्षाकी हुई प्रजा जो पाप करती है उससे आधा राजाको मिलताहै ३३७

येराष्ट्राधिकृतास्तेषांचारैर्ज्ञात्वाविचेष्टितम् । साधूंस्संमानयेद्राजाविपरीतांश्चघातयेत् ॥

पद–ये १ राष्ट्राधिकृताः१ तेषां ६ चारैः३ ज्ञात्वा–विचेष्टितं१ साधून्२ संमानयेत् क्रि- राजा १ विपरीतान् २ च–घातयेत् क्रि– ॥

उत्कोचजीविनोद्रव्यहीनान्कृत्वा विवासयेत् । सदानमानसत्कारा-च्छ्रोत्रियान्वासयेत्सदा ॥ ३३९ ॥

पद–उत्कोचजीविनः २ द्रव्यहीनान् २ कृत्वा– विवासयेत् क्रि– सदानमानसत्कारान् २ श्रोत्रियान् २ वासयेत् क्रि–सदा– ॥

योजना–ये राष्ट्राधिकृताः तेषां विचेष्टितं चारैः ज्ञात्वा साधून् संमानयेत् विपरीतान् घातयेत् उत्कोचजीविनः द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् सदानमानसत्कारान् श्रोत्रियान् सदा वासयेत् ॥

ता॰भा॰–जो अपने राज्यके अधिकारोंमें नियुक्तहैं–उनके आचरणोंको पूर्वोक्त चारोंसे जानकर उनमें जिनका श्रेष्ठ आचरणहो उनकी दानमान सत्कारोंसे पूजा और जिनका दुष्ट आचरणहो उनकी हनन राजा अपराधके अनुसार करावे और जो उत्कोच (रिसवत)से जीतेहों उनके द्रव्यको छीनकर अपने राष्ट्र(देश)से निकासदे और वेदपाठीयोंको दान मान सत्कारकर सदैव वसावे ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

अन्यायेननृपोराष्ट्रात्स्वकोशंयोभिवर्धयेत् । सोचिराद्विगतश्रीकोनाशमेतिसबांधवः ॥

पद–अन्यायेन ३ नृपः१ राष्ट्रात्५ स्वकोशं२ यः १ अभिवर्द्धयेत् क्रि–सः १ अचिरात्– विगतश्रीकः१ नाशं २ एति क्रि–सबांधवः१ ॥

योजना–योनृपः अन्यायेन राष्ट्रात् स्वकोशं अभिवर्द्धयेत्–सः अचिरात् विगतश्रीकः सन् सबांधवः नाशं एति ॥

ता–भा॰–जो राजा अपने कोशको अन्यायसे राज्यमेंसे बढताहै वह थोडेही काल लक्ष्मीसे हीन होकर बांधवों सहित नाशको प्राप्त होताहै ॥ ३४० ॥

प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतोहुताशनः ।
राज्ञः कुलंश्रियंप्राणांश्चादग्ध्वाननिवर्तते ॥

पद-प्रजापीडनसंतापात् ५ समुद्भूतः १ हुताशनः१राज्ञः ६ कुलं २ श्रियं२ प्राणान्२ च- अदग्ध्वा- न- निवर्त्तते क्रि- ॥

योजना-प्रजापीडनसंतापात् समुद्भूतः हुताशनः राज्ञःकुलं-श्रियं-प्राणान् अदग्ध्वा न निवर्त्तते ॥

तात्पर्यार्थ भा०-तस्कर आदिके किए प्रजाओंके संतापसे पैदाहुई जो अग्नि अर्थात् पापकी राशिहै वह राजाका कुल लक्ष्मी प्राण इनके विनादग्ध किये नही शान्त होती अर्थात् सबको दग्ध करदेती है ॥ ३४१ ॥

यएवनृपतेर्धर्मःस्वराष्ट्रपरिपालने ।
तमेवकृत्स्नमाप्नोतिपरराष्ट्रंवशंनयन् ३४२ ॥

पदः-यः१ एव- नृपतेः ६ धर्मः १स्वराष्ट्र-परिपालने ७ तं २ एव- कृत्स्नं २ आप्नोति क्रि- परराष्ट्रं २ वशं २ नयन् ॥ १ ॥

योजना-स्वराष्ट्रपरिपालने यः धर्मः नृपतेः अस्ति-परराष्ट्रं वशं नयन् सन् तं एव (धर्मं) कृत्स्नं आप्नोति ॥

ता०भा०-न्यायसे अपने देशकी रक्षामें जो राजाका धर्महै वक्ष्यमाण न्यायसे दूसरेके देशको अपने अधीन करता हुआ राजा उसी सकल धर्मको प्राप्त होताहै ॥ ३४२ ॥

यस्मिन्देशेयआचारोव्यवहारःकुलस्थितिः
तथैवपरिपाल्योसौयदावशमुपागतः३४३॥

पद-यस्मिन् ७ देशे ७ यः १ आचारः १ व्यवहारः १ कुलस्थितिः १ तथा- एव- परिपाल्यः१ असौ १ यदा- वशं२ उपागतः १ ॥

योजना-यदा यः देशः वशं उपागतः तदा स्थितिः यथा आसीत् तथा असौ परिपाल्यः राज्ञेतिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जब पराये देश अपने देशमें होजाय तब अपने देशके आचार आदिके संग उसके आचारका संकर (मेल)न करै-अर्थात् जिस देशमें जो आचार कुलकी स्थिति(मर्यादा)और व्यवहार जिस प्रकार है पूर्वहो तिसी प्रकार उस धर्मकी रक्षा करै-यदि वह शास्त्रविरुद्ध नहोतो- (यदावशं उपागतः) इसके लिखनेसे यह दिखायाकि वश-होनेसे पूर्व इस पूर्वोक्तका अनियम है-तैसेही वचन है कि-शत्रुको दाबकर बैठे और इसके देशको परिपीडित करै और इसके यव अन्न जल इंधन इनको दूषित करदे ॥

भावार्थ-जिस देशमें जो अचार व्यवहार कुलकी मर्यादाहो उस देशके वशहोनेपर उसका उसी प्रचार करना ॥ ३४३ ॥

मंत्रमूलंयतोराज्यंतस्मान्मंत्रंसुरक्षितम् ।
कुर्याद्यथास्यनविदुःकर्मणामाफलोदयात्

पद- मंत्रमूलं१ यतः- राज्यं १ तस्मात्१ मंत्रं२ सुरक्षितं२ कुर्यात् क्रि- यथा- अस्य६ न- विदुः क्रि- कर्मणां६ आ- फलोदयात्- ॥

योजना- यतः राज्यं मंत्रमूलं अस्ति तस्मात् यथा अस्य मंत्रं कर्मणां आफलोदयात् जनाः न विदुः तथा सुरक्षितं मंत्रं कुर्यात् ॥

ता० भा०-जिससे मंत्रीओंके संग राज्यकी-चिन्ताकरै- यह पूर्वोक्त मंत्र राज्यका मूल है- तिससे मंत्रकी उस भले प्रकारसे रक्षा-करै जैसे इस राजाके संधि विग्रह आदि

१ एतादृशे देशे यः आचारः व्यवहारः कुल-स्थितिर्वा प्रवृत्तः ।

१ यस्तु स्वाभिमतं परराष्ट्रं परिपीडयेत् । तद्देशीय सकलं धनमाप्नोति इत्यर्थः ।

कर्मोंको फलकी सिद्धिके लिये कोई अन्य-पुरुष न जाने ॥ ३४४ ॥

अरिर्मित्रमुदासीनोनंतरस्तत्परः परः ।
क्रमशोमंडलंचिंत्यंसामादिभिरुपक्रमैः ॥

पद- अरिः १ मित्रं१ उदासीनः अनंतरः १ तत्परः १ परः १ क्रमशः ऽ- मंडलं १ चिन्त्यं१ सामादिभिः ३ उपक्रमैः ३ ॥

योजना- अरिः मित्रं उदासीनः अनंतरः तत्परः परः एतन्मण्डलं क्रमशः सामादिभिः उपक्रमैः चिन्त्यं ॥

तात्पर्यार्थ- अरि (शत्रु) मित्र और दोनों लक्षणों (शत्रुता- मित्रता)से हीन उदासीन ये तीनों तीन२ प्रकारके हैं कि सहज- कृत्रिम- प्राकृत- उनमें सहज-शत्रु वह होता है कि जो सापत्न-(मौसीका-पुत्र) पितृव्य और उसके पुत्र आदि कृत्रिम शत्रु जिसका अपकार कियाहो वा जिसने अपना अपकार कियाहो- प्राकृत शत्रु- समीपके देशका राजा होता है और सहज मित्र भानजा फूफी और मौसीका पुत्र और कृत्रिम मित्र जिसको उपकार कियाहो वा जिसने अपना उपकार कियाहो औरप्राकृत मित्र उस देशका राजा जिसके देशमें एक-देशका अन्तरहो और सहज और कृत्रिम मित्र वा शत्रुके लक्षण जिसमें नहीं वह सहज कृत्रिमोदासीन- और जिसके देश और अपने देशके बीचमें दो देश पड़ें वह प्राकृत उदासीन- इससें ये नौ भेद हुये- शत्रुभी चार प्रकारका होता है- यातव्य-उच्छेत्तव्य-पीडनीय- और कर्शनीय- उनमें यातव्य-(चढनेयोग्य) समीपका राजा होता है-उच्छेत्तव्य वह है कि व्यसनी सेनासें हीन प्रजा जिसके वशमें नहीं दुर्ग नहो- मित्रसे हीनहो और दुर्बलहो- वह उखाडने योग्य है अर्थात् उसके सिंहासनको छीनले और मंत्र और सेनासे जो हीन वह पीडनीय होता है- जिसके मित्र और सेना बलवानहो वह कर्शनीय है सोई नीतिको वचन है कि निर्मूलकरनेसे समुच्छेद- और बल (सेना) के निग्रहको पीडन- कोश और दण्डके छीननेको कर्शन कहते हैं- मित्रकेभी दो-भेद है एक बृंहणीय और कर्शनीय- कोश और सेनासे जो हीन वह बृंहणीय (बढाने-योग्य) और कोश सेनासे जो अधिक वह कर्शनीय (क्लेशकरनेयोग्य) अब प्राकृत मित्र अरि और उदासीनोंको कहते हैं- कि अनंतर जिसका देश समीपहो- वह प्राकृत अरि- उससें परला प्राकृतमित्र और उससें परला प्राकृत उदासीन- शेष भेद प्रसिद्ध होनेसे नही कहे यह राजमण्डल पूर्व आदि क्रमसें जाननेयोग्य है अर्थात् उनके आचरणको जानकर साम दान आदि वक्ष्य-माण उपायोंकी चिंताकरे- इसप्रकार आगे पीछे दोनों पार्श्वोंमें तीन२ और एक आप इन त्रयोदश राजरूप यह राजमंडल पद्मके आकार होता है और पार्ष्णिग्राह आक्रं-दासार आदि तो अरि मित्र उदासीनोंके बीचमें आजाते हैं उनका नाममात्रसेही भेद है- अन्य ग्रंथोंमें वे भेद दिखाये हैं इससे याज्ञवल्क्यने भेद पृथक् नही कहे ॥

भावार्थ- अरि मित्र उदासीन प्राकृतशत्रु प्राकृतमित्र प्राकृत उदासीन- इस राज-मण्डलका साम आदि उपायोंसे विचार करै ३४५ ॥

उपायाःसामदानंचभेदोदंडस्तथै-
वच । सम्यक्प्रयुक्ताःसिध्येयुर्द-
ण्डस्त्वगतिकागतिः ॥ ३४६ ॥

पद- उपायाः १ साम १ दानं १ऽ

प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतोहुताशनः ।
राज्ञः कुलंश्रियंप्राणांश्चादग्ध्वाननिवर्त्तते ॥

पद-प्रजापीडनसंतापात् ५ समुद्भूतः १ हुताशनः१राज्ञः ६ कुलं २ श्रियं २ प्राणान्२ च॰-अदग्ध्वा॰-न॰-निवर्त्तते क्रि- ॥

योजना-प्रजापीडनसंतापात् समुद्भूतः हुताशनः राज्ञःकुलं-श्रियं-प्राणान् अदग्ध्वा न निवर्त्तते ॥

तात्पयार्थ भा॰-तस्कर आदिके किए प्रजाओंके संतापसे पैदाहुई जो अग्नि अर्थात् पापकी राशिहै वह राजाका कुल लक्ष्मी प्राण इनके विनादग्ध किये नही शान्त होती अर्थात् सबको दग्ध करदेती है ॥ ३४१ ॥

यएवनृपतेर्धर्मःस्वराष्ट्रपरिपालने ।
तमेवकृत्स्नमाप्नोतिपरराष्ट्रंवशंनयन्॥३४२॥

पदः-यः१ एव॰-नृपतेः ६ धर्मः १स्वराष्ट्रपरिपालने ७ तं २ एव॰- कृत्स्नं २ आप्नोति क्रि- परराष्ट्रं २ वशं २ नयन् ॥ १ ॥

योजना-स्वराष्ट्रपरिपालने यः धर्मः नृपतेः अस्ति-परराष्ट्रं वशं नयन् सन् तं एव (धर्मं) कृत्स्नं आप्नोति ॥

ता॰भा॰-न्यायसे अपने देशकी रक्षामें जो राजाका धर्महै वक्ष्यमाण न्यायसे दूसरेके देशको अपने अधीन करता हुआ राजा उसी सकल धर्मको प्राप्त होताहै ॥ ३४२ ॥

यस्मिन्देशेयआचारोव्यवहारःकुलस्थितिः
तथैवपरिपाल्योसौयदावशमुपागतः॥३४३॥

पद-यस्मिन् ७ देशे ७ यः १ आचारः १ व्यवहारः १ कुलस्थितिः १ तथा॰-एव॰- परिपाल्यः१ असौ १ यदा॰- वशं२ उपागतः १ ॥

[योज]ना-यदा यः देशः वशं उपागतः तदा स्थितिः यथा आसीत् तथा असौ परिपाल्यः राज्ञेतिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जब पराये देश अपने देशमें होजाय तब अपने देशके आचार आदिके संग उसके आचारका संकर (मेल)न करै-अर्थात् जिस देशमें जो आचार कुलकी स्थिति(मर्यादा)और व्यवहार जिस प्रकार है पूर्वहो तिसी प्रकार उस धर्मकी रक्षा करै-यदि वह शास्त्रविरुद्ध नहोतो-(यदावशं उपागतः) इसके लिखनेसे यह दिखायाकि वश-होनेसे पूर्व इस पूर्वोक्तका अनियम है-तैसेही वचन है कि-शत्रुको दावकर बैठे और इसके देशको परिपीडित करै और इसके यव अन्न जल इंधन इनको दूषित करदे ॥

भावार्थ-जिस देशमें जो अचार व्यवहार कुलकी मर्यादाहो उस देशके वशहोनेपर उसका उसी प्रचार करना ॥ ३४३ ॥

मंत्रमूलंयतोराज्यंतस्मान्मंत्रंसुरक्षितम् ।
कुर्याद्यथास्यनविदुःकर्मणामाफलोदयात्

पद- मंत्रमूलं१ यतः ऽ- राज्यं १ तस्मात्१ मंत्रं२ सुरक्षितं२ कुर्यात् क्रि- यथा॰- अस्य६ न॰- विदुः क्रि- कर्मणां६ आ॰- फलोदयात्- ॥

योजना- यतः राज्यं मंत्रमूलं अस्ति तस्मात् यथा अस्य मंत्रं कर्मणां आफलोदयात् जनाः न विदुः तथा सुरक्षितं मंत्रं कुर्यात् ॥

ता॰ भा॰-जिससे मंत्रीओंके संग राज्यकी-चिन्ताकरै- यह पूर्वोक्त मंत्र राज्यका मूल है- तिससे मंत्रकी उस भले प्रकारसे रक्षा-करे जैसे इस राजाके संधि विग्रह आदि

१ एवद्वृत्त देशे यः आचारः व्यवहारः कुल-[illegible]

१ उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् । दूषये-च्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनं ।

कर्मोंको फलकी सिद्धिके लिये कोई अन्यपुरुष न जाने ॥ ३४४ ॥

अरिर्मित्रमुदासीनोनंतरस्तत्परः परः ।
क्रमशोमंडलंचिंत्यंसामादिभिरुपक्रमैः ॥

पद– अरिः १ मित्रं१ उदासीनः अनंतरः१ तत्परः १ परः १ क्रमशः ऽ– मंडलं १ चिन्त्यं१ सामादिभिः ३ उपक्रमैः ३ ॥

योजना– अरिः मित्रं उदासीनः अनंतरः तत्परः परः एतन्मण्डलं क्रमशः सामादिभिः उपक्रमैः चिन्त्यं ॥

तात्पर्यार्थ– अरि (शत्रु) मित्र और दोनों लक्षणों (शत्रुता– मित्रता)से हीन उदासीन ये तीनों तीन२ प्रकारके हैं कि सहज– कृत्रिम– प्राकृत– उनमें सहजशत्रु वह होता है कि जो सापत्न–(मौसीकापुत्र) पितृव्य और उसके पुत्र आदि कृत्रिम शत्रु जिसका अपकार कियाहो वा जिसने अपना अपकार कियाहो– प्राकृत शत्रु– समीपके देशका राजा होता है और सहज मित्र भानजा फूफी और मौसीका पुत्र और कृत्रिम मित्र जिसको उपकार कियाहो वा जिसने अपना उपकार कियाहो औरप्राकृत मित्र उस देशका राजा जिसके देशमें एकदेशका अन्तरहो और सहज और कृत्रिम मित्र वा शत्रुके लक्षण जिसमें नहों वहसहज कृत्रिमोदासीन– और जिसके देश और अपने देशके बीचमें दो देश पडें वह प्राकृत उदासीन– इससें ये नौ भेद हुये– शत्रुभी चार प्रकारका होता है– यातव्य–उच्छेत्तव्य–पीडनीय– और कर्शनीय– उनमें यातव्य–(चढनेयोग्य) समीपका राजा होता है– उच्छेत्तव्य वह है कि व्यसनी सेनासें हीन प्रजा जिसके वशमें नहों दुर्ग नहो– मित्रसे हीनहो और दुर्बलहो– वह उखाडने योग्य है अर्थात् उसके सिंहासनको छीनले और मंत्र और सेनासे जो हीन वह पीडनीय होता है– जिसके मित्र और सेना बलवानहो वह कर्शनीय है सोई नीतिको वचन है कि निर्मूलकरनेसे समुच्छेद– और बल (सेना) के निग्रहको पीडन– कोश और दण्डके छीननेको कर्शन कहते हैं– मित्रकेभी दो भेद है एक बृंहणीय और कर्शनीय– कोश और सेनासे जो हीन वह बृंहणीय (बढानेयोग्य) और कोश सेनासे जो अधिक वह कर्शनीय (क्लेशकरनेयोग्य) अब प्राकृत मित्र अरि और उदासीनोंको कहते हैं– कि अनंतर जिसका देश समीपहो– वह प्राकृत अरि– उससें परला प्राकृतमित्र और उससें परला प्राकृत उदासीन– शेष भेद प्रसिद्ध होनेसे नहीं कहे यह राजमण्डल पूर्व आदि क्रमसें जाननेयोग्य है अर्थात् उनके आचरणको जानकर साम दान आदि वक्ष्यमाण उपायोंकी चिंताकरै– इसप्रकार आगे पीछे दोनों पार्श्वोंमें तीन२ और एक आप इन त्रयोदश राजरूप यह राजमंडल पद्मके आकार होता है और पार्ष्णिग्राह आक्रंदासार आदि तो अरि मित्र उदासीनोंके बीचमें आजाते हैं उनका नाममात्रसेही भेद है– अन्य ग्रंथोंमें वे भेद दिखाये हैं इससे याज्ञवल्क्यने भेद पृथक् नहीं कहे ॥

भावार्थ– अरि मित्र उदासीन प्राकृतशत्रु प्राकृतमित्र प्राकृत उदासीन– इस राजमण्डलका साम आदि उपायोंसे विचार करे ३४५ ॥

उपायाःसामदानंचभेदोदंडस्तथैवच । सम्यक्प्रयुक्ताःसिध्येयुर्दंडस्त्वगतिकागतिः ॥ ३४६ ॥

पद– उपायाः १ साम १ दानं १

१ निर्मूलनाशसमुच्छेदं पीडनं बलनिग्रहं तु पुनः प्राहुः कोशदंडापकर्षणात् ।

पर (शत्रु)के देश आदि वश होजायगे और यदि दैव नही है तो पुरुषार्थ करनेपरभी वश न होंगे इससे यह यात्रा आदिका प्रसंग व्यर्थ है इस शंकासे कहते हैं कि इष्ट-(अपनेको वांछित) और अनिष्टरूप जो कर्म की सिद्धि अर्थात् फलकी प्राप्ति है वह केवल दैवके अधीन नही किन्तु पुरुषकार (पुरुषार्थ)केभी अधीन है-क्योंकि संसारमें तिसी प्रकार (पुरुषार्थसे सिद्ध) देखा जाता है और यदि ऐसाही मानोगेतो चिकित्सक आदिकोंके शास्त्र (चरक सुश्रुत आदि)भी व्यर्थ हो जायगे और पुरुषार्थके विना दैवही सिद्ध नही, सोई कहते हैं कि क्योंकी दैव उसैही कहते हैं जो पूर्व देहसे अर्जित (इकठ्ठा) किया पुरुषार्थ हैं और वह थोडे पुरुषार्थके करनेसे महाफलकी जो प्राप्ति है उससे प्रतीत हुआ पौरुष पौर्वदैहिक कर्म है-तिससे पुरुषार्थके विना दैव नही हो सक्ता इससे उस पुरुषार्थमें यत्न करना-

भावार्थ- कर्मकी सिद्धि दैव और पुरुषकार (पुरुषार्थ)में व्यवस्थित है तिसमें दैव पूर्व देहसे इकट्ठा किया पुरुषार्थ प्रतीत होताहै ॥ ३४९ ॥

केचिद्दैवात्स्वभावाद्वाकालात्पुरुषकारतः ।
संयोगेकेचिदिच्छंतिफलंकुशलबुद्धयः ॥

पद-केचित्ऽ-दैवात् ५ स्वभावात्५वाऽ-कालात् ५ पुरुषकारतःऽ-संयोगे ७ केचित्-इच्छंति क्रि- फलं २ कुशलबुद्धयः१

योजना-फलं केचित्-दैवात्-केचित् स्वभावात्-केचित् कालात्-केचित् पुरुषकारतः इच्छंति केचित् कुशलबुद्धयः संयोगे इच्छंति ॥

ता०भा०-कोई इष्ट अनिष्ट फलकी प्राप्तिको दैवसे कोई स्वभाव अर्थात् कारण के विनाही और कोई कालसे और कोई पुरुषार्थसे मानते हैं-अपने मतको कहते हैं कि कुशलबुद्धिवाले मनुआदि यह मानते हैं कि दैव आदिके समुच्चय (इकट्ठा) होनेपर फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३५० ॥

यथाह्येकेनचक्रेणरथस्यनगतिर्भवेत् ।
एवंपुरुषकारेणविनादैवंनसिद्ध्यति ॥

पद-यथाऽ-हिऽ-एकेन३ चक्रेण३ रथस्य६ नऽ-गतिः१ भवेत् क्रि- एवंऽ-पुरुषकारेण ३ विनाऽ- दैवं २ नऽ- सिद्ध्यति क्रि- ॥

योजना-यथाहि रथस्य गतिः (गमनं) एकेन चक्रेण न भवति एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥

ता०भा०-अकेलेसे फल सिद्ध नही होता इसमें दृष्टांत कहते हैं कि जैसे एक चक्र (पईयां)से रथ नही चलता इसी प्रकार विनापुरुषार्थ दैव नही सिद्ध होता ॥ ३५१ ॥

हिरण्यभूमिलाभेभ्योमित्रलब्धिर्वरायतः ।
अतोयतेततत्प्राप्त्यैरक्षेत्सत्यंसमाहितः ॥

पद-हिरण्यभूमिलाभेभ्यः५ मित्रलब्धिः १ वरा१ यतःऽ-अतःऽ- यतेत क्रि- तत्प्राप्त्यै ४ रक्षेत् क्रि-सत्य २ समाहितः १ ॥

योजना-यतः हिरण्यभूमिलाभेभ्यः मित्रलब्धिः वरा अस्ति-अतः समाहितः सन् तत्प्राप्त्यै सत्यं यतेत (च) रक्षेत् ॥

ता० भा०-लाभके लिये पराराष्ट्र पर चढै यह पूर्व कहा यहां लाभ तीन प्रकारकाहै कि हिरण्यका लाभ भूमिका लाभ और मित्रका लाभ इनमें मित्रका लाभ सबसे श्रेष्ठहै तिससे इसकी प्राप्तिके लिये यत्न करना वह प्राप्तिका यत्न सत्य वचन है सोई कहते हैं कि जिससे हिरण्य और भूमिके लाभसे मित्रका लाभ श्रेष्ठ है तिससे ... प्राप्तिमें यत्न और सावधान हुआ

आदि उपायोंसे सत्यकी रक्षा करै क्योंकि मित्रकी प्राप्तिमें सत्यही मूल (मुख्य उपाय) है ॥ ३५२ ॥

स्वाम्यमात्याजनोदुर्गकोशोदंडस्तथैवच ।
मित्राण्येताःप्रकृतयोराज्यंसप्तांगमुच्यते ॥

पद-स्वामी १ अमात्याः १ जनः१ दुर्ग१ कोशः दण्डः १ तथा॰-एव॰-च॰-मित्राणि १ एताः१प्रकृतयः१राज्यं१सप्तांगं१उच्यते क्रि-

योजना-स्वामी अमात्याः जनः दुर्गं कोशः दण्डः मित्राणि एताः प्रकृतयः भवंति एवं-राज्यं सप्तांगं उच्यते ॥

ता॰भा॰-महोत्साह आदि जिसके लक्षण पूर्व कहे ऐसा महीपति स्वामी-मंत्री पुरोहित आदि अमात्य-ब्राह्मण आदि प्रजाके जन-धन्व दुर्ग आदि-सुवर्ण आदि धनकी राशि कोश (खजाना)-दण्ड अर्थात् हस्ती अश्व रथ पात्ति (पैदल मनुष्य)रूप चतुरंगसेना-सहज कृत्रिम प्राकृतादि मित्र-ये स्वामी आदि राज्यकी प्रकृति अर्थात् मूल कारणहै-इस प्रकार राज्यको सप्तांग कहते हैं॥३५३॥

तदवाप्यनृपोदंडंदुर्वृत्तेषुनिपातयेत् ।
धर्मोहिदंडरूपेणब्रह्मणानिर्मितः पुरा ॥

पद- तत् २ अवाप्य॰-नृपः १ दंडं २ दुर्वृत्तेषु ७ निपातयेत् क्रि- धर्मः १ हि॰-दण्डरूपेण ३ ब्रह्मणा३ निर्मितः १ पुरा॰-

योजना-तत् (राज्यं) अवाप्य नृपः दुर्वृ॰ दण्डं निपातयेत्-हियतः धर्मः पुरा दण्डरूपेण निर्मितः ॥ १ ॥

ता॰ भा॰-उस राज्यको इस प्रकार प्राप्त होकर राजा वंचक शठ आदि दुराचारियोंमें उस दंडको दे क्योंकि धर्मकोही दंडरूप ब्रह्माने पूर्व समयमें रचाहै दंड यह नाम यौगिकहै क्योंकि गौतमने यह कहाहै

*दंडोदमनादित्याहुः तेनादांतान्दमयेत् ।

कि दमन करनेसे दंड कहते हैं तिससे दमनके जो योग्य उनका दमन करे ॥ ३५४ ॥

सनेतुंन्यायतोशक्योलुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
सत्यसंधेनशुचिनासुसहायेनधीमता ॥

पद-सः १ नेतुं॰-न्यायतः॰-अशक्यः १ लुब्धेन ३ अकृतबुद्धिना ३ सत्यसंधेन ३ शुचिना ३ सुसहायेन ३ धीमता ३ ॥

योजना-लुब्धेन अकृतबुद्धिना राज्ञा स दंडः नेतुं अशक्यः सत्यसंधेन, शुचिना, सुसहायेन, धीमता सः न्यायतः नेतुं शक्यः॥

ता॰भा॰-वह पूर्वोक्त दंड लोभी और चंचल बुद्धि राजा न्यायसे नहींदे सकता-और जो सत्यसंध (निष्कपट) और शुद्ध-और पूर्वोक्त सहायोंसहित और नय और धीमान् अर्थात् न्याय और अन्यायमें कुशल है ऐसा राजा उस दण्डको न्यायसे देसकताहै ॥ ३५५ ॥

यथाशास्त्रंप्रयुक्तः सन्सदेवासुरमानवम् ।
जगदानंदयेत्सर्वमन्यथातत्प्रकोपयेत् ॥

पद-यथाशास्त्रं॰-प्रयुक्तः १ सन् १ सदेवासुरमानवं १ जगत् २ आनंदयेत् क्रि- सर्वं २ अन्यथा॰-तत् २ प्रकोपयेत् क्रि- ॥

योजना-दंडं यथाशास्त्रं प्रयुक्तः सन्-सदेवासुरमानवं सर्वं जगत् आनन्दयेत् अन्यथा तत् प्रकोपयेत् ॥

ता॰ भा॰-शास्त्रोक्त मर्यादासे दिया वह दंड देवता असुर और संपूर्ण मनुष्योंसहित सब जगत्को आनंद करताहै और शास्त्रके अवलंबनसे दिया वह दंड सब जगत्को कुपित करताहै ॥ ३५६ ॥

अधर्मदंडनंस्वर्गकीर्तिलोकाश्चनाशयेत् ।
सम्यक्तुदंडनंराज्ञः स्वर्गकीर्तिजयावहं ॥

पद-अधर्मदण्डनं १ स्वर्गं २ कीर्तिं २

लोकान् २ च०- नाशयेत् क्रि०-सम्यक् १ तु०-दण्डनं १ राज्ञः ६ स्वर्गकीर्त्तिजयावहं१

योजना-अधर्मदण्डनं राज्ञां स्वर्गं कीर्त्तिं चपुनः लोकान् नाशयेत् तुपुनः सम्यक्दं-ण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्त्तिजयावहं भवति ॥

ता०भा०-अधर्म (शास्त्रका अवलंघन) से दिया हुआ दंड राजाके स्वर्ग कीर्त्ति और लोकोंको पापका हेतु होनेसे नष्ट करताहै और. शास्त्रोक्त प्रकारसे भली प्रकार दिया दंड राजाको स्वर्ग कीर्त्ति और जयका दाताहै ॥ ३५७ ॥

अपिभ्रातासुतोर्घ्योवाश्वशुरोमातुलोपिवा । नादंड्योनामराज्ञोस्तिधर्माद्विचलितःस्वका-त् ॥ ३५७ ॥

पद-अपि०-भ्राता १ सुतः१अर्घ्यः १ वा०-श्वशुरः १ मातुलः १ अपि०-वा०-न०- अदं-ड्यः १ नाम १ राज्ञः ६ अस्ति क्रि०- धर्मात् विचलितः १ स्वकात् ५ ॥

योजना-स्वकात् धर्मात् विचलितः भ्राता अपि सुतः अर्घ्यः चपुनः श्वशुरः मातुलः राज्ञः अदंड्यः नाम न अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ-भ्राता पुत्र अर्घ्य देनेके योग्य आचार्य आदि-और मातुल येभी अपने धर्मसे चलायमान होंतो राजाको दंड देने योग्यहैं-क्योंकि अपने धर्मसे चलायमान कोईभी राजाको अदंड्य नहीं-यहभी माता-पिता आदिको छोडकर समझना क्योंकि स्मृतिमें लिखाहै कि माता पिता स्नातक संन्यासी पुरोहित वानप्रस्थ ये अदण्ड्य हैं कि विद्या शील शौच आचारवाले ये धर्मके अधिकारीहैं ॥

भावार्थ-अपने धर्मसे चलायमान भ्राता पुत्र अर्घ्य (आचार्य आदि) श्वशुर मातुल येभी राजाको दंड देने योग्यहैं ॥ ३५८ ॥

योदंड्यान्दंडयेद्राजासम्यग्वध्यांश्चघातयेत् इष्टंस्यात्क्रतुभिस्तेनसमाप्तवरदक्षिणैः ॥

पद-यः १ दण्ड्यान् २ दण्डयेत् क्रि-राजा १ सम्यक्०- वध्यान् २ च०- घातयेत् क्रि-इष्टं १ स्यात् क्रि-क्रतुभिः ३ तेन.३ समाप्तवरदक्षिणैः ३ ॥

योजना-यः राजा दण्ड्यान् सम्यक्दंड-येत् चपुनः वध्यान् घातयेत् तेन राज्ञा समाप्त-वरदक्षिणैः क्रतुभिः इष्टं स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो राजा अपने धर्मसे डिगने आदि कुकर्मोंसे दण्डके योग्योंको भली प्रकार शास्त्रोक्त मार्गसे-अर्थात् धिग्धन दंड आदिसे दण्ड देता है और मारनेके योग्योंको मारताहै-उस राजानें भली प्रकार दीहै दक्षिणा जिनमें ऐसे यज्ञोंसे मानों यज-नकिया-अर्थात् उसे पूर्वोक्त यज्ञोंका फल मिलताहै कदाचित् कोई शंका करै कि इस फलके सुननेसे दण्डका देना काम्यहै सो ठीक नहीं-क्योंकि दण्डके न करनेमें इस वशिष्ठकी स्मृतिमें प्रायश्चित्त लिखाहै इससे यह नित्य कर्महै कि दंड देने योग्यके छोडनेमें राजा एक रात्र और पुरोहित तीन रात्र उपवास करै और दंड देने अयोग्यको. दंड देनेमें पुरोहित कृच्छ्र और राजा तीन रात्र उपवास करै ॥

भावार्थ-जो राजा दंडके योग्योंको दंड देताहै और मारने. योग्योंको मारताहै वह अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंसे पूजन कर-ताहै ॥ ३५९ ॥

इतिसंचिंत्यनृपतिः क्रतुतुल्यफलंपृथक् ।
व्यवहारान्स्वयंपश्येत्सभ्यैःपरिवृतोन्वहम्

पद-इति॰-संचिंत्य॰-नृपतिः १ क्रतुतुल्यफलं २ पृथक्॰- व्यवहारान् २ स्वयं॰-पश्येत् क्रि-सभ्यैः परिवृतः १ अन्वहं॰-॥

योजना-नृपतिः इति क्रतुतुल्यफलं २ संचिंत्य सभ्यैः परिवृतः सन् पृथक् व्यवहारान् स्वयं अन्वहं पश्येत् ॥

ता॰ भा॰-इस पूर्वोक्त यज्ञके तुल्य फलको देखकर वक्ष्यमाण सभासदोंसे युक्त राजा पृथक् २ वर्णोंके वक्ष्यमाण व्यवहारोंको स्वयं देखे क्योंकि विना स्वयं देखे दुष्ट और अदुष्टका ज्ञान नहीं हो सकता ॥ ३६० ॥

कुलानिजातीःश्रेणीश्चगणान्जानपदानपि।
स्वधर्माच्चलितान्राजाविनीयस्थापयेत्पथि।

पद-कुलानि २ जातीः २ श्रेणीः २ च॰-गणान् २ जानपदान् २ अपि॰-स्वधर्मात् ५ चलितान् २ राजा १ विनीय॰- स्थापयेत् क्रि- पथि ७ ॥

योजना- राजा स्वधर्मात् चलितानि कुलानि जातीः चपुनः श्रेणीः चपुनः जानपदान् गणान् विनीय पथि स्थापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ- ब्राह्मण आदिकुल, और मूर्द्धाभिषिक्त आदिजाति, और ताम्बूलिक आदि श्रेणी और हैलावुक आदिगण, और कारुक आदि जनपद (देश) ये सब अपने धर्म से चलायमान होंतो राजा अपराधके अनुसार दण्डदेकर अपने२ धर्ममें स्थापन करै दुराचारियोंको दण्ड दे यह जो पूर्वकह आयेहैं यह दंड शरीरदण्ड और धनदण्डके भेदसे दंड नारदके वचनानुसार है कि शरीरदंड नाम और अर्थदंड भेदसे दंड दो प्रकारकाहै ताडनसे लेकर मारनेपर्यंत शरीरदण्ड और काकिणीसे लेकर संपूर्णधन छीनने पर्यंत अर्थदण्डहै और दो प्रकारभी यह अपराधके अनुसार अनेक प्रकारका होताहै सोई कहाहै कि शारीरदंड दशप्रकारका और अर्थदण्ड कई प्रकारका होताहै ॥

भावार्थ- कुल-जाति-श्रेणी-और जानपद-आपने धर्मसे चलायमान हुए इनको अपने२ धर्ममें दण्डदेकर स्थापनकरै॥ ३६१॥

जालसूर्यमरीचिस्थंत्रसरेणूरजःस्मृतम् ।
तेऽष्टौलिक्षातुतास्तिस्रोराजसर्षपउच्यते ॥

पद- जालसूर्यमरीचिस्थं१ त्रसरेणुः१ रजः१ स्मृतं१ ते१ अष्टौ१ लिक्षाः१ तु॰-ताः१ तिस्रः१ राजसर्षपः१ उच्यते क्रि-॥

गौरस्तुतेत्रयःषट्तेयवोमध्यस्तुतेत्रयः ।
कृष्णलःपंचतेमाषस्तेसुवर्णस्तुषोडश ।
पलंसुवर्णाश्चत्वारःपंचवापिप्रकीर्तितम् ॥

पद- गौरः१ तु॰- ते१ त्रयः१ षट्१ ते१ यवः१ मध्यः१ तु॰- ते१ त्रयः१ कृष्णलः१ पंच१ ते१ माषः१ ते१ सुवर्णः१ तु॰-षोडश१ पलं१ सुवर्णाः१ चत्वारः१ पंच१ वा॰ अपि॰-प्रकीर्तितं १ ॥

योजना- जालसूर्यमरीचिस्थं रजः त्रसरेणुः स्मृतः ते अष्टौ लिक्षाः, तास्तिस्रः राजसर्षपः उच्यते, ते त्रयः गौरः (सर्षपः),ते षट् मध्यः यवः, ते त्रयः कृष्णलः, ते पंचमाषः, ते षोडश सुवर्णः, चत्वारः वा पंचसुवर्णाः पलं प्रकीर्तितं ॥

तात्पर्यार्थ- जाल (झरोखा)के मध्यमें प्रविष्ट हुए सूर्यकी किरणोंमें स्थित जो रज उसे योगीश्वर त्रसरेणु कहतेहैं आठ त्रस-

१ शरीरस्त्वर्थदण्डश्च दण्डस्तु द्विविधः स्मृतः । शरीरस्ताडनादिस्तु मरणांतः प्रकीर्तितः । काकिण्यादिस्त्वर्थदण्डः सर्वस्वांतस्तथैव च ।

१ एष।
सर्वो दशात्मकः।

१ शारीरो दशधाप्रोक्तस्त्वर्थदण्डस्त्वनेकधा ।

रेणुकी एक लिक्षा (लीख) और तीन लिक्षाओंकी एकराई और तीन राईकी एक गौर सर्षप (सरसों) होताहै-और छःसरसोंका एक मध्ययव होताहै अर्थात् स्थूलनसूक्ष्म-इससे गौरसर्षप और राजसर्षपभी मध्यम जानने और यहां मध्यम शब्दके लिखनेसे सर्षप आदि शब्दके बल तोलके वाची नहीं किंतु इनसे तुले द्रव्यके वाचीहैं जैसे प्रस्थसे तुले द्रव्यको प्रस्थ कहते हैं-इसी प्रकार सर्षप आदिसे तुले द्रव्यको सर्षप कहतेहैं यदि सर्षप आदि शब्दको केवल तोलका वाची मानेंगे तो त्रसरेणु इकट्ठे करके तुल नहीं सकेंगे उसके द्वारा कृष्णल आदि व्यवहार न होगा उनमेंभी स्थूल-स्थूलतर-स्थूलतम सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम-मध्यसर्षप आदि उन्मानके भेदसे देश२में जब व्यवहारका भेद है तब दंडके व्यवहारमें मध्य लेना यह नियम इस वचनसे किया वे तीन मध्ययवोंका कृष्णल होताहै पाच कृष्णलोंका एक माषा षोडश माषोंका एक सुवर्ण चार वा पांच सुवर्णोंका एक पल नारद आदि ऋषियोंने कहाहै यदि स्थूल तीन यवोंसे कृष्णल मानोंगे तो व्यावहारिक निष्कका षोडशवां भाग कृष्णल होताहै उन पांच कृष्णलोंका माष और सोलह माषोंका एक सुवर्ण होताहै और वह व्यावहारिक पांच निष्कोंका एक सुवर्ण होताहै और चार सुवर्णोंका एक पल होताहै क्योंकि वो सनिष्कोंको पल कहतेहैं और जब सूक्ष्मतीन यवोंसे कृष्णलको मानोंगे तो व्यावहारिक निष्कका बत्तीसमां भाग कृष्णल होताहै उस पक्षमें ढाई निष्कोंका सुवर्ण और दशनिष्कोंका पल होताहै और जब मध्यम यवोंसे कृष्णल मानोंगे तब निष्कका बीसमां भाग कृष्णल और चार कृष्णलका सुवर्ण और षोडश सुवर्णका पल होताहै इसी प्रकार पांच सुवर्णको पल कहतेहैं इस पक्षमें बीस निष्कका नाम पलहै-इसी प्रकार अन्यभी निष्कका चालीसमां भाग कृष्णल• दो निष्कका सुवर्ण और आठ निष्कका पल इत्यादि लोक व्यवहारके अनुसार इसी वचनसे जानने ॥

भावार्थ- जालमें स्थित सूर्यके किरणोंकी रजको त्रसरेणु कहतेहैं-आठ त्रसरेणुकी एक लिक्षा-तीन लिक्षाओंकी एक राई कहातीहै तीन राईका एक सरसों-छः सरसोंका मध्ययव-औरतीन मध्ययवोंका एक कृष्णल और पांच कृष्णलोंका एक माष-और सोलह माषोंका एक सुवर्ण-और चार वा पांच माषोंका एक सुवर्ण कहाहै ॥ ३६२-३६३ ॥

द्वेकृष्णलेरूप्यमाषोधरणंषोडशैवते ।
शतमानंतुदशभिर्धरणैः पलमेव तु ॥

पद- द्वे१ कृष्णले१ रूप्यमाषः१ धरणं१ षोडश१ एव‍-ते२ शतमानं१ तु‍- दशभिः१ धरणैः३ पलं१ एव‍-तु‍- ॥

योजना- द्वे कृष्णले रूप्यमाषो भवति ते षोडश धरणं दशभिः धरणैः शतमानं तु पुनः पलं एव भवति ॥

ता० भा०- पूर्वोक्त दो कृष्णलोंका चांदीका मासा होताहै और सोलह रूप्यमासोंका एक धरण कहाताहै पुराणभी इसीको कहतेहैं क्योंकि सोलह माषोंका एक धरण वा पुराण मनुने कहाहै-और दश धरणोंका शतमान और पल कहाहै और पूर्वोक्त चार सुवर्णोंका एक चांदीका माषा होताहै ॥ ३६४ ॥

निष्कंसुवर्णाश्चत्वारःकार्षिकस्ताम्रिकःपणः

पद-निष्कः १ सुवर्णाः १ चत्वारः १ कार्षिकः १ ताम्रिकः १ पणः १ ॥

१ ते षोडश स्याद्धरणं पुराणं चैव राजत

योजना–चत्वारः सुवर्णाः निष्कं भवति कार्षिकः ताम्रिकः पणो भवति ॥

ता॰भा॰–पलका चौथा भाग लोकमें कर्ष प्रसिद्धहै–उस कर्षभर तांबेको पण वा कार्षापण कहतेहैं क्योंकि मनुने कर्षभर तांबेको पण और कार्षापण कहाहै जब पांच सुवर्णका पल मानते हैं तब वीस मासेका पण होताहै तिससें यह व्यवहारभी सिद्ध होताहै कि पणके वीसवे भागको मासा कहते हैं– जब चार सुवर्णका पल मानते हैं तब सोलह मासेका पण होताहै इस पक्षमें सुवर्ण कार्षापण पण इन शब्दोंका अर्थ एकभी है तोभी पण और कार्षापण तांबेके लेने–इस प्रकार सोंना चांदी तामा आदिका प्रमाण दंड उपयोगी होनेसे कहा इसी प्रकार लोकव्यवहारके अंग कांशी पीतलकाभी प्रमाण जानना ॥

भावार्थ–चार सुवर्णोका एक निष्क और कर्षभर तांबेका पण कहाताहै ॥ ३६५ ॥

साशीतिपणसाहस्रोदंडउत्तमसाहसः ।
तदर्धमध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधमः स्मृतः ॥

पद–साशीतिपणसाहस्रः१ दण्डः१ उत्तमसाहसः१ तदर्द्धं१ मध्यमः१प्रोक्तः१तदर्द्धं १ अधमः १ स्मृतः १ ॥

योजना–साशीतिपणसाहस्रःदण्डः उत्तमसाहसःप्रोक्तः तदर्द्धं मध्यमः प्रोक्तः तदर्धं अधमः स्मृतः ॥ १ ॥

तात्पर्यार्थ–अस्सी८०अधिक सहस्रपणका जो दंडहै वह उत्तम साहस और उससे आधा (५४०) दंड मध्यम और उससे आधा (२७०) दंड अधम साहस कहाहै– और जो मनुने यह कहाहै कि (२५०) ढाइसौपणका दंड प्रथम साहस और ५०० पांचसौका दंड मध्यम साहस और १००० हजारका दंड उत्तम साहस कहाहै वहभी दूसरा पक्ष अज्ञानसे अपराधके विषयमें समझना ॥

भावार्थ–अस्सी ऊपर हजार१०८०का दंड उत्तम साहस और उससे आधा मध्यम और उससे आधा दंड अधम साहस कहाहै॥३६६॥

धिग्दंडस्त्वथवाग्दंडोधनदंडो
वधस्तथा । योज्याव्यस्तासमस्ता
वाह्यपराधवशादिमे ॥ ३६७ ॥

पद–धिग्दंडः१ तु॰–अथ॰–वाग्दण्डः १ धनदंडः १ वधः१तथा॰–योज्याः१व्यस्ताः १ समस्ताः१वा॰–हि॰– अपराधवशात् ५ इमे १

योजना–धिग्दंड अथ वाग्दंडः धनदंडः तथा वधः इमे व्यस्ताः वा समस्ताः अपराधवशात् योज्याः ॥

तात्पर्यार्थ–अब दंडके भेद कहते हैं कि धिग् धिग्–यह वाणी कहकर निंदाकरनी धिग्दंड–और कठोर वचन और शापदेना वाग्दंड–धनको हरना धनदंड–और रोकनेसे मरण पर्यंत शरीरका दण्ड वधदण्ड ये चार प्रकारके दंड एकएक वा तीन चार अपराधके अनुसार राजाको देने पूर्वोक्त क्रमसे पहिला२ असाध्य होयतो पिछला२देना–क्योंकि मनुने यह कहाहै कि पहिले धिग्दंड फिर वाग्दंड फिर धनदंड और उससे पीछे वध दंडदेने॥

भावार्थ–धिग्दण्ड वाग्दंड धनदंड वधदंड इन एक२को या सबको राजा अपराधके वश (अनुसार) दे ॥ ३६७ ॥

ज्ञात्वापराधंदेशंचकालंबलमथापिवा ।
वयःकर्मचवित्तंचदंडंदंड्येषुपातयेत् ॥

पद–ज्ञात्वा॰–अपराधं २ देशं २ च॰–कालं २ बलं २ अथ॰–अपि॰–वा॰–वयः २

१ कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ।
२ पणानां द्वेशते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः
३ पंच विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ।
२०१ प०

कर्म २ च३-वित्तं २ च३-दण्डं २ दण्ड्येषु ७ पातयेत् क्रि ॥

योजना-अपराधं- चपुनः- देशं-कालं-बलं अथ वयः चपुनः कर्म वित्तं ज्ञात्वा दण्डं दंडयेषु पातयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अपराध देश काल अवस्था कर्म धन इनको जानकर इनके अनुसारही दंड देने योग्योंको दंडदे-इसी प्रकार जानकर वा विना जाने एकवार वा वारंवार अपराधके अनुसार दंडदे-यद्यपि यह राजधर्मका समूह क्षत्रियके समूहमें कहाहै तथापि देशमण्डल आदिकी पालनाके अधिकारी अन्यवर्णकाभी यह धर्म जानना क्योंकि राजधर्मोंको कहताहूं जैसे आचरणवाला नृपहो इस वचनमें राजासे पृथक् नृपपदका ग्रहणहै और करका लेना रक्षाके लिये है और रक्षा दंड देनेके आधीनहै ॥

भावार्थ-अपराध देश काल अवस्था कम धन इनको जानकर दंड देने योग्योंको दंड दे ॥ ३६८ ॥

इतिराजधर्मप्रकरणम् ॥ १३ ॥

इति श्रीमिश्रोपाह्वपंडितरामरक्षात्मजपंडितमिहिरचंदकृतमिताक्षरा प्रकाशभाषा विवृत्तिसहित याज्ञल्क्यस्मृता आचाराध्यायः संपूर्णः ॥

याज्ञवल्क्यस्मृतिः ।

मिताक्षराप्रकाशभाषाटीकासमेता ।

व्यवहाराध्यायः ।

साधारणव्यवहारमातृकाप्र० १

व्यवहारान्नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह ।
धर्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः ॥१॥

पद- व्यवहारान्२ नृपः१ पश्येत् क्रि- विद्वद्भिः३ब्राह्मणैः ३सह इ-धर्मशास्त्रानुसारेण ३ क्रोधलोभविवर्जितः १ ॥

योजना-क्रोधलोभविवर्जितः नृपः धर्मशास्त्रानुसारेण विद्वद्भिः ब्राह्मणैः सह व्यवहारान् पश्येत् ॥

तात्पर्यार्थ-अभिषेक (राजतिलकके समयका स्नान)आदि गुणोंसे युक्त राजाका परम धर्म प्रजाका पालन है वह दुष्टोंको दण्ड दिये विना नहीं होसकता-और दुष्टका ज्ञान होना व्यवहारके विना देखे असंभवहै इससे आचाराध्यायके राजधर्म प्रकरणमें इस वचनसे कह आए हैं कि सभासदों सहित राजा प्रतिदिन व्यवहारोंको स्वयं देखे परंतु यह नही कह आए कि वह व्यवहार कैसा और किस प्रकारका और कैसे करना अर्थात् यह उस की इतिकर्तव्यता (करनेकी रीति) नही कही उसकेही कहनेको इस दूसरे अध्यायका प्रारंभ करते हैं अन्यके विरोधसे अपने आत्माकी वस्तुको कहना (बताना) व्यवहार है जैसे कोई कहै कि यह क्षेत्र मेरा है इसी प्रकार दूसरा भी उसके विरोधसे कहैकि यह तेरा नही मेराहै और मदनरत्नमें मयूखमें यह कहाहै कि विवाद करते हुए २मनुष्यको अज्ञात और अधर्मका बोधक जो व्यापार उसे अथवा वादी और प्रतिवादी (मुद्दई मुद्दायले)योंका कियाभोग साक्षी प्रमाण आदिसे परस्पर विरुद्ध कोटि जिसकी ऐसे व्यापारको व्यवहार कहा है संप्रतिपत्ति (दावेको मानना) उत्तरमें तो व्यवहार पद गौणहै-उस व्यवहारके अनेक प्रकार-व्यवहारान्-इस बहुवचनसे ही याज्ञवल्क्यने दिखाये हैं-क्रोध और लोभसे विवर्जित (रहित)नृप (नरोंका पालक)नृप इस पदके देनेसे यहभी दिखाया कि केवल क्षत्रियकाही यह धर्म नही किंतु प्रजाकी पालना करनेमें जो अधिकारीहैं उन सबका है- राजा व्यवहारोंको-पश्येत् (देखे) पूर्वोक्त भी पश्येत् इसका अनुवाद धर्मविशेष जताने के लिये है वेद व्याकरण आदि धर्मशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणों सहित राजा व्यवहारों को देखे क्षत्रिय आदिको सहित नही यहां ब्राह्मणैः सह-सह शब्दके योगमें ब्राह्मणैः यह अप्रधानमें तृतीयाहै इससे व्यवहारके देखनेमें राजा प्रधान है और ब्राह्मण अप्रधान है-क्योंकि-यह पाणिनीका सूत्र है इससे यदि राजा व्यवहारको न देखे या अन्यथा देखे तो राजाको दोषहै ब्राह्मणोंको नही-सोई मनुने कहाहै कि दंड देनेके अयोग्योंको दंड देता और योग्योंको नही देता राजा अपयशको प्राप्त होताहै और नरकमें जाताहै-और व्यवहारभी धर्म शास्त्रके अनुसार देखे औशनस आदि अर्थ शास्त्रके

१ व्यवहारान् स्वयं पश्येत्सभ्यैः परिवृतोऽन्वहं ।

१ सहयुक्तेऽप्रधाने ।

२ अदण्ड्यान् दंडयन् राजा दंड्यांश्चैवाप्यदंडयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ।

अनुसार नदेखे देश आदि संकेतका जो सामयिक धर्म यदि धर्मशास्त्रका विरोधी नही वहभी धर्मशास्त्रका विषय है इससे पृथक् नही कहा–सोई कहैंगे कि अपने धर्मके अविरोधसे जो धर्म सामयिकहै और जो राजकृत धर्म है वहभी यत्नसे रक्षाकरने योग्यहै–धर्मशास्त्रके अनुसार यह कहनेसेही क्रोध लोभ विवर्जित आजाता फिर क्रोध लोभ विवर्जितका देना आदरके लियेहै–नसहने को क्रोध और अधिक अभिलाषाको लोभ कहतेहैं ॥

भावार्थ–क्रोध और लोभसे रहित राजा विद्वान् ब्राह्मणों सहित धर्मशास्त्रके अनुसार व्यवहारोंको देखे ॥ १ ॥

श्रुताध्ययनसंपन्नाधर्मज्ञाःसत्यवादिनः ।
राज्ञासभासदः कार्यारिपौमित्रेचयेसमाः२

पद–श्रुताध्ययनसंपन्नाः १धर्मज्ञाः १सत्यवादिनः १ राज्ञा ३ सभासदः १ कार्याः १ रिपौ७ मित्रे७ च०–ये१ समाः१ ॥

योजना–श्रुताध्ययनसंपन्नाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः चपुनः रिपौ मित्रे ये समाः तेसभासदः राज्ञा कार्याः ॥

तात्पर्यार्थ–मीमांसा व्याकरण आदिके पढने और सुननेसे युक्त और वेदके पाठी धर्मशास्त्रके ज्ञाता और सत्यवादी और शत्रु और मित्रमें सम दृष्टि (रागद्वेषसे रहित) सभामें जैसे बैठसकें उसी प्रकार दान मान सत्कार पूर्वक राजाको सभासद करने–यद्यपि श्रुताध्ययनसंपन्नाः इस पदसे मीमांसा आदिके श्रोता और पढनेवाले अविशेष से कहे हैं कछु ब्राह्मणही नहीं–तथापि ब्राह्मणही लेने क्योंकि कात्यायननें यह कहाहै कि स्थिर बुद्धिमान् मौल (परम्परासे चले आये) धर्मशास्त्रके अर्थमें कुशल और नीतिशास्त्रमें चतुर ऐसे सभासदों से युक्त राजा रहै–और वेभी सभासदः–इस बहुवचनसे तीनही रखने और मनुनेभी कहाहै कि जिस देशमें वेदके ज्ञाता तीन ब्राह्मण टिकतेहैं–और बृहस्पतिने इस वचनसे सात७ पांच५ वा तीन ३सभासद कहेहैं कि लोकवेद धर्मके ज्ञाता सात पांच वा तीन ब्राह्मण जहां बैठतेहैं वह सभा यज्ञके समान है–कदाचित कोई शंकाकरे कि पूर्व श्लोकमें कहे ब्राह्मणैः इस पदका श्रुताध्ययनसंपन्नाः यह विशेषणहै सो ठीक नही क्योंकि ब्राह्मणैः इस तृतीयांतका श्रुताध्ययनसंपन्नाः यह विशेषण नही होसकता और विद्वान हो–यहहै अर्थ जिस्का ऐसे विद्वद्भिः इस पदके संग पुनरुक्ति दोषभी आवैगा–तैसेही कात्यायननें ब्राह्मण और सभासदोंका भेद प्रकटतासे दिखाया है–कि प्राड्विवाक (वकील) अमात्य (मंत्री) ब्राह्मण पुरोहित सभासद–इनसे युक्त होकर व्यवहारोंको देखनेवाला राजा धर्मके अनुसार स्वर्गमें टिकता है उनमेंभी यह भेद है कि ब्राह्मण अनियुक्त और सभासद नियुक्त होते हैं इससे कहा है कि नियुक्त (नोकर) हो वा अनियुक्त हो धर्मका ज्ञाता

१ निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत् । सोपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ।

१ सतु सभ्यैः स्थिरैर्युक्तः प्राज्ञैर्मौलैर्द्विजोत्तमैः । धर्मशास्त्रार्थकुशलैरर्थशास्त्रविशारदैः ॥

२ यस्मिन् देशे निषीदन्ति विप्रावेदविदस्त्रयः ।

३ लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः सप्त पञ्च त्रयोपि वा । यत्रोपविष्टा विप्राः स्यु सायज्ञसदृशी सभा ।

४ स प्राड्विवाकः सामात्यः सब्राह्मणपुरोहितः । ससभ्यः प्रेक्षको राजा स्वर्गे तिष्ठति धर्मतः ॥

५ नियुक्तो वानियुक्तो वा धर्मज्ञो

तिरस्कार जिस्का ऐसा पुरुष राजाको वा प्राड्विवाकको विज्ञापन करे (अर्जीदे) तो वह विज्ञापन उस व्यवहारका पद (विषय) है जो व्यवहार प्रतिज्ञा- उत्तर- संशय- हेतु- परामर्श- प्रमाण- निर्णय- प्रयोजनरूप है यही उसका सामान्य लक्षण है उस व्यवहार-केभी दो भेद हैं शंकाभियोग और तत्त्वाभि-योग- सोई नारदने कहा है कि शंका और तत्वके अभियोगसे अभियोग दो प्रकारका है असज्जनोंके संगसे शंका और चिह्नके दर्शनसे तत्वका अभियोग (ज्ञान) होता है और तत्वका अभियोगभी दो प्रकारका है- प्रतिषेधरूप- और विधिरूप- जैसे मेरे सुवर्ण आदि धनको लेकर नही देता वा मेरे क्षेत्र आदिको यह हरता है सोई कात्यायनने कहा है कि जो स्वयं- उचितको न करे वा अन्यायको करे वह व्यवहारभी फिर इन मनुके (अ. ८ श्लो. ४- ५- ६- ७) वैच-नोंसे अठारह प्रकारका है ऋणादान- निक्षेप- अस्वामिविक्रय (अन्यकी वस्तु बेचना) - संभूयसमुत्थान (साझेका व्यापार) दियेको न देना- वेतनको न देना- प्रतिज्ञाकी-हानि- क्रयविक्रयका अनुशय (त्याग)- स्वामी और गोपालका विवाद सीमाका-विवाद- कठोरदंड- और कठोरवाणी- चोरी- साहस- स्त्रीसंग्रहण- स्त्रीपुरुषका धर्म-विभाग- द्यूत- आह्वय (संग्राम)- ये अष्टादश (१८) पद व्यवहारकी स्थितिमें होते हैं- और ये अठारहभी साध्यके भेदसे बहुत होजाते हैं- सोई नारदने कहा है कि इनके औरभी अष्टोत्तरशत (१०८) भेद होते हैं- और मनुष्योंकी क्रियाके भेदसे इनकी सेकडो शाखा होती हैं, और राजाको विज्ञापन करे इस कहनेसे यह दिखायाकि स्वयं जाकर निवेदन करे और राजा वा राजाके पुरुषोंके कहनेसे निवेदन न करे- सोई मनुने कहा है कि राजा वा राजाका पुरुष स्वयं कार्य (दावा) को पैदा न करे- और अन्यके निवेदनकिये अर्थका ग्रास (छिपाना) कीसी प्रकार न करे- परैः इसी बहुवचनसे यह दिखायाकि एकके वा दोके वा बहुतोंके- संग एकका व्यवहार होसकता है- और जो यह नारदका वचन है कि एकका बहुतोंके संग- स्त्रियोंका- सेवकोंका- विवाद धर्मके ज्ञाताओंको स्वीकारके अयोग्य लिखा है- वह भिन्न२ साध्यके विषयमें समझना- और राजाको विज्ञापन करे- इससेही यह बात अर्थात्-सिद्ध है कि राजाके पूछनेपर नम्रताका वेष धारे निवेदन करे और अर्थीका निवेदन युक्त होय तो राजा अपनी मुद्राका पत्र भेजकर प्रत्यर्थीको बुलावे- और बुलानेके योग्य नही तो न बुलावे इससे सब यहां नहीं कहा अन्यस्मृतियोंमें तो स्पष्टके लिये यह कहाहै

---

१ अभियोगस्तु विज्ञेयः शंकातत्त्वाभियोगतः शंकाऽसतां तु संसर्गात्तत्त्वं होढाभिदर्शनात् ।

२ न्याय्यं स्वं नेच्छते कर्तुमन्याय्यं वा करोति यः ।

३ तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः । संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः । क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दंडवाचिके । स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च । पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥

१ एषामेव प्रभेदोन्यः शतमष्टोत्तरं भवेत् । क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ।

२ नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः । न च प्रापितमन्येन ग्रसेतार्थं कथंचन ।

३ एकस्य बहुभिः सार्धं स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च । अनादेयो भवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः ।

कि समयेपर आए और आगे कहते हुए कार्यार्थीको पूछे कि क्या तेरा कार्यहै और क्या दुःखहै भय मतकरै- हे मनुष्य कहो किसने किस समय किस कारणसे तुझे दुःख दिया इस प्रकार सभामें आयेको पूछे इस प्रकार पूछाहुआ वह मनुष्य जो कहे उसको सभासद और ब्राह्मणोंके संग विचार कर करे और उचित होय तो प्रत्यर्थीके बुलानेके लिए अपनी मुद्राके पत्रको अथवा पुरुषको भेजदे-और इतने मनुष्योंको राजा न बुलावे असमर्थ-बालक-वृद्ध-संकटमें स्थित-कार्यमें व्याकुल-अन्य कार्यमें आसक्त- व्यसनी- राजकार्यमें व्याकुल-मत्त- उन्मत्त-प्रमत्त-दुःखी-और भृत्य-हीनपक्षवाली और कुलीन और प्रसूता स्त्री-सब वर्णोंमें उत्तम कन्या इनकोभी न बुलावे-क्योंकि इनके प्रभु ज्ञातिके होतेहैं-और जिनके अधीन कुटंब हो वे-और व्यभिचारिणी-वेश्या कुलसे हीन-पतित-जो है उनका बुलाना कहाहै-काल-देश-और कार्योंका बल अबल देखकर असमर्थ आदिकोंकोभी शनैः२ राजा यानोंसे बुलावे-और अभियोग (दावा) की दशाको जानकर जो वनमें संन्यासी आदिहै-उनकोभी इस प्रकार राजा बुलावे जो कार्य भारी हो और उनको-क्रोध न आवे आसेधकी व्यवस्थाभी अर्थात् सिद्धहैहै वह नारदने कहीहै कि जो कहने योग्य अर्थपर न टिके और अपने वचनको उलट जाय ऐसे मनुष्यका प्रत्यर्थीके आनेतक विवादार्थी राजा आसेध (रोक) करे और वह आसेध स्थान-काल- प्रवास-कर्म-इनके भेदसे चार प्रकारकाहै जो अपने पक्षको सिद्ध न कर सके वह आसेधको न लंघे आसेधके समयमें जो आसेधका भागी आसेधको नही मानता-अन्यथा करतेहुए उस आसिद्धको दण्ड और शिक्षादे जो आसिद्ध (कैदी) नदीका तरना वन दुष्टदेश और उपद्रव आदिमें आसेधका अवलंघन करताहै वह अपराधी नही होता सेवाका अभिलाषी-रोगसे आर्त-यज्ञ करनेवाला-व्यसनमें स्थित- अन्यके संग अभियुक्त (लडता)- राजकार्यमें उद्यत- गौ चराते गोपाल और खेतवोते किशान, और शिल्पी और संग्राममें योद्धा, ये सब आसेधका अवलंघन करतेहुए अपराधी नही होते- यदि ये पूर्वोक्त असमर्थ-आदि, पुत्र आदि, वा किसी अन्य मित्रको भेजदें तो वे परार्थवादी न समझने क्योंकि इस नारदके वचनसे

१ काले कार्यार्थिनं पृच्छेद्दृणंतपुरतःस्थित । किं कार्यं का च ते पीडा माभैषीर्ब्रूहि मानव॥केन कस्मिन् कदा कस्मात्पृच्छेदेवं सभागत। एवं पृष्टः सयद्ब्रूयात् स सभ्यै ब्राह्मणैः सह॥विमृश्य कार्यं न्याय्यं चेदाह्वानार्थमतः परामुद्रा वा निक्षिपेत्तस्मिन्पुरुषं वा समादिशेत्॥ अकल्पबालस्थविरविषमस्थक्रियाकुलान् । कार्यातिपातिव्यसनिनृपकार्योत्सवाकुलान् । मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्तान्भृत्यानाह्व नयेन्नृपः। न हीनपक्षां युवतीं कुलेजातां प्रसूतिकां ॥ सर्ववर्णोत्तमां कन्यांता ज्ञातिप्रभुकाः स्मृताः ॥ तदधीनकुटुंबिन्यः स्वैरिण्यो गणिकाश्च याः। निष्कुला याश्च पतितास्तासामह्वानमिष्यते ॥ कालं देशंच विज्ञाय कार्याणां च बलाबले। अकल्पादीनपि शनैर्यानैराह्वानयेन्नृपः।ज्ञात्वा वियोगं येपि स्युर्वनेप्रव्रजितादयः। तानप्याह्वानयद्राजा गुरुकार्येष्वकोपयन् ॥

१ वक्तव्येर्थे ह्यतिष्ठन्तमुत्क्रामतं च तद्वचः । आसेधयेद्विवादार्थी यावदाह्वानदर्शनम् ॥ स्थानासेधः कालकृतः प्रवासात्कर्मणस्तथा । चतुर्विधः स्यादासेधो नासिद्धस्तं विलघयेत्॥ आसेधकाल आसिद्ध आसेधं योतिवर्तते॥सविनेयोऽन्यथा कुर्वन् नासेद्धा दण्डभागमवेत् नदीसंतारकां तारदुर्देशोपप्लवादिषु ॥ आसिद्धपरासेधमुत्क्रामन्नापराभुयात् । निर्वेष्टुकामो रोगार्तो यियक्षुर्व्यसने स्थितः ॥ अभियुक्तस्तथान्येन कार्योद्यतस्तथा। गवां प्रचारे गोपालाः सस्यार्थं वलाः ॥ शिल्पिनश्चापि तत्कालमायुधीया

१ यो न भ्राता नच पिता न पुत्रो छपी परार्थवादी दंड्यः स्याद् व्यवहारेषु

मेरेपर सौ रुपये नही चाहतेहैं यह मिथ्योत्तरहै सोई कात्यायननें लिखाहै कि यदि अभियुक्त (प्रत्यर्थी) अभियोग (दावा) का अपन्हव (नाहीं) करे तो उस उत्तरको व्यवहारसे मिथ्या जानै–वह मिथ्या उत्तर इस वचनमें चार प्रकारका कहाहै कि यह झूठहै–मैं जानताभी नही–मैं उस समय वहां नही था–मैं उस समयतक पैदाभी नही हुआ था इस प्रकार मिथ्या उत्तर चार प्रकारकाहै–प्रत्यवस्कंदन उत्तर उसको कहतेहैं मैंने सौ रुपे लियेथे परंतु–देदीये–अथवा प्रतिग्रहसे मिलेथे–सोई नारदने कहाहै कि अर्थीने जो अर्थ लिखाहो उसे प्रत्यर्थी मानकर कोई कारण बतादे तो उस उत्तरको प्रत्यवस्कंदन कहतेहैं–और पूर्वन्याय उत्तर वह होताहै जहां प्रत्यर्थी यह कहै कि जिस अर्थका इसने अभियोग कियाहै उसीमें मैं व्यवहारके मार्गसे पराजय कर चुकाहूं–सोई कात्यायनने कहाहै कि जो आचरणसे अवसन्न (हारा) अर्थी अर्थको यदि फिर लिखे तो पहिले जीता हुआ वह अर्थ होताहै उससे उसका उत्तर प्राङ्न्याय उत्तर कहाताहै–जब ये उत्तरके लक्षणहैं–तो जिनमें उत्तरके लक्षण नही उत्तरके समान दीखते वे अर्थात् उत्तराभासहैं–सोई अन्य स्मृतिमें स्पष्ट कियाहै कि संदिग्ध–प्रकृतसे अन्य अत्यंत अल्प–अत्यंत अधिक– पक्षैकदेशव्यापी–व्यस्तपद–अव्यापी–निगूढार्थ–आकुल–व्याख्यागम्य–असार–इतने उत्तर–उत्तराभास होते हैं उनमें संदिग्ध यहहै कि इसने मेरेसौ सुवर्ण लियेहैं इस अभियोगमें सचलियेहैं परंतु यह खबर नही कि सो सुवर्ण लिये वा सौ मासे–प्रकृतसे अन्य यह है कि सौ सुवर्णके अभियोगमें सौ पण मेरेपर चाहतेहैं–अत्यल्प यह है कि–सौ सुवर्णके अभियोगमें पांच सुवर्ण चाहतेहैं–अत्यंत अधिक वह है कि–सौ सुवर्णके अभियोगमें दो सौ सुवर्ण चाहतेहैं–पक्षैकदेशव्यापी वह है कि–सोना और वस्त्र आदिके अभियोगमें सोना लियाहै अन्य नही–व्यस्तपद वह है कि–सौ सुवर्णके अभियोगमें यह उत्तर देना कि उसने मुझे माराहै–अव्यापी वह है कि जिसके देश स्थान आदि नमिलें–जैसे मध्यदेश काशीकी पूर्व दिशामें इसनें मेरा क्षेत्र छीन लिया–इस पूर्वपक्षमें यह उत्तर देना कि मैं क्षेत्र छीन लीया–निगूढार्थ वह होताहै–कि सौ सुवर्णके अभियोगमें यह उत्तर देना कि क्या मेरे ही शिर इसके आतेहैं–ऐसे प्रत्यर्थीके कथनको प्राड्विवाक वा सभासद वा अर्थी यह सूचन करे कि अन्यपर चाहतेहैं आकुल वह होताहै कि पूर्वापर जो विरुद्धहो जैसे सुवर्ण शतके अभियोगमें–सचहै लियाथा–परंतु मेरेपर चाहते नही–व्याख्यागम्य वह होताहै कि जिसमें कठिन विभक्ति समास वा अन्य देशकी भाषा कहनेसे कठिनाईहो और उसका अर्थ खोलना पडे–जैसे कि सोसुवर्ण इसके पिताने लियेथे इस अभियोगमें यह उत्तर कि लेनेवालेके सौ वचनसे–सुवर्णोको–पिताको नही जानता–इसका यह अर्थ खोलना पडेगा कि लिये हैं सौ सुवर्ण जिसने ऐसे पिताके वचनसे सौ सुवर्ण पिताने लियेथे यहमैं नही जानता–

१ अभियुक्तोभियोगस्य यदि कुर्यादपह्नवम् । मिथ्या तत्तु विजानीयादुत्तरं व्यवहारतः ॥

२ मिथ्यैतन्नाभिजानामि तदा तत्र न संनिधिः । अजातश्चास्मि तत्काल इति मिथ्या चतुर्विधम् ।

३ अर्थिना लिखितो योर्थः प्रत्यर्थी यदि तं तथा । प्रपद्य कारणं ब्रूयात्प्रत्यवस्कंदनं स्मृत ।

४ आचारेणावसन्नोपि पुनर्लेखयते यदि । सोभिधेयो जितः पूर्वप्राङ्न्यायस्तु स उच्यते ॥

५ संदिग्धमन्यत्प्रकृतादत्यल्पमतिभूरि च। पक्षैकदेशव्याप्यन्यत्तथानैवोत्तरं भवेत् ॥ यद्व्यस्तपदमव्यापि निगूढार्थं तथाकुलं । व्याख्यागम्यमसारं च नोत्तरं स्वार्थसिद्धये ।

असार वहहै जो न्यायसे विरुद्धहो जैसे सौ सुवर्ण इसने व्याजपर लियेथे वृद्धि (व्याज) ही दीहै मूल नही दिया इस अभियोगमें सत्यहै वृद्धि दीहै मूल मैं लियाही नही–उत्तरं इस एक वचनसे उत्तरोंके संकरका निरास भया–सोई कात्यायनने कहाहै कि जो पक्षके एक देशमें सत्य–एक देशमें कारण–एक देशमें मिथ्याहो ऐसा उत्तर संकर होनेसे ठीक उत्तर नही–और अनुत्तरमें कारणभी कात्यायनने कहाहै कि एक विवादमें दो वादियोंकी क्रिया और दोनोंके अर्थकी सिद्धी नही होती और एकवार दो कार्यभी नही होते–मिथ्या और कारण उत्तरोंके संकरमें अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंकी क्रिया पाती है क्योंकि यह स्मृतिहै कि पूर्व वादमें मिथ्या क्रिया–और कारणमें प्रतिवादिकी क्रिया होतीहै–वे दोनों एक व्यवहारमें विरुद्धहैं जैसे सुवर्णशत–और रूपकशत इसने लिये हैं इस अभियोगमें सुवर्णशत मैं नही लिये सौ रूपये लियेथे परंतु देदियेथे–कारण और प्राङ्न्यायोत्तरमें तो प्रत्यर्थीकीही क्रिया होती हैं सोई इसे वचनमें लिखाहै जैसे सुवर्ण लियाथा देदिया–और रूपकमें यह व्यवहारके मार्गसे पराजयहो चुकाहै यहां प्राङ्न्यायमें जीतके पत्रसे वा प्राङ्न्याय देखनेवालोंसे निश्चयकरै *और कारणके कथनमें साक्षीके लेख आदिसे* निश्चय करै यही विशेषहै–इसी प्रकार तीन उत्तरोंके संकरमेंभी जानना–जैसे इसने सुवर्ण–सौ रुपये और वस्त्र लिये हैं इस अभियोगमें–सच सुवर्ण लियाथा परंतु देदियाथा–और सौ रुपये मैं नही लिये–और वस्त्रके विषयमें तो पहिले यह न्यायसे पराजित हो चुकाहै–ऐसेही चार उत्तरोंके संकरमें जानो–ये सब अनुत्तर इकट्ठेहो सकते हैं क्योंकि वह२ अंश उस२के बिना सिद्ध नहीहो सकता– और क्रमसेतो ये सब उत्तरही हैं–और क्रमभी अर्थी प्रत्यर्थी और सभासदोंकी इच्छासे होताहै–जहां दोका संकरहै वहां जो अधिक पदार्थमेंहो उसकी क्रियाके स्वीकारसे पहिले व्यवहार करै–और पीछे अल्पविषयक उत्तरके उपादान(सुनना) से व्यवहार देखना–और जहां संप्रतिपत्ति और अन्य उत्तरका संकरहै वहां अन्य उत्तरको सुनकर व्यवहार देखना क्योंकि संप्रतिपत्ति उत्तरमें कोई क्रियाही नही होती–इसीसे हारीतने जहां मिथ्या और कारण उत्तर दोनों हों और अन्यके संग सत्यभीहो वहां कोनसा उत्तर मानना यह कहकर कहाहै कि जिसके धनका विषय बहुतहो वा जहां क्रियाका कुछ फलहो वहांही उत्तर असंकीर्ण (साफ) जानना इससे अन्य संकीर्ण होताहै शेष उत्तरोंमें क्रम अपनी इच्छासे होताहै–उसमें प्रभूत अर्थ यहहै कि इसने सुवर्ण–सौ रुपये–और वस्त्र लिये हैं इस अभियोगमें सच सुवर्ण लियाथा–सौ रुपये नही लिये–वस्त्रतो लियेथे परंतु देदियेथे–यहां मिथ्या उत्तरका विषय अधिकहै इससे अर्थीकी क्रियाको लेकर पहिले व्यवहार करना–फिर वस्त्रोंका व्यवहार करना–इसी प्रकार मिथ्या और प्राङ्न्यायके और कारण और प्राङ्न्यायके संकरमें समझना–तैसेही पूर्वोक्त अभियोगमें सचहै सुवर्ण और सौ रुपये लियेथे दोंगा–वस्त्रतो नही लिये वा लियेथे परंतु देदियेथे वा वस्त्रके विषयमें

---

१ पक्षैकदेशे यत्सत्यमेकदेशे च कारणम् । मिथ्या चैकदेशेन संकरात्तदनुत्तरम् ।

२ न चैकस्मिन्विवादे तु क्रिया स्याद्वादिनोर्द्वयोः । न चार्थसिद्धिरुभयोर्न चैकत्र क्रियाद्वयम् ।

३ मिथ्या क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनि ।

४ प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत्

१ मिथ्योत्तरं कारणं च स्यातामेकत्र चेदुभे । सत्यं चापि सहान्येन तत्र ग्राह्यं किमुत्तरम् ।

२ यत्प्रभूतार्थविषयं यत्र वा स्यात्क्रियाफलम् । उत्तरं तत्र तद् ज्ञेयमसंकीर्णमतोऽन्यथा ।

यह पराजितहो चुकाहै– इस उत्तरमें यद्यपि संप्रतिपत्तिका विषय बहुतहै तथापि उसमें क्रियाका अभाव होनेसे मिथ्या आदि उत्तरोंकी क्रियासे व्यवहार करना–जहां मिथ्या और कारण उत्तर सब पक्षके विषयमेंहों जैसे सींग पकडकर कोई कहे कि यह गौ मेरीथी और अमुक समयमें खोई गयीथी आज इसके घरमें देखी है–दूसरा यह कहताहै कि यह झूटहै उससे पहिलेही मेरे घरमेंथी था पैदा हुईथी–यह पक्षके निराकरणमें समर्थ होनेसे अनुत्तर नहीं और न मिथ्याही है क्योंकि कारणसे युक्तहै-एक देशके स्वीकारके अभावसे कारण उत्तरभी नहींहै तिससे यह कारणसहित मिथ्या उत्तरहै–इसमें कारणमें प्रतिवादीकी क्रिया होतीहै इस वचनसे प्रथम प्रतिवादीकी क्रिया राजा करे–कदाचित् कोई शंका करे कि मिथ्या उत्तरमें पूर्ववादीकी क्रिया होतीहै इस वचनसे पूर्ववादीकी क्रिया पूर्व क्यों नहीं होती सो ठीक नहीं वह वचन शुद्ध मिथ्या उत्तरके विषयमें है–कदाचित् कोई शंका करे कि कारण उत्तरमें प्रत्यर्थीकी क्रिया (सुनाई) पूर्वकरे यहभी शुद्धकारणके विषयमें क्योंनहीं माना जाताहै–सो ठीक नहीं–क्योंकि सब कारण उत्तरोंको मिथ्योत्तरके सहचारी होनेसे शुद्ध कारणोत्तरका असंभवहै–प्रसिद्ध कारणोत्तरमेंभी प्रतिज्ञात अर्थके एकदेशके स्वीकारसे एकदेशमें मिथ्यात्व रहताहै जैसे कि सचहै कि मैं सो रुपे लियेथे पर अब मुझपर नहीं चाहतेहैं क्योंकि मैं देदियेथे–प्रकृत (इस) उदाहरणमें तो प्रतिज्ञातअर्थके एक देशकाभी स्वीकार नहींहै इतना विशेषहै–यह बात हारीतने इस वचनसे स्पष्ट कहीहै कि मिथ्या और कारण उत्तरमें कारण उत्तर स्वीकार करने योग्य है और जहां मिथ्या और प्राङ्न्याय उत्तर पक्षके व्यापक हैं जैसे कि इसपर सौ रुपये चाहते हैं इस अभियोगमें यह बात मिथ्या है और इसमें इसका पहिले पराजय हो चुकाहै वहांभी प्रतिवादीकीही पहिले क्रिया होती है क्योंकि यह वचन है कि प्राङ्न्याय और कारणोत्तरमें प्रत्यर्थी क्रियाको दिखावै– शुद्ध प्राङ्न्याय उत्तरका अभाव होनेसे वह उत्तरही नहीं होसकेगा संप्रतिपत्तिभी साध्यत्वके निराकरणसेही उत्तर होसकता है– क्योंकि साध्यरूप पक्ष उसमें सिद्ध माना जाताहै–और जब कारण और प्राङ्न्यायका संकर है जैसेकि सौ रुपे इसने लियेहैं इस अभियोगमें सच लियेथे परंतु देदिये और इसमें पहिले न्यायसे यह पराजित हो चुकाहै वहांभी प्रतिवादीकी रुचिके अनुसार निर्णय करे, कहींभी वादी प्रतिवादीयोंकी एक व्यवहारमें दो क्रिया नहीं होतीं यह निर्णयहै इस प्रकार पत्रके लिखनेपर कार्यकी सिद्धि कारणके अधीन है उस कारणका निर्देशकोन करे इस अपेक्षासे कहतेहैं फिर उत्तर लेनेके अनंतर अर्थी उसी समय प्रतिज्ञात(साध्य)अर्थके साधन (प्रमाण)को लिखवावे-यहां सद्यः ही लिखवावे इस बातके कहनेसे यह जाना गया कि उत्तरके देनेमें कालका विलंबभी स्वीकार है–सोई आगे पृथक् २ दिखावें गे– अर्थी प्रतिज्ञात अर्थके साधनको लिखवावे यह कहनेसे यहभी कहागया कि जिसका साध्यहो वही प्रतिज्ञात अर्थके साधनको लिखवावे इससे प्राङ्न्याय उत्तरमें प्राङ्न्यायकोही साध्य होनेसे प्रत्यर्थी ही अर्थी जानागया-इससे वहीसाधनको लिखवावे-कारणोत्तरमेंभी कारण ही साध्य है इससे कारणका वादी ही अर्थीहै इससे वही कारणको लिखवावे– मिथ्यो-

१ कारणे प्रतिवादिनि ।

२ मिथ्या क्रिया पूर्ववादे ।

३ मिथ्याकारणयोर्वापि ग्राह्यं कारणमुत्तरं ।

१ प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियां

त्तरमें तो पूर्ववादी ही अर्थी है वही साधनको लिखवावै-फिर अर्थी लिखवावे इस कहनेसे यहभी कहा गया कि अर्थी ही लिखवावे अन्य नहीं-इससे संप्रतिपत्ति उत्तरमें साध्यके अभावसे भाषा और उत्तरके वादी दोनों ही अर्थी नहीं हो सकते और साधनका दिखानाभी नहीं क्योंकि उतने (प्रत्यर्थीका-स्वीकार)सेही व्यवहार समाप्त हो जाता है यही बात हारीतने स्पष्ट कहीहै की प्राङ्न्याय और कारण उत्तरोंमें प्रत्यर्थी क्रियाको दिखावे और मिथ्या उत्तरमें पूर्ववादी क्रिया दिखावे और संप्रतिपत्ति उत्तरमें क्रिया नहीं होती ॥

भावार्थ-पूर्ववादीके सामने सुने हुये अर्थका उत्तर लिखना-फिर अर्थी अपने प्रतिज्ञात अर्थका साधन(कारण वा प्रमाण) लिखवावे॥

तत्सिद्धौसिद्धिमाप्नोतिविपरीतमतोन्यथा ।
चतुष्पाद्व्यवहारोयंविवादेषूपदर्शितः॥ ९ ॥

पद-तत्सिद्धौ ७ सिद्धिं २ आप्नोति क्रि- विपरीत १ अतः ऽ- अन्यथा ऽ- चतुष्पात् १ व्यवहारः १ अयं १ विवादेषु ७ उपदर्शितः १ ॥

योजना-तत्सिद्धौ (प्रमाणसिद्धौ) व्यवहारः सिद्धिं आप्नोति-अतः अन्यथा विपरीतं भवति-अयं चतुष्पात् व्यवहारः विवादेषु उपदर्शितः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि वह साधन (प्रमाण) वक्ष्यमाण साक्षी आदिके लेखसे सिद्ध हो जाय तो साध्यरूप अपने अर्थकी जयरूप सिद्धिको अर्थी प्राप्त होताहै और इससे अन्यथा होय तो अर्थात् साधनकी सिद्धि न होय तो विपरीत होता है अर्थात् पराजय-रूप असिद्धिको प्राप्त होता है-राजा व्यवहारोंको देखे यह पूर्व कहाहुआ व्यवहार चतुष्पाद्-अर्थात् चार अंश वा कलाओंसे युक्त ऋणादान आदि विवादोंमें वर्णन किया है तिन चारोंमें प्रत्यर्थीके आगे लिखे यह भाषावाद प्रथमहै-और सुनेहुये अर्थका उत्तर लिखे यह उत्तर पाद दूसरा है-फिर अर्थी प्रतिज्ञात अर्थके साधनको लिखे यह क्रियापाद तीसरा- साधनकी सिद्धिमें सिद्धिको प्राप्त होताहै यह साध्य सिद्धिका पाद चौथाहै-सोई कहाहै[1] कि मनुष्योंकी स्वार्थ सिद्धिके परस्पर विवादोंमें वाक्यके न्यायसे व्यवस्थाको व्यवहार कहते हैं उसके क्रमसे ये चार अंश होते हैं कि भाषा उत्तर क्रिया साध्य सिद्धि इससे उसको चतुष्पाद् कहते हैं-संप्रतिपत्ति उत्तरमेंतो साधनका दिखाना नहीं और भाषाके अर्थकोभी सिद्ध नहीं करना पडता इससे साध्य सिद्धि रूप पादनहीं है वहां दो पादही व्यवहार होताहै उत्तर कहनेके अनंतर सभासदोंका जो यह विचाररूप व्यवहार है कि (अर्थी और प्रत्यर्थीके मध्यमें किसकी क्रिया पहिले हो वह याज्ञवल्क्यने पृथक् नहीं कहा और व्यवहार करनेवालेका कोई संबंधभी नहीं इससे व्यवहारपाद नहीं हो सकता यह स्थितभया ॥

भावार्थ-प्रमाणकी सिद्धिमें साध्य (दावा) सिद्धिको प्राप्त होताहै और अन्यका (असिद्धिसे) सिद्धिको प्राप्त नहीं होता-यह पूर्वोक्त चार पादवाला व्यवहार विवादोंमें दिखायाहै-८ इति साधारणव्यवहारमातृका प्रकरणम् ॥

इति साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरणम् १

---

१ प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियाम् । मिथ्योक्तौ पूर्ववादी तु प्रतिपत्तौ न सा भवेत् ॥

१ परस्परं मनुष्याणां स्वार्थविप्रतिपत्तिषु । वाक्यन्यायाद्व्यवस्थानं व्यवहार उदाहृतः ॥ भाषोत्तरक्रियासाध्यसिद्धिभिः क्रमवृत्तिभिः ॥ आक्षिप्तचतुरंशस्तु चतुष्पादभिधीयते ।

वे दोनों वेतन दें सोई कात्यायनने कहा है यदि कार्यके योग्य वादीका प्रतिभू न होय तो रक्षा कियाहुआ तो वह वादी संध्याके समय सेवकको वेतन (नोकरी) दे ॥

भावार्थ- कलह और साहसमें प्रत्यभियोगकोभी करै- वादी और प्रतिवादी दोनोंके ऐसे प्रतिभूको स्वीकार करै जो आर्यके निर्णयमें समर्थहो ॥ १० ॥

निन्हवेभावितोदद्याद्धनंराज्ञेचतत्समम् । मिथ्याभियोगीद्विगुणमभियोगाद्धनंवहेत् ॥

पद- निह्नवे ७ भावितः १ दद्यात् क्रि- धनं२ राज्ञे४ च ऽ-तत्समम्२ मिथ्याभियोगी१ द्विगुणं२ अभियोगात्५ धनं२ वहेत् क्रि॥

योजना- भावितः प्रत्यर्थी निह्नवे सति अर्थिने च पुनः तत्समम् धनं राज्ञे दद्यात्- मिथ्याभियोगी अर्थी अभियोगात् द्विगुणं धनं राज्ञे वहेत् (दद्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ- यदि अर्थीके निवेदनाकिये अभियोगका प्रत्यर्थी निह्नव (नमानना) करै और अर्थी साक्षी आदिसे स्वीकार करादेतो प्रत्यर्थी उस अभियोगके धनको तो अर्थीको और उसके समानही झूटके दंडरूप धनको राजाकोदे- यदि अर्थी अंगीकार न करासके तो वही मिथ्याभियोगी हुआ इससे अभियोगसे दूना धन राजाकोदें- प्राङ्न्याय और प्रत्यवस्कंदनमेंभी इसीप्रकार समझना वहांभी अपह्नववादी अर्थीको यदि प्रत्यर्थी अर्थका स्वीकार करादे तो राजाको प्रकृतधनके समान दंडदे और यदि प्रत्यर्थी प्राङ्न्याय और कारणको स्वीकार न करासके तो मिथ्याभियोगी प्रत्यर्थीही राजाको दूना धन और अर्थीको प्रकृत धन दे संप्रतिपत्ति उत्तरमें तो दंडका अभाव है यहभी ऋणादानके विषयमें समझना- पदांतर विषयोंमें तहां२ दंड कहा है और धनसें भिन्न व्यवहारोंमें इसका असंभव है इससे यह वचन सब विषयमें नहीं है- राजा अधमर्णको दंडदे यह वचन यद्यपि ऋणादानके विषयमें है तथापि इसका विशेष वहांही कहैंगे और यही वचन सब व्यवहारके विषयमेंभी लगाने योग्य है कैसेकी जब अभियुक्त प्रत्यर्थी अभियोगका निह्नव करै और अभियोक्ता साक्षी (अर्थी) आदिसे स्वीकार करदेतो अभियुक्त उसके समान धन राजाकोदे यह बात तहां २ उक्त है- यहां चशब्दका निश्चय अर्थ है धनका दंड राजाको दे यह अनुवाद है यदि अभियोगकरनेवाला अभियोगको न कहसके तो मिथ्याभियोगी वह प्रतिपदोक्त धनसे दूना धनदे यह विधि है- यहांभी प्राङ्न्याय और प्रत्यवस्कंदनमें पूर्वके समान समझना ॥

भावार्थ-यदि प्रत्यर्थी अर्थीके अभियोगको न माने और अर्थी साक्षी आदिसे स्वीकार करादे तो अर्थीको और राजाको अभियोगके समान धन प्रत्यर्थीदे और यदि अर्थीकाही अभियोग (दावा) मिथ्याहो तो वही अभियोगसे दूना धन राजाकोदे ॥ ११ ॥

साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्ययेस्त्रियाम् । विवादयेत्सद्यएवकालोन्यत्रेच्छयास्मृतः ॥

पद- साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये ७ स्त्रियां७ विवादयेत् क्रि- सद्यः ऽ- एव ऽ- कालः १ अन्यत्र ऽ- इच्छया३ स्मृतः १ ॥

योजना- साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियां सद्यः विवादयेत् अन्यत्र इच्छया कालः स्मृतः ॥

ता० भा०- विषशस्त्रआदिसे प्राणियोंकी हिंसारूप साहस और स्तेय (चोरी) पारुष्य

---

[1] अथ चेत्प्रतिभूर्नास्ति कार्ययोग्यस्तु वादिनः । स रक्षितो दिनस्यान्ते दद्याद्भृत्याय वेतनम् ।

[1] राज्ञाधमर्णको दाप्यः ।

(कठोरवाणी और कठोरदण्ड) गौ- पातक-लगाना- प्राण और धनका नाश- और कुलीनस्त्रीका चरित्र-और दासीका स्वत्व इतने विवादोंमें उसीसमय विवादको राजा प्रवृत करे अर्थात् प्रत्यर्थीसे उत्तर लेनेमें कालकी प्रतीक्षा न करे देर नकरे और अन्य विवादोंमें उत्तर देनेका समय अर्थी प्रत्यर्थी सभापति और सभासदोंकी इच्छासे कहा है ॥

देशाद्देशांतरंयातिसृक्किणीपरिलेढिच ।
ललाटंस्विद्यतेचास्यमुखंवैवर्ण्यमेतिच१३॥

पद- देशात्५ देशांतरं२ याति क्रि- सृक्किणी२ परिलेढि क्रि- च०- ललाटं२ स्विद्यते क्रि- च०- अस्य६ मुखं२ वैवर्ण्यं२ एति क्रि- च०- ॥

परिशुष्यत्स्खलद्वाक्योविरुद्धंबहुभाषते ।
वाक्चक्षुः पूजयतिनोतथोष्ठौनिर्भुजत्यपि॥

पद- परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यः १ विरुद्धं२ बहु०-भाषते क्रि- वाक्चक्षुः १ पूजयति क्रि- नो०- तथा०- ओष्ठौ२ निर्भुजति क्रि- अपि०- ॥

स्वभावाद्विकृतिंगच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः।
अभियोगेचसाक्ष्येवादुष्टःसपरिकीर्तितः१५

पद- स्वभावात्५विकृतिं२ गच्छेत् क्रि- मनोवाक्कायकर्मभिः ३ अभियोगे७ च०- साक्ष्ये१ वा०- दुष्टः १ सः १ परिकीर्तितः १ ॥

योजना-यः देशात् देशांतरं याति यः सृक्किणी परिलेढि अस्य ललाटं स्विद्यते च पुनः मुखं वैवर्ण्यं एति यः परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यः बहु विरुद्धं भाषते यः वाक्चक्षुः नो पूजयति च पुनः ओष्ठौ निर्भुजति एवं मनोवाक्कायकर्मभिः स्वभावात् विकृतिं यः गच्छति सः अभियोगे च पुनः साक्ष्ये दुष्टः परिकीर्तितः ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य मन वाणी और काया कर्मोंसे स्वभावके अनुसार ही विना भय आदिके विकारको प्राप्तहो वह अभियोग करनेमें और साक्षी देनेमें दुष्ट कहाहै उन विकारोंको ही पृथक् २ दिखातेहैं कि देशसे देशांतरमें जाय कहीं टिके नही, और जो सृक्कणी (होठोंका प्रांत)को अपने जिव्हाके अग्रसे स्पर्श करे यह क्रियाका विकार है और जिसके मस्तकपर स्वेद (पसीना) आजाय और मुख विवर्ण (पीला वा काला) होजाय-यह कायाका विकार है और जो परिशुष्यत्स्खलद्वाक्य होकर अर्थात् गद्गद और अस्तव्यस्त वचनोंसे पूर्वापरके विरुद्ध (वरखिलाफ) बहुत बोले-यह वाणीका विकारहै और जो उत्तर देनेसे पराई वाणीकी, और देखनेसे नेत्रोंकी पूजा न करे अर्थात् यथार्थ न कह सके नदेखसके-यह मनके विकारका लिंगहै और जो अपने ओष्ठोंको टेढा करे यहभी कायाका विकार है-इतने चिन्ह जिसमें हो वह दुष्ट कहाहै-यहभी दोषकी संभावनाके लिये कहाहै कुछ दोषनिश्चयके लियेनही क्योंकि स्वाभाविक और नैमित्तिक विकारोंकी विवेचना कठिनतासे जानी जाती है-यदि कोई निपुण बुद्धिविवेकसे जानभी जाय तोभी पराजयके निमित्त कार्य नही होता-क्योंकि मरनेवालेका चिन्ह देखकर मरनेका कार्य नही कियाजाता इसी प्रकार इसका पराजय होगा इस चिन्हसे ज्ञानके होनेपरभी पराजयके निमित्त कार्य नही होता ॥

भावार्थ-जो देशसे देशांतरको चलाजाय और सृक्कणीको चाटे-मस्तक पर पसीना आजाय मुख विवर्ण हो जाय और जो गद्-गदवाणीसे बहुत विरुद्ध कहै और जो यथार्थ उत्तर न देसके और न देखसके

और जो दांतोंसे ओठोंको चवावे इस प्रकार जो मन वाणी काया और कर्म (क्रिया) से विकारको प्राप्तहोताहै वह अभियोग और साक्षी देनेमें दुष्ट कहाहै ॥१३॥ १४ ॥१५॥

संदिग्धार्थंस्वतंत्रोयः साधयेद्यश्चनिष्पतेत्।
नचाहूतोवदेत्किंचिद्धीनोदंड्यश्चसस्मृतः ॥

पद–संदिग्धार्थं २ स्वतन्त्रः २ यः१साधयेत् क्रि–यः १ चऽ–निष्पतेत् क्रि–नऽ–चऽ–आहूतः १ वदेत् क्रि–किंचित्ऽ–हीनः १ दंड्यः १ चऽ–सः १ स्मृतः १ ॥

योजना–यः स्वतंत्रः सन् संदिग्धार्थं साधयेत् च पुनः निष्पतेत् च पुनः आहूतः सन् किंचित् न वदेत् सः हीनः च पुनः दंड्यः स्मृतः ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य अधमर्णके नही स्वीकार किए संदिग्ध अर्थको स्वतन्त्र होकर अर्थात् साधनोंके विनाही आसेध आदिसे सिद्धकरे–और जो स्वयं स्वीकार-किए वा साधनोंसे सिद्धकिए अर्थसे गिर-जाय अर्थात् नदे और जो अभियोगी राजाके बुलानेसे सभामें कुछ नकहै वह हीन और दंड देने योग्य कहाहै अर्थात् वह हार जायगा और दंड देने योग्यभी होगा–अभि-योग और साक्षीमें वह दुष्ट कहाहै यह प्रकरणथा इससे हीनकाही ग्रहण नहोजाय तिससे दंड्यका ग्रहण किया–और दंड्यभी शिक्षाके योग्य होताहै परंतु अर्थसे हीन नही होता इससे अर्थसे अहीन नहीजाय तिससे हीनका ग्रहण किया ॥

भावार्थ–जो अर्थी स्वतंत्र होकर संदिग्ध अर्थको सिद्ध करे और जो प्रमाणसे सिद्ध किये अर्थसे गिरजाय अर्थात् मांगने पर नदे और जो राजाका बुलाया सभामें कुछ न कहसके वह अर्थ (दावे)से हीन और दंड देने योग्य कहाहै ॥ १६ ॥

साक्षिपूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः।
पूर्वपक्षेऽधरीभूतेभवंत्युत्तरवादिनः ॥१७॥

पद–साक्षिषु ७ उभयतःऽ–सत्सु ७ साक्षिणः १ पूर्ववादिनः ६ पूर्वपक्षे ७ अधरीभूते ७ भवंति क्रि–उत्तरवादिनः ६ ॥

योजना–उभयतः साक्षिषु सत्सु पूर्ववादिनः साक्षिणः पूर्वं प्रष्टव्याः पूर्वपक्षे अधरीभूते सति उत्तरवादिनः साक्षिणः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–जहां दोनों भाषावादी एक वार धर्माधिकारीके समीप आवें उनमें एकतो प्रतिग्रहसे क्षेत्रको लेकर और कुछ काल भोगकर कार्यवश कुटुंब सहित देशां-तरमें चलागया और दूसराभी उसी क्षेत्रको प्रतिग्रहसे लेकर कुछ काल भोगकर देशां-तरमें चलागया फिर दोनोंभी एक समय आकर मेरा यह क्षेत्रहै– मेरा यह क्षेत्रहै ऐसे परस्पर विवादकरते हुये धर्माधिकारीके पास आये हो वहां प्रथम किसकी क्रियाको करे इस अपेक्षासे कहतेहैं कि दोनों वादि-योंके साक्षियोंका संभव होयतो पूर्व वादीके अर्थात् पूर्वकालमें मुझे मिलाथा और पहिले ही मैं भोगाथा ऐसे जो कहै उसके साक्षी पहिले होतेहैं कुछ पूर्व जो निवेदन करे उसके नही–और जब दूसरा ऐसे कहे कि सच इसनें पूर्व प्रतिग्रह लिया और भोगाथा किंतु राजाने यही क्षेत्र इससे मोल लेकर मुझे देदिया था अथवा इसनेही प्रतिग्रहसे लेकर मुझे देदिया था वहां पूर्वपक्ष असाध्य होनेसे जब अधर (न्यून) होजाय तब उत्तर कालमें मुझे मिला और मैंने भोगा ऐसे कहनेवाले उत्तर वादीके साक्षी पूछने–यही अर्थ अत्यंत श्रेष्ठहै–और (अन्य) व्याख्यान ठीक नही है कि मिथ्याउत्तरमें पूर्ववादीके साक्षी होतेहैं– और प्राङ्न्याय और कारण उत्तरोंमें पूर्वपक्षके अधर होने

पर उत्तर वादीके साक्षी होतेहैं-क्योंकि यह अर्थतो फिर अर्थी प्रतिज्ञात अर्थके साधनको उसी समय लिखवावे इसे वचनसे कह आयेथे इससे पुनरुक्तिदोष आवेगा-और यही अर्थ नारदने इन वचनोंसे स्पष्ट कियाहै कि पूर्व वादमें मिथ्याकी और प्रतिवादमें कारणकी क्रिया होती है प्राङ्न्याय और विधिकी सिद्धिमें जयका पत्रही क्रिया होती है यह कहकर कहाहै कि दोनों विवादोंके अर्थमें दोनोंके साक्षी होंयतो जिसका पक्ष पहिलाहो उसकेही साक्षी होते हैं-यह इस लिये पृथक् कहाहै कि यह सब व्यवहारोंसे विलक्षण है ॥

भावार्थ-दोनोंके साक्षी होयतो पूर्ववादीके साक्षी पहिले होते हैं-यदि पूर्व पक्ष किसी प्रकारन्यूनहो जायतो उत्तर वादीके होतेहैं१७

सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्रहीनंतुदापयेत् ।
दंडंचस्वपणंचैवधनिनेधनमेवच ॥ १८ ॥

पद-सपणः १ चेत्ऽ-विवादः १ स्यात् क्रि-तत्रऽ-हीनं २ तुऽ-दापयेत् क्रि- दण्डं २ चऽ-स्वपणं २ चऽ-एवऽ-धनिने ४ धनं २ एवऽ-चऽ- ॥

योजना-चेत् (यदि)विवादःसपणःस्यात् तत्र हीनं दंडं चपुनःस्वपणं चपुनः धनिने धनं राजा दापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि विवाद (व्यवहार) पण (सरत) सहितहो और उस व्यवहारमें जो हीन (पराजित) होजाय तो उसको राजा पूर्वोक्त दंड और स्वकृत पण राजाको और धनी (अर्थी)को विवादका धन दिवावे-जहां एकतो क्रोधमें आकर यह कहे कि यदिमैं इस विवादमें पराजित होजाऊंगा तो सौ पण दूंगा-और दूसरा कुछ प्रतिज्ञा न करै-वहांभी व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है उस व्यवहारमें पणकी प्रतिज्ञाका वादी यदि हीन होजाय तो उसको पणसहित दंड राजादे-दूसरा पराजित हो जायतो उसे दंडदे पण उससे नले-क्योंकि वचनमें स्वपणं (अपना पण)यह विशेष कहाहै-जहां एक सौ रुपयेका और दूसरा पचासका पण करै वहांभी पराजयमें अपने किये पणकेही दंडभागी होते हैं-यदि विवाद पण सहित हो यह कहनेसे यहभी सूचित भया कि पण रहितभी विवाद होताहै ॥

भावार्थ-यदि विवाद पणसहित होयतो पणमें हीनको राजाको अपने किये पण और दंड-और अर्थीको धन-यह सब दंड दे१८

छलंनिरस्यभूतेनव्यवहारान्नयेन्नृपः ।
भूतमप्यनुपन्यस्तंहीयतेव्यवहारतः॥१९॥

पद-छलं २ निरस्यऽ-भूतेन ३ व्यवहारान् २ नयेत् क्रि-नृपः १ भूतं २ अपिऽ अनुपन्यस्तं १ हीयते क्रि-व्यवहारतःऽ- ॥

योजना-नृपः छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान् नयेत्-भूतं अपि अनुपन्यस्तं व्यवहारतः हीयते ॥

तात्पर्यार्थ-प्रमादसे कथनरूप छलको छोडकर भूत (वस्तुका तत्त्व)के अनुसार राजा व्यवहारोंको समाप्त करै-तिससे भूत (वस्तु)भी उपन्यास (लेख) भाषाके समय न किया होय तो व्यवहारसे हानिको प्राप्त होताहै तिससे भूतका अनुसरण राजा करै और जैसे अर्थी प्रत्यर्थी सत्यही कहै वही यत्न सभासदों सहित सभाका पति साम आदि उपायोंसे करै क्योंकि ऐसे करनेसे साक्षी आदिके अभावमेंभी निर्णय हो सकता

१ सर्वोपरिक्रियेत्तरः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ।

२ मिथ्या क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनि । प्राङ्न्यायविधिसिद्धौ तु जयपत्रं क्रिया भवेत्॥ द्वयोर्विवदतोरर्थे द्वयोः सन्तु च साक्षिणः पूर्वपक्षो भवेद्यस्य भवेयुस्तस्य साक्षिणः ॥

है–यदि किसी प्रकारभी वस्तु तत्वके अनुसार व्यवहार न हो सके तो साक्षी आदिसे निर्णय करे यह अनुकल्पहै–सोई कहाहै कि भूत और छलके अनुसार विगति(कुगति) कही है–तत्व अर्थसे युक्तको भूत और प्रमादसे कहनेको छल कहते हैं–उनमें भूतका अनुसारी व्यवहार मुख्यहै और छलका अनुसारी अनुकल्पहै– साक्षी और लेख आदिके अनुसार व्यवहारके निर्णयमें कदाचित् वस्तुका अनुसरण हो जाताहै और कदाचित् नहीभी होता– क्योंकि साक्षी आदिके व्यभिचार (अन्यथा कहना)कीभी संभावना हो सकतीहै ॥

भावार्थ–छलको छोडकर राजा वस्तुके तत्वको जान कर व्यवहारोंको समाप्त करे जिस वस्तुके तत्वको लेख भाषाके समय न हुआ हो वह वस्तु व्यवहारके मार्गसे हानिको प्राप्त हो जाती है ॥ १९ ॥

निह्नुते लिखितं नैकमेकदेशे विभावितः ।
दाप्यः सर्वं नृपेणार्थं न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः ॥

पद–निन्हुते क्रि–लिखितं२ नैकं २ एकदेशे ७ विभावितः १ दाप्यः १ सर्वं२नृपेण ३ अर्थं २ न०– ग्राह्यः १ तु०-अनिवेदितः १ ॥

योजना–अर्थिना लिखितं नैकं यः प्रत्यर्थी निन्हुते–एकदेशे विभावितः सः नृपेण सर्वं अर्थं दाप्यः–अनिवेदितः अर्थः राज्ञा न ग्राह्यः ॥

तात्पर्यार्थ–सुवर्ण चांदी वस्त्र आदि अनेक वस्तु जो भाषाके समय अर्थीने लिखवादीहों यदि उन सबका प्रत्यर्थी निह्नव (मुकरना) करे और उनमें सुवर्ण आदि एकदेशका अर्थी साक्षी आदिसे अंगीकार करादे तो पहिले लिखे संपूर्ण अर्थको राजा प्रत्यर्थीसे अर्थीको दिवादे–और जो वस्तु भाषाके समय अर्थीने न लिखाई हो और उसको अर्थी यह कहे कि मैं भूल गयाथा इस अर्थीके निवेदनको राजा न माने और प्रत्यर्थीसे अर्थको दिवावे–और यह केवल वचनसेही नहीं क्योंकि एकदेशमें प्रत्यर्थीको जब मिथ्या वादित्वका निश्चय हो गया तो देशांतरमेंभी मिथ्या वादित्वका संभव होगा और अर्थीको जब एकदेशवस्तुमें सत्यत्वका निश्चय होगया तब देशांतर वस्तुमेंभी सत्यवादित्वका संभव होगा–इस प्रकार तर्क है दूसरा नाम जिसका ऐसी संभावनाहै अनुकूल जिसके ऐसे इसी योगीश्वरके वचनसे राजा संपूर्ण धनको दिवावे यह निर्णय है–ऐसे तर्कके वाक्यानुसार निर्णय करनेपर वस्तु अन्यथाभी हो जायतोभी व्यवहार देखने वालोंको कुछ दोष नहीं सोई गौतमने कहाहै कि न्यायके स्वीकारमें तर्क उपायहै उससे स्वीकार करके वस्तुको स्थानके अनुसार पहुंचादे–यह कहकर कहाहै कि राजा और आचार्य निंदाके अयोग्यहै–और यहां इतनीहि बात नहीं जाननी कि एकदेशका अंगीकार करनेवाले प्रत्यर्थीका वचन माननेयोग्य नहीं क्योंकि यह वचन है (एकदेश विभावितो नृपेण सर्वं दाप्यः) कि एक देशका जिसने स्वीकार किया हो ऐसे प्रत्यर्थीसे राजा सब धन दिवावे–जो कात्यायनने यह कहाहै कि अनेक अर्थके अभियोगमेंभी जितनेको धनी साक्षियोंसे सिद्ध करा दे उतनेही धनको अर्थी प्राप्त होताहै–यह वचन पुत्र आदिके ऋणके विषयमें है–क्योंकि वहां बहुत अर्थोका है अभियोग जिसपर ऐसा पुत्रआदि मैं नहीं

१ भूतच्छलानुसारित्वाद्विगतिः समुदाहृतः । भूतं तत्वार्थसंयुक्तं प्रमादाभिहितं छलम् ।

१ न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायस्तेनाभ्युपेत्य यथास्थानं गमयेत् ।

२ तस्माद्राजाचार्यावनिंद्यौ ।

३ अनेकार्थाभियोगेऽपि यावत्संसाधयेद्धनी । साक्षिभिस्तावदेवासौ लभते साधितं धनम् ॥

जानता ऐसे कहता हुआ निन्हववादी नही होता इससे एक देशमें स्वीकार कराया भी वह कभीभी असत्यवादी नही होता इससे अनेक लेखोंको जो न माने यह वचन वहां प्रवृत्त नही होता क्योंकि न निन्हव वाद है न अपेक्षित तर्क है-और अनेक अर्थके अभियोगमें भी यह पूर्वोक्त कात्यायनका वचन सामान्य विषयमें है इससे विशेष शास्त्रके विषय निन्हवके उत्तरको छोड कर अज्ञानसे जो उत्तर उसमें जो प्रवृत्त होता है कदाचित् कोई शंका करे कि जब ऋण आदि व्यवहार मायःस्थिर हो जांय तो ऊन वा अधिक कहने पर साध्यकी सिद्धि नही होती यह कहते हुये कात्यायनने अनेक अर्थके अभियोगमें साक्षियोंमें एक देशका स्वीकार वा अधिकका स्वीकार करादिया जाय तो संपूर्णकी ही सिद्धि नही होती-यह कहाहै-तैसे होनेपर एक देशके स्वीकारमें विना स्वीकार किये एक देशकी सिद्धि कहां-इस शंकाका समाधान कहते हैं कि लिखे हुये सब धनकी सिद्धिके लिये दिये हुये साक्षियोंके एक देशके वा अधिकके कहनेपर संपूर्ण ही साध्य सिद्ध नही होता यह उस वचनका अर्थ है-वहांभी निश्चयसे सिद्ध नही होता इस वचनसे पूर्वके समान संशयही है इससे अन्य प्रमाणकाभी अवसर है क्योंकि छलको छोडकर व्यवहार करे यह नियम है-और साहसमें तो संपूर्ण साध्यकी सिद्धिके लिये दिये साक्षी एक देशकोभी यदि सिद्ध करादें तो संपूर्ण साध्यकी सिद्धि होती ही है-क्योंकि उतनेसे ही साहस आदि-सिद्ध है और कात्यायनका वचनभी है-कि यदि साध्य अर्थके एक भागकोभी साक्षी कह दें तो उस संपूर्ण साध्यकी सिद्धि होती है जो स्त्रीका संग साहस चोरीके विषयमेंहो ॥

भावार्थ-अनेक लिखाई हुई वस्तुओंको प्रत्यर्थी न माने और साक्षी आदि एक देशका स्वीकार करादें तो राजा सब धनको उससे दिवावे-और जो अर्थ भाषा (अर्जी)के समय निवेदन न किया हो उसको राजा ग्रहण न करे ॥ २० ॥

स्मृत्योर्विरोधेन्यायस्तुबलवान्व्यवहारतः।
अर्थशास्त्रात्तुबलवद्धर्मशास्त्रमितिस्थितिः॥

पद-स्मृत्योः ६ विरोधे ७ न्यायः १ तु-बलवान् १ व्यवहारतः-अर्थशास्त्रात् ५ तु-बलवत् १ धर्मशास्त्रं१ इति स्थितिः १॥

योजना-स्मृत्योः विरोधे सति व्यवहारतः न्यायः बलवान् भवति-तु पुनः अर्थशास्त्रात् धर्मशास्त्रं बलवद्भवति इति स्थितिः (मर्यादा) अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ- जहां दो स्मृतियोंका परस्पर विरोध हो वहां विरोध दूर करनेके लिये विषयकी व्यवस्थामें उत्सर्ग और अपवाद आदि न्याय बलवान् होनेसे समर्थ है वह न्याय कहांसे जानना इस लिये कहते हैं कि व्यवहारसे अर्थात् वृद्धोंके अन्वय व्यतिरेक व्यवहारके द्वारा वह व्यवहार जानना इससे प्रकरणके उदाहरणमेंभी विषयकी व्यवस्था युक्त है-इसी प्रकार अन्यत्रभी विषय व्यवस्था और विकल्प आदि यथा संभव जानने-धर्म शास्त्रके अनुसार व्यवहारोंको करे इससेही अर्थशास्त्रका निरास हो चुका था तोभी धर्म शास्त्रके अंतर्गतही नीति शास्त्र यहां कहनेको इष्ट है-इससे अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंका विरोध होयतो अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र बलवान् होताहै यह मर्यादा है-यद्यपि दोनोंका

१ ऋणादिषु विवादेषु स्थिरप्रायेषु निश्चितम्। ऊने वाऽप्यधिके चार्थे प्रोक्ते साध्यं न सिद्ध्यति।

२ साध्यार्थांशेऽपि गदिते साक्षिभिः सकलं भवेत्। स्त्रीसंगे साहसे चौर्ये यत्साध्यं परिकीर्तितम्।

जानता ऐसे कहता हुआ निन्हववादी नही होता इससे एक देशमें स्वीकार करायाभी वह कभीभी असत्यवादी नही होता इससे अनेक लेखोंको जो न माने यह वचन वहां प्रवृत्त नही होता क्योंकि न निन्हव वाद है न अपेक्षित तर्क है-और अनेक अर्थ-के अभियोगमें भी यह पूर्वोक्त कात्यायन-का वचन सामान्य विषयमें है इससे विशेष शास्त्रके विषय निन्हवके उत्तरको छोड कर अज्ञानसे जो उत्तर उसमें जो प्रवृत्त होता है कदाचित् कोई शंका करे कि जब ऋण आदि व्यवहार प्रायःस्थिर हो जांय तो ऊन वा अधिक कहने पर साध्यकी सिद्धि नही होती यह कहते हुये कात्यायनने अनेक अर्थके अभियोगमें साक्षियोंमें एक देशका स्वीकार वा अधिकका स्वीकार करादिया जाय तो संपूर्ण-की ही सिद्धि नही होती-यह कहादे-तसे होनेपर एक देशके स्वीकारमें विना स्वीकार किये एक देशकी सिद्धि कहां-इस शंकाका समाधान कहते हैं कि लिखे हुये सब धनकी सिद्धिके लिये दिये हुये साक्षियोंके एक देशके वा अधिकके कहनेपर संपूर्ण ही साध्य सिद्ध नही होता यह उस वचन का अर्थ है-वहांभी निश्चयसे सिद्ध नही होता इस वचनसे पूर्वके समान संशयही है इससे अन्य प्रमाणकाभी अवसर है क्योंकि छलको छोडकर व्यवहार करे यह नियम है-और साहसमें तो संपूर्ण साध्यकी सिद्धिके लिये दिये साक्षी एक देशकोभी यदि सिद्ध करदें तो संपूर्ण साध्यकी सिद्धि होती ही है-क्योंकि इतनेसे ही साहस आदि-सिद्ध है और कात्यायनका वचनभी है-कि यदि साध्य अर्थके एक भागकोभी साक्षी कह दें तो उस संपूर्ण साध्यकी सिद्धि होती है जो स्त्रीका संग साहस चोरीके विषयमेंहो ॥

भावार्थ-अनेक लिखाई हुई वस्तुओंको प्रत्यर्थी न माने और साक्षी आदि एक देशका स्वीकार करादें तो राजा सब धनको उससे दिवावे-और जो अर्थ भाषा (अर्जी)के समय निवेदन न किया हो उसको राजा ग्रहं-ण न करे ॥ २० ॥

स्मृत्योर्विरोधेन्यायस्तुबलवान्व्यवहारतः।
अर्थशास्त्रात्तुबलवद्धर्मशास्त्रमितिस्थितिः॥

पद-स्मृत्योः ६ विरोधे ७ न्यायः १ तु-बलवान् १ व्यवहारतः-अर्थशास्त्रात् ५ तु-बलवत् १ धर्मशास्त्रं१ इति स्थितिः १॥

योजना-स्मृत्योः विरोधे सति व्यवहार-तः न्यायः बलवान् भवति-तु पुनः अर्थ-शास्त्रात् धर्मशास्त्रं बलवद्भवति इति स्थितिः (मर्यादा) अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ- जहां दो स्मृतियोंका परस्पर विरोध हो वहां विरोध दूर करनेके लिये विषयकी व्यवस्थामें उत्सर्ग और अपवाद आदि न्याय बलवान् होनेसे समर्थ है वह न्याय कहांसे जानना इस लिये कहते हैं कि व्यवहारसे अर्थात् वृद्धोंके अन्वय व्यति-रेक व्यवहारके द्वारा वह व्यवहार जानना इससे प्रकरणके उदाहरणमेंभी विषयकी व्यवस्था युक्त है-इसी प्रकार अन्यत्रभी विषय व्यवस्था और विकल्प आदि यथा संभव जानने-धर्म शास्त्रके अनुसार व्यव-हारोंको करे इससेही अर्थशास्त्रका निरास हो चुका था तोभी धर्म शास्त्रके अंतर्गतही नीति शास्त्र यहां कहनेको इष्ट है-इससे अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंका विरोध होयतो अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र बल-वान् होताहै यह मर्यादा है-यद्यपि दोनोंका

१ ऋणादिषु विवादेषु स्थिरप्रायेषु निश्चितम्। ऊने वाप्यधिके चार्थे प्रोक्ते साध्यं न सिद्ध्यति।

२ साध्यार्थांशेऽपि गदिते साक्षिभिः सकलं भवेत्। स्त्रीसंगे साहसे चौर्ये यत्साध्यं परिकीर्तितम्।

(निधिका मिलना) और ब्राह्मणको-प्रतिग्रहसे मिला क्षत्रियका जीता हुआ और वैश्य और शूद्रका निर्विष्ट (खेती गोरक्षा और सेवा) से इन आठोंसे स्वामी होताहै-कदाचित् कहो कि यही वचन वीस वर्षके भोगको स्वत्वका हेतु प्रतिपादन करताहै सो ठीक नही-क्योंकि स्वत्व और स्वत्वके हेतु लोकमें प्रसिद्धहैं-केवल शास्त्रसे नही जाने जाते-यह विभागके प्रकरणमें भली प्रकार वर्णन करेंगे-गौतमका वचनतो नियमके लिये है-और अनागम (अस्वत्व) भोगको स्वत्वका हेतु मानोगे तो यह वचनभी विरुद्ध हो जायगा कि बहुतसे सैकडों वर्षतक जो अनागम (विना मिला) को भोगताहै उसको पृथिवीका राजा चोरका दंडदे- और यह वातभी कहनेको युक्त नहीं है कि अनागमको जो भोगे यह वचन परोक्ष विषयमें है और देखकर जो निषेध न करे यह वचन प्रत्यक्ष विषयमें है-क्योंकि आगमके विना जो भोगे यह अविशेषसे कथनहै प्रत्यक्ष वा परोक्षका नामभी नहींहै-और यह कात्यायनका भी वचन है कि पशु स्त्री पुरुष आदिके हरनेवाला वा उसका पुत्र उपभोगमें बल नकरैं यह धर्मकी व्यवस्थाहै-प्रत्यक्षके भोगमें हानिके कारणका अभावहै इससे हानिका असंभव है-और यहभी मानने योग्यनही कि आधि प्रतिग्रह क्रयोंमें पहिली क्रियाकी प्रबलताके अपवादरूप इस वचनसे भूमिके विषयमें वीसवर्षके और धनके विषयमें दश वर्षके उपभोगवाली उत्तर क्रियाकी प्रबलता कहीहै-क्योंकि आधि आदिकोंमें यथार्थसे उत्तर क्रियाही नहीं होसकती क्योंकि अपनी वस्तुको ही आधि देना विक्रय होताहै-और आधिकिये और दिये और विक्रीत (वेचा) का स्वत्वनही जाता-यदि स्वत्व रहितको देतो दंड इसवचनसे कहाहै कि देनेके अयोग्यको जो लेताहै-और जो देताहै वे दोनों चोरके समान शिक्षाके योग्य होनेसे उत्तम साहस दंडके योग्यहैं-तैसेहीं आधि आदि तीनका अपवादभी यह वचन होगा तो अगले श्लोकमें आधि सीमा आदि अपवाद न हो सकेंगे-तिससे भूमि आदिकी हानि सिद्धनही होसकती-और व्यवहारकी भी हानि नहींहै-क्योंकि नारदने इस वचनसे उपेक्षामें लिंगके अभावसे व्यवहारकी हानि कहीहै वस्तुके अभावसे नही कि उपेक्षा करनेवाले और तूष्णीं बैठे हुये इस मनुष्यका पूर्वोक्त काल वीत जाय तो व्यवहार सिद्ध नही होता-तैसेहीं मनुनेभी व्यवहारसे भंग दिखायाहै वस्तुसे नही कि यदि जड और पौगंडसे भिन्न जिसके विषयको भोगैं तो वह व्यवहार भग्न होताहै और भोगनेवाला उस धनके योग्य होताहै-और व्यवहारका भंग ऐसे है कि भोक्ता कहताहै कि जड (मूर्ख वा अज्ञानि) और पौगंडसे भिन्न यह बालक है इसके समीप मैंने निरंतर वीस वर्षतक भोगाहै उसके बहुत साक्षीहैं-यदी इसके स्वत्वको मैं अन्यायसे भोगा तो यह इतने कालतक उदासीन क्योंरहा-इसमें यह बालक उत्तर नही दे-सकता-इसी प्रकार उत्तर न देनेवालेभी बालकका वास्तवमें व्यवहार होता ही है

१ अनागमं च यो भुक्ते बहून्यब्दशतान्यपि। चौरदंडेन तं पापं दंडयेत्पृथिवीपतिः।

२ नोपभोगे बलं कार्यमाहर्त्रा तत्सुतेन वा। पशुस्त्रीपुरुषादीनामिति धर्मो व्यवस्थितः।

१ अदेयं यश्च गृह्णाति यश्चादेयं प्रयच्छति। उभौ तौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ चोत्तमसाहसम्।

२ उपेक्षां कुर्वतस्तस्य तूष्णींभूतस्य तिष्ठतः। कालेविपन्ने पूर्वोक्ते व्यवहारो न सिद्ध्यति।

३ अजडश्चेदपौगंडो विषये चास्य भुज्यते। भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति।

जायतो उसके वादीका विजय होता है और पूर्व कार्य सिद्धभी हो जाय उसके वादीका पराजय होता है वह ऐसे है कि कोई तो ग्रहण (लेना)से धारण (कर्ज)को सिद्ध करताहै और कोई प्रतिदान (लौटाना)से अधारणको सिद्ध करताहै-उनमें ग्रहण और प्रतिदान प्रमाणोंसे सिद्धभी हो जाय तो प्रतिदान बलवान् है इससे प्रतिदान वादीका विजय होता है-तैसेही पहिले दोसौ रुपये ग्रहण करके कालांतरमें तीन सौका स्वीकार जिसने कियाहो वहां दोनोंमें प्रमाणभी हों तोभी तीन सौका ग्रहण बलवान् है क्योंकि पूर्वका बाध पश्चात् होनेवालेसे हो गया इससे पूर्वकी उत्पत्तिही नही होती सोई केहाहै कि पूर्वके बाधे बिना उत्तरकी उत्पत्ति सिद्ध नही होती-और आधि (गहने)प्रतिग्रह-क्रीत-इन तीनोंमें पहिला कार्य बलवान् होता है वह ऐसेहै कि एकही क्षेत्रको एक मनुष्यके यहां आधिकरके और उससे कुछ रुपया लेकर फिर अन्यके यहां आधिकरके कुछ रुपया लेले तो पूर्वकाही वह क्षेत्र होता है उत्तरका नही-इसी प्रकार प्रतिग्रह और वेचनेमें समझना-कदाचित् कोई शंकाकरै कि आधिरक्खे हुयेमें अपना स्वत्व ही नही रहा इससे पुनः आधीही नही हो सकती इसी प्रकार दिये हुयेका दान और क्रीत (खरीदा)का क्रय नही तिससे यह वचन अनर्थकहै-इसका समाधान यहहै कि स्वत्व नहीभी है तोभी कोई मोह वा लोभसे फिर आधि आदिको करै तो वहां पहिला बलवान् होताहै इस न्यायमूलही यह वचनहै इससे तर्कना करने योग्य नही ॥

भावार्थ-संपूर्ण ऋण आदि अर्थोंके विवादोंमें पिछला कार्य बलवान् होताहै-और आधि प्रतिग्रह-क्रीतमें-पूर्व कार्य बलवान् होताहै ॥ २३ ॥

पश्यतोब्रुवतोभूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।
परेणभुज्यमानायाधनस्यदशवार्षिकी २४॥

पद-पश्यतः ६ अब्रुवतः६भूमेः६हानिः१ विंशतिवार्षिकी १ परेण ३ भुज्यमानायाः ६ धनस्य ६ दशवार्षिकी १ ॥

योजना-परेण भुज्यमानायाः भूमेः तां पश्यतः अब्रुवतः पुंसः विंशतिवार्षिकी हानिः भवति-धनस्य दशवार्षिकी हानिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि पर (अन्य)मनुष्य विना संबंध (दावे) भूमि और धनको भोगताहो और स्वामी देखताहो और यह भूमि मेरी है तुझे भोगनी न चाहिये ऐसा निवारण न करताहोय तो उस भूमिकी वीस वर्षमें हानि हो जाती है अर्थात् वह भोगनेवालेकी हो जाती है यदि उसने निरंतर वीस वर्ष भोगी हो और हस्ती अश्व आदि धनकी दश वर्षमें हानि हो जाती है-कदाचित् कोई शंकाकरै कि यह बात नही हो सकती है-क्योंकि स्वामीके मने न करनेसे स्वत्व नहीं जा सकता-दान और विक्रयके समान अनिषेधकी स्वत्व निवृत्तिके हेतुओंमें प्रसिद्धि नही-और न वीस वर्षके भोगसे स्वत्व उत्पन्न होताहै क्योंकि उपभोग स्वत्वमें प्रमाण नही हो सकता और प्रमाण प्रमेयको पैदा नही कर सकता-और रिक्थ (भाग)क्रय आदि जो स्वत्वके कारण (साधक) और हेतु हैं उनमें उपभोग नही पढा-सोई दिखाते हैं कि ये आठही स्वत्वके हेतु गौतमने पढे हैं भोग नहीं पढा कि भाग- क्रय- संविभाग (प्रतिबंधवाला दाय) प्रतिग्रह-अधिगम

१ पूर्वबाधेन नोत्तरस्योत्पत्तिरिति भावः ।

१ स्वामीरिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः ।

(निधिका मिलना) और ब्राह्मणको-प्रतिग्रहसे मिला क्षत्रियका जीता हुआ और वैश्य और शूद्रका निर्विष्ट (खेती गोरक्षा और सेवा) ये इन आठोंसे स्वामी होताहै-कदाचित् कहो कि यही वचन बीस वर्षके भोगको स्वत्वका हेतु प्रतिपादन करताहै सो ठीक नही-क्योंकि स्वत्व और स्वत्वके हेतु लोकमें प्रसिद्धहैं-केवल शास्त्रसे नही जाने जाते-यह विभागके प्रकरणमें भली प्रकार वर्णन करेंगे-गौतमका वचनतो नियमके लिये है-और अनागम (अस्वत्व) भोगको स्वत्वका हेतु मानेगे तो यह वचनभी विरुद्ध हो जायगा कि बहुतसे सैंकडों वर्षतक जो अनागम (विना मिला)को भोगताहै उसको पृथिवीका राजा चोरका दण्डदे- और यह बातभी कहनेको युक्त नही है कि अनागमको जो भोगे यह वचन परोक्ष विषयमें है और देखकर जो निषेध न करे यह वचन प्रत्यक्ष विषयमें है-क्योंकि आगमके विना जो भोगे यह अविशेषसे कथनहै प्रत्यक्ष वा परोक्षका नामभी नहीहै-और यह कात्यायनका भी वचन है कि पशु स्त्री पुरुष आदिके हरनेवाला वा उसका पुत्र उपभोगमें बल नकरै यह धर्मकी व्यवस्थाहै-प्रत्यक्षके भोगमें हानिके कारणका अभावहै इससे हानिका असंभव है-और यहभी मानने योग्यनही कि आधि प्रतिग्रह क्रयोंमें पहिली क्रियाकी प्रबलताके अपवादरूप इस वचनसे भूमिके विषयमें बीसवर्षके और धनके विषयमें दस वर्षके उपभोगवाली उत्तर क्रियाकी प्रबलता कहीहै-क्योंकि आधि आदिकोंमें यथार्थसे उत्तर क्रियाही नही होसकती क्योंकि अपनी वस्तुको ही आधि देना विक्रय होताहै-और आधिकिये और दिये और विक्रीत (वेचा) का स्वत्वनही जाता-यदि स्वत्व रहितको देतो दंड इसवचनसे कहाहै कि देनेके अयोग्यको जो लेताहै-और जो देताहै वे दोनों चोरके समान शिक्षाके योग्य होनेसे उत्तम साहस दंडके योग्यहैं-तैसेही आधि आदि तीनका अपवादभी यह वचन होगा तो अगले श्लोकमें आधि सीमा आदि अपवाद न हो सकेंगे-तिससे भूमि आदिकी हानि सिद्धनही होसकती-और व्यवहारकी भी हानि नहीहै-क्योंकि नारदने इस वचनसे उपेक्षामें लिंगके अभावसे व्यवहारकी हानि कहीहै वस्तुके अभावसे नही कि उपेक्षा करनेवाले और तूष्णीं बैठे हुये इस मनुष्यका पूर्वोक्त काल बीत जाय तो व्यवहार सिद्ध नही होता-तैसेही मनुनेभी व्यवहारसे भंग दिखायाहै वस्तुसे नही कि यदि जड और पौगंडसे भिन्न जिसके विषयको भोगै तो वह व्यवहार भग्न होताहै और भोगनेवाला उस धनके योग्य होताहै-और व्यवहारका भंग ऐसे है कि भोक्ता कहताहै कि जड (मूर्ख वा अज्ञानि) और पौगंडसे भिन्न यह बालक है इसके समीप मैंने निरंतर बीस वर्षतक भोगाहै उसके बहुत साक्षीहैं-यदी इसके स्वत्वको मैं अन्यायसे भोगा तो यह इतने कालतक उदासीन क्योंरहा-इसमें यह बालक उत्तर नही देसकता-इसी प्रकार उत्तर न देनेवालेंभी बालकका वास्तवमें व्यवहार होता ही है

१ अनागमं च यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि। चौरदंडेन तं पापं दण्डयेत्पृथिवीपतिः ।

२ नोपभोगे बलं कार्यमाहर्त्रा तत्सुतेन वा । पशुस्त्रीपुरुषादीनामिति धर्मो व्यवस्थित. ।

१ अदेयं यश्च गृह्णाति यश्चादेयं प्रयच्छति। उभौ तौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ चोत्तमसाहसम् ।

२ उपेक्षां कुर्वतस्तस्य तूष्णींभूतस्य तिष्ठतः । कालेविपन्ने पूर्वोक्ते व्यवहारो न सिद्ध्यति ।

३ अजडश्चेदपौगंडो विषये चास्य भुज्यते। भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति ।

सौ वर्षपर्यंत है क्योंकि इस श्रुतिमें पुरुषकी अवस्था सौ वर्षकी कही है–इससे सौ वर्षसे अधिकका निरंतर और निषेधसे रहित–प्रत्यर्थीका प्रत्यक्ष–जो भोग–वह चाहे आगमके अभावकाभी निश्चयहो अव्यभिचारसे (आगमके विना भोग नही होता) आगमका आक्षेप (अनुमान) करके स्वत्वको जनाता है–और स्मरणके अयोग्य कालमेंभी परंपरासे आगमके अभावकाही स्मरण होय तो भोग प्रामाणिक नही हो सकता–इससे यह कह आये हैं कि आगमके विना जो बहुतसे सैंकडों वर्षतकभी भोगे भूमिका राजा उसे चौरका दंडदे–कदाचित् कोई शंका करे कि अनागमं तु यो भुंक्ते यहां एकवचनके निर्देश–और बहून्यब्दशतान्यपि–इस अपिशब्दके प्रयोगसे प्रथमपुरुष आगमके विना चिरकालतक भोगे तोभी दंड होगा–सो ठीक नही क्योंकि दूसरे वा तीसरे पुरुष (पीढी)में आगमके विना भोग प्रमाण हो सकताहै और यह इष्ट नही है क्योंकि आदिमें कारण दानहै और मध्यमें आगम सहित भोग यह नारदकी स्मृतिहै–तिससे सर्वत्र आगमके विना भोगमें (अनागमं तु यो भुंक्ते) यह पूर्वोक्त चौरका दंड जानना–और जो यह वचनहै कि अन्यायसे पिता और पहिले तीन पुरुषोंने जो क्रमसे तीन पुरुषसे चला आया वह अपहरण (छीनना) करनेको शक्य नही है–उस वचनमेंभी पिता सहित पहिले तीन पुरुषोंने भोगा हो–यही अन्वय करना और उस वचनमेंभी (क्रमात्त्रिपुरुषागतं) क्रमसे तीन पुरुषोंसे चली आई हो–यह स्मरणके अयोग्य कालका उपलक्षण (बोधक) है–तीन पुरुषकाही बोधक मानोगे तो

१ शतायुर्वै पुरुषः ।

२ अन्यायेनापि यद्भुक्तं पित्रा पूर्वतरैस्त्रिभिः । न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागतम् ।

एक वर्षके मध्यमेंभी तीन पुरुष बीतसकते हैं दूसरेही वर्षमें आगमके विनाभी भोग प्रमाण होजायगा–वह होजायगा तो इस पूर्वोक्त स्मृतिका विरोध होजायगा कि स्मरण योग्य कालमें भूमिकी क्रिया आगम सहित भोगहै–अन्यायेनापि यद्भुक्तं–इस वचनका यह अर्थ करना कि अन्यायसे भोगेकोभी नही छीनसकते अन्यायके अनिश्चयमें तो कैसे छीन सकते हैं क्योंकि वचनमें अपि शब्द सुना जाताहै–और जो हारीतने कहाहै कि जो आगमके विना पूर्वले तीनपुरुषोंने अत्यन्त (निरंतर) भोगाहो तीन पुरुषसे चले आये उसको छीन नही सकते–उसकाभी यह अर्थ करनाकी अत्यंत आगमके विना अर्थात् उपलभ्यमान (दीखता) आगमके विना जो भोगा हो कुछ आगमके स्वरूपके विना यह अर्थ नही क्योंकि आगमका स्वरूप नहोयतो सैंकडों भोगोंसेभी स्वत्वनही होताहै–क्रमात्त्रिपुरुषागतं–इसका वही अर्थहै जो कह आयेहैं कदाचित् कोई शंकाकरे कि स्मरणयोग्य कालमें आगमका सापेक्ष भोग प्रमाण नही होसकता सोई दिखातेहैं कि यदि आगमका ज्ञान किसी अन्य प्रमाणसे हुआ होय तो उसी प्रमाणसे स्वत्वका ज्ञान होजायगातो भोग स्वत्व वा आगममें प्रमाण नही होसकता–यदि अन्य प्रमाणसे आगम न जाना हो तो आगमनसे युक्त भोग कैसे प्रमाण हो सकताहै–इस शंकाका समाधान कहतेहैं कि अन्य प्रमाणसे जाने हुये आगमसे युक्त निरंतर भोग कालांतरमें स्वत्वको जना देताहै और प्रमाणसे जानाभी आगम भोगरहित होय तो कालांतरमें स्वत्वके जाननेको समर्थ नहीहै क्योंकि मध्यमें भी

१ यद्विनागममत्यन्तं भुक्तं पूर्वैस्त्रिभिर्भवेत् । नतच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागतम् ।

दान विक्रय आदिसे स्वत्व आसकताहै इससे सब निर्दोषहै आगम सापेक्ष भोगको प्रमाण कहा अब यह कहतेहैं कि भोगसे निरपेक्षही आगम प्रमाणहै जिस आगममें अल्पभी भोग नही उस आगममें बल नहीहै अर्थात् वह पूर्ण नहीहै–यहां यह अभिसंधि (निर्णय) है कि अपने स्वत्वकी निवृत्ति और पराये स्वत्वकी उत्पत्तिको दान कहते हैं– और परका स्वत्व तभी पैदा हो सकताहै यदि पर स्वीकार करे अन्यथा नही– और स्वीकार तीन प्रकारकाहै मानसिक–वाचिक–कायिक–उनमें यह मेराहै यह मनसे संकल्परूप मानस है यह मेराहै इत्यादि वचन जिसमें कहा जाय वह विकल्प सहित प्रतीति रूप वाचिक है और कायिक उपादान (ग्रहण) स्पर्श आदि रूपसे अनेक प्रकारकाहै उसमें यह स्मृति नियमके लिये है कि कृष्णमृगचर्मको और गौको पुच्छ पकडकर और हाथीको सूंड–और अश्वको केसर–और दासीको शिर पकडकर दान करे–आश्वलायनमेंभी कहाहै कि प्राणीका अनुमंत्रण (कथन) और अप्राणी और कन्याके स्वीकारमें स्पर्श करे–उसमेंभी सुवर्ण और वस्त्र आदिमें जल दानके अनंतरही उपादान (लेना)का संभव होसकताहै इससे तीन प्रकारकाभी स्वीकार हो सकताहै और क्षेत्र आदिमें तो फलके उपभोग विना कायिक स्वीकारका असंभव होनेसे अल्पभी उपभोग होना चाहिये अन्यथा दानक्रय आदिकी संपूर्णता नहोगी इससे फलके उपभोगरूप कायिक स्वीकारसे रहित आगम दुर्बल हो जाताहै क्योंकि स्वीकार सहित आगम नही है यहभी तब है जब दोनोंके पूर्व और अपर कालका ज्ञान न हो यदि पर्व अपर कालका ज्ञान होयतो विगुणभी पूर्व कालका आगमही बलवान् होता है अथवा लेख साक्षी भोग यह तीन प्रकारका प्रमाण कहाहै इन तीनोंके समुदायमें कहां किसको प्रबलताहै इस लिये यह वचनहै कि पूर्व क्रमसे चले आये भोगको छोडकर भोगसे आगम अधिकहै और जहां अल्पभी भोगनहो वहां आगममेंभी बल नही होता यह तात्पर्य है कि पहिले पुरुषके समय साक्षियोंसे स्वीकार कराया आगम भोगसे अधिक(बलवान्) है परंतु पूर्व क्रमसे चले आये भोगके विना–वह पूर्व क्रमसे चला आया भोग चौथे पुरुषमें लेखसे स्वीकार किये आगमसे बलवान् है मध्यम पुरुषमेंतो भोग रहित आगमसे अल्प भोग सहितभी आगम बलवान् होताहै–यही बात नारदने स्पष्टकी है कि पहिला कारण दानहै–मध्यमें आगम सहित भोग–और निरंतर और चिरकालका जो भोगहै वही एक मुख्य कारणहै ॥

भावार्थ–पूर्व क्रमसे चले आये भोगको छोडकर आगम– भोगसे अधिकहै– और जहां अल्पभी भोग नहो वहां आगममेंभी बल नही होता ॥ २७ ॥

आगमस्तुकृतोयेनसोभियुक्तस्तमुद्धरेत् ।
नतत्सुतस्तत्सुतोवाभुक्तिस्तत्रगरीयसी ॥

पद–आगमः १ तु‿– कृतः १ येन३ सः १ अभियुक्तः १ तं२उद्धरेत् क्रि–न‿– तत्सुतः १ तत्सुतः १ वा‿– भुक्तिः१तत्र‿–गरीयसी १॥

योजना–येन आगमः कृतः सः अभियुक्तः सन् तं उद्धरेत् तत्सुतः वा तत्सुतः (पौत्रः) न उद्धरेत्–तत्र भुक्तिः एव गरीयसी भवति ॥

तात्पर्यार्थ–जिन पुरुषने भूमि आदिका आगम (स्वीकार) कियाहो वह पुरुषही

१ दद्यात् कृष्णाजिन पुच्छे गां पुच्छे करिण करे। केसरेषु तथैवाश्व दासीं शिरसि दापयेत् ।

२ अनुमंत्रयेत्प्राण्यभिमृशेदप्राणिकन्यांच ।

१ आदौ तु कारणं दान मध्ये भुक्तिस्तु सागमा। कारणं भुक्तिरेवैका संतता या चिरंतनी ।

तेरा क्षेत्र आदि कहां है ऐसा अभियोग करनेपर उस प्रतिग्रह आदि आगमको लिखित आदिसे उद्धार (स्वीकार)करावे–इससे यह बात उक्तप्राय (कहीसी) है प्रथम पुरुष आगमका उद्धार न करै तो दंड होताहै– उसका पुत्र दूसरा अभियोग करनेपर आगमका उद्धार न करै–किंतु निरंतर और आक्रोश रहित प्रत्यक्ष भोगका उद्धार करावे–इससे यह बात कही गयी कि आगमका उद्धार न करतेहुये दूसरे पुरुषको तो दंड नही होता और विशिष्टभोगका जो उद्धार न करै उसको दंड होता है–और उस पुत्रका पुत्र तीसरा पुरुष (पोता) न आगमका न विशिष्टभोगका उद्धार करै–किंतु क्रमसे चलेआये भोगकाही उद्धार करै– इससेभी यह बात कही गयी कि तीसरा पुरुष क्रमसे चलेआये भोगका उद्धार न करै तो दंड है आगमका उद्धार न करै वा विशिष्टभोगका उद्धार न करै तो दंड नहीं है– वहां उन दूसरे और तीसरेका भोगही अत्यंत गुरु है उनमेंभी दूसरेमें गुरु तीसरेमें अत्यंत गुरु यह विवेक है– और तीनोंमेंभी आगमका उद्धार न होय तो अर्थकी हानि समानही है और दंडमें तो विशेष है यह तात्पर्यार्थ है– सोई हारीतने कहा है कि जिसने आगम कियाहो वह यदि उसका उद्धार न करै तो दंडके योग्य है उसका पुत्र वा उसके पुत्रका पुत्र दंडके योग्य तो नही परंतु भोगकी हानि उसकीभी होती है[1] ॥

भावार्थ–जिसने आगम कियाहो वह अभियोगकरनेपर उसका उद्धार न करावे और उसका पुत्र या पौत्र उद्धार न करावे उनमें भोगही अत्यंत गुरु है॥ २८ ॥

योभियुक्तः परेतः स्यात्तस्यरिक्थीतमुद्धरेत्
नतत्रकारणंभुक्तिरागमेनविनाकृता ॥ २९

पद– यः १ अभियुक्तः १ परेतः १ स्यात् क्रि– तस्य६ रिक्थी१ तं२ उद्धरेत् क्रि– नऽ– तत्रऽ– कारणं१ भुक्तिः १ आगमेन३ विनाऽ– कृता१ ॥

योजना–यः अभियुक्तः परेतः स्यात्–तस्य रिक्थी तं उद्धरेत्– आगमेन विना कृता भुक्तिः तत्र कारणं न भवति ॥

तात्पर्यार्थ– विना पूर्वक्रमागतात्–इस वचनमें जिसके कालका स्मरण नही ऐसे, और आगमके ज्ञानसे निरपेक्ष उपभोगको प्रामाण्य (मानने योग्य) कहा अब उसका अपवाद कहते हैं– जब आहरण आदिका करनेवाला व्यवहारके निर्णयसे पहिले मरजाय तो उसका रिक्थी (पुत्र आदि) उस आगमका उद्धार करै जिससे उस व्यवहारमें साक्षीआदिसे सिद्धकियाभी आगमरहित भोग प्रमाण नही है– क्योंकि पूर्वके अभियोगसे भोग अपवादसहित है–नारदनेभी कहा है नवीनहुआ है विवाद जिसका ऐसे परलोकमें गये (मरे) व्यवहारीका पुत्र उस अर्थका शोधन करै भोग उसको निवृत्त नही करसकता[1] ॥

भावार्थ–जो अभियुक्त मरजाय तो उसका पुत्र उस अभियोगका उद्धार करै–आगमके विना किया भोग उस व्यवहारमें कारण (प्रमाण) नही होसकता ॥ २९ ॥

नृपेणाधिकृताः पूगाः श्रेणयोथकुलानिच ।
पूर्वपूर्वगुरु ज्ञेयं व्यवहारविधौनृणाम् ३०

पद–नृपेण३ अधिकृताः १ पूगाः १

१ आगमस्तु कृतो येन स दण्ड्यस्तमनुद्धरन् । न तत्सुतस्तत्सुतो वा भोगहानिस्तयोरपि ।

१ अनागतविवादस्य प्रेतस्य व्यवहारिणः । पुत्रेण सोऽर्थः संशोध्यो न तं भोगो निवर्तयेत् ।

श्रेणयः १ अथऽ-कुलानि१ चऽ- पूर्व१ पूर्व१ गुरु१ ज्ञेयं१ व्यवहारविधौ७ नृणाम्६॥

योजना-नृपेण अधिकृताः पूगाः श्रेणयः अथ कुलानि संति तेषु नृणां व्यवहारविधौ पूर्वं पूर्वं गुरु ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-व्यवहारके निर्णयसे पहिले व्यवहारी मरजाय तो व्यवहार निवृत्त नहीं होता यह स्थित भया-निर्णय किये व्यवहारकीभी स्थितिमें वा व्यवहारीके रहते कहीं व्यवहार प्रवृत्त होता है कही नही-इस व्यवस्थाकी सिद्धिकेलिये-व्यवहारके देखनेवालोंका बल और अबल कहते हैं- नृप (राजा)ने अधिकार दिया है व्यवहारदेखनेकेलिये जिनको ऐसे वे प्राड्विवाक आदि सभासद् जो राजा सभासदां करइस वचनसे कहे हैं- पूग(समूह) भिन्न२जातिक और भिन्न२ वृत्तिवाले एकस्थानके निवासियोंको पूग कहते हैं-जैसे ग्राम नगर आदि- श्रेणि नानाजातिके वा एकजातिके जो एकजातिके कर्मोंसे जीवें ऐसे समूहोंको श्रेणि कहते हैं-जैसे हेडाबुक आदि और तमोली नुविंद चर्मकार आदि- कुल- ज्ञाति संबंधिओंके समूह- राजाके नियतकिये इन विंद आदिचारोंके मध्यमें पूर्व२ जो इसमें पढा है वहर२ गुरु (श्रेष्ठ) मनुष्योंके व्यवहारके देखनेमें- जानना- यह कहा गया कि- राजाके अधिकारी व्यवहारका निर्णय करदें और पराजितको यदि कुदृष्ट बुद्धिसे संतोष न होयतो पूग आदिमें पुनः व्यवहार नही होता- इसीप्रकार पूगका निर्णय किया व्यवहार श्रेणी आदिपर नही जासकता- तैसेही श्रेणीका निर्णय किया कुलमें नही जासकता- कुलका निर्णय किया तो श्रेणी आदिमें जासकता है-श्रेणीका निर्णय किया पूगमें पूगका निर्णय किया राजाके-अधिकारियोंमें जासकता है नारदने तो राजाके अधिकारियोंने निर्णय किया व्यवहार राजाके पास जाता है- यह कही है कुल श्रेणी पूग अधिकारी राजा- इनसे व्यवहारोंकी स्थिति होती है और इनमें उत्तर२ श्रेष्ठ है- उसमेंभी जब व्यवहार राजाके समीप जाय तब अपने उत्तर (नीचला) सभासदसहित राजाको पूर्व२ सभ्योंसहित पणसहित व्यवहारका निर्णय करना होय और यह कुदृष्टवादी पराजित होजायतो दंडदेने योग्य होता है और जो यह जयको प्राप्त होजायतो सभासद दंडकेयोग्य होते हैं॥

भावार्थ- राजाके अधिकारी-पूग-श्रेणी- और कुल जो हैं उनमें मनुष्योंके व्यवहारकरनेमें पूर्व पूर्व गुरु (श्रेष्ठ) जानना॥ ३०॥

बलोपाधिविनिर्वृत्तान्व्यवहारान्निवर्तयेत् । स्त्रीनक्तमंतरागारबहिःशत्रुकृतांस्तथा ३१

पद-बलोपाधिविनिर्वृत्तान् २ व्यवहारान्२ निवर्तयेत् क्रि- स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिःशत्रुकृतान्२ तथाऽ- ॥

योजना-बलोपाधिविनिर्वृत्तान् तथा स्त्रीनक्तमंतरागारबहिःशत्रुकृतान् व्यवहान् राजा निवर्तयेत् ॥

ता० भा०-बलात्कार और उपाधि (भय आदि)से-किये और स्त्री-रात्रिमें-गृहके भीतर- ग्रामसे बाहिर-और शत्रुओंके किये व्यवहारोंको राजा निवृत्त कर दे अर्थात् बल आदिसे किये व्यवहारोंके जय पराजयको राजा न माने ॥ ३१ ॥

मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतादियोजितः असंबद्धकृतश्चैवव्यवहारोनसिद्ध्यति ३२

१ राजा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः ।

१ कुलानि श्रेणयश्चैव पूगाश्चाधिकृतानृपः। प्रतिव्यवहाराणां गुर्वेषामुत्तरोत्तरम् ।

पद–मत्तोन्माग लेकर शेष धन स्वामी-
जितः १ असंगजाके भागमेंसे चौथा भाग
वहारः १ नऽ–क्षि धन मिला (पाया) हो–
योजना–मत्तोआया होयतो संपूर्ण धनमेंसे
योजितः च पुनः बालेको देकर शेष धनको
न सिद्धयति ॥ सोई गौतमने कहाहै कि
तात्पर्यार्थ–मदिधनको पाकर राजा वर्ष
और वात पित्त रे–वर्षके पीछे–चौथा भाग
हुए उन्मादसे उन्म शेष राजाका होताहै–इस
इष्टका वियोग और–यह एकवचन अवि-
हुए दुःखसे युक्त जा तीन वर्षतक रक्खे
अयोग्य बालक और... आदि

आदि पदके ग्रहणसे पुर और देशका विरोधी लेना इनका किया हुआ व्यवहार सिद्ध नही होता अर्थात् माननेके अयोग्य है मनुकाभी वचन है कि पुर और देशसे विरुद्ध और राजाका त्यागाहुआ वाद धर्मके ज्ञाता ओंने ग्रहण करने अयोग्य कहा है और असम्बंध (जो राज्यमें नियुक्त न हों) उनका कियाभी व्यवहार सिद्ध नही होता और जो यह वचन है कि गुरु शिष्य पिता पुत्र स्त्री पुरुष स्वामी भृत्य इनके परस्पर विरोधमेंभी व्यवहार सिद्ध नही होता यह वचनभी गुरु शिष्य आदिके व्यवहारके सर्वथा निषेधार्थ नही है–क्योंकि उनकाभी व्यवहार किसी प्रकार इष्ट है सोई दिखाते हैं कि शिष्यकी शिक्षा वधको छोडकर करे असमर्थ होय तो रस्सी वांस विदल जो कोमल है उनसे करे अन्यसे मारे तो राजा गुरुको दंड दे–इस गौतमके और उत्तम अंगमें कदा-

१ पुरराष्ट्रविरुद्धश्च यश्च राज्ञाविसर्जितः । अनादेयोभवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः ।

२ गुरोः शिष्ये पितुः पुत्रे दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः । विरोधोपि मिथस्तेषां व्यवहारो न सिद्धयति ।

३ शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां ... अन्यथा मन् राज्ञा शास्यः ।

पद–इतरेण ३ निधौ ७ लब्धे ७ राजा २ षष्ठांशं २ आहरेत् क्रि–अनिवेदितविज्ञातः १ दाप्यः १ तं २ दण्डम् २ एवऽ–चऽ– ॥

योजना–राजा निधिं लब्ध्वा अर्धं द्विजेभ्यः दद्यात्–विद्वान् द्विजः पुनः (तु) अशेषं आदद्यात्–यतः सः सर्वस्य प्रभुः भवति–इतरेण निधौ लब्धे सति राजा षष्ठांशं दत्वा आहरेत्–अनिवेदितविज्ञातः पुरुषः तं (निधिं) चपुनः दंडं एव (अपि) दाप्यः ॥

ता पिता तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्त निधिको राजा लेकर
दुर्भिक्ष धर्मकार्य व्याधि सभात गोंके शेषको कोशमें
इनमें ग्रहण किये स्त्रीधनको भर्ता अपनी इच्छाके विना देने योग्य नही है इस वचनसे यदि दुर्भिक्ष आदिके विना स्त्री धनका व्यय (खर्च) भर्ता करे और याचना करनेसेभी विद्यमान धनको न दे तब स्त्रीपुरुषकाभी व्यवहार होता है–तैसेही भक्तदासका स्वामीके संग व्यवहार कहेंगे–और गर्भदास आदिकाभी–इस नारदके वचनसे कि जो इन गर्भदास आदिकोंमें स्वामीको प्राणसंशयसे छुटावे वह दासभावसे छुटता है और पुत्रके भागको प्राप्त होताहै–स्वामीके न छोडने और पुत्रभागके न देनेमें स्वामीके संग व्यवहारको–कोन निवारण कर सकता है–तिससे गुरु आदिके संग व्यवहार–दृष्ट और अदृष्ट (दोनोंलोक)में कल्याणकारी नही होता इससे प्रथम सभासदों सहित राजा शिष्य आदिका निवारण करे–यही इस श्लोकका तात्पर्यार्थ है–यदि अत्यंत हठ करें तो शिष्य आदि-

१ नोत्तमाङ्गे कथंचन ।

२ दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके । गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता नाकामो दातुमर्हति ।

३ यश्चैषां स्वामिनं कश्चिन्मोचयेत्प्राणसंशयात् । दासत्वात्स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत च ।

वां भाग स्वयं लेले-सोई मनुने कहा है (अ. ८ श्लो ३५) जो मनुष्य सत्यसे यह कहै कि यह निधि मेरी है उसके छठे वा द्वादशवें भागको राजा ग्रहण करे-भागोंका यह छठा दशवां आदि विकल्प तो देशकाल आदिकी अपेक्षासे जानना ॥

भावार्थ-राजा निधिको प्राप्त होकर आधा द्रव्य ब्राह्मणोंको दे यदि विद्वान् ब्राह्मणको निधि मिल जाय तो वह संपूर्णको लेले क्योंकि वह सब जगत् प्रभु (स्वामी)है- यदि किसी अन्यको निधि मिल जाय तो राजा उसको छठा भाग देकर शेषको आप ले ले-यदि कोई मनुष्य निधिको पाकर राजाको न बतावे और ज्ञात हो जाय तो उसको निधिका और इतर दंड राजादे॥३४ ॥३५॥

देयंचौरहृतंद्रव्यंराज्ञाजानपदायतु ।
अददद्धिसमाप्नोतिकिल्बिषंयस्यतस्यतत्॥

पद-देयम् १ चौरहृतं १ द्रव्यं १ राज्ञा ३ जानपदाय ४ तुऽ- अददत् १ हिऽ- समाप्नोति क्रि-किल्बिषं२ यस्य ६ तस्य ६ तत् १ ॥

योजना-चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जानपदाय देयं-हि (यतः) अददत् राजा यस्य किल्बिषं तस्य किल्बिषं (पापं) समाप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ-चौरोंने जो द्रव्य हरा हो उस धनको चौरोंसे जीतकर अपने देशके निवासी जो जानपद (देशके मनुष्य) में जिसका वह धन हो उसको विभावयेत्-तर्हि देता हुआ राजा जिसका वह द्रव्य था उसको और आदि द्रव्य यदि प्राप्त होता है सोई मनुने और स्थानके चौरोंके चुराये हुये धनको र इनोंने राजाको दे-क्योंकि उसको भोगता धनको धनीको पापको प्राप्त होता है-यदि संख्या आदिसे लेकर स्वयं भोगै तो चौरके दे-यदि वह होता है-यदि चौरके चुराये हुयेका न सकै उपेक्षा करै तब देशनिवासियोंके पापको प्राप्त होता है-यदि चौरोंके चुरायेका प्रतिआहरण (निकासना)के लिये यत्न करता हुआभी राजा प्रतिआहरण न करसके तो उतना धन अपने कोशमेंसे दे-सोई गोतमने कहा है कि चोरके चुरायेको जीतकर यथास्थान (स्वामीको) पहुंचा दे वा कोशमेंसे देदे- कृष्णद्वैपायनकाभी वचन है-यदि चौरोंके चुराये धनका प्रत्याहरण न करसके तो असमर्थ राजा अपने कोशमेंसे देदे॥

भावार्थ-चौरोंके चुराये धनको राजा देशके निवासियोंको दे क्योंकि नही देता-हुआ राजा देशके वासियोंके पापको प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

---

१ ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः । तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ।

१ दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरहृतं धनम् । राजा तदुपभुंजानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ।

२ चौरहृतमवजित्य यथास्थानं गमयेत् कोशाद्वा दद्यात् ।

३ प्रत्याहर्तुं न शक्तस्तु धनं चौरहृतं यदि । स्वकोशात्तद्धि देयं स्यादशक्तेन महीक्षिता ।

इति असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरणम् ॥ २ ॥

तात्पर्यार्थ- अब द्रव्यके विशेषसे वृद्धिको कहतेहैं-पशु और स्त्रियोंकी वृद्धि संतान होतीहै-जो मनुष्य पशु और स्त्रीके पोषणमें असमर्थ होनेसे उनकी पुष्टि और संतानकी कामनासे किसी अन्यको दे और ग्रहण करनेवाला दूध और सेवाके लिये ग्रहण करले तो स्वामी उनकी संतानरूप वृद्धिका भागी होताहै-अब यह कहतेहैं कि जो दियाहुआ द्रव्य वृद्धि लियेविनाभी चिरकालतक रहे उसमें किस द्रव्यकी कितनी वृद्धि अधिकसे अधिक होतीहै-वृद्धिके ग्रहण कियेविना चिरकालतक टिके तेल घृत आदिकी वृद्धि यदि अपनीकी हुई वृद्धिसे वह बढगया होयतो अधिकसे अधिक अष्टगुणा वृद्धि होतीहै अर्थात् आठगुना बढताहै अधिक नही-तैसेही वस्त्र अन्न सुवर्ण इनकी क्रमसे चौगुनी तिगुनी दुगुनी वृद्धि अधिकसे अधिक होतीहै-वासिष्ठनेतो रसकी तिगुनी कहीहै कि दुगुना सुवर्ण और तिगुना अन्न रस पुष्प मूल फल-बढते हैं-तोले हुये रस आदि तीनों आठगुने होते हैं-मनुनेतो धान्य पुष्प मूल फल आदिकोंको पांच गुना कहाहै कि-धान्य शद (पुष्प-मूल फल आदि क्षेत्रका फल) लव (मेषकी ऊन चमरीगौके केश आदि) वाह्य (बैल अश्व आदि) इनकी वृद्धि पांच गुनेसे अधिक नही होती-उसमेंभी अधमर्णकी योग्यता-दुर्भिक्ष आदिका समयके अनुसार व्यवस्था जाननी-यहभी एकवार देने और लेनेमें समझना-अन्य पुरुषके नामसे वा अन्य प्रयोग (देना) करने वा उसी पुरुषको अनेकवार प्रयोग करनेमेंतो सुवर्ण आदि दुगुनेसे अधिकभी पूर्वके समान बढतेही हैं-और एकवारके प्रयोगमेंभी-प्रतिदिन प्रतिमास वा प्रतिवर्ष वृद्धिके लेनेमें अधमर्णको जो देनाथा वह दूना हो सकता है इससे पूर्व लीहुई वृद्धिके संग मिलाकर दूनेसे अधिकभी बढताही है सोई मनुने कहाहै कि एकवार ठहराई हुयी कुसीद (बढनेके लिये दियाधन)की वृद्धि दूनेसे अधिक नही होती-और अन्यपुरुषके द्वारा वा दूसरे प्रयोगसे ठहराई हुई तो दूनेसेभी अधिक हो जाती है-यदि सकृदाहृता-यह पाठ होयतो शनैः २ प्रतिदिन प्रतिमास वा प्रतिवर्ष अधमर्णसे लेली होयतो दूनेसे अधिक नही होती-सोई गौतमनेभी कहाहै कि चिरकालमें प्रयोग (देना) दूना हो जाताहै यहां प्रयोगस्य-इस एक वचनसे दूसरा प्रयोग करनेमें दूनेसे अधिकका होना इष्टहै और चिरस्थाने यह कहनेसे शनैः २ वृद्धिके ग्रहणमें दूनेका अवलंघन दिखायाहै ॥

भावार्थ-पशु और स्त्रियोंकी वृद्धि संतान होती है और रसकी वृद्धि अधिकसे अधिक आठगुनी-और वस्त्र अन्न सुवर्ण इनकी वृद्धि क्रमसे चौगुनी तिगुनी और दूनी अधिकसे अधिक होती है ॥ ३९ ॥

प्रपन्नंसाधयन्नर्थनवाच्योनृपतेर्भवेत् ।
साध्यमानोनृपंगच्छन्दंड्योदाप्यश्चतद्धनम् ॥

पद-प्रपन्नं २साधयन्१अर्थं२न०-वाच्यः१ नृपतेः६भवेत्क्रि-साध्यमानः१नृपं २ गच्छन्१दंड्यः१दाप्यः १ च०-तद्धनम् २ ॥

योजना-प्रपन्नं अर्थं साधयन् उत्तमर्णः नृपतेः वाच्यः न भवेत् नृपं गच्छन् साध्यमानः अधमर्णः दण्ड्यः चपुनः तद्धनं दाप्यः-भवति ॥

१ द्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यं धान्येनैव रसाः व्याख्याताः पुष्पमूलफलानि च-तुलाधृतं त्वष्टगुणम् ।

२ धान्ये शदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पंचताम् ।

[illegible] ते सकृदाहिता(दाहृता) ।

तात्पर्यार्थ-अधमर्णने प्रपन्न (स्वीकृत) किये वा साक्षी आदिसे स्वीकार कराये धनका धर्मआदि उपायोंसे प्रत्याहरण (वसूल) करते हुये उत्तमर्णका राजा निवारण न करै-धर्म आदि उपाय मनुने दिखाये हैं कि प्रीतिके सत्यवचनरूप धर्मसे-साक्षी लेख आदि व्यवहारसे छल (उत्सव आदिके बहानेसे भूषण आदिका ग्रहण)से अचरित(भोजनका अभाव)से और पांचवें निगड बंधन आदि बलसे-उपचय(बढाना)के अर्थ दिये द्रव्यको इन उपायोंसे अपने आधीन करै-प्रपन्नअर्थको सिद्ध करते हुये उत्तमर्णको राजा मने न करै-यह कहनेसे यह दिखाया कि अप्रतिपन्नको सिद्ध करते हुयेको राजा निवारण करै-यही बात कात्यायनने स्पष्टकी है कि जो धनी न्यायवादी ऋणवालेको पीडा दे-वह उस धनकी हानिको प्राप्त होता है और उस धनीके धनके समान दंडको पाता है-और धर्म आदि उपयोंसे याचना करनेपर स्वीकार करनेवाला राजाके समीप जाकर साधन करनेवालेपर अभियोग (दावा) करै तो वह शक्तिके अनुसार दंडका भागी होता है और राजा उससे धनीको धन दिवादे-राजाके धन दिवानेके प्रकार दिखाये हे कि राजा स्वामीको ब्राह्मणसे शांतिके द्वारा और अन्योंसे देशके आचरणसे-और दुष्टोंसे दुख देकर धनको दिवादे-और जो धनी सुहृद् (मित्र) होयतो छलसेभी धनको दिवादे साध्यमानो नृपं गच्छेत्-यह वचन (जो मांगनेपर राजाके पास जाय) स्मृति आचारसे भिन्न मार्गसे दबाया हुआ राजाको निवेदन करै तो यह व्यवहारका पद है-इसका प्रत्युदाहरण-जानना ॥

भावार्थ-अधमर्णसे स्वीकार किये अर्थको जो सिद्ध (वसूल) करै उसका निवारण राजा न करै-यदि अधमर्ण साधन करनेपर राजाके समीप जायतो दंडके योग्य होताहै और धनीके धनको उससे राजा दिवादे ४०

गृहीतानुक्रमाद्दाप्योधनिनामधमर्णिकः ।
दत्त्वातुब्राह्मणायैवनृपतेस्तदनंतरम् ॥

पद-गृहीतानुक्रमात् ५ दाप्यः१धनिनां६ अधमर्णिकः१ दत्त्वा-तु- ब्राह्मणाय४ एव-नृपतेः ६ तदनन्तरम् २ ॥

योजना-धनिनां गृहीतानुक्रमात् अधमर्णिकः राज्ञा दाप्यः- तुपुनः ब्राह्मणाय दत्वा तदन्तरं नृपतेःदाप्यः ॥

ता० भा०-यदि धनी समान जातीके एकबार राजाके समीप आवेतो जिस क्रमसे धन लियाहो उसी क्रमसे अधमर्णसे दिवावे यदि वे उत्तमर्ण भिन्न २ जातिके होंयतो प्रथम ब्राह्मणके और फिर क्षत्रियके धनको दिवावे ॥ ४१ ॥

राज्ञाधमर्णिकोदाप्यः साधितादृशकंशतम्
पंचकंचशतंदाप्यंप्राप्तार्थोह्युत्तमर्णिकः ४२

पद-राज्ञा ३ अधमर्णिकः १ दाप्यः १ साधितात् ५ दशकं २ शतम् २ पंचकं २ च-शतं २ दाप्यः १ प्राप्तार्थः १ हि-उत्तमर्णिकः १ ॥

योजना-राज्ञा अधमर्णिकः साधितात् दशकं शतं- दाप्यः- प्राप्तार्थः उत्तमर्णिकः पंचकं शतं दाप्यः ॥

ता० भा०-यदि दुर्बल उत्तमर्ण स्वीकार किये अर्थको धर्म आदि उपायोंसे सिद्ध न करसके और राजा सिद्ध करदे-तो राजा

१ धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च । प्रयुक्तं साधयेदर्थं पंचमेन बलेन च ।

२ पीडयेद्यो धनी कश्चिदृणिकं न्यायवादिनं । तस्मादर्थात्स हीयेत तत्समं चाप्नुयाद्दमम् ।

३ धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च । प्रयुक्तं साधयेदर्थं पंचमेन बलेन च ।

अधमर्णसे साधित अर्थमेंसे प्रतिशतमेंसे दशरुपये दंडके ले अर्थात् राजा दशवां भाग दंडरूप ग्रहण करे–और मिलगयाहै धन जिसको ऐसे उत्तमर्णसे प्रति शतमेंसे पांचरूपये भृतिरूप राजाले अर्थात् वीसवें भागको राजा ग्रहण करे–यदि अस्वीकार किये अर्थको राजा सिद्ध करादेतो वहां दंडका विभाग–निन्हवे भावितो दद्यात्–इस श्लोकमें दिखाय आये ॥ ४२ ॥

हीनजातिंपरिक्षीणमृणार्थंकर्मकारयेत् ।
ब्राह्मणस्तुपरिक्षीणः शनैर्दाप्योयथोदयम्॥

पद–हीनजातिं २ परिक्षीणं २ ऋणार्थेऽ कर्म २ कारयेत् क्रि– ब्राह्मणः १ तुऽ–परिक्षीणः १ शनैःऽ– दाप्यः १ यथोदयम्ऽ–॥

योजना–परिक्षीणं हीनजातिं ऋणार्थं कर्म कारयेत्– तुपुनः परिक्षीणः ब्राह्मणः शनैः यथोदयं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ–धनवान् अधमर्णके प्रति कहा अब निर्धन अधमर्णके प्रति कहतेहैं कि ब्राह्मण आदि उत्तमर्ण–परिक्षीण (निर्धन) क्षत्रिय आदि हीन जातिसे ऋणकी निवृत्तिके लिये अपना कर्म उनकी जातिके अनुरूप करावे उसमेंभी उनके कुटुंबका विरोध न करे यदि ब्राह्मण परिक्षीण (निर्धन) होयतो राजा उससे शनैः २ यथोदय (जैसे होसके) ऋणको राजा दिवावे–यहां हीनजाति समान जातिकाभी उपलक्षणहै–इससे निर्धन सजातीयसे यथोचित कर्म करावे–और ब्राह्मणका ग्रहणभी श्रेष्ठ जातिका उपलक्षण है इससे निर्धन क्षत्रिय आदिभी वैश्य आदिका शनैः२ यथोचित कर्म करे यही मनुने स्पष्ट कियाहै (अ.८श्लो.१७६) कि सजाति अधमर्ण अपने आत्माको कर्म करकेभी धनीके सम (तुल्य) करे अर्थात् आपसमें उत्तमर्ण अधमर्णनामको दूरकरे–और हीन जाति अधमर्ण होयतो उस धनको दे–और श्रेष्ठजाति तो शनैः २ ऋणको दे ॥

भावार्थ–निर्धन हीनजाति अधमर्णसे ऋण दूरकरनेके लिये कामको करावे– ब्राह्मण निर्धन अधमर्ण होयतो उससे यथासंभव ऋणको राजा दिवादे ॥ ४३ ॥

दीयमानंनगृह्णातिप्रयुक्तंयः स्वकंधनम् ।
मध्यस्थस्थापितंचेत्स्याद्वर्द्धतेनततः परम्॥

पद–दीयमानं २ नऽ–गृह्णाति क्रि–प्रयुक्तं २ यः १ स्वकं २ धनम् २ मध्यस्थस्थापितं चेत्ऽ–स्यात् क्रि–वर्धते क्रि–नऽ–ततःऽ–परम् २ ॥

योजना–यः उत्तमर्णः प्रयुक्तं स्वकंधनं दीयमानं नगृह्णाति चेत् यदि तत् मध्यस्थस्थापितं स्यात् तदा ततः परं न वर्द्धते ॥

ता०भा०–बढानेके लिये दिये धनको यदि उत्तमर्ण अधमर्णके देनेपर वृद्धिके लोभसे ग्रहण नकरे–और यदि अधमर्ण उसे मध्यस्थके हाथमें स्थापित करदे (रखदे) तो वह धन स्थापनसे आगे नहीं बढता यदि स्थापितकोभी याचना करनेपर न दे तो पूर्वके समान बढताही है ॥ ४४ ॥

अविभक्तैः कुटुंबार्थेयदृणंतुकृतंभवेत् ।
दद्युस्तद्रिक्थिनः प्रेतेप्रोषितेवाकुटुंबिनि ॥

पद–अविभक्तैः३ कुटुंबार्थे७ यत्१ ऋणं १ तुऽ–कृतं१ भवेत् क्रि–दद्युः क्रि–तत्२ रिक्थिनः१ प्रेते ७ प्रोषिते ७ वाऽ–कुटुंबिनि ७ ॥

योजना–अविभक्तैः कुटुंबार्थे कृतं यत् ऋणं भवेत्–कुटुंबिनि प्रेते वा प्रोषिते तत् ऋणं रिक्थिनः दद्युः ॥

ता० भा०–अविभक्त (इकट्ठे) बहुतोंने जो ऋण पृथक् २ किया हो उसको कुटुंबी

१ कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः । समो-ऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ।

दे और कुटुंबी मरजाय वा पर देशमें चला जाय तो सब रिक्थी (हिसेदार) दे ॥४५॥

नयोषित्पतिपुत्राभ्यांनपुत्रेणकृतंपिता ।
दद्याद्दतेकुटुंबार्थान्नपतिः स्त्रीकृतंतथा ४६

पद-नऽ-योषित् १ पतिपुत्राभ्यां ३ नऽ-पुत्रेण३ कृतम् २ पिता१ दद्यात् क्रि-ऋतेऽ-कुटुंबार्थात् ५ नऽ- पतिः१ स्त्रीकृतं२ तथाऽ-॥

योजना-पतिपुत्राभ्यां कृतं ऋणं योषित्-पुत्रेण कृतं पिता-तथा स्त्रीकृतं पतिः कुटुंबार्थात् ऋते-न दद्यात् ॥

ता० भा०-पतिके कियेहुये ऋणको भार्या-और पुत्रके किये ऋणको माता-और पुत्रके किये ऋणको पिता नदें-यदि वह कुटुंबके पोषणार्थ किया होयतो चाहे जिसने कियाहो उसको सब कुटुंबीदें-यदि कुटुंबी न होयतो उसके दायभागीदें ॥ ४६ ॥

सुराकामद्यूतकृतंदंडशुल्कावशिष्टकम् ।
वृथादानंतथैवेहपुत्रोदद्यान्नपैतृकम् ॥४७॥

पद-सुराकामद्यूतकृतं २ दंडशुल्कावशिष्टकम् २ वृथादानं २ तथाऽ-एवऽ-इहऽ-पुत्रः १ दद्यात् क्रि-नऽ-पैतृकम् २ ॥

योजना-सुराकामद्यूतकृतं-दंडशुल्कावशिष्टकम्-तथैव इह वृथादानं पैतृकं पुत्रः न दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-मदिराका पीना कामदेव (स्त्रीका व्यसन) द्यूतमें पराजय इनमें किया और दंड वा शुल्क (महसूल) इनका शेष जो पिताका किया ऋणहै और तैसेही धूर्त बंदीजन मल्ल आदिको जो वृथा दानहै पिताके किये इतने ऋणोंको शौंडिक(करार) आदिके ऋणको पुत्र नदे क्योंकि यह स्मृतिहै कि धूर्त बंदीजन मल्ल खोटा वैद्य कपटी शठ चाट चारण चोर इनको दिया निष्फल होताहै यह दंड शुल्कके शेषको नदे यह कहनेसे यह नही समझना कि दंड आदि संपूर्णको दे क्योंकि उशनाकी यह स्मृति है कि दंड वा दंडका शेष शुल्क वा शुल्कका शेष और जो व्यवहारका नहो वह इनको पुत्र न दे गौतमनेभी कहाहै कि मदिरा शुल्क द्यूत काम दंड इनको पुत्रनदें अर्थात् ये ऋण पुत्रोंके ऊपर नही होते इस वचनसें देनेके अयोग्य ऋण कहा ॥

भावार्थ-मदिरा विषयभोग द्यूत इनमें किया और दंड वा शुल्कका शेष और वृथादान पिताके किये इतने ऋणोंको पुत्र नदे ॥ ४७ ॥

१ धूर्ते बंदिनिमल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे। चाटचारणचौरेषु दत्तं भवति निष्फलम्।

१ दंड वा दंडशेषं वा शुल्कं तच्छेषमेव वा। न दातव्यं तु पुत्रेण यच्च न व्यावहारिकम्।

२ मद्यशुल्कद्यूतकामदंडान् पुत्रानध्यावहेयुः।

गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधियोषिताम् ।
ऋणंदद्यात्पतिस्तासांयस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया

पद-गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम् ६ ऋणं२ दद्यात् क्रि-पतिः१ तासां६ यस्मात् ५ वृत्तिः १ तदाश्रया १ ॥

योजना-गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधयोषितां ऋणं तासां पतिः दद्यात् यस्मात् वृत्तिः तदाश्रया (स्त्र्यधीना) भवति ॥

ता० भा०-गोपाल शौंडिक (करार) शैलूष (नट) रजक (रंगरेज)व्याध इनकी स्त्रियोंने जो ऋण कियाहो उसको उनके पतिदें क्योंकि उनकी जीविका स्त्रियोंके आधीन होतीहै- (यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया) इस हेतुके कहनेसे यह बात जानीगयी कि अन्यभी जिनका जीवन स्त्रियोंके आधीन है वेभी स्त्रीके किये ऋणको दें ॥ ४८ ॥

प्रतिपन्नंस्त्रियादेयंपत्यावासह यत्कृतम् ।
स्वयंकृतंवायदृणंनान्यत्स्त्रीदातुमर्हति ४९

पद-प्रतिपन्नं१ स्त्रिया ३ देयम् १ पत्या ३ वा-सह- यत् १ कृतम् १ स्वयं-कृतं १ वा- यत् १ ऋणम् १ न-अन्यत् १ स्त्री १ दातुम्-अर्हति क्रि- ॥

योजना-यत् ऋणम् स्त्रिया प्रतिपन्नं-वा पत्या सह यत् कृतम् वा स्वयंकृतं तत् ऋणम् स्त्रिया देयम्-अन्यत् ऋणं दातुम् स्त्री न अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-मरते वा परदेशमें जाते हुये पतिके कहनेसे ऋणादानमें जो ऋण स्त्रीने स्वीकार करलियाहो-और जो पतिके जीवन समयमें उसकी संमतिसे कियाहो और जो स्वयं कियाहो-वह ऋण पतिके अभावमें स्त्रीदे-कदाचित् कोई कहै कि स्वीकृत आदि इन तीन ऋणोंको स्त्रीदे यह वचन न कहना चाहिये-क्योंकि इनके देनेमें संदेहका अभावहै-इस शंकाका समाधान यह है कि भार्या पुत्र दास ये तीनों निर्धन कहेहैं ये तीनों जो पैदा करैं वह धन उसकाही होताहै जिसके ये तीनों हों इस वचनसे स्वीकृत आदिमें भी न देनेकी शंका निवृत्तिके लिये यह वचन कहाहै और यह पूर्वोक्त वचनभी स्त्री आदिको निर्धनकाभी बोधक नहींहै किन्तु पराधीनताका बोधकहै-यह बात विभागप्रकरणमें स्पष्टकरेंगे-कदाचित् कहो कि अन्य धनको स्त्री देने योग्य नहीं है-यहभी न कहना चाहिये क्योंकि विधिसेही निषेध सिद्धहो जायगा अर्थात् स्वीकृत आदि तीनसे भिन्न ऋणको स्त्रीनदे-इसका समाधान कहतेहैं-पूर्वोक्त स्वीकृत आदिके अपवादके लिये यह वचनहै अर्थात् अन्य जो सुरापान आदिहैं वे चाहै स्वीकार किये हों चाहै पतिके संग किये हों उनको स्त्री नदे ॥

१ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः। यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम्।

भावार्थ-जो ऋण स्त्रीने स्वीकार कर लियाहो और जो पतिके संग कियाहो और जो स्वयं कियाहो उस ऋणको स्त्री दे-और अन्य ऋणके देने योग्य स्त्री नहीं होती ॥४९॥

पितरिप्रोषितेप्रेतेव्यसनाभिप्लुतेपिवा ।
पुत्रपौत्रैर्ऋणंदेयंनिन्हवेसाक्षिभावितम् ५०

पद- पितरि ७ प्रोषिते ७ प्रेते७ व्यसनाभिप्लुते७ अपि-वा-पुत्रपौत्रैः ३ ऋणम्१ देयम् १ निह्नवे७ साक्षिभावितम्१ ॥

योजना- प्रोषिते प्रेते वा व्यसनाभिप्लुते पितरि सति पुत्रपौत्रैः ऋणं देयम्-निह्नवे साक्षिभावितम् तैः एव देयम् ॥

तात्पर्यार्थ- पिता देने योग्य ऋणको न देकर मरगयाहो-वा दूर देशमें चलागयाहो अथवा चिकित्साके अयोग्य व्याधि आदिसे युक्त हो और पिताके किये ऋणको कोई वतावैतो उसको पुत्र वा पौत्र पिताका धन नहीं तौभी दें क्योंकि वे उसके पुत्र और पौत्रहैं-उसमें क्रमभी यह है कि पिताके अभावमें पुत्र और पुत्रके अभावमें पौत्रदे-यदि पुत्र वा पौत्र उस ऋणका निह्नव करैं (मुकरैं) और अर्थी साक्षी आदिसे स्वीकार करादे तो पुत्र पौत्र ऋणको दें-इस वचनमें पिता परदेशमें चलागयाहो इतनाही कहाहै-काल विशेषतो नारदका कहा जाननाकि पिता पितृव्य (चाचा) ज्येष्ठभाई ये परदेशमें चलेगये होंयतो बीस वर्षसे पहिले पुत्र आदि इनके ऋणको नदे-और पिताके मरनेपरभी वह पुत्र नदे जिसको व्यवहारको समयका ज्ञान नहो-और जिसे ज्ञानहो वहदे-यह व्यवहारका समयभी नारदनेही दिखायाहै कि आठ वर्षतक शिशु

१ नार्वाक्संवत्सराद्विंशात्पितरि प्रोषिते ऋणं। दद्यात्पितृव्ये वा ज्येष्ठे भ्रातर्यथापि वा।

२ गर्भस्थैः सदृशो ज्ञेयः अष्टमाद्वत्सराच्छिशुः। बाल आ षोडशाद्वर्षात्पौगण्डश्चेति कथ्यते।

(बालक) गर्भमें स्थितके समान जानना-और सोलह वर्षपर्यंत बाल वा पौगंड कहाताहै इससे परे व्यवहारका ज्ञाता स्वतंत्र पितरावृत (पिताके समान व्यापारका कर्ता) कहाताहै-यद्यपि पिताके मरणानंतर बालभी स्वतंत्र होगया-तोभी ऋणका भागी नहीं होता-सोई कहाहै कि यदि व्यवहारको नजानता होय तो स्वतंत्र ऋणका भागी नहीं होता क्योंकि स्वतंत्रता ज्येष्ठमें होतीहै और ज्येष्ठ गुण और अवस्थासे होताहै-और तिसी प्रकार व्यवहारके अज्ञानीको आसेध (अर्जी) और आह्वान (बुलाना) काभी निषेध देखतेहैं कि व्यवहारका अज्ञानी-दूत दान देनेमें उद्यत-व्रती-और संकटमें स्थित ये आसेधके योग्य नहीं हैं और न राजा इनका आह्वान करे-तिससे इस वचनमें पुत्रपदका व्यवहारका ज्ञाता-और जात पदका निष्पन्न (कुशल) अर्थ करना कि इससे व्यवहारका ज्ञान होनेपर पुत्र अपने स्वार्थको छोडकर बडे यत्नसे पिताको ऋणसे ऐसे छुटावे जैसे पिता नरकमें न जाय-श्राद्धमें तो बालककाभी अधिकारहै-क्योंकि यह गौतमकी स्मृतिहै कि श्राद्धको छोडकर बालक वेदका उच्चारण न करे-और पुत्रपौत्रैः इस बहुवचनके दिखानेसे-यदि पुत्र पृथक् २ होगये होंय तो अपने २ भागके अनुसार दें-और इकठ्ठे होंय तो मिलकर धनको पैदा करके दें-यदि उनमें कोई गौण और कोई प्रधान होयतो प्रधान पुत्रही ऋणको दे-यह जाना गया-सोई नारदने कहाहै पिताके मरे पीछे पुत्र विभक्त हों या इकट्ठे हों पिताका ऋणदें अथवा जो उनमें भारवाही (मुख्य) हो वही दे-और यहां पुत्र पौत्र ऋण दें यह अविशेषसे कहाहै तथापि यह विशेष जानना कि पुत्र तो वैसाहि ऋण दे जैसा पिता वृद्धि सहित देता था और पौत्र मूलके समानही दे वृद्धि न दे-क्योंकि यह बृहस्पतिका वचन है कि पुत्र पिताके ऋणको अपनेके समान दें-और पौत्र मूल मात्र दें और प्रपौत्र प्रपितामहके ऋणको न दे-और यहां विभावित (स्वीकृत) इस अविशेष कहनेसे-साक्षिविभावित-इस पूर्वोक्त वचनमें साक्षिका ग्रहण प्रमाणका उपलक्षणहै-सम दे इसका अर्थ यहहै कि जितना लियाहो उतनाही दे वृद्धि न दे-यह सब अगले श्लोकमें स्पष्ट करेंगे॥

भावार्थ-पिता परदेशमेंहो वा मर गयाहो वा दुःखसे युक्तहो पुत्र और पौत्र ऋणको दें यदि वे निह्नव (मुकरना) करें और साक्षियोंसे स्वीकृत हो जायतोभी ऋणको दें॥५०॥

रिक्थग्राहऋणंदाप्योयोषिद्ग्राहस्तथैवच।
पुत्रोनन्याश्रितद्रव्यःपुत्रहीनस्यरिक्थिनः॥

पद-रिक्थग्राहः १ ऋणं २ दाप्यः १ योषिद्ग्राहः १ तथा ऽ एव ऽ च ऽ पुत्रः १ अनन्याश्रितद्रव्यः १ पुत्रहीनस्य ६ रिक्थिनः १ ॥

योजना-रिक्थग्राहः तथैव योषिद्ग्राहः अनन्याश्रितद्रव्यःपुत्रः ऋणं दाप्यः- पुत्रहीनस्य रिक्थिनःऋणं दाप्याः ॥

तात्पर्यार्थ-दूसरेका द्रव्य क्रय आदिके विना जो अपना हो जाय उसे रिक्थ कहते हैं-जो विभागके द्वारा रिक्थको ग्रहण करै (ले) उसे रिक्थग्राह कहते हैं-उससे राजा

१ अप्राप्तव्यवहारश्चेत्स्वतंत्रोपि हि नर्णभाक्। स्वातंत्र्यं हि स्मृतं ज्येष्ठे ज्यैष्ठ्यं गुणवयःकृतम्।

२ अप्राप्तव्यवहारश्च दूतो दानोन्मुखो व्रती। विषमस्थाश्च नासेध्या नचैतानाह्वयेन्नृपः।

३ अतः पुत्रेण जातेन स्वार्थमुत्सृज्य यत्नतः। ऋणात्पिता मोचनीयो यथा न नरके मजेत्।

४ न ब्रह्माभिव्याहरेदन्यत्र स्वधानिनयनात्।

१ अत ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋणं दद्युर्यथाततः। अविभक्ता विभक्ता वा यस्तावद्वहते धुरम्।

२ ऋणमात्मीयवत्पित्र्यं देयं पुत्रैर्विभावितं। पैतामहं समं देयमदेयं तत्सुतस्य तु।

ऋणको दिवावे-यह बात इससे कही गयी कि जो मनुष्य जिसके द्रव्यको रिक्थरूपसे ग्रहण करे उसीसे उसका किया ऋण दिवावे-और योषित् (भार्या)को जो ग्रहण करे उसे योषित्ग्राह कहते हैं उससेभी ऋणको दिवावे अर्थात् जो जिसकी भार्याको ग्रहण करे वही उसके किये ऋणको दे-योषित् इस लिये पृथक् लिखीहै कि वह बांटनेका द्रव्य न होनेसे रिक्थ नही हो सकती-जिसके मातापिताका द्रव्य अन्यके पास न पहुंचा हो ऐसे पुत्रसेभी राजा ऋणको दिवावे-और जो पुत्रसे हीन हो उसका ऋण रिक्थियोंसे दिवावे-और इनका समवाय (ये सब) होय तो पढनेके क्रमसे दिवावे कि प्रथम रिक्थग्राह-उसके अभावमें योषिद्ग्राह-उसके अभावमें पुत्र-ऋणदे कदाचित् कोई शंकाकरे कि इनका समूहही नही होसकता भाई और पितर पिताके रिक्थके भागी नहीं होते किंतु पुत्रही होताहै इस वचनसे पुत्रके होते अन्य रिक्थका ग्रहणही नही कर सकता और योषित्का ग्रहभी नही हो सकता क्योंकि यह मनु (अ.५श्लो.१६२) का वचनहै कि साध्वी स्त्रियोंका दूसरा भर्ता कहीं नहीं कहा-और पुत्रसे पिताका ऋण दिवावे यहभी नही हो सकता-क्योंकि पुत्र पौत्र ऋणको दें यह कह आयेहैं अनन्याश्रित द्रव्य (जिसके माता पिताका द्रव्य अन्यको नमिला हो) यह विशेषणभी ठीक नहीहै अर्थात् अनर्थकहै- पुत्रके होते द्रव्य अन्यके आश्रयहोही नही सकता और होयभीतो रिक्थग्राही इससेही काम चल सके था-पुत्रहीनका ऋण रिक्थी (हिसेदार) दें यहभी नकहना चाहिये-पुत्रके होतेभी पच रिक्थग्राही ऋणदें-पुत्रके न होनेपर तो अवश्यदें यह सिद्धही था-इन सब शंकाओंका समाधान कहतेहैं कि पुत्रके होतेभी रिक्थका ग्राही अन्य हो सकताहै क्योंकि क्लीब अंधे बधिर ये पुत्रभीहैं परंतु रिक्थके ग्राही नहीं हो सकते-सोई क्लीव आदिकोंको क्रमसे पढकर यह कहेंगे कि अंशसे हीन इनका भरण (पालन) करे-तैसेही सवर्णाका पुत्रभी अन्याय वृत्तिहोय तो अंशका भागी नही होता इस गौतमके वचनसे पुत्रभी रिक्थका ग्राही नही हो सकता-इससे नपुंसक आदि पुत्रोंके रहते और सवर्णाके पुत्रके अन्यायवृत्ति होनेपर पितृव्य और पितृव्यके पुत्र रिक्थग्राही हो सकतेहैं-यद्यपि शास्त्रके विरोधसे योषिद्ग्राह नहीं होसकता तथापि जिसनें शास्त्रके निषेधको न माना वह पूर्व पतिके किये ऋण दूरकरनेका अधिकारी होही सकताहै और वह योषिद्ग्राह होताहै जो चारस्वैरिणियोंमें पिछलीको-और तीन पुनर्भूओंमें पहिलेको ग्रहण करे-सोई नारदनें कहीहै कि परपूर्वा

१ अभ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ।

२ नद्दिर्याय सार्धानां प्रतिष्ठतोऽपि दृश्यते ।

१ भर्तव्यास्तु निरंशकाः ।

२ सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तिर्नलभेतैकेषाम् ।

३ परपूर्वाः स्त्रियस्त्वन्याः सप्त प्रोक्ता यथाक्रमम् । पुनर्भूस्त्रिविधा तासां स्वैरिणी तु चतुर्विधा ॥ कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता । पुनर्भूः प्रथमा नाम पुनःसंस्कारकर्मणा ॥ देशधर्माननवेक्ष्य स्त्री गुरुभिर्या प्रदीयते । उत्पन्नसाहसान्यस्मै सा द्वितीया प्रकीर्तिता । असत्सु देवरेषु स्त्रीबांधवैर्या प्रदीयते ॥ सवर्णाय सपिंडाय सा तृतीया प्रकीर्तिता । स्त्री प्रसूताऽप्रसूता वा पत्यावेव तु जीवति ॥ कामात्समाश्रयेदन्यं प्रथमा स्वैरिणी तु सा ॥ कौमारं पतिमुत्सृज्य या त्वन्यं पुरुषं श्रिता ॥ पुनः पत्युर्गृहं यायात्सा द्वितीया प्रकीर्तिता ॥ मृते भर्तरि तु प्राप्तान् देवरादीनपास्य या । उपगच्छेत्परं । कामात्सा तृतीया प्रकीर्तिता ॥ प्राप्ता देशाद्धनक्रीता क्षुत्पिपासातुरा च या । तवाहमित्युपगता सा चतुर्थी प्रकीर्तिता ॥ अंतिमा स्वैरिणीनां या प्रथमा च पुनर्भुवां । ऋणं तयोः पतिकृतं दद्यात्तामुपाश्रितः ।

संतानसे हीन स्त्रीका जो ग्राही उससे ऋण दिवावे– यही नारदनें कहा है कि धन स्त्रीके हरनेवाले और पुत्र इनमें वही ऋणका भागी होता है जो धनको ले–स्त्री और धनके हारी न होंयतो पुत्र–और धनहारी और पुत्र न होंयतो स्त्रीके हरनेवाला ऋणका भागी होता है– और स्त्रीहारीके अभावमें पुत्र और पुत्रके अभावमें स्त्रीहारी ऋणका भागी होता है–इस विरोधका परिहार (हटाना) पूर्वके समान जानना– पुत्रहीनस्य रिक्थिनः– इसका अन्यभी अर्थ है कि ये धनहारी स्त्रीहारी पुत्र किसके ऋणको दें इस अपेक्षामें यह कह सकते हैं कि उत्तमर्णके ऋणकोदें–उत्तमर्णके अभावमें उसके पुत्र आदिके और पुत्र आदिके अभावमें किसके ऋणको दें यह जब अपेक्षा हुई तब यह वचन है कि पुत्रहीनस्य रिक्थिनः– पुत्र आदि वंशसे हीन उत्तम वर्णका जो धन ग्रहण करनेके योग्यहै उसधनको सपिंड आदि ऋणकोदें–सोई नारदनें कहा है कि यदि ब्राह्मणके वंशमें देने योग्य कोई नही अर्थात् धनका भागी नहो– तो वह धन अपने सकुल्योंको वा अपने बंधुओंको देदे–यदि सकुल्य–संबंधी–बांधवभी न होंयतो ब्राह्मणोंको देदे–ब्राह्मणभी न होयतो राजा जलमें फेंकदे ॥

भावार्थ–जो रिक्थका ग्राही और योषित् (स्त्री) का जो ग्राही–और जिसके मातापिताका द्रव्य अन्यको न मिला हो वहपुत्र–ऋणकोदें–और पुत्रहीनके धनको रिक्थी (अंशके भागी) दें– ॥ ५१ ॥

भ्रातॄणामथदंपत्योः पितुः पुत्रस्य चैवहि ।
प्रातिभाव्यमृणंसाक्ष्यमविभक्तेनतुस्मृतम् ॥

पद–भ्रातॄणाम् ६ अथ–दम्पत्योः ६ पितुः ६ पुत्रस्य ६ च–एव–हि–प्रातिभाव्यम् १ ऋणम् १ साक्ष्यम् १ अविभक्ते ७ न–तु–स्मृतम् १ ॥

योजना–भ्रातॄणां दम्पत्योः चपुनः पितुः पुत्रस्य अविभक्ते द्रव्ये प्रातिभाव्यं ऋणं साक्ष्यं मन्वादिभिः नतु स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ– भ्राता–भार्या और पति–पिता और पुत्र– इनका अविभक्त (इकट्ठे) धनमें प्रातिभाव्य (जामनी) ऋण और साक्ष्य परस्पर–मनुआदिकोंनें नही कहीं है प्रत्युत साधारण होनेसे निषेध किया है–प्रातिभाव्य और साक्षी करनेसे तो पक्षमें द्रव्यके व्ययका अवसान (अंत) है–और ऋण अवश्य देनेयोग्य होगा– यह बातभी परस्परकी अनुमतिके अभावमें समझनी–परस्परकी अनुमतिसे तो अविभक्तोंकेभी प्रातिभाव्य आदि होतेहैं– और विभागके पीछे तो परस्परकी अनुमतिके विनाभी प्रातिभाव्यआदि होतेहैं– कदाचित् कोई शंका करै कि भार्या और पतिको प्रातिभाव्य आदिका निषेध विभागसे पहिले ठीक नही है क्योंकि उनका विभाग नही हो सकता इससे विशेषण (विभागसे पहिले) अनर्थ कहै उनके विभागका अभाव आपस्तंबनें दिखाया है कि स्त्री और पुरुषका विभाग नहीहै– यह सत्य है– वेद और धर्मशास्त्रमें उक्त अग्निसे सिद्ध होनेवाले कर्मोमें और उन कर्मोंके फलोंमें विभागका अभावहै कुछ संपूर्ण कर्म और द्रव्योंमें नही सोई दिखाते हैं कि जाया और पतिका विभाग

१ धनस्त्रीहारिपुत्राणामृणभाग्यो धनं हरेत् । पुत्रोऽसतोः स्त्रीधनिनोः स्त्रीहारी धनपुत्रयोः ।

२ ब्राह्मणस्य तु यद्देयं सान्वयस्य च नास्ति चेत् निर्वपेत्तत्सकुल्येषु तदभावे स्वबन्धुषु ॥ यदा तु न सकुल्याः स्युर्न च संबंधिबान्धवाः । तदा दद्याद्द्विजेभ्यस्तु तेष्वसत्स्वप्सु निक्षिपेत् ।

१ जायापत्योर्न विभागो विद्यते ।

२ जायापत्योर्नविभागः–पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु तथा पुण्यफलेषु ।

नही है क्यों नही है यह जब अपेक्षा हुई तो यह हेतु कहाहै कि विवाहसे स्त्री पुरुषका सहत्व (एकता) कर्म और पुण्यके फलोंमें होताहै जिससे विवाहके प्रारंभसे कर्मोंमें सहत्व शास्त्रमें सुना जाता है जायापति अग्निका आधान करें तिससे आधानमें सह (इकट्ठे)अधिकारसे आधीन की हुई अग्निमें किये कर्मोंमेंभी सह अधिकार है तैसेही स्मार्तकर्म विवाहके अग्निमें करें इत्यादि स्मृतिसे विवाहमें मिली अग्निमें जो कर्म होते हैं उनमेंभी सह अधिकार है इससे दोनोंप्रकारकी अग्निके निरपेक्ष जो पूर्त (वापी कूप तडाग आदि) हैं उनमें जाया पतिका पृथक्२ २ ही अधिकार है- यह सिद्ध भया-तैसेही पुण्योंके फल स्वर्ग आदिमेंभी जायापतिका सहत्व श्रुतिमें है कि स्वर्गमें अजर ज्योतिका आरंभ दोनों करो- यह जानने योग्य है कि जिन पुण्यकर्मोंमें सह अधिकार है उनके फलमेंभी सहत्व है- कुछ भर्ताकी आज्ञासे किये हुये पूर्त वापी कूप आदि कर्मोंके फलोंमेंभी सहत्व है यह नही-कदाचित् कोई शंका करे कि द्रव्यके स्वामित्वमेंभी सहत्व कहाहै द्रव्यके स्वीकारमें सहत्व है क्योंकि भर्ता परदेशमें हो और नैमित्तिक दान करे तो वह किसी शास्त्रकारनेभी चोरी नही कही है- यह सच है परंतु इस वचननें पत्नीको द्रव्यकी स्वामिता दिखाई कुछ विभागका अभाव नही दिखाया- जिससे-द्रव्यपरिग्रहेषु च-यह कहकर उसमें कारण कहाहै कि भर्ता परदेशमें हो किसी निमित्तमें दान अवश्य करना है वा अतिथिभोजन भिक्षा देनेमें स्तेय (चोरी)कहींभी मनुआदिकोंनें नही कही तिससे भार्याकोभी द्रव्यका स्वामित्व है अन्यथा चोरी हो जाती तिससे भर्ताकी इच्छासे भार्याके द्रव्यकाभी विभाग होताहै अपनी इच्छासे नही सोई कहेंगे कि यदि समान अंश करे तो पत्नियोंकोभी समान भाग करे ॥

भावार्थ-भाई-स्त्री और पति-पिता और पुत्र इनका परस्पर-अविभक्त द्रव्यमें प्रातिभाव्य-ऋण-साक्षी होना-ये तीन नही कहे हैं ॥ ५२ ॥

दर्शनेप्रत्ययेदानेप्रातिभाव्यंविधीयते ॥
आद्यौतुवितथेदाप्याविततरस्यसुताअपि ५३

पद-दर्शने ७ प्रत्यये ७ दाने ७ प्रातिभाव्यं१ विधीयते क्रि-आद्यौ१ तु- वितथे७ दाप्यौ १ इतरस्य ६ सुताः १ अपि- ॥

योजना-दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते- वितथे आद्यौ दाप्यौ-इतरस्य सुता अपि दाप्याः ॥

तात्पर्यार्थ-प्रातिभाव्य उसको कहते हैं जो विश्वासके लिये दूसरे पुरुषके संग समय (इकरार) करना वह विषयके भेदसे तीन प्रकारका होता है जैसे कि दर्शनमें इसको मैं समयपर दिखा दूंगा-दूसरा प्रत्यय (विश्वास)में जैसे मेरे विश्वाससे इसको धन देदो यह तुमारे संग ठगाई न करेगा क्योंकि यह उन (प्रतिष्ठित)का पुत्र है इसकी भूमि सुंदर है इसके पास उत्तम ग्राम है-तीसरा दानमें जैसे यदि यह न देगा तो मैं दूंगा-इन पूर्वोक्त दर्शन आदिमें प्रातिभाव्य (जामिनी) कहा है- इनतीनोंमें वितथ (अन्यथा होना) होनेपर अर्थात् नदिखानेके और विश्वास न करे तो राजा दर्शन और विश्वासके जो प्रतिभूहैं उनसे उत्तमर्णका जो धन हो वह दिवावै-और दानका जो प्रतिभू

१ जायापती अग्निमादधीयाताम् ।
२ कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ ।
३ दिवि ज्योतिरजरमारभेताम् ।
४ द्रव्यपरिग्रहेषु च नहि भर्तुर्विप्रवासे नैमित्तिके दाने स्तेयमुपदिशति ।

है उसके तो पुत्रोंसेभी दिवावे यदि अधमर्ण अन्यथा करे शठता वा निर्धन होनेसे न दे सके तो प्रतिभूके सही पुत्रभी दें-इतरस्य सुताः यह कहनेसे पहिले दोनों प्रतिभुओंके पुत्रोंसे न दिवावे-और सुता यह कहनेसे पौत्रोंसे न दिवावे-यह दिखाया है ॥

भावार्थ-दर्शन- विश्वास-और देना-इनमें प्रतिभू (जामिन) करना कहाहै वितथ (झूंट) होनेपर पहिले दोनोंसेही धनको राजा दिवावे-और इतरके तो पुत्रोंसेभी दिवावे ॥ ५३ ॥

दर्शनप्रतिभूर्यत्रमृतः प्रात्ययिकोपिवा ।
नतत्पुत्राऋणंदद्युर्दद्युर्दानाययः स्थितः ॥

पद-दर्शनप्रतिभूः १ यत्र-मृतः १ प्रात्ययिकः १ अपि-वा-न-तत्पुत्राः १ ऋणं२ दद्युः क्रि- दद्युः क्रि- दानाय ४ यः १ स्थितः १ ॥

योजना-यत्र दर्शनप्रतिभूः वा प्रात्ययिकः अपि मृतः तत्पुत्राः ऋणं न दद्युः यः दानाय स्थितः तस्य पुत्राः ऋणं दद्युः ॥

तात्पर्यार्थ-जब दर्शन और विश्वासके प्रतिभू स्वर्गमें चले गये हों उनके पुत्र प्रातिभाव्यसे चले आये धनको नदें-और जो दानका प्रतिभू था वह यदि स्वर्गमें चला जाय तो उसके पुत्रभी उक्तधनकोदें पौत्र नदें-और पुत्रभी मूलहीदें वृद्धिको नदें क्योंकि व्यास का यह वचन है कि पितामहके ऋणको पौत्रदें और प्रातिभाव्य (जामिनी)से चले आये धनको पुत्र सम (मूलमात्र)दे और उनके पुत्र नदें अर्थात् प्रातिभाव्यको छोडकर पितामहनें जितना ऋण लियाहो उतनाही दे वृद्धि नदे-तैसेही पुत्रभी प्रातिभाव्यसे चले आये पिताके ऋणको समही दे उन पूर्वोक्त पुत्र और पौत्रके जो पुत्र (पौत्रप्रपौत्र) हैं वे दोनों प्रातिभाव्यके और अप्रातिभाव्यके ऋणको नदें यदि उन्होंनें धन न पायाहो और जो यह स्मृतिहै कि खादक (अधमर्ण) धनसे हीन हो और लग्नक(प्रतिभू)यदि धनवान् होयतो वह मूलही दे वृद्धि नदे-इसकाभी यह अर्थ करना कि लग्नक यदि वित्तवान् (धनी)मरगया होय तो उसका पुत्र मूलहीदे वृद्धि नदे-और जहां दर्शनका प्रतिभू वा प्रत्ययका प्रतिभू पूरा२ बंधक (प्रातिभाव्यका द्रव्य)अपने पास रखकर प्रतिभू हुये हों वहां तो उनके पुत्रभी उसी बंधकमेंसे प्रातिभाव्यके ऋणको अवश्यदें सोई कात्यायनने कहाहै कि जहां बंधकको लेकर अधमर्णके दर्शनमें स्थितहो अर्थात् रुपया लेकर हाजिर जामिनीकरै-पिताके मरने वा दूरदेशमें जानेपर पुत्रसेभी उसी बंधकके धनमेंसे ऋणको राजा दिवावे दर्शन विश्वासका उपलक्षण है ॥

भावार्थ-दर्शन और प्रत्यय (विश्वास) का प्रतिभू जहां मरगयाहो-उनके पुत्र ऋण नदें-जो दानका प्रतिभू था उसके तोपुत्रभी ऋणको दें ॥ ५४ ॥

बहवः स्युर्यदिस्वांशैर्दद्युःप्रतिभुवोधनम् ।
एकच्छायाश्रितेष्वेषुधनिकस्ययथारुचि५६

पद-बहवः१ स्युः क्रि- यदि- स्वांशैः३ दद्युः क्रि- प्रतिभुवः१ धनम् २ एकच्छायाश्रितेषु७ एषु७ धनिकस्य ६ यथारुचि-॥

योजना-यदि बहवः प्रतिभुवः स्युः तर्हि स्वांशैः धनं दद्युः एषु एकच्छायाश्रितेषु सत्सु धनिकस्य यथारुचि तथा दद्युः ॥

१ ऋणं पैतामहं पौत्रैः प्रातिभाव्यागतं सुतैः । समं दद्यात्तत्सुतौ तु न दाप्याविति निश्चयः ।

१ खादको वित्तहीनः स्याल्लग्नको वित्तवान्यदि । मूलं तस्य भवेद्देयं न वृद्धिं दातुमर्हति ।

२ दर्शनेप्ता बंधकं यत्र दर्शनेस्य स्थितो भवेत् । विना पित्रा धनात्तस्माद्दाप्यः स्यात्तद्धणं सुतः ।

तात्पर्यार्थ-यदि एक प्रयोगमें दो वा बहुत प्रतिभू हों तो वे सब ऋणको बांटकर अपने २ भागके अनुसार धनको दें-यदि वे सब एकच्छायामें आश्रितहों अर्थात् अधमर्णके समान पृथक् २ पूर्णधनके प्रतिभूहों जैसे अधमर्ण संपूर्ण धनको देता वैसेही वेभी संपूर्णधनके दिवानेके लिये पृथक्२ प्रतिज्ञा-करें- इस प्रकार दर्शन और प्रत्ययमें एक-छायाश्रित होनेपर-धनिक (उत्तमर्ण)की रुचिके अनुसारदें-इससे जो धनिक प्रतिभूओंके धनकी अपेक्षासे अपने द्रव्यको चाहै तो उससेही सब धनको राजा दिवादे भागके अनुसार नही-उन एकच्छायाश्रितोंमेंसे यदि कोई देशांतरमें चला गयाहो और उसका पुत्र समीपमें हो तोभी उत्तमर्णकी इच्छाके अनुसार सब धनदे-यदि कोई मरगया होय तो उसका पुत्र वृद्धिसहित अपने पिताका भागदे- सोई कात्यायनने कहा है कि एकच्छायामें जो प्रविष्टहैं उनमें वही धन दे जो देने योग्य दीखे-जो परदेशमें चला गया हो उसका पुत्र संपूर्णधनको और जो मरगयाहो उसका पुत्र सम(मूलमात्र)धनको दे ॥

भावार्थ-बहुत प्रतिभू होंयतो अपनें २ भागके अनुसार उत्तमर्णको धनदें यदि वे पृथक् २ संपूर्ण धन देनेके प्रतिभू होजांयतो उत्तमर्णकी इच्छाके अनुसार धनको दें॥५५॥

प्रतिभूर्दापितोयत्तुप्रकाशंधनिनोधनम् ।
द्विगुणंप्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्यतद्भवेत् ॥

पद-प्रतिभूः १ दापितः १ यत् २ तु-प्रकाशं २ धनिनः ६ धनम् २ द्विगुणं १ प्रतिदातव्यम् १ ऋणिकैः ३ तस्य ६ तत्१ भवेत् क्रि- ॥

योजना-धनिनः यत् धनम् प्रतिभूः प्रकाशं दापितः-ऋणिकैः (अधमर्णैः) तस्य तत् धनम् द्विगुणम् प्रतिदातव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-प्रतिभूको ऋण देनेकी विधिको कहकर अब प्रतिभूने जो दियाहो उसकी प्रतिक्रिया (लौटाना) कहतेहैं-जिस द्रव्यको प्रतिभू वा उसका पुत्र उत्तमर्णकी पीडा (तकाजा) से प्रकाश (सबके प्रत्यक्ष) उत्तमर्णको राजाकी आज्ञासे और फिर दूनेके लोभसे दें ऋणिक (अधमर्ण) उस प्रतिभूको उस धनसे दूना धनदे-सोई नारदने कहाहै कि धनिकसे पीडित प्रतिभू जो धनदे-ऋणिक उस धनको दूना प्रतिभूको दे-वहभी कालविशेषकी अपेक्षाको छोडकर शीघ्रही दूना देना क्योंकि यह वचन इसीलियेहै-और यहभी सुवर्णके विषयमें समझना-कदाचित् कोई शंका करे कि यह वचन दूनेको बोधक करताहै-इससे पूर्वोक्त कालकी कला (सूद)के अबाधसेभी लग सकताहै-जैसे जातेष्टिकी विधि शुचित्वके अबाधसे होतीहै-और जब यह पक्षहै कि उसी समय वृद्धि सहित दे तो पशु स्त्री इनकी संतान सद्यः नही हो सकती इससे मूल्यका दानही पाताहै-सो शंका ठीकनही-क्योंकी वस्त्र दान सुवर्ण इनकी क्रमसे चौगुनी, तिगुनी, दूनी अधिकसे अधिक वृद्धि होतीहै इसे पूर्वोक्त वचनसेही कालकी कलाके क्रमसे दूने आदिकी सिद्धि होनेसे दूने मात्रकाही यह वचनभी विधान करेगा तो अनर्थक हो जायगा-और पशु स्त्रियोंका तो कालक्रमके पक्षमेंभी संततिका अभाव होय तो स्वरूप (वस्तु) काही दान होताहै-जब प्रतिभूभी द्रव्यदेनेके अनंतर कुछ कालके पीछे अधमर्णसे

१ एकच्छायां प्रविष्टानां दाप्यो यस्तत्र दृश्यते । प्रोषिते तत्सुतः सर्वं पित्र्यं तु मृते समम् ।

१ य चार्थं प्रतिभूर्दद्याद्धनिकेनोपपीडितः ऋणिकस्तं प्रतिभुवे द्विगुणं प्रतिदापयेत् ।

२ वस्त्रदानहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा परा ।

मिलजाय तब संततिभी हो सकतीहै और दी जातीहै-अथवा पहिली हुई संतान सहित पशु स्त्रियोंको दे देगा यह पूर्वोक्त कथन ठीक नही-और जो प्रातिभाव्यका ऋण प्रतिभूने प्रीतिसे दियाहो उसकी मांगनेसे पहिले वृद्धि नहीहै सोई कहाहै कि जो धन प्रीतिसे दियाहै वह मांगनेके विना नही बढता यदि मांगनेपर न दिया होय तो सौ रुपयेपर पांच रुपये बढतेहैं-इससे नहीं मांगेभी इस प्रीतिसे दिये धनको देनेके दिनसे लेकर कालके क्रमसे तबतक बढतीहै जबतक दूना धनहो-यह बात इस वचनसे कही-सोभी ठीक नही-क्योंकि यह अर्थ इस वचनसे प्रतीत नही होता किंतु दूनादे इतनाही प्रतीत होताहै-तिससे कालके क्रमकी अपेक्षाको छोडकर इस वचनके आरंभसामर्थ्यसे दूना देना यह बहुत ठीक कहा ॥

भावार्थ-राजाने सब जनोंके प्रत्यक्षमें जो धनीको प्रतिभूसे धन दिवायाहो उससे दूना धन प्रतिभूको ऋणिक (अधमर्ण) दे ॥ ५६ ॥

संततिः स्त्रीपशुष्वेवधान्यंत्रिगुणमेवच ।
वस्त्रंचतुर्गुणंप्रोक्तंरसश्चाष्टगुणस्तथा ५७ ॥

पद-संततिः १ स्त्रीपशुषु ७ एव-धान्यं १ त्रिगुणं १ एव-च-वस्त्रं १ चतुर्गुणं १ प्रोक्तं १ रसः १ च- अष्टगुणः १ तथा- ॥

योजना-स्त्रीपशुषु संततिः-चपुनः धान्यं त्रिगुणं-वस्त्रं चतुर्गुणं, प्रोक्तं-तथा रसः अष्टगुणः प्रोक्तः ॥

तात्पर्यार्थ-प्रतिभूने जो दिया वह सर्वत्र दूना पाया अब उसका अपवाद कहतेहैं-दूने सुवर्णके समान स्त्री पशु आदिकोंको भी पूर्वोक्त वृद्धिके अनुसार ही राजा दिवावै यह श्लोक तो व्याख्यातही है अर्थात् सीधाहै-स्त्री पशुओंकी संतानको-तिगुने अन्नको चौगुने वस्त्रको आठगुने रसको राजा अधमर्णसे प्रतिभूको दिवावै-जिस द्रव्यकी जितनी वृद्धि अधिकसे अधिक कहीहै प्रतिभूके दिये हुये उतने द्रव्यको खादक (अधमर्ण) उस वृद्धिसहित कालविशेषकी अपेक्षाको छोडकर शीघ्रही देदे यह तात्पर्यार्थहै-जब दर्शनका प्रतिभू प्राप्तहुये समयपर अधमर्णको नदिखा सके तब उसको अधमर्णके ढूंढनेके लिये तीन पक्षकी अवधिदे-तीनपक्षमें यदि उसै दिखादे तो प्रतिभू छोडने योग्यहै नदिखासके तो उससे प्रस्तुत (दावेका) धन उत्तमर्णको राजा दिवावै-क्योंकि कात्यायनका यह वचनहै कि नष्टके ढूंढनेके लिये अधिकसे अधिक तीन पक्षदें उनमें यदि वह दिखादे तो प्रतिभू छोडने योग्यहै-यदि प्रतिभू उसै नदिखा सके और अवधिका काल बीतजाय तो उस निबंधको दे-यही विधि अधमर्णके मरनेपरहै-लग्नक (प्रतिभू) विशेषका निषेधभी कात्यायनेनेही कहाहै-कि स्वामी-शत्रु स्वामीका अधिकारी निरुद्ध(कैदी)दंडित संदिग्ध रिक्थी-मित्र-नैष्ठिक-ब्रह्मचारी-राजकार्यमें नियुक्त-संन्यासी-जो धनीका धन न दे

१ प्रीतिदत्तं तु यद् किंचिद्वर्धते न त्वयाचितम् । याच्यमानमदत्तं चेद्वर्धते पंचकं शतम् ।

१ नष्टस्यान्वेषणार्थं तु दाप्यं पक्षत्रयं परम् । यद्यसौ दर्शयेत्तत्र मोक्तव्यः प्रतिभूर्भवेत् ॥ काले व्यतीते प्रतिभूर्यदि तं नैव दर्शयेत् ।निबंधं दापयेत्तत्र प्रेते चैष विधिः स्मृतः ।

२ न स्वामी न च वै शत्रुः स्वामिनाधिकृतस्तथा । निरुद्धो दंडितश्चैव संदिग्धश्चैव न क्वचित् ॥ नैव रिक्थी न मित्रं च नचैवात्यंतवासिनः । राजकार्यनियुक्तश्च येन प्रव्रजिता नराः ॥ न शक्तो धनिने दातुं धनं राज्ञे च तत्समम् । जीवन्यस्य पिता यस्य तथैवेच्छाप्रवर्तकः नाविज्ञातो ग्रहीतव्यः प्रतिभूः स्वक्रिया प्रति ।

सके– जो उसके समान राजाको दंड न दे सके–जिसका पिता जीताहो–इच्छासे जो वर्ताव करे–अज्ञात–इतने प्रतिभू अपनी क्रियामें नहीं लेने–इति प्रतिभूविधिः–

धनके प्रयोगमें विश्वासके हेतु दो हैं–एक प्रतिभू और दूसरा आधि यह नारदने कहा है उनमें प्रतिभूका निरूपण किया अब आधिका निरूपण करते हैं–आधि (गिरवी वा रहन) वह है जो ग्रहण किये धनके ऊपर विश्वासके लिये अधमर्ण उत्तमर्णके यहां रखदे –वह आधि दो प्रकारका है एक कृतकाल और दूसरा अकृतकाल अर्थात् अवधि सहित और निरवधिक–फिर प्रत्येक दोनों दो दो प्रकारकी है गोप्य और भोग्य–सोई नारदने कहाहै कि अधिकृत जो की जाय (रखी जाय) उसे आधि कहते हैं उसके दो लक्षण जानने–कृतकाल छुटानें योग्य है–और यावद्देयोद्यत (जो ऋणके देनेंतक रहै) वह फिर दो प्रकारका है गोप्य और भोग्य–कृतकाल वह है जिसमें यह समय आधान (रखना)के समयही हो जाय कि दीपमालिका आदि अमुक कालमें इस आधिको मैं छुटालूंगा अन्यथा आपकी ही होजायगी–इस प्रकार कहे कालमें अपने अपने पास लौटाने (छुटाने) योग्य है–दूसरी इतने लिया हुआ धन न पहुंचे तबतक रहती है–इससे–यावद्देयोद्यत–कहाती है यह गोप्य रक्षा करने योग्य होती है ॥

भावार्थ–स्त्री और पशुओंकी संतान–तिगुना अन्न–चौगुना वस्त्र और आठगुना रस प्रतिभूको देना कहा है ५७ ॥

१ त्रिलभेदेन द्वाभ्य प्रतिभूरपिरेव च ।

२ अधिक्रियत इत्याधिः सविज्ञेयो द्विलक्षणः। कृतकालोऽपनेयश्च यावद्देयोद्यतस्तथा॥स पुनर्द्विविधः प्रोक्तो गोप्यो भोग्यस्तथैव च ।

आधिः प्रणश्येद्विगुणेधनेयदिनमोक्ष्यते।
कालेकालकृतोनश्येत्फलभोग्योननश्यति

पद–आधिः १ प्रणश्येत् क्रि–द्विगुणे७ धने७ यदि ऽ–न ऽ–मोक्ष्यते क्रि–काले७ कालकृतः १ नश्येत् क्रि–फलभोग्यः १ नऽ–नश्यति क्रि– ॥

योजना–यदि न मोक्ष्यते तर्हि प्रयुक्ते धने द्विगुणे सति आधिः प्रणश्येत्–कालकृतः काले नश्येत्–फलभोग्यः न नश्यति– ॥

तात्पर्यार्थ–प्रयुक्त (दियाहुआ) धन जब आपनी कीहुई वृद्धिसे दूना कालके *क्रम सूदसे होजाय और अधमर्ण द्रव्यको* देकर आधिको न छुटावै तो आधि नष्ट होजातीहै–अधमर्णका धन देनेवाले (उत्तमर्ण) का स्व(धन) होताहै–और जो कृतकालहै वह निश्चित किया काल[१] दूनेसे पहिले वा पीछे पूरा होजाय तो–नष्ट होजाताहै–और जिस क्षेत्र आराम आदिके फलको उत्तमर्ण भोगे वह कदाचित्भी नष्टनहीं होती–कृतकाल आधि गोप्य हो चाहै भोग्यहो उसका कालके बीतनेपर नाश कहा है कि कालकृत आधि कालपर नष्ट हो जाती है–और जो अकृतकाल है और भोग्यभी है उसके नाशका अभाव–फल भोग्य आधि नष्ट नहीं होती–इस कहनेसे कहा–अब परिशेषसे–आधिः प्रणश्येत्–यह वचन अकृतकाल और गोप्य आधिके विषयमें रहा–दूना धन होनेपर और निश्चित कालके बीतनेपरभी आधिके नाशमें इस बृहस्पतिके वचनसे चतुर्दश(१४)दिनकी प्रतीक्षा उत्तमर्ण करे कि सुवर्ण आदि धन दूना होजाय और की हुई अवधि पूरी होजाय तो धनका स्वामी बंधक

१ हिरण्ये द्विगुणीभूते प्राप्ते काले कृतावधेः बंधकस्य धनी स्वामी द्विसप्ताहं प्रतीक्ष्य च॥ तदन्तरा धनं दत्ता ऋणी बंधमवाप्नुयात् ।

गोप्य आधि नष्ट होगई होय तो पूर्वके समान देनी और भोगी होय तो वृद्धि (सूद) भी छोड देनी–यदि भोग्य आधि नष्ट होगयी होय तो पूर्वके समान करके देनी उसमें वृद्धि होय तो वह छोड देनी–और जो आधि विनष्ट अत्यंत नाशको प्राप्त होगई हो वहभी मूल्य आदिकेद्वारा देनी उसके देनेपर उत्तमर्णको वृद्धि सहित मूल मिलताहै–यदि नदे तो मूलका नाश होताहै क्योंकि यह नारदका वचनहै कि दैव और राजाके कियेको छोडकर आधिके विनाशमें मूलका नाश होता है–अग्नि जल देशमे उपद्रव आदि दैवके किये और अपने अपराधको छोडकर राजाके किये विनाशको छोडकर विनष्ट आधिमें मूलका नाश होताहै और दैव राजाके किये विनाशमें तो अधमर्ण वृद्धि सहित मूल्य दे वा अन्य आधि रखदे–सोई कहा है कि क्षेत्रको स्रोत नष्ट कर दे वा राजा हरले तो अन्य आधि करदेनी अथवा धनीको धन देदेना–इसमें स्रोतसे सब दैवी उपद्रव लेने–

भावार्थ–गोप्य आधिके भोगने और उपकार करनेवाली–और हानिको प्राप्तहुई आधिमें वृद्धि नही होती और नष्ट (बिगडा) हुई आधि देने योग्यहै–और दैव और राजाके किये विनाशको छोडकर विनष्ट हुई आधिभी देने योग्य है ॥ ५९ ॥

आधेःस्वीकरणात्सिद्धीरक्ष्यमाणो-
प्यसारताम् । यातश्चेदन्यआ-
धेयोधनभाग्वाधनीभवेत् ॥ ६० ॥

पद–आधेः ६ स्वीकरणात् ५ सिद्धिः १ रक्ष्यमाणः १ अपि- असारताम् २ यातः १ चेत्- अन्यः १ आधेयः १ धनभाक् १ वा- धनी १ भवेत् क्रि– ॥

योजना–स्वीकरणात् आधेः सिद्धिः भवति–रक्ष्यमाणः अपि असारतां यातः चेत् अन्यः आधेयः–वा धनी धनभाक् भवेत्

तात्पर्यार्थ–भोग्य और गोप्यरूप आधिकी सिद्धि स्वीकार (उपभोग) से होती है कुछ साक्षी और लेख्यमात्रसे नही और नाममात्रसेभी आधि नही होती– सोई नारदने कहाहै कि आधि दो प्रकारकाहै जंगम और स्थावर इस दोनों प्रकारकी आधिकी सिद्धि भोगसेहै अन्यथा नही–इसका फल यहहै कि आधि प्रतिग्रह क्रीतमें पहिली क्रियाको जो अत्यंत बलवती कह आये है वहां स्वीकारसे हीन पहिलीभी बलवती नही होती–यह आधि प्रयत्नसे रक्षा करनेभी असारताको प्राप्त होजाय अर्थात् वृद्धि सहित मूल द्रव्यदेने योग्य न रहै तो अन्य अधिकार देनी अथवा धनीको धन देदेना–रक्षा करनेसेभी असारताको प्राप्त होजाय यह कहनेसे यह जनाया कि धनी आधिकी प्रयत्नसे रक्षा करै ॥

भावार्थ–स्वीकार करनेसे आधिकी सिद्धि होतीहै–यदि रक्षा की हुईभी आधि असारताको प्राप्त होजाय तो अन्य आधि रखनी वा धनीको धन देने ॥ ६० ॥

चरित्रबंधककृतंसवृद्ध्या दापयेद्धनम् ।
सत्यंकारकृतंद्रव्यंद्विगुणंप्रतिदापयेत् ६१॥

पद–चरित्रबंधककृतम् २ सवृद्ध्या ३ दापयेत् क्रि– धनम् २ सत्यंकारकृतं २ द्रव्यम् २ द्विगुणं २ प्रतिदापयेत् क्रि– ॥

१ विनष्टे मूलनाशः स्याद्दैवराजकृतादृते ।
२ स्रोतसापहृते क्षेत्रे राज्ञा चैवापहारिते । आधिरन्यः कर्तव्यो देय वा धनिने धनम् ।

१ आधिस्तु द्विविधः प्रोक्तो जंगमः स्थावरस्तथा । सिद्धिरस्योभयस्यापि भोगो यद्यस्ति नान्यथा ।

योजना–चरित्रबंधककृतं धनम् राजा सवृद्ध्या दापयेत्–सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत ॥

तात्पर्यार्थ–जो द्रव्य चरित्र (शोभना चरण) से जो बंधक उससे जो धन अपने वा पराये आधीन करदियाहै–यहँ उ- क्तही समझना–जहां धनीका अंतःकरण स्वच्छहै वहां बहुमूल्यभी द्रव्यको आधीन करके अधमर्णने अल्पही द्रव्य लियाहो वा अधमर्णका अंतःकरण स्वच्छ होनेसे जहां अल्प मोलकी आधि ग्रहण करके बहुतसा द्रव्य धनीने अधमर्णके आधीन करदिया हो उस धनको राजा वृद्धि सहित दिवादे– यह आशयहै कि एक रुपयाभी बंधक द्वि- गुण द्रव्य होने परभी नष्ट नहीं होता किंतु द्रव्यही देना चाहिये–तैसेही सत्यंकार- कृत (सत्यके करनेसे किया) अर्थात् बंधक देनेके समयमें ही यह कह दियाहो कि दूना द्रव्य होने परभी मैं दूना द्रव्यही दूंगा आधिका नाश न होगा–तब वह धन राजा दूना दिवावे–अन्यभी इस श्लोकका अर्थहै कि चरित्रही बंधक चरित्र शब्दसे गंगास्नान अग्निहोत्र आदिसे पैदा हुआ अपूर्व (पुण्यका संस्कार) लेतेहैं–जहां उस धर्म- रूप अपूर्वको आधि करके जो द्रव्य अपने आधीन कियाहो वहां वही द्विगुण द्रव्य देना आधिका नाश नहीं होता–आधिके प्रसंगसे अन्यभी कुछ कहतेहैं– सत्यंकारकृतम्– क्रय विक्रय (लेना देना) आदिकी व्यव- स्थाके निर्वाहार्थ जो अंगूठी आदि पराये हाथमें देदीहो यदि उस व्यवस्थाका अवलं- बन करे तो द्विगुण देना चाहिये–उसमेंभी यदि अंगूठी अर्पण करनेवाला व्यवस्थाका अवलंपन करे तो वह उस अंगूठीकोही देदे–यदि इतर व्यवस्थाको लंघे तो उसही अंगूठीको दूनी करके दे ॥

भावार्थ–चरित्रसे बंधक किया द्रव्य वृद्धि सहित धनीको राजा दिवावे–और सत्यंकार किये द्रव्यका दूना प्रतिदान राजा दिवावे ॥ ६१ ॥

उपस्थितस्यमोक्तव्यआधिःस्ते-
नोऽन्यथाभवेत् । प्रयोजकेसतिध-
नंकुलेन्यस्याधिमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

पद–उपस्थितस्य ६ मोक्तव्यः १ आधिः १ स्तेनः १ अन्यथाऽ– भवेत् क्रि–प्रयोजके ७ असति ७ धनं १ कुले ७ अन्यस्य ६ आधिं२ आप्नुयात् क्रि– ॥

योजना–उपस्थितस्य आधिः मोक्तव्यः अन्यथा स्तेनः भवेत्–प्रयोजके असति अन्य- स्य कुले धनं आधिं आप्नुयात् ॥

ता०भा०–धनको लेकर जो आधिके छुटानेको उपस्थित (आया) हो धनी उसकी आधिको छोडदे वृद्धिके लोभसे अपने पास नरक्खे–अन्यथा (नछोडे तो) स्तेन (चोर)के समान दंडके योग्य होताहै–यदि प्रयोक्ता (देनेवाला) समी- पमें नहोय तो वह धन, अन्यके कुलमें किसी आप्त(सज्जन)के हाथमें वृद्धि सहित रखकर अपने बंधकको ग्रहण करले ॥६२॥

तत्कालकृतमूल्योवातत्रतिष्ठेदवृद्धिकः ।
विनाधारणिकाद्वापिविक्रीणीतससाक्षिकं ॥

पद–तत्कालकृतमूल्यः १ वाऽ– तत्रऽ– तिष्ठेत् क्रि–अवृद्धिकः १ विनाऽ–धारणिका- त् ५ वाऽ–अपिऽ– विक्रीणीत क्रि–ससाक्षि- कम् २ ॥

योजना–वा ~~तत्कालकृतमूल्यः~~ आधिः अवृद्धिकः तत्र तिष्ठेत्–वा धारणिकात् विना ससाक्षिकं विक्रीणीत ॥

तात्पर्यार्थ–यदि प्रयोक्ताभी समीपमें नहो और उसके आप्तभी धनको नले अथवा

प्रयोक्ता समीप नहो और अधमर्ण आधिको बेचकर धन देना चाहे–उस समय आधिका मूल्य करके उसी धनीके पास उस आधिको वृद्धिसे रहित छोडदे उससे आगे वह फिर नही बढती–इतने धनी धनको लेकर उस आधिको छोडै वा इतने उसका मूल्य द्रव्य अधमर्णको नदे–जब ऋण देनेके समयमें ही यह निश्चय कर लियाहो कि दूना होनेपरभी धनको ही लेना आधिका नाश न होने पावे वहां दूना होनेपर *अधमर्ण समीपमें* न आवे तो उस अधमर्णके विनाभी-साक्षी और आप्त (सज्जन) मनुष्योंसमेत उस आधिको बेचकर धनी धनका ग्रहण करले–*यहां वा शब्द विकल्पके लियेहै*–जब ऋणके ग्रहण समयमें द्विगुण धन होनेपरभी धनही लेना आधिका नाश न होगा यह न विचाराहो तब आधि दूना धन होनेपर नष्ट होजातीहै इस पूर्वोक्त वचनसे आधिका नाश होताहै–विचारा होय तो यह पक्षहै कि साक्षियोंके प्रत्यक्ष विक्रय करदे ॥

भावार्थ–उस कालमें आधिका मोल करके वृद्धिके विनाही आधिको उत्तमर्णके समीप रहने दे–वा अधमर्णके विनाभी साक्षियोंसहित आधिको बेचकर धनी अपने धनको ग्रहण करले ॥ ६३ ॥

यदातुद्विगुणीभूतमृणमाधौतदाखलु ।
मोच्यआधिस्तदुत्पन्ने प्रविष्टेद्विगुणेधने ६४

पद–यदा॰–तु॰–द्विगुणीभूतं १ ऋण १ आधौ ७ तदा॰–खलु॰–मोच्यः १ आधिः १ तदुत्पन्ने ७ प्रविष्टे ७ द्विगुणे ७ धने ७ ॥

योजना–यदा तु आधौ ऋणं द्विगुणीभूतं भवेत् तदा खलु तदुत्पन्ने द्विगुणेधने प्रविष्टे सति आधिः मोच्यः ॥

तात्पर्यार्थ–जब प्रयुक्त धन अपनी की हुई वृद्धिसे दूना होजाय और आधिसे पैदा हुआ द्रव्य दूना धनीको मिलचुकाहो तब धनी आधिको छोडदे–और जब आदिमें इस विचारसे कि दूना धन होनेपर तुम आधिको छोडदेना, कालांतरसे वा भोगके अभावसे आधिमें दूना ऋण होगया हो तब आधिसे पैदा हुआ धन भोगके लिये धनिके पास पहुंचगयाहो तो आधि छोडने योग्य है *अधिक धन भोगा होयतो वहभी दे*–यह-वचन उस आधिके विषयमें है जो वृद्धि सहित मूलके दूरकरनेके लिये भोगी जाती है– इस आधिको जगतमें क्षयाधि कहते हैं– और यह निर्णय होगयाहो कि वृद्धिके लियेही आधिका उपभोग है वहां दूनेसे अधिकभी होनेसे जबतक मूल धन न मिलै तबतक आधिको भोगतेही हैं– यह सब बृहस्पतिने इसवचनसे स्पष्ट किया है कि फल है भोग्य जिसका ऐसा बंधक (आधि) दोप्रकारका है प्रथम वृद्धिसहित मूल जिसमें मिलै– दूसरा वृद्धिमात्र धन जिसमें मिलै– उनमें वृद्धिसहित मूल मिलनेवाले बंधकका काल (अवधि) पूर्ण होजायतो उसको अधमर्ण प्राप्त होता है अर्थात् फलकेद्वारा वृद्धि-सहित मूल जब धनीको मिलगयाहो तब बधक अधमर्णको मिलजाता है और जो बंधक वृद्धिकेही दूर करनेके लिये है उसको सामक (मूलमात्र) धनकोही देकर अधमर्ण प्राप्त होताहै– इसका यह अपवाद है कि यदि उस बंधकका फल वृद्धिसेभी अधिक होगया होय तो धनी मूलमात्र धनकाभी भागी नही होता अर्थात् मूलकेभी विना दिये अधमर्ण

१ ऋणी बंधमवाप्नुयात् । फलभोग्यं पूर्णकालं दत्त्वा द्रव्यतु सामकम् । यदि प्रकर्षितं तत् स्यात्तदा न धनभाग्धनी । ऋणी च न लभेद्बंधं परस्परमतं विना ।

बंधककी प्राप्त हो जाता है और जो वह बंधक वृद्धिके लियेभी पूरा न होय तो मूलमात्र देकर अधमर्णको बंधक नहीं मिलता- किंतु वृद्धिका जो शेष उसको देकरही मिलता है- फिर पूर्वोक्त दोनों बंधकोंमें अपवाद कहते हैं कि उत्तमर्ण और अधमर्णकी परस्पर संमति न होय तो यह पूर्वोक्त समझना परस्पर संमतिमें तो उत्कृष्ट(अधिक फलका दाता)भी बंधकको मूलमात्र धनके देनेपर्यंतही धनी भोगता है और निकृष्ट (वृद्धिसे न्यून फलका दाता) बंधकको मूलमात्र धनके देनेसेही अधमर्ण प्राप्त होताहै ॥

भावार्थ-जब आधिमें ऋण दूना होगयाहो और आधिसे पैदा हुआ धन धनीको दूना मिलचुकाहो तब उत्तमर्ण आधिको छोडदे अर्थात् अधमर्णको देदे ॥ ६४ ॥

इति ऋणादानप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ उपनिधिप्रकरणम् ।

वासनस्थमनाख्यायहस्तेन्यस्ययदर्प्यते ॥
द्रव्यंतदौपनिधिकंप्रतिदेयंतथैवतत् ॥६५॥

पद-वासनस्थं १ अनाख्याय- हस्ते७अन्यस्य ६ यत् १ अर्प्यते क्रि- द्रव्यं १ तत् १ औपनिधिकम् १ प्रतिदेयम् १ तथा- एव- तत् १ ॥

योजना-वासनस्थं यत् (द्रव्यं) अनाख्याय अन्यस्य हस्ते अर्प्यते तत् द्रव्यं औपनिधिकं भवति- तत् तथैव प्रतिदेयम् ॥

ता० भा०-निक्षेप (धरोर) जिसमें रक्खा जाय ऐसे अन्य द्रव्य (पिटारी आदि)को वासन कहते हैं- उस वासनमें रखकर रुपयेकी संख्याआदिको न कहकर और अपनी मुद्रा (मोहर) लगाकर रक्षाके लिये विश्वाससे जो अर्पण (सौंपना) किया जाय उस्से औपनिधिक कहतेहैं सोई नारदने कहा है कि विना संख्याकरके और विना जाने और मुद्रा लगाकर जो सौंपा जाय उसे उपनिधि-और गिनकर जो रक्खा जाय उसे निक्षेप कहते हैं- वह द्रव्य वैसाही पहिली मुद्राके चिह्नसहित रखनेवालेको प्रतिदेय (लौटानेयोग्य) है ॥ ६५ ॥

नदाप्योपहृतंतंतुराजदैविकतस्करैः ।
भ्रेषश्चेन्मार्गितेदत्तेदाप्योदंडंचतत्समम् ॥

पद-न- दाप्यः १ अपहृतं २ तं २तु- राजदैविकतस्करैः ३ भ्रेषः १ चेत्- मार्गिते ७ अदत्ते ७ दाप्यः १ दंड२ च- तत्समम् २ ॥

योजना-राजदैविकतस्करैः अपहृतं तं राज्ञा न दाप्यः-चेत् (यदि)अदत्ते मार्गिते सति भ्रेषः (नाशः)तर्हि दाप्यः चपुनः तत्समं दण्डं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि वह उपनिधि राजा दैव (जलआदि) चोर इनसे नष्ट हो जाय तो जिसके समीप रक्खी हो उससे राजा न दिवावै-क्योंकि धनीकाही वह द्रव्य नष्ट हुआ है यदि उसमें कोई छलनहो- सोई नारदने कहाहै कि जो उपनिधि ग्रहण करनेवालेके धनसहित नष्ट हुआ हो तो धनके स्वामीकाही नष्ट होताहै-और तैसेही दैव और राजासे नष्ट हुआ कपटसे रहित होय तो रखनेवाले धनीकाही नाश समझना- इसकाभी अपवाद कहते हैं कि यदि स्वामीने धनको ढूंढ लियो हो और मांगनेपर न दिया हो उसके अनंतर चाहे राजाआदिसे भ्रेष (नाश) हो जाय तो उस द्रव्यका मोल करके-धनीको धन और राजाको उसके तुल्य दंड-धर्मका अधिकारी ग्रहणकरनेवालेसे दिवावै ॥

भावार्थ-राजा दैव चोरोंसे नष्ट हुई उपनिधिको राजा न दिवावै-यदि ढूंढनेपरभी न दीहो और फिर नष्ट हो गई होय तो उस उपनिधिको और उतनाही दंड राजाको वह दे जिसके समीप रक्खीथी ॥ ६६ ॥

आजीवन्स्वेच्छयादंड्योदाप्यस्तं
चापिसोदयम् । याचितान्वा-
हितन्यासनिक्षेपादिष्वयंविधिः ॥६७॥

पद-आजीवन् १ स्वेच्छया ३ दण्ड्यः १ दाप्यः १ तं २ च- अपि- सोदयम् २ याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिषु ७ अयम् १ विधिः १ ॥

योजना-स्वेच्छया आजीवन् दण्ड्यः चपुनः तं अपि सोदयम् दाप्यः भवेत्

१ असंख्यातमविज्ञातं समुद्रं यन्निधीयते । तज्जानीयादुपनिधिं निक्षेपं गणितं विदुः ।

१ ग्रहीतुः सह योर्थेन नष्टो नष्टः स दायिनः । दैवराजकृते तद्वन्नचेत्तज्जिह्मकारितम् ।

अयम् विधिः याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिषु ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य स्वामीकी आज्ञाके विना उपनिधिके द्रव्यसे जीविका करता है वा प्रयोग आदिसे लाभके लिये व्यवहारमें लगाता है वह भोग वा लाभके अनुसार दंडके योग्य होताहै और उससे धनीको उपभोगमें वृद्धिसहित और व्यवहारमें लाभसहित उपनिधिको राजा दिवावै–वृद्धिका प्रमाण कात्यायनने कहाहै कि निक्षेप–वृद्धिका शेष क्रय विक्रय इनको मांगनेसे न दे तो सौरुपये पर पांचरुपये बढते हैं– यहभी भक्षितमें समझना–उपेक्षा और अज्ञानसे नष्ट हुयेमें तो उसनेही विशेष दिखाया है कि भक्षितमें सोदय (लाभसहित) और उपेक्षितमें मूलके समान और अज्ञानसे नष्ट हुये द्रव्यमेंसे कुछ न्यून (चौथाई न्यून)राजा ग्रहण करनेवालेसे दिवावै– विवाह आदि उत्सवोंमें जो वस्त्र अलंकार आदि मांगकर लेजांय वह याचित– जो द्रव्य एकके यहां रक्खाहो और उसनेभी फिर अन्यके यहां रखदियाहो वह अन्वाहित– गृहके स्वामीको दिखाकर उसके परोक्ष उसी घरके किसी मनुष्यके हाथमें दियाजाय कि गृहके स्वामीको तू देदीजियो वह न्यास– और घरके स्वामीके प्रत्यक्षमें देना निक्षेप– इन याचित आदिकोंमें– और आदि शब्दसे–सुनार आदिके हाथमें कटक आदि बनानेके लिये रक्खे हुये सुवर्ण आदिका– और प्रतिन्यास (लौटाना)का परस्पर प्रयोजनकी अपेक्षामें तुम इसकी रक्षा करियो और मैं तुह्मारे इसकी रक्षा करूंगा– ऐसी प्रतिज्ञासे दिये हुयेका ग्रहण– लेना– सोई नारदने कहा है कि याचित और अन्वाहित आदिमें और शिल्पीके समीप उपनिधि न्यास और प्रतिन्यासमें यही विधि जाननी– इन याचित आदिमें यही विधि है जो उपनिधिके प्रतिदानकी है ॥

भावार्थ–जो अपनी इच्छासे स्वामीकी आज्ञाकेविना उपनिधिके द्रव्यको भोगता है वह दंड देने योग्य है और लाभसहित धन धनीकोदे–यही विधि याचित अन्वाहित न्यास निक्षेप आदिमें समझना॥ ६७ ॥

१ निक्षेप वृद्धिशेषं च क्रय विक्रयमेव च । याच्यमानो नयेद्दाद्वर्द्धते पंचकं शतम् ।

२ भक्षितं सोदयं दाप्यः समं दाप्य उपेक्षितम् । किंचिन्न्यूनं प्रदाप्यः स्यात् द्रव्यमज्ञाननाशितम् ।

१ एष एव विधिर्दृष्टो याचितान्वाहितादिषु । शिल्पिषूपनिधौ न्यासे प्रतिन्यासे तथैव च ।

इति उपनिधिप्रकरणम् ॥ ९ ॥

अथ साक्षिप्रकरणम् ५

तपस्विनोदानशीलाःकुलीनाः
सत्यवादिनः । धर्मप्रधानाऋ-
जवःपुत्रवंतोधनान्विताः ॥ ६८ ॥

पद- तपस्विनः १ दानशीलाः १ कुली-
नाः १ सत्यवादिनः १ धर्मप्रधानाः १ ऋज-
वः १ पुत्रवंतः १ धनान्विताः १ ॥

त्र्यवराःसाक्षिणोज्ञेयाःश्रौतस्मार्तक्रियापराः
यथाजातियथावर्णंसर्वंसर्वेषुवास्मृताः ६९

पद- त्र्यवराः १ साक्षिणः १ ज्ञेयाः १
श्रौतस्मार्तक्रियापराः १ यथाजाति- यथा-
वर्ण- सर्वे १ सर्वेषु ७ वा- स्मृताः १ ॥

योजना-तपस्विनः दानशीलाः कुलीनाः
सत्यवादिनः धर्मप्रधानाः ऋजवः पुत्रवंतः
धनान्विताः श्रौतस्मार्तक्रियापराः त्र्यवराः
यथाजाति यथावर्णं साक्षिणः ज्ञेयाः वा सर्वे
सर्वेषु साक्षिणः स्मृताः ॥

तात्पर्यार्थ-शास्त्रमें लिखित भुक्ति साक्षी
प्रमाण कहे हैं, यह कहे आये उनमें भुक्तिका
निरूपण किया-अब साक्षीका स्वरूप निरू-
पण करते हैं और साक्षात् दर्शन और
सुननेसे साक्षी होता है सोई मनु (अ.८
श्लो.७४)ने कहा है कि समक्ष देखने
और सुननेसे साक्षी सिद्ध होता है वह साक्षी
दोप्रकारका है कृत और अकृत- जिसको
साक्षी कह दियाहो वह कृत-जिसको न
कह दियाहो वह अकृत होता है-उनमें
कृत पांचप्रकारका और अकृत छःप्रकारका
है ऐसे ग्यारह प्रकारका साक्षी कहा है-
सोई नारदने कहा है कि ग्यारह प्रकारका
साक्षी बुद्धिमानोंने शास्त्रमें देखाहै पांचप्रका-
रका कृत और छःप्रकारका अकृत- उनका
भेदभी नारदनेही दिखाया है कि लिखित
स्मारित- यदृच्छाभिज्ञ- गूढ उत्तरसाक्षी यह
पांचप्रकारका साक्षी कहा है-लिखित आ-
दिका स्वरूप तो कात्यायनने कहा है कि
जिसको अर्थी आप लाकर लेख (अर्जी)में
नाम लिखवादे वह लिखत है और जो पत्रपर
न लिखाहो वह स्मारित होता है-स्मारितः
पत्रकादृते-इसका अर्थ कात्यायननेहीं किया
है कि जिसका अपने कार्यकी सिद्धिके लिये
कार्यको देखकर वारंवार अर्थी स्मरण
करावे वह स्मारित कहाता है-जो अकस्मात्
(अचानक) आया साक्षी कियाजाय वह
यदृच्छाभिज्ञ होता है-ये दोनों पत्रपर लिखे
नहीं होते-इनके भेद कात्यायननेही दिखाया
है कि प्रयोजनसे जिसे लावे और प्रसंगसे
जो चला आवे विना लिखेभी ये दो साक्षी
पूर्वपक्षके साधक होते हैं-तैसेही वचन है
कि जिसको अर्थीने प्रत्यर्थीका वचन स्फुट
सुना दियाहो और गुप्त स्थित रहे वह गूढ
साक्षी कहाता है तैसेही साक्षियोंकेभी सा-
क्ष्यको सुनने वा सुनानेसे ऊपर २ से कहे वह
उत्तरसाक्षी कहा है- छःप्रकारके अकृतका

१ समक्षदर्शनात्स क्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।

२ एकादशविधः साक्षी शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः । कृतः पंचविधो ज्ञेयः षड्विधोऽकृत उच्यते ।

१ लिखितःस्मारितश्चैव यदृच्छाभिज्ञ एव च । गूढश्चोत्तरसाक्षी च साक्षी पंचविधः स्मृतः ॥

२ अर्थिना स्वयमानीतो यो लेख्ये सन्निवेश्यते । स साक्षी लिखितो नाम स्मारितः पत्रकादृते ॥

३ यस्तु कार्यप्रसिद्ध्यर्थं दृष्ट्वा कार्यं पुनःपुनः । स्मार्यते ह्यर्थिना साक्षी स स्मारित इहोच्यते ।

४ प्रयोजनार्थमानीतः प्रसंगादागतश्च यः । द्वौ साक्षिणौ त्वलिखितौ पूर्वपक्षस्य साधकौ ।

५ अर्थिना स्वार्थसिद्ध्यर्थं प्रत्यर्थिवचनं स्फुटम् । यः श्रावितः स्थितो गूढो गूढसाक्षी स उच्यते ।

६ साक्षिणामपि यः साक्ष्यमुपर्युपरि भाषते । श्रवणाच्छ्रावणाद्वापि स साक्ष्युत्तरसंज्ञितः ।

भेद नारदने दिखाया है कि ग्राम– प्राड्विवाक-राजा-कार्यका अधिकारी अर्थीकाभेजा–कुलके विवादोंमें कुलके मनुष्य– ये भी साक्षी जानने-इस वचनमें प्राड्विवाकका ग्रहण लेखक और सभ्योंकाभी उपलक्षण है क्योंकि यह वचन है कि लेखक–प्राड्विवाक–सभासद ये सब राजाके कार्यको देखनेके समयमें साक्षी कहे हैं–अब यह कहते हैं कि वे साक्षी कैसे और कितने होते हैं कि तपस्वी–दानमें तत्पर कुलीन–सत्यवादी–जो धर्मको मुख्य समझे अर्थ कामको नही–ऋजु (कोमल वा अकुटिल) पुत्रवान् धनवान्–वेद और धर्मशास्त्रमें कही हुयी क्रियामें तत्पर–ऐसे पुरुष अवर (कमसे कम तीन) साक्षी होतेहैं अर्थात् तीनसे कम नही होते–अधिक तो चाहे जितने अपनी इच्छाके अनुसार होतेहैं और वेभी यथाजाति अर्थात् (मूर्द्धावसिक्त, आदि जाति और अनुलोमज प्रतिलोमज) होतेहैं उस जातिके कार्योंमें उसी जातिके साक्षी होतेहैं और यथावर्ण होतेहैं अर्थात् ब्राह्मण आदि वर्णोंके ब्राह्मण आदि वर्णही साक्षी होतेहैं–इसी प्रकार क्षत्रिय आदिमेंभी समझना–जैसे इस मनु(अ०८श्लो०६८) वचनके अनसार स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करैं–यदि सजातीय और सवर्ण न मिलें तो मूर्द्धावसिक्त और ब्राह्मण आदि सबमें यथासंभव (जो मिलसकैं) साक्षी होतेहैं–पूर्वोक्त स्वरूप साक्षियोंका असंभव होय तो निषधसे रहित अन्यभी साक्षियोंके कहनेके लिये असाक्षी कहने योग्यहै वे नारदने पांच प्रकारके दिखाये हैं कि असाक्षीभी बुद्धिमानोंने शास्त्रमें पांच प्रकारका देखाहै कि वचनसे–दोषसे–भेदसे–स्वयं कहनेसे–मृतांतर वचनसे असाक्षी ये कहे हैं कि वेदपाठी–तपस्वी–वृद्ध और संन्यासी आदि ये वचन (शास्त्रका कथन)से ही असाक्षी होतेहैं इसमें अन्य कोई कारण नही कहाहै तपस्वी पदसे वानप्रस्थ लेने आदि पदसे वे लेने जो पिताके संग विवाद करै सोई शंखने कहाहैकि पिताके संग विवादी गुरुकुलका वासी–संन्यासी–वानप्रस्थ–निर्ग्रंथ (बंधन रहित) ये असाक्षी होतेहैं–दोषसेभी असाक्षी दिखायेहैं–कि चोर–साहसिक–चंड– (क्रोधी)कितव (जुवारी) वंचक ये दुष्ट होनेसे असाक्षी होतेहैं क्योंकि इनमें सत्य नही होता–भेदसे जो असाक्षी उनका स्वरूपभी उसनेही दिखायाहै कि साक्षी लिखित–निर्दिष्ट–वादी–इनमें एकभी अन्यथा कहै तो वे सब भेदसे साक्षी नही होते–तैसेही स्वयमुक्तिका स्वरूपभी कहाहै कि विनाकहे स्वयं आनकर जो कहै उसको शास्त्रमें सूची कहतेहैं वह साक्षी देने योग्य नहीहै–मृतांतरकाभी लक्षण कहाहै कि जिस

---

१ ग्रामश्च प्राड्विवाकश्च राजा च व्यवहारिणाम्। कार्येष्वधिकृतो यः स्यादर्थिना प्रहितश्च यः॥ कुल्याः कुलविवादेषु विज्ञेयास्तेपि साक्षिणः।

२ लेखकः प्राड्विवाकश्च सभ्याश्चैवानुपूर्वशः। नृपे पश्यति तत्कार्यं साक्षिणः समुदाहृताः।

३ असाक्ष्यपि हि शास्त्रेषु दृष्टः पञ्चविधो बुधैः। वचनाद्दोषतो भेदात्स्वयमुक्तेर्मृतान्तरः।

१ श्रोत्रियास्तापसा वृद्धा ये च प्रव्रजितादयः। असाक्षिणस्ते वचनान्नात्र हेतुरुदाहृतः।

२ पित्राविवदमानगुरुकुलवासिपरिव्राजकवानप्रस्थनिर्ग्रंथाश्चासाक्षिणः।

३ स्तेनाः साहसिकाश्चंडाः कितवा वंचकास्तथा। असाक्षिणस्ते दुष्टत्वात्तेषु सत्यं न विद्यते।

४ साक्षिणां लिखितानां च निर्दिष्टानां च वादिना। तेषामेकोऽन्यथावादी भेदात्सर्वे न साक्षिणः।

५ स्वयमुक्तिरनिर्दिष्टः स्वयमेवैत्य यो वदेत्। सूचीत्युक्तः स शास्त्रेषु न स साक्षित्वमर्हति।

६ योऽर्थः श्रावयितव्यः स्यात्तस्मिन्नसति चार्थिनि। क्व तद्वदतु साक्षित्वमित्यसाक्षी मृतांतरः।

अर्थी वा प्रत्यर्थीको जो बात सुनानी हो कि तुम इस बातके साक्षी हो उस अर्थि वा प्रत्यर्थीके मरनेपर और अर्थभी उसने निवेदन न किया हो और साक्षी ऐसे कि किस अर्थमें किसके लिये साक्षी है वह मृतांतर साक्षी नहीं होता और जहां मरनेवाले स्वस्थ पिता आदिने अपने पुत्र आदिको यह सुना दिया हो कि इस अर्थमें ये साक्षी हैं वहां मृतांतरभी साक्षी होताहै सोई नारदने कहाहै कि मरनेवालेने सुनायेको छोडकर अर्थीके मरनेपर मृतांतर साक्षी नही होता तैसेही वचन है कि जो अर्थ स्वस्थ अवस्थामें धर्मपूर्वक सुनादिया हो अर्थीके मरने परभी उसमे और छः हों अन्वाहित आदिमें मृतांतरभी साक्षी होताहै

भावार्थ-तपस्वी, कुलीन, दानी, सत्यवादी, जो धर्मको मुख्य समझे, कोमलहृदय-पुत्रवान्-अत्यंतधनी, वेद और धर्ममें कहे कर्मोंमें तत्पर, अपनी जाति, वा अपने वर्णके, कमसे कम तीन साक्षी जानने-अथवा सब संपूर्णोंके साक्षी कहेहैं ॥ ६८॥६९ ॥

स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः ।
रंगावतारिपाखंडिकूटकृद्विकलेंद्रियाः ७०॥

पद- स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः १ रंगावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः १ ॥

पतितातार्थसंबंधिसहायरिपुतस्कराः ।
साहसीदृष्टदोषश्चनिर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः ॥

पद-पतितातार्थसम्बधिसहायरिपुतस्कराः १ साहसी १ दृष्टदोषः १ चऽ- निर्धूताद्याः १ तुऽ-असाक्षिणः १ ॥

योजना-स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः रंगावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः पतितातार्थसंबंधिसहायरिपुतस्कराः साहसी च पुनः दृष्टदोषः तु पुनः निर्धूताद्याः असाक्षिणो भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-स्त्री-जिसको व्यवहारका ज्ञान नहो वह बालक-वृद्ध (अस्सी ८० वर्षका) यहां वृद्ध शब्दसे पूर्व वचनमें निषिद्ध अन्यभी साक्षी आदि लेने-कितव (जुवारी) मदिरापान आदिसे मत्त और ग्रहों (भूत आदि)से युक्त उन्मत्त ब्रह्महत्या आदि पातक जिसको लगायाहो वह अभिशस्त-रंगावतारी (चारण) पाखंडी (निर्ग्रंथ आदि) कूटकृत् (जो कपटका लेख लिखे) विकलेन्द्रिय (बधिर आदि) पतित (ब्रह्महत्यारा आदि) सुहृत्-जिस अर्थमें विवाद होय उसका सम्बधी-जिसका एकही कार्य होय वह-सहाय शत्रु और चोर साहसी जो अपने बलका ग्रहण करे अर्थात् अन्यकी बात न चलने दे-दृष्टदोष- (जिसका मिथ्या वचन देखाहो) निर्धूत (जो बंधुओंने त्यागाहो) और आद्य शब्दसे अन्य स्मृतिओंमें कहे हुए दोष वा भेदसे असाक्षी ओंका और स्वयमुक्ति और मृतांतरका ग्रहण करना-ये स्त्री बाल आदि सब साक्षी नही करने ॥

भावार्थ-स्त्री बाल वृद्ध जुवारी मत्त उन्मत्त पातकी रंगावतारी (नट) पाखण्डि कपटसे लिखनेवाला- बधिर आदि- ब्रह्महत्यारा-मित्र-अर्थसंबंधी सहायक-शत्रु-तस्कर-साहसी-दृष्टदोष-और निर्धूत आदि ये साक्षी नही करने ॥ ७० ॥ ७१ ॥

उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपिधर्मवित् ।
सर्वः साक्षीसंग्रहणेचौर्यपारुष्यसाहसे ७२

१ मृतांतरोर्थिनि प्रेते मुमूर्षुश्राविताहृते ।
२ श्रावितो नातुरेणापि यस्त्वर्थो धर्मसयुतः । मृतेपि तत्र साक्षीत्स्यात्षट्सु चान्वाहितादिषु ।

पद-उभयानुमतः १ साक्षी १ भवति क्रि- एकः १ अपि‍ऽ- धर्मवित् १ सर्वः १ साक्षी १ संग्रहणे ७ चौर्यपारुष्यसाहसे ७ ॥

योजना-एकः अपि धर्मवित् उभयानुमतः साक्षी भवति संग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे सर्वः साक्षी भवति ॥

तात्पर्यार्थ-ज्ञानपूर्वक नित्य नैमित्तिक कर्मको जो करे वह धर्मवित् होताहै वह एकभी अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंको सम्मत होय तो साक्षी होता है और अपिशब्दके बलसे धर्मके वेत्ता दोभी साक्षी होतेहैं- यद्यपि उत्तरके (६९) श्लोकमें वेद और धर्मकी क्रियामें तत्पर कमसे कम तीनभी धर्मवेत्ता ओंका कहना समानहै तथापि वे दोनोंकी अनुमतिके अभावमेंही साक्षी हो सकतेहैं-यहां एक वा दो धर्मके वेत्ता दोनोंकी अनुमतिसेही साक्षी होते हैं इस वास्ते कमसे कम वहां तीनका ग्रहण है और यह वचन उसका अपवाद है- अब तपस्वी और दानशील इसका अपवाद कहतेहैं संग्रहण (जिनका लक्षण कहेंगे)में चौर्य पारुष्य (कठोर वचन) साहस इनमें सब साक्षी हो सकतेहैं अर्थात् वचनोंमें निषिद्ध और तप आदि गुणसे युक्तभी साक्षी हो जातेहैं-और दोष और भेदसे जो असाक्षीहैं और स्वयमुक्ति जो है वे संग्रहण आदिमेंभी साक्षी नहीं होसक्ते-क्योंकि इनमेंभी वही साक्षी होताहै जो सत्यवादीहो-यद्यपि मनुष्यका मारना, चोरी, परई दाराका स्पर्श, कठोर वचन, और कठोर दंड रूप पारुष्य यह चार प्रकारका साहस होताहै इसे वचनसे भी संग्रहण चौर्य्य पारुष्यभी साहसहैं तथापि वे साहससे पृथक् इस लिये पढेहैं कि अपने बलसे सब मनुष्योंके सन्मुख किये हुये वे साहस कहातेहैं और एकांतमें किए हुए संग्रहण कहातेहैं ॥

१ मनुष्यमारणं चौर्य्यं परदाराभिमर्शनं । पारुष्यमुभयं चेति साहसं स्याच्चतुर्विधम् ।

भावार्थ-एकभी धर्मका वेत्ता दोनोंकी अनुमतिसे साक्षी होताहै और चौर्य (संग्रहण) पारुष्य, साहस, इनमें सब साक्षी होतेहैं ॥ ७२ ॥

साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान्।
येपातककृतांलोकामहापातकिनांतथा ॥

पद-साक्षिणः २ श्रावयेत् क्रि-वादिप्रतिवादिसमीपगान् २ ये १ पातककृतां ६ लोकाः १ महापातकिनां ६ तथाऽ-॥

अग्निदानांचयेलोकायेचस्त्रीबालघातिनां ।
सतान्सर्वानवाप्नोतियः साक्ष्यमनृतंवदेत् ॥

पद-अग्निदानां ६ चऽ- ये १ लोकाः १ ये १ चऽ- स्त्रीबालघातिनां ६ सः १ तान् २ लोकान् २ अवाप्नोति क्रि- यः १ साक्षी १ हिऽ-अनृतं २ वदेत् क्रि- ॥

सुकृतंयत्त्वयाकिंचिज्जन्मांतरशतैः कृतं ।
तत्सर्वंतस्यजानीहियंपराजयसेवृथा ७५ ॥

पद-सुकृतं १ यत् १ त्वया ३ किंचित्ऽ- जन्मान्तरशतैः ३ कृतं १ तत् २ सर्वं २ तस्य ६ जानीहि क्रि- यं २ पराजयसे क्रि- वृथाऽ-॥

योजना-वादिप्रतिवादिसमीपगान् साक्षिणः श्रावयेत्-ये पातककृतांलोकाः तथा महापातकिनां ये लोकाः चपुनः ये अग्निदानां लोकाः चपुनः ये स्त्रीबालघातिनां लोकाः यः साक्षी अनृतं वदेत् सः तान् सर्वान् लोकान् अवाप्नोति यत् त्वया जन्मांतरशतैः किंचित् सुकृतं कृतं तत्सर्वं तस्य जानीहि त्वं यं वृथा पराजयसे ॥

तात्पर्यार्थ-अर्थी और प्रत्यर्थीके सन्मुख

इकट्ठे हुए साक्षी ओंको वक्ष्यमाण(जो कहैंगे) सुनावै क्योंकि गौतमेका वचनहै कि असमवेत (पृथक्‌२) पूछनेसे साक्षी नकहै उसमेंभी कात्यायनने यह विशेष दिखायाहै कि सभाके मध्यमें अर्थी और प्रत्यर्थीके सन्मुख इस विधिसे शान्त करता हुआ प्राड्विवाक साक्षीओंको नियुक्तकरै (सुनै) देवता और ब्राह्मणोंके समीप उत्तर वा पूर्वाभिमुख बैठे शुद्धब्राह्मणोंसे शुद्ध होकर सत्यरूपसे साक्ष्यको पूछे-और शपथ (कसम) देकर जाना है आचरण जिनका और जाना है अर्थ जिनोंने ऐसे संपूर्ण साक्षीओंको पृथक्‌२ पूछे तैसेही ब्राह्मण आदिके सुनानेमें मनु (अ. ८ श्लो. ११३)ने नियम दिखायाहै ब्राह्मणको सत्यकी-क्षत्रियको वाहन आयुधोंकी-वैश्यको गौ बीज सुवर्णकी-शूद्रको सब पातकोंकी शपथदे-अर्थात् ब्राह्मणको यह कहै कि अन्यथा कहनेसे तेरा सत्य नष्ट हो जायगा-क्षत्रियको तेरे वाहन और आयुध निष्फल हो जायगे-वैश्यको तेरे गौ बीज सुवर्ण निष्फल हो जायगे-और शूद्रको तुझें सब पातक लगैंगे-इसका अपवादभी उसनेही दिखाया है कि (अ० ८ श्लो० १०२)गौओंके रक्षक व्यापारी-कारीगर-कुशीलव (गानेवाले) प्रेष्य (नोकर) वार्धुषिक (सूद लेनेवाले) जो ब्राह्मण हैं उनके संग शूद्रके समान आचरण करै इसमें ब्राह्मणका ग्रहण क्षत्रिय और वैश्यकाभी उपलक्षणहै-प्रतिवादी जब साक्षीमें दूषण दे दे और प्रत्यक्षसे दूषणके योग्य बाल्यआदिमेंभी तैसेही निर्णय है और अयोग्य दूषणोंका तो उनके वचन और लोकसे निर्णय करै कुछ दूसरे साक्षियोंकी अपेक्षा नहीहै इससे अवस्था दोष नही-यदि साक्षीके दोषको प्रकट करके प्रतिवादी सिद्ध न कर सकै तो दोषके अनुसार दंडके योग्य है-यदि सिद्धकर दे तो वे साक्षी नही समझने-सोई कहाहै कि साक्षियोंके दूषणको प्रकटरीतिसे सिद्ध न करै वह दण्डयोग्य है सिद्धकर देतो साक्षीके धर्मसे रहित वे साक्षी वर्जित हैं-यदि दिये हुये साक्षी सब दूषित हो जाय और अर्थीभी कोई दूसरी क्रिया न कर सकै तो पराजित होताहै-क्योंकि यह स्मृति है कि शास्त्रोक्त मार्गसे जिसका पराजय हुआ हो वह बादी साक्षियोंके सत्यपर टिका हो-और निराकांक्ष हो अर्थात् अन्य क्रिया (दावा) न करना चाहता हो वह नम्रतासे दंड देनेयोग्यहै-और साकांक्ष (चाहता) होयतो दूसरी क्रियाको करै-पातक उपपातक महापातकोंके कर्ता-अग्नि लगानेवाले-स्त्री बालकोंके घातक-इनको जो लोक होते हैं उन सबकोवह प्राप्त होता है जो साक्षी मिथ्या बोलता है-और तैसेही सैंकडों जन्मांतरोंमें जो सुकृत (पुण्य) तुमने कियाहै वह सब उसको मिलेगा जो तेरे झूठसे पराजित होगा-यह सब-साक्षियोंको सुनावै-यहभी शूद्रके विषयमें है-क्योंकि शूद्रको सब पातक लगैंगे-इस मनु वचनसे सब पातकोंका सुनाना कहाहै-और

---

१ नासमवेताः पृष्टाः प्रब्रूयुः ।

२ सभान्तःसाक्षिणः सर्वानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ । प्राड्विवाको नियुञ्जीत विधिनानेन सांत्वयन् ॥ देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् । उदङ्मुखान् प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥ आहूयसाक्षिणः पृच्छेन्नियम्यशपथैर्भृशं । समस्तान्विदिताचारान् विज्ञातार्थान् पृथक् पृथक् ।

३ सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोबीजकांचनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ।

४ गोरक्षकान् वाणिजिकान् तथा कारुकुशीलवान् । प्रेष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ।

---

१ असाधयन्दम दाप्यो दूषणं साक्षिणां स्फुटम् । भाविते साक्षिणो वर्ज्याः साक्षिधर्मनिराकृताः ।

२ जितः सविनयं दाप्यः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । यदि वादी निराकांक्षः साक्षिसत्ये व्यवस्थितः ।

गोपालआदि द्विजातियोंके विषयमेंभी है क्योंकि गोरक्षक आदि ब्राह्मणको शूद्रके समान समझना उसी मनुवचनमें कह आये हैं-अनेक जन्मोंके पुण्योंका मिलना और महापातक आदिके फलकी प्राप्ति झूटमात्रसे नहीं होसकती इससे यह साक्षियोंके दुःखके-लिये कहा जाता है सोई नारदने कहाहै कि पुराण धर्मके वचन-सत्यके महात्माका कीर्तन-असत्यकी निंदा इनसें साक्षियोंको निरंतर त्रासदे (डरावे) ॥

भावार्थ-वादी और प्रतिवादीके समीप बैठेहुये साक्षियोंको यह सुनावे कि पातकी और महापातकी अग्नि लगानेवाले-स्त्री बालकोंके हत्यारे इनको जो नरक आदिलोक होते हैं वह उन सबको प्राप्त होताहै जो साक्षी झूट बोलताहै-सैंकडों जन्मांतरोंमें जो पुण्य तुमने कियाहै वह सब उसका जान जिसका पराजय वृथा (झूटबोलक) तू कराता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अब्रुवन्हिनरः साक्ष्यमृणंसदशबंधकम् ।
राज्ञासर्वप्रदाप्यः स्यात्पट्चत्वारिंशकेहनि

पद-अब्रुवन् १ हि ऽ-नरः १ साक्ष्यं २ ऋणम् २ सदशबंधकम् २ राज्ञा ३ सर्वम् २ प्रदाप्यः १ स्यात् क्रि-षट्चत्वारिंशके ७ अहनि ७ ॥

योजना-हि (यतः)साक्ष्यं अब्रुवन् नरः सदशबंधकम् सर्वम् ऋणम् षट्चत्वारिंशके अहनि राज्ञा प्रदाप्यः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य साक्षी होनेको स्वीकार करके शपथ (सुगंधदेना) आदिके सुनानेपर किसी प्रकार नहीं बोलता अर्थात् साक्षी नहीं देता राजा उससे वृद्धिसहित और दशभागसे युक्त संपूर्ण ऋण दिवावे इसमें दशवां भाग राजाका होताहै राजा अधमर्णिकसे साधित धनमेंसे दशवां भाग स्वयं ले-यहभी छालीसवे दिनके आनेपर जानना उससे पहिले साक्षी देदे तो दशम भाग दंडके योग्य नहीहै-यहभी तबहै जब व्याधि आदिका कोई उपद्रव नहो सोई मनु (अ० ८ श्लो० १०७) ने कहाहै कि रोगरहित मनुष्य तीनपक्षके भीतर ऋण आदिमें साक्षी न दे तो उस सब ऋणको और दशमांश राजदंडको प्राप्त होताहै यहां अगद (रोगरहित)पद राज और दैव उपद्रवके अभावका उपलक्षण है ॥

भावार्थ-जो साक्षी तीन पक्षके भीतर साक्ष्यको नहीकहता है अर्थात् साक्षी नहीं देता छालीसवें दिन उससे राजा यह सब ऋण और दशांश अपना भाग ग्रहण करे ॥ ७६ ॥

नददातिहियः साक्ष्यंजानन्नपिनराधमः ।
सकूटसाक्षिणांपापैस्तुल्यो दंडेनचैवहि ॥

पद-न ऽ-ददाति क्रि-हि ऽ-यः १ साक्ष्यं २ जानन् १ अपि ऽ- नराधमः १ सः १ कूटसाक्षिणाम् ६ पापैः ३ तुल्यः १ दण्डेन ३ च ऽ-एव ऽ- हि ऽ-॥

योजना-यः नराधमः जानन् अपि साक्ष्यं न ददाति सः पापैः च पुनः दंडेन कूटसाक्षिणां तुल्यः भवति तेषां पापं दंडं चाप्नोतीत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्योंमें अधम विवादके अर्थको विशेष कर जानताहुआभी साक्षी होनेका स्वीकार नहीकरता अर्थात् साक्षी नहीहोता-वह पाप और दंडसे कूट-साक्षियोंके तुल्य है कूटसाक्षियोंके दंडको

१ पुराणैर्धर्मवचनैः सत्यमाहात्म्यकीर्तनैः । अनृतस्यापवादैश्च भृशमुत्त्रासयेदिमान् ।

१ त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः । तदृणम्प्राप्नुयात्सर्वं दशबंधं च सर्वतः ।

आगे कहेंगे और कूटसाक्षियोंको दंड देकर पुनः व्यवहारको प्रवृत्त करना और व्यवहार समाप्तभी होगयाहो कूटसाक्षिके ज्ञान होनेपर निवृत्त करदेना सोई मनु (अ० ८ श्लो० ११७) ने कहाहै जिस २ विवादमें कूटसाक्ष्य होगयाहो उस २ कार्यको निवृत्तकरै कियाभी वह विनाकियाही होताहै ॥

भावार्थ–जो मनुष्योंमें अधम जानकरभी साक्षी नही देता–वह पाप और दंडसे कूटसाक्षियोंके तुल्य होताहै अर्थात् उक्तसाक्षियोंके पाप और दंडका भागी होताहै

द्वैधेबहूनां वचनं समेषुगुणिनांतथा ।
गुणिद्वैधे तुवचनंग्राह्यंयेगुणवत्तमाः ७८ ॥

पद–द्वैधे७बहूनाम् ६ वचनं १ समेषु ७ गुणिनां ६ तथाऽ– गुणिद्वैधे ७तुऽ–वचनं १ ग्राह्यं १ ये १ गुणवत्तमाः १

योजना–द्वैधे बहूनां वचनं तथा समेषु गुणिनां वचनं गुणिद्वैधे ये गुणवत्तमाः तेषां वचनं ग्राह्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–साक्षियोंका जहां द्वैध (परस्परविवाद) होय तौ बहुतोंका वचन मानने योग्यहै–यदि द्वैधमेंभी समानही संख्या होय तो उनका वचन प्रमाणहै जो गुणी हों–और जहां गुणियोंकीभी परस्पर विप्रतिपत्ति (विवाद) हो वहां जो गुणवत्तमहैं अर्थात् जो वेदके पठन पाठन वेदोक्त कर्मका करना धन पुत्र आदि गुणोंसे संपन्न हैं उनका वचन ग्रहण करने योग्यहै और जहां गुणी तो कतिपय (अल्प) और निर्गुण बहुतहों वहांभी गुणियोंका वचनही ग्रहण करने योग्यहै क्योंकि इसै पूर्वोक्त वचनसे गुणकी अधिकता मुख्यहै कि दोनोंको संमतधर्मका वेत्ता एकभी साक्षी होताहै और जो यह कहाहै कि भेदसे असाक्षी होते है (भेदादसाक्षिणः) वह उस विषयमेंहै जो समरूपसे ग्रहण न कियेहों ॥

भावार्थ–परस्परके विवादमें बहुतोंका–और समानोंमें गुणियोंका और गुणियोंमें जो अत्यंत गुणवान् हैं उनका वचन ग्रहण करने योग्यहै ॥ ७८ ॥

यस्योचुः साक्षिणः सत्यांप्रति-
ज्ञांसजयीभवेत् । अन्यथावा-
दिनोयस्यध्रुवस्तस्यपराजयः॥ ७९ ॥

पद–यस्य ६ ऊचुः क्रि–साक्षिणः १ सत्याम् २ प्रतिज्ञां २ सः १ जयी १ भवेत् क्रि–अन्यथाऽ– वादिनः १ यस्य ६ ध्रुवः १ तस्य ६ पराजयः १ ॥

योजना–यस्य वादिनः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां ऊचुः सः जयी भवेत् यस्य साक्षिणः अन्यथा ऊचुः तस्य ध्रुवः पराजयो भवेत्॥

तात्पर्यार्थ–जिस वादीकी द्रव्य जाति संख्या आदि विशिष्ट प्रतिज्ञाको सत्य कहैं अर्थात् हम जानते हैं यह कहैं उसका जय होताहै और जिस वादीकी प्रतिज्ञाको अन्यथा (विपरीत) अर्थात् यह मिथ्याहै यह कहैं उसका निश्चयसे पराजय होताहै और जहां प्रतिज्ञा किये हुये अर्थके होने और न होनेको विस्मरण आदिसे साक्षी न कहसकै वहां अन्य प्रमाणसे राजा निर्णय करै वारंवार साक्षीओंको न पूछै किंतु अपने स्वभावसे कहाहुआही साक्षीओंका वचन ग्रहण करने योग्यहै सो कहाहै कि स्वभावसे कहा साक्षीओंका

१ यस्मिन्यस्मिन्विवादेतु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत्। तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ।
२ उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपि धर्मवित् ।

१ स्वभावोक्तं वचस्तेषां ग्राह्यं यद्दोषवर्जितं। उक्ते तु साक्षिणो राज्ञा न प्रष्टव्याः पुनः पुनः ।

गोपालआदि द्विजातियोंके विषयमेंभी है क्योंकि गोरक्षक आदि ब्राह्मणको शूद्रके समान समझना उसी मनुवचनमें कह आये हैं-अनेक जन्मोंके पुण्योंका मिलना और महापातक आदिके फलकी प्राप्ति झूटमात्रसे नही होसकती इससे यह साक्षियोंके दुःखके-लिये कहा जाता हे सोई नोरदने कहाहे कि पुराण धर्मके वचन-सत्यके महात्माका कीर्तन-असत्यकी निंदा इनसें साक्षियोंको निरंतर त्रासदे (डरावे) ॥

भावार्थ-वादी और प्रतिवादीके समीप बैठेहुये साक्षियोंको यह सुनावे कि पातकी और महापातकी अग्निलगानेवाले-स्त्री बालकोंके हत्यारे इनको जो नरक आदिलोक होते हैं वह उन सबको प्राप्त होताहै जो साक्षी झूट बोलताहै-सैंकडों जन्मांतरोंमें जो पुण्य तुमने कियाहै वह सब उसका जान जिसका पराजय वृथा (झूटबोलक) तू कराता हे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अब्रुवन्हिनरः साक्ष्यमृणंसदशबंधकम् ।
राज्ञासर्वंप्रदाप्यः स्यात्षट्चत्वारिंशकेहनि

पद-अब्रुवन् १ हि-नरः १ साक्ष्यं २ ऋणम् २ सदशबंधकम् २ राज्ञा ३ सर्वम् २ प्रदाप्यः १ स्यात् क्रि-षट्चत्वारिंशके ७ अहनि ७ ॥

योजना-हि (यतः)साक्ष्यं अब्रुवन् नरः सदशबंधकम् सर्वम् ऋणम् षट्चत्वारिंशके अहनि राज्ञा प्रदाप्यः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य साक्षी होनेको स्वीकार करके शपथ (सुगंधदेना) आदिके सुननेपर किसी प्रकार नही बोलता अर्थात् साक्षी नही देता राजा उससे वृद्धिसहित और दशभागसे युक्त संपूर्ण ऋण दिवावे इसमें दशवां भाग राजाका होताहे राजा अधमर्णिकसे साधित धनमेंसे दशवां भाग स्वयं ले-यहभी छालीसवे दिनके आनेपर जानना उससे पहिले साक्षी देदे तो दशम भाग दंडके योग्य नहींहै-यहभी तबहै जब व्याधि आदिका कोई उपद्रव नहो सोई मनु (अ० ८ श्लो० १०७) ने कहाहै कि रोगरहित मनुष्य तीनपक्षके भीतर ऋण आदिमें साक्षी न दे तो उस सब ऋणको और दशमांश राजदंडको प्राप्त होताहे यहां अगद (रोगरहित)पद राज और देव उपद्रवके अभावका उपलक्षण हे ॥

भावार्थ-जो साक्षी तीन पक्षके भीतर साक्ष्यको नहीकहता हे अर्थात् साक्षी नही देता छालीसवें दिन उससे राजा यह सब ऋण और दशांश अपना भाग ग्रहण करे ॥ ७६ ॥

नददातिहियः साक्ष्यंजानन्नपिनराधमः ।
सकूटसाक्षिणांपापैस्तुल्यो दंडेनचैवहि ॥

पद-न०-ददाति क्रि-हि०-यः १ साक्ष्यं २ जानन् १ अपि०- नराधमः १ सः १ कूट-साक्षिणाम् ६ पापैः ३ तुल्यः १ दण्डेन ३ च०-एव०- हि०-॥

योजना-यः नराधमः जानन् अपि साक्ष्यं न ददाति सः पापैः च पुनः दंडेन कूटसाक्षिणां तुल्यः भवति तेषां पापं दंडं चाप्नोतीत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्योंमें अधम विवादके अर्थको विशेष कर जानताहुआभी साक्षी होनेका स्वीकार नहीकरता अर्थात् साक्षी नहीहोता-वह पाप और दंडसे कूट-साक्षियोंके तुल्य है कूटसाक्षियोंके दंडको

१ पुराणैर्धर्मवचनैः सत्यमाहात्म्यकीर्तनैः। अनृतस्यापवादैश्च भृशमुत्रासयेदिमान्।

१ त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः। तदृणमाप्नुयात्सर्वं दशबंधं च सर्वतः।

कहाहै कि लोभसे सहस्र और मोहसे पूर्व साहस-भयसे मध्यम-और-मित्रतासे चोगुना पूर्वसाहसदंड होताहै-कामसे दशगुना

तात्पर्यार्थ-जहां शूद्र... अज्ञानसे पूरे ब्राह्मण इन चारों वर्णोंके स...( )से सौ नेसे वधकी संभावना हो वहां साक्षी आदि-बोले अर्थात् सत्य न कहै इस सत्य ...०८ नके निषेधसे पहिले निषिद्ध किएभी सत्य वचनकी और अवचन (न बोलना)की आज्ञा साक्षीको समझनी और जहां शंका और अभियोग आदिमें सत्य वचन कहनेसे वर्णोंका वधहो और असत्य वचन कहनेसे किसीका वध नहीं वहां साक्षी झूठ बोले-यह आज्ञा है, और जहां सत्य वचन कहनेसे अर्थी और-प्रत्यर्थी दोनोंका वधहो और असत्य बोलनेसे एकका वधहो वहां तूर्ष्णी रहनेकी आज्ञाहै यदि राजा स्वीकार करे, यदि राजा किसीप्रकार विना कथन न माने वहां भेदसे साक्ष्य करना-यदि वहभी नहो सके तो सत्यही कहै क्योंकि असत्य वचनसे वर्णी (ब्राह्मण आदि)के वधका दोष और झूठका दो दोषहैं-और सत्यवचनमें तो वर्णीके वधका एकही दोषहै-और उसका शास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करना-प्रायश्चित्त कहतेहैं कि उस असत्य वचन और तूर्ष्णी होनेसे पैदाहुये पापकी निवृत्तिके लिये द्विज पूर्वकर सरस्वतीहै देवता जिसका ऐसा चरु बनावे-जिसकी ऊष्मा (मांड) न निचोडी हो उस पके ओदनको चरु कहतेहैं-यहां यह सिद्धांतहै कि साक्षियोंको मिथ्या वचन और अवचनका जो निषेधहै उसकी यहां आज्ञाहै-और जो मिथ्या न बोलैं-न कहने और वध आदिकी अपेक्षासे विवासन-नग्न-करना-घरका भंग-देशसे निकासना-यह व्यवस्था जाननी-लोभ आदि कारण विशेषका अज्ञान-अनभ्यास और अल्प विषयमें झूट साक्षी होय तो ब्राह्मणकोभी क्षत्रिय आदिके समान अर्थकाही दंड होताहै-बडे विषयमें तो देशसे निर्वासनही होताहै-... ...अध्यायमें सबकोही मनुका कहा ...चनकी आज्ञाको ... धनका दंड नहीहै क्योंकि साक्षियोंके असत्य वचन ... नंदका ...चनके निषिद्धका जो अवलंघन उससे अधिक प्रायश्चित्तहै और साधारण मिथ्या वचन और अवचनका अल्प पापहै इससे उनकी आज्ञाका वचन सार्थकहै यद्यपि बहुतसे पापकी निवृत्तिसे प्रसंगसे हुये अल्प पापकी निवृत्तिभी अन्यत्र देखीहै तथापि यहां आज्ञाके वचनसे और प्रायश्चित्तके विधानसे अधिक प्रायश्चित्तकी निवृत्तिसे अल्पभी प्रासंगिक पाप निवृत्त नहीं होता यह ज्ञात होता है-यही बात अन्य प्रश्नोंमें वर्णीके वधकी आशंका होय वहां पथिक आदिकोंको अनृत वचन और अवचनकी आज्ञा जाननी, और वहां अन्य निषेधके अभावसे प्रायश्चित्तकी निवृत्तिभी नहीं, किसी-अन्य निमित्तसे कालांतरमें अर्थका तत्व प्रतीतभी होजाय तोभी साक्षी और अन्य अधिकारियोंको इसी वचनसे दंडका अभाव समझना ॥

भावार्थ-जहां ब्राह्मण आदि वर्णोंका वध हो वहां साक्षी मिथ्या बोले और उसकी शुद्धिके लिये ब्राह्मण सरस्वतीके निमित्त चरु बनावे ॥ ८३ ॥

१. नानृतं वदेत्-अनुवन् विब्रुवन्नापि नरो भवति किल्बिषी ।

इति साक्षिप्रकरणम् ॥ ५ ॥

नाही नहो कि शब्दही शब्द साधुहों-और प्रतिदेशकी भाषासेभी लिखने योग्य है-सोई नारदने कहा है कि देशाचारसे अविरुद्ध और आधिकी विधिका जिसमें लक्षण प्रकट हो जिसमें अर्थ और क्रमसे अक्षरोंका लोप नहो और राजाकी आज्ञासे जो युक्तहो ऐसा लेख प्रमाण करने योग्य होता है कुछ साधु २ शब्दोंकाही इसमें नियम नही है-

भावार्थ-अधमर्णके हाथसे लिखा हुआ जो लेख्य है वह साक्षियोंके विनाभी बलात्कारसे और छल क्रोध आदि उपाधिसे कियेको छोडकर प्रमाण करने योग्य है॥८९॥

ऋणंलेख्यकृतंदेयंपुरुषैस्त्रिभिरेवतु।
आधिस्तुभुज्यतेतावद्यावत्तन्नप्रदीयते ९०

पद-ऋणं १ लेख्यकृतम् १ देयम् १ पुरुषैः ३ त्रिभिः ३ एव०-तु०-आधिः १ तु०-भुज्यते क्रि-तावत्०-यावत्०-तत् १ न०-प्रदीयते क्रि-॥

योजना-लेख्यकृतं ऋणं त्रिभिः (पितृपुत्रपौत्रैः) एव देयम्-तुपुनः आधिः यावत् तत् ऋणं न प्रदीयते तावत् उत्तमर्णेन भुज्यते॥

तात्पर्यार्थ-जैसे साक्षी आदिसे सिद्ध किये ऋणको तीनही देने योग्य हैं इसी प्रकार लेख्यसे किये ऋणकोभी आहर्ता (लेनेवाला) और पुत्र पौत्र ये तीनही दें चतुर्थ आदि नदें यह नियम इस वचनसे किया है-कदाचित् कोई शंका करेकि पुत्र पौत्र ऋणकोदें पुत्रपौत्रैर्ऋणंदेयं-इस वचनसे सामान्य रीतिसे ऋणमात्रको तीनही दें यह नियम थाही फिर यह कहनावृथा है यह शंका मानने योग्य है-इसी उत्सर्गमें जो पत्रमें लिखे ऋणके विषयमें अन्य स्मृतिके वचनसे पैदा हुई अपवादकी शंका उसके दूर करनेके लिये यह वचन रचा है-सोई दिखाते हैं कि पत्रके लक्षणको कहकर कात्यायनने इस वचनसे कहाहै कि इसी प्रकार जिसका काल व्यतीत होगया हो वहीभी पितरोंका ऋण दिवाया जाताहै अर्थात् इस प्रकार पत्रपर लिखा हुआ पितरोंका ऋण कालके बीतने परभी राजा दिवादे-यहां पितॄणां इस बहुवचनसे-कालमतिक्रांतं-इस वचनसे चौथे आदि (प्रपौत्र)से न दिवावे तैसेही हारीतनेभी कहाहै कि जिसके हाथमें लेख्यहो उसको ऋणका लाभ होताहै इस सामान्य वचनसे चतुर्थ आदिसेभी ऋणका लाभ प्रतीत होताहै-इससे इसी आशंकाकी निवृत्तिके लिये यह वचनहै-ये दोनों वचन योगीश्वर (याज्ञवल्क्य)के वचनके अनुसार लगाने योग्यहै-जो ऋणबंधक (गिरवी) सहित पत्रपर आरूढ (लिखा हुआ)है वहभी तीनही दें इस नियमसे ऋणके दूर करनेमें जब चतुर्थ आदिका अधिकार नहीं तो आधिके अपहरण (छीनना वा छुटाना)मेंभी अधिकार न होगा इस लिये यह वचनहै कि इतने चौथा वा पांचवां ऋणको न दे तबतक आधि भोगी जातीहै इस कहनेसे चौथेको बंधक सहित ऋणके दूर करनेमें अधिकार है-यह दिखाया-कदाचित् कहो कि यहभी कहही आयेहैं कि फल भोग्य आधि नष्ट नही होती-सत्यहै-यदि यह अपवादका वचन न होता तो वहभी तीनही पुरुषोंके विषयमें होता-इससे सब निर्दोषहै॥

भावार्थ-लेख्यपर किये हुये ऋणको

१ देशाचाराविरुद्धं यद्व्यक्ताधिविधिलक्षणम्। तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यमविलुप्तक्रमाक्षरम्॥

१ एवं कालमतिक्रान्तं पितॄणां दाप्यते ऋणम्।
२ लेख्यं यस्य भवेद्धस्ते लाभस्तस्य विनिर्दिशेत्।

तीन पुरुषही दें-और आधि तो इतने कोई वंशका पुरुष ऋण न दे तबतक भोगी जातीहै ॥

देशांतरस्थेदुर्लेख्येनष्टोन्मृष्टेहृतेतथा। ।
भिन्नेदग्धेथवाछिन्नेलेख्यमन्यत्तुकारयेत् ॥

पद-देशांतरस्थे ७ दुर्लेख्ये७ नष्टोन्मृष्टे७ हृते७ तथा॥-भिन्ने ७ दग्धे७ अथवा॥-छिन्ने ७ लेख्यं २ अन्यत् २ तु॥-कारयेत् क्रि ॥

योजना-देशांतरस्थे-दुर्लेख्ये-नष्टोन्मृष्टे-तथा हृते-भिन्ने-दग्धे अथवा छिन्ने (लेख्य-पत्रे) सति अन्यत् लेख्यं कारयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब यह कहतेहैं कि व्यवहारके अयोग्य पत्र हो जाय तो दूसरा पत्र लिखवावे-सोई दिखाते हैं कि यदि पत्र अत्यंत व्यवहित (दूर) देशमें स्थितहो वा दुर्लेख्यहो जिसकी लिपिके अक्षर वा पद संधिग्धहो वा वंच न सके ऐसेहो-जो काल पायकर नष्ट होगयाहो जो स्याहीकी दुर्बलतासे उन्मृष्टहो अर्थात् जिसकी लिपिके अक्षर मले गये हों-जिसको चोर चुरा ले गये हों-भिन्न होगयाहो (दलामला गयाहो) दग्धहो गयाहो-छिन्न (फटना)हो गया हो-ऐसे सब प्रकारसे पत्रके नष्ट होनेपर दूसरा पत्र लिखवावे- यहभी वादी और प्रतिवादीकी परस्पर अनुमतिसे जानना-यदि संमति न होयतो व्यवहारके समय देशांतरसे पत्र मंगानेके लिये कठिन मार्ग आदिकी अपेक्षासे समय देना चाहिये-यदि पत्र दुर्गम देशमें हो वा नष्टहो गया होय तो साक्षियोंसेही व्यवहारका निर्णयकरें-सोई नारदनें कहाहै कि लेख्य देशांतरमें स्थितहो-शीर्ण (जीर्ण) हो-दुष्ट लिखाहो-चुराया गयाहो-यदि वह विद्यमान होयतो कालकी अवधि करै न होय तो साक्षियोंसे निर्णय करै-अर्थात् वह देशांतरमें होयतो देशांतरसे मंगानेके लिये कालकी अवधि दे कि इतने दिनमें मंगालो-और विद्यमान न होय तो जो पहिले साक्षी थे उनसेही व्यवहारकी समाप्ति करै-जब साक्षीभी न होंय तो दिव्यसे निर्णय करै-क्योंकि यह स्मृति है कि जिसका लेख्य साक्षी नहो उस व्यवहारमें दैवी क्रियासे निर्णय करै-यह व्यवस्थापत्र जानपद (देशके मनुष्योंका) है-राजकीय व्यवस्थापत्रभी ऐसाही होताहै-इतना तो विशेषहै कि जो राजाके हाथसे लिखाहो और राजाकी मुद्रा (मोहर)से चिह्नितहो-और साक्षीसे युक्तहो वह लेख्य सब अर्थोंमें राजकीय होताहै अन्यभी राजकीय जयपत्र वृद्धवसिष्ठनें कहाहै कि जो निवेदन किये साध्य अर्थसे संयुक्तहो और उत्तरकी क्रिया सहित हो-और अवधारण (निश्चय) से सहितहो-वह जयपत्र इष्टहै-जिसपर प्राड्विवाकके हस्ताक्षरहों और जिसपर राजाकी मुद्राहो-अर्थ सिद्ध होनेपर जिसकी जीत हो उस वादीको जयपत्र दे-तैसेही सभासदभी मैं अमुकके पुत्रका दिया यह कहकर अपने हाथसे दें क्योंकि यह मनुनें कहा है कि राजाकी सभामें जो स्मृति शास्त्रके ज्ञाता सभासदहैं वे लेख्यकी विधिके अनुसार अपने हाथसे जयपत्र दें-यदि सभासदोंकी पर-

१ लेख्ये देशांतरन्यस्ते शीर्णे दुर्लिखिते हृते। सतस्तत्कालकरणमसतो द्रष्टृदर्शनम् ।

१ अलेख्यसाक्षिके दैवीं व्यवहारे विनिर्दिशेत् ।

२ राज्ञःस्वहस्तसंयुक्तं स्वमुद्राचिह्नितं तथा। राजकीयं स्मृतंलेख्यं सर्वेष्वर्थेषु साक्षिमत् ।

३ यथोपन्यस्तसाध्यार्थं संयुक्तं सोत्तरक्रियं। सावधारणकं चैव जयपत्रकमिष्यते ॥ प्राड्विवाकादि-हस्तांकं मुद्रितं राजमुद्रया। सिद्धेर्थे वादिने दद्याज्जयिने जयपत्रकम् ।

४ सभासदश्चये तत्र स्मृतिशास्त्रविदः स्थिताः । यथालेख्यविधौ तद्वत् स्वहस्तं दद्युरेवते ।

स्पर अनुमति न होय तो व्यवहार छिद्रसे रहित नहीं होता सोई नारदनें कहाहै कि जिसको सम्पूर्ण सभासद साधु (अच्छा) मानें वही व्यवहार निश्शल्य होताहै और नहीं तो सशल्य (छिद्र सहित) होताहै–यहभी चतुष्पाद व्यवहारमें समझना क्योंकि यह स्मृति है कि जिससे साध्य अर्थ सिद्ध हो और जो चतुष्पाद हो औ जिसपर राजाकी मुद्रा (मुहर) हो वह जयपत्र होताहै और जिसमें हीनता होय वहां जयपत्र नहीं दियाजाता किंतु हीनपत्र दिया जाता है जैसे कि अन्यथावादी क्रियाका द्वेषी उपस्थातासे भिन्न (जो न आवै) जो उत्तर न दे–बुलानेपर भाग जाय–यह पांच प्रकारका वादी हीन कहाहै–और हीनपत्र कालांतरमें दण्डके लिये और जयपत्र प्राङ्न्यायकी सिद्धिके लियेहै ॥

भावार्थ–यदि पत्र देशांतरमें हो–यथार्थ न लिखाहो नष्ट हो गया हो–जिसकी लिपिके अक्षर बिगड गयेहों चोरीमें गयाहो–भिन्न वा छिन्न होगया होयतो दूसरा लेख्य करावै ९१

संदिग्धलेख्यशुद्धिःस्यात्स्वहस्तालिखितादिभिः ॥ युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबंधागमहेतुभिः ॥ ९४ ॥

पद–संदिग्धलेख्यशुद्धिः १ स्यात् क्रि– स्वहस्तलिखितादिभिः ३ युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबंधागमहेतुभिः ३ ॥

[illegible]–स्वहस्तलिखितादिभिः–युक्तिप्रा- [illegible] हेतुभि॰ संदिग्धलेख्य- स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–शुद्ध है वा अशुद्ध ऐसे संदिग्ध लेख्यकी शुद्धि अपने हाथसे लिखित आदिसे होतीहै अर्थात् अपने लिखे अक्षरोंकी सदृश अक्षर मिलजाय तो शुद्ध अन्यथा अशुद्ध होताहै–आदि शब्दसे साक्षी–लेखक–अपने लिखे अन्य लेखके संवाद (मेल)से शुद्धि होतीहै–और युक्तिसे प्राप्ति अर्थात् देश काल पुरुष इनका द्रव्यके संग संबंध होना कि इस काल और इस देशमें यह द्रव्य इस पुरुषका घट सकताहै–क्रिया साक्षियोंका देना–चिह्न (असाधारण श्री आदि) संबंध अर्थात् पहिलेभी अर्थी और प्रत्यर्थीके परस्पर विश्वाससे लेने वा देनेका संबंध–आगम अर्थात् इतने अर्थकी प्राप्ति हो सकतीहै इतने हेतुहैं इनसे संदिग्ध लेख्यकी शुद्धि होतीहै–और जब लेख्यके संदेहमें निर्णय न होसके तब साक्षियोंसे निर्णय करे–सोई कात्यायनने कहाहै कि पत्र दूषित होजाय तो वादी पत्रपर लिखे साक्षियोंको दे–यह वचनभी साक्षियोंके संभवमें है–साक्षियोंके असंभवमें तो हारीतका वचनहै कि यह पत्र मैं नहीं किया इसने कूट करा लियाहै–ऐसे पत्रको अधर करके अर्थात् न्यून समझकर दिव्यसे अर्थका निर्णय करे ॥

भावार्थ–अपने हाथके लेख आदि–और युक्ति, प्राप्ति, क्रिया, चिह्न, संबंध, आगम–इतने हेतुओंसे संदिग्ध लेख्यकी शुद्धि होतीहै ॥ ९२ ॥

लेख्यस्यपृष्ठेभिलिखेद्दत्त्वादत्त्वर्णिकोधनम्। धनीवोपगतंदद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ९३

पद–लेख्यस्य ६ पृष्ठे ७ अभिलिखेत् क्रि- दत्त्वाऽ–दत्त्वाऽ–ऋणिकः १ धनम् २ धनी १

१ यत्र सभ्यो जनः सर्वः साध्वेतदिति मन्यते । स निःशल्यो विवादः स्यात्सशल्यस्त्वन्यथाभवेत् ।

२ अन्यवादी क्रियाद्वेषी नोपस्थाता निरुत्तरः । आहूतप्रपलायी च हीनः पंचविधः स्मृतः ।

१ दूषिते पत्रके वादी तदारूढांस्तु निर्दिशेत् ।

२ न मयैतत् कृतं पत्रं कूटमेतेन कारितम् । अधरीकृत्य तत्पत्रमर्थे दिव्येन निर्णयः ।

वा०-उपगतं २ दद्यात् क्रि-स्वहस्तपरीचि-ह्नितम् २ ॥

योजना-ऋणिकः धनं दत्त्वा दत्त्वा लेख्यस्य पृष्ठे अभिलिखेत्-वा धनी उपगतं धनं स्वहस्तपरिचिह्नितम् ऋणिकाय-लेख्य-पृष्ठे वा दद्यात् ॥

ता०भावार्थ-जब अधमर्ण सब ऋणको नदेसके तो अपनी शक्तिके अनुसार दे २ कर पूर्व लिखे हुये लेख्यकी पीठपर लिखदे कि इतना मैने दिया-अथवा उत्तमर्ण उपगत (मिला) धनको उसी लेख्यकी पीठके ऊपर लिखदे-कि इतना मुझे मिला-वहभी अपने हाथसे लिखे अक्षरोंसे चिह्नितहो-अथवा उपगत (प्रवेशपत्र रसीद) अपने हाथसे लिखकर उत्तमर्ण अधमर्णको देदे ॥ ९३ ॥

दत्त्वर्णपाटयेल्लेख्यंशुद्ध्यैवान्यत्तुकारयेत्॥ साक्षिमच्चभवेद्यद्वातद्दातव्यंससाक्षिकम् ॥

पद-दत्त्वाऽ-ऋणं २ पाटयेत् क्रि-लेख्यं २ शुद्ध्यै ४ वाऽ-अन्यत् १ तुऽ-कारयेत् क्रि-साक्षिमत् १ चऽ-भवेत् क्रि-यत् १ वाऽ-तत् १ दातव्यं १ ससाक्षिकम् १ ॥

योजना-ऋणं दत्त्वा लेख्यं पाटयेत् वा शुद्ध्यै अन्यत् कारयेत्-चपुनः यत् लेख्यं साक्षिमत् भवेत् तत् ससाक्षिकम् दातव्यम्॥

ता०भावार्थ-क्रमसे वा एकवार संपूर्ण ऋणको देकर पूर्व किये हुये लेख्यको फाडदे जब दूरदेश आदिमें पत्र स्थितहो वा लेख्य नष्ट होगया हो तब शुद्धिके लिये अधमर्ण उत्तमर्णसे शुद्धि करालै अर्थात् पूर्वोक्त क्रमसे उत्तमर्ण विशुद्धिका पत्र अधमर्णको देदे-यदि पूर्व किया लेख्य साक्षि सहित्त होय तो पहिले किये साक्षियोंके सामनेही देना ॥ ९४ ॥

इति लेख्यप्रकरणम् ॥ ६ ॥

योगोंमें स्त्री आदिकोंको तुलाही होती है- यह वचन इससेही सार्थक हो सकता है, सब दिव्योंमें साधारण जो मार्गशिर चैत्र वैशाख आदि मास हैं उनमें स्त्री आदिकोंको सब दिव्योंके होनेपरभी तुलाही देनी-कुछ सब कालोंमें स्त्रियोंको तुलादे इससेही सार्थक यह वचन नही समझना-क्यों कि इस वचनसे विष जलको छोडकर तुला कोश अग्नि आदिसे स्त्रियोंकी शुद्धि कही है कि स्त्रियोंको विष और जल नहीं कहे तुला और कोश आदिसे उनके अंतःकरणको विचारे-इसी प्रकार बालक आदिमेंभी समझना-जैसे ब्राह्मण आदिकोंको सब कालोंमें तुला आदिका नियम नही है-क्योंकि यह पितामहका वचन है कि सब वर्णोंकी कोशसे शुद्धि कही है और तुला आदि सब वर्णोंकी ब्राह्मणको विष छोडकर होते हैं-तिससे साधारण कालमें बहुत दिव्योंके होनेपर तुला आदिके नियमके लियेही यह वचन है-और अन्यकालमें तो सबको तिस २ कालमें कहा हुआ दिव्य होता है-सोई दिखाते हैं कि वर्षा ऋतुमें अग्निही सबको होता है-हेमंत और शिशिरमें क्षत्रिय आदि तीनोंको अग्नि और विषमें विकल्प है और ब्राह्मणको अग्निही दे कदाचित्भी विषनही-क्योंकि ब्राह्मणको विषके विना दिव्यदे यह निषेध है-ग्रीष्म और शरदमें तो जलहीदे-और जिनको विशेष व्याधियोंके कारण अग्नि आदिकोंका निषेध है कि कुष्ठियोंको अग्नि-श्वासकासवालोंको जल-पित्त और कफवालोंको विष-सदैव वर्जदे-उनको अग्नि आदिके कालमेंभी साधारण तुला आदिही दिव्य होता है-तैसेही जल अग्नि विष ये बलधारी मनुष्योंको दे इसे वचनसे दुर्बल मनुष्योंको सर्वथा विधि और निषेधसे ऋतुकालके अनुसार जाति अवस्था और देहके अनुसार दिव्य देने ॥

भावार्थ-स्त्री-बालक-वृद्ध-अंधे-पंगु-ब्राह्मण-रोगी-इनको तुलाही दिव्यदे-और *तपाया फाल और तपाया माषरूप अग्नि* क्षत्रियको-और वैश्यको केवल जल और शूद्रको सात विषके यव (जौं)-शुद्धिके-लिये दे- ॥ ९८ ॥

नासहस्राद्धरेत्फालंनविषंनतुलांतथा ।
नृपार्थेष्वभिशापेचवहेयुः शुचयःसदा ९९

पद-नऽ-आसहस्रात्ऽ-हरेत् क्रि-फालं २ नऽ-विषं २ नऽ-तुलां २ तथाऽ-नृपार्थेषु५७ अभिशापे७चऽ-वहेयुः क्रिऽ-शुचयः१सदाऽ-॥

योजना-आसहस्रात् फालं-विषं-तथा तुलां न हरेत् (नकारयेत्) नृपार्थेषु च पुनः अभिशापे उपवासादिना शुचयः सदा वहेयुः (कुर्युः)-

तात्पर्यार्थ-सहस्र पणके दंडकेनीचे फाल, विष तुला इन तीन दिव्योंको न करे-और इनके मध्यमें पडे जलकोभी नकरे-सोई कहा है कि तुलासे विषपर्यंत गुरु अर्थोके विषयमें दे- यह कोशका ग्रहण इस लिये नही किया कि यह स्मृति है कि अल्प अभियोगमें-भी कोशरूप दिव्यको दे-इन चारों दिव्योंको सहस्रपणसे ऊपरही दे नीचे नदे-कदाचित् कोई शंका करे कि पितामहने सहस्रपणसे

१ स्त्रीणाच न विषं प्रोक्तं न चापिसलिलं स्मृतं । घटकोशादिभिस्तासामंतस्तत्वं विचारयेत् ।

२ सर्वेषामेव वर्णानां कोशशुद्धिर्विधीयते । सर्वाण्येतानि सर्वेषां ब्राह्मणस्य विषंविना ।

३ ब्राह्मणस्य विषं विना ।

४ कुष्ठिनां वर्जयेदग्निं सलिलं श्वासकासिनाम् । पित्तश्लेष्मवतां नित्यं विषं तुपरिवर्जयेत् ।

१ तोयमग्निं विषं चैव दातव्यं बलिनां नृणाम् ।

२ तुलादीनि विषांतानि गुरुष्वर्थेषु दापयेत् ।

३ कोशमल्पेपिदापयेत् ।

नीचेभी अग्निआदि दिखाये हैं कि सहस्र पणमें तुलाको-आधे सहस्रमें लोहेको-उससे आधेमें जलको और उससे आधेपर विषको देना कहा है-यह शंका सत्य है-उसकी यह व्यवस्था है कि जिस द्रव्यके हरनेसें पतित होजाय उसमें तो पितामहका वचन और इतर द्रव्यके विषयमें योगीश्वरका वचन है-दोनों वचन चोरी और साहसके विषयमें अपह्नव(झूट) में विशेषतो कात्यायननें खाया है कि जहां दिये हुयेका अपह्नवहो प्रमाणकी कल्पना करे-चोरी और समें दिव्यप्रमाणको अत्यंत अल्प अर्थ-दे-संपूर्ण द्रव्यके प्रमाणको देखकर सोनेकी कल्पना करे और सोनेका जितना प्रमाण हो उतनाही दिव्यदे-सोनेकी संख्याको जान कर यदि सौ सुवर्णका नाश हुआ होय तो विषको देना कहा है-अस्सीका नाश हुआ होयतो अग्निका देना कहा है-साठके नाशमें जल-चालीसके नाशमें तुला-तीसके नाशमें कोशकापान कहाहै-पांचसे अधिकके नाशमें और उसके आधेकेभी आधेके नाशमें तंडुलप्रमाण कहाहै-उससे आधेकेभी अर्धके नाशमें पुत्रआदिके मस्तकका स्पर्श करे-और उससे आधेकेभी आधेके नाशमें लौकिकक्रिया करनी कहीहै-इस प्रकार विचारताहुआ राजा धर्म और अर्थसे हीन नहीं होता-सुवर्णोंकी संख्याको जानकर यहां सुवर्णपदसे पूर्वोक्त सोलह मासे सोना लेना और नाशशब्दसे अपह्नव लेना-और सहस्रसे नीचे फाल नहे यहां तांबेके सहस्र पण. लेने-और राजाका द्रोह और महापातकके अभियोगमें द्रव्यकी संख्याको छोडकर इन सब दिव्योंको उपवास आदिसे शुद्धहुये मनुष्य सदैव करे-तैसेही देशविशेष नारदनें कहाहै कि सभा-राजकुलका द्वार-देवमंदिर-चौराहा-इनमें धूप-माला-चंदन इनसे पूजा करके निश्चल तुलाको स्थापना करे-व्यवस्थाभी कात्यायननें कहीहै कि पतित और महापातकी मनुष्योंको इंद्र (मंदिर)के स्थानमें-और राजाके द्रोहियोंको राजद्वारमें-और प्रतिलोमसे (ऊंचे वर्णकी कन्यामें नीचे वर्णसे) पैदा हुयोंको चौराहेमें-और इनसे जो अन्यहैं उनको सभाके मध्यमें बुद्धिमानोंने दिव्य देना कहाहै-और स्पर्शके अयोग्य नीच और दासोंको-म्लेच्छ और पापियोंको और प्रतिलोमसे पैदाहुयोंको निश्चयसे राजाके संमुख दिव्यदे-और पूर्वोक्तोंमें संदेह होय तो तिन २में जो २ दिव्य प्रसिद्धहों वे २ ही दे ॥

भावार्थ-सहस्र तांबेके पणोंसे नीचे फाल, विष, तुला इन दिव्योंको न करे-और राजाका द्रोह और महापातकके अभियोग (दावा)में उपवास आदिसे शुद्ध होकर

१ सहस्रेतु धट दद्यात् सहस्रार्धे तथायसम् । अर्धस्यार्धे तु सलिलं तस्यार्धेतु विषंस्मृतम् ॥

२ दत्तस्यापह्नवो यत्र प्रमाणं तत्र कल्पयेत् । स्तेयसाहसयोर्दिव्यं स्वल्पेप्यर्थे प्रदापयेत् ॥ सर्वद्रव्यप्रमाणं तु ज्ञात्वा हेम प्रकल्पयेत् ॥ हेमप्रमाणयुक्तं तु तदा दिव्यंनि योजयेत् ॥ ज्ञात्वा संख्या सुवर्णानां शतनाशे विषं स्मृतम् ॥ अशीतेस्तु विनाशे वैदद्यादेवहुताशनम् ॥ षष्ट्यानाशे जलं देयं चत्वारिंशति वैधटम् ॥ विंशद्दशविनाशेतु कोशपानं विधीयते ॥ पंचाधिकस्य वा नाशे ततोर्धार्धस्य तंडुलाः । ततोर्धार्धविनाशे इत्स्पृशेत्पुत्रादिमस्तकान् ॥ ततोर्धार्धविनाशे तु लौकिक्यश्च क्रियाः स्मृताः । एवं विचारयन् राजा धर्मार्थाभ्यां नहीयते ॥

१ सभाराजकुलद्वारे देवायतनचत्वरेनिधेयो निश्चलः पूज्यो धूपमाल्यानुलेपनैः ॥

२ इंद्रस्थानेभिशस्तानां महापातकिनां नृणाम् । नृपद्रोहे प्रवृत्तानां राजद्वारे प्रयोजयेत् ॥ प्रातिलोम्यप्रसूतानां दिव्यं देयं चतुष्पथे । अतोन्येषु सभामध्ये दिव्यं देयं विदुर्बुधा ॥ अस्पृश्याधमदासानां म्लेच्छानां पापकारिणाम् । प्रातिलोम्यप्रसूतानां निश्चयो न तु राजनि ॥ तत्प्रसिद्धानि दिव्यानि संशये तेषु निर्दिशेत् ॥

सदैव दिव्यको करैं–इति दिव्य मातृका॥९९॥

तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः ॥
प्रतिमानसमीभूतोरेखांकृत्वावतारितः१००

पद–तुलाधारणविद्वद्भिः ३ अभियुक्तः १ तुलाश्रितः १ प्रतिमानसमीभूतः १ रेखां २ कृत्वा॰– अवतारितः १ ॥

त्वंतुलेसत्यधामासिपुरादेवैर्विनिर्मिता ॥
तत्सत्यंवदकल्याणिसंशयान्मांविमोचय ॥

पद–त्वं १ तुले १ सत्यधामा १ असि-क्रि–पुरा॰– देवैः ३ विनिर्मिता १ तत्॰– सत्यं॰– वद क्रि–कल्याणि १ संशयात् ५ मां २ विमोचय क्रि–॥

यद्यस्मिपापकृन्मातस्ततोमांत्वमधोनय
शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वमांतुलामित्यभिमंत्रयेत् ॥

पद–यदि॰– अस्मि क्रि–पापकृत् १ मातः १ ततः॰– मां २ त्वं १ अधः॰–नय क्रि–शुद्धः १ चेत्॰–गमय क्रि ऊर्ध्वं॰– मां२ तुलां २ इति॰– अभिमंत्रयेत् क्रि–॥

योजना–तुलाधारणविद्वद्भिः तुलाश्रितः प्रतिमानसमीभूतः–रेखां कृत्वा अवतारितः अभियुक्तः–हे तुले पुरा देवैः विनिर्मिता त्वं सत्यधामा असि तत् (तस्मात्) हे कल्याणि सत्यं वद मां संशयात् विमोचय–हेमातः यदि पापकृत् अस्मि ततः (तर्हि) मां त्वं अधः नय–चेत् (यदि) शुद्धः तर्हि मां ऊर्ध्वं गमय–इति तुलां अभिमंत्रयेत् (प्रार्थयेत्) ॥

तुलाके धारण (तोल)को आदि जानते हों वे मिट्टी आ- (तोल)से अभियुक्त या करनेवालेको सम (बराबर) और दिव्यका कारी प्रतिमान करनेके नीचे जहां अभियुक्त टि- यहां पांडु आदिसे एक रेखा कर दे इस प्रकार तोला हुआ यह फिर तुलाका इस प्रकार मंत्र पढकर अभिमंत्रण (प्रार्थना) करे कि हे तुले तू सत्यका स्थानहै और पहिले (आदि सृष्टिके समयमें) हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) आदि देवताओंने तू रची है तिससे तू सत्य कहिये अर्थात् संदिग्ध अर्थके स्वरूपको दिखाईये और हे कल्याणि इस संशयसे मुझे छुटावो–यदि हेमातः मैं पापकर्मा हूं अर्थात् झूंठाहूं तो तूं मुझे नीचे करियो–और यदि मैं शुद्ध (सत्यवादी) हूं तो मुझे तू ऊपरको पहुंचाइयो–यह मंत्र दिव्यप्रमाण करनेवालेका है और प्राड्विवाक जिसमंत्रसे तुलाका अभिमंत्रण करै यह मंत्र अन्य स्मृतियोंमें कहाहै–जय पराजयका स्वरूप तो इस पूर्वोक्त मंत्रसेही जाना गया इससे पृथक् नही कहाहै तुलाका बनाना और पुनः (दुबारा) तुलापर बैठना यह सब अर्थात् सिद्ध है–और यह इस प्रकार पितामह नारदआदिकोंने

१ छित्त्वा तु यज्ञियं वृक्षं यूपवन्मंत्रपूर्वकम् ॥ प्रणम्य लोकपालेभ्यस्तुला कार्या मनीषिभिः ॥ मंत्रः सौम्य वानस्पत्यछेदने जप्य एव चाचतुरस्रा तुला कार्या दृढा ऋज्वी तथैवच ॥ कटकानि च देयानि त्रिषुस्थानेषु धारयेत्॥चतुर्हस्ता तुला कार्या पादौ चोपरितत्समौ ॥ अंतरं तु तयोर्हस्तौ भवेदध्यर्धमेवता। हस्तद्वयं निखेयं तु पादयोरुभयोरपि ॥ तोरणे च तथा कार्ये पार्श्वयोरुभयोरपि। धटादुच्चतरेस्यातां नित्यं दशभिरंगुलैः ॥ अवलंबौ च कर्तव्यौ तोरणाभ्यामधोमुखौ ॥ मृन्मयौ सूत्रसंबद्धौ घटमस्तकचुम्बिनौ। प्राङ्मुखो निश्चलः कार्यः शुचौ देशे घटस्तथा ॥ शिक्यद्वयं समासज्य पार्श्वयोरुभयोरपि प्राङ्मुखान्कल्पयेद्दर्भान् शिक्ययोरुभयोरपि ॥ पश्चिमे तोलयेत्कर्तृनन्यस्मिन्मृत्तिका शुभा। पिटकं पूरयेत्तस्मिन्निष्टकाभावपांशुभिः ॥ अत्रच मृत्तिकेष्टका भावपांसूना विकल्पः। परीक्षका नियोक्तव्यास्तुलामानविचारदाः। वणिजोहेमकाराश्च कांस्यकारास्तथैवच ॥ कार्यः परीक्षकैर्नित्यमवलम्बसमोघटः। उदकेन प्रदातव्ये घटस्योपरि पण्डितैः। यस्मिन्नप्लावते तोयं विज्ञेयः समो घटः। तो

स्पष्ट कियाहै कि यज्ञके यूपके समान मंत्रोंको पढकर यज्ञके वृक्षको काटै-और लोकपालोंको प्रणाम करके बुद्धिमान् मनुष्य तुलाको बनवावै-और काटनेके समयमें वनस्पति है देवता जिसका ऐसे सौम्य मंत्रको जपे-और चौकोर-दृढ-और कोमल तुला करनी और उसके तीन स्थानोंमें कडे लगाने-चार हाथकी तुलाहो और ऊपरके पायेभी चारही हाथके हों उन दोनोंका अंतर (फरक) मध्यमें एक वा आधे हाथकाहो-और दोनों पादोंका निखेय (गाडना) दो हाथकाहो और दोनों पार्श्वोंमें एक २ तोरणहो-वे दोनो-तुलासे दश अंगुल ऊंचे हों और तुलाके मस्तकपर नीचेको है मुख जिनका और सूतसे जो बंधेहों ऐसे दो अवलंबहों-और तुलाका मुख पूर्वको हो और वह शुद्ध देशमें करनी और निश्चल बनानी-दोनों पार्श्वोंमें छींकेके बांधदे-और उन छींकोंके ऊपर पूर्वाभिमुख कुशाओंको रक्खे-पश्चिमके छींकेपर कर्ताओंको तोले और पूर्वके छींकेपर श्रेष्ठमट्टीको तोले छींकेके पिटक (पिटारी)को ईंट पत्थर वा धूलिसे पूर्ण करदे यहां मट्टी ईंट पत्थर धूलि इनमें विकल्प समझना और तुलाके तोलनेमें चतुर परीक्षकोंको नियुक्त करै वे वैश्य सुनार, वा कांसीकार, होवे परीक्षक तुलाको अवलम्बमें समान करैं और तुलाके ऊपर जल डारैं जिस तुलाका जल इधर उधरको न गिरै वह सम जाननी इसप्रकार मनुष्यका तोल करै और उतारकर तुलाको ध्वजा और पताकासे सदैव शोभित करै फिर मंत्रका वेत्ता इसविधिसे देवताओंका आवाहन करै कि फिर वादित्र और तूर्यके शब्दोंसे गंध पुष्प चंदनसे तुलाकी पूजा करके पूर्वाभिमुख और हाथ जोडकर प्राड्विवाक यह कहे है कि हे भगवन् धर्म तुम आओ लोकपाल वसु आदित्य और मरुद्गणों सहित इस दिव्यमें समावेश करो इसप्रकार तुलामें धर्मका आवाहन करके फिर अंगन्यास करै कि पर्वमें इंद्रका, दक्षिणमें यमका, पश्चिममें

यित्वानरं पूर्वं पश्चात्तमवतारयेत् ॥ घटं तु कारयेन्नित्यं पताकाध्वजशोभितं। तत आवाहयेद्देवान् विधिनानेन मंत्रवित् ॥ वादित्रतूर्यघोषैश्च गंधमाल्यानुलेपनैः । प्रांमुखः प्रांजलिर्भूत्वा प्राड्विवाकस्ततो वदेत् ॥ एह्येहि भगवन्धर्म ह्यस्मिन्दिव्ये समाविश। सहितो लोकपालैश्च वस्वादित्यमरुद्गणैः ॥ आवाह्य तु घटे धर्मं पश्चादंगानि विन्यसेत् । इंद्रं पूर्वे तु संस्थाप्य प्रेतेशं दक्षिणे तथा॥ वरुणं पश्चिमे भागे कुबेरं चोत्तरे तथा ॥ अग्न्यादि लोकपालांश्च कोणभागेषु विन्यसेत्। इंद्रः पीतो यमः श्यामो वरुणस्फटिकप्रभः ॥ कुबेरस्तु सुवर्णाभोवह्निश्चापि सुवर्णभः । तथैव निर्ऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते ॥ ईशानस्तु भवेद्रक्त एवं ध्यायेत्क्रमादिमान् । इंद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसूनाराधयेद्बुधः ॥ धरो ध्रुवस्तथा सोम आपश्चैवानिलोनलः । प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ देवेशेशानयोर्मध्ये आदित्यानां तथागणं । धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशुर्भगस्तथा॥ इंद्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः। ततस्त्वष्टा ततो विष्णुर जघन्योजघन्यजः ॥ इत्येते द्वादशादित्या नामभिः परिकीर्तिताः। अग्नेः पश्चिमभागे तु रुद्राणामयनं विदुः॥ वीरभद्रश्च शंभुश्च गिरिशश्च महायशाः। अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकीचापराजितः ॥ भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पतिः। स्थाणुर्भवश्च भगवान् रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः ॥ प्रेतेशरक्षोमध्ये तु मातृस्थानं प्रकल्पयेत्।ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा॥ वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा गणसंयुता। निर्ऋतेरुत्तरे भागे गणेशायतनं विदुः । वरुणस्योत्तरे भागे मरुतां स्थान मुच्यते ॥ गगनः स्पर्शनो वायुरनिलो मारुतस्तथा॥ प्राणः प्राणेशजीवौ च मरुतो ष्टौ प्रकीर्तिताः। घटस्योत्तरभागे तु दुर्गामावाहयेद्बुधः। एतासां देवतानां तु स्वनाम्ना यजनं विदुः॥भूषावसानं धर्माय दत्त्वाचार्घ्यादिकं क्रमात् ।अर्घ्यादिपश्चादंगानां भूषांतमुपकल्पयेत् ॥ गंधादिका नैवेद्यान्ता परिचर्यां प्रकल्पयेत् ।

वरुणका, उत्तरमें कुबेरका, और अग्नि आदि कोणोंमें अग्नि आदि लोकपालोंका न्यास करे उनमें इंद्र पीला, यम श्याम, वरुण स्फटिकके समान, कुबेर और अग्नि सुवर्णके समान और निर्ऋति श्याम और वायु धूम्र और ईशान रक्तरूप है इसप्रकार क्रमसे इनका ध्यान करे और इंद्रके दक्षिण पार्श्वमें बुद्धिमान मनुष्य वसुओंकी आराधना करे धर, ध्रुव, सोम, आप, पवन, अग्नि, प्रत्यूष, प्रभात, ये आठ वसु कहे हैं इंद्र और ईशानके मध्यमें आदित्योंके गणकी आराधना करे धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशु, भग, इंद्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, और विष्णु, जो विष्णु छोटे बडे रूपसे दोप्रकारका है ये बारह आदित्य नामोंसे कहे हैं–और अग्निसे पश्चिमके भागमें रुद्रोंका स्थान कहते हैं वीरभद्र शंभु गिरिश अजैकपात् अहिर्बुध्न्य पिनाकी अपराजित भुवनाधीश्वर कपाली स्थाणु भव ये ग्यारह रुद्र कहे हैं–यम और निर्ऋतिके मध्यमें मातृओंके स्थानकी कल्पना करे ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही माहेन्द्री चामुण्डा ये सात गणसे युक्त मातर हैं–निर्ऋतिसे उत्तर भागमें गणेशका और वरुणसे उत्तर भागमें मरुतोंका स्थान कहा है गगन स्पर्शन वायु अनिल मारुत प्राण प्राणेश जीव ये आठ मरुत् कहे हैं तुलाके उत्तर भागमें बुद्धिमान मनुष्य दुर्गाका आवाहन करे इन सब देवताओंका अपने २ नामसे पूजन कहा है धर्मको भूषण और वस्त्र देकर क्रमसे अर्घ्य आदिदे–फिर अंगके देवताओंको अर्घ्यसे भूषण पर्यंत देकर गंधसे नैवेद्य पर्यंत पूजा करे–और यहां पताका और ध्वजासे तुलाको शोभित करके और उस तुलामें एहि एहि इस पूर्वोक्त मंत्रसे धर्मका आवाहन करके धर्मको अर्घ्य देताहूं धर्मको नमस्कार है इत्यादि प्रयोगसे अर्घ्य पाद्य आचमनीय और मधुपर्क आचमनीय स्नान वस्त्र यज्ञोपवीत आचमनीय मुकुट कटक आदि भूषण पर्यंत देकर इंद्र आदि दुर्गा पर्यंत देवताओंका ओंकार जिनकी आदिमें चतुर्थी और नमः जिनके अंतमें ऐसे अपने २ नाम मंत्रोंसे (ओंदुर्गायै नमः इत्यादि) अर्घ्यसे भूषणपर्यंत पदार्थोंको समय २ पर देकर और धर्मको गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्य देकर इंद्र आदिकोंकोभी पूर्वके समान गंध आदिदे और तुलाकी पूजामें गंध पुष्प रक्तलेने सोई नारदेनें कहा है कि रक्त गंध और पुष्प दधि पूए और अक्षत आदिसे [1] तुलाकी पूजा करके शिष्टोंका पूजन करे–इंद्र आदिकी पूजामें विशेष नही कहा इस जैसे मिल सके रक्त वा अन्य पुष्पोंसे पू करे यह पूजाका क्रम है इस पूर्वोक्त सबक प्राड्विवाकभी करे सोई कहाहै कि [2] वेदवेदांगका पारगामी वेद और आचरण युक्त शांतचित्त मत्सरसे मुक्त सत्यवादी शुद्ध चतुर सब प्राणीयोंका हितकारी और उपवास शुद्धवस्त्रोंका धारण इनको करवे प्राड्विवाक ब्राह्मण सबदेवताओंकी पूज विधिसे करे तैसेही चार ऋत्विजोंसे तुलाके [3] चार दिशाओंमें होम करे सोई कहाहै कि वेदके पारगामी ब्राह्मण घी हवि और होमके साधन समिधोंसे स्वाहाहै अंतमें जिसके

१ रक्तैर्गंधैश्च माल्यैश्च दध्यपूपाक्षतादिभिः। अर्चयेत्तु घटं पूर्वंततः शिष्टांस्तु पूजयेत्।

२ प्राड्विवाकस्ततो विप्रो वेदवेदांगपारगः। श्रुतवृत्तोपसंपन्नः शांतचित्तो विमत्सरः॥ सत्यसंधः शुचिर्दक्षः सर्वप्राणिहिते रतः। उपोषितः शुद्धवासाः कृतदन्तानुधावनः॥ सर्वासां देवान्तानां च पूजां कुर्याद्यथाविधि॥

३ चतुर्दिक्षु तथा होमः कर्तव्यो वेदपारगैः। आज्येन हविषा चैव समिद्भिर्होमसाधनैः॥ सावित्र्या प्रणवेनाथ स्वाहान्तेनैवहोमयेत्।

ऐसी ओंकारसहित गायत्रीसे होम करे अर्थात् ओंकार आदि गायत्रीको पढकर फिर स्वाहाहै अंतमें जिसके ऐसे ओंकारको पढकर समिध घी चरु इनकी प्रत्येक अष्टोत्तरशत १०८ आहुतिदे इस प्रकार हवनपर्यंत देव पूजाकरनेके अनंतर वक्ष्यमाण मंत्रसहित अभियुक्त अर्थ (दावेका धन) को पत्रपर लिखकर उस पत्रको शोध्य (शुद्ध करनेयोग्य) मनुष्यके शिरपर रक्खे–सोई कहाहै कि जो यथार्थ अभियोग हो उसको इस मंत्रसहित पत्रपर लिखकर शिरपर रक्खे वह मंत्र यह है कि सूर्य चंद्रमा पवन अग्नि द्यौ (आकाश) भूमि जल हृदय यम दिन रात्रि दोनों संध्या और धर्म ये सब मनुष्यके वृत्तांतको जानते हैं– यह सब धर्मके आवाहनसे लेकर शिरपर पत्र रखने पर्यंत कर्मका समूह सब दिव्योंमें साधारण है सोई कहाहै कि इस संपूर्ण मंत्रविधिको सब दिव्योंमें करे तैसेही सब देवताओंका आवाहनभी करे फिर प्राड्विवाक् तुलाकी प्रार्थना करे क्योंकि यह स्मृति है कि शास्त्रका ज्ञाता इस विधिसे तुलाकी प्रार्थना करे उसके मंत्र ये दिखाये हैं कि हे धट (तुले) तुझे दुरात्माओंकी परीक्षाके लिये ब्रह्मानें रचाहै–धकारसे तू धर्ममूर्ति है और टकारसे कुटिल नरको धारणकरके विचारती है इससे तुझे धट कहते हैं तू सब जन्तुओंके पुण्य और पापको जानतीहै–हे देव जिसको मनुष्य नहीं जानते उसको तू जानती है व्यवहारमें अभिशस्त हुआ मनुष्य शुद्धिको चाहता है तिससे धर्मके अनुसार संशयसे इसकी रक्षा करनेयोग्य तू है शुद्धिकेयोग्य मनुष्य तो त्वं तुले इत्यादि पूर्वोक्त मंत्रसे तुलाकी प्रार्थना करे फिर प्राड्विवाक शिरपर रक्खे हुये पत्रको शोधन करके और अनुकूल स्थानमें रखकर तुलाके ऊपर शोध्य मनुष्यको बैठावे–क्योंकि यह स्मृति है कि कुछ काल टिककर और पत्रको रखकर फिर तुलाके ऊपर बैठावे–और बैठाकर पांच विनाडी इतने वीतें तबतक वैसेही स्थापित रक्खे और उस कालकी परीक्षा ज्योतिःशास्त्रका ज्ञाता ब्राह्मण करे क्योंकि यह स्मृति है कि ज्योतिषी श्रेष्ठब्राह्मण कालकी परीक्षा करे पांच विनाडी पंडितोंनें परीक्षाका काल कहाहै– दश गुरु अक्षरोंका उच्चारण काल प्राण और छः प्राणोंकी विनाडी होती है सोई कहाहै कि दश गुरु वर्णोंका प्राण छः प्राणोंकी विनाडी और साठ विनाडियोंकी एक घटी और साठ घटीयोंका एक अहोरात्र और तीस अहोरात्रोंका एक मास होताहै– और उस परीक्षाके कालमें राजा शुद्धब्राह्मणोंको नियत

१ यथार्थमभियुक्तः स्याल्लिखित्वा तं तु पत्रके। मंत्रेणानेन सहितं तत्कार्यं तु शिरोगतम् ।

२ आदित्यचन्द्रावनिलोनलश्च द्यौर्भूमिरापोहृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभेच संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ।

३ इमं मन्त्रविधिं कृत्स्नं सर्वदिव्येषु योजयेत्। आवाहनं च देवानां तथैव परिकल्पयेत् ॥

४ धटमामंत्रयेच्चैव विधिनानेन शास्त्रवित् ।

५ त्वं धट ब्रह्मणा सृष्टः परीक्षार्थं दुरात्मनाम्। धकाराद्धर्ममूर्तिस्त्वं टकारात्कुटिलं नरम् ॥ धृतो भावयसे यस्माद्धटस्तेनाभिधीयते। त्वं वेत्सि सर्वजन्तूनां पापानि सुकृतानिच ॥ त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानवाः। व्यवहाराभिशस्तोऽयं मानुषः शुद्धिमिच्छति। तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।

१ पुनरारोपयेत्तस्मिन् स्थित्वावस्थितपत्रकम् ।

२ ज्योतिर्विद्ब्राह्मणः श्रेष्ठः कुर्यात्कालपरीक्षणम् । विनाड्यः पंच विज्ञेयाः परीक्षाकालकोविदैः ।

३ दशगुरुवर्णैः प्राणः षट्प्राणाः स्याद्विनाडिका तासाम् । षष्ट्याघटी घटीनां षष्ट्याहोरात्र उक्तश्च त्रिंशद्भिर्दिनैर्मासः ।

करें वे शुद्धि और अशुद्धिको राजाके प्रति कहैं–सोई पितामहने कहाहै कि साक्षियोंके मध्यमें जैसा देखैं वैसेही अर्थको कहनेवाले ज्ञानी शुद्ध–लोभरहित–ब्राह्मणोंको राजा-नियुक्त करे वे राजाको शुद्धि वा अशुद्धिको कहैं–और शुद्धि और अशुद्धिके निर्णयका कारणभी कहाहै कि यदि तोलमें बढ जायतो निःसंदेह शुद्ध है और सम (जतनाका उतना) हो वा न्यून हो जाय तो वह मनुष्य शुद्ध नही होता– और जो यह पितामहका वचन है कि जो अल्प दोष है वह सम जानना और बहुत दोषवाला हीन (कम) हो जाताहै उसका यह अभिप्राय है कि यदि अभियोगका अर्थ अल्प है वा बहुतहै यह दिव्य प्रमाणसे निश्चय न हो-सके तोभी एकवार विना जाने अल्प और वारंवार और जानकर महत्व दंड वा प्राय-श्चित्तमें निश्चय समझना–और जब नही दी-खते हुये दृष्ट कारणोंसेही कोख (कुक्षि) आदिका छेदन वा भंग होजाय तो-भी अशुद्धिही समझनी– क्योंकि यह स्मृति है कि कक्षका छेदन– तुलाका भंग धडा और कर्कटका भंग–रस्सीका छेदन अक्षका भंग–हो जाय तो उसी प्रकार अ-शुद्धि कहनी–कक्षनाम छींकेका तल–कर्कट नाम तुलके दोनों प्रांतके भागोंमें छींका ल-टकानेके कुछ वक्र, लोहेके कीलक, कडीके तुल्य होतेहैं–अक्षनाम पादके स्तंभोंके ऊपर रक्खा हुआ तुलाका आधार पट्ट–जब किसी दीखते हुये कारणके वश इनका भंग होजा-यतो तुलाको फिर रक्खे–क्योंकि यह स्मृतिहै कि छींके आदिका छेदन वा भंग होजायतो मनुष्यको फिर बैठावे–फिर ऋत्विज पुरोहित आचार्य इनको दक्षिणाओंसे प्रसन्न करे–इस प्रकार करता हुआ राजा मनोरम भो-गोंको भोगकर महती (बडी) कीर्तिको प्राप्तहोताहै और अंत समयमें मुक्तहोताहै–यदि राजा पूर्वोक्ततुलाका उसी प्रकार स्थापन रखना चाहै तो काक आदि उप-घातों (नाशक)के निवारणार्थ कपाट आदि सहित शालाको बनवावे–क्योंकि यह स्मृति है कि विशाल–ऊंची–शुक्ल–धटकी, ऐसी शाला बनवावे–जिसमें स्थापनकी हुई तुलाको कुत्ते चांडाल काक नष्ट न करें–और उसी शालाकी दिशाओंमें लोक-पालोंका स्थापन करै–और उनका गंध, पुष्प चंदनसे त्रिकाल पूजन करै–और जो शाला कीवाड और जौ ब्रीही आदिके बीजों-से युक्त और सेवकोंसे रक्षितहो–और मिट्टी जल अग्नि इनसे युक्तहो और शून्यभी न हो–ऐसी शालाको राजा बनवावे ॥

भावार्थ–तुलाके धारणको जो जानतेहों वे अभियुक्तपुरुष तुलापर रक्खे और प्रति-मान (बाट)के समान करके उसको उता-रलें–फिर वह अभियुक्त वा अभियोक्ता

१ साक्षिणो ब्राह्मणाः श्रेष्ठा यथा दृष्टार्थवादिनः । ज्ञानिनः शुचयोऽलुब्धा नियोक्तव्या नृपेण तु ॥ शंसंति साक्षिणः श्रेष्ठाः शुद्ध्यशुद्धी नृपे तदा ।

२ तुलितो यदि वर्द्धेत स शुद्धः स्यान्नसंशयः । समो वा हीयमानो वा न स शुद्धो भवेन्नरः ।

३ अल्पदोषः समो ज्ञेयः बहुदोषस्तु हीयते ।

४ कक्षभेदे तुलाभंगे घटकर्कटयोस्तथा । रज्जुच्छेदेऽक्षभंगे वा तथैवाशुद्धिमादिशेत् ।

१ शिक्यादिच्छेदभंगेषु पुनरारोपयेन्नरम् ।

२ एवं कारयिता राजा भुक्त्वाभोगान्मनोरमान् ॥ महतीं कीर्तिमाप्नोति ब्रह्मभूयाय कल्पते ।

३ विशालामुन्नतां शुभ्रां घटशालां तु कारयेत् । यत्रस्था नोपहन्येत श्वभिश्चांडालवायसैः ॥ तत्रैव लोकपालादीन् सर्वान्दिक्षु निवेशयेत् ॥ त्रिसंध्यं पूजयेच्चैतान् गंधमाल्यानुलेपनैः । कपाटबीजसंयुक्तां परिचारकरक्षिताम् ॥ मृत्पानीयाग्निसंयुक्तामशून्यां कारयेन्नृपः ।

तुलाकी इस प्रकार प्रार्थना करे कि हे तुले तू सत्यका स्थानहै देवताओंने तू पहिले रचीहै तिससे हे कल्याणि सत्य कहिये और संशयसे मुझे छुटाइये–हे मातः यदि मैं पापकर्मा हूं तो मुझे नीचे करियो और जो मैं शुद्धहूं तो ऊपरको पहुंचाइयो अर्थात् मेरे पलडेको ऊंचा करियो॥१००।१०१।१०२॥

इति धटविधिः ।

करौविमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वाततोन्यसेत् ।
सप्ताश्वत्थस्यपत्राणितावत्सूत्राणिवेष्टयेत् ॥

पद–करौ २ विमृदितव्रीहेः ६ लक्षयित्वाऽ–ततःऽ–न्यसेत् क्रि–सप्त २ अश्वत्थस्य ६ पत्राणि २ तावतऽ–सूत्राणि २ वेष्टयेत् क्रि–॥

योजना–विमृदितव्रीहेः पुरुषस्य करौ लक्षयित्वा (अंकयित्वा) ततः अश्वत्थस्य सप्त पत्राणि न्यसेत्–तावत् सूत्राणि वेष्टयेत्॥

तात्पर्यार्थ–दिव्यमातृकामें कहे हुये साधारणधर्मोंके होते–तुलाकी विधिमें कहे धर्मोंमें जो आवाहन–सिरपर पत्रके रखनेके अंतमें अग्निकी विधिमें यह विशेषहै–कि मलेहैं हाथोंसे व्रीहि जिसनें ऐसे पुरुषके हाथोंको देखे और हाथोंमें जहां २ काला तिल–व्रणकिण (रेखा) आदि स्थानोंमें लाखके रस आदिसे चिह्नको करदे–सोई नारदनें कहाहै कि हाथके सब क्षतों (चिह्न) में हंस पदोंको करे–फिर सात पीपलके पत्तोंको अंजली किये हाथोंमें रखदे–क्योंकि यह स्मृति है कि पीपलके सात पत्तोंसे अंजलीको पूर्ण करे–और हाथ सहित उन पत्तोंपर सातवारही सूतको लपेटदे–वे सात सूत शुक्ल होतेहैं–क्योंकि नारदका वचनहै कि सपेद सात सूतके तन्तुओंसे हाथको लपेटे–तैसेही सात शमी और दूर्वाके पत्ते अक्षत और दही मिले अक्षत इन सबको पीपलके पत्तोंपर रखदे–क्योंकि यह स्मृतिहै कि सात पीपलके पत्ते और शमीके पत्ते अक्षत और सात दूर्वाके पत्ते–और दही मिले अक्षत इन सबको हाथके ऊपर रखदे–और पुष्पोंकोभी रखदे–क्योंकि यह पितामहका वचनहै कि सात पीपलके पत्ते–अक्षत पुष्प दधि इनको हाथपर रखदे और सूतसे लपेटदे–और जो यह वचनहै कि अग्निसे तपाये लोहेको सात आखके पत्तोंसे ढककर हाथोंमें लेकर सात पद गमन करे यदि सातपदतक दग्ध नहोयतो शुद्ध जानना–यह वचन पीपलके पत्तोंके अभावमें आखके पत्तोंके विषयमें जानना–क्योंकि पीपलके पत्तोंकीही पितामहके वचनमें प्रशंसा लिखीहै–इससे वेही मुख्यहैं–कि पीपलसे अग्नि पैदा होतीहै पीपल वृक्षोंका राजाहै इससे बुद्धिमान् मनुष्य उसके पत्तोंको हाथोंके ऊपर रक्खे ॥

भावार्थ–हाथोंसे मलेहैं व्रीहि (धान) जिसनें ऐसे पुरुषके हाथोंमें काले तिल आदिके चिह्नोंको देखकर उनमें लाखके रंगसे हंसपद आदिके चिह्न करके सात पीपलके पत्तोंको अंजलीमें रखदे और हाथ सहित पत्तोंको सात सपेद सूतके डोरोंसे लपेटदे ॥ १०३ ॥

---

१ हस्तक्षतेषु सर्वेषु कुर्याद्धंसपदानि तु ।

२ पत्रैरंजलिमापूर्य आश्वत्थैः सप्तभिः समैः ।

१ वेष्टयेत सितैर्हस्तं सप्तभिः सूत्रतन्तुभिः ।

२ सप्तपिप्पलपत्राणि शमीपत्राण्यथाक्षतान् । दूर्वायाः सप्तपत्राणि दध्यक्तांश्चाक्षतान्न्यसेत् ।

३ सप्त पिप्पलपत्राणि अक्षतान्सुमनो दधि । हस्तयोर्निक्षिपेत्तत्र सूत्रेणावेष्टनं तथा ॥

४ पिप्पलाज्जायते वह्निः पिप्पलो वृक्षराट् स्मृतः । अतस्तस्य तु पत्राणि हस्तयोर्विन्यसेद्बुधः ।

त्वमग्नेसर्वभूतानांमंतश्चरसिपावक ।
साक्षिवत्पुण्यपापेभ्योब्रूहिसत्यंकवेमम ॥

पद–त्वं १ अग्ने १ सर्वभूतानां ६ अन्तःऽ-चरसि क्रि-पावक १ साक्षिवत्ऽ-पुण्यपापे-भ्यः ५ ब्रूहि क्रि-सत्यं २ कवे १ मम ६ ॥

योजना–हे अग्ने त्वं सर्वभूतानां अन्तः चरसि–हे पावक–हे कवे पुण्यपापेभ्यः (पुण्यपापं अवेक्ष्य) साक्षिवत् सत्यं ब्रूहि ॥

तात्पर्यार्थ–हे अग्ने तू जरायुज (मनुष्य आदि) अण्डज (पक्षी आदि) स्वेदज (कृमि) और उद्भिज्ज (वृक्ष) इन चार प्रकारके भूतोंके शरीरके भीतर विचरता है अर्थात् उपयोगी अन्नपान आदिके पाचकरूपसे रहता है–हे पावक (शुद्धिके कारण) हे कवे तू साक्षीकी समान पुण्य और पापको देखकर सत्य कह–तीनदफे तपायेहुये अयःपिण्डको सन्देश (संडासी)से आगे लाकर पश्चिम मण्डलमें पूर्वाभिमुख बैठा हुआ कर्ता इस मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करे–सोई नारदने कहाहैकि अग्निके समान तपाए हुए लोहेके पिण्डको स्फुलिङ्ग (अग्निकण) सहित और भली प्रकार रंजित उसको तीसरे तापमें सत्ययुक्त वचनसे प्रार्थना करे अर्थात् लोहकी शुद्धिके लिये भली प्रकार तपाएहुए लोहेके पिण्डको जलमें गेरकर फिर तपाकर फिर गेरकर फिर तीसरी दफे तपाएहुए उसको संडाशीसे पकडकर शोध्य मनुष्यके आगे लाकर सत्य शब्द युक्त त्वमग्ने सर्वभूतानां इत्यादि मंत्रको कर्ता पढे प्राड्विवाक तो मण्डल भूमिके दक्षिण देशमें लौकिक अग्निका स्थापन करके उस अग्निमें–अग्नये पावकाय स्वाहा–इस मंत्रसे घीकी अष्टोत्तरशत १०८ आहुति दे–क्योंकि इस वचनमें यही लिखा है–होमके अनंतर उस अग्निमें लोहेके पिण्डको गेरकर और उसके तपते हुए धर्मके आवाहनसे हवन पर्यंत पूर्वोक्तविधिको करके तीसरी वारके तापमें उस लोह पिण्डको अग्निकी इन मंत्रोंसे प्रार्थना करे–कि हे अग्ने तू चारों वेदरूप है तू यज्ञोंमें होमा जाता है तूही सब देवता और ब्रह्मवादिओंको मुख है जठर (पेट) में टिका हुआ तू प्राणीओंके शुभ और अशुभको जानता है और जिससे तू पापसे पवित्र करता है इससे पावक कहता है–हे पावक पापीओंको अपने स्वरूपको दिखाकर तेजस्वी हो और शुद्धि भावोंमें हे हुताशन शीतल हो हे अग्ने तू सब देवताओंके भीतर साक्षी होकर विचरता है हे देव जिनको मनुष्य नही जानते उनको तू जानता है व्यवहारमें अभिशस्त (फंसा हुआ) यह मनुष्य शुद्धि चाहता है तिससे इसकी इस संशयसे धर्मपूर्वक रक्षा करो ॥

भावार्थ–हे अग्ने तू सब भूतोंके भीतर विचरता है हे पावक हे कवे मेरे पुण्य पापको देखकर सत्य कहियो अर्थात् दिखाईयो ॥

तस्येत्युक्तवतोलोहंपंचाशत्पलिकंसमम् ।
अग्निवर्णन्यसेत्पिंडंहस्तयोरुभयोरपि १०५

पद–तस्य ६ इतिऽ-उक्तवतः ६ लोहं २ पंचाश त्पलिकं २ समं २ अग्निवर्णं २ न्यसेत्

१ अग्निवर्णमयःपिण्डं सस्फुलिंगं सुरंजितम्। तापे। तृतीये संताप्य ब्रूयात्सत्यपुरस्कृतम् ॥

१ घृतमष्टोत्तरं शतं ।

२ त्वमग्ने वेदाश्चत्वारस्त्वं च यज्ञेषु हूयसे ॥ त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वं मुखं ब्रह्मवादिनां ॥ जठरस्थो हिभूतानां ततो वेत्सिशुभाशुभं पार्थ ॥ पुनासि वै यस्मात्तस्मात्पावक उच्यसे ॥ पापेषु दर्शयात्मानमर्चिष्मान्भव पावक॥अथवा शुद्धभावेषु शीतो भव हुताशन ॥ त्वमग्ने सर्वदेवानामन्तश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देवजानीषे न विदुर्यानि मानवाः ॥ व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषः शुद्धिमिच्छति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।

क्रि-पिण्डं २ हस्तयोः ७ उभयोः ७ अपि ऽ-

योजना-इति उक्तवतः तस्य उभयोः अपि-हस्तयोः लौहं पंचाशत्पलिकं समं अग्निवर्णं पिण्डं न्यसेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जब वह कर्ता त्वमग्ने सर्वभूतानां-इस पूर्वोक्त मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करचुके तब उसके दोनों हाथोंपर जो पीपलके पत्ते दधि दूर्वा आदिसे ढकेहो अग्निके समान है वर्ण जिस्का ऐसे पचास पलपर सम और कोणोंसे रहित आठ अंगुलका जिस्का विस्तारहो और जो चिकनाहो ऐसे अयःपिण्डको प्राड्विवाक रक्खे क्यों कि पितामहका वचन है कि आठ अंगुल पचास पलभर लोहेके पिण्डको बराबर और कोणोंसे हीन करके अग्निमें तपावे ॥

भा०-इस पूर्वोक्त अग्निकी स्तुतिकों करते हुए कर्ताके दोनों हाथोंपर जो पचास पल भरहो अग्निकासा जिसका वर्ण हो ऐसे बराबर लोहेके पिण्डको प्राड्विवाक रक्खे-

सतमादायसप्तैवमंडलानिशनैर्व्रजेत्षोडशांगुलकंज्ञेयंमंडलंतावदंतरम् ॥ १०६ ॥

पद-सः १ तं २ आदाय ऽ-सप्त २ एव ऽ-मण्डलानि२ शनैः ऽ-व्रजेत् क्रि-षोडशांगुलकं१ ज्ञेयं १ मण्डलं १ तावत् १ अन्तरम् ॥ १ ॥

योजना-सः तं आदाय सप्त एव मण्डलानि शनैः व्रजेत् मण्डलं षोडशांगुलकं ज्ञेयं अन्तरंच तावत् एव ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-वह पुरुष तपाएहुए लोहपिण्डको अंजलिमें लेकर और सात मण्डलोंके भीतरही चरणोंको रखकर शनैः शनैः गमन करै-यहां एवपदके देनेसे मण्डलोंमें ही पैरको रक्खे मण्डलोंका अवलंघन न करे-सोई पितामहने कहा है कि मण्डलका अवलंघन न करे और न उससे पहिले पाद रक्खे और सोलह अंगुल प्रमाण जिस्का ऐसा मण्डल जानना और एक मण्डलका दूसरे मण्डलसे अंतर (फरक)भी सोलह अंगुलकाही जानना- षोडश अंगुलेंकि सात मण्डलोंमें गमन करे यह कहनेसे यह कहा गयाकि पहिला एक मण्डल अवस्थान (बैठना)का और सात मण्डल गमन करनेके इस प्रकार आठ मण्डल सोलह अंगुलके होते हैं और वे उन सातोंके मध्यभागभी सोलह अंगुलके जानने-वेही बात नारदनें संख्या करके कही है कि मण्डलसे दूसरे मण्डलका अंतर बत्तीस अंगुलका होता है इस प्रकार आठ मण्डलोंके दोसो चालीस २४०अंगुल भूमि अंगुलके प्रमाणसे होती है-इसका यह तात्पर्य है कि अवस्थानके षोडशांगुल १६ मण्डलसे सोलह अंगुलके अंतरपर द्वितीय आदि सोलह २ अंगुलके सात मण्डल-बत्तीस २ अंगुलके अंतर सहित होते हैं और अवस्थानका मण्डल तो सोलह अंगुलकाही होताहै इस प्रकार अंतराल सहित आठों मण्डलोंका प्रमाण २४० दोसो चालीस अंगुल भूमि होतीहै-इस पक्षमें अवस्थानके मण्डलको सोलह अंगुलका बनाकर-मध्यके भागों सहित बत्तीस अंगुलके सात भूमिके भागोंके दो २ भाग करके अंतराल (मध्य)के भूभागोंके सोलह अंगुल छोडकर मंडलके भूभाग जो सोलह अंगुल प्रमाणकेहैं उनमें ऐसे सात मण्डल बनावे

१ अरुहीनं समं कृत्वा अष्टांगुलमयोमय। पिण्ड तु तापयेदग्नौ पचाशत्पलिकसमम ।

१ नमण्डलमतिक्रामेन्नाप्यर्वाकू स्थापयेत्पदम् ।

२ द्वात्रिंशदंगुलं प्राहुर्मण्डलान्मण्डलांतरं। अष्टाभिर्मण्डलैरेव मण्डलानां शतद्वयं ॥ चत्वारिंशत्समधिकं भूमेरंगुलमानतः ॥

जो गमन करनेवालेके पदोंके समान(तुल्य) हों–सोई तिसनेही कहाहै कि मण्डलका प्रमाण उसके चरणके समान बनावे–और जो पितामहनें यह कहाहै कि आठ मण्डल बनावे और पहिला एक नवम ९ मण्डल बनावे–पहिला मंडल अग्निका–दूसरा वरुणका–तीसरा वायुका–चौथा यमका–पांचवा इंद्रका–छठा कुबेरका–सातवां सोमका–आठवा सावित्रीका–नौमा सब देवताओंका होताहै यह दिव्यके ज्ञाता जानते हैं–और मंडलसे मंडलका अंतर बत्तीस अंगुलका होताहै इसप्रकार आठों मंडलोंके २५६ दोसो छप्पन्न अंगुल भूमिकी रचना हो–और मंडलका प्रमाण कर्ताके पादके प्रमाणसे होताहै और मंडल २में शास्त्रोक्त कुशा रखनी–उस वचनमेंभी सबहैं देवता जिसके ऐसा जो नवम मंडल उसके अंगुलोंका प्रमाण नही होताहै उसको छोडकर आठ मंडल और आठ अंतरालोंका प्रमाण प्रत्येक सोलह २ अंगुलका होताहै इससे संपूर्ण मंडलोंके दोसो छप्पन्न अंगुल सिद्ध होतेहैं उसमेंभी गमन करनेके मंडल सातही होतेहैं इससे इस वचनकाभी विरोध नहीहै कि पहिले मंडलमें लोहेके पिंडको लेकर खडा होताहै और नौमें मंडलमें फेंकदेताहै

१ मंडलस्य प्रमाणं तु कुर्यात्तत्पदसंमितम् ।

२ कारयेन्मंडलान्यष्टौ पुरस्तान्नवमं तथा । आग्नेयं मंडलं चाद्य द्वितीयं वारुणं स्मृतम् ॥ तृतीयं वायुदैवत्यं चतुर्थं यमदैवतम् । पंचमं त्विंद्रदैवत्यं षष्ठं कौबेरमुच्यते॥ सप्तमं सोमदैवत्यं सावित्रं त्वष्टमं तथा । नवमं सर्वदैवत्यमिति दिव्यविदो विदुः ॥ द्वात्रिंशदंगुलं प्राहुर्मंडलान्मंडलांतरम् । अष्टाभिर्मंडलैरेवमण्डलानां शतद्वयम् । षट्पंचाशत्समधिकं भूमेस्तु परिकल्पना । कर्तुः पदसमं कार्यं मंडलं तु प्रमाणतः । मंडले मंडले देयाः कुशाः-शास्त्रप्रचोदिताः ॥

३ प्रथमे तिष्ठति नवमे क्षिपति ।

और अंगुलका प्रमाण यह कहाहै कि तिरछे जौंके आठ ८ उदर वा खडे हुये तीन ब्रीहि अंगुलका प्रमाण कहाहै बारह अंगुलकी एक वितस्ति और दो वितस्तियोंका एक हाथ–चार हाथका एक दंड–दो सहस्र दंडका एक कोश–औरचार कोशका एक योजन होताहै ॥

भावार्थ–वह कर्ता उस लोहेके पिंडको लेकर शनैः २ सात मंडलोंमें गमन करै और सोलह अंगुलका मंडल और सोलहही अंगुलोंका मंडलोंका अंतर (मध्य) होताहै ॥ १०६ ॥

मुक्त्वाग्निंमृदितव्रीहिरदग्धःशुद्धिमाप्नुयात् । अंतरापतितेपिंडेसंदेहेवापुनर्हरेत् ॥१०७॥

पद–मुक्त्वाऽ–अग्निं२मृदितव्रीहिः१अदग्धः १शुद्धिं २ आप्नुयात् क्रि–अंतराऽ–पतिते ७ पिण्डे ७ सन्देहे ७ वाऽ–पुनःऽ–हरेत् क्रि–॥

योजना– अग्निं मुक्त्वा मृदितव्रीहिः अदग्धः पुरुषः शुद्धिं आप्नुयात्–पिंडे अंतरा पतिते वा संदेहे पुनः पिंडं हरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–आठवें मंडलमें टिककर नवम मंडलमें अग्निसे तपाये लोहेके पिंडको त्यागकर और हाथोंसे व्रीहियोंको मलकर यदि पुरुष दग्ध नही (नजले) तो शुद्धिको प्राप्त होताहै और जल जायतो अशुद्ध है यह बात अर्थात् सिद्धहै–और जो संत्रास (दुःख)से गिरता हुआ मनुष्य हाथोंसे भिन्न शरीरमें जलजाय तौभी अशुद्ध नही होता–सोई कात्यायननें कहा है कि यदि

१ तिर्यग्यवोदराण्यष्टावूर्ध्वा वा व्रीहयस्त्रयः । प्रमाणमंगुलस्योक्तं वितस्तिर्द्वादशांगुलः ॥ हस्तो वितस्तिद्वितयं दंडोहस्तचतुष्टयम् । तत्सहस्रद्वयं क्रोशो योजनं तच्चतुष्टयम् ।

२ प्रस्खलन्नभिशस्तश्चेत्स्थानादन्यत्र दह्यते । अदग्धं तं विदुर्देवास्तस्य भूयोपि दापयेत् ।

गिरता हुआ अभिशस्त (अपराधी) स्थान (हाथों)से अन्यत्र जल जाय तो उसकोभी देवता अदग्ध कहते हैं वा उसके हाथमें भूयः (फिर) लोहेके पिंडको दिवावै-यदि गमन करते हुये मनुष्योंके हाथोंमेंसे आठमें मंडलसे अर्वाक् (पहिले)ही पिंड गिरजाय तो और जलनें न जलनेमें संदेह होय तो फिर उक्त पिंडको लेकर चलै-यहां यह अनुष्ठान (करना)का क्रम है कि पहिले दिन भूतशुद्धिको करके और परले दिन शास्त्रोक्तरीतिसे मंडलोंको रचकर और तिस २ मंडलमें मंडलोंके देवताओंको पूजकर और अग्निका स्थापन करके और-शांतिके होमसे निवृत्त होकर और उपवास किया है जिसनें ऐसे-स्नान किये और आर्द्र (गीले) वस्त्र धारण किये पुरुषको पश्चिमके मंडलमें स्थित करके व्रीहियोंके मर्दन (मलना) आदि-हाथोंके संस्कारको करके-और मंत्रोंसहित प्रतिज्ञा (दावा)के पत्रको कर्ताके शिरपर बांधकर-तीसरे तापमें प्राड्विवाक अग्निकी प्रार्थना करके और तपाये हुये लोहेके पिंडको संदंश (संडासी)से पकडकर-कर्ता जब अग्निकी प्रार्थना करचुके तब उसकी अंजलीमें लोहेके पिंडको रखदे-वहभी सात मंडलोंनें गमन करके नवमें मंडलमें दग्ध न होयतो शुद्ध होता है ॥

भावार्थ-अग्निको छोडकर और हाथोंसे व्रीहियोंको मलकर दग्ध न होय तो शुद्धिको प्राप्त होता है यदि लोहेका पिंड अष्टम मंडलसे पहिलेही गिरपडे और जलने वा न जलनेमें संदेह होयतो लोहेके पिंडको लेकर पुनः (दुबारा) गमन करे ॥१०७॥ इत्यग्निविधिः ॥

सत्येनमाभिरक्षत्वंवरुणेत्यभिशाप्यकम् ।
नाभिदघ्नोदकस्थस्यगृहीत्वोरूजलंविशेत्

पद-सत्येन ३ मा २ अभिरक्ष क्रि-त्वं १ वरुण १ इतिऽ-अभिशाप्यऽ-कम् २ नाभिदघ्नोदकस्थस्य ६ गृहीत्वाऽ-ऊरू २ जलं २ विशेत् क्रि-॥

योजना-हे वरुण त्वं मा (मां) सत्येन अभिरक्ष इति कं (जलं) अभिशाप्य (अभिमंत्र्य) नाभिदघ्नोदकस्थस्य ऊरू गृहीत्वा शोध्यः जलं विशेत् ॥

तात्पर्यार्थ-हे वरुण तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस मंत्रसे जलकी प्रार्थना करके नाभितक है प्रमाण जिसका ऐसे जलमें स्थित किसी अन्य पुरुषकी जंघाओंको पकडकर शोध्य मनुष्य जलमें प्रवेश करै- (डूबे) यहभी वरुणकी पूजाके अनंतर करै-क्योंकि नारदकी स्मृति है कि गंध पुष्प चंदन मधु दूध घृत आदिसे सावधान होकर प्रथम वरुणकी पूजा करै और तैसेही धर्मका आवाहन आदि संपूर्ण देवताओंकी पूजा-होम-और मंत्रोंसहित प्रतिज्ञा पत्रके शिरपर रखने पर्यंत साधारण कर्मोंको करके जलमें प्रवेश करै-और तैसेही जब प्राड्विवाक इस प्रकार जलकी प्रार्थना करले-कि हे जल तू प्राणियोंका प्राणसृष्टिकी आदिमें रचाहै और द्रव्य और देहधारियोंकी शुद्धिका कारण कहाहै इससे शुभ और अशुभकी परीक्षामें अपने स्वरूपको दिखाय-तब शोध्य मनुष्य हे वरुण तू मेरी सत्यसे रक्षाकर इस प्रकार जलकी प्रार्थना करै-उदकके स्थान नारदनें ये कहेहैं

१ गंधमाल्यैः सुरभिभिर्मधुक्षीरघृतादिभिः । वरुणाय प्रकुर्वीत पूजामादौ समाहितः ॥

२ तोय त्व प्राणिना प्राणसृष्टेराद्यं तुनिर्मितं ।शुद्धेश्च कारणं प्रोक्तं द्रव्यानां देहिनां तथा ॥ अतस्त्वं दर्शयात्मानं शुभाशुभपरीक्षणे ।

३ नदीषु तनुवेगासु सागरेषु वहेषु च । ह्रदेषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च ।

कि सूक्ष्म जिनका वेगहो ऐसी नदी सागर वह ह्रद (कुंड) देवखात (पुष्कर आदि) तडाग और सरोवर- तैसेही पितामहने भी कहेहैं कि स्थिर जलमें गोता लगावे और जिसमें ग्राहहो वा अल्पजल हो उसमें न लगावे तृण और शिवालसे रहित जलौका (जोंक) और मत्स्यसे वर्जित जलमें और देवखातके जलमें शोधन करे-और जो जल आहार्य हो अर्थात् तडाग आदिसे लाकर तामेके कडाह आदिमें रक्खाहो उसको और अधिक वेगवाली नदीओंको सदैव वर्जदे-और जिसमें तरंग और कीच नहो ऐसे जलमें प्रवेश करे और नाभितक जलमें टिका हुआभी यज्ञके वृक्षकी धर्मस्थूणा (थूनी)को पकडकर पूर्वाभिमुख स्थित रहे क्योंकि यह स्मृति है कि धर्मकी स्थूणाको ग्रहण करके जलमें पूर्वको मुख किये खडारहे ॥

भावार्थ-हे वरुण तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस प्रकार जलकी प्रार्थना करके और नाभिमात्र जलमें खडेहुये किसी अन्य मनुष्यकी जंघाको पकडकर जलमें प्रवेश करे (डूबै) ॥ १०८ ॥

समकालमिषुंमुक्तमानीयान्योजवीनरः ।
गतेतस्मिन्निमग्नांगंपश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात्

पद-समकालं २ इषुं २ मुक्तं २ आनीय ऽ-अन्यः १ जवी १ नरः १ गते ७ तस्मिन् ७ निमग्नांगम् २ पश्येत् क्रि-चेत् ऽ-शुद्धिं २ आप्नुयात् क्रि- ॥

योजना-समकालं गते तस्मिन् जविनि एकस्मिन्पुरुषे सति अन्यः (शरपातस्थानस्थः) जवी नरः मुक्तं इषुं आनीय चेत् (यदि) निमग्नांगं पश्येत् तर्हि शुद्धिं आप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ-निमज्जनके समान कालमें (डूबतेही) एक पुरुष वेगसे जब बाणके संगचले-और जहां बाण गिरै वहां स्थित अन्य वेगवाला मनुष्य पहिले छोडेहुये बाणको लाकर जलमें डूबेहुये अपराधीको यदि देखै तो अपराधी शुद्ध होताहै-यहां यह बातकही समझनी कि तीन बाणोंके छोडनेपर एक वेगवाला मनुष्य मध्यम शरके पातस्थानमें जाकर और शरको लिये वहांही खडा रहै-और अन्य वेगवान् पुरुष बाणके छोडनेके स्थानमें तोरणके नीचे स्थितरहै-इस प्रकार ये दोनों जब स्थितहो जांय तब तीसरी करतालीके बजानेपर शोध्य मनुष्य जलमें डूबै-उसी समय तोरणके मूलमें स्थित मनुष्य बडे वेगसे मध्यम बाण जहां गिरहो वहां जाय और उसके वहां आतेही शरग्राही (बाणवाला) दूसरा वेगवाला मनुष्य बडे वेगसे तोरणके मूलमें आकर यदि अपराधीको जलमें अंतर्गत (डूबा) न देखै। तो अपराधी अशुद्ध होताहै-यही सब पितामहने स्पष्ट कियाहै कि जानेवालेका गमन और कर्ताका जलमें मज्जन एककालमेंही दोनों होतेहैं-वेगवाला मनुष्य तोरणके मूलसे लक्ष्य (निशाना)के स्थानमें जाय उसके जातेही दूसराभी वेगसे बाणको लेकर उसी-तोरणके मूलके समीप आवे जहांसे वह पुरुष गयाथा-आयाहुआ

१ स्थिरतोये निमज्जेत्तु नग्राहिणि न चाल्पके ॥ तृणशैवालरहिते जलौकामत्स्यवर्जिते ॥ देवखातेषु यत्तोयं तस्मिन्कुर्याद्विशोधनम् । आहार्यं वर्जयेन्नित्यं शीघ्रगासु नदीषु च ॥ आविशेत्सलिलं नित्यमूर्मिपंकविवर्जिते ।

२ उदके प्राङ्मुखास्तिष्ठेद्धर्मस्थूणां प्रगृह्य च ।

१ गंतुश्चापिच कर्तुश्च समं गमनमज्जनम् । गच्छेत्तोरण मूलात्तु लक्ष्यस्थानं जवीनरः ॥ तस्मिन्गते द्वितीयोपि वेगादादाय सायकम् । गच्छेत्तोरणमूलंतु यतः सपुरुषोगतः ॥ आगतस्तु शरग्राही न पश्यति यदा जले । अंतर्जलगतं सम्यक्तदा शुद्धिं विनिर्दिशेत् ।

बाणका ग्राही यदि जलमें न देखे तो अशुद्धिको और जलमें देखे तो शुद्धिको कहे-और वेगवाले पुरुषोंका निर्द्धारण (निर्णय) नारदनें कियाहै की पचास दौडनेवालोंमें जो वेगसे अधिक दौडें वे बाणके लानेके लिये नियुक्त करने-और तोरणभी जलमें डूबनेके स्थानसे समीपमें शोध्य मनुष्यके कानकी बराबर बनवाना क्योंकि नारदकी स्मृति है कि उस जलके स्थानमें जाकर सम (इकसे) भूमिके भागमें कानकी बराबर ऊंचा तोरण बनावे-और तीनों बाणोंका और वांशके धनुषका मंगलके श्वेत गंध पुष्पोंसे पहिले पूजन करके अन्य कर्मको करे यह पितामहनें कहा है-धनुषका प्रमाण और लक्ष्यका स्थान नौर (?)नें कहा है कि सात अधिक सौ अंगुल जिसका प्रमाणहो वह क्रूर और छः अधिक सौतक मध्यम-और पांच अधिक सौतक मंद होता है-यह धनुषकी विधि जाननी-मध्यम धनुषसे तीन बाण फेंकने-और डेढसौ १५०हाथपर बुद्धिमान मनुष्य लक्ष्यको बनाकर न्यून वा अधिकपर बाणोंको जो फेंके उसको दोष होता है-अर्थात् सात अधिकसौ अंगुलके-ग्यारह अंगुल ऊपर चार हाथ होते हैं वही क्रूर धनुषका प्रमाण है मध्यमका दश अंगुल ऊपर और मंदका नौ अंगुल ऊपर चार हाथ होता है-और बाणभी वांशके हों और अग्रभागमें लोहा न लगाहो ऐसे बनवाने क्योंकि यह स्मृति है कि जिनके अग्रभागमें लोहा न लगाहो ऐसे वांशके बाणोंको शुद्धिके अर्थ बनावे और फेंकनेवाला दृढतासे फेंके-और फेंकनेवालाभी क्षत्रियहो वा क्षत्रियकी वृत्तिवाला ब्राह्मणहो और जिसने उपवास कियाहो वह नियुक्त करना-सोई कहा है कि फेंकनेवाला क्षत्रिय वा क्षत्रियवृत्ति ब्राह्मण-जिसका हृदय क्रूर नहो-जो शांतहो-जिसने उपवास कियाहो-वही बाणोंको फेंके-तीन बाणोंमें छोडनेपर मध्यम बाण ग्रहण करना-क्योंकि यह वचन है कि छोडेहुये शास्त्रोक्त उन बाणोंमें बलवान् मनुष्य मध्यम बाणको ग्रहण करे-वहभी पडनेके स्थानसे लाना सर्पण (सरकना) स्थानसे नहीं-क्योंकि यह वचन है कि बाणके पडनेको ग्रहण करे सर्पणको वर्जदे-क्योंकि सर्पता २ बाण बहुत दूर चला जाता है-और पवनके चलते और विषम आदि देशमें बाणको न छोडे-क्योंकि यह पितामहका वचन है कि अत्यंत पवनके चलते और ऊंची नीची भूमिमें और बहुत वृक्षोंके स्थानमें जहां तृण गुल्म लता वल्ली पंक वा पाषाण हों वहां बुद्धिमान मनुष्य बाणको न फेंके, शोध्यको आनकर

१ पंचाशतो धावकानां यौ स्यातामधिकौ जवे। तौ च तत्र नियोक्तव्यौ शरानयनकारणात् ।

२ गत्वातुतज्जलस्थानं तटे तोरणमुच्छ्रितम् । कुर्वीतकर्णमात्रं तु भूमिभागे समे शुचौ ॥

३ शरान्संपूजयेत्पूर्वं वैणवं च धनुस्तथा। मंगलैर्धूप पुष्पैश्च ततः कर्म समाचरेत् ॥

४ क्रूरं धनुः सप्तशतं मध्यमं षट्शतं स्मृतम् । मंदं पंचशतं ज्ञेयमेषज्ञेयो धनुर्विधिः॥ मध्यमेन च चापेन प्रक्षिपेत्तु शरत्रयं हस्तानां तु शते सार्द्धे लक्ष्यं कृत्वा विचक्षणः। न्यूनाधिकेतु दोषः स्यात् क्षिपतस्सायकांस्तथा ।

१ शरांश्चानायसाग्रांस्तु प्रकुर्वीत विशुद्धये । वेणुकाण्डमयांश्चैव क्षेप्ता सुदृढक्षिपेत् ।

२ क्षेप्ता च क्षत्रियः प्रोक्तस्तद्वृत्तिर्ब्राह्मणोपिवा । अक्रूरहृदयः शांतः सोपवासस्ततः क्षिपेत् ।

३ तेषांच प्रेषितानां च शराणां शास्त्रचोदनात् । मध्यमस्तु शरोग्राह्यः पुरुषेणबलीयसा ।

४ शरस्य पतनं ग्राह्यं सर्पणन्तु विवर्जयेत् । सर्पन् सर्पन् शरोयायाद्दूराद्दूरतरयतः ॥

५ इषुं न प्रक्षिपेद्विद्वान्मारुते वातिवायति । विषमे भूप्रदेशेच वृक्षस्थानसमाकुले ॥ तृणगुल्मलतावल्ली पंकपाषाणसंयुते ।

डूबाहुआ देखे तो शुद्धिको प्राप्त होता है यह कहनेसें यह दिखायाकी शोध्य उन्मज्जित अंग (जलसे बाहर) होयतो अशुद्ध होता है और अन्य स्थानके गमनमेंभी पितामहने अशुद्धी कही है कि यदि एक अंगभी दीखजाय और जिस स्थानमें प्रथम प्रवेश कियाहो उससे अन्यत्र गमन करे तो शुद्धि नही होती और एक अंगका दीखनाभी कर्ण आदिका लेना क्योंकि यह विशेष वचनें है कि जिसका जलके प्रवेशमें केवल शिर दीखे कान और नासिका न दीखें उसकोभी शुद्ध कहै–यहां प्रयोगकी विधिका यह क्रम है कि पूर्वोक्त जलस्थानके समीप पूर्वोक्त तोरण बनाकर कहा है प्रमाण जिसका ऐसे देशमें लक्ष्य (निशान)को रखकर तोरणके समीप बाणसहित धनुषकी पूजा करके और जलस्थानमें वरुणका आवाहन और पूजन करके और जलके तीर धर्म आदि देवताओंकी हवनपर्यंत पूजा करके और शोध्य मनुष्यके शिरपर प्रतिज्ञापत्रको बांधकर हे जल तू प्राणीओंका प्राण है इत्यादि पूर्वोक्त मंत्रसे प्राड्विवाक जलकी प्रार्थना करे–फिर शोध्य मनुष्य हे वरुण सत्यसे मेरी रक्षा करो इस पूर्वोक्त मंत्रसे जलकी प्रार्थना करके ग्रहणकी है स्थूणा जिसने और नाभिमात्र जलमें स्थित बलवान् पुरुषके पास जाय–जब तीन बाण छोडदियेहों और जहां मध्यम बाण पडाहो वहां मध्यम बाणको लेकर एक वेगवान् पुरुष स्थितहो और दूसरा तोरणके मूलमें स्थितहो जब प्राड्विवाक तीन हाथकी ताली फटकारचुके तब एकवार गमन और जलमें डूबना और बाणका लाना होते हैं–

भावार्थ–डूबनेके समयमें जब वेगवान् एक पुरुष चलाजाय तब दूसरा वेगवान् नर छोडेहुये बाणको लाकर जलमें डूबेहुये शोध्यको देखे तो यह शोध्य शुद्धिको प्राप्त होता है॥ १०९ ॥ इत्युदकविधिः ॥

त्वंविषब्रह्मणःपुत्रःसत्यधर्मेव्यवस्थितः । त्रायस्वास्मादभीशापात्सत्येनभवमेमृतम् ।

पद–त्वं१ विष १ ब्रह्मणः ६ पुत्रः १ सत्यधर्मे७ व्यवस्थितः १ त्रायस्व क्रि–अस्मात्५ अभीशापात्५ सत्येन३ भव क्रि– मे६ अमृतम् १ ॥

एवमुक्त्वाविषंशार्ङ्गंभक्षयेद्धिमशैलजम् । यस्यवेगैर्विनाजीर्येच्छुद्धिंतस्यविनिर्दिशेत् ।

पद–एवं०–उक्त्वा०–विषं२ शार्ङ्गं २ भक्षयेत् क्रि–हिमशैलजं२ यस्य६ वेगैः ३ विना०–जीर्येत् क्रि–तस्य६ शुद्धिं२ विनिर्दिशेत् क्रि–।

योजना–हे विष त्वं ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः असि अस्मात् अभीशापात् मांत्रायस्व सत्येन मे अमृतं भव एवमुक्त्वाशार्ङ्गं हिमशैलजं विषं भक्षयेत् यस्य वेगैर्विना विषं जीर्येत् तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–हे विष तू ब्रह्माका पुत्र है और सत्यधर्ममें स्थित है इस अपराधसे मेरी रक्षा कर और मेरे सत्यसे अमृतरूप हो इस मंत्रसे विषकी प्रार्थना करके हिमाचल आदिके शिखरोंमें पैदा हुए विषको शुद्धिका कर्ता भक्षण करे–वह भक्षण किया विष वेगोंके विना जीर्ण हो जाय–अर्थात् पच जाय तो वह कर्ता शुद्ध होताहै यहां विष वेगसे एक धातुसे दूसरी धातुमें प्राप्ति इस वचनसे

१ अन्यथा न विशुद्धिः स्यादेकांगस्यापि दर्शनात् । स्थानाद्वान्यत्र गमनाद्यस्मिन्पूर्वं निवेशितः ॥

२ शिरोमात्रं तु दृश्येत न कर्णौ नापि नासिका । अप्सु प्रवेशने यस्य शुद्धं तमपि निर्दिशेत् ।

१ धातोर्धात्वंतरप्राप्तिः विषवेग इति स्मृतः ।

कहीहै और त्वचा रुधिर मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र ये सात ७ धातु होतीहैं और सात ही विषके वेग होतेहैं उनके पृथक् २ लक्षण विष तंत्रमें कहेहैं कि पहला विषका वेग शरीरमें रोमांच खडी करताहै दूसरा स्वेद और मुखको शुष्क करताहै तीसरा और चौथा शरीरके वर्णका भेद और कंपको पैदा करते हैं–पांचमां वेग विवश होना और कंठका भंग और हुचकी पैदा करताहै–छठा वेग श्वास और मुहको और सातमां वेग भक्षण करनेवालेकी मृत्युको पैदा करताहै–यहां महादेवकी पूजा करनी सोई नारदनें कहाहै–कियाहै उपवास जिसने ऐसा प्राड्विवाक धूप–उपहार (भेट) और मंत्रोंसे महादेवकी पूजा करके ब्राह्मण और देवताओंके समीप विषको दे–उपवास और महादेवकी पूजाके अनंतर प्राड्विवाक शोध्य मनुष्यके आगे विषको रखकर और हवनपर्यंत धर्म आदिकी पूजा करके शोध्य मनुष्यके शिरपर प्रतिज्ञापत्रको धरकर विषकी प्रार्थना करै कि हे विष तू दुरात्माओंको परीक्षाके लिए ब्रह्माने रचाहै पापीओंको मारदे और शुद्धको अमृतरूप हो–हे मृत्युरूप विष तू ब्रह्माने रचाहै इस मनुष्यकी पापसे रक्षा कर और सत्यसे अमृतरूप हो–

इसप्रकार विषकी प्रार्थना करके दक्षिणाभिमुख बैठे शोध्यपुरुषको विषदे–क्योंकि नारदका वचन है कि ब्राह्मणोंकी समीप दक्षिणाभिमुख बैठे हुए मनुष्यको उत्तर वा पूर्वाभिमुख बैठा प्राड्विवाक विष दे–और विषभी वत्सनाभ आदि लेना–क्योंकि पितामहका वचन है कि सींग वत्सनाभ वा हिमका विष दे और वर्जितभी ये विष कहेहैं कि चारित–जीर्ण–कृत्रिम–भूमिमें उत्पन्न–इन सब विषोंको वर्जदे नारदनेंभी कहाहै कि भुना–चारित–धूपित–मिश्रित–कालकूट–अलाबु–इन विषोंको यत्नसे वर्जदे–कालभी नारदने कहाहै कि तोलकर उस विषको समयपर दे जिसको कर्ता चाहे और शीतकालमें दे–और अपराह्न–मध्याह्न–संध्या इनमें धर्मका ज्ञाता विषको नदे–अन्यकालमें तो पूर्वोक्त प्रमाणसे अल्पविषको दे–क्योंकि यह स्मृति है कि वर्षामें चार जौं भर–ग्रीष्ममें पांच जौं–हेमंतमें सात जौं–और शरदऋतुमें उससेभी अल्पमात्रा (छः जौं) कहीहै– हेमंतके ग्रहणसे शिशिरकाभी ग्रहण है क्योंकि इस श्रुतिमें हेमंत और शिशिरको समान (तुल्य) कहाहै–वसंतऋतुको सब दिव्योंमें साधारण होनेसे उसमेंभी सात जौं की मात्रा देनी–और विषभी घी मिलाकर

---

१ वेगोरोमांचमाद्यो रचयति विषजः स्वेदवक्रोपशोषौ तस्योर्ध्वंरउत्तरौ द्वौ वपुषि जनयतो वर्णभेदप्रवेपौ ॥ यो वेग पंचमोसौ नयति विवशतां कंठभंग च हिक्कां षष्ठो निश्वासमोहौ वितरति च मृतिं सप्तमो भक्षकस्य

२ दद्याद्विष सोपवासो देवब्राह्मणसन्निधौ । धूपोपहारमंत्रैश्च पूजयित्वा महेश्वरम् ।

३ त्वं विष ब्रह्मणा सृष्टं परीक्षार्थं दुरात्मनां ॥ पापानां दर्शयात्मानं शुद्धानाममृत भव ॥ मृत्युमूर्त्ते विष त्वं हि ब्रह्मणा परिनिर्मितं । त्रायस्वैनं नरं पापात्सत्येनास्यामृतभव ।

१ द्विजाना सन्निधावेव दक्षिणाभिमुखे स्थिते । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा विषं दद्यात्समाहितः ।

२ शृंगिणो वत्सनाभस्य हिमजस्य विषस्य वा ।

३ चारितानि च जीर्णानि कृत्रिमाणि तथैवच । भूमिजानिच सर्वाणि विषाणि परिवर्जयेत् ॥

४ भृष्टंच चारितं चैव धूपितं मिश्रितं तथा । कालकूटमलाबुंच विषं यत्नेन वर्जयेत् ।

५ तोलयित्वेप्सितं कालेदेयतद्धि हिमागमे ना पराह्णेन मध्याह्नेन संध्यायां तु धर्मवित् ।

६ वर्षे चतुर्यवा मात्राग्रीष्मे पंचयवा स्मृता । हेमन्ते सा सप्तयवा शरद्यल्पा ततोपिहि ॥

देना क्योंकि नारदका वचनहै कि छः पल विषका जो बीसवां भाग आठवें भागसे हीन (कम) उसको घी मिलाकर शुद्धिके लिये दे-अर्थात् चार सुवर्णका पल होताहै और उसका छठा भाग दशमाष और दश यव होतेहैं तीन जौंका एक कृष्णल और पांच कृष्णलोंका एक माष-अर्थात् पंद्रह १५ यव एक माषमें होतेहैं इस प्रकार दशमाषोंके सार्द्धशत (१५०)जौं होतेहैं और दश जौं वे जो पहिले पलके छठे भागमें दशमाषोंके ऊपर कह आये हैं ऐसे षष्ट्यधिक शत (१६०) जौं पलके छठे भागमें होतेहैं-और उसके बीसमें भागमें आठ जौं हुए उसका आठमां भाग ऊन (कम) करनेसे सात जो रहें उतने विषको घी मिलाकर शोध्यको दे-और विषसे तीसगुणा घी मिलावै-क्योंकि यह कात्यायनका वचन है कि पूर्वाह्नके समय शीतलदेशमें देहधारियोंको विषदे और तीस गुने घृतमें पीसकर स्वच्छ विषको मिला दे और शोध्य मनुष्यके कपटी आदिकोंसे रक्षा करै-क्योंकि यह पितामहका वचन है कि तीन वा पांचरात्रितक अपने पुरुषोंसे युक्त दिव्यकरनेवालेकी कपटी आदिकोंसे राजा रक्षा करै और औषधी मंत्रके योग मणि जो विषको दूरकरनेवाले हैं उनकी और कर्ताके शरीरकी दशाकी गुप्त-रीतिसे रक्षा करै-तैसेही विषकीभी रक्षा करै-क्योंकि नारदका वचन है कि शृंग और हिमवान्का विष गंध वर्ण और विषसे युक्त रस अकृत्रिम असंमूढ (जिससे मोह नहो) और जो मंत्रसे उपहत नहो वह विष श्रेष्ठ होताहै तैसेही विष पीनेके अनंतर इतने पंच शत (५००) करतालिका दे तबतक उसकी प्रतीक्षा करै उसके अनंतर चि-कित्सा करने योग्यहै-सोई नारदने कहाहै कि पांचसो ५०० करतालीके कालतक शोध्य पुरुष निर्विकार होय तो शुद्ध होताहै उसके अनंतर उसकी चिकित्सा करै-पि-तामहने तो दिनका अंत अवधि कहाहै वह अल्पमात्राके विषयमें समझाकि भक्ष-णके अनंतर मूर्छा और छर्दि (वमन)से रहित दिनके अंततक रहैतो उसकोभी शुद्ध कहै-यहां यह क्रम समझा कि प्राड्वि-वाक उपवास और महादेवकी पूजा शोध्यके आगे विषका स्थापन करके धर्म आदि-कोंका पूजन और शोध्यके शिरपर प्रतिज्ञा-पत्रको रखकर और विषकी प्रार्थना करके दक्षिणाभिमुख बैठे शोध्यको विष दे-और वह शोध्यभी विषकी प्रार्थना करके भक्षण करै ॥

भावार्थ-हे विष तू ब्रह्माका पुत्र है और सत्यधर्ममें स्थितहै और इस अपराधसे मेरी रक्षाकर और सत्यसे अमृतरूप हो इस प्रकार विषकी प्रार्थना करके हिमाचलके शिखरआदिसे पैदाहुए विषको भक्षण करै जिसका विष वेगोंके विना जीर्ण होजाय अर्थात् पच जाय उसको शुद्ध कहै॥११०॥ ॥ १११ ॥ इति विषविधानम् ॥

---

१ विषस्य पलषड् भागान् भागो विंशतिमस्तु यः। तमष्टभागहीनन्तु शोध्ये दद्याद् घृतप्लुतम् ॥

२ पूर्वाह्णे शीतले देशे विषंदेयं तु देहिनां। घृते नियोजितं श्लक्ष्णे पिष्टं त्रिंशद्गुणान्वितम् ॥

३ त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा पुरुषैः स्वैरधिष्ठितं। कुहकादिभयाद्राजा रक्षयेद्दिव्यकारिणं। औषधीमन्त्रयोगांश्च मणीनिष विषापहान्। कर्तुः शरीरसंस्थांस्तु गूढोत्पन्नान्परीक्षयेत् ।

१ शार्ङ्गं हैमवतं शस्तं गन्धवर्णरसान्वितं। अकृत्रिममसंमूढममन्त्रोपहतं च यत् ॥

२ पंचतालशतं कालं निर्विकारो यदा भवेत् । तदा भवति संशुद्धः ततः कुर्याच्चिकित्सितं ॥

३ भक्षितेतु यदा स्वस्थो मूर्छाछर्दिविवर्जितः। निर्विकारोदिनस्यांते शुद्धं तमपि निर्दिशेत् ॥

देवानुग्रान्समभ्यर्च्यतत्स्नानोदकमाहरेत् ।
संश्राव्यपाययेत्तस्माज्जलंतुप्रसृतित्रयम् ॥

पद-देवान् २ उग्रान् २ समभ्यर्च्यऽ-तत्स्नानोदकं २ आहरेत् क्रि- संश्राव्यऽ-पाययेत् क्रि-तस्मात् ५ जलं २ तुऽ-प्रसृतित्रयं २

योजना-उग्रान् देवान् समभ्यर्च्य-तत्स्नानोदकं आहरेत् तु पुनः संश्राव्य तस्मात् प्रसृतित्रयं जलं प्राड्विवाकः पाययेत् ॥

तात्पर्यार्थ-दुर्गा आदित्य आदिकोंका स्नान और गंध पुष्प आदिकोंसे भली प्रकार पूजन करके उनके स्नानके जलको लेकर और हे जल तू प्राणियोंका प्राण है इस पूर्वोक्त मन्त्रसे प्राड्विवाक उसकी प्रार्थना करे और जब शोध्य उस जलको दूसरे पात्रमें करके हे वरुण तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस मंत्रसे प्रार्थना करले तब तीन प्रसृति (अंजलि) जल पिलादे यहभी तब पिलावे जब ये सब साधारण कर्म करलिये हों कि धर्मका आवाहन सब देवताओंका पूजन होम मंत्रोंसहित प्रतिज्ञापत्रका स्थापन-यहां स्नान कराने योग्य देवताकार्य्य और अधिकारी इन तीनोंका नियम पितामह आदिकोंने कहाहै कि जो मनुष्य जिस देवताका भक्तहो उसका ही जल उसको पिलावे यदि देवताओंमें समान भाव होयतो सूर्यका पिलावे-चौर और शस्त्रसे जो जीवैं उनको दुर्गाका पिलावे-और सूर्यका जल ब्राह्मणको न पिलावे-दुर्गाके शूलको स्नान करावे और सूर्यके मंडलको और अन्य देवताओंकेभी आयुधोंको स्नान करावे-इति देवता नियमः-अब कार्यके नियमको कहतेहैं कि विस्रंभ (विश्वास) सब प्रकारकी शंका-संधिका कार्य इनमें चित्तकी विशुद्धिके लिये सदैव कोशको दे- इति कार्यनियमः-अब अधिकारियोंको कहतेहैं-कि उपासेको पूर्वाह्णमें-और स्नान किये आर्द्र वस्त्रधारी-सशूक (आस्तिक)को व्यसनसे रहितको कोशका पान कहाहै-और मदिरा पीनेवाला-स्त्रीव्यसनी-कितव (कपटी) और जो नास्तिकहै इनको कोश न दे-और महापराध (महापातक) निर्धर्म (वर्ण आश्रमसे रहित) कृतघ्न-नपुंसक-कुत्सित (निंदित) नास्तिक-व्रात्य (जिनका समयपर जनेऊ न हुआहो) दाश (धीवर) इनको कोश न पिलावे-इति अधिकारिनियमः तैसे गोमयका मंडल रचकर और शोध्यको सूर्यके संमुख बैठाकर पिलावे यह बात नारदके वचनसे जाननी सोई कहाहै कि उस अपराधीको बुलाकर महामंडलमें आदित्यके संमुख करके तीन प्रसृति जलको पिलावे ॥

भावार्थ-देवताओंकी स्नान और पूजा करके उनके स्नानका जो जल उसको ले और उस जलमेंसे अभिमंत्रण (प्रार्थना)

१ भक्तो यो यस्य देवस्य पाययेत्तस्य तज्जलं । समभावे तु देवानामादित्यस्य तु पाययेत् ॥ दुर्गायाः पाययेच्चोरान् ये च शस्त्रोपजीविनः । भास्करस्य तु यत्तोयं ब्राह्मणं तन्न पाययेत् ॥ दुर्गायाः स्नापयेच्छूलमादित्यस्य तु मण्डलं । अन्येषामपि देवानां स्नापयेदायुधानि तु ॥

१ विस्रंभे सर्वशंकासु संधिकार्ये तथैव च । देयु कोशः प्रदातव्यो नित्यं चित्तविशुद्धये ॥

२ पूर्वाह्णे सोपवासस्य स्नातस्यार्द्रपटस्य च ॥ सशूकस्याव्यसनिनः कोशपानं विधीयते ॥ मद्यपस्त्रीव्यसनिना कितवानां तथैव च । कोशः प्राज्ञैर्न दातव्यो ये च नास्तिकवृत्तयः ॥ महापराधे निर्धर्मे कृतघ्ने क्लीबकुत्सिते । नास्तिकव्रात्यदासेषु कोशपानं विवर्जयेत् ॥

३ तमाहूयाभिशस्तं तु मंडलाभ्यंतरे स्थितम् । आदित्याभिमुखं कृत्वा पाययेत्प्रसृतित्रयम् ॥

उनके ऊपर पंचगव्य छिडककर शुक्ल पुष्पोंसे धर्मका और कृष्ण पुष्पोंसे अधर्मका और चंदनसे दोनोंका पूजन करै ऐसे करके उन दोनोंको गोमय वा मिट्टीके पिण्डपर स्थापन करै उन दोनों पिण्डोंको मट्टीके नवीन पात्रमें इस प्रकार ढककर रक्खे लिये हुए शुद्ध देशमें देवता और ब्राह्मणोंके समीप देवता और लोकपालोंका आवाहन करै–और धर्मका आवाहन करके प्रतिज्ञापत्रको लिखै फिर अपराधी इस प्रकार प्रार्थना करै कि यदि में पापसे मुक्त हूं तो मेरे हाथमें धर्मआओ और अशुद्ध हूं तो पापआओ–यहकर अभियुक्त मनुष्य उन पिंडोंमेंसे शीघ्र एक पिंड ग्रहण करै यदि वह धर्मको ग्रहण करले तो शुद्ध और अधर्मको ले तो अशुद्ध होताहै इस प्रकार संक्षेपसे धर्म–अधर्मकी परीक्षा कही ॥

इति धर्माधर्मविधिः ॥

अन्यभी शपथ (कसम) द्रव्यके अल्प और महत्त्वमें और विशेषजातियोंमें मनुआदिकोंने कहेहैं–जैसे कि एक निष्कके अभियोगमें सत्यवचन दे निष्कके अभियोगमें चरणोंका स्पर्श तीन निष्कसे पहिले पहिले पुण्यका शपथ दे इससे परे कोशपान करावै मनुने (अ० ८ श्लो० ११३) कहाहै कि ब्राह्मणोंको सत्यकी क्षत्रीको वाहन और आयुधोंकी वैश्यको गौ बीज सुवर्णकी और शूद्रको सब पातकोंकी सौगंद दे–और यहां शुद्धिका निश्चयभी मनुने कहाहै कि जिसको राजा वा दैवसे घोर दुःख न हो वह शपथमें शुद्ध जानना कालका नियमभी एक रात्रसे तीन रात्रतक और तीन रात्रसे पांचरात्र न कहे यह एकरात्र आदिभी कार्यका लाघव और गौरव देखकर जानना इस प्रकार जब दिव्योंसे जय पराजयका निश्चय हो जाय तब दंड विशेषभी कात्यायननें दिखाया है कि शुद्ध मनुष्य पैसे पचास दिलावै और अशुद्धको दंड दे वह दंड यहहै कि विष जल अग्नि तुला कोश तण्डुल तप्तमाष इन दिव्योंमें सहस्र षट्शत– पंचशत– चार तीन दो एक ये क्रमसे दंड होताहै और अल्प अपराधोंमें अल्प दंडकी कल्पना करै–निह्नवमें साक्षियोंसे सिद्ध किए धनको राजा दिवावै इस उक्तदंडके संग इस दिव्यदंडका समुच्चय समझना॥

१ अभियुक्तस्तयोरेकं प्रगृह्णीतात्यविस्मितः । धर्मे गृहीते शुद्धः स्यादधर्मे तु स हीयते ॥ एवं समासतः प्रोक्तं धर्माधर्मपरीक्षणं ॥

२ निष्के तु सत्यवचनं द्विनिष्के पादलंभनं । त्रिकादर्वाक्तु पूर्वं स्यात्कोशपानमतः परं ॥

१ सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥

२ नचार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥

३ शतार्द्धं दापयेच्छुद्धमशुद्धो दण्डभाग्भवेत्॥

४ विषे तोये हुताशे च तुलाकोशे च तण्डुले ॥ तप्तमाषकदिव्ये च क्रमाद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ सहस्रं षट् शतं चैव तथा पञ्च शतानि च । चतुस्त्रिद्व्येकमेकं च हीनं हीनेषु कल्पयेत्॥

इति दिव्यप्रकरणम् ॥ ७ ॥

अथ दायविभागप्रकरणं ८

मानुष और दैवभेदसे दो प्रकारका प्रमाण वर्णन किया अब योगमूर्ति याज्ञवल्क्य ऋषि दायके विभागका वर्णन न करतेहैं वहां दायशब्दसे वह धन कहा जाताहै जो धन स्वामीके संबंध निमित्तसेही अन्यका स्व (धन) हो जाय, वह दाय दो प्रकारकाहै एक-अप्रतिबंध-अर्थात् जिसको कोई रोक न सके दूसरा सप्रतिबंध अर्थात् जिसका कोई प्रतिबंधक हो-उनमें पुत्र और पौत्रोंका पुत्ररूप और पौत्ररूपसे पिता और पितामहके धनमें स्वत्वहै वह अप्रतिबंध दाय होताहै क्योंकि उसको कोई हटाय नहीं सकता और पितृव्य और भ्राता आदिकोंका पुत्र और पिताके अभावमेंही स्वत्व हो सकताहै इससे पुत्रका होना और स्वामीका होना उसके स्वत्वमें प्रतिबंधक है इससे पितृव्यरूपसे और भ्रातारूपसे जिसमें स्वत्व हो वह सप्रतिबंध दाय होताहै इसी प्रकार उनके पुत्र आदिमेंभी समझना विभाग इसका नाम है- कि अनेक हैं स्वामी जिसमें ऐसे द्रव्यसमुदायके विषयोंमेंसे जो स्वामीयोंके एकदेशमें द्रव्यकी व्यवस्था विभाग कहाती है- इसी अभिप्रायसे नारदनें कहाहै कि पिताके धनका विभाग जहां पुत्र करें वह दायभाग नामका व्यवहार पद बुद्धिमानोंनें कहाहै-इस वचनमें पितृपदसे स्वत्वके संबंधी और पुत्रपदसे निकटके वर्ती समझने-यहां यह निरूपण करनेयोग्यहै कि किसकालमें किसका किसप्रकार और कौन विभाग करें-उनमें किसकालमें किस प्रकार और कौन-इनका निरूपणतो तहां २ श्लोकके व्याख्यानमेंही कहैंगे-यहां तो इतना विचारते हैं कि विभाग किसका होताहै क्या विभाग करनेसे धनमें स्वत्व पैदा होताहै वा स्वत्ववाले धनकाही विभाग होताहै-अर्थात् पुत्र आदिका जन्मसेही उस धनमें स्वत्वथा उसमें प्रथम स्वत्वकाही निरूपण करते हैं क्या स्वत्व एक शास्त्रसेही जाना जाताहै वा किसी प्रमाणांतरसेभी जाना जाताहै उनदोनोंमें शास्त्रसेही जाना जाताहै यही युक्त है-क्योंकि यह गौतमका वचन है कि रिक्थ (हिस्सा) क्रय (मोल लेना) संविभाग (बांटना) परिग्रह (प्रतिग्रह) अधिगम (गढाधन मिलना इनमें) स्वामी होताहै-और ब्राह्मणको प्रतिग्रहसे मिला क्षत्रियको विजयसे वैश्यको व्यापार और सेवासे मिले हुएमें स्वत्व होताहै-यदि स्वत्व (अपना हो जाना) प्रमाणांतरसे जाना जाता तो यह वचन अनर्थक हो जाता तैसेही यदि स्वत्व लौकिक होता तो अर्थात् लोकसे जाना जाता तो मनुने (अ.८-श्लो.१४०९) में यह जो दण्ड कहा है कि जो ब्राह्मण यज्ञ कराने वा पढानेसेभी उससे धन लेनेकी इच्छा करै जो दाता और दायका भागी न होय वहभी चोरके समान है यह दंडका विधानभी संगत न होगा और यदि स्वत्व लौकिक होता तो मेरा स्व इसने चुराया है यह कोई नहीं कहता क्यों कि चुरानेवालेकेही हाथमें होनेसे उसकाही स्वत्व प्रतीत होता है अन्यथा स्व अपनाही

१ विभागोर्थस्य पित्र्यस्य तनयैर्यत्र कल्प्यते । दायभाग इति प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ॥

१ स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाऽधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः ॥

२ योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनं । याजनाध्यापनाद्वापि यथा स्तेनः तथैव सः ॥

इस चौरने चुराया है यह कहसक्तेथे इससे चुरानेवालेका धनमें स्वत्व नही होसकता क्यों कि शास्त्रमें नही कहा है और ऐसेहि यहभी संशय सुवर्ण और रजत आदिके स्वरूपके समान नही होगा कि इसका स्व है वा अन्यका है तिससें स्वत्व केवल शास्त्रसेही जाना जाता है-इसमें हम यह कहते हैं कि स्वत्व लौकिक है क्यों कि लौकिक प्रयोजन और क्रियाओंका साधन है-शास्त्रसे जानने योग्य आहवनीय आदि अग्निहोत्र लौकिक क्रियाके साधन नही होते इससे वे लौकिक नही, कदाचित् कोई शंका करै कि आहवनीय आदिभी पाक आदिके साधन होनेसे लौकिक हैं सो-ठीक नही-क्यों कि वे आहवनीयरूपसे पाकके साधन नही किंतु प्रत्यक्ष देखने योग्य अग्नि आदिरूपसे हैं यहां तो सुवर्ण आदि धन सुवर्ण आदिरूपसे क्रयसाधन नही किंतु स्वत्वसे है-क्यों कि जिसका जो स्व नही होता वह उसकी क्रय आदि अर्थ क्रियाको सिद्ध नही करसक्ता-और जिनोंनें शास्त्रका व्यवहार नही देखा उन प्रत्यन्तवासी (ग्रामीण आदि)योंमेंभी क्रय विक्रय (लेनदेन) आदिके देखनेसे स्वत्वका व्यवहार देखते हैं-और नियत है उपाय जिसका ऐसा स्वत्व लोकसिद्ध है यह न्यायके ज्ञाता मानते हैं-सोही दिखाते हैं लिप्सासूत्रके तृतीय वर्णकमें द्रव्यार्जन (द्रव्यसंचय) के नियमोंको क्रत्वर्थ मानोगेतो स्वत्वही न होगा क्योंकि स्वत्व अलौकिक है-इस पूर्वपक्षके असंभवकी आशंका करके गुरुनें यह पूर्वपक्ष समर्थित (पुष्ट) किया है कि प्रतिग्रह आदिसे द्रव्यका जो अर्जन वह स्वत्वका साधन लोकमें प्रसिद्ध है और द्रव्यके अर्जनको क्रत्वर्थ (यज्ञार्थ) मानोगे तो स्वत्वहीन होगा इससे यज्ञकीभी प्रवृत्ति नही होगी-तिससे विरुद्ध कहनेवाले यह किसीने प्रलाप (अनर्थ) कहा कि द्रव्यका अर्जन स्वत्वको पैदा नही करता-तैसेही सिद्धांतमेंभी स्वत्वको लौकिक मानकर विचारका प्रयोजन कहा है इससे पुरुषको नियम अतिक्रम (अवलंघन) है क्रतु (यज्ञ)का नही पूर्वोक्त गुरुवचनें अर्थ इस प्रकार किया है की जब द्रव्यसंचयके नियम क्रतुके लिये हैं तब नियमसे संचित द्रव्यसे ही क्रतुकी सिद्धि होती है और नियमके अवलंघनसे संचित किए द्रव्यसे क्रतुकी सिद्धि नही होती पूर्वपक्षमें नियमके अवलंघनका दोष पुरुषको नही होता सिद्धांतमें तो द्रव्यसंचयका नियम पुरुषके लियेहै उसके अवलंघनसे संचित किया जो धन उससेंभी क्रतुकी सिद्धि होती है केवल पुरुषको नियमके अवलंघनका दोष होता है नियमके अवलंघनसे संचित किए द्रव्यमेंभी स्वत्व माना है-न मानोगें तो क्रतुकी सिद्धि नही होगी कदाचित् कोई शंका करै कि चौरी आदिसे प्राप्त हुए धनमेंभी स्वत्व हो जायगा सो ठीक नही क्यों कि चौरी आदिसे प्राप्त हुए धनसे स्वत्व लोकमें प्रसिद्ध नही क्यों कि चोरिमें व्यवहारका विसंवाद है इस प्रकार प्रतिग्रह आदि हैं उपाय जिस्के एसा स्वत्व जब लौकिक है वहां अदृष्टके लिये यह नियम है कि ब्राह्मणके प्रतिग्रह आदि और क्षत्रियके विजित आदि और वैश्यके कृषि आदि और शूद्रके शुश्रूषा-आदि उपाय हैं और पूर्वोक्त गौतमवचनमें कहे हुए-रिक्थ-क्रय-संविभाग-परिग्रह-अधिगम-जो सबके लिये साधारण उपाय है-उनमें अप्रतिबंध दायको रिक्थ कहते हैं

१ द्रव्यार्जननियमानां क्रत्वर्थत्वे स्वत्वमेव न स्यात्स्वत्वस्यालौकिकत्वात् ॥

क्रय (मोल लेना) संविभाग (सप्रतिबंध दाय) नही है अन्य स्वामी पहिले जिस्का ऐसे जल तृण काष्ठ आदिके स्वीकारको परिग्रह कहते हैं-निधि आदिकी प्राप्तिको अधिगम कहते हैं-ये सब निमित्त होयतो स्वामी जाना जाता है और प्रतिग्रह आदिसे मिलेमें ब्राह्मणका और विजय और दंड आदिसे मिलेमें क्षत्रियका और कृषि गोरक्षा आदिसे मिलेमें वैश्यका और द्विजोंकी सेवा आदिसे मिलेमें शूद्रका असाधारण स्वत्व होता है इसी प्रकार अनुलोमज और प्रतिलोमजके जो जगत्में प्रसिद्ध स्वत्वके हेतु हैं उनमें जो २ असाधारण कहा है कि जैसे कि सूतोंको अश्वका सारथ्य वह सब पूर्वोक्त गौतमके वचनमें कहे निर्दिष्ट शब्दसे लिया जाता है क्यों कि वह सब भृतिरूप है और त्रिकाण्ड कोशमेंभी लिखा है कि भृति और भोगको निर्वेश कहते हैं-वह सब पूर्वोक्तोंका असाधारण स्वत्वका हेतु जानना-और जो पुत्रहीन मनुष्यके पत्नी दुहिता आदि क्रमसे स्वामी होते हैं वहांभी स्वामीके संबंधीरूपसे बहुतसे दायके विभागी प्राप्तथे लोकसे प्रसिद्धभी स्वत्वमें व्यामोहनिवृत्तिके लिये यह वचनहै की पत्नी दुहिता आदिही होतेहैं अन्य नही-इससे सब निर्दोषहै-और स्वत्वको लौकिक माननेमें जो यह दोष दियाहै कि मेरा स्व इसने हरलिया यह नही कह सकेंगे-वहभी ठीक नही-क्योंकि स्वत्वके हेतु जो क्रय आदि उनके संदेहसे स्वत्वका संदेह हो सकताहै-विचारका प्रयोजन तो यहहै कि जो धन ब्राह्मणोंनें निंदित कर्मसे संचित कियाहै उसके त्यागसे जप और तपसे शुद्ध होतेहैं इस वचनसे केवल शास्त्रसिद्धभी स्वत्वहै तौभी निंदित असत्प्रतिग्रह आदि और व्यापार आदिसे जो मिलाहो उसमें स्वत्वही नही होसकता इससे वह धन पुत्रोंके विभाग करने योग्य ही नही-और जब स्वत्व लौकिकहै तब असत्प्रतिग्रह आदिसे मिलेमेंभी स्वत्व होनेसे उसके पुत्रोंको वह विभाग करने योग्यहीहै-उसके त्यागसे शुद्ध होते हैं यह प्रायश्चित्त संचय करनेवालेकोही है-उसके पुत्रोंको ता वह दाय है इससे ही स्वत्व होनेसे पुत्रोंको दोषका संबंध नहीहै-यह मनु (अ० १० श्लो० १५)काभी वचनहै कि धन आनेके सात उपाय धर्मसे हैं कि दाय-लाभ-क्रय-जय-प्रयोग-और कर्मयोग और श्रेष्ठ प्रतिग्रह-अब यह संदेह शेष रहा कि विभाग किये पीछे स्वत्व होताहै अथवा विद्यमानहै स्वत्व जिसमें ऐसे धनका विभाग होताहै उनमें विभागसे स्वत्व होताहै यही युक्तहै क्योंकि जात (पैदा-हुये) पुत्रका आधान कहाहै यदि जन्मसेही स्वत्व होता तो पैदाहुये पुत्रकाभी वह साधारण धनहै इससे धनसे साध्य आधान आदिमें पिताका अधिकार न होगा-तैसेही विभागसे पहिले पिताकी प्रसन्नतासे जो धन किसी पुत्रको मिलाहो उसके विभागका निषेध है वहभी न होगा क्योंकि सबकी अनुमतिसे दियाहै इससे विभागकी प्राप्तिही नही-सोई कहाहै कि शूर वीरतासे मिला और भार्याका धन और विद्याधन ये तीनों विभाग करने योग्य नही हैं और पिताकी

१ निर्वेशो भृतिभोगयोः ॥

१ यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥

२ सप्तवित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥

३ शौर्यभार्याधने चोभे यच्च विद्याधनं भवेत् । त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः ॥

प्रसन्नतासे मिला जो धन वहभी विभागके योग्य नही होता–तैसेही इस वचनसे प्रीतिका दानभी ठीक न होगा कि प्रसन्न होकर भर्तानें स्त्रीको जो धन दियाहै उसके मरे परभी उस धनको यथेच्छ भोगे वा स्थावरको छोडकर किसीको–देदे–कदाचित् कोई कहे है जन्मसेही स्वत्व माननेमें यह संबंध युक्तहै कि (स्थावराद्दते यत् दत्तं) स्थावरके विना जो दियाहै उसकोही यथेच्छ भोगे इससे स्थावरका प्रीतिसे दानही नही हो सकता सो ठीक नही–क्योंकी व्यवहित (दूरकी) योजना (अन्वय)का प्रसंग होजायगा–और जो यह वचनहै कि मणि मोती प्रवाल (मूंगा) इन सबका स्वामी पिता है और संपूर्ण स्थावरको तो न पिता स्वामी है और न पितामह है–और तैसेही वचनहै कि पिताकी प्रसन्नतासे वस्त्र और भूषण भोगे जातेहैं और स्थावर तो पिताकी प्रसन्नता होनेपरभी नही भोगा जाता–इन वचनोंसे जो स्थावर आदिको प्रसन्नतासे देनेका निषेध है वह पितामहके पैदा किये स्थावरके विषयमें है पितामहके मरनेपरतो वह धन पिता और पुत्रका साधारणभी वह धनहै तोभी मणि मुक्ता दि तो पिताकेही हैं और स्थावर तो दोनोंका साधारणहै यह इसी वचनसे जाना जाताहै–तिससे जन्मसे स्वत्व नही होता किंतु स्वामीके मरण वा विभागसे स्वत्व होताहै इसीसे इस शंकाकाभी अवकाश नही कि पिताके मरनेपर और विभागसे पहिले द्रव्यमेंसे स्वत्व नष्ट हो चुका तो अन्यकोई ग्रहण करने लगे तो निवारण (मने) नही कर सकेंगे–तैसेही जो पुत्र एकही है तो उसका स्वत्व पिताके मरनेसेही होजाताहै इससे विभागकी अपेक्षा वहां नहींहै–इस विषयमें हम यह कहते हैं कि लोक प्रसिद्ध ही स्वत्वहै यह कह आयेहैं और लोकमें पुत्र आदिकोंका जन्मसेही जो स्वत्व अत्यंत प्रसिद्धहै वह अपह्नवके योग्य नही अर्थात् वह हटनही सकता–और विभाग शब्दभी बहुत हैं स्वामी जिसके ऐसे धनके विषयमेंही लोकमें प्रसिद्धहै अन्यके धनमें वा मृतकके धनमें नहींहै और गौतमकाभी वचनहै कि उस अर्थके स्वामित्वको उत्पत्तिसेही प्राप्त होताहै यह आचार्य कहतेहैं–और पूर्वोक्त मणिमुक्ताप्रवालानां–यह वचनभी जन्मसे स्वत्व माननेके पक्षमेंही ठीक होसकताहै, और पितामहके पैदाकिये स्थावरके विषयमें है यह युक्त नही–क्योंकि यह वचन है कि पिता और पितामह स्थावरके स्वामी नही हैं–अपना संचित कियाभी पितामहका स्थावर धन पुत्र और पौत्रोंके होते देनेयोग्य नही है यह वचनभी जन्मसेही स्वत्वको जनाताहै जैसे अन्यके मतमें पितामहकेभी मणि मोती वस्त्र भूषणोंमें पिताका ही स्वत्व वचनसे है–इसी प्रकार हमारे मतमेंभी पिताके संचित कियेभी इनमें पिताको दानका अधिकार वचनसे है इससे कोई विशेष नहींहै–और जो यह विष्णुका वचनहै कि प्रसन्न होकर जो भर्तानें दियाहै उसको यथेच्छ भोगे यह स्थावरको प्रीतिसे देनेका बोधन है उसका अर्थ यह करना कि अपना संचितभी पुत्र आदिकी आज्ञासेही देना–क्योंकि पूर्वोक्त–मणिमुक्ता आदि वचनोंसे स्थावरसे भिन्नोंकाही

१ भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं स्त्रियै तस्मिन्मृतेपि तत् । सा यथाकाममश्नीयाद्दद्याद्वा स्थावराद्दते ॥

२ मणिमुक्ताप्रवालानां सर्वस्यैव पिता प्रभुः । स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः ॥

३ पितृप्रसादाद्भुज्यंते वस्त्राण्याभरणानि च । स्थावरं तु न भुज्येत प्रसादे सति पैतृके ॥

१ तं तयोरुत्पत्त्यैवार्थस्वामित्वं लभेतेत्याचार्याः ।

प्रीतिसे दानकी योग्यताका निश्चयहै–और जो यह कहाहै कि धनसे साध्य वेदोक्त कर्मोंमें अधिकार नहोगा–वहां वेदोक्त कर्मकी विधिसेही अधिकार जानाजाताहै–तिससे पिता और पितामहके द्रव्यमें जन्मसेही स्वत्वहै–तथापि पिताको अवश्य करने योग्य धर्मके कार्योंमें और वचनोंसे प्राप्त प्रासाद (घर) दान–कुटुंबका पालन– आपत्तिकी निवृत्ति आदिमें स्थावरसे भिन्न द्रव्यके देनेमें पिताकी स्वतंत्रता (इकत्यार) है यह स्थितभया–अपने संचित और पिता आदिसे मिले स्थावरमें तो पुत्र आदिकी परतंत्रता–ही है अर्थात् पुत्र आदिकी संमतिके विना दानआदि पिता नहीकर सकता–क्योंकि ऐसा वचनहै कि स्वयं संचय कियेभी स्थावर और द्विपद (भृत्यआदि) हैं उनका सब पुत्रोंकी संमतिके विना न दानहै न विक्रयहै–जो पुत्र पैदा हो चुकेहैं और जो पैदा नही हुये गर्भमेंही स्थितहैं वेभी वृत्ति (जीविका)को चाहतेहैं इससे उनके विना दान और विक्रय नही हो सकता–इसका अपवादभी वचनहै कि आपत्तिके लिये कुटुंबके अर्थ और विशेष कर धर्मके लिये एकभी मनुष्य दान आधि और विक्रय करदे–इसका तात्पर्य यहहै कि जब पुत्र और पौत्रोंको तो व्यवहारका ज्ञान नहो और अनुज्ञा देनेमेंभी असमर्थ हों और भ्राताभी अविभक्तहों वा पुत्रोंके समानही हों और ऐसी आपत्ति हो कि जो सब कुटुंबमें आप्त (फैली) हो उसमें और कुटुंबके पोषणमें और अवश्य करने योग्य पिताके श्राद्ध आदिमें एकभी समर्थ स्थावर धनका दान आधि विक्रय करदे–जो यह वचन है कि अविभक्त वा विभक्त जो सपिंड हैं वे सब स्थावर धनमें समानहैं उनमें एक दान आधि विक्रय करनेमें समर्थ नहींहै–वह वचनभी इस प्रकार व्याख्या करने योग्यहै कि अविभक्त भाईयोंका जो द्रव्यहै वह मध्यमें स्थितहै उसका एक स्वामी नही हो सकता इससे सबकी संमति अवश्य लेनी– विभक्त (जुदेर) हुये पीछे तो विभक्त और अविभक्तका संदेह दूर होनेसे व्यवहारकी सुकरता (भलाई)के लिये सबकी संमति होतीहै कुछ एकके अनीश्वर (नहीमालिक) होनेसे नही इससे विभक्तोंकी अनुमतिके विनापि व्यवहार सिद्ध होताहै–और जो यह वचनहै कि अपना ग्राम–जाति–सामंत–दायाद इनकी अनुमति और सुवर्ण और जलके दान (संकल्प)से इन छःसे पृथ्वी दूसरेकी हो जातीहै उसमेंभी ग्रामकी अनुमति इस लिये अपेक्षितहै कि प्रतिग्रह प्रकाश करके होताहै और स्थावरताको प्रकाश विशेष करके होताहै इस वचनसे व्यवहारका प्रकाश होजाय कुछ ग्रामकी अनुमतिके विना व्यवहारकी असिद्धि नही होती–और सामंतों (समीपके जिमींदार)की अनुमति तो सीमामें विवाद दूर करनेके लिये है– जाति और दायादोंकि अनुमतिका प्रयोजन तो कह आये–(हिरण्योदकदानेन) सुवर्ण और जलदानसे–इसका यह अर्थहै कि स्थावरका विक्रय नही होता किंतु सबकी

---

१ स्थावरं द्विपदं चैव यद्यपि स्वयमर्जितम्। असंभूय सुतान्सर्वान्न दानं नच विक्रयः॥ ये जाता येऽप्यजाताश्च ये च गर्भे व्यवस्थिताः। वृत्तिं च तेऽभिकांक्षंति न दानं न च विक्रयः॥

२ एकोपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्रयम्। आपत्काले कुटुंबार्थे धर्मार्थे च विशेषतः॥

१ अविभक्ता विभक्ता वा सपिंडाः स्थावरे समाः। एकोह्यनीशः सर्वत्र दानाधमनविक्रये॥

२ स्वग्रामज्ञातिसामंतदायादानुमतेन च। हिरण्योदकदानेन षड्भिर्गच्छति मेदिनी॥

३ प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात्स्थावरस्य विशेषतः॥

अनुमतिसे आधि (गिरवी) करदे इसै वचनसे स्थावरके विक्रयका निषेधहै और इसै वचनसे दानकी प्रशंसाभी देखतेहैं कि जो भूमिका प्रतिग्रह लेताहै और जो भूमिको देताहै वे दोनों पुण्यकर्मा नियमसे स्वर्गमें जातेहैं-इससे विक्रयभी करना होयतो सुवर्ण सहित जलदेकर दानकी रीतिसे स्थावरका विक्रय करे-अर्थात् लोभसे नकरे ॥

विभागंचेत्पिताकुर्यादिच्छयाविभजेत्सुतान्
ज्येष्ठंवाश्रेष्ठभागेनसर्वेवास्युःसमांशिनः ॥

पद-विभागं २ चेत् ऽ- पिता १ कुर्यात् क्रि- इच्छया ३ विभजेत् क्रि- सुतान् २ ज्येष्ठं २ वा ऽ- श्रेष्ठभागेन ३ सर्वे १ वा ऽ- स्युः क्रि- समांशिनः १ ॥

योजना-चेत् (यदि) पिता विभागं कुर्यात् तर्हि इच्छया सुतान् विभजेत्-वा ज्येष्ठं श्रेष्ठभागेन विभजेत्- वा सर्वे समांशिनः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि पिता और पितामहके धनमें जन्मसेही स्वत्वहै तथापि इसका विशेष-भूर्या पितामहोपात्ता-इस वचनमें कहेंगे-अब यह कहतेहैं कि जिस कालमें जो जैसे विभाग करे-जब पिता विभाग कियाचाहै तब पुत्रोंको अर्थात् एक दो तीन आदि पुत्रोंको अपने सकाशसे विभाग करदे-इच्छामें कोई अंकुश नही होता इससे नियमके लिये पिछले आधे श्लोकसे इच्छासे विभागकाही विवरण कियाहै वे दोनों पक्षही इच्छामें मानोगे तो वाक्यभेद होजायगा और यह अव्यवस्थाभी हो जायगी कि एकको लक्ष किसीको कपर्दिका-और किसीको कुछभी न मिलेगा-अथवा ज्येष्ठको श्रेष्ठभागसे मध्यमको मध्यमभागसे-कनिष्ठको कनिष्ठ भागसे विभक्त करै श्रेष्ठआदि विभाग मनुने (अ. ९ श्लो. ११२) कहाहै कि ज्येष्ठका वीसवां उद्धार वा द्रव्यमेंसे श्रेष्ठ वस्तु उससे आधा मध्यमका और छोटे भाईका उद्धार चौथाई होता है-इस वचनमें वाशब्द वक्ष्यमाणपक्षकी अपेक्षासे है कि अथवा सब ज्येष्ठ आदि भाई समान भागीहों इसप्रकार पिता विभाग करे-और यह विषम विभागभी अपने पैदा किये द्रव्यके विषयमें है और जो द्रव्य पिता पितामहके क्रमसे चला आया है उसमें तो पिता और सब भाइयोंका समान स्वामित्व आगे कहेंगे इससे पिताकी इच्छासे विषम विभाग युक्त नहीं है-यदि पिता विभाग करे इस कथनसे जो पिताकी विभाग करनेकि जो इच्छा वह एक विभागका समय है- दूसरा समयभी यह है कि पिताके जीवतेभी जब पिताकी द्रव्य संचयकी इच्छा नहो-स्त्रीसंगसे निवृत्तिहो और माताकाभी रजोधर्म निवृत्त होचुकाहो तो पिताकी इच्छाके न होनेपरभी पुत्रोंकी इच्छासेही विभाग होता है- सोई नारदने कहा है कि पिताके मरे पीछे पुत्र धनको सम (बराबर) बाटलें- इसप्रकार पिताके मरे पीछे विभागको कहकर यह दिखाया है कि माताका रजोधर्म निवृत्तहो चुकाहो और भगिनियोंका विवाह होगयाहो और पिताकी स्त्रीसंग और धन संचयमें वांछा न रही होय तो पुत्र धनको समान

१ स्थावरे विक्रयो नास्ति कुर्यादाधिमनुज्ञया ।

२ भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति । उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ।

१ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरं । ततोर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ।

१ अत ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा विभजेयुर्धनं समं । मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च ॥ निवृत्ते चापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे ।

(इकसे) भागसे बांटलें- गौतमनेभी पिताके मरेपीछे पुत्र धनको बांटलें यह कहकर- माताका रजोधर्म निवृत्त होनेपर दूसरा विभागका समय दिखाया है और जीवतेहुये पिताकी इच्छा तीसरा विभागका काल दिखाया है-तैसेही माताको रजोधर्मभी होताहो और पिताकी इच्छाभी नहीं और पिता अधर्ममें वर्तताहो वा दीर्घ रोगसे ग्रस्त होय तो पुत्रोंकी इच्छासेभी विभाग होता है सोई शंखने कहा है पिताके निष्काम और वृद्ध होनेपर धनका विभाग होता है और जब पिताका चित्त विपरीत (अधर्ममें) होजाय वा पिता रोगी होजाय तब विभाग होता है॥

भावार्थ-यदि पिता विभाग करै तो अपनी इच्छासे चाहे जब पुत्रोंको विभक्त (जुदे २) करदे- अथवा जेठे पुत्रको श्रेष्ठ भागदेकर पृथक्२करै-अथवा सबको समान (बराबर) भाग देकर पृथक् २ करै ॥ ११४ ॥

यदिकुर्यात्समानंशान्पत्न्यःकार्याः समांशिकाः । नदत्तंस्त्रीधनंयासां भर्त्रावाश्वशुरेणवा ॥ ११५ ॥

पद-यदिऽ-कुर्यात् क्रि-समान् २ अंशान्२ पत्न्यः १ कार्याः १ समांशिकाः १ नऽ-दत्तं१ स्त्रीधनं१ यासां६ भर्त्रा३ वाऽ श्वशुरेण३ वाऽ- ॥

योजना-यदि समान् अंशान् कुर्यात् तर्हि यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण स्त्रीधनं न दत्तं ताः पत्न्यः समांशिकाः कार्याः ॥

तात्पर्यार्थ-जब पिता अपनी इच्छासे सब पुत्रोंको समान भागी करै तब उन पत्नीयोंकोभी समानही भागदे जिन पत्नियोंको पति और श्वशुरने स्त्रीधन न दियाहो-स्त्रीधनके देनेपर तो इसै वचनसे आधा भाग देना कहेंगे-जब पिता श्रेष्ठ भाग आदि देकर ज्येष्ठ आदि पुत्रोंका विभाग करै तब पत्नियोंको श्रेष्ठ आदि भाग प्राप्त नहीं होता किंतु निकासा है उद्धार जिसमेंसे ऐसे इकट्ठे धनमेंसे समान भाग और अपने उद्धारकोही पत्नी प्राप्त होती है-सोई आपस्तंबनें कहा है कि घरके परीभांड (पात्र) और अलंकार (गहना) भार्याका होता है-कहीं तो पिताकी इच्छाके बिनाभी विभाग बृहस्पतिने कहा है कि क्रम (परंपरा)से चलेआये गृह क्षेत्र आदि धनमें पिता और पुत्र समानभागी हैं इससे पिताकी इच्छाके बिनाभी पैतृक विभागके अनुसार विभाग करने योग्य हैं अर्थात् पितामह आदिके संचय किये धनमें पिताकी इच्छाके न होनेपरभी अपना अंश बटवा सकते है-

भावार्थ-यदि पिता समान भाग करै तो उन पत्नियोंकोभी समान भागदे जिनको भर्ता वा श्वशुरने स्त्रीधन न दियाहो॥११५॥

शक्तस्यानीहमानस्यकिंचिद्दत्वा- पृथक्क्रिया। न्यूनाधिकविभक्तानांधर्म्यःपितृकृतःस्मृतः॥११६॥

पद-शक्तस्य६ अनीहमानस्य६ किंचित्ऽ-दत्वाऽ-पृथक्क्रिया १ न्यूनाधिकविभक्तानां६ धर्म्यः १ पितृकृतः १ स्मृतः १॥

योजना-अनीहमानस्य शक्तस्य किंचित् दत्वा पृथक्क्रिया कर्तव्या-न्यूनाधिकविभ-

१ ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्थं विभजेरन् इत्युक्त्वा। निवृत्ते चापि रजसि। जीवतिचेच्छति।

२ अकामे पितरि रिक्थविभागो वृद्धे विपरीतचेतसि रोगिणि च।

१ दत्ते त्वर्द्धं प्रकल्पयेत्।

२ परीभांड च गृहेऽलंकारो भार्यायाः।

३ क्रमागते गृहक्षेत्रे पिता पुत्राः समांशिनः। पैतृकेन विभागार्हाः सुताः पितुरनिच्छया॥

क्तानां विभागः धर्म्यः (शास्त्रोक्तः) चेत् पितृकृतः स्मृतः मन्वादिभिरितिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ–जो पुत्र स्वयं द्रव्यके संचय करनेमें समर्थ होनेपर पिताके धनकी इच्छा न करे उसको यत् किंचित् (बुरा भला) धन देकर पिता अन्यपुत्रोंका इसलिये विभाग करदे कि उस समर्थ पुत्रके पुत्रोंकी किसी कालांतरमें अंश लेनेकी इच्छा नहो न्यून वा अधिक भाग देकर विभक्त (जुदे) किये पुत्रोंका जो विभाग पितानें कियाहै वह विभाग यदि धर्म्य (शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार) है तो पितृकृत है अर्थात् वह निवृत्त नही होसकता यह मनु आदिकोंनें कहाहै शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार न होय तो पिताका कियाभी न्यूनाधिक विभाग निवृत्त होसकताहै सोई नारदने कहाहै कि रोगी-क्रोधी-विषयोंमें जिसका मन आसक्त हो और जो शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार विभाग न करै ऐसा पिता विभागमें प्रभु (समर्थ) नहीहै अर्थात् उसका किया विभाग लौट सकताहै ॥

भावार्थ–जो समर्थ पुत्र पिताके धनको न चाहै उसको कुछ द्रव्य देकर पिता ·। करदे–और न्यून अधिक (कम ५८) किया है विभाग जिनका ऐसे पुत्रोंका विभाग शास्त्रोक्तरीतिसे हुआ होय तो पिताका कियाही वह विभाग समझना यह मनुआदिकोंने कहाहै ॥ ११६ ॥

विभजेरन्सुताः पित्रोरूर्ध्वंरिक्थमृणंसमम्।
मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्यऋतेन्वयः ॥

पद–विभजेरन् क्रि– सुताः १ पित्रोः ६ ऊर्ध्वम् २ रिक्थं २ ऋणम् २ समम् २ मातुः ६ दुहितरः १ शेषं २ ऋणात् ५ ताभ्यः ऋतेऽ–अन्वयः १ ॥

योजना–पित्रोः ऊर्ध्वं सुताः रिक्थं ऋणं समं विभजेरन् ऋणात् शेषं मातुर्धनं दुहितरः विभजेरन् ताभ्यः ऋते अन्वयः गृह्णीयात् ॥

तात्पर्यार्थ–माता पिताके मरण पीछे पुत्र धन और ऋणको समान (बराबर) ही बांटले–यहां मातापिताके मरनेके समय और पुत्रविभागके कर्ता और समान यह विभागके प्रकार क्रमसे दिखाये हैं कदाचित् कोई शंका करै कि मनुनें मातापिताके मरण पीछे यह प्रारंभ करके (अ० ९–श्लो० १०५) में कहाहै कि ज्येष्ठ पुत्रही पिताके सब धनको ग्रहण करे और शेषपुत्र उसके आश्रयसे इस प्रकार जीवे जैसे पिताके आश्रयसे जीतेथे यह कहकर (अ० ९–श्लो०११२) में मनुनें कहाहै कि सब धनके समुदायमेंसे वीसवां भाग और सब द्रव्योंमें श्रेष्ठ द्रव्य ज्येष्ठको और उससे आधा चालीसमां भाग और मध्यमद्रव्य मध्यमको और उससे चौथा अस्सीमां भाग और हीन (छोटासा) द्रव्य कनिष्ठको दे– यह उद्धार विभाग मातापिताके मरनेके अनंतर मनुने दिखायाहै तैसेही मैनुनें (अ० ९श्लो०११६–११७)में कहाहै । उद्धार न निकासा होय तो इस प्रकार पुत्रोंके अंशकी कल्पना करै कि ज्येष्ठ पुत्र एक भाग अधिक ले उससे छोटा आधा भाग अधिक ले और उससे छोटे एक २

---

१ व्याधितः कुपितश्चैव विषयासक्तमानसः। अन्यथा शास्त्रकारी च न विभागे पिता प्रभुः ॥

१ ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः । शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं धनं ।

२ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरं । ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ।

३ उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥ एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्द्धं ततोऽनुजः । अंशमंशं यवीयांस–इति · धर्मो व्यवस्थितः ।

भागको ग्रहण करें यह धर्मकी व्यवस्थाहै अर्थात् ज्येठा दो भाग और उससे छोटा डेढ भाग और उससे छोटे एक २ भागको ग्रहण करें—उद्धारके विनाभी यह विषम विभाग दिखाया है और स्वयंभी याज्ञवल्क्यनें मातापिताके मरनेके अनंतर और उनके जीवन समयके विभागमें विषम विभाग इस वचनसे (ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन) दिखायाहै इससे सब कालमें जब विषम विभागहै तो यह नियम कैसे करते हो कि बराबर विभाग करले— इस शंकाका समाधान कहते हैं कि यह बात सत्य है कि यह विषम विभाग शास्त्रमें देखाहै तथापि जगत्में निंदित होनेसे करनेयोग्य नही क्योंकि यह निषेध है कि स्वर्गको न देनेवाले जगत्में निंदित शास्त्रोक्त कर्मकोभी न करे जैसे[1] बडा बैल या बडा बकरा वेदपाठीके निमित्त दे यह विधिभी है तथापि जगत्में निंदित होनेसे इसे कोई नही करता और जैसे मित्रा-वरुणहैं देवता जिसके ऐसी वंध्यागौका आलंभन (हिंसा) करे इस वचनसे गवा-लनका विधानभी है तथापि जगत्में निंदित होनेसे कोई नही करता सोई कहा है कि जैसे शास्त्रोक्तभी वियोग धर्मका और अनुवंध्या गौके वधका अब प्रचार नही इसी प्रकार उद्धार विभागभी आज कल प्रचलित नही है—आपस्तंबनेभी जीवता हुआ पिता पुत्रोंको समान रीतिसे दायका विभाग कर-दे—इस वचनसे समता (तुल्यभाग)को कहकर एक ज्येष्ठ पुत्रही दायका भागी है

१ अस्वर्ग्य लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु।

२ महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ॥

३ मैत्रावरुणीं गां वशामनु बंध्यामालभेत ।

४ यथा नियोगधर्मो नो नानुबंध्यावधोपि वा। तथो-द्धारविभागोपि नैव संप्रति वर्त्तते ।

५ जीवन्पुत्रेभ्यो दायं विभजेत्समम् ।

यह कोई कहते हैं—इस वचनसे एक ज्येष्ठ-कोही सब धनका ग्रहण करना किसीके मतसे लिखकर फिर देशविशेषसे सुवर्ण कृष्णा गौ कृष्ण (कंबल आदि) भूमिका पदार्थ ज्येष्ठ पुत्रके, और रथ पिताका, और घरके परीभाण्ड और भूषण और ज्ञातिसे मिला धन ये भार्याके, होते हैं यह कोई कहते हैं कि इस वचनसे किसीके मतसे उद्धार भागको दिखाकर वह शास्त्रमें निषिद्ध है इस वचनसे निराकरण किया है वह शास्त्रका निषेध मनुनें स्वयं दिखाया है कि पुत्रोंका दायविभाग करे यह बात अविशेष (न्यूनाधिकविना)से शास्त्रमें सुनी है—तिससे शास्त्रमें देखाभी विषम वि-भाग लोक और वेदके विरोधसे करने यो-ग्य नही है इससे सम (बराबर)ही बांटलें यह नियम किया है अब माताके धनमें इसका अपवाद कहते हैं कि ऋणसे शेष माताके धनको दुहिता (पुत्री) विभाग करले अर्थात माताके किए ऋणको दूरक-रके शेष धनको पुत्री ग्रहण करे—यदि ऋण-से न्यून या समानही माताका धन होयतो उस माताके धनका पुत्रही विभाग करलें—यह बात समझनीकि माताके किए ऋणको पुत्रही दूर करें दुहिता न करे ऋणसे बचे धनको तो दुहिता लेलें और यह युक्तभी है कि पुरुषका वीर्य अधिक होयतो पुरुष और स्त्रीका अधिक होयतो कन्या होती है इस वचनसे पुत्रियोंमें स्त्रियोंके अवयवोंकी अ-

१ ज्येष्ठो दायाद इत्येके ।

२ सुवर्णं कृष्णा गावः कृष्णं भौमं ज्येष्ठस्य रथः पितुः परीभांडं च गृहेऽलंकारो भार्यायाः ज्ञातिधनं चेत्येके

३ शास्त्रविप्रतिषिद्धं ।

४ पुत्रेभ्यो दायं विभजेदित्यविशेषेण श्रूयते ।

५ पुमान् पुंसोधिके शुक्रे स्त्रीभवत्यधिके स्त्रियाः।

धिकता होनेसे स्त्रीका धन पुत्रियोंको और पिताके अवयव पुत्रोंमें अधिक होते हैं इससे पिताका धन पुत्रोंको मिलता है उसमेंभी गौतमनें यह विशेष दिखाया है कि विना विवाही और अप्रतिष्ठित (निर्धन) दुहिताओंको स्त्रीधन मिलता है इस वचनका यह अर्थ है कि विवाही और विना विवाही कन्याओंके समुदायमें उनकोही स्त्रीधन मिलता है जिनका विवाह न हुआहो–और विवाही हुईयोंमेंभी प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितके समुदायमें उनकोही स्त्रीधन मिलता है जो अप्रतिष्ठितहों–यदि दुहिता न होंयतो पुत्र आदि अन्वय (वंश)काही कोई अधिकारी स्त्रीधनको ग्रहण करै–यह बात माता पिताके पीछे पुत्र धनका विभाग करैं इससेही सिद्धथी तथापि स्पष्टके अर्थ पुनः कही हैं–

भावार्थ–माता पिताके मरे पीछे पुत्र धन और ऋणको बराबर बांटलें और ऋणसे बचे या ताके धनको पुत्री ग्रहण करैं–पुत्री न होंयतो पुत्र आदिही ग्रहण करैं ॥११७॥

पितृद्रव्याविरोधेनयदन्यत्स्वयमर्जितम् ।
मैत्रमौद्वाहिकंचैवदायादानांनतद्भवेत्११८

पद–पितृद्रव्याविरोधेन ३ यत् १ अ-न्यत् १ स्वयं–अर्जितम्–मैत्रं १ औद्वाहिकं १ च–एव–दायादानां ६ न–तत् १ भवेत् क्रि–

क्रमादभ्यागतंद्रव्यंहृतमप्युद्धरेत्तुयः ।
दायादेभ्योनतद्दद्याद्विद्ययालब्धमेवच११९

पद–क्रमात् ५ अभ्यागतं २ द्रव्यं २ हृतं २ अपि–उद्धरेत् क्रि–तु–यः १ दायादेभ्यः ८ न–तत् २ दद्यात् क्रि–विद्यया ३ लब्धं २ एव–च– ॥

१ स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ॥

योजना–यत् अन्यत् पितृद्रव्याविरोधेन स्वयं अर्जितं चपुनः मैत्रं औद्वाहिकं यत् द्रव्यं तत् दायादानां न भवेत् क्रमात् अभ्यागतं हृतं अपि द्रव्यं यः उद्धरेत् तत् चपुनः विद्यया लब्धं दायादेभ्यः न दद्यात्–

तात्पर्यार्थ–माता पिताके द्रव्यका विना व्यय किए स्वयं संचित किया जो धन है वा मित्रके सकाशसे मिला अथवा विवाहमें मिला जो धन है वह दायके भागी भ्राताओंका नही होता–जो पिताके क्रमसे चला आया कुछ द्रव्य किसी अन्यने हर (छीन) रक्खाहो और असमर्थ आदिसे पिता आदि उसका उद्धार (वसूल) न करसके हों पुत्रोंके मध्यमें जो कोई पुत्र उस धनका दूसरे पुत्रोंकी आज्ञा लेकर उद्धार करलें तो उस धनको भ्राता आदि दायादोंको नदे किंतु उद्धार करनेवालाही ग्रहण करले उसमेंभी क्षेत्र होय तो उद्धार करनेवालेको चौथाई भाग मिलताहै और शेष सब क्षेत्र सबका समान होताहै–सोइ शंखने कहाहै कि पहिले नष्ट हुई भूमिको जो एक उद्धार करै उसको चौथाई भाग देकर सब भाई अपने २ भागके अनुसार प्राप्त होतेहैं तैसेही वेदका पढाना पढाना और उसकी व्याख्या करनेसे मिला जो धन वहभी दायादोंको नदें किंतु संचय करनेवालाही ग्रहण करै–यहां पिताके द्रव्यको विना व्यय किए जो कुछ स्वयं संचय कियाहै यह सबका शेष समझना–इससे पिताके द्रव्यको व्यय न करके मित्रसे जो मिलाहो वा पिताके द्रव्यको खर्च न करके विवाहमें जो मिलाहै अथवा तैसेही क्रमसे चले आए द्रव्यको उद्धार कियाहो वा विद्यासे

१ पूर्वं नष्टां तु यो भूमिमेकश्चेदुद्धरेत् क्रमात् । यथाभागं लभंतेन्ये दत्त्वांशं तु तुरीयकं ।

है-यद्यपि पिता और पितामहके धनमें जन्मसेही स्वाम्य पुत्रका है तथापि पिताके धनमें पुत्र पिताके आधीन है और पिता अपने संचय किये धनमें प्रधान है-पिता अपने संचित किये धनको दियाचाहै तो पुत्रके संग संमति करले- पितामहके संचितधनमें तो पिता पुत्र दोनोंका स्वामित्व समान है इससे पुत्रको निषेधकाभी अधिकार है इतनाही विशेष है-मनुका (अ. ९ श्लो. २०)भी वचन है कि पिता नही मिले अपने पिताके जिस धनको प्राप्त हो उसको और अपने संचित धनको अपनी इच्छाके विना पुत्रोंके साथ विभाग न करे वहां जो जिसका पितामहनें उद्धार (वसूल) न किया हो ऐसे हरे (छिनाए) हुए पितामहके संचित (इकट्ठे) किए हुए धनका पिता उद्धार यदि करले तो वह अपने संचय किए धनकी समान विना अपनी इच्छा पुत्रोंको न बांटे यह कहनेसे यह दिखाया कि पितामहका संचय किया धन यदि पिता न वांटना चाहै तोभी पुत्रोंकी इच्छासे पुत्रोंके संग विभाग करे-

भावार्थ-पितामहकी संचय करी हुई भूमि निबन्ध सुवर्ण आदि द्रव्य इनमें पिता और पुत्रका स्वाम्य (स्वामित्व) बराबर होता है- ॥ १२१ ॥

विभक्तेषुसुतोजातोसवर्णायांविभागभाक् । दृश्याद्वातद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात् ॥ १२२ ॥

पद-विभक्तेषु १ सुतः १ जातः १ सवर्णायां १ विभागभाक् १ दृश्यात् ५ वाऽ-तद्विभागः १ स्यात् क्रि- आयव्ययविशोधितात् ५ ॥

योजना-विभक्तेषु पुत्रेषु सत्सु सवर्णायां जातः सुतः विभागभाक् स्यात्-वा आयव्ययविशोधितात् दृश्यात् तद्विभागः स्यात्॥

तात्पर्यार्थ-पुत्रोंको विभाग किए पीछे समान वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र माता पिताके विभाग (धन आदि)का भागी होता है अर्थात् माता पिताके मरे पीछे अंश (हिस्से)को प्राप्त होता है-यदि कन्या होयतो माताके अंशको प्राप्त होती है क्यों कि यह कह आये हैं कि माताके शेष धनको कन्या प्राप्त होती है-और यदि असवर्णा (समान वर्णकी जो नहो)से पैदा होयतो पिताके धनमेंसे अपने हिस्सेका और माताके सब धनका अधिकारी होता है यहही मनुनें (अ. ९ श्लो. २१६) में कहा है कि विभाग किए पीछे उत्पन्न हुआ पुत्र पित्र्य धनको प्राप्त होता है-यहां माता पिताका जो हो उसे पित्र्य कहतेहैं यह पित्र्य शब्दकी व्याख्या करनी क्योंकि यह वचनहै कि विभक्त हुये माता पिताके विभागमें विभागसे पहिले पैदा हुआ पुत्र समर्थ नहीहै और विभागके अनंतर पैदा हुआ भ्राताओंके विभागमें समर्थ नहीहै-तैसेही विभागके अनंतर जो कुछ धन पितानें संचित कियाहो वह उसकाहीहै जो विभागके अनंतर उत्पन्न हुआहै क्योंकि यह स्मृति है कि पुत्रोंके संग विभाग करले पर जो धन पितानें स्वयं पैदा कियाहो वह सब विभागके पीछे पैदा हुये पुत्रकाहै-ज्येष्ठ भाई उसके स्वामी (मालिक) नहीं हो सकते-और जो विभक्तहुये पुत्र पिताके संग संसृष्ट (मिलना) होगयेहों पिताके मरण पीछे विभागके अनंतर पैदा

१ पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् । न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामः स्वयमर्जितम् ।

१ ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ।

२ अनीशः पूर्वजः पित्रोर्भ्रातुर्भागे विभक्तजः ।

३ पुत्रैः सह विभक्तेन पित्रा यत्स्वयमर्जितम् । विभक्तजस्य तत्सर्वमनीशाः पूर्वजाः स्मृताः ।

नेके देनेमें आधे अंशका भाग माताका कहेंगे ॥

भावार्थ- माता पितानें जिसको जो धन दे दियाहो वह उसकाही होताहै पिताके मरे पीछे विभाग करनेवाले भ्राताओंमें माताभी समान भागको ग्रहण करे ॥ १२३ ॥

असंस्कृतास्तुसंस्कार्याभ्रातृभिःपूर्वसंस्कृतैः
भगिन्यश्चनिजादंशाद्दत्वांशंतुतुरीयकम् ॥

पद-असंस्कृताः १ तु॰- संस्कार्याः १ भ्रातृभिः ३ पूर्वसंस्कृतैः ३ भगिन्यः १ च॰- निजात् ५ अंशात् ५ दत्वा॰-अंशं १ तु॰- तुरीयकम् २ ॥

योजना-असंस्कृताः भ्रातरः पूर्वसंस्कृतैः भ्रातृभिः- संस्कार्याः च पुनः निजात् अंशात् तुरीयकम् अंशं दत्वा भगिन्यः तैः एवं संस्कार्याः ॥

तात्पर्यार्थ-पिताके जीवन समयमें जिन भ्राताओंका संस्कार (विवाह) न हुआहो पिताके मरणानंतर उनके संस्कारके अधिकारियोंको कहतेहैं कि पिताके मरनेपर विभाग करतेहुये भ्राता समुदायके द्रव्यमेंसे उन भ्राताओंका संस्कार करें जिनका संस्कार न हुआहो-और संस्कारसे रहित भगिनीयोंका संस्कारभी वेही भाई अपने अंशमेंसे चौथाई भाग देकर करें- इससे यह बात जानी गयी कि पिताके मरनेपर दुहिता (पुत्री)भी अंशको प्राप्त होतीहै-उसमें अपने २ अंशमेंसे चौथाई भागको प्रत्येक भ्राता निकाल कर भगिनीयोंका संस्कार करें यह अर्थ नहीं करना किन्तु जिस जातिकी यह कन्याहो उसी जातिके पुत्रका जो भागहो उससे चौथाई भाग उसको देदेना-यह बात कही समझना कि यदि वह कन्या ब्राह्मणी होयतो ब्राह्मणीके पुत्रका जितना अंश होताहै उससे चौथाई भाग उसको मिलना चाहिये-जैसे किसीके ब्राह्मणीही एक पत्नीहो और एक पुत्र और एकही कन्या हो वह पिताके संपूर्ण द्रव्यके दो भाग करके और उन दो भागोंमेंसे एक भागको चार भाग करके उनमेंसे एक भाग कन्याको देकर शेष संपूर्ण धन- (७ भाग)को पुत्र ग्रहण करले-जब दो पुत्र और एक कन्याहो तब पिताके संपूर्ण धनको तीन भाग करके और एक भागके चारभाग करके उसका चौथाई कन्याको देकर शेष धनको दोनों पुत्र ग्रहण करले-यदि एक पुत्र और दो कन्या होयतो पिताके धनके तीन भाग करके और एक भागके चारभाग करके उनमेंसे दो भाग दोनों कन्याओंको देकर शेष संपूर्ण धनको पुत्र ग्रहण करे इसी प्रकार सजातीय सम और विषम भाई और भगिनीओंमें समझना जहां ब्राह्मणीका एक पुत्रहो और क्षत्रियाकी एक कन्याहो वहां पिताके धनके सात भाग करके और क्षत्रिया पुत्रके तीन भागोंके चारभाग करके चौथाई भागको कन्याको देकर शेष धनको ब्राह्मणीका पुत्र ग्रहण करे जहां दो ब्राह्मणीके पुत्रहों और क्षत्रियाकी एक कन्याहो वहां पिताके सब धनके ग्यारह ११ भाग करके क्षत्रिया स्त्रीके पुत्रके तीन भागोंके चार भाग करके उनमेंसे चौथे भागको क्षत्रिया कन्याको देकर शेष सब धनको दोनों ब्राह्मणीके पुत्र विभाग करके ग्रहण करें-इसी प्रकार भिन्न२ जातिके भाई और भगिनीयोंकी संख्या सम वा विषम होय तो विभागकी रीतिको समझना-कदाचित् कोई शंका करे कि अपने अंशमेंसे चौथाई भाग देकर यहां चौथाई भागको अंशशब्दसे यह अर्थ करना युक्त है कि विभागके योग्य धन भगिनीको देकर

एक एकको तीन २ भाग और वैश्यासे उत्पन्न हुओंको दो २ भाग और शूद्रसे पैदा हुए पुत्रोंको एक २ भाग मिलता है क्षत्रियकी कन्यामें क्षत्रियसे पैदा हुए पुत्रोंको क्रमसे तीन दो एक भाग मिलते हैं अर्थात् क्षत्रियामें पैदा हुएको तीन २ वैश्यामें पैदा हुयेको दो २ और शूद्रामें पैदा हुयेको एक २ भाग मिलताहै और वैश्यसे वैश्यामें पैदा हुयेको दो २ और शूद्रामें पैदा हुयेको एक एक भाग मिलताहै-शूद्रकी भार्या एकही होतीहै शूद्रसे भिन्नजातिका कोई पुत्र नही होता इससे शूद्रके पुत्रोंका पूर्वोक्तही विभाग होताहै- यद्यपि चार तीन दो एक भाग सामान्य रीतिसे कहेहैं तथापि वे भाग प्रतिग्रहसे मिली भूमिसे भिन्न विषयमें समझने क्योंकि यह स्मृति है कि क्षत्रियाके पुत्रको प्रतिग्रहसे मिली हुई भूमिको न दे जो कुछ पिता उक्तभूमि क्षत्रियाके पुत्रको देदे तो पिताके मरनेपर ब्राह्मणीका पुत्र छीनले- प्रतिग्रहके कहनेसे मोल ली हुयी भूमिको तो क्षत्रियाआदिके पुत्रोंकोभी देदे- और शूद्राके पुत्रोंको यह विशेष निषेधभी है कि द्विजातियोंसे शूद्रामें पैदा हुआ पुत्र भूमिके भाग योग्य नहीं है- यदि मोलली हुयी भूमि क्षत्रिया आदिके पुत्रोंको न मिलती तो शूद्रा पुत्रको विशेष निषेध ठीक न होता- और जो यह मनु (अ० ९ श्लो० १५५) सचैन है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंसे पैदा हुआ शूद्राका पुत्र-धनका भागी नहीं होता किन्तु पिता जो कुछ इसको देदे वही इसका धन होताहै यह वचनभी उस धनके विषयमें है जो कुछ धन जीवते हुये पितानें शूद्राके पुत्रको दिया हो- यदि पितानें प्रसन्नतासे कुछ न दिया होय तो एक अंशका भागी होताहै इसमें कुछ विरोध नही है ॥

भावार्थ-ब्राह्मणसे ब्राह्मणी आदिमें पैदा हुये पुत्र वर्णके क्रमसे चार तीन दो एक भागको- और क्षत्रियसे क्षत्रियआदिमें पैदा हुये पुत्र तीन दो एक भागको- और वैश्यसे वैश्या आदिमें पैदा हुये पुत्र दो एक भागको वर्णोंके क्रमसे प्राप्त होतेहै१२५

अन्योन्यापहृतंद्रव्यंविभक्तेयत्तुदृश्यते ।
तत्पुनस्तेसमैरंशैर्विभजेरन्निितिस्थितिः ॥
॥ १२६ ॥

पद-अन्योन्यापहृतं १ द्रव्यं १ विभक्ते यत् १ तु- दृश्यते क्रि- तत् १ पुनः ऽ ते१ समैः ३ अंशैः ३ *विभजेरन् क्रि- इति-* स्थितिः १ ॥

योजना-विभक्ते यत् द्रव्यं अन्योन्यापहृतं दृश्यते तत् द्रव्यं ते पुनः समैः अंशैः विभजेरन् इति स्थितिः (मर्यादा) अस्तीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ-परस्पर हरा (चुराया) हुआ वा विभागके समयमें जाना हुआ जो समुदायका द्रव्य, पिताके धनके विभाग किये पीछे दीखेतो उस धनको सब भाई समान भाग करके बांटलें यह शास्त्रकी मर्यादा है यहां समान भाग कहनेसे उद्धारविभागका निषेध समझना-और विभाग करलें इस कहनेसे यह दिखाया है कि जिसको दीखे वही नलें-इससेही यह वचन सार्थक है कुछ समुदायद्रव्यके चुरानेमें दोषके अभावका बोधक नहीं है-कदाचित् कोई शंका करे कि मनु (अ. ९ श्लो. २१३) नें

१ न प्रतिग्रहभूर्देया क्षत्रियादिसुताय वै ॥ यद्यस्यै पिता दद्यान्मृते विप्रासुतो हरेत् ।

२ शूद्रायांद्विजातिभिर्जातो न भूमेर्भागमर्हति ।

३ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् ॥ यदेवास्य पिता दद्यात् तदेवास्य धनं भवेत् ।

१ यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः । सज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥

ज्येष्ठकोही समुदायके द्रव्य चुरानेमें दोष दिखाया है छोटे भ्राताओंको नही कि जो ज्येठा भाई लोभसे छोटे भाईयोंका तिरस्कार करे अर्थात् उनके भागको नदे उस जेठेको भाग नही मिलता और राजदंडको प्राप्त होता है-सो ठीक नही क्योंकि जब स्वतंत्रताको प्राप्त हुये-पिताके स्थानमें बैठे ज्येष्ठकोही मनुनें दोष कह दिया तो ज्येष्ठके आधीन पुत्रके समान छोटे भाईयोंको दंडापूपन्यायसे अवश्य दोष दिखायही दिया-दंडापूपन्याय यह है कि जहां दंड जायगा वहांही उससे बंधे पूवे जांयगे-तैसे ही अविशेषतासे इस गौतमके वचनेंमें दोष सुना जाता हे कि जो मनुष्य जिस भागके योग्यका भागसे निराकरण करता हे अर्थात् उसके भागको नही देता भागसे रहित हुआ वह उस भागसे रहित करनेवालेको नष्ट करता है अर्थात् दोषसे युक्त करता हे यदि उसको नष्टन करे तो उसके पुत्रको वा पौत्रको नष्ट करता हे-इस वचनमें ज्येष्ठ आदिके नामको नलेकरही अविशेषतासे साधारण द्रव्यके चुरानेमें दोष सुना जाता है-कदाचित् कोई कहे कि साधारण द्रव्यमें अपनाभी स्वत्व होता हे ... अपनी हे इस बुद्धिसे ग्रहण करनेमें ... दोष न होगा-सो ठीक नही-क्योंकि अपना हे इस बुद्धिसे ग्रहण करनेमें दूसरे भाईके वर्जने योग्य होनेसे पराया धनभी ग्रहण कियागया इस प्रकार निषेधके प्रवेशसे दोष (पाप)को अवश्य करैगा-जैसे मूंगका चरु जहां नष्ट होजाय और तुल्यतासे उडदोंके ग्रहण करनेमें उडद यज्ञके योग्य नही यह निषेध नही लगता हे क्योंकि वे उडद मूंगकी बुद्धिसे ग्रहण किये हैं यह जब शंकाकरनेवालेनें कहा तहां मूंगके अवयवोंके ग्रहण होनेमें वर्जनके अयोग्य होनेसे उडदोंके अवयवोंकाभी ग्रहण होहीगा इससे निषेध अवश्य लगता हे यह सिद्धांतीनें कहा है-तिससे वचन और न्यायसे साधारण द्रव्यके चुरानेमें दोष अवश्य है यह सिद्ध भया॥

१ यो वै भागिनं भागान्नुदते चयते एवैनं स यदि वैनं नचयतेथ पुत्रमथ पौत्रं चयते ।
२ अयज्ञिया वै माषाः ।

भावार्थ-विभाग किये पीछे जो द्रव्य भ्राताओंमें परस्पर चुराया हुआ दीखजाय-उस द्रव्यको वे सब समान अंशोंसे फिर बांटले यह शास्त्रकी मर्यादा है- ॥ १२६ ॥

अपुत्रेणपरक्षेत्रेनियोगोत्पादितःसुतः
उभयोरप्यसौरिक्थीपिंडदाताचधर्मतः ॥

पद-अपुत्रेण ३ परक्षेत्रे ७ नियोगोत्पादितः १ सुतः १ उभयोः ६ अपिऽ- असौ १ रिक्थी १ पिंडदाता १ चऽ-धर्मतःऽ-॥

योजना-परक्षेत्रे अपुत्रेण नियोगोत्पादितः यः सुतः असौ उभयोः रिक्थी च पुनः धर्मतः उभयोः पिंडदाता भवति ॥

तात्पर्यार्थ-पुत्ररहित स्त्रीके संग गुरुकी आज्ञासे पुत्रके लिये देवर वा सापिंडवा सगोत्र मनुष्य घीको लपेटकर ऋतुके समय गमन करे और गर्भकी स्थिति पर्यंतही गमन करे अन्यथा करनेसे पतित होता हे इस विधिसे पैदा हुआ इस पहिले पतिकाही क्षेत्रज पुत्र होता है-इस पूर्वोक्त विधिसे पुत्ररहित देवर आदिके सकामसे परायी स्त्रीमें गुरुकी आज्ञासे पैदा किया पुत्र बीज और क्षेत्रवाले दोनोंके रिक्थ (धन)को ग्रहण करनेवाला और धर्मसे दोनोंको पिंडका दाता होता हे-जहां यह गुरुकी आज्ञासे नियुक्त देवर आदि स्वयंभी पुत्र रहितहो और पुत्ररहितकीही स्त्रीमें अपने और पराये पुत्रके लिये प्रवृत्त होकर जिस पुत्रको पैदा

करें उस दो पितावालेको द्व्यामुष्यायण कहते हैं वह दोनोंके धनका भागी और पिंडका दाता होता है-और जहां नियुक्त-देवर आदि पुत्रवान्हो केवल क्षेत्र (स्त्री) वालेकेही पुत्रके लिये यत्न करें तो उससे पैदा हुआ पुत्र क्षेत्रवालेकाही होता है बीजवालेका नहीं-वह नियमसे न बीजवालेके धनको लेसकता है न पिंड देसकता है-सोई मनु (अ. ९ श्लो. ८३)नें कहा है कि इस स्त्रीमें पैदा हुआ पुत्र-हम दोनोंका होगा इस संवित् (प्रतिज्ञा)के स्वीकारसे क्षेत्रका स्वामी बीज बोनेके लिये जिस क्षेत्रको बीजवालेकोदे उस क्षेत्रमें पैदा हुये पुत्रके बीजवाला और क्षेत्रवाला दोनों स्वामी महर्षियोंनें देखे हैं-तैसेही मनुनें (अ०९ श्लो०५२) कहाहै कि इस स्त्रीमें पैदा हुआ पुत्र दोनोंका होगा इस प्रतिज्ञाको न कहकर पराये क्षेत्रमें जो पुत्र पैदाहो वह क्षेत्रवालेकाही पुत्र होताहै क्योंकि बीजसे योनिको प्रबल गौ अश्व आदिमें देखाहै-यहां भी नियोग वाग्दत्ता (जिसकी सगाई होचुकी हो)के विषयमेंही समझना-क्योंकि अन्य स्त्रीमें नियोग मनु (अ० ९ श्लो० ५९-६०)नें निषिद्ध कियाहै कि भली प्रकार नियुक्त कीहुयी स्त्री देवर वा सपिंडसे संतानके नाशको देखकर वांछित संतानको प्राप्त होजाय-विधवामें नियुक्त मनुष्य घीको लपेटकर और मौनको धारण करके रात्रिके विषय एक पुत्रको पैदाकरे दूसरेको कदाचित न करे इस प्रकार नियोगको कह कर स्वयंही निषेध कियाहै (अ० ९ श्लो० ६४-६५-६६-६७-६८)कि द्विजाति अन्यके संग विधवास्त्रीका नियोग न करें क्योंकि अन्य पुरुषके संग नियोग करनेवाले सनातन धर्मको नष्ट करतेहैं-विवाहके मंत्रोंमें कहींभी नियोग नही कहा और न विवाहकी विधिमें पुनः विधवाका विवाह कहाहै-यह पशुओंका धर्म (नियोग) बुद्धिमान् द्विजोंने निंदित कहाहै-और वेन राजाके राज्यमें मनुष्योंमेंभी चलाथा-वह राजर्षियोंमें श्रेष्ठ वेन पूर्वसमयमें संपूर्ण पृथिवीको भोगताहुआ और कामदेवसे नष्टबुद्धि होकर वर्णोंका संकर करता भया-उसके पीछे जो मनुष्य संतानके लिये विधवा स्त्रीका नियोग करताहै साधुजन उसकी निंदा करते हैं कदाचित् कोई शंका करे कि मनमें विधि और निषेध दोनों हैं इससे विकल्प होगा-सो ठीक नही क्योंकि नियोग करनेवालोंकी निंदा शास्त्रमें सुनीहै-और स्त्रीके धर्मोमें व्याभिचार करनेमें बहुत दोष सुनतेहैं और संयम(इंद्रियोंको रोकना)की अत्यंत प्रशंसाहै-सोई मनुनेंही (अ० ५ श्लो० १५७)मे श्रेष्ठपुष्प मूल फलोंसे चाहै देहको नष्ट करदे परंतु पतिके मरे

१ क्रियाभ्युपगमात्क्षेत्रं बीजार्थं यत्प्रदीयते ॥ तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ।

२ फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणा बीजिना तथा । प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्बलीयसी ।

३ देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रियासम्यङ्नियुक्तया । प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥ विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि । एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथचन ॥

१ नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः । अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्यु सनातनं ॥ नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् । न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ॥ मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति । स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा ॥ वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ततःप्रभृति यो मोहात् प्रमीत पतिकां स्त्रियं । नियोजयत्यपत्यार्थं गर्हन्ते तं हि साधवः ॥

२ कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । नतु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ।

पीछे पर पुरुषका नामभी न ले इस वचनसे जीवनके लिये परपुरुषके आश्रयका निषेध करके मनुने (अ० ५ श्लो० १५८-१५९-१६०-१६१) कहाहै कि मरणपर्यंत पतिव्रताओंके सर्वोत्तम धर्मकी आकांक्षा करतीहुई विधवा-स्त्रीकी और नियमसे ब्रह्मचारिणी रहै-अनेक सहस्र कुमार अवस्थाके ब्रह्मचारी कुलमें संतानको पैदा किए विनाही स्वर्गमें गये पतिके मरे पीछे साध्वी स्त्री पुत्रके विनाभी इस प्रकार स्वर्गमें पहुचेगी जैसे वे ब्रह्मचारी गए जो स्त्री संतानके लोभसे अपने भर्ताका अवलंघन करतीहै वह इस लोकमें निंदाको प्राप्त होतीहै और परलोकसे पतित होतीहै इन वचनोंसे पुत्रके लियेभी दूसरे पुरुषका आश्रय मने कियाहै तिससे विधि और निषेध दोनोंके होनेसे विकल्प मानना युक्त नहीं-इस प्रकार जिसका विवाहरूप संस्कार होगयाहो उसका नियोग जब निषिद्धहै तो कोनसा धर्मका नियोगहै-इस लिए मनु (अ० ९ श्लो० ६९-७०) ने धर्मका नियोग कहाहै कि जिस कन्याका वाग्दान किए पीछे पति मर जाय उस-कन्याको इस विधिसे देवर विवाह ले और शुक्ल वस्त्रोंको धारती और शुद्ध व्रतवाली सिको विधिसे प्राप्त होकर परस्पर संतान होनेपर्यंत ऋतु ऋतुमें एकवार संगकरै जिसके संग वाग्दान हुआहो वह प्रतिग्रहके विनाही उस कन्याका पतिहै यह बातभी इससेही जानीगई-यदि वह पति मरजाय तो उसका छोटावा ज्येठा सोदर (सगा) देवर उस कन्याको विवाह ले-यथाविधि कहनेसे यह सूचित किया कि शास्त्रके अनुसार विवाह कर घीका अभ्यंग और मौन आदि नियमोंसे मन वाणी काया जिसके वशमें हो ऐसी कन्याको गर्भ धारण पर्यंत प्रत्येक ऋतुमें एक २ वार संग करै यह वचनसे सिद्ध विवाह, घीके अभ्यंग आदि नियमवाले नियुक्त देवरका स्त्रीके साथ गमनका अंगहै उससे उस स्त्रीको देवरकी भार्याका बोधक नही हो सक्ता इससे उस स्त्रीमें पैदाहुआ पुत्र क्षेत्रके स्वामी (स्त्रीका पहिला पति)काही होता है देवरका नही-यदि दोनोंके होनेका नियम (प्रतिज्ञा) विवाहके समय होगया होय तो दोनोंका पुत्र होता है ॥

भावार्थ-पुत्रहीन मनुष्यनें पराईस्त्रीमें नियोगसे पैदाकिया जो पुत्र है वह दोनों पिताओंके धनका भागी और दोनोंकोही धर्मसे पिंडका दाता है ॥ १२७ ॥

औरसोधर्मपत्नीजःतत्समःपुत्रिकासुतः ।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तुसगोत्रेणेतरेणवा१२८॥

पद-औरसः १ धर्मपत्नीजः १ तत्समः-१ पुत्रिकासुतः १ क्षेत्रजः १ क्षेत्रजातः १ तुऽ-सगोत्रेण३ इतरेण३ वाऽ- ॥

गृहेप्रच्छन्नउत्पन्नोगूढजस्तुसुतः स्मृतः ।
कानीनःकन्यकाजातोमातामहसुतोमतः ॥

पद-गृहे७ प्रच्छन्नः १ उत्पन्नः १ गूढजः १ तुऽ- सुतः १ स्मृतः १ कानीनः १ कन्यकाजातः १ मातामहसुतः १ मतः १ ॥

१ आसीतामरणात्क्षांता नियता ब्रह्मचारिणी॥यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षंती तमनुत्तमम्॥अनेकानि सहस्राणि कौमारब्रह्मचारिणाम् । दिवंगतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् । मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता॥स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ॥ सेह निंदामवाप्नोति परलोकाच्च हीयते ।

२यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः॥तामनेन विधानेन निजो विंदेत देवरः॥ यथाविध्यभिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ।

अक्षतायांक्षतायांवाजातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्मातापितावायंसपुत्रोदत्तकोभवेत् ॥

पद–अक्षतायां७ क्षतायां७ वाऽ–जातः १ पौनर्भवः १ सुतः १ दद्यात् क्रि–माता१ पिता१ वाऽ– यं२ सः १ पुत्रः १ दत्तकः १ भवेत् क्रि– ॥

क्रीतश्चताभ्यांविक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः। दत्तात्मातुस्वयंदत्तोगर्भेभिन्नःसहोढजः ॥ १३१ ॥

पद–क्रीतः १ चऽ– ताभ्यां३ विक्रीतः १ कृत्रिमः १ स्यात् क्रि–स्वयंकृतः १ दत्तात्मा१ तुऽ–स्वयंदत्तः १ गर्भे७ विन्नः १ सहोढजः १ ॥

उत्सृष्टोगृह्यतेयस्तुसोपविद्धोभवेत्सुतः । पिंडदोंशहरश्चैषांपूर्वाभावेपरःपरः॥१३२॥

पद–उत्सृष्टः १ गृह्यते क्रि– यः १ तुऽ–सः १ अपविद्धः १ भवेत् क्रि– सुतः १ पिण्डदः १ अंशहरः१ चऽ– एषां ६ पूर्वाभावे७ परः १ परः१ ॥

योजना–धर्मपत्नीजः औरसः–तत्समः पुत्रिकासुतः सगोत्रेण वा इतरेण क्षेत्रजातः क्षेत्रजः–गृहे प्रच्छन्नः उत्पन्नः सुतः गूढजः स्मृतः–कन्यकाजातः कानीनः मातामहसुतः मतः–अक्षतायां वा क्षतायां जातः सुतः पौनर्भवः–माता वा पिता यं दद्यात् स पुत्रः दत्तकः भवेत्–ताभ्यां विक्रीतः क्रीतः–स्वयंकृतः कृत्रिमः स्यात्–तुपुनः स्वयंदत्तः दत्तात्मा–गर्भे विन्नः सहोढजः–तुपुनः यः उत्सृष्टः गृह्यते सः सुतः अपविद्धः भवेत्–एषां द्वादशानां मध्ये पूर्वाभावे परः परः पिंडदः चपुनः अंशहरः–भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–सजातीय और विजातीय पुत्रोंके विभागको कहकर मुख्य और गौण पुत्रोंके स्वरूप और विभागको कहते हैं धर्मविवाहसे विवाहीहुई सवर्णा पत्नीसे उत्पन्न हुआ पुत्र औरस होता है अपनी उर(छाती) के बलसे पैदा होनेसे यही सब पुत्रोंमें मुख्य है और पुत्रिका सुतभी औरसके समान (तुल्य) होता है सोई वसिष्ठनें कहा है कि भ्रातासे रहित इस अलंकारकीहुई कन्याको तुझे देताहूं इसमें जो पुत्र होगा वह मेरा पुत्र होगा–अथवा पुत्रिकासुतपदका यह अर्थ है कि पुत्रिकाही जो सुत वह पुत्रिकासुत है वह पुत्रभी औरसके समान है क्योंकि उसमें पिताके अवयव अल्प हैं और माताके अवयव बहुत है–सोई वसिष्ठनें कहा है कि दूसरा पुत्र पुत्रिकाही है–द्व्यामुष्यायण तो औरस पुत्रसे कुछकम जनक (पैदा करनेवाला)का पुत्र इस लिये होता है कि अन्यके क्षेत्रमें पैदा हुआ है कि सगोत्र वा इतर (असपिंड)से वा देवरसे पैदाहुआ पुत्र क्षेत्रज होता है–भर्ताके घरमें जो प्रच्छन्न (अप्रकट) पैदाहो अर्थात् न्यून और अधिक जातिको छोडकर–पुरुष विशेषसे पैदाहोनेका चाहें निश्चय नहीं परंतु सवर्णसे पैदाहुयेका निश्चयहो–ऐसा जो पुत्र वह गूढज पुत्र होता है–पूर्वके समान सजातीयसे कन्यामें पैदाहुआ पुत्र कानीन होता है वह मातामह (नाना)का पुत्र होता है यदि वह कन्या विनाविवाहीहो और पिताके घरमेंही रहतीहो–यदि विवाहीहुयी होयतो विवाह करनेवालेकाही पुत्र होता है सोई मनु (अ.९श्लो १७२)नें कहा है कि जो कन्या पिताके घर एकांतमें जिस पुत्रको पैदाकरै

१ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्। अस्या यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ।

२ द्वितीयः पुत्रिकैव ।

३ पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः। तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ।

उसे नामसे कानीन कहते हैं–अन्यासे पैदा हुआ वह पुत्र वोढा (विवाहनेंवाला)का होता है–क्षता (जिसको पतिका संग होचुकाहो) वा अक्षता (जिसको पतिकासंग न हुआहो) पुनः (दुवारा) विवाही हुयींमें जो सजातीयसे पैदाहो वह पौनर्भव पुत्र होता है–पतिके परदेशजानेपर वा मरनेपर भर्ताकी आज्ञासे माता–वा पिता वा दोनों जिस पुत्रको अपनें सजातीयको देदें वह पुत्र उस सवर्णका दत्तक पुत्र होता है सोई मनु (अ. ९ श्लो. १६८)नें कहा है कि माता वा पिता जिस अपने सजातीय पु॰को आपत्तिके समय प्रीतिसे दे वह पुत्र दत्तक जानना– आपत्तिके कहनेसे आपत्ति न होयतो दाता कभी न दे–तैसेही एक पुत्रकोभी न दे क्योंकि यह वसिष्ठकी स्मृति है कि एक पुत्रको न दे और न ले–तैसेही अनेक पुत्र होयतो ज्येष्ठ पुत्रको न दे क्योंकि मनु (अ.९श्लो.१०६)नें कहा है ज्येष्ठके पैदा होतेही मनुष्य पुत्रवाला होता है इससे पुत्रके कार्य (श्राद्ध आदि)करनेमें वही मुख्य है–पुत्रके लेनेंका प्रकार यह वसिष्ठनें कहा है कि पुत्रको ग्रहण करना चाहै तो बंधुओंको बुलाकर और राजाके यहां निवेदन (अर्जी देना) करके और गृहके मध्यमें होम करके अनंतर जो अपने बंधुओंमें समीपहो उस पुत्रको अपनें बंधु ओंके मध्यमेंही बैठकर ग्रहण करे बंधुओंमें समीपहो यह कहनेसे देश वा भाषासे विप्रकृष्ट (दूर)का निषेधहै–इसी प्रकारको क्रीत स्वयंदत्त कृत्रिम पुत्रोंमेंभी समझना क्योंकि वेभी इसकेही समानहैं माता पिता दोनोंनें वा मातानें वा पितानें जो विक्रीत (वेचदिया) कर दियाहो वह क्रीत पुत्रहोताहै–इसमेंभी पूर्वके समान ज्येठे और एक पुत्रको नवेचे और आपत्तिमें और सवर्णकोही वेचे–जो तो मनु (अ.९श्लो.१७४)नें कहाहै कि संतानके लिये माता पिताके समीपसे जिसके मोलले वह सदृश हो वा असदृश हो क्रीत पुत्रहोताहै उस मनुके वचनसे गुणोंमें सदृश वा असदृश यह अर्थ करना–जातिसे सदृश असदृश यह अर्थ नही हो सकता क्योंकि अंतमें याज्ञवल्क्यही यह कहेंगे कि यह विधि–मैं–सजातीय पुत्रोंकी कहीहै–जिसको पुत्रके अभिलाषी मनुष्यनें धन और क्षेत्र आदिके लोभको दिखाकर स्वयं पुत्र करलियाहो वह कृत्रिम पुत्र होताहै–वहभी माता पितासे रहितहो क्योंकि उनके जीवते हुये पुत्र उनके परतंत्र होताहै–जो माता पिता हीन हो वा उन दोनोंनें त्याग दियाहो–मैं आपका पुत्र होताहूं ऐसे कह कर स्वयंदत्त भावको प्राप्तहोगया हो वह दत्तात्मा पुत्र होताहै–जो गर्भवतीही विवाहीहो उसके संग गर्भमें स्थित बालकभी विवाहा गयाहो वह सहोढज पुत्र विवाहनें वालेका होताहै बीजवालेका नही–माता पितानें जिसको छोड दियाहो और उसको जिसनें ग्रहण करलिया हो वह अपविद्ध नामका पुत्र ग्रहण करनेवालेका होताहै–इन सब पुत्रोंमें सवर्ण (सजातीय) लेना अर्थात् सजातीय होसकतेहैं अन्य नही होसकते–इस प्रकार मुख्य और अमुख्य पुत्रोंको क्रमसे कह कर उनके दाय ग्रहण करनेमें क्रमको कहतेहैं–

१ माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः।

२ नत्वेवैकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा।

३ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः।

४ पुत्रं प्रतिगृहीष्यन्बंधूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनमध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा अदूरबांधवं बंधुसंनिकृष्ट एव प्रतिगृह्णीयात्।

१ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमंतिकात्। स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा।

इन बारह प्रकारके पुत्रोंके मध्यमें पहिले २ के अभावमें परला २ पिंडका दाता और अंशका भागी होताहै–औरसपुत्र और पुत्रिकाका पुत्र ये दोनों होंयतो औरसको ही धनका ग्रहण पाया इसमें मनु (अ.९ श्लो.१३४)नें निषेध कियाहै कि पुत्रिका करनेके अनंतर यदि पुत्रहो जाय तो वहां विभाग तुल्य होताहै स्त्रीको ज्येष्ठता नही होती–अन्य पुत्रोंमेंभी तिसी प्रकार पहिले२ पुत्रोंके होते पिछले२ पुत्रोंका चौथाई भाग वसिष्ठनें कहाहै कि यदि दत्तक पुत्रके ग्रहण किये पीछे औरस पुत्र पैदा होजाय तो चौथाई भाग दत्तकको मिलताहै–यहां दत्तकका ग्रहण क्रीत और कृत्रिम आदि सबका बोधकहै–सबमें पुत्रीकरण (अपुत्रको पुत्र करना) समानहै–सोई कात्यायननें कहाहै कि औरस पुत्रके पैदा होनेपर सजातीय अन्य पुत्र चतुर्थ अंशके भागी होतेहैं और विजातीयोंको तो भोजन वस्त्रही मिलताहै यहां सवर्ण पदसे दत्तक क्षेत्रज आदि और असवर्णपदसे कानीन गूढोत्पन्न सहोढज पौनर्भव आदि लेने इनमें सवर्णोंको चौथाई भाग और असवर्णोंको भोजन वस्त्रका अधिकारहै–जो यह विष्णुका वचनहै कि अप्रशस्त (निंदाके योग्य) जो कानीन गूढोत्पन्न सहोढज पौनर्भवहै ये पिंडदेनें और धनके लेनेके भागी नहीहैं–वह वचनभी औरसके होते चौथाई भागका निषेध करताहै यदि औरस न होयतो कानीन आदिकोंकोभी पिताके सब धन ग्रहण करनेका अधिकार–(पूर्वाभावे परः परः)–पहिले २ पुत्रके अभावमें परला२ धनका भागी होताहै इस वचनसे है–जो मनु (अ ९श्लो.१६३) का वचनहै कि एक औरस पुत्रही पिताके सब धनका स्वामीहै क्रूरता(निंदा) होजाय इस लिये शेष पुत्रोंको जीवनके उपयोगी द्रव्यको दे– वहभी तबहै जब दत्तक आदि औरस पुत्रके प्रतिकूलहों वा निर्गुणहों–उनमेंभी क्षेत्रजके लिये मनुनें (अ.९श्लो.१६४) नें ही विशेष दिखायाहै कि दायका विभाग करता हुआ औरस पिताके धनमेंसे छठा वा पांचवां भाग क्षेत्रजकोदे–उसमेंभी यह विवेकहै कि प्रतिकूल और निर्गुणको छठा भाग और एकही होयतो पांचवां भागदे–और जो मनुनें छः छः पुत्रोंको लिखकर पहिले छःको दायके भागी और पिछले छःको दायके अभागी कहाहै (अ. ९ श्लो. १५९ १६०) कि औरस–क्षेत्रज–दत्तक–कृत्रिम–गूढोत्पन्न–अपविद्ध–ये छः बांधव दायके भागीहैं–और कानीन–सहोढ–क्रीत–पौनर्भव–स्वयंदत्त और शौद्र–ये छः बांधव दायके भागी नहीहैं–वहभी तबहै जब अपने पिताके सपिंड और समानोदकोंमें समीपका कोई दायभागी नहोय तो पहिले छः दायभागीहैं और पिछले छः नही-सगोत्री वा सपिंड होनेसे जलदान आदि कार्य करनेके लिये बांधव तो दोनों वर्गोंको समानहै अर्थात् बारके बारह

१ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोनुजायते। समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ।

२ तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीते औरस उत्पद्येत चतुर्थभाग भागी स्याद्दत्तकः ।

३ उत्पन्ने त्वौरसे पुत्रे चतुर्थांशहराः सुताः। सवर्णा असवर्णास्तु ग्रासाच्छादनभाजनाः ॥

४ अप्रशस्तास्तु कानीनगूढोत्पन्नसहोढजाः। पौनर्भवश्च नैवैते पिंडरिक्थांशभागिनः ।

१ एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः। शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ।

२ षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्। औरसो विभजन् दायं पित्र्यं पंचममेव वा ।

३ औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च। गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बांधवाश्च षट् ॥ कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा । स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबांधवाः ।

सनातन धर्मको नष्ट करते हैं- जो पूर्वोक्त वसिष्ठका वचन है कि धनके लोभसे नियोग नही होता उस वचनका यह अर्थ करना कि अविभक्त (इकट्ठा)वा संसृष्टी (साझी)भाई मर जायतो उसकी स्त्रीको धनका संबंध नहीहै वह स्त्री अपने पुत्रको धनसंबंधके लिये नियोग न करे- और जो पूर्वोक्त नारदका वचन है कि जीवनपर्यंत अपुत्रकी स्त्रियोंकी पालना करे- वहभी संसृष्टोंका जो भाग है वह संसृष्टोंको ही इष्ट है इस वचनमें संसृष्टोंका प्रकरण होनेसे उनकीही अपत्यरहित स्त्रियोंके भरण मात्रका बोधकहै-कदाचित् कोई शंका करे कि भ्राताओंमें जो प्रजाहीन मरजाय इस पूर्वोक्त वचनको संसृष्टोंके विषयमें होनेसे संसृष्टोंके भागको संसृष्टले इसके संग पुनः उक्ति (दोवार कहना) दोष है-सो ठीक नही-जिससे पूर्वोक्त विवरण (अर्थ) से स्त्रीधनको विभागकी अयोग्यता और उसकी स्त्रियोंका पालन पोषणही विधान किया है-जो यह पूर्वोक्त वचन है कि पुत्रहीन इनकी स्त्रियोंकी पालना करे-वहभी नपुंसक आदिकी स्त्रियोंके विषयमें है यह आगे कहेंगे-और जो यह कहा है कि द्विजातियोंका धन यज्ञके लिये है स्त्रीयोंको यज्ञका अधिकार नही इससे धनका ग्रहण अयुक्त है-वहभी ठीक नही-क्योंकि संपूर्ण द्रव्यको यज्ञार्थ मानेंगेतो दान होम आदि न होसकेंगे-कदाचित् कहो कि यज्ञ शब्द धर्ममात्रका बोधकहै दान होम आदिभी धर्मार्थ है इससे यज्ञार्थ कहनेमें कुछ विरोध नही-ऐसे माननेमेंभी धनसे सिद्ध होनेवाले अर्थकामोंकी सिद्धि न होगी-और ऐसे माननेमें इन याज्ञवल्क्य गौतम मनुके वचनोंको विरोध होगा कि अपनी शक्तिके अनुसार धर्म अर्थ कामको न त्यागे-धर्म अर्थ कामके विना पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न इनको निष्फल न करे-विनासेवा इंद्रियोंका संयम नही करसकते-और धनको यज्ञार्थ मानोगेतो सुवर्णको धारण करे इस वचनमें सुवर्णके समान धनको जो पुरुषार्थ कहा है वहभी न होसकेगा-और यज्ञशब्दको धर्मका उपलक्षण माननेमें स्त्रियोंकाभी पूर्त धर्मका अधिकार होनेसे धनका ग्रहण अत्यंतयुक्त है-जो ये परतंत्रताके बोधक वचन हैं कि स्त्री स्वतंत्रताके योग्य नही है वेह परतंत्रता रहो धनके स्वीकारमें क्या विरोध है-फिर यज्ञके लिये पैदाहुआ द्रव्य-इस वचनकी क्या गति होगी-इसकी गतिको कहते हैं कि यज्ञके लियेही संचितकिये द्रव्यको यज्ञमेंही पुत्र आदि लगावें इसका बोधक वह वचन है क्योंकि यज्ञके लिये मिले द्रव्यको जो नही देता वह भास वा काक होता है यह दोषका सुनना पुत्र आदिकोंमेंभी समान है-और जो यह कात्यायनने कहा है कि जो धन दायादोंसे रहित है अर्थात् जिसका कोई भागी नही वह राजाका होता है परंतु स्त्रियोंके भोजन वस्त्रोपयोगी और धनीके श्राद्धोपयोगी द्रव्यको छोडकर राजगामी होता है-इसकाभी यह अपवाद है कि श्रोत्रिय (वेदपाठी)का जो द्रव्य है वह श्रोत्रियकी स्त्रीका पालन और

१ संसृष्टानां तु यो भागः संसृष्टानां स इष्यते ।

१ धर्ममर्थं च कामं च यथाशक्ति न हापयेत्॥ नपूर्वाह्णमध्यंदिनापराह्णानफलान्कुर्याद्यथाशक्तिधर्मार्थकामेभ्यः ॥ नतथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।

२ हिरण्यधार्यम् ।

३ न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।

४ यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोपि वा भवेत् ।

५ अदायिकं राजगामि योषिद्भृत्यौर्ध्वदेहिकम्।अपास्य श्रोत्रियद्रव्यं श्रोत्रियेभ्यस्तदर्पयेत् ।

श्रोत्रियके और्ध्वदैहिक कर्मको छोडकर श्रोत्रियोंकोदे राजा न ले-यहभी उन स्त्रियोंके विषयमें है जो अवरुद्धकी (रोकमें)हों क्योंकि इस वचनमें योषित् पदका ग्रहण है- और नारदकाभी वचन है कि ब्राह्मणको छोडकर धर्ममें परायण राजा धनीकी स्त्रियोंको आजीवन (भोजन वस्त्र)दे यह दायकी विधि कही है- यह वचन अवरुद्धकी स्त्रीके विषयमें है-क्योंकि इसमें स्त्रीशब्दका ग्रहण है-यहां तो पत्नीशब्दके ग्रहणसे विवाही और जितेंद्रिय उसको धनके ग्रहणमें कोई विरोध नही-तिससे विभक्त असंसृष्टी पुत्र रहित मनुष्यके मरनेपर सबसे प्रथम पत्नी धनको ग्रहण करती है इसमें कोई विरोध नही-विभागको कह आये और संसृष्टियोंको कहेंगे-इससे श्रीकर आदिकोंने इस वचनको अल्पधनके विषयमें जो कहा है वह निरस्त (खंडित) समझना-तैसेही औरस पुत्रोंके होतेभी पिताके जीवन वा मरण समयके विभागमें पत्नियोंको पुत्रोंके समान अंश कह आये हैं-कि यदि पिता सम अंश करै तो पत्नियोंकोभी समान अंशदे-पिताके मरनेपर पुत्र विभाग करैं तो माताभी समान अंशले-तिससे स्वर्गमें गये अपुत्र मनुष्यके धनको पत्नी भोजन वस्त्रसे अधिक नही लेसकती यह व्यामोह (भ्रम) मात्र है-कदाचित् यह कोई मानै कि पत्नियोंको समान अंशदे-माताभी समान अंशले- इन पूर्वोक्त दोनों वचनोंमें जीवनके उपयोगी धनकोही स्त्रीग्रहण करती है-सो ठीक नही- क्योंकि अंशशब्द और समशब्द व्यर्थ होजायगें-कदाचित् यह मानो कि बहुत धन होयतो जीवनके उपयोगी और अल्प धन होयतो पुत्रके समान अंशको ग्रहण करती है-सोभी ठीक नही-क्योंकि विधिकी विषमता होजायगी-विषमताकोही दिखाते हैं कि पत्नियोंके समान अंश करै-माताभी समान अंशले ये दोनों वचन बहुत धनमें जीवनके उपयोगीकोलें इस दूसरे वाक्यकी अपेक्षासे जीवनमात्र धनको और अल्प धनमें पुत्रोंके समान अंशोंको प्रतिपादन (कहना) करैंगे- तैसेही चातुर्मास्य यज्ञोंमें दोनोंका प्रणयन (प्राप्तकरना) करते हैं इस वाक्यमें पूर्वपक्षीनें सोमयज्ञके प्रणयनके अतिदेशमें वैश्वदेवमें उत्तर वेदीपर उपकिरण (कुशारखना) करते हैं शुनासीरीयमें नही यह उत्तरवेदीका प्रतिषेध हेतु दिखाया है फिर सिद्धांतीके एकदेशीनें यह कहा कि सोमयज्ञके प्रणयनके अतिदेशसे प्राप्तहुयी उत्तर वेदीके प्रथम उत्तम पर्वोंका यह निषेध है-फिर पूर्वपक्षीने यह विषमता दिखायी कि को हुये-(वपन करते हैं) इस प्रथम उत्तर पर्वोंके निषेधकी अपेक्षा एक पक्षकी उत्तर वेदीको प्राप्त करता है-और मध्यके दे. तो नित्यके समान-निरपेक्ष उत्तर वे... प्राप्त करता है-सिद्धांतमेंभी विधिकी वि... मताके भयसे प्रथम उत्तर वेदीका अ... नित्यका अनुवाद है-दोनोंमें प्रणयन करते हैं इस अर्थवादके पर्यालोचन (देखना से कहा जो वपंति (वपन करते हैं)मध्यके वरुण प्रघास शाकमेध पर्वोंमेंही उत्तर वेदीको कहता है-यह सिद्धांत दिखाया है-जो कोइ यह मानते हैं कि अपुत्रके धनको ... और या भ्राता ग्रहण करते हैं-इसे मनु (अ० ९ श्लो० १८५)वचनसे और तैसेही

१ अन्यत्र ब्राह्मणात्किंतु राजा धर्मपरायणः। तत्स्त्रीणां जीवनं दद्यादेष दायविधिः स्मृतः ॥

२ यदि कुर्यात्समानंशान्पत्न्यःकार्याः समांशिकाः। पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत् ।

१ चातुर्मास्येषु द्वयोः प्रणयति ।

२ पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव वा ।

अपुत्रके मरनेपर द्रव्य भ्राताको मिलता है वह न होयतो माता पिताको वा ज्येठि पत्नीको मिलता है इस शंखके वचनसे अपुत्रका धन भ्राताको प्राप्त होता है यह पाया—और जीवन पर्यंत अपुत्रकी स्त्रियोंकी पालना करें इत्यादि वचनसे पालनके उपयोगीको पत्नी ग्रहण करे और शेष धनको भाई ग्रहण करें—और जब पत्नीकी पालनाके उपयोगीही धनहो वा उससेभी न्यूनहो तब पत्नीही ग्रहण करे वा भ्राताभी कुछ ग्रहण करें इस विरोधमें पूर्व वचनके बलवान् बतानेके लिये—पत्नी दुहितरः—इस वचनका प्रारंभ किया है—इस पूर्वोक्त किसीके माननेकोभी भगवान् आचार्य नही सहते—जिससे पूर्वोक्त मनु (अ० ९ श्लो० १८५) वचनमें अपुत्रके धनको पिता ग्रहण करे वा भ्राता—इस विकल्पके स्मरणसे यह वचन क्रमका बोधक नही किंतु धनके ग्रहण करनेमें अधिकारी दिखानेके लिये है—अधिकारियोंका एखाना तो पत्नी आदिका समुदाय न होयतोभी घट सकता है यह व्याख्या आचार्यनें की है— शंखका पूर्वोक्त वचन भी संसृष्ट भ्राता ओंके विषयमें है—और यह भी है कि अल्प धनके विषयमें पत्नी ले यह बात इस वचन वा प्रकरणसे प्रतीत नही होती—उत्तर २ धनका भागी है यह वाक्य पत्नीदुहितरः—इन दोनों विषयोंमें वाक्यांतरकी अपेक्षासे अल्प धनके विषयमें—और पिता आदिमें संपूर्ण धनके विषयमें है—यह पूर्वोक्त विधिकी विषमता तदवस्थ (ज्योंकी—त्यों) है इससे वह पूर्वोक्त कथन तुच्छ है—जो हारीतका वचन है कि जो यौवन अवस्थाकी कर्कशा विधवा स्त्रीहो उसकोभी अवस्था बितानेके लिये भोजनदे वह वचन—भी उस स्त्रीको संपूर्ण धनको निषेध करता है जिसके व्यभिचार कर्मकी शंकाहो और इसी हारीतके वचनसे व्यभिचारकी शंकासे रहित स्त्रीको संपूर्णधनका ग्रहण प्रतीत होता है—यही जानकर शंखनें—ज्येष्ठा वा पत्नी—यह कहा है अर्थात् व्यभिचारकी शंकासे रहित जो गुणोंसे ज्येठी है वह सब धनको ग्रहण करके दूसरी कर्कशाकीभी माताके समान पालना करे—इससे सब पूर्वोक्त कथन निर्दोष है—तिससे विभक्त (जुदा) असंसृष्टी पुत्र रहित मनुष्यके मरनेपर—जितेंद्रिय और विवाही हुयी स्त्री संपूर्णही धनको *ग्रहण करती है यह स्थित (सिद्धांत) हुआ* पत्नी न होयतो दुहिता (पुत्री) लेती है—दुहितरः—यह बहु वचन इस लिये है कि सजातीय और विजातीय पुत्रियोंको सम विषम—अंश मिलता है—सोई कात्यायननें कहा है कि जो व्यभिचारिणी नहो वह पत्नी पतिके धनको लेती है उसके अभावमें बिना विवाही होयतो पुत्री लेती है—बृहस्पतिकोभी वचनहै कि भर्ताके धनको पत्नी लेतीहै—उसके बिना दुहिता कही है—अर्थात् पत्नी न होयतो दुहिता लेती है मनुष्योंके अंग अंगसे पुत्रोंके समान दुहिता पैदा होती है तिससे अपुत्र पिताके धनको दुहितासे अन्य मनुष्य कैसे ग्रहण कर सकता है—उनमेंभी विवाही और बिना विवाहियोंके समुदायमे बिनाविवाही ही लेती है क्योंकि पूर्वोक्त कात्यायनके वचनमें यह विशेष कहा है कि बिना विवाही होयतो पत्नीके

१ स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य भ्रातृगामि द्रव्यं तदभावे पितरौ हरेयातां ज्येष्ठा वा पत्नी ।

२ भरणं चास्य कुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवनक्षयात् ।

३ विधवा यौवनस्था चेन्नारी भवति कर्कशा । आयुषः क्षपणार्थं तु दातव्यं जीवनं तदा ।

१ पत्नी पत्युर्धनहरी यासादव्यभिचारिणी । तदभावे तु दुहिता यद्यनूढा भवेत्तदा ।

२ भर्तुर्धनहरी पत्नी तां विना दुहिता स्मृता । अंगादंगात्संभवति पुत्रवद्दुहिता नृणाम् ॥ तस्मात्पितृधनं त्वन्यः कथं गृह्णीत मानवः ।

मरजाय तो उसके भ्राताओंको अविशेषतासे धनका संबंध हुआ-और भ्राताके धन विभागसे पहिलेही यदि कोई भ्राता मरगया होय तो उसके पुत्रोंकोभी पितकिद्वारा धनका अधिकार पाया वे भाईके पुत्र और भाई विभागसे धनको ग्रहण करैं पिताके क्रमसे भागकी कल्पना होतीहै इस पूर्वोक्त वचनके अनुसार विभाग करैं-अर्थात् मरे हुये भ्राता के पुत्रोंकोभी उनके पिताका भाग दें-

भ्राताके पुत्रोंके अभावमें गोत्रज धनके भागी होते हैं अर्थात् पितामही सपिंड और समानोदक भागी होते हैं-उनमें पहिले पितामही धनकी भागिनी होती है-क्योंकि माताके मरनेपर पिताकी माता धनको लेती है इस पूर्वोक्त मनु (अ० ९ श्लो० २१७) के वचनसे माताके अनंतर पितामहीको धनका ग्रहण पाया पितासे लेकर भ्राताओंके पुत्र पर्यंतोंका जो क्रमसे पढना उनके मध्यमें प्रवेशके अभावसे पिताकी माता धनको ग्रहण करै इस वचनको धन ग्रहण करनेके अधिकारकी प्राप्तिका बोधक होनेसे उत्कर्ष (बडाई)में भ्राताके पुत्रोंके नंतर पितामही ग्रहण करती है इसमें कोई विरोध नही है पितामहीके अभावमें समानगोत्र सपिंडे पितामह आदि धनके भागी होते हैं क्योंकि भिन्नगोत्री सपिंडोंका बंधुशब्दसे ग्रहण है उनमें पिताकी संतानके अभावमें पितामही पितामह-पितृव्य पितृव्योंके पुत्र-क्रमसे धनके भागी होते हैं-पितामहकी संतानमें कोई न होय तो प्रपितामही प्रपितामह-उसके पुत्र और उनकेभी पुत्र धनके भागी होते है-इस प्रकार सात पीढीपर्यंत समान गोत्री और सपिंडोंको धनका ग्रहण जानना-उनकेभी अभावमें समानोदकोंको धनका संबंध होता है-वे सपिंडोंसे ऊपरके सात जानने वा जन्म नामके ज्ञानतक-अर्थात् जहांतक अपने बडोंका नामस्मरण हो वहांतक जानने-सोई बृहत् मनुनें कहा है कि सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त होती है चौदहवीं पीढी पर्यंत समानोदक भाव निवृत हो जाता है और कोई जन्मनामके स्मरण पर्यंत समानो दक भाव कहते हैं-उससे परे गोत्र कहाता है:-

गोत्रजोंके अभावमें बंधु धनके भागी हो-

* सपिंड न होय तो भगिनी धनभागिनी होती है क्योंकि मनुनें इस पूर्वोक्त सपिंडोंमें अनंतर (समीप)को धनका ग्रहण कहा है (अ० ९ श्लो० १८७) बृहस्पतिकोभी वचन है कि जहां बहुत ज्ञातिके सकुल्य वा बांधवहों उनमें जो समीपमें हो वही अनपत्यके धनको ले-इससे भगिनीभी भ्राताके गोत्रमें पैदा हुयी है गोत्रजही है परसगोत्र नही है और वह भगिनी यहां (मिताक्षरामें) धनके ग्रहण करनेमें प्रयोजक (हेतु) नही कही-अर्थात् कहनी योग्य थी-यह मयूखमें लिखा है-

* मनुस्मृतिमें उसके अभावमें सकुल्य आचार्य वा शिष्य लें इस वचनमें सकुल्य शब्दसे सगोत्र समानोदक मातुल आदिका और तीनों बंधुओंका ग्रहण है योगीश्वरके वचनमेंभी बंधु पदसे मातुलका ग्रहण है अन्यथा मातुल आदिका ग्रहण ही न होगा इससे इसके पुत्रोंको उनका अधिकार है फिर समीपकोंका-उनको अधिकार न

१ बहवो ज्ञातयो यत्र सकुल्या बांधवास्तथा । य- ... ... । सोनपत्यधनं हरेत् ।

१ सपिंडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते।समानोदकभावस्तु निवर्तेताचतुर्दशात् ॥ जन्मनाम्नोः स्मृतेरेके तत्पर गोत्रमुच्यते ।

२ तदभावे सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्यएव वा ।

तेहि वे बंधु तीन प्रकारके होते हैं अपने बंधु पिताके बंधु माताके बंधु सोई कहा है कि अपनी फूफीके पुत्र-अपनी माताकी भगिनीके पुत्र-अपने मामाके पुत्र-ये तीन अपने बंधु जानने-पिताकी पितृष्वसा (फूफी)के पुत्र-पिताकी माताकी भगिनीके पुत्र-पिताके मामाके पुत्र-ये तीन पिताके बंधु होते हैं-माताकी फूफीके पुत्र-माताकी भगिनीके पुत्र और माताके मामाके पुत्र-ये तीन माताके बंधु जानने-इन तीनोंमें अंतरंग (समीप) होनेसे पहिले अपने बंधु उनके अभावमें पिताके बंधु उनके अभावमें माताके बंधु धनके भागी होते है-यह क्रम जानना-बं-

होगा तो यह बडा अनुचित होगा-यह-वीर मित्रोदयमें लिखा है-

*कदाचित् कोई शंका करै पत्नी आदिक सबको जो धनका भाग है वह मृत (मरनेवाला)के संबंधसे है बांधवोंको भी धनका भाग वैसाही क्यों नहो अर्थात् मरेके बंधुओंकोही मिले-इससे पिता और माताके बंधुओंको धनका संबंध कैसे-पिताकी फूफीके पुत्र इत्यादि वचन तो संज्ञा और संज्ञावालेके संबंध जतानेके लिये हैं-कुछ धन संबंधके लिये नहीं-इस शंकाका समाधान कहते हैं-कि इन वचनोंके विनाभी अपने पिता मातुल पितृव्य आदिमें जैसे संबंधका ज्ञान होता है ऐसेही पिताके बंधुओंमेभी योगसेही उस शब्दकी शक्ति हो जायगी तो संज्ञासंज्ञिसंबंधका बताना अनर्थक हो जायगा-तिससे बंधुओंके लिये धन संबंधके कहनेमें पिता माताके बंधुओंके

धुओंके अभावमें आचार्य और आचार्यके अभावमें शिष्य धनके भागी होते हैं क्योंकि यह आपस्तंबका वचन है कि पुत्रके अभावमें जो समीप हो वह सपिंड-उसके अभावमें आचार्य-आचार्यके अभावमें शिष्य धनका भागी होता है-शिष्यके अभावमें सब्रह्मचारी धनका भागी होता है-जिसके संग (सहपाठी आदि) आचार्यसे यज्ञोपवीत-वेदका पठन-वेदके अर्थका ज्ञान-प्राप्त हुये हों उसे सब्रह्मचारी कहते हैं-उसके अभावमें ब्राह्मणके द्रव्यको कोई न कोई वेदपाठी ग्रहण करै-क्योंकि गोतमका वचन है कि अनपत्य ब्राह्मणके धनको श्रोत्रिय ग्रहण करै-उसके अभावमें सब ब्राह्मण लें-सोई मनु (अ० ९ श्लो० १८८)में कहा है कि सबके अभावमें वेदत्रयीके ज्ञाता-शुद्ध-इंद्रियोंके दमन करनेवाले ब्राह्मण धनके भागी होते हैं ऐसा करनेसे धर्मकी हानि नहीं होती-ब्राह्मणके द्रव्यको राजा कदाचित् भी न ले-क्योंकि यह पूर्वोक्त मनु (अ०९ श्लो० १८९)का वचन हैं कि ब्राह्मणका द्रव्य राजाके ग्रहण करने अयोग्य है नारदनेंभी-कहा है कि ब्राह्मणके मरनेपर ब्राह्मणके धनका कोई दायभागी न होय तो राजा ब्राह्मणोंको ही दे दे-अन्यथा करै तो राजा अपराधी होता है-और क्षत्रिय आदिके धनको तो सब्रह्मचारी पर्यंतोंके अभावमें राजा ग्रहण लेनेसेही वचन सफल हो सकता है-बंधुओंके लिये शौचमेंभी यही विधि है-इतिदिक्-

१ आत्मपितृष्वसुः पुत्राः आत्ममातृष्वसुः सुताः। आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः॥ पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः। पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबांधवाः॥ मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः। मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबांधवाः।

१ पुत्राभावे यः प्रत्यासन्नः सपिण्डस्तदभावे आचार्य आचार्याभावेऽन्तेवासी।

२ श्रोत्रिया ब्राह्मणस्यानपत्यस्य रिक्थं भजेरन्।

३ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः। त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते।

४ ब्राह्मणार्थस्य तन्नाशे दायादश्चेन्न कश्चन। ब्राह्मणस्यैव दातव्यमेनस्वी स्यान्नृपोऽन्यथा।

करे ब्राह्मण नले-सोई मनु (अ० ८ श्लो० १८९)नें कहा है कि इतर वर्णोंके धनको सबके आभावमें राजा ले-अर्थात् ब्राह्मणके धनमें राजा प्रभुनही है अन्यवर्णोंकेमें है-

यहां सुगमताके लिये अपुत्रधनके दाय-भागियोंके क्रमको कहते हैं-पत्नी-दुहिता-दौहित्र-माता-पिता- भ्राता- भिन्नोदरभ्राता भ्राताके पुत्र-गोत्रज-पितामही - पितामह-समानोदक-बंधु-शिष्य-सब्रह्मचारी ये क्र-मसे धनके भागी मिताक्षराके मतसे होते हैं॥

भावार्थ-पत्नी-दुहिता-माता-पिता-भ्राता भ्राताके पुत्र-गोत्रज-बंधु-शिष्य-सब्रह्मचारी इनमें पूर्व२ के आभावमें परला २ धनका भागी होता है-पुत्ररहित मनुष्यके मरनेपर सब वर्णोंमें यही दायके विभागकी विधि है ॥१३५॥१३६॥ *

* जीमूतवाहन दायभागकी टीकामें दिखाये क्रमको लिखते हैं-

मरे हुये पुरुषके धनके जो अधिकारी उनका यह क्रम है-कि पहिले पुत्र उसके अभावमें पौत्र-उसके अभावमें प्रपौत्र धनका भागी होता है क्योंकि जिसका पिता मरगया हो ऐसे पौत्रका और जिसके पिता पिता-मह दोनों मरगयेहों ऐसे प्रपौत्रका पुत्रके संग युगपत् (इकसा) अधिकार है-प्रपौत्र पर्यंत कोई नहोयतो पत्नी लेती है वह भर्ता-के दायको प्राप्तहोकर भर्ताके कुलके और उसके अभावमें पिताके कुलके आश्रय होकर शरीरकी रक्षाके लिये पतिके दायको भोगे-तैसेही भर्ताके उपकारार्थ यथाकथं-चित् दान आदिकोभी करे-स्त्रीधनके समान स्वच्छंद (यथेच्छ)न लगावे-पत्नीके अभा-वमें दुहिता लेती है उनमें पहिले कुमारी नहोयतो वाग्दत्ता-वह न होयतो वि-वाही हुई-उनमें पुत्रवाली और जिसके पुत्र

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणांरिक्थभागिनः। क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः॥

पद-वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणां ६ रिक्थभा-गिनः १ क्रमेण ३ आचार्यसच्छिष्यधर्म-भ्रात्रेकतीर्थिनः १॥

होनेकी संभावनाहो इन दोनोंका तुल्य अधिकार है-बंध्या विधवा और पुत्रहीना-को धनका अधिकार नही है-विवाही हुई पुत्रीके अभावमें दौहित्र उसके अभावमें पिता उसके अभावमें माता उसके अभावमें भ्राता लेते हैं-उनमेंभी पहिले सोदर उनके अभावमें वैमात्रेय (भिन्नोदर) लेता है-यदि मराहुआ भ्राता भ्राताओंमें संसृष्ट (साझी) होयतो पहिले संसृष्ट सोदरही अधिकारी है वह नहोयतो असंसृष्ट सोदर लेता है-ऐ-सेही सब वैमात्रेयोंमें पहिले संसृष्ट वै-मात्रेय उसके अनंतर असंसृष्ट वैमात्रेय लेता है-जहां वैमात्रेय तो संसृष्ट हो और सोदर असंसृष्ट हो तब वे दोनों संग (इकसाथ) अधिकारी हैं-भ्राताओंके अभावमें भ्राता-का पुत्र लेता है उनमेंभी पहिले सोदर भाई-का पुत्र-वह न होयतो वैमात्रेय भ्राताका पुत्रले-ता है-संसृष्टियोंमें तो सोदर भाईयोंके सब पुत्रोंमें पहिले संसृष्ट सोदर भाईका पुत्र वह न होयतो असंसृष्ट सोदर भाईका पुत्र लेता है वैमात्रेय भ्राताओंके सब पुत्रोंमें पहिले सं-सृष्ट वैमात्रेय भ्राताका पुत्र वह न होयतो असंसृष्ट वैमात्रेय भ्राताका पुत्र लेता है-जहां सोदर भ्राताका पुत्र असंसृष्ट हो और वैमात्रेय भ्राताका पुत्र संसृष्टहो तब वे दोनों भ्राताके समान तुल्य (इकसे) अधिकारी है-भ्राताके पुत्र न होयतो भ्राताके पौत्रोंका अ-धिकार है उनमेंभी भ्राताओंका सोदर असोदरका क्रम और संसृष्टि असंसृष्टिका क्रम समझना-उनके अभावमें पिताका

योजना-वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणाम्-आचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः क्रमेण रिक्थभागिनः-भवंतीति शेषः ॥

दौहित्र लेता है वहभी सोदर भगिनीका पुत्र लेना-वह न होय तो वैमात्रेय भगिनीका पुत्र लेता है-उसके अभावमें पिताका सहोदर-उसके अभावमें पिताका वैमात्रेय-उसके अभावमें पिताके सोदरोंके पुत्र-पिताके वैमात्रियोंके पुत्र-पिताके सोदरोंके पौत्र-पिताके वैमात्रेयोंके पौत्र-इनका क्रमसे अधिकार है-उसके अभावमें पितामहका दौहित्र-उनमेंभी पिताकी सोदर भगिनीका पुत्र और वैमात्रेय भगिनीका पुत्र लेते हैं-वक्ष्यमाण (जो कहेंगे) प्रपितामहके दौहित्रके अधिकारमेंभी ऐसेही समझना-उसके अभावमें पितामह वह न होय तो पितामही लेती है-उसके अभावमें पितामहके सोदर भ्राता-वैमात्रेय भ्राता-उनके पुत्र और पौत्र और प्रपितामहके दौहित्रोंका क्रमसे अधिकार है-धनीके भोग्य-पिंडके दाता ये पूर्वोक्त न होंय तो-धनी जिनको पिंड दे उन (नाना-आदि)को पिंड देनेवाले मातुल आदिकोंका अधिकार है-उनके अभावमें-धनीकी माताकी भगिनीके पुत्रका अधिकार है-उसके अभावमें मातुलके पुत्र पौत्रोंका क्रमसे अधिकार है-उनके अभावमें नीचेके उन सकुल्यों प्रतिप्रणप्ता आदि तीन पुरुषोंका अधिकार है जो धनीके भोगनेयोग्य लेप भागके दाता हैं-उनके अभावमें फिर ऊपरके उन सकुल्योंका समीपताके क्रमसे अधिकार है जो धनी जिनको देताथा उनको लेपभागके दाता वृद्ध प्रपितामहकी संतानमें हैं-उनके अभावमें समानोदकोंका-उनके अभावमें आचार्यका-उसके अभावमें शिष्यका उसके अभावमें संगवेदके पाठी ब्रह्मचारीका अधिकार है-उसके अभावमें एक ग्राममें स्थित सगोत्र और एकप्रवरवालोंका क्रमसे अधिकार है-यहां तक धनी के संपूर्ण संबंधियोंमें कोई न होय तो ब्राह्मणके धनको छोडकर राजा ग्रहण करले-ब्राह्मणके धनको तो त्रिविद्य आदि गुणोंसे युक्त ब्राह्मण करै-इसी प्रकार वानप्रस्थका धन-भ्राताके तुल्य माना हुआ-वा अन्य वानप्रस्थ एक तीर्थका वासी ले-तैसेही यतिके धनको सच्छिष्य-नैष्ठिक ब्रह्मचारीके धनको आचार्य-ले-उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके धनको तो पिता आदि ग्रहण करै-इति संक्षेपः ॥

तात्पर्यार्थ-पुत्र पौत्र और उनके अभावमें पत्नी आदि दायके भागी कहे अब उन दोनोंका अपवाद कहते हैं-वानप्रस्थ संन्यासी ब्रह्मचारी इनके धनके भागी प्रतिलोम (उलटा) क्रमसे आचार्य-श्रेष्ठ शिष्य धर्मभ्राता एकतीर्थी होते हैं-यहां ब्रह्मचारीपदसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी (जो जीवनपर्यंत गुरुका सेवकहो) लेना उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके धनको तो माता आदिही लेतेहैं नैष्ठिकके धनको तो उसका बाधकहोकर आचार्यही ग्रहण करता है यति (संन्यासी)केतो धनको श्रेष्ठ शिष्य लेता है-श्रेष्ठ शिष्य वह होता है जो अध्यात्म शास्त्रके श्रवण- धारण-उसमें कहे कर्मोंके करनेमें समर्थ हो-दुराचारी आचार्य आदिभी भागके अयोग्य है-वानप्रस्थके धनको धर्मभ्राता एकतीर्थीलेता है धर्मभ्राता प्रतिपन्न (मानाहुआ) भ्राताको कहते हैं-एकतीर्थी एकाश्रमवालेको कहते हैं-धर्मभ्राता जो एकतीर्थी उसे धर्मभ्रात्रेकतीर्थी कहते हैं-इन आचार्य आदिकोंके अभावमें पुत्र आदिकोंके होनेपरभी एकतीर्थीही लेता है-कदाचित् कोई शंका करैकि अन्य आश्रमोंमें गये अंश (भाग)से हीन

होतेहैं इस वसिष्ठके वचनसे अन्य आश्रमोंमें गयोंको धनका सम्बन्धही नही होता तो उसका भाग कहांसे होगा– कदाचित् कहो कि नैष्ठिकको अपने संचित धनका संबंधहै सोभी नही क्योंकि उसको प्रतिग्रहका निषेध है– गौतमकाभी वचन है कि भिक्षु संचय न करे– इससे भिक्षुकोभी अपने संचित धनका संबंध नही हो सकता–उस शंकाका समाधान कहते हैं कि वानप्रस्थको इस वैचनसे धनका संबंध है कि एक दिन–मास–छः मास–वा वर्ष भरके लिये धनका संचय करे और संचित कियेको आश्विनमें त्यागदे– संन्यासीकोभी–कौपीन आच्छादनके लिये वह वस्त्रोंको धारे और योगकी सामग्रीयोंके भेद और खडाऊंको धारण करे इत्यादि वैचनसे वस्त्र और पुस्तकका संबंध है– नैष्ठिककोभी शरीरके निर्वाहार्थ वस्त्रआदिका संबंध है ही इससे उनका विभाग कहना युक्त है ॥

भावार्थ–वानप्रस्थ संन्यासी ब्रह्मचारी– इनके धनके भागी प्रतिलोम क्रमसे आचार्य श्रेष्ठ शिष्य–धर्मभ्राता एकतीर्थी होतेहैं अर्थात् ब्रह्मचारीके धनको आचार्य–संन्यासीके धनको श्रेष्ठ शिष्य वानप्रस्थके धनको धर्मका भ्राता एकतीर्थी लेताहै ॥ १३७ ॥

संसृष्टिनस्तुसंसृष्टीसोदरस्यतुसोदरः ।
दद्यादपहरेच्चांशंजातस्यचमृतस्यच१३८॥

पद–संसृष्टिनः १ तुऽ– संसृष्टी १ सोदरस्य ६ तुऽ– सोदरः १ दद्यात् क्रि– अपहरेत् क्रि– चऽ– अंशं २ जातस्य ६ चऽ– मृतस्य ६ चऽ– ॥

योजना–जातस्य चपुनः मृतस्य संसृष्टिनः अंशं संसृष्टी–सोदरस्य संसृष्टिनः जातस्य मृतस्य अंशं सोदरःदद्यात् चपुनः अपहरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–अब अपुत्रका धन पत्नी आदि ग्रहण करें इसका अपवाद कहतेहैं विभाग किये हुये धनके फिर मिलानेको संसृष्ट कहते हैं उसका जो स्वामी वह संसृष्टी कहाता है संसृष्टभी जिस किसीके संग नही हो सकता किंतु पिता भ्राता पितृव्य इनके संग हो सकताहै सोई बृहस्पतिनें कहाहै कि जो विभक्त हुआ पुत्र

१ अनंशास्त्वाश्रमांतरगताः।
२ अनिचयो भिक्षुः।
३ अह्नो मासस्यषण्णां वा तथा संवत्सरस्य वा। अर्थस्य निचय कुर्यात्कृतमाश्वयुजे त्यजेत्।
४ कौपीनाच्छादनार्थं वासोपि बिभृयाच्च सः। योगसभारभेदांश्च गृह्णीयात्पादुके तथा।

* मयूखमें लिखाहै कि इस बृहस्पतिके वाक्यमें पिता भ्राता पितृव्यके संगही संसृष्ट हो सकताहै अन्यके संग नही क्योंकि वचनमें अन्य नही पढे यह मिताक्षराआदिमें कहाहै– युक्त तो यह है कि विभागके जो करनेवाले पिताआदि हैं उन सबके संग संसर्ग हो सकताहै– बृहस्पतिके वचनमें पिता आदिपद विभागके कर्ताओंके बोधक हैं जैसा आधा वेदीके भीतर मापता है आधा वेदीके बाहिर यहां अन्यथा मानोगे तो वाक्यभेद होगा– तिससे पत्नी पितामह भ्राता पौत्र पितृव्य पुत्रआदिके संगभी संसर्ग होताहै विभक्त जो इकट्ठा रहे वह संसृष्ट यह विभाग कर्ताके सामानाधिकरण्य (जो विभक्त हो सके वही संसृष्ट)से विभक्त दो भाईयोंका पुत्रआदिके संग संसर्ग नही हो सकताहै विद्यमान वा होनेवाला धन हम दोनोंका पुनः विभाग पर्यंत साधारण (साझे) रहा ऐसी बुद्धि वा इच्छाको संसर्ग कहते हैं– यह वीरमित्रोदयमें लिखा है ॥

१ विभक्तो यः पुनः पित्रा भ्रात्रा वैकत्रसंस्थितः। पितृव्येणाथ वा प्रीत्या स तत्संसृष्ट उच्यते।

पिता भ्राता वा पितृव्य (चाचा) के संग एकत्र स्थित ही जाय वह उनका संसृष्ट कहाताहै मरे हुये संसृष्टीके अंश (विभाग) को उस संसृष्टीके पुत्रको देदे जो विभागके समय जिसके गर्भका ज्ञान न हो ऐसी संसृष्टीकी भार्यासे पीछे पैदा हुआ हो- पुत्र नहोय तो संसृष्टीही ग्रहण करै पूर्वोक्त पत्नी आदिग्रहण न करैं- अब संसृष्टीके धनको संसृष्टी ग्रहण करै इसकाभी अपवाद कहतेहैं इसमें संसृष्टीके धनको संसृष्टी (संसृष्टिनस्तु संसृष्टी) इस पूर्ववाक्यकाभी संबंधहै तिससे सोदर संसृष्टी मर जाय तो उसके अंशको सोदर संसृष्टी- संसर्गसे पीछे पैदा हुये संसृष्टीके पुत्रको दे पुत्र न होय तो संसृष्टी जो सोदर वही ग्रहण करै- इसी प्रकार सोदर और भिन्नोदरके संसर्गमें सोदर संसृष्टीके धनको सोदर संसृष्टीही ग्रहण करै संसृष्टीभी भिन्नोदर होय तो ग्रहण न करै यह पूर्वोक्तका अपवाद है ॥

भावार्थ-संसृष्टीके धनको संसृष्टीके मरनेपर पीछे पैदा हुये पुत्रको संसृष्टी देदे वह न होय तो संसृष्टी ग्रहण करै सोदर संसृष्टीके धनको तो सोदर संसृष्टी पूर्वोक्त संसृष्टीके पुत्रको दे वह न होय तो सोदर संसृष्टीही ले भिन्नोदर संसृष्टीभी होय तो नले ॥ १३८ ॥

अन्योदर्यस्तुसंसृष्टीनान्योदर्योधनंहरेत् ।
असंसृष्टयपिवादद्यात्संसृष्टोनान्यमातृजः॥

पद-अन्योदर्यः १ तुऽ- संसृष्टी १ नऽ- अन्योदर्यः १ धनं २ हरेत् क्रि- असंसृष्टी १ अपिऽ- वाऽ- आदद्यात् क्रि- संसृष्टः १ नऽ- अन्यमातृजः १ ॥

योजना-तु पुनः अन्योदर्यः संसृष्टी धनं हरेत्- अन्योदर्यः असंसृष्टी धनं न हरेत्- संसृष्टः (सोदरः) असंसृष्टी अपि वा धनं आदद्यात्- अन्यमातृजः न आदद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब पुत्ररहित संसृष्टी मरजाय और भिन्नोदर तो संसृष्टी हो और सोदर असंसृष्टी होय तो दोनों विभागसे धनको ग्रहण करैं- यह कहतेहैं- अन्योदर्य (सापत्नभाई) संसृष्टी होय तो धनको ग्रहण करै और अन्योदर्य असंसृष्टी होय तो धनको ग्रहण करै- इन दोनों वाक्योंसे भिन्नोदरके धन ग्रहण करनेमें संसृष्टी होना अन्वय और व्यतिरेक (विधि निषेध)से कारण कहा असंसृष्टी पदका आगेभी संबंध है कि असंसृष्टीभी संसृष्ट होय तो अर्थात् एक उदरमें संसृष्ट (संबंधवाला) सहोदर होय तो संसृष्टीके धनको ग्रहण करै इस वाक्यसे असंसृष्टीभी सोदरके धन ग्रहण करनेमें सोदर होना कारण कहा- संसृष्ट इस पदका उत्तरपदके संगभी संबंधहै और वहां संसृष्ट पदका संसृष्टी अर्थ है नान्यमातृजः इसमें एवपदके(ही) अध्याहारसे अर्थ करना कि अन्यमातासे पैदा हुआही संसृष्टीके धनको ग्रहण न करै- किंतु सोदरकोभी दे- इसी प्रकार असंसृष्टयपि वा दद्यात्-इस अपि शब्दके सुननेसे और संसृष्टो नान्यमातृज एव इस अवधारणके निषेधसे सोदर तो असंसृष्टी हो और भिन्नोदर संसृष्टी होय तो दोनों सम विभागसे धनको ग्रहण करै क्योंकि दोनोंमें सोदर होना और संसृष्टी होना एक एक धन ग्रहण करनेका कारण है- यही मनुनें स्पष्ट किया है (अ.९श्लो.२१०) कि विभक्तहुये[1] भ्राता संग रहतेहुये यदि फिर विभाग करैं-इसप्रकार संसृष्टीके विभागका प्रारंभ करके (अ०९श्लो० २११-२१२)

[1] विभक्ताः सहजीवंतो विभजेरन्पुनर्यदि ।

कहा है कि जिन संसृष्टि भ्राताओंके मध्यमें ज्येष्ठ–कनिष्ठ–वा मध्यम भ्राता अपने भागके लेनेसे भ्रष्ट होजाय अर्थात् अन्य आश्रममें होजाय वा ब्रह्महत्यारा होजाय–वा मरजाय तो उसके भागका नाश नही होता–इससे उसको पृथक् रखदे संसृष्टीही ग्रहण न करें–उसको सोदर असंसृष्टभी भाई इकट्ठे होकर बांटलें–और देशांतर (परदेश) में होंय तोभी आकर इकट्ठे होकर मिलकर सम विभागसे विभाग करलें न्यून अधिकसे नही–जो भिन्नोदर भ्राता संसृष्टहों वे और सहोदर भगिनी होंय तो सम विभाग करलें अर्थात् बराबर बांटकर ग्रहण करलें ॥

भावार्थ–भिन्नउदरमें पैदाहुआ भाई संसृष्टी होयतो धनको ग्रहण करै और भिन्नोदर असंसृष्टी होयतो धनको ग्रहण न करै–और असंसृष्टीभी सोदर धनकोले–अन्यमातासे पैदाहुआ संसृष्टीही संसृष्टीके धनको ग्रहण न करै किंतु सहोदरकोभी भागदे॥ १३९ ॥

क्लीबोथपतितस्तज्जःपंगुरुन्मत्त-
कोजडः । अंधोचिकित्स्यरोगा-
द्या भर्तव्या स्युर्निरंशकाः ॥ १४० ॥

पद–क्लीबः १ अथ– पतितः १ तज्जः १ पंगुः १ उन्मत्तकः १ जडः १ अंधः १ अचिकित्स्यरोगाद्याः १ भर्तव्याः १ स्युः क्रि–निरंशकाः १ ॥

योजना–क्लीबः अथ पतितः तज्जः पंगुः उन्मत्तकः जडः अंधः अचिकित्स्यरोगाद्याः निरंशकाः एते भर्तव्याः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ–अब पुत्र पत्नी आदिके दाय ग्रहण करनेमें अपवाद कहते हैं–क्लीब (नपुंसक) ब्रह्महत्यारा आदि पतित–और पतितसे उत्पन्न–पंगु (पैरोंसे लंगडा) उन्मत्त अर्थात् जिसको वात पित्त कफ संनिपात–ग्रहोंका आवेश (भूतोंका लिपटना) आदिसे असावधानीहो–जड जिसका अंतःकरण ठीक न हो अर्थात् अपने हित अहितको न जानै–अंधा जिसके नेत्र इंद्रिय न हों–जिसकी चिकित्सा (इलाज) न होसके ऐसे राजयक्ष्मा आदि रोगसे ग्रस्त– आद्य-शब्दके पढनेसे अन्य आश्रमोंमें गये–पिताके वैरी–उपपातकी– बहिरे–गूंगे– इंद्रियोंसेरहित लेनें–सोई वसिष्ठनें कहा है कि अन्य आश्रमोंमें गये अंशोंसे रहित होते हैं–नारदनेंभी कहाहै कि पिताका वैरी पतित नपुंसक– और उपपातकी येसभी अंशको नही लेसकते क्षेत्रज तो कैसे लेसकता है–मनु(अ.९श्लो.२०१)का भी वचन है कि नपुंसक–पतित–जन्मांध–बधिर–उन्मत्त–जड–मूक और इंद्रियोंसे जो

* स्यादौपपातिकः के स्थानमें स्यादपयात्रितः यहभी पाठ कहीं है अपयात्रित वह होता है राजके द्रोह आदि अपराधसे घटस्फोट आदि करके बंधुओंने जिसें जाति बाहिर कियाहो–यह मदन कहते हैं–व्यवसायके लिये नाव आदिमें बैठकर जो द्वीपांतरमें जाय वह अपयात्रित होता है यह युक्त है–क्योंकि कलियुगमें उसके संसर्ग (मेल) का निषेध है कि जो द्विज समुद्रमें नावमें जाय शुद्ध कियेभी उसका संग्रह न करै और राजद्रोह आदिमें घटस्फोट जातिसे बाहिर करना नही कहे ॥

१ येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः । म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥ सोदर्या विभजेयुस्तं समेत्य सहिताः समम् । भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ।

१ अन्याश्रमान्तरगताः ।

२ पितृद्विट् पतितः षण्ढो यश्च स्यादौपपातिकः । औरसा अपि नैतेंऽशं लभेरन् क्षेत्रजाः कुतः ।

३ अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ।

४ चिकित्स्यान्तौ तु नांशाः शोधितस्याप्यसंग्रहः ।

रहित हैं–अर्थात् जिनकी रोगसे इंद्रिय नष्ट होगई हों ये सब नपुंसक आदि अंशके भागी नहीं होते केवल भोजन वस्त्रके देनेसे पालना और रक्षा करने योग्य होते हैं–पालना न करनेमें तो पतित होनेका दोष है कि मनु (अ.९श्लो.२०२) बुद्धिमान मनुष्य शक्तिके अनुसार जीवन पर्यंत भोजन व वस्त्रदे न देतो पतित होता है–इन सबको विभागसे पहिले दोष लगजाय तो भाग नहीं मिलता–और विभागके अनंतर नपुंसकता आदि दोष लगजांयतो उनके धनको कोई भाई आदि छीन नहीं सकता–और विभाग किये पीछेभी औषध आदिके करनेसे दोष दूर होजाय तो भाग मिलसकता है–क्योंकि यहभी इसके समानही बात है–कि विभाग हुये पीछे सवर्णा स्त्रीमें पैदाहुआ जो पुत्र है वहभी विभागका भागी होता है– और पतित आदिकोंमें पुल्लिंग (पतिताः) अविवक्षित है अर्थात् पुरुषही–पूर्वोक्त–भाग रहित नहीं होते–किंतु पत्नी दुहिता माता आदिमेंभी उक्त दोष होंयतो भागसे रहित जानना–

भावार्थ–नपुंसक– पतित–पतितका पुत्र–पंगु– उन्मत्त– जड– अंध– जिनके रोगकी चिकित्सा न होसके इत्यादि सब भागसे हीन होते हैं किंतु पालनाके योग्य होते हैं॥ १४० ॥

औरसाःक्षेत्रजास्त्वेषांनिर्दोषाभागहारिणः।
सुताश्चैषांप्रभर्तव्यायावद्वैभर्तृसात्कृताः ॥

पद–औरसाः १ क्षेत्रजाः १ तु–एषां६ निर्दोषाः १ भागहारिणः १ सुताः १ च–एषां६ प्रभर्तव्याः १ यावत्– वै– भर्तृसात्कृताः १ ॥

१ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्यामनीषिणा।ग्रासाच्छादनमत्यन्तपतितो ह्यददद्भवेत् ॥

२ विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक् ।

योजना–तुपुनः एषां निर्दोषाः औरसाः क्षेत्रजाः पुत्राः भागहारिणः भवंति–चपुनः एषां सुताः (पुत्र्यः) यावद्भर्तृसात्कृताः तावत् प्रभर्तव्याः (पालनीयाः) ॥

तात्पर्यार्थ–इन नपुंसक आदिकोंके औरस और क्षेत्रज पुत्र निर्दोष हैं अर्थात् जिनमें अंश ग्रहण करनेका विरोधी नपुंसकता आदि दोष नहीं है वे अंशके ग्रहण करनेवाले होते हैं–उनमें नपुंसकका क्षेत्रज पुत्र हो सकता है और अन्योंके पुत्र और सभी होसकते हैं–यह और औरस और क्षेत्रजका ग्रहण इतर पुत्रोंके निषेधके लिये है–और पतियोंके आधीनहोने (विवाह) पर्यंत इन नपुंसक आदिकी पुत्रियोंकीभी पालना करै और चशब्द पढनेसे उनका संस्कार करै ॥

भावार्थ–इन नपुंसक आदिके–निर्दोष औरस और क्षेत्रज पुत्रोंको भाग मिलता है और विवाह होनेतक इनकी कन्याओंकी पालना और उनका विवाह करै॥ १४१ ॥

अपुत्रायोषितश्चैषांभर्तव्याःसाधुवृत्तयः ।
निर्वास्याव्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैवच

पद–अपुत्राः १ योषितः १ च–एषां ६ भर्तव्याः १ साधुवृत्तयः १ निर्वास्याः १ व्यभिचारिण्यः १ प्रतिकूलाः १ तथा–एव–च– ॥

योजना–एषां अपुत्राः साधुवृत्तयः योषितः भर्तव्याः–व्यभिचारिण्यः चपुनः तथैव प्रतिकूलाः निर्वास्याः–भवंतीति शेषः–

ता० भा०–इन नपुंसक आदिकोंकी जो पत्नी साधुवृत्ति (सदाचार) हैं तो पालना करने योग्य हैं और जो व्यभिचारिणी हैं वे और जो प्रतिकूल (विरुद्धाचरण) हैं वे निकासने योग्य हैं–यदि वे व्यभिचारिणी न होंयतो

पालना करने योग्य हैं-यह नहीं कि प्रतिकूल होनेसे उनका पालनभी न करै-॥१४२॥

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकाद्यंचस्त्रीधनंपरिकीर्तितम् ॥

पद-पितृमातृपतिभ्रातृदत्तम् १ अध्यग्न्युपागतम् १ आधिवेदनिकाद्यम् १ च-स्त्रीधनं १ परिकीर्तितम् १ ॥

योजना-पितृमातृपतिभ्रातृदत्तं अध्यग्न्युपागतम् च पुनः आधिवेदनिकाद्यं स्त्रीधनं बुधैः परिकीर्तितम् ॥

तात्पर्यार्थ-अब स्त्रीधनके विभागकी इच्छासे प्रथम स्त्रीधनका स्वरूप कहते हैं-पिता माता पति भ्राता इन्होंने जो दियाहो और जो विवाहके समय अध्यग्नि (अग्निहोत्रके समीप) मातुल आदिनें दियाहो जो आधिवेदनिक धनहो अर्थात् पतिने दूसरा विवाह करनेके समय प्रसन्नताके अर्थ पहिली स्त्रीको जो धन दियाहो वह इस वचनसे कहेंगे कि जिस स्त्रीको स्त्रीधन नमिलाहो उसको दूसरे विवाहमें जितना द्रव्य लगै उतना द्रव्यदे स्त्रीधन दियाहोयतो आधा धनदे-आद्य शब्दसे अंश-क्रय-विभाग-परिग्रह-अधिगमसे मिला लेना यह मनु आदिकोंनें स्त्रीधन कहा है-स्त्रीधनशब्द यौगिक है अर्थात् जिसमें स्त्रीका धन यह अर्थ घटे वहहै पारिभाषिक (संज्ञा) नहीं क्योंकि योगके संभवमें परिभाषा मानना अयुक्त है-जो मनु (अ० ९ श्लो० १९४) नें कहा है कि अध्यग्नि-अध्यावहनिक और प्रीतिसे मंगल कार्योंमें दिया-भ्राता माता पिता इनसे मिला यह छःप्रकार स्त्रीधन कहा है-वह न्यून संख्याके निषेधके लिये है अधिक संख्याके निषेधार्थ नहीं-अध्यग्नि आदिका स्वरूप कात्यायननें कहा है कि विवाहके समय अग्निके समीप को स्त्रियोंको दिया जाता है वह सत्पुरुषोंनें अध्यग्नि नामका स्त्री धन कहाहै-और पिताके घरसे पतिके घर जानेके समय जो धन स्त्रीको मिले वह अध्यावहनिक नामका स्त्रीधन कहाहै-जो कुछ सास श्वशुरोंनें प्रीतिसे दियाहो वा चरणोंको नमस्कार करनेसे मिलाहो वह प्रीतिदत्त नामका स्त्रीधन कहाताहै-विवाही हुयी कन्याको पतिके घरपर वा पिताके घरपर भ्राताके सकाशसे वा मातापिताके सकाशसे जो मिले उसे सौदायिक कहते हैं ॥

भावार्थ-पिता माता पति भ्राता इन्होंनें जो दिया-अग्निके समीप जो आया-आधिवेदनिक आदि-मनु-आदिकोनें स्त्रीधन कहा है ॥ १४३ ॥

बंधुदत्तंतथाशुल्कमन्वाधेयकमेवच ।
अतीतायामप्रजसिबांधवास्तदवाप्नुयुः॥१४४॥

पद-बन्धुदत्तं१ तथा-शुल्कं १ अन्वाधेयकं १ एव-च-अतीतायां ७ अप्रजसि ७ बांधवाः १ तत् २ अवाप्नुयुः क्रि- ॥

योजना-बंधुदत्तं तथा शुल्कं चपुनः अन्वाधेयकं स्त्रीधनं परिकीर्तितम्-तत् पूर्वोक्तं स्त्रीधनं अप्रजसि अतीतायां सत्यां बांधवाः अवाप्नुयुः-

१ अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् । न दत्तं स्त्रीधनं यासां दत्तेत्वर्धं प्रकीर्तितम् ।

२ अध्यग्न्यध्यावहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

१ विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ॥तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥ यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना पितुर्गृहात्।अध्यावहनिकं नाम स्त्रीधनं तदुदाहृतम्॥प्रीत्या दत्तं तु यत् किंचिच्छ्वश्र्वा वा श्वशुरेण वा पादवंदनिकं चैव प्रीतिदत्तं तदुच्यते । ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेपि वा भ्रातुः । सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतं ॥

तात्पर्यार्थ-कन्याकी माताके और पिताके बंधुओंने जो दियाहो-और जो वरसे धन लेकर कन्यादीजाय वह शुल्क-अन्वाधेयक जो विवाहके पीछे दियाजाय-सोई कात्यायननें कहाहै कि विवाहके पीछे जो धन पतिके कुलमेंसे स्त्रीको मिले वा पिताके कुलसे मिले वह धन अन्वाधेय कहाता है-यहभी स्त्रीधन कहा है-इस पूर्वोक्त स्त्री धनको-संतानसे हीन (दुहिता दौहित्र पुत्र पौत्रसे रहित) स्त्री मरजायतो वे भर्ता आदि बांधव ग्रहण करते हैं जिनको आगे कहेंगे॥

भावार्थ-बंधुओंका दिया-शुल्क (मोल) अन्वाधेयकभी स्त्रीधन कहा है-संतानसे रहित स्त्री मरजायतो-इस पूर्वोक्त स्त्रीधनको पति आदि बांधव ग्रहण करते हैं- ॥१४४॥

अप्रजस्त्रीधनंभर्तुर्ब्राह्मादिषुचतुर्ष्वपि ॥
दुहितॄणांप्रसूताचेच्छेषेषुपितृगामितत् ॥१४५॥

पद-अप्रजस्त्रीधनं १ भर्तुः ६ ब्राह्मादिषु ७ चतुर्षु ७ अपि ऽ-दुहितॄणां ६ प्रसूता १ चेत् ऽ-शेषेषु ७ पितृगामि १ तत् १ ॥

योजना-ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि विवाहेषु अप्रजस्त्रीधनं भर्तुः भवति प्रसूताचेत् दुहितॄणां भवति-शेषेषु विवाहेषु तत् धनं पितृगामि भवति॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्म दैव आर्ष प्राजापत्य इन चार विवाहोंमें जो भार्या हुयी हो ऐसी पूर्वोक्त प्रजारहित-मरीहुयी स्त्रीका जो पूर्वोक्त स्त्रीधन है वह सबसे पहिले भर्ताका होता है उसकें अभावमें पतिके समीपके जो सपिंड हैं उनका होता है-और आसुर गांधर्व राक्षस पैशाचरूप शेष विवाहोंमें जो भार्या हुई हो उस प्रजाहीन स्त्रीका धन माता पिताको प्राप्त होता है यहां पितृगामि पदका यह अर्थ है (माताच पिताच पितरौ पितरौ गच्छतीति पितृगामि) अर्थात् माता पिताको जो प्राप्तहो एकशेषसे दिखाईभी माताको प्रथम (पितासे पहिले) धनका ग्रह पहिलेही कहआये हैं-उसके अभावमें उसके समीपके सपिंडोंको धनका ग्रहण जानना-और संपूर्णभी विवाहोंमें प्रसूता (संतानवाली) होय तो वह धन दुहिताओंका होता है-यहां दुहितापदसे दुहिताकी दुहिता लेनी क्योकि जो साक्षात् (अपनी) दुहिता है उनको धनका ग्रहण- (ऋणसे शेष माताके धनको दुहिता ग्रहण) करै इस वचनसे पहिले कह आये-इससे माताके मरनेपर माताके धनको पहिले दुहिता लेती हैं-उनमेंभी विवाही और विना विवाहीके मध्यमें विना विवाही लेती है वह न होयतो विवाही लेती है-उनमेंभी प्रतिष्ठिता और अप्रतिष्ठिता के मध्यमें अप्रतिष्ठिता (निर्धन वा संतानरहित) लेती है उसके अभावमें प्रतिष्ठिता लेती है सोई गौतमनें कहा है कि विनाविवाही और अप्रतिष्ठिता दुहि-

* अपि शब्दसे गांधर्व लेना अथवा ब्राह्म आदि है जिनमें इस अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसे ब्राह्म विवाहसे भिन्न दैव आर्ष प्राजापत्य गांधर्व चारलेने इनमें जो धन वह प्रजासे हीन स्त्रीके मरनेपर भर्ताका इष्ट है इस मनु वचनके संग विसंवाद (विरोध) होगा॥

* भर्ताके अभावमें उसके समीपके सपिंडोंका और पिताके अभावमें पिताके समीपके सपिंडोंका धन होता है उनमेंभी स्त्रीके समीपके फिर उनके समीपके उनके द्वारा उनके कुलके समीपके समझने यह व्याख्या करनी ॥

१ विवाहात्परतो यच्च । लब्धं भर्तृकुलात्स्त्रिया । अन्वाधेयं तु तद्द्रव्यं लब्धं पितृकुलात्तथा ।

२ ब्राह्मदैवार्षगांधर्वप्राजापत्येषु यद्धनम् । अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ।

१ मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेन्वयः ।

२ स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ।

ताओंको स्त्रीधन मिलता है–इस गौतमके वचनमें चशब्दसे प्रतिष्ठिताओंकोभी समझना–यहभी शुल्कको छोडकर समझना–क्योंकि वह इस गौतमके वचनसे सोदरोंका होता है कि माताके मरनेपर भगिनीका शुल्क सोदर भाईयोंका होता है–सब प्रकारकी दुहिताओंके अभावमें दुहिताकी दुहिता ग्रहण करती है क्योंकि संतानवाली होयतो दुहिताकी दुहिता ग्रहण करती है यह इसही वचनमें कहा है–यदि वे भिन्नोदर और विषम होंयतो माताओंकी संख्याके अनुसार भागकी कल्पना करनी क्योंकि यह गौतमका वचन है किंवा माता २के प्रति अपने वर्गसे भाग विशेष होता है दुहिता और दौहित्रीयोंके मध्यमें दौहित्रीयोंका अल्पही देने योग्य है-सोई मनुनें कहा है (अ० ९ श्लो० १९३) कि जो उन दुहिताओंकी दुहिता हों उनकोभी मातामहीके धनमेंसे प्रसन्नतासे देना–दौहित्रीयोंके अभावमेंभी दौहित्र धनके भागी होते हैं सोई नारदनें कहा है कि माताकी दुहिता न होय तो दुहिताओंके अन्वय (वंश)को मिलता है ततशब्द समीपकी दुहिताओंके ग्रहणार्थ है–दौहित्र न होयतो पुत्र लेते हैं क्योंकि दुहिता दौहित्र न होंयतो अन्वय लेता है यह कह आये हैं–मनुभी दुहिता और पुत्रोंको माताके धनका संबंध दिखाते हैं (अ० ९ श्लो० १९२) जननी मरजायतो सब सहोदर भाई और सब सहोदर भगिनी धनको सम बांटलें–अर्थात् सहोदर भाई सम बांटलें और भगिनी होंयतो वेभी सम बाटलें कुछ यह अर्थ नही कि भाई और भगिनी इकट्ठे होकर समान बांटकरलें क्योंकि द्वंद्व और एक शेपके अभावसे इतरेतर योग प्रतीत नहीं होता-विभाग कर्ताओंके अन्वयसेभी चशब्द चरितार्थहो जायगा–जैसे देवदत्त खेती करता है चपुनः यज्ञदत्त–यहां–समपदका ग्रहण उद्धार विभागके निषेधार्थ है–सोदरका ग्रहण भिन्नोदरोंकी निवृत्तिके लिये है संतानरहित हीन जातिकी स्त्रीके धनको तो भिन्नोदर भी उत्तम जातिकी सपत्नीकी दुहिता ग्रहण करती है वह न होयतो उसकी संतान लेती है–सोई मनु (अ० ९ श्लो० १९८)नें कहा है कि पिताका दिया हुआ जो स्त्रीका कुछ धनहो वह ब्राह्मणी कन्या ग्रहण करे वा उसके अपत्य (संतान)का होता है इस वचनमें ब्राह्मणी पदका ग्रहण–उत्तम जातिका बोधक है–इससे संतानरहित वैश्याके धनको क्षत्रियाकी कन्या ग्रहण करती है–पुत्रोंके अभावमें पौत्र पितामहीके धनको लेते हैं–क्योंकि यह गौतमका वचन है कि जो धनके भागी वे ऋणको दूरकरैं-पुत्र पौत्र ऋणको दे इस वचनसे पौत्रोंकोभी पितामहीके ऋण दूर करनेमें अधिकार है–पौत्रोंकेभी अभावमें पूर्वोक्त भर्ता आदि बांधव धनके ग्रहण करनेवाले होते हैं॥

भावार्थ–ब्राह्म देव आर्ष प्राजापत्य इन चार विवाहोंसे विवाही हुई–संतानहीन स्त्रीका धन भर्ताका होता है और संतानवाली होयतो दुहिताओंका होता है और

१ भगिनीशुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः ।
२ प्रतिमातृवा स्ववर्गे भागविशेषः ।
३ यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः । मातामह्या धनात् किंचित् प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ।
४ मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितॄणां तदन्वयः ।
५ जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः । भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ।

१ स्त्रियास्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन । ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ।
२ रिक्थभाज ऋणं प्रतिकुर्युः ।
३ पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयम् ।

शेष (आसुर गांधर्व राक्षस पैशाच) विवाहोंमें वह धन पिताको पहुंचता है ॥ १४५ ॥

दत्वाकन्यांहरन्दंड्योव्ययंदद्याच्चसोदयम्॥
मृतायांदत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम्॥

पद-दत्वाऽ-कन्यां २ हरन् १ दंड्यः १ व्ययं २ दद्यात् क्रि-चऽ-सोदयम् २ मृतायां ७ दत्तं २ आदद्यात् क्रि-परिशोध्यऽ-उभयव्ययम् २ ॥

योजना-कन्यां दत्वा हरन् दंड्यः भवति गृहीति शेषः चपुनः सोदयं (सवृद्धिं) व्ययं दद्यात्-कन्यायां मृतायां उभयव्ययं परिशोध्य आदद्यात् (वरो गृह्णीयात्)-

तात्पर्यार्थ-अब वाग्दत्ताके विषयमें कुछ कहतेहैं-वाणीसे कन्याको देकर (सगाई करके) जो हरे अर्थात् सगाई छुटाले-वह द्रव्यसंबंधके अनुसार राजाको दंड देने योग्य है-यहभी तबहै जब हरने (छुटाने)में कोई कारण नहो-यदि कारण होयतो वाणीसेही हुई कन्याकोभी दूसरा श्रेष्ठ वर आजाय तो हरले यह हरनेकी आज्ञा होनेसे दंड देने योग्य नहीहै-और जो वाग्दानके निमित्त वरनें अपने और कन्याके संबंधियोंके उपचार (खातिर)में धनव्यय (खर्च) कियाहो उस सबको वृद्धि (व्याज) सहित कन्याका दाता वरको दे-यदि वाग्दत्ता कन्या संस्कारसे पहिले मरजाय तो वरनें जो अंगूठी आदि वा शुल्क कन्याको दियाहो उसको अपने और कन्याके दाताके व्ययको शोधकर (काटकर) शेष धनको वर ग्रहण करले और मातामह आदिनें जो शिरके भूषण आदि कन्याको दियेहों वा क्रमसे मिला जो धनहो उसको सोदर भाई ग्रहण करें-क्योंकि बौधायनकी यह स्मृतिहै कि मरीहुयी कन्याके धनको सहोदर ग्रहण करें उनके अभावमें माता और उसके अभावमें पिता ग्रहण करें ॥

भावार्थ-कन्याको देकर जो हरे वह (पिता आदि) वृद्धि सहित व्यय वरको दे-और कन्या मरजायतो अपने और कन्याके पिताके व्यय (खर्च)को शोध (गिन) कर शेष धनको वर ग्रहण करे ॥ १४६ ॥

दुर्भिक्षेधर्मकार्येचव्याधौसंप्रतिरोधके ।
गृहीतंस्त्रीधनंभर्तानस्त्रियैदातुमर्हति१४७॥

पद-दुर्भिक्षे ७ धर्मकार्ये ७ चऽ-व्याधौ ७ संप्रतिरोधके ७ गृहीतं २ स्त्रीधनं २ भर्ता १ नऽ-स्त्रियै ४ दातुम्ऽ-अर्हति क्रि-॥

योजना-दुर्भिक्षे चपुनः धर्मकार्ये व्याधौ संप्रतिरोधके-गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता स्त्रियै दातुं न अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-अब जीवती और प्रजावाली स्त्रीके धनकोभी किसी समयमें भर्ता ले सकताहै यह कहतेहैं-कुटुंबको पालनाके लिये दुर्भिक्षमें-अवश्य करने योग्य धर्मके श्राद्ध आदिकार्यमें-व्याधिमें और संप्रतिरोध (बंदीग्रह वा कैद)में अन्य द्रव्यसे रहित भर्ता स्त्रीधनको ग्रहण करले तो फिर स्त्रीको देने योग्य नहीहै-अन्य प्रकारसे ले तो देदे भर्ताके विना जीवती हुई स्त्रीके धनको कोईभी दायाद (हिस्सेदार) ग्रहण न करें-मनु (अ.९ श्लो.२९)का वचनहै कि जीवती हुई उन स्त्रियोंके धनको जो अपने बांधव ग्रहण करें उनको धार्मिक पृथिवीका पति

---

१ दत्तामपि हरेत् कन्यां श्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ।

२ रिक्थं मृतायाः कन्याया गृह्णीयुः सोदरास्तदभावे मातुस्तदभावे पितुः ।

※ वाचस्पतिनें तो संप्रतिरोधके यह व्याधौका विशेषण कहा है अर्थात् ऐसी व्याधि हो जिसमें मनुष्य काम न करसके-

१ जीवंतीनां तुतासां ये तद्धरेयुः स्वबांधवाः। तांच्छिष्याच्चौरदंडेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ।

चौरके दंडसे शिक्षादे-तैसेही मनु (अ.९ श्लो.२००) का वचनहै कि पतिके जीवते हुये जिस अलंकारको स्त्रियोंनें धारण कर लियाहो अर्थात् पति आदिनें दियाहो और उसने धारलियाहो उसको दायाद न बांटे तो वे पतित होतेहैं यह दोष सुनाहै ॥

भावार्थ-दुर्भिक्ष-धर्मका कार्य-व्याधि-संप्रतिरोध (कैद)-इनमें ग्रहणकिये स्त्रीधनको भर्ता स्त्रीको देने योग्य नहीं है ॥१४७॥

अधिविन्नस्त्रियैदद्यादाधिवेदनिकंसमम् ।
नदत्तंस्त्रीधनंयस्यैदत्तेत्वर्द्धंप्रकीर्तितम्१४८

पद-अधिविन्नस्त्रियै४ दद्यात् क्रि-आधिवेदनिकं२ समम्२ न॰-दत्तं२ स्त्रीधनं२ यस्यै४ दत्ते७ तु॰-अर्द्धं१ प्रकीर्तितम् १ ॥

योजना-यस्यै स्त्रीधनं न दत्तं तस्यै अधिविन्नस्त्रियै-समं आधिवेदनिकं दद्यात् स्त्रीधने दत्ते तु अर्द्धं प्रकीर्तितम्-मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जिसके ऊपर दूसरा विवाह कियाजाय वह पहिली स्त्री अधिविन्ना कहाती है उस अधिविन्नस्त्रीको सम आधिवेदनिक धनदे अर्थात् जितना द्रव्य दूसरे विवाहमें लगै उतनाही उस पहिलीस्त्रीको दे जिसको श्वशुर वा पतिनें स्त्रीधन न दियाहो-स्त्रीधन दिया होयतो आधा देना कहा है-यहां अर्द्ध-शब्द समविभागका वाची नहीं है-इससे पूर्व दियाहुआ धन जितनेसे आधिवेदनिकके तुल्य होजाय उसका आधा देदे ॥

भावार्थ-जिसको श्वशुर वा पतिनें स्त्रीधन न दियाहो उस अधिविन्नस्त्रीको आधिवेदनिक (दूसरे विवाहका खर्च)के समान धन पतिदे-स्त्रीधन दिया होयतो आधिवेदनिकका आधादे॥ १४८ ॥

१ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् । न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥

विभागनिह्नवेज्ञातिबंधुसाक्ष्यभिलेखितैः ।
विभागभावनाज्ञेयागृहक्षेत्रैश्चयौतकैः १४९।

पद-विभागनिह्नवे ७ ज्ञातिबंधुसाक्ष्यभिलेखितैः ३ विभागभावना१ ज्ञेया१ गृहक्षेत्रैः ३ च॰-यौतकैः ३ ॥

योजना-विभागनिह्नवे सति ज्ञातिबंधुसाक्ष्यभिलेखितैः चपुनः यौतकैः गृहक्षेत्रैः विभागभावना (निर्णयः) ज्ञेया ॥

तात्पर्यार्थ-अब विभागके संदेहमें निर्णय कहते हैं-विभागका निह्नव (अपलाप वा मुकरना) होजाय तो ज्ञाति (सजातीय) पिता और माताके मातुल आदि बंधु और पूर्वोक्त है स्वरूप जिनका ऐसे साक्षी-और लेख्य-(विभागका पत्र) इनसे विभागका निर्णय जानना-और पृथक्२ कियेहुये घर और क्षेत्रोंसेभी विभागका निर्णय करना अर्थात् पृथक्२ कृषि आदिकार्योंको करना-और पृथक्२ही पंचमहायज्ञ आदि करने-विभागका चिह्न नारदनें कहा है कि अविभक्त (इकट्ठे) भाईयोंका धर्म एकही प्रवृत्त होता है-विभाग हुयेपर वह उनका धर्मभी पृथक् २ हो जाता है तैसेही अन्यभी विभागके चिह्न नारदनेंही कहे हैं कि साक्षी प्रतिभू (जामिन) दान, ग्रहण, इनको विभक्त (जुदे) भाई करैं अविभक्त कभीभी न करैं ॥

भावार्थ-विभागके निव (अपलाप)में विभागका निर्णय जाति बंधु साक्षी लेख और पृथक् किये घर और क्षेत्रोंसे विभागका निर्णय जानना ॥ १४९ ॥

इति दायविभागप्रकरणम् ॥८॥

१ भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ।

२ साक्षित्वं प्रातिभाव्यं च दानं ग्रहणमेव च । विभक्ता भ्रातरः कुर्युर्नाविभक्ताः कथंचन ।

अथ सीमाविवादप्रकरणम् ९

सीम्नोविवादेक्षेत्रस्यसामंताःस्थविरादयः ।
गोपाःसीमाकृषाणायेसर्वेचवनगोचराः ॥

पद–सीम्नः ६ विवादे ७ क्षेत्रस्य ६ सामन्ताः १ स्थविरादयः १ गोपाः१ सीमाकृषाणाः १ ये १ सर्वे १ च॰- वनगोचराः १ ॥

नयेयुरेतेसीमानंस्थलांगारतुषद्रुमैः ।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम्॥

पद–नयेयुः क्रि– एते १ सीमानं २ स्थलांगारतुषद्रुमैः ३ सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैः ३ उपलक्षिताम् २ ॥

योजना–क्षेत्रस्य सीम्नः विवादे स्थविरादयः सामन्ताः गोपाः ये सीमाकृषाणाः च पुनः सर्वे वनगोचराः एते स्थलांगारतुषद्रुमैः सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैः उपलक्षिताम् सीमानं नयेयुः (निश्चिनुयुः)– ॥

तात्पर्यार्थ–दोग्रामोंके क्षेत्रोंकी सीमाके विवादमें तैसेही एकग्रामके खेतोंकी मर्यादाके विवादमें सामंत (आसपासके) वृद्ध-आदि और गोप (ग्वालिये) सीमाकृषाण (जो सीमाके आस पास जोतते हों) और संपूर्ण वनके वासी ये सब स्थल–अंगार तुष–वृक्ष–सेतु वल्मीक (वामी)– निम्न (नीचाई) अस्थि चैत्य (चबूतरा वा ढोला) इन लक्षणोंसे अर्थात् पूर्व किसी समयमें किये हुये सीमाके चिह्नोंसे जानी हुई सीमाका निश्चय करैं–क्षेत्र आदिकी मर्यादाको सीमा कहतेहैं वह चार प्रकारकी होतीहै जनपद (देश)की सीमा–ग्रामकी सीमा–[illegible]की सीमा– गृहकी सीमा–और उसके य[illegible]सभव पांच लक्षण हैं सोई नारदनें कहाहै कि[1] ध्वजिनी- मत्स्यिनी–नैधानी-भयवर्जिता–और राजशासननीता–यह पांच प्रकारकी सीमा कहीहै. ध्वजिनी वह होतीहै जिसमें वृक्ष आदिका चिह्नहो क्योंकि वृक्षप्रकाश होनेसे ध्वजाके तुल्यहैं–मत्स्यिनी वह होतीहै जिसमें जलका चिह्नहो क्योंकि मत्स्य शब्दसे उसका आधार जल लेते हैं–नैधानी वह होतीहै जिसमें तुष वा अंगार गडे हो उनको गडे हुये होनेसे निधान (खजाना)की तुल्यता है–भयवर्जिता वह होतीहै जिसको वादी और प्रतिवादी दोनों स्वीकार करलें–राजशासननीता वह होतीहै जिसके चिह्नोंका ज्ञान नहो और राजा अपनी इच्छासे सीमाका निर्णय करदे– ऐसी सीमामेंभी छः प्रकारका विवाद हो सकताहै सोई कात्यायननें कहाहै कि[1] अंशमें अधिकता और न्यूनता– अस्तिता (होना)और नास्तितता (नहोना) भोगना और नभोगना और सीमा ये छः भूमिके विवादमें हेतुहैं–सोई दिखातेहैं कि यहां मेरी पांच निवर्तना (मापका भेद)से अधिक भूमिहै यह कोई कहे तो पांच निवर्तनाहीहै अधिक नही यह अधिकमें विवाद– पांच निवर्तना नही उससे न्यून है यह न्यूनतामें विवाद– पांच निवर्तना मेरा अंशहै इस कहनेमें अंशही नही यह अस्तिता और नास्तितताका विवाद– मेरी यह भूमि इसने पहिले कभीभी न भोगीथी और अब यह भोगताहै यह कहनेपर सदासेही मैं भोगीहै यह अभोगभुक्तिका विवाद– यह मर्यादाहै कि यह है यह सीमा विवाद– यह छः प्रकारकाही विवाद हो सकताहै– छः प्रकारकेभी भूमिके विवादमें श्रुति और अर्थसे सीमाकाभी निर्णय हो सकताहै इससे सीमानिर्णयके प्रकरणमें तिसका अंतर्भाव (पढना)

[1] ध्वजिनी मत्स्यिनी चैव नैधानी भयवर्जिता । राजशासननीता च सीमा पंचविधा स्मृता ॥

[1] आधिक्यन्न्यूनता चांशे अस्तिनास्तित्वमेव च । अभोगभुक्तिः सीमा च षड्भूवादस्यहेतवः ।

है- सामंत वे होतेहैं जो समंततासे (चारों तरफके) चारों दिशाओंमें समीपके ग्राम आदि हैं वे सीमासीमापरस्थित हैं इससे सामंत कहातेहैं- क्योंकि कात्यायनका वचन है कि ग्रामका सामंत ग्राम-क्षेत्रका क्षेत्र घरका सामंत घर इससे कहाहै कि वह समंतता (चारोंतरफ)से परिरंभण (मिलना) करके रहता है यहां ग्रामआदि शब्दसे ग्राममें स्थित (रहनेवाले) पुरुष जानने जैसे ग्रामः पलायितः (ग्राम भाज गया) यहां-यहां सामंतका ग्रहणभी सामंतोंसे जो मिले हों उनके बोधनके लियेहैं- सोई कात्यायननें कहाहै कि जो मिले हुये हों वे सामंत और उनसे जो उत्तर वे सामंतसंसक्त (मिले) और उन सामतोंकेभी संसक्तोंके जो संसक्त वे सामंतसंसक्त संसक्त कहातेहैं और वे पद्मके आकारके समान होतेहैं- स्थविरपदसे वृद्ध लेंने आदिपदसे मौल और उद्धृत लेंने-वृद्धआदिका लक्षणभी कात्यायननेंही कहाहै कि होता हुआ कार्य उसी कार्यके करनेवाले जिन्होंनें देखा हो वे वृद्ध हों चाहे वृद्ध न हों वे वृद्ध कहाते हैं-जो वहां पहिले सामंत हो और पीछेसे परदेशमें चले गये हों वही देश उनका मूल (जड) है इससे वे ऋषियोंनें मौल कहे हैं- सुनने और भोगने कार्यके कहनेका जिनमें चिह्नहो और सीमाका फिर उद्धार करदे इससे उद्भूत कहे हैं गोपपदसे गौओंके चरानेवाले लेंने-सीमाकृषाण वे होतेहैं जो सीमाके समीपके खेतको जोतते हो- और सब वनमें विचरनेवाले व्याधआदि- और वे मनुनें कहे हैं कि(अ.८श्लो.१६०)व्याध-शाकुनिक (पक्षियोंके हतनेवाले) गोपाल-कैवर्त (भील वा धीवर) मूल (जड)के खोदनेवाले-सर्पोंके ग्रहण करनेवाले (सपेले) उंच्छवृत्ती-अर्थात् कटेहुये खेतोंमेंसे एकरदानेको बीननेवाले-और अन्यभी वनके वासी-स्थल (ऊंचा भूमिका भाग) अंगार (कोले) तुष (धानकी त्वचा) द्रुम (बट आदिवृक्ष) सेतु (जलके प्रवाहका बंधन)-चैत्य(पत्थर आदिका बंध वा चबूतरा) आदिशब्दसे वेणु और वालु (रेत) आदिका ग्रहण है-ये सबभी प्रकाश और अप्रकाशके भेदसे दोप्रकारके हैं सोई मनुनें कहे है (अ.८श्लो.२४६-४७-४८) कि वट- पीपल-ढाक-सेंभल-शाल-ताड-और जिनमें दूध निकसे ऐसे गूलर आदि वृक्ष-सीमापर निश्चयके लिये लगावे गुल्म (गुच्छे) वेणु (वांस) शमी (छोंकर वा जांड) वल्ली (लता) और स्थल- शर (सरकंडे) कुंज इनके गुल्म ऐसे बनावे जिनसे सीमा नष्ट न हो- तलाव-उदपान (चौवचे) वावडी-प्रस्रवण (झरने) और देवताओंके मंदिर-इनको सीमाकी संधियों (मेल)में करै-ये सब तो प्रकाश (प्रकट)रूपहैं-(अ. ८ श्लो. २४९-५०-

---

१ ग्रामो ग्रामस्य सामंतः क्षेत्रं क्षेत्रस्य कीर्तितम्। गृहं गृहस्य निर्दिष्टं समन्तात्परिरभ्य हि।

२ संसक्तकास्तु सामन्तास्तत्संसक्तास्तथोत्तराः। संसक्तसक्तसंसक्ताः पद्माकाराः प्रकीर्तिताः।

३ निष्पाद्यमानं यैर्दृष्टं तत्कार्यं तद्गुणान्वितैः। वृद्धा वा यदि वाऽवृद्धास्ते तु वृद्धाः प्रकीर्तिताः॥ ये तत्र पूर्वं सामन्ताः पश्चाद्देशान्तरं गताः। तन्मूलत्वात्तु ते मौला ऋषिभिः परिकीर्तिताः॥ उपश्रवणसंभोगकार्याख्यानोपचिह्निताः। उद्धरन्ति पुनर्यस्मादुद्धृतास्ते ततः स्मृताः।

१ व्याधान् शाकुनिकान् गोपान् कैवर्तान्मूलखातकान्। व्यालग्राहानुंछवृत्तीनन्यांश्च वनगोचरान्।

२ सीमावृक्षांस्तु कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्। शाल्मलीशालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्॥ गुल्मान्वेणूंश्च विविधान् शमीवल्लीस्थलानि च। शरान्कुब्जकगुल्मांश्च यथा सीमा न नश्यति॥ तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च। सीमासन्धिषु कार्याणि देवतायतनानि च।

५१-५२) और सीमाके ज्ञानमें मनुष्योंका प्रतिदिन विपर्यय (कलह) देखकर अन्यभी प्रच्छन्न (छिपे हुये) सीमाके चिह्नोंको करवावे- पत्थर- अस्थि-गौओंके वाल- तुष- भस्म- कपाल- सूकागोवर- ईंट अंगार (कोले) शर्करा (कंकर-) वालु इनको औरभी जो ऐसेहैं जिनको बहुत कालतक भूमि भक्षण न करै उन सबको सीमाकी संधियोंमें अप्रकाश रूपसे करै विवाद करते हुये मनुष्योंकी सीमाका निर्णय इन प्रकाश और अप्रकाशरूप, सामंत आदिके दिखाये लिंगोंसे राजा करै ॥

भावार्थ- क्षेत्रकी सीमाके विवादमें वृद्ध- आदि सामंत- गोप- और सीमापर समीपके जोतनेवाले और संपूर्ण वनके वासी- स्थल अंगार- तुष- वृक्ष- सेतु- वामी- नीचा स्थल- अस्थि- चैत्य- आदिसे जानी हुई सीमाके निर्णयको करै ॥ १५०॥१५१ ॥

सामंतावासमग्रामाश्चत्वारोऽष्टौदशापिवा ।
रक्तस्रग्वसनाःसीमांनयेयुःक्षितिधारिणः ॥

पद-सामंताः१वाऽ-समग्रामाः१चत्वारः १ अष्टौ १ दश १ अपिऽ-वाऽ- रक्तस्रग्वसनाः १ सीमां २ नयेयुः क्रि- क्षितिधारिणः १ ॥

योजना- सामन्ताः वा चत्वारः अष्टौ वा दश समग्रामाः रक्तस्रग्वसनाः क्षितिधारिणः सन्तः सीमां नयेयुः ॥

तात्पर्यार्थ- जहां चिन्ह नहों और होंभी तो ऐसेहों जिनका लिंग प्रतीत होनेसे संदिग्ध हों वहां सीमाके निर्णयको कहतेहैं- पूर्व कहाहै- स्वरूप जिनका ऐसे सामंत- वा चार आठ दश सम संख्याके ग्राम अर्थात् समीपके ग्रामोंके वासी मनुष्य रक्त- माला और रक्तही वस्त्रोंको धार कर- और अपने मस्तकपर भूमिका खंड (ढेला) रखकर सीमाके निर्णयको करैं (दिखावें) यहां सामंत वा इस विकल्पका कहना अन्य स्मृतियोंमें कहे साक्षियोंके अभिप्रायसे है-सोई मनु (अ० ८ श्लो० २५३)नें कहाहै कि सीमाविवादके निर्णयमें साक्षीकी ही प्रतीति होतीहै- उसमें साक्षियोंसे निर्णय करना मुख्यहै वे न होंयतो सामतोंसे- सोई कहाहै मनु (अ० ८ श्लो० २५८) की साक्षियोंके अभावमें सीमाके समीप वसनेवाले चारग्राम सावधान होकर राजाके समीप सीमाका निर्णय करैं- उनके अभावमें उन ग्रामोंसे जो संसक्त (मिले) हैं वे निर्णय करें-सोई कात्यायननें कहाहै किसी अर्थके गौरवसे अपने प्रयोजनको दुष्टतासे सामंत न कर- सकैं तो उनके संसक्तोंसे सीमाका उद्धार (निर्णय) करना इसमें संशय नहीं- यदि संसक्तभी किसी दोषसे युक्त हो जांय तो धर्मको जानता हुआ राजा उनकेभी अदुष्ट संसक्तों (सामंतसंसक्तसंसक्त)को सीमाके निर्णयमें नियत करै- दुष्टोंको न करै सामंत आदिके अभावमें मौल आदि ग्रहण करने- उनके अभावमें सामंतोंमें वृद्ध मौलोंमें वृद्ध उद्धृत आदि नियत क-

१ उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारयेत्। सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्॥ अश्मनोऽस्थीनिगोवालांस्तुषान्भस्मकपालिका। करीषमिष्टकांगारशर्करावालुकास्तथा॥ यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत्। तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत्॥ एतैर्लिंगैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः।

१ साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णये।

२ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सीमांतवासिनः। सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ।

३ स्वार्थसिद्धौ प्रदुष्टेषु सामंतेष्वर्थगौरवात्। तत्संसक्तैस्तु कर्तव्य उद्धारो नात्र संशयः॥ संसक्ते सक्तदोषे तु तत्संसक्ताः प्रकीर्तिताः। कर्तव्या न प्रदुष्टास्तु राज्ञा धर्मं विजानता।

रने-क्योंकि कात्यायनकी यह स्मृति है कि छः प्रकारकेभी स्थावर धनके विवादमें विचार न करना यह क्रम कहाहै-औरये सामंत आदि गुणोंकी अधिकतासे होतेहैं-क्योंकि यह स्मृति है कि पहिला सीमाका साधन सामंतहै उनमें जो गुणवान्हैंवे निर्दोषहैं उनमें पिछले दूने समझने और उनसेभी अन्य तिगुने समझने और वे साक्षी और सामंत अपनी शपथों (कसम)से शापित किये सीमाका निर्णय करैं अर्थात् उनको शपथ देकर पूछे-क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० २५६)की स्मृतिहै कि वे शिरपर पृथिवीको रखकर माला और रक्त वस्त्रोंको धारकर और अपने २ पुण्योंकी शपथ लेकर भली प्रकार सीमाका निर्णय करैं-यहां नयेयुः (निर्णय करैं) यह बहुवचन दोके निषेधार्थ है एकके नहीं-क्योंकि नारदनें इस वेंचनसे एककी अज्ञादीहै कि एक मनुष्य सीमाका निर्णय करै तो उपवास-रक्तमाला और रक्त वस्त्रोंका धारण-और मस्तकपर भूमिको-रखना-इनको करके जो यह एकका निषेध है कि प्रतीति (विश्वास)वालाभी एक मनुष्य सीमाका निर्णय न करै-क्योंकि इस कार्यको गुरु होनेसे यह सीमाका निर्णय करना बहुत मनुष्योंमें स्थितहै-वह दोनों वादी विवादियोंनें स्वीकार किये धर्मज्ञसे भिन्नके विषयमें है इससे कोई विरोध नहीं-स्थल आदिका चिह्न होय- तोभी साक्षी और सामंत आदिकोंको सीमाके ज्ञानमें उपाय विशेष नारदनें कहाहै कि नदीयोंनें नष्ट की और छोडी हुयी और जिनका चिह्न नष्ट होगयाहै उन भूमियोंमें उस प्राचीन प्रदेश (स्थान)के अनुमान और भोग (जोतना बोना)के दर्शन रूप प्रमाणसे-अर्थात् ग्रामसे सहस्र दंडके मध्यस्थान पर इसका क्षेत्र पश्चिम भागमें है इससे प्रमाणसे अथवा प्रतिवादीके प्रत्यक्ष(सामने) विना विवादके ऐसा जो भोग जिसका स्मरण न हो उस भोगसे सीमाके निर्णयको पूर्वोक्त सामंत आदि करैं-बृहस्पतिनें इसमें विशेष दिखायाहै कि आगम-प्रमाण-भोगका समय-नाम-भूमिके भागका लक्षण इनको जानें वे सीमाके निर्णयमें साक्षी होतेहैं-इन साक्षी सामंत आदिकोंको कुल आदिके समक्ष (सामने) राजा पूछै सोई मनुनें (अ० ८ श्लो० २५४) कहाहै कि ग्रामके वासी और अच्छे कुलसे पैदा हुये मनुष्योंके समक्ष और उन वादी विवादियोंके समक्ष सीमाके विषय जो सीमाके लिंग उनको साक्षियोंसे पूछै-पूछे हुये वे साक्षी एक संमति करके संपूर्ण (इकट्ठे) सीमाका निर्णय कहैं-उनकी निर्णय की हुयी और उनके दिखाये संपूर्ण चिह्नोंसे युक्त-और साक्षी आदिके नामसे युक्त सीमाका अविस्मरण (स्मरण)के लिये पत्रपर लिखवादे सोई मनु (अ० ८ श्लो० १६१)नें

---

१ तेशामभावे सामन्तमौलवृद्धोद्धृतादयः । स्थावरे षट्प्रकारेऽपि कार्या नात्र विचारणा ।

२ सामंताः साधनं पूर्वं निर्दोषाः स्युर्गुणान्विताः । द्विगुणास्तूत्तरा ज्ञेयास्ततोन्ये त्रिगुणा मताः ।

३ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः । सुकृतैः शापिताः स्वैःस्वैर्नयेयुस्ते समंजसम् ।

४ एकश्चेदुन्नयेत्सीमां सोपवासः समुन्नयेत् । रक्त-...... भूमिमाधाय मूर्द्धनि ।

५ नैकः समुन्नयेत्सीमां नरः प्रत्ययवानपि । गुरुत्वादस्य कार्यस्य क्रियैषा बहुषु स्थिता ।

---

१ निम्नगापहृतोत्सृष्टनष्टचिह्नासु भूमिषु । तत्प्रदेशानुमानाच्च प्रमाणाद्भोगदर्शनात् ।

२ आगमं च प्रमाणं च भोगकालं च नाम च भूभागलक्षणं चैव ये विदुस्तेत्र साक्षिणः ।

३ ग्रामेयककुलानां तु समक्षं सीम्नि साक्षिणः । प्रष्टव्याः सीमलिंगानि तयोश्चैव विवादिनोः ।

कहांहै कि वे पूछेहुये सब जैसे सीमाके निर्णयको कहैं वैसेही सीमाका निबंध (पत्रपर) लेख करै और उन साक्षियोंकेभी नाम पत्रपर लिखदे– इन साक्षी सामंत आदिके सीमामे भ्रमणके दिनसे तीन पक्षके भीतर राजा वा दैवसे कोई आपत्ति न आन पडे तो उन सामंत आदिके कहनेसे सीमाका निर्णय समझना– यह राजा और दैवकी आपत्तिकी अवधि कात्यायननें कही है कि सीमामें भ्रमण– कोश– पादोंका स्पर्श–इनमें क्रमसे तीन पक्ष–पक्ष–सातदिनतक दैव और राजाका व्यसन (दुःख) इष्टहै ॥

भावार्थ–सामंत वा सम संख्याके चार आठ दश ग्राम रक्तमाला और रक्त वस्त्रोंको धार और मस्तकपर भूमिको रखकर सीमाके निर्णयको करैं ॥ १५२ ॥

अनृतेतुपृथग्दंड्या राज्ञामध्यमसाहसम् ।
अभावेज्ञातृचिह्नानांराजासीम्नःप्रवर्तिता ॥

पद–अनृते७ तुऽ–पृथक्ऽ–दंड्याः१राज्ञा३ मध्यमसाहसम् २ अभावे ७ ज्ञातृचिह्नानां६ राजा १ सीम्नः ६ प्रवर्तिता १ ॥

योजना– अनृते तु सति राज्ञा यध्यमसाहसम् पृथक् २ सामताः दंड्याः–ज्ञातृचिह्नानां अभावे सीम्नः प्रवर्तिता राजा भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–यदि तीन पक्षके भीतर साक्षियोंको रोग आदिहो जाय अथवा प्रतिवादीसे अधिक संख्या वा गुण दूसरे साक्षियोंसे विरुद्ध दिखादे तो उन मिथ्यावादी पहिले साक्षियोंको दंड कहतेहैं– अनृत मिथ्या कथन होय तो सब सामंतोंको प्रत्येक मध्यम साहस (पांचसौ चालीस पण) दंड राजादे–यह वचन सामंतोंके विषयमें है यह इससे प्रतीत होताहै कि साक्षी मौल आदिकोंको अन्य स्मृतियोंमें दंड कहाहै सोई मनु (अ० ८ श्लो० ५७)नें कहाहै कि सीमाके निर्णयमें यथोक्त कहतेहुये वे सत्य साक्षी विपरीत (अन्यथा) निर्णै करें तो दोसौ पण दंड दे– नारदनेंभी कहाहै कि सीमाके निर्णयमें सामंत झूंठ कहें तो सबको मध्यम साहसका दंड राजा पृथक् २ दे– इससे सामंतोंको मध्यम साहसका दंड कह कर– शेष जो भूमिके काममें नियुक्त किये हैं (सामंतसंसक्त आदि–) वे नीच अनृत कहें तो पृथक् २ पूर्व (प्रथम) साहस दंडदेने योग्य हैं इस प्रकार सामंतोंसे मिले आदिकोंमें नारदनें दंड कहाहै– मौल आदिकोंकोभी वही दंड कहाहै कि मौल वृद्ध आदि जो अन्यहैं वेभी अनृतके कहनेपर दंडकी रीतिसे पृथक् २ प्रथम साहस दंड देने योग्यहैं– आदि शब्दसे गोप– शाकुनिक–व्याध–वनवासियोंका ग्रहणहै यद्यपि शाकुनिक आदिकोंको पापमें तत्पर होनेसे चिह्नोंके दिखानेमें ही उनका उपयोगहै साक्षात् सीमाके निर्णयमें नहीं तथापि चिह्नके दिखानेमेंही मिथ्यावादी हो सकतेहैं इससे दंडका कहना ठीक है– अनृतमें पृथक्२ दंडदेने योग्य हैं यहै दंडका

१ ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निर्णयं । निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ।

२ सीमाचक्रमणे कोशे पादस्पर्शे तथैव च । त्रिपक्षपक्षसप्ताहं दैवराजिकमिष्यते ।

१ यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः । विपरीतं नयंतस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ।

२ अथ चेदनृतं ब्रूयुः सामताः सीमनिर्णये । सर्वे पृथक् पृथक् दंड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ।

३ शेषाश्चेदनृतं ब्रूयुर्नियुक्ता भूमिकर्मणि । प्रत्येकं तु जघन्यास्ते विनेयाः पूर्वसाहसम् ।

४ मौलवृद्धादयस्तत्र्ये दंडगत्या पृथक् पृथक् । विनेया प्रथमेनैव साहसेनानृते स्थिताः ।

५ अनृतेतु पृथक्दंड्याः ।

कथन अज्ञानके विषयमें है क्योंकि कात्यायननें ज्ञानके विषयमें साक्षी आदिकों यह अन्य दंड कहा है कि यदि बहुतसे ग्रहण कियेहुये साक्षी भय वा लोभसे निर्णय न करें तो उत्तम साहस दंडदेनेके योग्य हैं–तैसेही साक्षियोंके वचनके भेदमेंभी यही दंड कात्यायननें ही कहा है कि कहेहुयेमें भेद (फरक) होयतो उत्तम साहस दंडदेने योग्य होते हैं–इसप्रकार अज्ञान आदिसे साक्षियोंको अनृत कहनेका दंडदेकर फिर सीमाके विचारको प्रवृत्त करे–यह कहकर कात्यायननेही निर्णयका प्रकार यह कहा है कि दुष्ट सामंतोंको त्यागकर और मौल आदिकोंके संग अन्योंको मिलाकर सीमाको ठीक करे यह धर्मके ज्ञाता जानते हैं–जहां सामंत आदि ज्ञाता और चिन्ह न होंय, वहां सीमाके निर्णयका उपाय कहते हैं–सामंत आदि सीमाके ज्ञाता और वृक्ष आदि चिन्ह न होंयतो राजाही सीमाको प्रवृत्त करनेवाला होता है और दो ग्रामोंके मध्यकी जिस भूमिमें विवादहो उसका सम (बराबर) विभाग करके यह भूमि इसकी है और यह इसकी–इस प्रकार दोनोंके अर्पण करके उस भूमिके मध्यमें सीमाके लिंग राजा करा दे–जब उस भूमिमें किसी एकके उपकारकी अधिकता दिखै तो उस ग्रामके अर्पण सब भूमिको करदे–सोई मनुनें (अ० ८ श्लो० २६५) कहा है कि यदि किसीको भूमि सहनेके अयोग्य हो तो धर्मका ज्ञाता राजा एकेकेही उपकारके लिये भूमिको देदे यह मर्यादा है॥

भावार्थ–सामंत आदि मिथ्याकहैं तो पृथक् २ मध्यम साहस दंड देने योग्य हैं–और यदि सीमा जाननेवालोंका और चिन्होंका अभाव होयतो राजाही सीमाको प्रवृत्त करै– ॥ १५३ ॥

आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु ।
एषएवविधिर्ज्ञेयोवर्षाम्बुप्रवहादिषु ॥ १५४ ॥

पद–आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु ७ एषः १ एव–विधिः १ ज्ञेयः १–वर्षाम्बुप्रवहादिषु ७ ॥

योजना– आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु–वर्षाम्बुप्रवहादिषु एष एव विधिः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ–आराम (फूल फलकी वृद्धिके लिये भूमिका भाग) आयतन (निवेशन) अर्थात् पलाल आदि रखनेके लिये भूमिका भाग (खलियान) ग्राम–यहां ग्रामपद नगर आदिकाभी उपलक्षण (बोधक) है–निपान (जलका स्थान) बावडी कूप आदि–उद्यान (क्रीडाका वन) वेश्म (घर) इन पूर्वोक्त आराम आदिकोंमें यही सामंत साक्षी आदिसे निर्णयकी विधि जाननी–तैसेही वर्षासे हुये जलके प्रवाहोंमें इन दो घरोंके मध्यमें जलका प्रवाह वहता है अथवा इन दो घरोंके मध्यमें इस प्रकारके विवादमें और आदिपदके ग्रहणसे प्रासादों (मंदिर) मेंभी पूर्वोक्तही विधि जाननी सोई कात्यायननें कहा है कि क्षेत्र कूप तलाव केदार आराम घर प्रासाद आवसथ (हवेली) राजा और देवताओंके मंदिर–इनमेंभी यही सीमाके निर्णयकी विधि है ॥

---

१ बहूनां तु गृहीतानां न सर्वे निर्णयं यदि। कुर्युर्भयाद्वा लोभाद्वा दंड्यास्तूत्तमसाहसम् ।

२ कीर्तिते यदि भेदः स्याद्दंड्यास्तूत्तमसाहसम् ।

३ आज्ञानोक्तौ दण्डयित्वा पुनः सीमां विचारयेत् ।

४ त्यक्त्वा दुष्टांस्तु सामंतानन्यान्मौलादिभिः सह। सीमां च कारयेत्सम्यगिति धर्मविदो विदुः ।

५ सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् । प्रदिशेद्भूमिमेकेषामुपकारादिति स्थितिः ।

१ क्षेत्रकूपतडागानां केदारारामयोरपि । गृहप्रासादावसथनृपदेवगृहेषु च ।

भावार्थ-आराम (बाग) निवेश ग्राम-निपान-(जलस्थान) उद्यान (क्रीडाका वन) वेश्म (घर) इनमें और वर्षासे हुये जलके प्रवाहोंमें यही सीमाके निर्णयकी विधि (सामंत आदि) जाननी-अर्थात् सामंत आदि जिसका कहैं उसकेही आराम आदि होते हैं ॥ १५४ ॥

मर्यादायाःप्रभेदेचसीमातिक्रमणेतथा । क्षेत्रस्यहरणेदंडाअधमोत्तममध्यमाः१५५

पद-मर्यादायाः ६ प्रभेदे ७च९- सिमातिक्रमणे ७ तथा९- क्षेत्रस्य६ हरणे७ दंडाः १ अधमोत्तममध्यमाः १ ॥

योजना-मर्यादायाः प्रभेदे-तथा सिमातिक्रमणे-क्षेत्रस्य हरणे-अधमोत्तममध्यमाः दंडाः क्रमेण भवंतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-अनेक क्षेत्रोंकी जो व्यवच्छेदक (भेद जतानेवाली) भूमि उसे मर्यादा कहते हैं उसका जो भली प्रकार (जडमूलसे) भेदनमें-और सीमाको लंघकर क्षेत्रके जोतनेमें और भय आदिको दिखाकर क्षेत्रके हरणे (छीनने)में क्रमसे अधम उत्तम मध्यम साहस दंड जानने-यहां क्षेत्रका ग्रहण गृह आराम आदिके उपलक्षणार्थ है-और जब अपनेकी भ्रांतिसे क्षेत्र आदिको हरता है तब दोसौ पणका दंड जानना-सोई मनु (अ० ८ श्लो० २६४)नें कहा है की घर तलाव आराम क्षेत्र इनको जो भय दिखाकर हरे उसको पांचसौ पणका और अज्ञानसे हरे तो दोसौ पणका दंडदे-और हरे हुये क्षेत्र आदिकी अधिकताको देखकर कदाचित् उत्तम साहस दंडभी देने योग्य है इसीसे कहा है कि-मारना-सर्वस्वका हरना पुरसे निकासना-अंक करना (दागना) उसके अंगका छेदन करना-यह उत्तम साहस दंड कहा है ॥

भावार्थ-मर्यादाका भेदन-सीमाका अवलंघन और क्षेत्रके हरणेमें क्रमसे अधम उत्तम मध्यम साहस दंड होते हैं-॥ २५५ ॥

ननिषेध्योल्पबाधस्तुसेतुःकल्याणकारकः । परभूमिंहरन्कूपःस्वल्पक्षेत्रोबहूदकः१५६॥

पद-न९-निषेध्यः १ अल्पबाधः १ तु९-सेतुः १ कल्याणकारकः १ परभूमिं २ हरन् १ कूपः १ स्वल्पक्षेत्रः १ बहूदकः १॥

योजना-परभूमिं हरन् सेतुः अल्पबाधः न निषेध्यः स्वल्पक्षेत्रः बहूदकः कल्याणकारकः कूपः न निषेध्यः ॥

तात्पर्यार्थ-जो पराये क्षेत्रमें प्रार्थना करके वा धन देकर सेतु वा कूपको स्वामीकी आज्ञासे बनायाचाहे उसके निषेधसे क्षेत्रके स्वामीकोही दंड कहते हैं पराई भूमिको नष्ट करताभी सेतु(जलके प्रवाहका बंध)क्षेत्रस्वामीके निषेध करने योग्य नहीं यदि यह अल्पपीडा और अधिक उपकारका कर्ता हो और जो कूप अल्प क्षेत्रमें बननेसे अल्प बाधा करे और अधिक जलवान् होनेसे कल्याणका कर्ताहो इससे बहूदक वह कूपभी निवारण करने योग्य नहीं-यहां कूपका ग्रहण बावडी और पुष्करिणीका उपलक्षण है-जहां यह कूप संपूर्ण क्षेत्रमें होनेसे अधिक बाधा करे वा नदी आदिके समीपके क्षेत्रमें होनेसे अल्प उपकार करे तब वह निषेध करनेके योग्य है यह बात अर्थात् कही समझनी-दो प्रकारका सेतु नारदनें कहा है कि

१ गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् । शतानि पंच दंड्यः स्यादज्ञानाद्विशतो दमः ।

१ वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनांकने । तदंगच्छेदइत्युक्तो दंड उत्तमसाहसे ।

२ सेतुश्च द्विविधो ज्ञेयः खेयो बंध्यस्तथैव चातोयप्रवर्तनात् खेयः बंध्यः स्यात्तन्निवर्तनात् ।

खेय और बंध्य दो प्रकारका सेतु होता है जिससे जलकी प्रवृत्तिहो वह खेय–और जिससे जलकी प्रवृत्ति न हो वह बंध्य होता है–जो अन्यके बनाये –भेदन (फूटना)आदिसे नष्ट हुये सेतुको संस्कार करै तो पहिले स्वामी उसके वंशके मनुष्य–वा राजाको पूछ–करही संस्कार करै–सोई नारदेनें कहा है कि पहिले बने हुये और छोडे–सेतुको स्वामीके पूछे विना जो कोई प्रवृत्त (जारी) करै वह उसके फलका भागी नही–स्वामी मरगया होय और उसके वंशका मनुष्यभी कोई न होयतो राजासे पूछ करके सेतुको प्रवृत्त करै ॥

भावार्थ–अल्प पीडाका कर्ता और अधिक उपकारी पराई भूमिका नाशक कूप और अल्पस्थानमें जो बनै और बहुत जलको जो दे वह कूप क्षेत्रके स्वामीके निषेध करनेके अयोग्य है ॥ १५६ ॥

स्वामिनेयोनिवेद्यैवक्षेत्रेसेतुंप्रवर्तयेत् ।
उत्पन्नेस्वामिनोभोगस्तदभावेमहीपतेः ॥

पद–स्वामिने ४ यः १ अनिवेद्य– एव–क्षेत्रे ७ सेतुं २ प्रवर्तयेत् क्रि– उत्पन्ने ७ स्वामिनः ६ भोगः १तदभावे ७ महीपतेः ६

योजना–यः स्वामिने अनिवेद्य एव क्षेत्रे सेतुं प्रवर्तयेत्– उत्पन्ने (फले) भोगः स्वामिनः भवति तदभावे महीपतेः भोगः भवति॥

१ पूर्वप्रवृत्तमुत्सृष्टमपृष्ट्वा स्वामिनं तु यःसेतुं प्रवर्तयेत्कश्चिन्न स तत्फलमाप्नुयात्॥मृते तु स्वामिनि पुनस्तद्वंश्ये वापि मानवे।राजानमामन्त्र्य ततः कुर्यात्सेतुप्रवर्तनम् ।

तात्प०भा०–क्षेत्रके स्वामीके प्रति कहकर सेतु बनानेवालेको कहते हैं–क्षेत्रस्वामीके विना पूछे और उसके अभावमें राजाके विना पूछे जो पराये क्षेत्रमें सेतुको बनाले वह फलका भागी नही होता किंतु उससे पैदा हुये फलकोही क्षेत्रका स्वामी भोग सकता है और स्वामी न होयतो राजाको फल मिलता है तिससे प्रार्थना और धनदेकर क्षेत्रके स्वामी वा राजाको पूछकरही पराये क्षेत्रमें सेतुको बांधै– ॥ १५७ ॥

फालाहतमपिक्षेत्रंनकुर्याद्योनकारयेत् ।
सप्रदाप्यःकृष्टफलंक्षेत्रमन्येनकारयेत्१५८

पद–फालाहतं २ अपि– क्षेत्रं २ न–कुर्यात् क्रि–यः १ न– कारयेत् क्रि– सः १ प्रदाप्यः १ कृष्टफलं २ क्षेत्रं १ अन्येन ३ कारयेत् क्रि– ॥

योजना–फालाहतं अपि क्षेत्रं यः न कुर्यात् न कारयेत् सः कृष्टफलं प्रदाप्यः–क्षेत्रं अन्येन कारयेत्॥

तात्प०भावार्थ–जो मनुष्य क्षेत्रस्वामीके पास यह कहकर कि मैं इस खेतको जोतूंगा–पीछे छोडता है और अन्यसे भी न जुतवाता है–फालसे कुछ जुताभी वह क्षेत्र हलसे कुछ जुताहोनेसे भली प्रकार बीज बोने योग्य नहो तोभी उसके जोतने बोनेसे जितना अन्न सामंत (जिमिदार)नें समझाहो उतना दंड उस कर्षक (किसान)को राजादे और उस क्षेत्रको पहिले किसानसे छीनकर अन्यसे करवावे– ॥ १५८ ॥

इति सीमाविवादप्रकरणम् ॥ ९ ॥

अथ स्वामिपालविवादप्रकरणम्

माषानष्टौतुमहिषीसस्यघातस्यकारिणी ।
दंडनीयातदर्द्धंतुगौस्तदर्द्धमजाविकम् ॥

पद–माषान् २ अष्टौ २ तु॥– महिषी १ सस्यघातस्य ६ कारिणी १ दंडनीया १ तदर्धं २ तु॥–गौः १ तदर्धं २ अजाविकम् २

योजना–सस्यघातस्य कारिणी महिषी अष्टौ माषान्–गौः तदर्धं–अजाविकं दंडनीया तदर्धं– ॥

तात्पर्यार्थ–पराये सस्यका नाश करनेवाली महिषी (भैंस)को आठ माषका और गौको चार माषका–और अजा और मेषको दो माषका दंड राजादे–यहां महिषी आदिके पासतो धन नही होता इससे उनके स्वामी पुरुषोंको दंड समझना– यहां माषपदसे तांबेके पणका वीसवां भाग जानना क्योंकि नारदका वचन है कि पणका वीसवां भाग माष कहा है–यह भी अज्ञान (विनाजाने)के विषयमें है जान करतो अन्य स्मृतिमें कहा यह दंड जानना कि पणके दो पाद गौको उससे दूने (चारपाद) महिषीको तैसेही अजा भेड बछडोंको पणके एक पादका दंड कहाहै और जो नारदनें यह कहा है कि गौको एक माषका महिषीको दो माषका और अजा भेड बछडोंको आधे माषका दंड होता है वह ऐसे भक्षणके विषयमें है जिसकी जड बचरही हो और बढनेके योग्य हो ॥

भावार्थ–पराये खेतका नाश करनेवाली महिषीके स्वामीको आठ माषका और गौके स्वामीको चार माषका और बकरी भेडके स्वामीको दो माषका दंड दे–॥ १५९ ॥

भक्षयित्वोपविष्टानांयथोक्ताद्द्विगुणोदमः ।
सममेषांविवीतेपिखरोष्ट्रंमहिषीसमम् १६०

पद–भक्षयित्वा॥–उपविष्टानां ६ यथोक्तात् ५ द्विगुणः १ दमः १ समं २ एषां ६ विवीते ७ अपि॥–खरोष्ट्रं २ महिषीसमम् २ ॥

योजना– भक्षयित्वा उपविष्टानां यथोक्तात् द्विगुणो दमः ज्ञेयः– एषां (महिष्यादीनां)विवीते (प्रचुरतृणकाष्ठवति रक्षिते) अपि समं दंडो भवति– खरोष्ट्रं महिषीसमं ज्ञेयम्– ॥

तात्पर्यार्थ–अपराधकी अधिकतासे कहीं२ दूना दंड कहतेहैं–यदि पशु पराये क्षेत्रको खाकर विनानिकासे क्षेत्रमेंही सोरहैं तब पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड जानना–यदि अपने बछडों सहित बैठ जांयतो चौगुना दंड जानना– क्योंकि यह वचन है कि क्षेत्रमें पशु वसें तो दूना और बच्चों सहित वसें तो चौगुना दंड होताहै– प्रचुर (अधिक)है तृण काठ जिसमें ऐसा रक्ष्यमाण (राखाहुआ) जो देश उसे विवीत कहतेहैं उसके नष्ट करनेमेंभी अन्य क्षेत्रके दंडके तुल्यही दंड महिषी आदिकोंको है– और खर- ऊंट–ये सब महिषीके तुल्यहैं– अर्थात् जहां महिषीको जो दंड दिया जाताहै वही दंड खर ऊंट इनकोभी प्रत्येक दे– खेतके नाश करनेमें खर और ऊंट प्रत्येक महिषीके तुल्यहै और दंड अपराधके अनुसार होताहै इससे खरोष्ट्रम् (खर और ऊंट) यह समाहार (समूह) विवक्षित

१ माषो विंशतिमो भागः पणस्य परिकीर्तितः ।

२ पणस्य पादौ द्वौ गावु तद्द्विगुण महिषीं तथा । तथाजाविकवत्सानां पादो दंडः प्रकीर्तितः ।

३ मार गो दापयेद्दंडं द्वौ माषौ महिषीं तथा । तथाजाविकवत्सानां दंडः स्यादर्धमाषिकः ।

१ वसतां द्विगुणः प्रोक्तः सवत्सानां चतुर्गुणः ।

नही है– अर्थात् दोनोंको मिलकर एक महिषीके समान दंड नहीं है–

भावार्थ– भक्षण करके जो वहांही बैठ गये होंय तो दूना दंड होताहै और अधिक तृण काष्ठवाले देशमेंभी इन महिषी आदिकोंको सम (तुल्य) ही दंड है और खर और ऊंट महिषीके तुल्य दंडके योग्य होतेहैं॥

यावत्सस्यंविनश्येत्तुतावत्स्यात्क्षेत्रिणःफलम् । गोपस्ताड्यस्तुगोमीतुपूर्वोक्तंदंडमर्हति ॥ १६१ ॥

पद– यावत्ऽ– सस्यं १ विनश्येत् क्रि– तुऽ– तावत्ऽ–स्यात् क्रि–क्षेत्रिणः ६ फलम् १ गोपः १ ताड्यः१ तुऽ–गोमी १ तुऽ– पूर्वोक्तं२ दंडं २ अर्हति क्रि– ॥

योजना– यावत् सस्यं विनश्येत् तावत् फलं क्षेत्रिणः स्यात्– तु पुनः गोपः ताड्यः गोमी तु पूर्वोक्तं दंडं अर्हति–

तात्पर्यार्थ–पराये सस्यके नाशमें गौके स्वामीको दंड कह आये अब क्षेत्रके स्वामीको फलभी दे यह कहतेहैं–यहां सस्यका ग्रहण क्षेत्रकी वृद्धिका उपलक्षणहै–जिस क्षेत्रमें जितना पलाल और धान्य आदि गौ आदिकोंने नष्ट कियाहो उतना क्षेत्रका फल गौवाला क्षेत्रके स्वामीको दे– अर्थात् इतने क्षेत्रमें इतना अन्न भूसा हुआ करताहै इस प्रकार सामंतोंके निश्चय किये अन्न आदिको देदे– और गोपको ताडनाही दे उससे फल न दिवावे– यदि पाल (गोप)के दोषसे सस्यका नाश हुआ होय तो गोपकोभी पूर्वोक्त धन दंडसहितही ताडना जाननी– क्योंकि यह वचनहै कि जो नष्ट (बिगडी) हुयी गौ पालके दोषसे सस्योंको नष्ट करे– उसमें गौके स्वामियोंको दंड नही किंतु पालना करनेवाला उस दंडके योग्य होताहै– यदि गौका स्वामीही अपने अपराधसे सस्यको नष्ट करे तो पूर्वोक्त दंडके योग्य होताहै ताडनाके नही– फलके देनेका अधिकार सर्वत्र गौके स्वामीकोही है क्योंकि उस क्षेत्रके फलसे पुष्ट महिषी आदिके दूधके भोग(पीना)के द्वारा गौका स्वामीही उस क्षेत्रके फलका भोगनेवालाहै– और गौ आदिके भक्षणसे शेष(बचा)पलाल आदिको तो गौका स्वामीही ग्रहण करले क्योंकि मध्यम मनुष्योंनें कल्पित (ठहराया) मूल्यके देनेसे यह क्षेत्र उसका क्रीत (खरीदा) के समानहै इसीसे नारदनें कहाहै कि गौओंके भक्षण किये सस्यको जो नर मांगे जो अन्न उस क्षेत्रमें बोयाहो उसका द्रव्य वा उतना अन्न जो सामंत ठहरादे देदे– और उस खेतका पलाल गौके स्वामीको और अन्न कर्षक (किसान)को देदे–

भावार्थ– जितना क्षेत्र नष्ट हुआ हो उतनाही फल क्षेत्रके स्वामीका होताहै और गोप तो ताडनाके योग्य है और गौओंका स्वामी पूर्वोक्त दंडके योग्य होताहै ॥१६१॥

पथिग्रामविवीतांतेक्षेत्रेदोषोनविद्यते । अकामतःकामचारेचौरवद्दंडमर्हति॥१६२॥

पद– पथि७ ग्रामविवीतान्ते ७ क्षेत्रे ७ दोषः१ नऽ–विद्यते क्रि– अकामतःऽ– कामचारे ७ चौरवत्ऽ–दंडं २ अर्हति क्रि– ॥

योजना– पथि ग्रामविवीतांते क्षेत्रे अकामतः नाशिते दोषः न विद्यते– कामचारे चौरवत् दंडं अर्हति ॥

२ या मदा पाठदोषेण गौस्तु सस्यानि नाशयेत् । न तत्र गोमिनां दंडः पालस्तु दंडमर्हति ।

१ गोभिस्तु भक्षितं सस्यं यो नरः प्रतियाचते । सामंतानुमतं देयं धान्यं यत्तत्र वापितम् ।

तात्पर्यार्थ–मार्ग ग्राम और विवीत (जिसमें तृण वा काष्ठ रक्षाके लिये छोड रक्खेहों) इनके समीपका जो क्षेत्रहै उसको रखवाले गोपके विनाजाने गौ भक्षण करलें तो गोप और गौका स्वामी इन दोनोंको दोष (अपराध) नहीं–यहां दोषके अभावका कहना दंडके अभावार्थ है और नष्ट हुये सस्यके मोल देनेके निषेधार्थहै– यदि कामचार हो अर्थात् जानकर खेतमें गौ आदिको चुगावे तो जो दंड चौरको[1] होताहै वैसेही दंडके योग्य वहभी होताहै यहभी उस क्षेत्रके विषयमें है जो अनावृत (विनावाड) हो क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० २३८)नें यह दंडका अभाव अनावृत क्षेत्रके विषयमेंही कहाहै कि जहां विना वाडके खेतके धान्यको यदि पशु नष्ट करदें वहां राजा पशुओंके रखवालोंको दंड नदे– और आवृत (वाडवाले) तो मार्ग आदिके क्षेत्रमेंभी दोषहै ही–वृति (वाड)का करनाभी मनु (अ० ८ श्लो० २३९)नेंही कहाहै कि क्षेत्रकी ऐसी वाडकरै[2] जिसके करनेसे ऊंट क्षेत्रको न देखसके और उसमें ऐसे छिद्रभी न रहनेदे जिनमें कुत्ते और सूकरोंका मुख जासके॥

भावार्थ–मार्ग ग्राम विवीतके समीपका जो क्षेत्र उसको विना जाने गौ आदि नष्ट करदें तो कुछ दोष नहीहै–यदि जानकर चुगावे तो चौरके समान दंडके योग्य होताहै ॥

महोक्षोत्सृष्टपशवःसूतिकागंतुकादयः ।
पालोयेषांनतेमोच्यादेवराजपरिप्लुताः१६३

पद– महोक्षा १ उत्सृष्टपशवः १ सूतिकागंतुकादयः १ पालः १ येषां ६ न अ– ते १ मोच्याः १ देवराजपरिप्लुताः १ ॥

योजना– महोक्षा उत्सृष्टपशवः सूतिकागंतुकादयः– येषां पालः न अस्ति देवराजपरिप्लुताः ते मोच्याः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ– महान् जो उक्षा उसे महोक्षा (सांड) कहतेहैं वह– और उत्सृष्ट पशु जो वृषोत्सर्ग आदिकी विधिसे वा देवताके निमित्तसे छोडे हों– और दशदिनके भीतरकी प्रसूता (व्याई हुयी) गौ आदि आगंतुक (जो अपने यूथसे भ्रष्ट होकर देशांतरसे आये हों) इतने पशु छोडने योग्यहैं अर्थात् ये पराये सस्यका भक्षण करने परभी दंडके योग्य नहीहै–और जिनका पाल नहीं हो वेभी देवराजोपहत (सस्यके नाशक) होय तो दंडके योग्य नही होते–आदि पदके ग्रहणसे हस्ति अश्व आदि लेने वे उशनानें कहेहैं[1] कि हाथी और अश्व दंडके योग्य नही हैं क्योंकि ये प्रजाके पालक कहेहैं– काणे और कुबडे चिह्नवालेभी दंडके योग्य नहीहैं कही ऐसाभी पाठ है कि काणे और एक सींगके और दाग दिये बैल दंडके अयोग्य हैं– अकस्मात् (अचानक) आई–सूतिका अभिसारिणी (जो अपने यूथसे भ्रष्ट हुई फिर अपने यूथमें जाती हो) उत्सवकी और श्राद्धके समयमें आई इतनी गौ दंडके अयोग्य हैं– यहां उत्सृष्ट (छोडे हुये) पशुओंको दंडसे रहित होनेसे दृष्टांतके लिये उनका ग्रहण है अर्थात् जैसे उत्सृष्ट पशु दंडके अयोग्यहैं ऐसेही महोक्षा आदिभी दंडके अयोग्यहैं ॥

[1] पथापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि।न तत्र प्रणयेद्दंडं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ।

[2] वृतिंच तत्र कुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत् छिद्रं निवारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ।

[1] अदंड्या हस्तिनो ह्यश्वा. प्रजापाला हि ते स्मृताः अदंड्या काणकुब्जा च ये शश्वत्कृतलक्षणाः ॥ अदंड्यागंतुकीगौश्च सूतिका चाभिसारिणी । अदंड्याश्चोत्सवे गावः श्राद्धकाले तथैव च ।

भावार्थ-महोक्ष (सांड) पुण्यार्थ छोडे हुये पशु-सूतिका- अचानक आये पशु ये दंड देनेके अयोग्यहैं- और जिनका कोई पालक न हो दैव और राजासे उपहत (अपराधी) वेभी छोडदेने योग्यहैं ॥१६३॥

यथार्पितान्पशून्गोपःसायंप्रत्यर्पयेत्तथा ।
प्रमादमृतनष्टांश्चप्रदाप्यःकृतवेतनः १६४

पद-यथाऽ-अर्पितान् २ पशून् २ गोपः १ सायंऽ-प्रत्यर्पयेत् क्रि- तथाऽ- प्रमादमृतनष्टान् २ चऽ- प्रदाप्यः १ कृतवेतनः १ ॥

योजना-गोपः यथार्पितान् पशून् तथा सायं प्रत्यर्पयेत् प्रमादमृतनष्टान् पशून् (ज्ञात्वा) कृतवेतनः गोपः प्रदाप्यः- (दंडनीयः)- ॥

तात्पर्यार्थ- गौओंके स्वामीनें प्रातःकाल जिस प्रकार गिनकर पशुअर्पण किये हो वैसेही सायंकालके समय गिनकर गोप गौओंके स्वामीको प्रत्यर्पण करे (सौंपदे) यदि अपने प्रमाद (अपराध) से पशु मरगये हों वा नष्ट हो गये होय तो वह गोप दंडकेयोग्यहै जिसका वेतन (नौकरी) नियत हो- वेतनकी कल्पना नारदनें कहीहै कि सौ गौओंकी रक्षा करनेवाले गोपको एक वत्सतरी (बछिया) और दोसौ गौओंके रक्षकको एक धेनु-आठवें दिन दुहना वर्षदिनमें भृति (नोकरी) होतीहै-प्रमादसे नाशभी मनुनें (अ० ८ श्लो० २३२) स्पष्ट कियां है कि नष्ट हुआ और कृमि (कीडे) योंका खाया कुत्तोंका मारा-विषम (ऊंचेसे गिरना आदि)में मरा- पुरुषार्थसे हीन-इतने प्रकारके पशुको पालही दे- और जो बलसे चोरोंनें चुराये होयतो पाल दंड देनेयोग्य नहीहै सोई मनु (अ०८ श्लो०२३३) नें कहाहै कि पराक्रमसे वा कहकर जो चोरोंने चुराया हो उसको पाल देनेयोग्य नहीहै-यदि देश और समयमें अपने स्वामीको कहदे- दैव और राजासे जो मरे हों उनके कान आदिको गोप दिखादे- क्योंकि मनुकी (अ० ८ श्लो० २३४) स्मृति है कि कान चाम केश बस्ति स्नायु-रोचना-पशुओंके इन सबको स्वामीको दे और मरेपर पशुओंके अंगोंको दिखादे ॥

भावार्थ- गौओंके स्वामीनें प्रातःकालके समय जैसे पशु गोपके अर्पण (आधीन) किये हो उसी प्रकार गोपभी सायंकालको गौओंके स्वामीको सौंपदे ॥ १६४ ॥

पालदोषविनाशेतुपालेदंडोविधीयते ।
अर्द्धत्रयोदशपणःस्वामिनोद्रव्यमेवच१७०

पद-पालदोषविनाशे ७ तुऽ-पाले ७दंडः १ विधीयते क्रि- अर्धत्रयोदशपणः १ स्वामिनः ६ द्रव्यं २ एवऽ-चऽ- ॥

योजना-तुपुनः पालदोषविनाशे सति पाले अर्धत्रयोदशपणः चपुनः स्वामिनः द्रव्यं दंडः विधीयते ॥

ता० भा०-यदि ग्वालियाके दोषसे पशु नष्ट हो जाय तो साढे तेरहपण दंड पालको

* कोई तो अर्द्ध त्रयोदश पणसे आधेसे रहित साढे बारह पण लेते हैं क्योंकि उत्तरपदलोपी कर्मधारय समास है (अर्द्धरहित स्त्रयोदशपणः अर्द्धत्रयोदशपणः) जो विज्ञा-

१ गवां शताद्वत्सतरी धेनुः स्याद्द्विशताद्भृतिः । प्रतिसंवत्सरं गोपे संदोहश्चाष्टमेहनि ।

२ नष्टं जग्धं च कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतं । हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ।

१ विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति । यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ।

२ कर्णौ चर्म च वालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनां पशुषु स्वामिनो दद्यान्मृतेष्वङ्कानि दर्शयेत् ।

और मध्यस्थ (सामंत)के निश्चय किये नष्ट हुये पशुओंका मूल्य स्वामीको ग्वालिया दे १६५ ॥

ग्रामेच्छयागोप्रचारोभूमीराजवशेनवा ।
द्विजस्तृणैधःपुष्पाणिसर्वतःसर्वदाहरेत् ॥

पद-ग्रामेच्छया ३ गोप्रचारः १ भूमिः १ राजवशेन ३ वाऽ- द्विजः १ तृणैधः-पुष्पाणि २ सर्वतःऽ-सर्वदाऽ- आहरेत् क्रि-॥

योजना-ग्रामेच्छया वा राजवशेन गोप्रचारः भूमिः (कर्तव्यः) द्विजः तृणैधःपुष्पाणि सर्वतः सर्वदा आहरेत् (गृह्णीयात्)॥

तात्पर्यार्थ-ग्रामके मनुष्योंकी इच्छासे वा राजाके वश (इच्छा)से गौओंके प्रचार (चरने)की भूमि करनी अर्थात् ग्रामकी अल्प वा अधिक भूमिके अनुसार गौओंके चुगनेके लिये कुछ भूमिका भाग विना जुता छोडदेना- और ब्राह्मण-तृण-काष्ठ-पुष्प इनको सबकालमें सब स्थानोंसे ऐसे ग्रहण करे जैसे अपनेको ग्रहण करतेहैं- फल तो वेही ग्रहण करै जो अपरिवृत (विना वाड) हो क्योंकि गौतमका वचन है कि गौ और अग्निके लिये तृण और काष्ठ-लता और वनस्पतियोंके पुष्प इनको तो अपनेके समान ग्रहण करै- और फल तो उनकेही ले जो वाड किये वृक्ष न हो- यहभी परिगृहीत (मिला)के विषयमें है क्योंकि जो नैश्वरने अर्द्ध अधिक त्रयोदशपणका दंड कहाहै वह त्यागनेपोग्यहै सार्द्धद्विमात्र आदिमें अर्द्धत्रिमात्र आदिका प्रयोग महाभाष्यकारने किया है ॥

१ गोग्न्यर्थे तृणमेधांसि वीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् ।

परिगृहीत नहीं उसमें तो ब्राह्मणसे भिन्नकाभी स्वत्व परिग्रहसेंही सिद्ध है जैसे गौतमनेंही कहाहै कि अंश-क्रय-विभाग-परिग्रह-अधिगम इनसे स्वामी होताहै- और जो यह कहाहै कि तृण वा काष्ठ-पुष्प वा फल इनको विना पूछे जो ग्रहण करै वह हाथ छेदनके योग्य होताहै वह वचन द्विजोंसे भिन्नोंके विषयमें है वा विना आपत्तिके विषयमें है- अथवा गौ आदिसे भिन्नके विषयमें है॥

भावार्थ-ग्रामकी वा राजाकी इच्छासे गौओंके चुगनेके लिये विना जुती भूमि छोड देनी- ब्राह्मण-तृण-काष्ठ-पुष्प-इनको सबस्थानोंसे सबकालमें अपनेकी समान ग्रहण करे ॥ १६६ ॥

धनुःशतंपरीणाहोग्रामेक्षेत्रांतरंभवेत् ।
द्वेशतेखर्वटस्यस्यान्नगरस्यचतुःशतम् १६७

पद-धनुःशतम् १ परीणाहः १ ग्रामे ७ क्षेत्रांतरम् १ भवेत् क्रि-द्वे १ शते १ खर्वटस्य ६ स्यात् क्रि-नगरस्य ६ चतुःशतम् १

योजना-ग्रामे क्षेत्रान्तरं धनुःशतम् परीणाहः भवेत्- खर्वटस्य द्वेशते-नगरस्य चतुःशतं परीणाहः स्यात् ॥

ता०भावार्थ-ग्राम और क्षेत्रका अंतर (बीच) सौ धनुष परीणाह (प्रमाण)का उत्तम चारों दिशा ओंमें करै-और खर्वट (जिसमें बहुत कांटेहों) ग्रामका अंतर दोसौ धनुष प्रमाणका होता है-जिसमें बहुत जन वसतेहों ऐसे नगर (सहर) और क्षेत्रका अंतर चारसौ धनुष प्रमाणका करना-॥

१ स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ।

२ तृणं वा यदि वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलम् । अनापृच्छन्हि गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति ।

इति स्वामिपालविवादप्रकरणम् ॥ १० ॥

अथास्वामिविक्रयप्रकरणम् ११

स्वंलभेतान्यविक्रीतंक्रेतुर्दोषोप्रकाशिते ।
हीनाद्रहोहीनमूल्येवेलाहीनेचतस्करः १६८

पद-स्वं २ लभेत क्रि -अन्यविक्रीतम् २ क्रेतुः ६ दोषः १ अप्रकाशिते ७ हीनात् ५, रहः ऽ-हीनमूल्ये ७ वेलाहीने ७ च ऽ-तस्करः १

योजना-अन्यविक्रीतं स्वं स्वामी लभेत अप्रकाशिते क्रेतुः दोषः भवति-हीनात् (द्रव्यागमरहितात्) रहः (एकांते) हीनमूल्ये, चपुनः वेलाहीने (कुसमये) क्रेता तस्करः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अब अस्वामिविक्रय नाम प्रकरणका आरंभ कहते हैं उसका लक्षण नारदनें यह कहा है कि सौंपा हुआ पराया द्रव्य-नष्ट हुआ मिला-वा चोरीकिया-जो सबके प्रत्यक्ष वेचा जाय उसको अस्वामिविक्रय कहते हैं-उसमें जो दंड होता है उसको कहते हैं-अपने द्रव्यको अन्य पुरुषके हाथसे विक्रीत (वेचा) देखे तो उसको ग्रहण कर पकडले क्योंकि विनास्वामीके जो विक्रय किया हो वह स्वत्वका हेतु नहीं होता-यहां विक्रीत (वेचा)का ग्रहण,दिये और सौंपे हुयेकेभी उपलक्षणके लिये है-क्योंकि वेभी अस्वामिविक्रीतके तुल्य हैं-इसीलिये कहा है कि विना स्वामी विक्रय-दान-आधि (गिरवी) इनको लौटादे अर्थात् सत्य न समझे-यदि क्रेता (लेनेवाला) अपने क्रय्य (खरीदनाको) प्रकाश न करे तो क्रेताका अपराध होता है-तैसेही-द्रव्यके आगमसे हीनके क्रयसे-और एकांतमें और अल्प मोलसे और वेलासे हीन (कुसमय) कालमें अर्थात् रात्रि आदिमें क्रय करे (खरीदे) तो क्रेता (लेनेवाला) तस्कर (चोर) होता है चोरके दंड योग्य होता है-सोई कहा है कि विना स्वामीके विक्रय किये द्रव्यको जो प्राप्त हो (ले) उस द्रव्यको स्वामी लेसकता है-सबको प्रकाश करके लेनेसे क्रेताकी शुद्धि होती है और एकांतमें खरीदनेसे चोरी होती है ॥

भावार्थ-अन्यके विक्रय किये अपने द्रव्यको स्वामी ग्रहण करले-क्रेता उसका प्रकाश न करे तो क्रेताका अपराध है-यदि वह द्रव्य संचयके उपायसे हीन हो वा एकांतमें लियाहो अथवा हीन (कम) मूल्यसे लिया हो वा समयसे हीन (रात्रिआदि)में लिया होयतो क्रेता (मोल लेनेवाला)तस्कर (चोर) होता है ॥ १६८ ॥

नष्टापहृतमासाद्यहर्तारंग्राहयेन्नरम् ।
देशकालातिपत्तौचगृहीत्वास्वयमर्पयेत् ॥

पद-नष्टापहृतं २ आसाद्य ऽ- हर्तारं २ ग्राहयेत् क्रि- नरम् २ देशकालातिपत्तौ ७ च ऽ- गृहीत्वा ऽ- स्वयं ऽ- अर्पयेत् क्रि- ॥

योजना-नष्टापहृतं आसाद्य हर्तारं नरं ग्राहयेत्-चपुनः देशकालातिपत्तौ स्वयं गृहीत्वा अर्पयेत्-

तात्पर्यार्थ-स्वामीनें किया है अभियोग जिसपर ऐसा क्रेता यह करे कि नष्ट और चुराये हुये अन्यके द्रव्यको मोल लेकर क्रेता, विक्रेता (वेचनेवाला) मनुष्यको चोरोंके पकडनेवालोंको पकडवादे-क्योंकि इससे अपनी शुद्धि और राजदंडका अभाव-होगा-यदि विक्रेता अज्ञात देश चला गयाहो वा कालांतरमें मरगया हो मूल (जड)के लानेमें असामर्थ्यसे

१ निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वापहृत्य वा । विक्रीयते ऽसमक्षं यत् स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ।

२ अस्वामिविक्रयं दानमाधिं च विनिवर्तयेत् ।

१ द्रव्यमस्वामिविक्रीतं प्राप्य स्वामी । प्रकाशक्रयतः शुद्धिः क्रेतुः स्तेयं रहःक्रय

रोचनो

ताके विना दिखायेही उस धनको स्वयंही नाष्टिक (जिसका द्रव्य नष्ट हुआ हो) के अर्पण करदे-इतनेसेही यह शुद्ध होता है-यह पूर्वोक्त संपूर्ण श्रीशंकराचार्यका अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि विक्रेताके दिखनेसें क्रेताकी शुद्धि होती है इस अग्रिम वचनके संग पुनरुक्ति (दुबाराकहना)दोष आवेगा-इससे इस वचनकी व्याख्या (अर्थ) अन्यथा करते हैं-कि नाष्टिक, प्रत्यय, वा किसीके उपदेशसे नष्ट और चुराये अपने द्रव्यको क्रेताके हाथमें देखकर उस हरन (क्रय) करने वालेको स्थानपाल (चौकीदार) आदिको ग्रहण करादे (पकडवाय दे) यदि देश वा कालका अतिपत्ति (अतिक्रम वा बीतना) होता जाने और स्थानपाल आदि समीपमें न होंयतो और उनके विज्ञापन (जनाने)से पहिले उस क्रेताके पलायन (भाजना)की शंका होयतो आपही ग्रहण करके स्थानपाल आदिके अर्पण करदे ॥

भावार्थ-नष्ट और चुराये अपने द्रव्यको देखकर क्रेता मनुष्यको स्थानपाल आदिको ग्रहण करादे यदि देश वा कालका अतिक्रम होयतो स्वयंही पकडकर अर्पण करदे॥

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिःस्वामीद्रव्यंनृपोदमम्।
क्रेतामूल्यमवाप्नोतितस्माद्यस्तस्यविक्रयी॥

पद-विक्रेतुः ६ दर्शनात् ५ शुद्धिः १ स्वामी १ द्रव्यं २ नृपः १ दमम् २ क्रेता १ मूल्यं २ अवाप्नोति क्रि-तस्मात् ५ यः १ तस्य ६ विक्रयी १ ॥

योजना-विक्रेतुः दर्शनात् क्रेतुः शुद्धिः भवति-यः तस्य विक्रयी तस्मात् स्वामी स्वद्रव्यं-नृपः दमं-क्रेता मूल्यं अवाप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ-चौरके पकडवाय देनेपर यह यदि वह पकडा हुआ क्रेता यह कहे कि मैं यह नहीं चुराया किंतु अन्यके सकाशसे क्रीत किया (खरीदा) है वह यदि क्रेता विक्रय करनेवालेको दिखा दे तो उसकी शुद्धि होती है अर्थात् फिर वह अभियोग करनेके योग्य नहीं है-किंतु क्रेताके दिखाये उस विक्रेताके संग नाष्टिकका विवाद है सोई बृहस्पतिने कहा है कि मूलके ला देनेपर कदाचित्भी अभियोग (दावा) न करे किंतु फिर नाष्टिकका विवाद मूलके संग होताहै यदि उस विवादमें विना स्वामीके बेचनेका निश्चय होजाय तो उस नष्ट वा चुराये हुये द्रव्यका जो विक्रेता है उसके सकाशसे स्वामी (नाष्टिक) अपने द्रव्यको और राजा अपराधके अनुसार दंडके धनको-और क्रेता अपने मूल्यको-प्राप्त होताहै-यदि देशांतर (परदेश)में गया होय तो उसके लानेके लिये योजनोंकी संख्यासे समय देदेना योग्यहै-क्योंकि यह स्मृतिहै कि यातो प्रकाश करके क्रय करे (बेचे) वा मूल (जड)को अर्पण करदे और मार्गकी संख्यासे वहां मूलके लानेका समय देने योग्यहै-यदि विना जाना देश होनेसे मूलको न लासके तो क्रय (खरीदना)को शोधन करकेही शुद्ध होता है क्योंकि यह वचनहै कि जिसका मूल न आसके वहां क्रयकी ही शुद्धि करे अर्थात् यह प्रकट करदे कि इनके सामने मैं खरीदाहै-और जब साक्षी आदिसे वा दिव्यप्रमाणसे अपने क्रयको शुद्ध न करे और मूलकोभी न दिखावे तो वही दंडका

१ मूले समाहृते क्रेता नाभियोज्यः कथंचन। मूलेन सह वादस्तु नाष्टिकस्य विधीयते ॥

२ प्रकाशं वा क्रयं कुर्यान्मूलं वापि समर्पयेत्। मूलानयनकालश्च देयस्तत्राध्वसंख्यया ॥

३ असमाहार्यमूलस्तु क्रयमेव विशोधयेत्।

अथास्वामिविक्रयप्रकरणम् ११

स्वंलभेतान्यविक्रीतंक्रेतुर्दोषोप्रकाशिते ।
हीनाद्रहोहीनमूल्येवेलाहीनेचतस्करः १६८

पद–स्वं २ लभेत क्रि –अन्यविक्रीतम् २ क्रेतुः ६ दोषः १ अप्रकाशिते ७ हीनात् ५, रहः ऽ–हीनमूल्ये ७ वेलाहीने ७ च ऽ–तस्करः १

योजना–अन्यविक्रीतं स्वं स्वामी लभेत अप्रकाशिते क्रेतुः दोषः भवति–हीनात् (द्रव्यागमरहितात्) रहः (एकांते) हीनमूल्ये, चपुनः वेलाहीने (कुसमये) क्रेता तस्करः भवति ॥

तात्पर्यार्थ–अब अस्वामिविक्रय नाम प्रकरणका आरंभ कहते हैं उसका लक्षण नारदेनें यह कहा है कि सौंपा हुआ पराया द्रव्य–नष्ट हुआ मिला–वा चोरीकिया–जो सबके प्रत्यक्ष बेचा जाय उसको अस्वामिविक्रय कहते हैं–उसमें जो दंड होता है उसको कहते हैं–अपने द्रव्यको अन्य पुरुषके हाथसे विक्रीत (बेचा) देखे तो उसको ग्रहण कर पकडले क्योंकि विनास्वामीके जो विक्रय किया हो वह स्वत्वका हेतु नहीं होता–यहां विक्रीत (बेचा)का ग्रहण, दिये और सौंपे हुयेकेभी उपलक्षणके लिये है–क्योंकि येभी अस्वामिविक्रीतके तुल्य हैं–इसीलिये कहा है[2] कि विना स्वामी विक्रय–दान–आधि (गिरवी) इनको लौटादे अर्थात् सत्य न समझे–यदि क्रेता (लेनेवाला) अपने क्रय्य (खरीदनाको) प्रकाश न करे तो क्रेताका अपराध होता है–तैसेही–द्रव्यके आगमसे हीनके क्रयसे–और एकांतमें और अल्प मोलसे और वेलासे हीन (कुसमय) कालमें अर्थात् रात्रि आदिमें क्रय करे (खरीदे) तो क्रेता (लेनेवाला) तस्कर (चोर) होता है चोरके दंड योग्य होता है–सोई कहा है कि विना स्वामीके विक्रय किये द्रव्यको जो प्राप्त हो (ले) उस द्रव्यको स्वामी लेसकता है–सबको प्रकाश करके लेनेसे क्रेताकी शुद्धि होती है और एकांतमें खरीदनेसे चोरी होती है ॥

भावार्थ–अन्यके विक्रय किये अपने द्रव्यको स्वामी ग्रहण करले–क्रेता उसका प्रकाश न करे तो क्रेताका अपराध है–यदि वह द्रव्य संचयके उपायसे हीन हो वा एकांतमें लियाहो अथवा हीन (कम) मूल्यसे लिया हो वा समयसे हीन (रात्रिआदि)में लिया होयतो क्रेता (मोल लेनेवाला)तस्कर (चोर) होता है ॥ १६८ ॥

नष्टापहृतमासाद्यहर्तारंग्राहयेन्नरम् ।
देशकालातिपत्तौचगृहीत्वास्वयमर्पयेत् ॥

पद–नष्टापहृतं २ आसाद्य ऽ– हर्तारं २ ग्राहयेत् क्रि– नरम् २ देशकालातिपत्तौ ७ च ऽ– गृहीत्वा ऽ– स्वयं ऽ– अर्पयेत् क्रि– ॥

योजना–नष्टापहृतं आसाद्य हर्तारं नरं ग्राहयेत्–चपुनः देशकालातिपत्तौ स्वयं गृहीत्वा अर्पयेत्–

तात्पर्यार्थ–स्वामीनें किया है अभियोग जिसपर ऐसा क्रेता यह करै कि नष्ट और चुराये हुये अन्यके द्रव्यको मोल लेकर क्रेता, विक्रेता (बेचनेवाला) मनुष्यको चोरोंके पकडनेवालोंको पकडवादे–क्योंकि इससे अपनी शुद्धि और राजदंडका अभाव–वामोंहोंगे–यदि विक्रेता अज्ञात देशमें चला गयाहो या कालांतरमें मरगया होय मूल (जड)के लानेमें असामर्थ्यसे शोधना

१ निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वापहृत्य वा। विक्रीयते समक्षं यत् स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ।

२ अस्वामिविक्रयं दानमाधिं च विनिवर्तयेत् ।

१ द्रव्यमस्वामिविक्रीतं प्राप्य स्वामी ... प्रकाशक्रयतः शुद्धिः क्रेतुः स्तेयं रहःक्रयात् ।

ताके विना दिखायेही उस धनको स्वयंही नाष्टिक (जिसका द्रव्य नष्ट हुआ हो) के अर्पण करदे–इतनेसेही यह शुद्ध होता है–यह पूर्वोक्त संपूर्ण श्रीशंकराचार्यका अर्थ ठीक नही है क्योंकि विक्रेताके दिखानेसे क्रेताकी शुद्धि होती है इस अग्रिम वचनके संग पुनरुक्ति (दुबाराकहना)दोष आवेगा–इससे इस वचनकी व्याख्या (अर्थ) अन्यथा करते हैं–कि नाष्टिक, प्रत्यय, वा किसीके उपदेशसे नष्ट और चुराये अपने द्रव्यको क्रेताके हाथमें देखकर उस हरन (क्रय) करने वालेको स्थानपाल (चौकीदार) आदिको ग्रहण करादे (पकडवाय दे) यदि देश वा कालका अतिपत्ति (अतिक्रम वा वीतना) होता जाने और स्थानपाल आदि समीपमें न होंयतो और उनके विज्ञापन (जनाने)से पहिले उस क्रेताके पलायन (भाजना)की शंका होयतो आपही ग्रहण करके स्थानपाल आदिके अर्पण करदे ॥

भावार्थ–नष्ट और चुराये अपने द्रव्यको देखकर क्रेता मनुष्यको स्थानपाल आदिको ग्रहण करादे यदि देश वा कालका अतिक्रम होयतो स्वयंही पकडकर अर्पण करदे॥

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिःस्वामीद्रव्यंनृपोदमम्।
क्रेतामूल्यमवाप्नोतितस्माद्यस्तस्यविक्रयी॥

पद–विक्रेतुः ६ दर्शनात् ५ शुद्धिः १ स्वामी १, द्रव्यं २ नृपः १, दमम् २, क्रेता १, मूल्यं २ अवाप्नोति क्रि–तस्मात् ५ यः १ तस्य ६ विक्रयी १ ॥

योजना–विक्रेतुः दर्शनात् क्रेतुः शुद्धिः भवति–यः तस्य विक्रयी तस्मात् स्वामी स्वद्रव्यं–नृपः दमं–क्रेता मूल्यं अवाप्नोति ॥

भावार्थ–चोरके पकडवाय देनेपर यह यदि वह पकडा हुआ क्रेता यह कहे कि मैं यह नही चुराया किंतु अन्यके सकाशसे क्रीत किया (खरीदा) है वह यदि क्रेता विक्रय करनेवालेको दिखा दे तो उसकी शुद्धि होती है अर्थात् फिर वह अभियोग करनेके योग्य नही है–किंतु क्रेताके दिखाये उस विक्रेताके संग नाष्टिकका विवाद है सोई बृहस्पतिने कहा है कि मूलके[1] ला देनेपर कदाचित्भी अभियोग (दावा) न करे किंतु फिर नाष्टिकका विवाद मूलके संग होताहै यदि उस विवादमें विना स्वामीके बेचनेका निश्चय होजाय तो उस नष्ट वा चुराये हुये द्रव्यका जो विक्रेता है उसके सकाशसे स्वामी (नाष्टिक) अपने द्रव्यको और राजा अपराधके अनुसार दंडके धनको–और क्रेता अपने मूल्यको–प्राप्त होताहै–यदि देशांतर (परदेश)में गया होय तो उसके लानेके लिये योजनोंकी संख्यासे समय देदेना योग्यहै–क्योंकि यह स्मृतिहै कि यातो[2] प्रकाश करके क्रय करे (बेचे) वा मूल (जड)को अर्पण करदे और मार्गकी संख्यासे वहां मूलके लानेका समय देने योग्यहै– यदि विना जाना देश होनेसे मूलको न लासके तो क्रय (खरीदना)को शोधन करकेही शुद्ध होता है क्योंकि यह वचनहै कि जिसका मूल न आसके[3] वहां क्रयकी ही शुद्धि करे अर्थात् यह प्रकट करदे कि इनके सामने मैं खरीदाहै– और जब साक्षी आदिसे वा दिव्यप्रमाणसे अपने क्रयको शुद्ध न करे और मूलकोभी न दिखावे तो वही दंडका

१ मूले समाहृते क्रेता नाभियोज्यः कथचन। मूलेन सह वादस्तु नाष्टिकस्य विधीयते ॥

२ प्रकाशं वा क्रयं कुर्यान्मूलं वापि समर्पयेत्। मूलानयनकालश्च देयस्तत्राध्वसंख्यया ॥

३ असमाहार्यमूलस्तु क्रयमेव विशोधयेत्।

भागी होताहै क्योंकि यह मनुका वचनहै कि जो मूलको न लासके और न क्रयको शुद्ध करे तो अभियोगके अनुसार धनीको धन और राजाको दंड दे ॥

भावार्थ–विक्रेताके दिखानेसे क्रेताकी शुद्धि होती है–और जो उस द्रव्यका विक्रय करनेवाला है उसीसे स्वामी अपने नष्ट द्रव्य-को और राजा दंडको क्रेता मोलको प्राप्त होते हैं ॥ १७० ॥

आगमेनोपभोगेननष्टंभाव्यमतोन्यथा ।
पंचबंधोदमस्तस्यराज्ञेतेनाविभाविते १७१

पद–आगमेन ३–उपभोगेन ३ नष्टं १ भाव्यं १ अतः ऽ–अन्यथा ऽ–पंचबंधः १ दमः १ तस्य ६–राज्ञे ४ तेन ३ अविभाविते ७ ॥

योजना–स्वामिना – आगमेन उपभोगेन नष्टं भाव्यं (साध्यं) अतः अन्यथा तेन अविभाविते सति तस्य (धनस्य) पंचबंधः दमः राज्ञे देयः नाष्टिकेणेति शेषः–

तात्पर्यार्थ–आगम (रिक्थक्रय आदि) से उपभोगसे अर्थात् मेरा यह द्रव्य है वह इस प्रकार नष्ट हुआ वा चुराया है इनको धनका स्वामी सिद्ध करे–इससे अन्यथा अर्थात् वह धनका स्वामी सिद्ध न करसके तो नष्ट हुये द्रव्यका पांचवां भाग राजाको नाष्टिक दे–यहां यह क्रम समझना कि पहिला स्वामी नष्ट हुये द्रव्यको अपना सिद्ध करे–फिर क्रेता चोरीके दूर करनेके लिये और मोलके लाभार्थ विक्रेताको लावे–यदि न लासके तो अपने दोषकी निवृत्तिके लिये क्रय (खरीदना)को शुद्धकरके उस द्रव्यको नाष्टिकके अर्पण करदे॥

भावार्थ–धनका स्वामी आगम वा उपभोगसे नष्टको सिद्ध करे–यदि सिद्ध न करसके तो राजाको उस धनका पांचवां भाग दंड दे ॥ १७१ ॥

हृतंप्रनष्टंयोद्रव्यंपरहस्तादवाप्नुयात् ।
अनिवेद्यनृपेदंड्यःसतुषण्णवतिंपणान्१७२

पद–हृतं २ प्रनष्टं २ यः १ द्रव्यं २ परहस्तात् ५–अवाप्नुयात् क्रि–अनिवेद्य ऽ–नृपे ७ दंड्यः १ सः १ तु ऽ–षण्णवतिं २ पणान् २ ॥

योजना–यः हृतं प्रनष्टं द्रव्यं नृपे अनिवेद्य परहस्तात् अवाप्नुयात् सः षण्णवतिं पणान् दंड्यः ॥

ता० भा०–जो मनुष्य चुराये वा नष्ट हुये अपने द्रव्यको–इसने मेरा चुराया है यह राजाको निवेदन किये विना अभिमान आदिसे चोर आदिसे ग्रहण करता है वह छानवें (९६) पण दंड देनेके योग्य है क्योंकि यह चोरके छिपानेसे दुष्ट है ॥ १७२ ॥

शौल्किकैःस्थानपालैर्वानष्टापहृतमाहृतं ।
अर्वाक्संवत्सरात्स्वामीहरेतपरतोनृपः १७३

पद–शौल्किकैः ३ स्थानपालैः ३ वा ऽ–नष्टापहृतं २ आहृतं २ अर्वाक् २ संवत्सरात् ५ स्वामी १ हरेत क्रि–परतः ऽ–नृपः १॥

योजना–शौल्किकैः वा स्थानपालैः आहृतं नष्टापहृतं धनं संवत्सरात् अर्वाक् स्वामी हरेत परतः नृपः हरेत ॥

तात्पर्यार्थ–अब राजपुरुषोंके लाये द्रव्यके विषयमें कहते हैं–जब शुल्क (महसूल) के अधिकारी वा स्थानके रखवाले नष्ट हुये वा चुराये द्रव्यको राजाके समीप लावें वे यदि वर्षदिनसे पहिले लाये होंयतो उस द्रव्यका नाष्टिक ही प्राप्त होता है वर्षसे पीछे मिला होय तो राजा ग्रहण करे–और अपने पुरुषोंके लाये द्रव्यको जनके समूहमें उद्घोषण (ढं-

१ अनुपस्थापयन्मूलं क्रयं वाप्यविशोधयन् । यथाभियोगं धनिने धनं दाप्यो दमं च सः ।

डोरेसे प्रसिद्धि) करके उस द्रव्यको वर्षदिन-पर्यंत राजा रक्षा करे-सोई गौतमनें कहा है कि नष्ट है स्वामी जिसका ऐसे धनको प्राप्तहोकर राजाको निवेदन करै और राजा वर्षदिनतक उसकी रक्षाकरे जो मनुनें यह दूसरी विधि कही है कि (अ. ८ श्लोक ३०) नष्ट (अज्ञात) है स्वामी जिसका ऐसे द्रव्य-को राजा तीन वर्षतक रक्खे तीनवर्षसे प-हिले स्वामी आजाय तो वह ले और परै राजा ग्रहण करे-वह वेदपाठी और सदा-चारि ब्राह्मणके धनमें है-और रक्षाके निमित्त छठे भागका ग्रहण करनाभी मनुनें ही कहा है (अ. ८ श्लोक. ३३) कि नष्टहुआ मिला जो द्रव्य है उसमेंसे सत्पुरुषोंके धर्मका ज्ञाता राजा छठा दशवां वा बारहवां भाग ग्र-हण करे-इन भोगोंका लेना राजाको क्रमसे तीसरे दूसरे पहिले वर्षमें समझना-इसको विस्तारसे पहिले कह आये ॥

१ प्रणष्टस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्याप्य संवत्सरं राज्ञा रक्ष्यम् ।

२ प्रणष्टस्वामिकं द्रव्यं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् । अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परतो नृपतिर्हरेत् ।

३ आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः । दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ।

भावार्थ-शुल्कवाले वा स्थानके पाल (चौ-कीदार) इनका लाया जो नष्ट और चुराया द्रव्य वर्ष दिनसे पहिले मिले उसको स्वामी ग्रहण करे और वर्षदिनके पीछे राजा ग्रहण करले ॥ १७३ ॥

पणानेकशफेदद्याच्चतुरःपंचमानुषे ।
महिषोष्ट्रगवांद्वौद्वौपादंपादमजाविके १७४

पद-पणान् २ एकशफे ७ दद्यात् क्रि-चतुरः २ पंचर्मानुषे७ महिषोष्ट्रगवां ६ द्वौ २ द्वौ २ पादं २ पादं २ अजाविके ७ ॥

योजना-एकशफे चतुरः पणान् मानुषे पंच-महिषोष्ट्रगवां द्वौ-द्वौ अजाविके, पादं पादं दद्यात् ॥

ता०भावार्थ-अश्व आदि एक शफ (खुर)वाले नष्ट हुये मिलें तो उनकी रक्षाके निमित्त राजाको चार पण दे-मनुष्य जातिका द्रव्य होय तो पांच पण-अजा और भेडके विषय प्रत्येक पणका पाद-(चौथाई भाग) दे-महिष (भैसा) ऊंट गौ होंय तो प्रत्येक दो दो पण रक्षाके नि-मित्त राजाको दे-यद्यपि यहां अजाविकं यह समासभी है तथापि पादं पादं इस वीप्सा (दोवार पढना)से केवल प्रत्येकमें संबंध जाना जाता है ॥ १७४ ॥

इत्यस्वामिविक्रयप्रकरणम् ॥ ११ ॥

अथ दत्ताप्रदानिकप्रकरणम् १२

स्वंकुटुंबाविरोधेनदेयंदारसुतादृते ।
नान्वयेसतिसर्वस्वंयच्चान्यस्मैप्रतिश्रुतम् ॥

पद-स्वं १ कुटुंबाविरोधेन ३ देयम् १ दारसुतात् ५ ऋते ऽ-न ऽ-अन्वये ७ सति ७ सर्वस्वं १ यत् १ च ऽ- अन्यस्मै ४ प्रतिश्रुतम् १ ॥

योजना-कुटुंबाविरोधेन दारसुतात् ऋते स्वं देयम्-अन्वये सति सर्वस्वं चपुनः यत् अन्यस्मै प्रतिश्रुतम् तत् न देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-अब शास्त्रोक्त मार्गद्वयवाले दत्तानपाकर्म और दत्ताप्रदानिक नामके दानरूप व्यवहारके पदको कहते हैं-उसका स्वरूप नारदनें कहाहै कि जो असम्यक् (कुरीति)से द्रव्यको देकर फिर ग्रहण किया चाहै वह दत्ताप्रदानिक नाम व्यवहारका पद है-अर्थात् शास्त्रोक्तसे भिन्न मार्गसे द्रव्यको देकर फिर ग्रहण करनेकी इच्छा जिस विवादके मध्यमें हो वह दिये हुयेकाहै आप्रदान (फिर लौटाना) जिसमें दत्ताप्रदानिक व्यवहारका पद है-और उसका प्रतिपक्षी वह दत्तानपाकर्म व्यवहारका पद अर्थात् हुआ जो शास्त्रोक्त मार्गसे दिया हो-और दिये हुयेका पुनः आदान (ग्रहण)की इच्छा जिस विवादमें न हो-वह दत्तानपाकर्म कहाता है और वह देय (देनेयोग्य) अदेय (देने-अयोग्य) आदि भेदसे चार प्रकारका है-सोई नारदनें कहा है कि देय-अदेय-दत्त अदत्त-यह चार प्रकारका दानमार्ग व्यवहारमें जानना उनमें देय वह है जो अनिषिद्ध दानक्रियाके योग्य हो-अदेय वह है जो अपना स्व (धन) न हो वा निषिद्ध होनेसे दानके अयोग्य हो-जो सावधानीमें दिया लौटानेके अयोग्य हो वह दत्त कहाता है-अदत्त वह है जो लौटानेके योग्य हो इन सबका संक्षेपसे निरूपण करते हैं-

अपना स्व (धन) कुटुंबके अविरोधसे अर्थात् कुटुंबके पालनसे शेष जितना हो वह देय (देनेयोग्य) है सोई मनु (अ० ८ श्लो० ३५)में कुटुंबका पालन आवश्यक कहा है कि वृद्ध माता पिता-साध्वी भार्या-बालक पुत्र-इनका सौभी अकार्य करके पालन करै अर्थात् निंदित कर्मसेभी आजीविका करके इनका पालन करै यह मनुनें कहा है कुटुम्बके विरोधको न करके इससे एक प्रकारका अदेय दिखाया और स्वं दद्यात् (अपने द्रव्यको दे) इससे जो अपने स्व नही ऐसे अन्वाहित याचित आधि साधारण निक्षेप इन पांचोंको व्यतिरेकसे अदेय दिखाया और जो नारदनें आठ प्रकारका अदेय कहा है कि अन्वाहित याचित आधि साधारण निक्षेप पुत्र स्त्री सर्वस्व कठिनभी आपत्तिमें वर्तमान देहधारीको ये सात और आठमां वह जो दूसरेको देना कर रक्खा हो आचार्योंनें ये आठ अदेय कहे हैं यह नारदका वचन सब अदेयोंकी गिनतीके अभिप्रायसे है कुछ स्वत्वाभावके अभिप्रायसे नही क्योंकि पुत्र स्त्री सर्वस्व और प्रतिश्रुत इनमें स्वत्व है अन्वा-

१ दत्वा द्रव्यमसम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति । दत्ताप्रदानिकं नाम व्यवहारपदं हि तत् ॥

२ अथ देयमदेयं च दत्तं चादत्तमेव च । व्यवहारेषु विज्ञेयो दानमार्गश्चतुर्विधः ।

१ वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ।

२ अन्वाहितं याचितकमाधिः साधारणं च यत् । निक्षेपः पुत्रदारांश्च सर्वस्वं चान्वये सति ॥ आपत्स्वपि च कष्टासु वर्तमानेन देहिना । अदेयान्याहुराचार्या यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतं ।

हित आदिका स्वरूप पहिलेही विस्तारसे कह आये—स्वको दे इस पूर्वोक्त वचनसे स्त्री और पुत्रभी स्व हैं उनकाभी दान पाया उसका निषेध कहते हैं कि स्त्री और पुत्रके विना स्वको दे स्त्री पुत्रको न दे—तैसेही पुत्र पौत्र वंशमें होयतो सर्वस्व (सब धन) को नदे क्योंकि यह स्मृति है कि पुत्रोंकी उत्पत्ति और विवाह करके उनकी जीविकाको प्रबंध करे तैसेही अन्यको देनेकी प्रतिज्ञा किए हुए सुवर्ण आदि द्रव्यको अन्यको न दे ॥

भावार्थ—अपने कुटुंबकी पालनासे बचा धन स्त्री और पुत्रको छोडकर देने योग्य है अर्थात् स्त्री पुत्रको किसीको न दे और धन देने योग्य है—और अपना वंश होयतो सर्वस्वका दान न करे और अन्यको देनेकी प्रतिज्ञा किए धनको अन्यको न दे ॥ १७५ ॥

प्रतिग्रहःप्रकाशःस्यात्स्थावरस्यविशेषतः । देयंप्रतिश्रुतंचैवदत्वानापहरेत्पुनः ॥१७६॥

पद—प्रतिग्रहः १ प्रकाशः १ स्यात् क्रि—स्थावरस्य ६— विशेषतः ऽ— देयं २ प्रतिश्रुतं २ चऽ— एवऽ— दत्वाऽ— नऽ—अपहरेत् क्रि—पुनःऽ— ॥

योजना—सर्वस्य प्रतिग्रहः विशेषतः स्थावरस्य प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात् देयं चपुनः प्रतिश्रुतं दत्वा पुनः न अपहरेत ॥

तात्पर्यार्थ—स्त्रीपुत्रसे भिन्न देयको कहकर प्रसंगसे अब यह कहते हैं कि अदेय धनका ग्रहण प्रतिग्रह करनेवाला प्रकाश (सबके सामने) करे सब धनका प्रतिग्रह विवादकी निवृत्तिके लिये प्रकाश होकर करे और स्थावर धनकातो विशेषकर प्रकाशसेही प्रतिग्रह ले क्योंकि अपनेपै आए स्थावर धनको सुवर्ण आदिके समान दिखाय नही सकता— और देनेयोग्य और प्रतिश्रुत अर्थात् धर्मके अर्थ जो द्रव्य जिसको देना कहाहो वह उसको देय (देनेयोग्य)ही है यदि वह प्रतिग्रह लेनेवाला अपने धर्ममें स्थित रहे—यदि धर्मसे डिग जायतो फिर न दे क्योंकि गौतमकी यह स्मृति है कि प्रतिज्ञा करकेभी अधर्मसे युक्तको न दे—और न्यायके मार्गसे जो दिया हो उस सात प्रकारकेभी दिये धनका अपहरण (फिर लेना) न करे किंतु वैसाही माने—और जो अन्यायसे दिया हो उस सोलह प्रकारकेभी अदत्त धनको लौटा ले यह अर्थात् कही गयी—नारदने सात प्रकारके दत्त और सोलह प्रकारके अदत्तको कहकर दत्त और अदत्तका स्वरूप नारदमुनिनेही विवेचनासे कहा है कि क्रीतका जो मोल दियाहो—जिसने अपना काम किया उसको भृति (नोकरी) देना—तुष्टि (प्रसन्नता)से बंदीजन चारण आदिको जो दियाहो—स्नेहसे दुहिता पुत्र आदिको जो दियाहो—प्रत्युपकारसे अर्थात् अपने उपकारीको जो दियाहो—स्त्रीशुल्क अर्थात् विवाहके लिये कन्याकी ज्ञातिके मनुष्योंको जो दियाहो—जो अनुग्रह (अदृष्ट)के लिये दियाहो—सो यह सात प्रकारकाभी दत्त

१ पुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्य वृत्तिं चैषां प्रकल्पयेत् ।

१ प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ।

२ दत्तं सप्तविध प्रोक्तमदत्तं षोडशात्मकम् ।

३ पण्यमूल्य भृतिस्तुष्ट्या स्नेहात्प्रत्युपकारतः । स्त्रीशुल्कानुग्रहार्थं च दत्त दानविदो विदुः ॥ अदत्त तु भयक्रोधशोकवेदरुगन्वितैः । तथोत्कोचपरीहासव्यत्यासच्छलयोगतः ॥ बालमूढस्वतन्त्रार्त्तमत्तोन्मत्तापवर्जितं । कर्त्ता ममेद कर्मेति प्रतिलाभेच्छया च यत् । अपात्रे पात्रमित्युक्ते कार्ये वा धर्मसंयुते । यद्दत्तं स्यादविज्ञानादत्तमिति तद् स्मृतम् ॥

(दिया) धन लौटानेके योग्य नहीं है–भयसे जो बंदिग्राह आदिको दियाहो–क्रोधसे जो पुत्र आदिकेसंग वैरकी निवृत्तिके लिये अन्यको दियाहो पुत्र वियोग आदि शोकके निमित्त जो दियाहो–उत्कोचसे कार्यमें प्रतिबंध (रोक)की निवृत्तिके लिये जो राज्यके अधिकारियोंको दियाहो–परिहास (हंसी)से जो दियाहो–एक अपने द्रव्यको अन्यको दे और अन्यभी अपना द्रव्य उसकादे इसप्रकार दानके व्यत्यास (बदला)से जो दियाहो–छलके योगसे जैसे सामुद्रिकाके दानकी प्रतिज्ञाकरके और उन सौको सहस्र कहकरदे–बालक (सोलहवर्षसे कम)नें जो दियाहो–लोकवादके न जाननेवाले बालकनें जो दियाहो–अस्वतंत्र (पुत्र दास आदि)कादिया–आर्त (रोगी)का दिया–जो मत्तने दिया अर्थात् मदिरा आदि पदार्थ वा वातके उन्मादसे उन्मत्तनें जो दियाहो–और प्रतिलाभ (यह मेरा काम करेगा)की इच्छासे जो दियाहो चतुर्वेदी नहो और अपनेको चतुर्वेदी कहै उसको जो दियाहो–जो यज्ञ करूंगा यह कहकर धनको मांगकर द्यूत आदिमें लगावे उसको जो दियाहो–यह सोलह प्रकारकाभी दत्त अदत्त कहाता है क्योंकि यह सब प्रत्याहरण (लौटाना) के योग्य है–रोगीके दियेको जो अदत्त कहना है वह धर्मकार्यसे भिन्नके विषयमें है क्योंकि यह कात्यायनकी स्मृति है कि स्वस्थ वा रोगीनें धर्मके लिये जिसकी प्रतिज्ञा करली हो उसको विनादिये मरजायतो उसके पुत्रसे राजा दिवावे इसमें संशय नहीं–तैसेही यह संक्षिप्त अर्थवाला वचन सब विवादोंमें साधारण है (मनु अ.८श्लो.१६५) कि योग आधमन (गिरवी) विक्रीत (वेचा) योग दान प्रतिग्रह इनमें जिसकी उपाधि (सरत) देखे उस सबको निवृत्त करदे अर्थात् जिस उपाधिसे विक्रय दान प्रतिग्रह कियेहों उस उपाधिके बीतनेपर उन क्रय आदिको निवृत्त करदे (लौटादे) जो मनुष्य सोलह प्रकारकेभी अदत्त धनको ग्रहण करता है और जो देता है उनको दंड नारदनें कहै है कि जो लोभसे अदत्तको ग्रहण करता है और जो अदेयको देता है वह अदेयका दाता और प्रतिग्रह लेनेवाला दंडदेने योग्य है ॥

भावार्थ–प्रतिग्रहको और विशेषकर स्थावरके प्रतिग्रहको प्रकाश (सबके सामने) रीतिसे ले–जो जिसको देना कियाहो वह उसको देना–और देकर फिर न हरै (नले)॥

१ स्वस्थेनार्तेन वा दत्तं श्रावितं धर्मकारणात् । अदत्त्वा तु मृते दाप्यस्तत्सुतो नात्र संशयः ।

२ योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रह । यस्य चाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ।

३ गृह्णात्यदत्तं यो लोभाद्यश्चादेयं प्रयच्छति । अदेयदायको दण्ड्यस्तथा दत्तप्रतीच्छकः ।

इति दत्ताप्रदानिकं नाम प्रकरणम् ॥ १२ ॥

अथ क्रीतानुशयप्रकरणम् १३

दशैकपंचसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम् ।
बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसांपरीक्षणम् ॥

पद-दशैकपंचसप्ताहमास त्र्यहार्द्धमासिकं १ बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां ६ परीक्षणं १॥

योजना- बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां-दशैकपंचसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकं परीक्षणं ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-इसके अनंतर क्रीतानुशयको कहते हैं उसका स्वरूप नारदनें कहा है कि क्रेता (लेनेवाला) मोलसे पण्य (विकती वस्तु)को मोल लेकर स्वीकार न करै (नले) वह क्रीतानुशय नाम विवादका पद कहाता है उसमेंभी यह बात नारदनेंही कही है जिस दिन जो पण्य मोल लियाहो वह उसीदिन जोंकात्यों फेरनेयोग्य है कि यदि लेनेवाला मोलसे पण्यको खरीदकर उसको वह बुरा क्रीतकरा मानें तो उसीदिन विक्रय करनेवालेको जोंकात्यों देदे-द्वितीय आदि दिनके विषे लोटानेमें विशेष नारदनेंही कहा है-यदि-क्रेता दूसरे दिन देयतो मूलका तीसमां भाग विक्रेताको दे-और तीसरे दिन उससे दूना दे उससे परे वस्तु क्रेताकी होती है अर्थात् नहीं लेटाई जाती अर्थात् तीसरे दिनसे पीछे अनुशय न करना, यहभी-बीजसे भिन्न उपभोगकी नाश होनेयोग्य वस्तुके विषे समझना-बीज आदिके लेनेमें दूसरीही लोटानेकी विधि कहते हैं-कि व्रीहि आदि बीज-अय (लोहा) वाह्य (बैलआदि) रत्न (मोतीमूंगाआदि) स्त्री (दासी)दोह्य (महिषीआदि) पुरुष इन बीजआदिका क्रमसे दश दिन-एक दिन-पांच दिन-सात दिन-मास-तीन दिन-अर्द्धमास-(पक्ष) क्रमसे परीक्षाका काल जानना-यदि बीजआदिकी परीक्षा करनेसे दुष्टताका संदेह होयतो दशदिन आदिके विषयही क्रयकी निवृत्ति हो सकती है उससे परे नहीं यही इस उपदेशताका प्रयोजन है-जोती मनु (अ० ९ श्लो० २२२)का यह वचन है कि मोल लेकर वा देकर जिसको अनुशय (संदेह) होय वह दशदिनके भीतर उस द्रव्यको देदे और लेले-यह मनुका वचन पूर्वोक्त लोहआदिसे भिन्न भोगनेयोग्य और नाशमान-घर खेत यान शय्या आसन आदिके विषयमें है और यह पूर्वोक्त सब उसी वस्तुके विषयमें है जो परीक्षा करके न लीहो जो वस्तु परीक्षा करके फिर न लोटाऊंगा यह प्रतिज्ञा करके लीहो वह विक्रेताको फिर न लोटानी-सोई कहा है कि पहिले क्रेता विकती हुई वस्तुकी गुणदोषसे परीक्षा स्वयं करै यदि परीक्षा करके मोल ली होयतो फिर विक्रेताकी नहीं होती-

भावार्थ-बीजकी परीक्षाके दश-लोहेका एक-बैलआदिका पांच-और रत्नके सात दिन-दासीका एक मास-भैंसके तीन दिन-दासका एक पक्ष-परीक्षाका काल क्रमसे जानना ॥ १७७ ॥

अग्नौसुवर्णमक्षीणंरजतेद्विपलंशते ।
अष्टौत्रपुणिसीसेचताम्रेपंचदशायसि १८३

१ क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्य क्रेता न बहुमन्यते । क्रीतानुशय इत्येतद्विवादपदमुच्यते ॥

२ क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्य दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी । विक्रेतुः प्रतिदेय तत्तस्मिन्नेवाह्न्यविक्षत ॥

३ द्वितीयेह्नि ददत्क्रेता मूल्यात्रिंशांशमावहेत । द्विगुणं तु तृतीयेह्नि परतः क्रेतुरेव तत् ॥

१ क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् सोन्तर्दशाहात्तद्द्रव्य दद्याचैवाददीतव ।

२ क्रेता पण्यं परीक्षेत प्राक्स्वय गुणदोषतः । परीक्ष्याभिमत क्रीत विक्रेतुर्न भवेत्पुनः ।

अथाभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणम् ॥

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापिमुच्यते ।
स्वामीप्राणप्रदोभक्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि

पद– बलात् ५ दासीकृतः १ चौरैः ३ विक्रीतः १ च॰– अपि॰– मुच्यते क्रि– स्वामी १ प्राणप्रदः १ भक्तत्यागात् ५ तन्निष्क्रयात् ५ अपि॰– ॥

योजना–बलात् दासीकृतः चपुनः चौरैः विक्रीतः मुच्यते स्वामी प्राणप्रदः भक्तत्यागात्– तत निष्क्रयादपि मुच्यते ॥

तात्पर्यार्थ–अब अभ्युपेत्य अशुश्रूषा (स्वीकार करके सेवा न करना) नामका विवादपद कहनेका प्रारंभ करते हैं– उसका स्वरूप नारदनें कहाहै आज्ञा करनेको शुश्रूषा कहते हैं उसको स्वीकार करके पीछेसे जो संपादन नही करता वह अभ्युपेत्य अशुश्रूषा नामकविवाद पद कहाताहै शुश्रूषा करनेवाला पांच प्रकारका होताहै शिष्य अन्तेवासी–भृतक-अधिकर्मकृत्-दास उनमें पहिले चार कर्मकर कहातेहैं– और वे शुभकर्मके करनेवाले होतेहैं– और गृहजात आदि दास १५ पंद्रह प्रकारके होतेहैं और वे गृहका द्वार अशुद्धस्थान रथ्या (गली) अवस्कर (मलमूत्र) इनके शोधन आदि अशुभ कर्म करनेवाले होते हैं– सो यह सब नारदनें स्पष्ट कहाहै– कि शिष्य-अंतेवासी भृतक-चौथा अधिकर्मकृत् ये कर्म कर जानने और गृहदास जातआदि दास कहाते हैं– बुद्धिमानोंनें इन सबको सामान्य रीतिसे अस्वतंत्रता कहीहै– और जातिकर्म करना कहाहै और विशेषकर इनकी वृत्ति कर्मसेही कहीहै– शुभ और अशुभ भेदसे दो प्रकारका कर्म है दासका कर्म अशुभ हे और कर्मकरोंका शुभ कहाहै गृहका द्वार अशुद्धस्थान–रथ्या–अवस्कर इनका शोधन गुप्तअंगका स्पर्श–उच्छिष्ट–विष्ठा–मूत्र इनका ग्रहण और फेंकना और स्वामीकी इच्छानुसार अंगोंकी मन लगाकर सेवा करनी यह सब अशुभ कर्म जानना– उनमें वेदविद्या पढनेवालोंको शिष्य और शिल्प विद्या पढनेवालेको अन्तेवासी कहतेहैं– मोल लेकर जो कर्म करै उसे भृतक– और कर्मकरनेवालोंका जो अधिष्ठाता (जमादार) उसे अधिकर्मकृत् कहते हैं–उच्छिष्ट फेंकनेका जो गड्ढा उसे अशुचिस्थान–और गृहके मार्जन आदिकी धूलि जहां फेंकी जाय उसे अवस्कर कहते हैं स्यागको उजल कहते हैं–भृतक तीन प्रकारका होता है–सोई कहा हैं कि आयुधको जो धारै उसे उत्तम और खेतीका कर्ता मध्यम और भारले जानेवाला अधम ऐसे तीन प्रकारका भृतक होता है–और दास १५ पंद्रह प्रकारका होता है–गृहजात–क्रीत–लब्ध–दायागत–अनाकालभृत्– आहित– ऋणमोक्षित–युद्ध प्राप्त–पणमें जीता–मैंतेराहूं यह कह कर

१ अभ्युपेत्य तु शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते। अशुश्रूषाभ्युपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते ॥

२ शुश्रूषकः पंचविधः शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः। चतुर्विधः कर्मकरस्तेषां दासास्त्रिपंचकाः। शिष्यान्तेवासिभृतकाश्चतुर्थस्त्वधिकर्मकृत्। एते कर्मकरा ज्ञेया दासास्तु गृहजातयः ॥ सामान्यमस्वतंत्रत्वमेषामाहुर्मनीषिणः ॥ जातिकर्मकरस्तूक्तो विशेषो वृत्तिरेव च। कर्मापि द्विविधं ज्ञेयमशुभं शुभमेव च ॥ अशुभं दासकर्मोक्तं शुभं कर्मकृतां स्मृतं । गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्करशोधनं ॥ गुह्यांगस्पर्शनोच्छिष्टविण्मूत्रग्रहणोज्झनं । इच्छतः स्वामिनश्चांगैरुपस्थानमथांततः ॥ अशुभं कर्म विज्ञेयं शुभमन्यदतः परं ।

१ उत्तमस्त्वायुधीयोऽत्र मध्यमस्तु कृषीवलः। अधमो भारवाही स्यादित्येवं त्रिविधो भृतः ।

२ गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः अनाकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः ॥ मोक्षितो महतश्चर्णाद्युद्धप्राप्तः पणेजितः। तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहृतः । विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पंचदश स्मृताः ॥

आया-प्रव्रज्यावसित-कृत-भक्तदास-वड-वाहृत-आत्मविक्रेता-इनमें गृहकी दासीमें जो पैदा होय उसे गृहजात-मोल लियेको क्रीत-प्रतिग्रहसे मिलेको लब्ध-दायसे मिले-अर्थात् पिता आदिके दासको दायागत कहते हैं-दुर्भिक्षमें दास बनानेकेलिये मरनेसे जिसकी रक्षाकी होवह अकालभृत स्वामीनें धन देकर जिसे आधिकर लिया हो उसे आहित-ऋण देकर जो दासभावको प्राप्त किया हो वह ऋणदास संग्राममें जो जीतकर ग्रहण हो वह युद्धप्राप्त-यादि इस विवादमें जो मैं पराजित हूंगा तो तेरा दास बनजाऊंगा-इस प्रतिज्ञा करके जो जूआमें जीता हो वह पणेजित-और-मैं तेरा दास रहूंगा यहकहकर जो आया हो वह तवाहं उपगत कहा है-संन्याससे जो पतित हो जाय उसे प्रव्रज्यावसित-इतने काल पर्यंत मैं दास रहूंगा यह स्वीकार करके जो रहाहो वह कृत-सब काल भोजनके लिये जो दास हुआ हो वह भक्तदास-वडवा गृहदासीको कहते हैं लोभसे उसको विवाहकर जो दास बनाहो वह वडवाहृत-जो अपनी आत्माको बेचदे वह आत्मविक्रेता-होता है-इस प्रकार पंद्रह प्रकारके दास होते हैं जो मनुनें (अ० ८ श्लो० १३०) सात प्रकारको कहा है कि-ध्वजाहृत-(युद्धमें जीता) भक्तदास गृहजात क्रीत दत्त्रिम-पैत्रिक दण्डदास ये सात दासयोनि कहाते हैं-वह वचन सातोंको दास कहनेके लिये है कुछ *निवृत्तीके लिये नहीं-उन शिष्य अन्तेवासी* भृतक अधिकर्मकर दासोंके मध्यमें शिष्यकी वृत्ति पहिलेही यह कही है कि गुरुके बुलानेसे पढे और जो मिले वह गुरुके निवेदन करे-और अधिकर्म भृत्योंकी वृत्ति वेतनादान प्रकरणमें कहेंगे कि जो जितना काम करे उतनाही उसको वेतन दे-बलके जोरसे जो दास किया हो और चोरोंने चुराकर जो बचाहो और अपिशब्दसे आधि (गिरवी) किया और दत्त लेना इतने दास-दासपनेसे छुट सकते हैं यदि स्वामी न छोडे तो राजा छुडादे-सोई नारदनें कहा है कि चोरोंने चुराकर बेचा-और बलसे दास जो बनायाहो-उनको राजा छुडादे क्योंकि उनमें दासभाव नहीं होता-चोर और व्याघ्रोंसे यके स्वामीके प्राणोंकी जो रक्षा करे वहभी छुडाने योग्य हैं यह दासनिवृत्तिका कारण सब दासोंके लिये समान है-क्योंकि नारदकी यह स्मृति है कि जो कोई इन दासोंमें स्वामीको प्राणसंशयसे छुडावे वह दासभावसे छुटता है और पुत्रके भागको प्राप्त होता है-भक्तदास आदिकोंका प्रातिस्विक (पृथक्२)भी मोक्षका कारण कहते हैं कि अकालमें पाला-और भक्तदास ये दोनों भक्तके त्याग (देना)से अर्थात् दासभावसे लेकर जितना स्वामीका द्रव्य खायाहो उतना देकर छुटते हैं-और आहित और ऋणदास ये उसके निष्क्रय (मोल) देनेसे अर्थात् जितना धन लेकर स्वामीनें आधि कियाहो और उत्तमर्णको जितना द्रव्य लेकर ऋणसे छुटायाहो-वृद्धिसहित उतने द्रव्यके देनेसे छुटते हैं-नारदनें वि-

१ ध्वजाहृतो भक्तदासगृहजः क्रीतदत्त्रिमौ। पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः॥

२ आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्।

१ यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनं।

२ चौरापहृतविक्रीता ये च दासीकृता बलात्। राज्ञा मोचयितव्यास्ते दास्यं तेषु हि नेष्यते।

३ यो वैषां स्वामिनं कश्चिन्मोचयेत्प्राणसंशयात्। दासत्वात्स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत च।

४ अनाकालभृतो दास्यान्मुच्यते गोयुगं ददत्। सभक्षितं यद्दुर्भिक्षे न तच्छुध्येत कर्मणा। भक्तस्योत्क्षेपणात्सद्यो भक्तदासः प्रमुच्यते। आहितोपि धनं दत्त्वा स्वामी यद्येनमुद्धरेत्। ऋणं तु सोदयं दत्त्वा ऋणी दास्यात्प्रमुच्यते।

अथसंविद्व्यतिक्रमप्रकरणम् १९

**राजाकृत्वापुरेस्थानंब्राह्मणान्न्यस्यतत्रतु ।
त्रैविद्यंवृत्तिमद्ब्रूयात्स्वधर्मःपाल्यतामिति ॥**

पद–राजा १ कृत्वा०– पुरे ७ स्थानं २ ब्राह्मणान् २ न्यस्य०–तत्र०–तु०–त्रैविद्यं २ वृत्तिमत् १ ब्रूयात् क्रि– स्वधर्मः १ पाल्यतां क्रि– इति०–॥

योजना–राजा पुरे स्थानं कृत्वा तुपुनः तत्र ब्राह्मणान् न्यस्य–तद् ब्राह्मणव्रातं त्रैविद्यं वृत्तिमत् कृत्वा–स्वधर्मः पाल्यतां इति तान् प्रति ब्रूयात्–(प्रार्थयेत्) ॥

तात्पर्यार्थ–अब संवित्के व्यतिक्रम (लंघन)को कहते हैं उसका लक्षण नारदने निषधके द्वारा दिखाया है कि पाखंडी (वेदमार्गके विरोधी व्यापारके कर्ता) नैगम (वेदके अनुकूल) आदिपदसे वेदत्रयीके ज्ञाता–इनकी जो अपने २ स्वरूपमें स्थिति उसको समय कहते हैं समयका जो अनपाकर्म(दूर न करना)वह विवादका पद कहाता है इस प्रकार पारिभाषिक धर्मसे जो व्यवस्था उसको समय कहते हैं उसके अनपाकर्म (नलंघना) अर्थात् समयकी पालना करना–उससे जो डिगना वह विवादका पद होता है–

राजा अपने दुर्ग आदि पुरमें धवल (सपेद) घर आदि स्थानको बनाकर और उस घरमें ब्राह्मणोंको नियत करके और उन ब्राह्मणोंके समूहको त्रैविद्य (तीन-वेदोंसे युक्त) और वृत्तिमत् (बहुतसे सुवर्ण आदिकी जीविकासे युक्त) करके उनके प्रति यह प्रार्थना करे कि आप श्रुति और स्मृतिमें कहा वर्ण और आश्रमोंका जो धर्म उसका प्रचार करो॥

भावार्थ–राजा अपने दुर्ग (किला)में स्थान बनाकर उसमें तीन वेदोंके ज्ञाता और जीविकासे युक्त ब्राह्मणोंको रखकर उनको यह कहे कि आप अपने धर्मको करें ॥ १८५ ॥

**निजधर्माविरोधेनयस्तुसामयिकोभवेत् ।
सोपियत्नेनसंरक्ष्योधर्मोराजकृतश्चयः॥१८६**

पद–निजधर्माविरोधेन ३ यः १ तु०–सामयिकः१ भवेत् क्रि– सः १ अपि०–यत्नेन ३ संरक्ष्यः १ धर्मः १ राजकृतः १ च०–यः १ ॥

योजना–तुपुनः यः निजधर्माविरोधेन सामयिकः भवेत् चपुनः राजकृतः यः धर्मः अस्ति सः अपि यत्नेन संरक्ष्यः॥

तात्प०भावार्थ–इस प्रकार नियुक्त हुये ब्राह्मणोंके कर्मको कहते हैं–वेद और स्मृतिमें कहा धर्म जिससे नष्ट नहो ऐसा समयसे पैदा हुआ जो गौओंका चारण जल देवमंदिरकी रक्षारूप धर्म–और राजाका किया जो धर्म वहभी अपने धर्मके अविरोधसे अर्थात् पथिकको इतना भोजन (सदावर्त) देना हमारे शत्रुओंके मंडलमें घोडे आदि न भेजने इत्यादि जो राजाका कहा यत्नसे रक्षा करने योग्य है ॥ १८६ ॥

**गणद्रव्यंहरेद्यस्तुसंविदंलंघयेच्चयः ।
सर्वस्वहरणंकृत्वातंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् १८७**

पद–गणद्रव्यं २ हरेत् क्रि–यः १ तु०–संविदं २ लंघयेत् क्रि–च०–यः १ सर्वस्वहरणं २ कृत्वा०– तं २ राष्ट्रात् ५ विप्रवासयेत् क्रि–॥

योजना–यः गणद्रव्यं हरेत् चपुनः यः संविदं लंघयेत् तं सर्वस्वहरणं कृत्वा राष्ट्रात् विप्रवासयेत् ॥

१ पाखंडिनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते । समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ।

तात्पर्यार्थ-समयके धर्मकी पालनाको कहकर उसके लंघनेमें दोषको कहते हैं-जो मनुष्य ग्राम आदि समूहरूप गणके द्रव्यको चुराता है और जो संवित् अर्थात् समूहकी वा राजाकी नियत (थापी) की हुयी मर्यादाका लंघन (नमानना) करता है उसके सब धनको अपहरण (छीनना) करके अपने राष्ट्र (देश) मेंसे निकासदे-यह दंड अनुबंध (दावा) की अधिकतामें जानना-अनुबंध अल्प होयतो मनु (अ०८ श्लो० २१९-२२०) के कहे दंडोंमेंसे निकासना चार सुवर्ण-छः निष्क-शतमान इन चारोंमें जाति और शक्तिकी अपेक्षासे दंडकी कल्पना करलेनी कि जो मनुष्य ग्राम और देशके संघोंके संग सत्यसे संविदको करके लोभसे विसंवाद झगडा करता है उसको देशसे निकासदे और इस समयके व्यभिचारीको निग्रह (कैद) करके चारसुवर्ण-छः निष्क और चांदीके शतमान (सौरुपये) दंडदे॥

भावार्थ-जो मनुष्य समुदायके द्रव्यको चुराता है और संविदको लंघता है उसके सब धनको छीनकर अपने देशमेंसे निकासदे॥१८७॥

कर्तव्यंवचनंसर्वैःसमूहहितवादिनाम् ।
यस्तत्रविपरीतःस्यात्सदाप्यःप्रथमंदमम्॥

पद-कर्तव्यं १ वचनं १ सर्वैः ३ समूहहितवादिनाम् ६ यः १ तत्र॰-विपरीतः १ स्यात् क्रि-सः१ दाप्यः१ प्रथमं२दमम् २ ॥

योजना-समूहहितवादिनां वचनं सर्वैः कर्तव्यं-तत्र यः विपरीतः स्यात् सः प्रथमं दमं दाप्यः भवेत्॥

तात्प०भावार्थ-समूहवालोंके मध्यमें जो समूहके हितको कहैं उनके वचनको सब करैं अर्थात् समूहके अन्तर्गत मनुष्य उसकेही अनुसार चलें-जो समूहके हितकारियोंके वचनका प्रतिबध (निषेध) करै राजा उसको प्रथम साहस दंड दे॥१८८॥

समूहकार्यआयातान्कृतकार्यान्विसर्जयेत् ।
सदानमानसत्कारैःपूजयित्वामहीपतिः ॥

पद-समूहकार्ये ७ आयातान् २ कृतकार्यान् २ विसर्जयेत् क्रि-सः १ दानमानसत्कारैः ३ पूजयित्वा॰- महीपतिः १ ॥

योजना-सः महीपतिः समूहकार्ये आयातान् कृतकार्यान् दानमानसत्कारैः पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥

तात्प०भावार्थ- समूहकी कार्यसिद्धिके लिये जो अपने समीप आयेहों और उन्होंने अपना कार्य लिया होयतो दान मान सत्कारसे उनका पूजन करके वह राजा विसर्जन करै॥ १८९॥

समूहकार्यप्रहितोयल्लभेततदर्पयेत् ।
एकादशगुणंदाप्योयद्यसौनार्पयेत्स्वयम्॥

पद-समूहकार्यप्रहितः १ यत् २ लभेत क्रि-तत् २ अर्पयेत् क्रि- एकादशगुणम् २ दाप्यः १ यदि॰- असौ ४ न॰-अर्पयेत् क्रि-स्वयम्॰- ॥

योजना-समूहकार्यप्रहितः यत् लभेत तत् अर्पयेत्-यदि असौ स्वयं न अर्पयेत् तर्हि एकादशगुणं दाप्यः (दंडनीयः) राज्ञेति शेषः॥

तात्प०भावार्थ-राजाके पास समूहके कार्यार्थ महाजनोंके भेजे हुयेको जो सुवर्ण वस्त्र आदि राजासे मिलै-वह विनाही याच-

---

१ यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविद ॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ निगृह्य दापयेदेनं समयव्यभिचारिणम् । चतुःसुवर्णं षण्निष्कं शतमानं च राजतं ।

नाके महाजनोंको स्वयं निवेदन करदे, निवेदन नकरे तो राजा एकादश ११ गुना दंड उसकोदे ॥१९० ॥

धर्मज्ञाःशुचयोऽलुब्धाभवेयुःकार्यचिंतकाः ।
कर्तव्यंवचनंतेषांसमूहहितवादिनाम् ।१९१

पद-धर्मज्ञाः १शुचयः १ अलुब्धाः १ भवेयुः क्रि-कार्यचिंतकाः१ कर्तव्यम् १ वचनम् १ तेषाम् ६ समूहहितवादिनाम् ६ ॥

योजना-कार्यचिंतकाः धर्मज्ञाः शुचयः अलुब्धाः भवेयुः समूहहितवादिनां तेषां वचनं इतरैः कर्तव्यम् ॥

तात्प०भावार्थ-वेद और स्मृतिमें कहे धर्मके ज्ञाता-बाह्य और भीतरसे शुद्ध-धनके निर्लोभी-जो होंवे कार्योंके विचार कर्ता करने समूहके हितवादी जो वे उनका वचन आदरसे सबमनुष्य मानें ॥१९१॥

श्रेणिनैगमपाखंडिगणानामप्ययंविधिः ।
भेदंचैषांनृपोरक्षेत्पूर्ववृत्तिंचपालयेत्॥१९२

पद-श्रेणिनैगमपाखंडिगणानाम् ६ अपिऽ-अयम् १ विधिः १ भेदम्२ चऽ- एषांई६नृपः१ रक्षेत् क्रि-पूर्ववृत्तिं२ चऽ- पालयेत् क्रि- ॥

योजना-श्रेणिनैगमपाखंडिगणानां अपि अयं विधिः ज्ञेयः-चपुनः एषां भेदं नृपः रक्षेत् चपुनः पूर्ववृत्तिं पालयेत् ॥

ता० भा० -एक पण्य (व्यापार)से जो जीवें वे श्रेणी-और वेदको जो आप्त (यथार्थवादी)का बनाया होनेसे प्रमाण मानें वे पाशुपत आदि नैगम-जो वेदको प्रमाण न मानें ऐसे नग्न सौगत आदि पाखंडी-और एक आयुधसे युद्ध आदि एक कर्मसे जो जीवें वे गण-होते हैं उनकीभी यह पूर्वोक्तही विधि है और इन श्रेणी आदिके भेद व धर्मव्यवस्थाकी राजा रक्षा करै और पूर्वोक्त जीविकाको नियत करै ॥ १९२ ॥

इति संविद्व्यतिक्रमप्रकरणम् ॥ १९ ॥

अथ वेतनादानप्रकरणम् १६

गृहीतवेतनःकर्मत्यजन्द्विगुणमावहेत् ।
अगृहीतेसमंदाप्योभृत्यैरक्ष्यउपस्करः॥१९३॥

पद–गृहीतवेतनः१ कर्म२ त्यजन्१ द्विगुणं२ आवहेत् क्रि–अगृहीते७ समं२ दाप्यः १ भृत्यैः ३ रक्ष्यः १ उपस्करः १ ॥

योजना–गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् सन् द्विगुणं (वेतनं) आवहेत्–वेतने अगृहीते सति समं दाप्यः भृत्यैः उपस्करः रक्ष्यः ॥

तात्पर्यार्थ–अब वेतनके अनपाकर्म व्यवहारपदका प्रस्ताव करते हैं उसका स्वरूप नारदनें कहा है कि भृत्योंके वेतनके देने और न देनेकी विधिका क्रम जिसमें हो–यह वेतनका अनपाकर्म व्यवहारका पद कहाता है उसका निर्णय कहते हैं जो भृत्य वेतनको ग्रहण करके अपने अंगीकार किए कर्मको न करै वह दूना वेतन स्वामीको दे और जो वेतनको न लेकर स्वीकार किए कर्मको त्यागदे वह उतनेही वेतनको दे जितना ठहराहो दूना नही अथवा बलसे स्वीकारकीहुई भृति उसपर करावे क्योंकि नारदका वचन है कि स्वीकार करके जो कर्म न करै उससे भृति (नोकरी) देकर बलसे कर्म करावे भृतिभी नारदनेंही कही है कि काम करानेवाला स्वामी भृत्यको आदि मध्य अंतमें वह कर्मका वेतन क्रमसे दे जो भृत्य और स्वामीके बीचमें निश्चित होगयाहो और वे भृत्य सब उपस्कार लाङ्गल प्रग्रह (रस्से) योक्त्र (जूआ) आदिकी यथाशक्ति रक्षा करैं–क्योंकि न करेंगेतो कृषि आदि न होसकेंगे ॥

भावार्थ–वेतनको लेकर जो कर्म न करै वह दूनी भृति स्वामीको दे यदि वेतन न लिया होयतो भृतिके समान द्रव्यदे–और खेती आदिका जो उपस्कर उसकी रक्षा भृत्य करैं॥ १९३ ॥

दाप्यस्तुदशमंभागंवाणिज्यपशुसस्यतः ।
अनिश्चित्यभृतिंयस्तुकारयेत्समहीक्षिता ॥

पद–दाप्यः १ तु॰–दशमं२ भागं२ वाणिज्यपशुसस्यतः॰–अनिश्चित्य॰– भृतिं२ यः१ तु॰–कारयेत् क्रि– सः १ महीक्षिता३ ॥

योजना–तुपुनः यः भृतिं अनिश्चित्य भृत्यं कर्म कारयेत् सः महीक्षिता वाणिज्यपशुसस्यतः दशमं भागं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ–जो स्वामी व्यापारी वा गोमी वा क्षेत्रिक वेतनका निश्चय न करके भृत्यसे काम करावै उस स्वामीसे व्यापार पशु और खेतसे जो पैदाहुआहो उसका दशमां भाग भृत्यको राजा दिलावै यहभी अल्प परिश्रमके विषय समझना यदि बहुत परिश्रम होयतो इस बृहस्पतिके वचनानुसारें समझना–हलके जोतनेवाला तीसरे वा पांचमें भागको ग्रहण करै–भोजन वा वस्त्रको जो ग्रहण करै वह सीरके पांचमें भागको ले और जो भोजन वस्त्र नले वह पैदाहुए अन्नके तीसरे भागको ले–भोजन और वस्त्रके पानेवाले भृत्य अन्न और वस्त्रसे पोषण करने योग्य हैं ॥

भावार्थ–जो भृतिका निश्चय न करके भृ-

---

१ भृत्यानां वेतनस्योक्तो दानादानविधिक्रमः । वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ।

२ कर्माकुर्वन् प्रतिश्रुत्य कार्यो दत्त्वा भृतिं बलात् ।

३ भृत्याय वेतनं दद्यात् कर्मस्वामी यथाक्रमं । आदौ मध्येऽवसाने वा कर्मणो यद्विनिश्चितं ।

१ त्रिभागं पञ्चभागं वा गृह्णीयात्सीरवाहकः । भक्ताच्छादभृतः सीराद्भागं गृह्णीत पञ्चमं ॥ जातसस्यात्त्रिभागं तु प्रगृह्णीयादथाभृतः । भक्ताच्छादभृतान्नवस्त्रदानेन पोषितः ।

नाके महाजनोंको स्वयं निवेदन करदे, निवेदन नकरे तो राजा एकादश ११ गुना दंड उसकोदे ॥१९० ॥

धर्मज्ञाःशुचयोऽलुब्धाभवेयुःकार्यचिंतकाः ।
कर्तव्यंवचनंतेषांसमूहहितवादिनाम् ।१९१

पद–धर्मज्ञाः १शुचयः १ अलुब्धाः १ भवेयुः क्रि–कार्यचिंतकाः १ कर्तव्यम् १ वचनम् १ तेषाम् ६ समूहहितवादिनाम् ६ ॥

योजना–कार्यचिंतकाः धर्मज्ञाः शुचयः अलुब्धाः भवेयुः समूहहितवादिनां तेषां वचनं इतरैः कर्तव्यम् ॥

तात्प०भावार्थ–वेद और स्मृतिमें कहे धर्मके ज्ञाता–बाह्य और भीतरसे शुद्ध–धनके निर्लोभी–जो होंवे कार्योंके विचार कर्ता करने समूहके हितवादी जो वे उनका वचन आदरसे सबमनुष्य मानें ॥१९१॥

श्रेणिनैगमपाखंडिगणानामप्ययंविधिः ।
भेदंचैषांनृपोरक्षेत्पूर्ववृत्तिंचपालयेत् ॥१९२

पद–श्रेणिनैगमपाखंडिगणानाम् ६ अपिऽ–अयम्१ विधिः १ भेदम्२ चऽ– एषां६नृपः१ रक्षेत् क्रि–पूर्ववृत्तिं२ चऽ– पालयेत् क्रि– ॥

योजना–श्रेणिनैगमपाखंडिगणानां अपि अयं विधिः ज्ञेयः–चपुनः एषां भेदं नृपः रक्षेत् चपुनः पूर्ववृत्तिं पालयेत् ॥

ता० भा० –एक पण्य (व्यापार)से जो जीवें वे श्रेणी–और वेदको जो आप्त (यथार्थवादी)का बनाया होनेसे प्रमाण मानें वे पाशुपत आदि नैगम–जो वेदको प्रमाण न मानें ऐसे नग्न सौगत आदि पाखंडी–और एक आयुधसे युद्ध आदि एक कर्मसे जो जीवें वे गण–होते हैं उनकीभी यह पूर्वोक्तही विधि है और इन श्रेणी आदिके भेद व धर्मव्यवस्थाकी राजा रक्षा करे और पूर्वोक्त जीविकाको नियत करे ॥ १९२ ॥

इति संविद्व्यतिक्रमप्रकरणम् ॥ १५ ॥

भाण्ड (बर्त्तन)को यदि वाहक अज्ञानसे नष्ट करदे तो नाशके अनुसार उस भाण्डको दिवावे–सोई नारदने कहा है कि यदि वाहकके दोषसे पात्र फूटजाय तो दैव और राजाके पात्रको छोडकर वाहकसे दिवावे–और जो विवाह आदि मंगलके दिन प्रस्थान करनेवालेके यात्राके उपयोगी कर्मको पहिले अंगीकार करके उसी समय यह कहता है कि मैं नहीं करूंगा अर्थात् प्रस्थानमें विघ्नकरता है उससे दूनी भृति राजा दिवावे क्योंकि उसनें अत्यंत बडाईके कार्यमें विघ्न किया ॥

भावार्थ–राजा और दैवके पात्रको छोडकर वाहकसे पात्र फूटजाय तो उसपात्रको वाहकसे दिवावे और यात्रामें विघ्न करनेवालेको दूनी भृतिका दंडदे ॥ १९७ ॥

प्रक्रांतेसप्तमंभागंचतुर्थंपथिसंत्यजन् ।
भृतिमर्द्धपथेसर्वांप्रदाप्यस्त्याजकोपिच ॥

पद–प्रक्रान्ते ७ सप्तमं २ भागं २ चतुर्थं २ पथि ७ संत्यजन् १ भृतिं २ अर्द्धपथे ७ सर्वां २ प्रदाप्यः १ त्याजकः १ अपि ऽ–च ऽ– ॥

योजना–प्रक्रान्ते संत्यजन् सप्तमं भागं पथि संत्यजन् चतुर्थं अर्द्धपथे संत्यजन् सर्वां भृतिं भृत्यः प्रदाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ–प्रस्थानके प्रक्रांत (निश्चय) समयमें अपने अंगीकारकिए कर्मको जो त्यागै उससे सातमां भृतिका भाग स्वामीको राजा दिवावे–कदाचित् कोई शंका करे कि पहिले श्लोकमें प्रस्थानमें विघ्न कर्ताको दूनी भृतिका दंड कहा और यहां सातमां भाग कहतेहो यह परस्पर विरोध है–उसका समाधान कहते हैं कि जो भृत्य स्वामीको दूसरा भृत्य मिलनेकी संभावनामें अपने अंगीकार किए कर्मको त्यागै वह भृतिका सातमां भाग और प्रस्थान लग्नमेंही जो त्यागै वह स्वामीको दूनी भृति दे इससें कुछ विरोधनही जो मार्गमें गमनके समय कर्मको त्यागै वह भृतिका चौथा भाग और जो आधे मार्गमें त्यागै वह संपूर्ण भृतिका दण्डदे–और जो त्याजक हो अर्थात् अंगीकर किए कर्मको न त्यागते हुए मनुष्यसे कर्मका त्याग करावे उस स्वामीसेभी भृत्यको पूर्वोक्त प्रक्रांत आदि अवसरोंमें सातमां भाग आदि राजा दिवावे–यहभी उस विषयमें जानना जब भृत्यको कोई व्याधि आदि न हों– क्योंकि मनुका वचन है कि (अ० ८ श्लो० २१५) जो भृत्य रोगी न होकर स्वामीके कहे कर्मको न करे उसको आठ कृष्णलका दंडदे और वेतन दे–और जब व्याधि चलीजाय और व्याधिके दिनोंकी संख्या जितनी हो उतने दिन कर्म करके स्वामीके कामको पूराकरदे तब तो भृत्य वेतनको प्राप्त होता है–क्योंकि मनु (अ०८ श्लो. २१६) का वचन है कि रोगी मनुष्य स्वस्थ होकर स्वामीके कथनानुसार कर्मको करदे तो वह अपने बहुतकालकेभी सब वेतनको प्राप्त होताहै–और जो मनुष्य व्याधिके दूर होनेपरभी स्वस्थ हुआ आलस्यसे अपने आरंभकिये किंचिन्न्यून कर्मको न स्वयं करता है और न दूसरेसे कराता है उसको वेतन न दे–सोई मनु (अ० ८ श्लोक. २१७) नें कहा है कि रोगी वा स्वस्थ मनुष्य जो यथोक्त कर्मको नही करता है उसको किंचिन्न्यून कर्मकाभी वेतन न दे ॥

भावार्थ–प्रस्थानके प्रारंभमें त्यागै तो सातमां भाग–मार्गमें त्यागै तो चौथा भाग आधे मार्गमें त्यागै तो संपूर्ण भृति भृत्यसे स्वामीको इसीप्रकार कर्मको न त्यागते हुये भृत्यसे कर्म न कराते हुए स्वामीसे भृत्यको राजा दिलावे ॥ १९८ ॥

इति वेतनादानप्रकरणम् ॥१६॥

१ भाण्डं व्यसनमागच्छेद्यदि वाहकदोषतः । दाप्यो यत्तत्र नश्येत्तु दैवराजकृतादृते ।

१ भृत्यो नार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितं । स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देय तस्य वेतनम् ।

२ आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः । सदीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ।

३ यथोक्तमार्तः स्वस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् । न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ।

त्यसे कर्म करावै उससे राजा व्यापार पशु और सस्यसे पैदा हुये द्रव्यका दशमां भाग दिलावै॥१९४॥

देशंकालंचयोतीयाल्लाभंकुर्याच्चयोन्यथा ।
तत्रस्यात्स्वामिनश्छंदोधिकंदेयंकृतेधिके ॥

पद-देशं २ कालं २ च॥-यः १ अतीयात् क्रि- लाभं २ कुर्यात् क्रि-च॥-यः १ अन्यथा॥-तत्र॥-स्यात् क्रि-स्वामिनः ६ छंदः१ अधिकं १ देयं १ कृते ७ अधिके ७ ॥

योजना-यः देशं चपुनः कालं अतीयात् चपुनः लाभं अन्यथा कुर्यात् तत्र स्वामिनः छंदः स्यात् अधिके कृतेसति अधिकं देयं॥

तात्पर्यार्थ-जो भृत्य विक्रय आदिके उचित देश वा कालमें पण्य वस्तुका विक्रय आदि नही करता अर्थात् अभिमान आदिसे अवलंघन करता है और जो उसी देश कालमें अन्यथा लाभ करता है अर्थात् अधिक व्ययसे अल्प लाभ करताहै उस सेवकको भृति देनेमें स्वामीका छंद (इच्छा) प्रमाण होता है अर्थात् जितनी स्वामीकी इच्छाहो उतनी भृति दे अधिक नदे-और जो भृत्य देशकालको जानकर अधिक लाभ करता है उस भृत्यको स्वामी नियतकी हुई भृतिसेभी कुछ अधिकदे ॥

भावार्थ-जो भृत्य देश कालका अवलंघन करै वा अन्यथा लाभ करै उस भृत्यको स्वामी इच्छाके अनुसार दें और जो भृत्य अधिक करै उसे अधिकदे॥१९५॥

योयावत्कुरुतेकर्मतावत्तस्यतुवेतनम् ।
उभयोरप्यसाध्यंचेत्साध्येकुर्याद्यथाश्रुतम्॥

पद-यः १ यावत् १ कुरुते क्रि-कर्म २ तावत् ऽ- तस्य ६ तु॥- वेतनं १ उभयोः ६ अपि॥-असाध्यं १ चेत्॥- साध्ये ७ कुर्यात् क्रि- यथाश्रुतम् २ ॥

योजना-यदा यत् कर्म उभयोः अपि असाध्यं स्यात् तदा यः यावत् कुरुते तावत् तस्य वेतनं देयं साध्येसति यथाश्रुतं कुर्यात्॥

तात्पर्यार्थ- जब वेतनका निश्चय करके जिस एकही कर्मको दो मनुष्य करैं और वह कर्म व्याधि (रोग) आदिके कारणसे उन दोनोंसे वा बहुतसे मनुष्योंसे समाप्त न होय तो स्वामी जो भृत्य जितना कर्म करै उतनाही वेतन उनके किए कर्मके अनुसार जो मध्यस्थनें कहदिया हो दे सम न दे और यह न समझनाकि कर्मके अवयवोंका वेतन पूर्व भृत्योंसे स्वामीनें नही नियत किया इससे न देना चाहिये और यदि उस कर्मको वे दोनों सिद्धकरलेतो जितना पूर्व देना कह लियाहो उतनाही उन दोनोंको दे यह फिर न करै कि प्रत्येकको संपूर्ण वेतन दे दे वा कर्मके अनुसार विचार कर दे ॥

भावार्थ-जो कर्म दो मनुष्योंसे भृति ठहराकर करवायाहो वह कर्म यदि उन मनुष्योंसे सिद्ध न होय तो जिसनें जितना कर्म कियाहो उतनाही उस भृत्यको दे और सिद्ध होजाय तो जितना ठहराहो उतनादे ॥ १९६ ॥

अराजदैविकंनष्टंभांडंदाप्यस्तुवाहकः ।
प्रस्थानविघ्नकृच्चैवप्रदाप्योद्विगुणांभृतिम् ॥

पद-अराजदैविकं २ नष्टं २ भांडं २ दाप्यः १ वाहकः १ प्रस्थानविघ्नकृत् १ च॥-एव॥-प्रदाप्यः १ द्विगुणां २ भृतिं २ ॥

योजना-वाहकः अराजदैविकं नष्टं भांडं दाप्यः चपुनः प्रस्थानविघ्नकृत् द्विगुणां भृतिं प्रदाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-राजा और देवता ओंसे भिन्न

अथ वाक्पारुष्यप्रकरणम् १८

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम् । क्षेपंकरोतिचेद्दंड्यः पणानर्द्धत्रयोदशान् ॥ २०४ ॥

पद-सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः३ न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम् ६ क्षेपं २ करोति क्रि- चेत्‌अ- दंड्यः १ पणान् २ अर्द्धत्रयोदशान् २ ॥

योजना-यः न्यूनांगेंद्रियरोगिणां सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः क्षेपं चेत् करोति सः अर्द्धत्रयोदशान् पणान् दंड्यः राज्ञेति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-अब वाक्पारुष्य प्रकरणका प्रस्ताव करतेहैं उसका लक्षण नारदनें कहाहै कि देश जाति कुल आदिका जो न्यंग (दोष वा पाप) सहित आक्रोश (ऊंचे स्वरसे कठोर वचन कहना) और जो प्रतिकूल (उद्वेग) ताको पैदा करै उसको वाक्पारुष्य कहतेहैं- उनमें गौडोंको कलह प्यारी होतीहै यह देशका आक्रोश (निंदा) है- ब्राह्मण नितांत (निश्चय) लोलुप (चचल) होतेहैं यह जातिका आक्रोश है- विश्वामित्रोंका आचरण क्रूर होताहै यह कुलका आक्रोश है आदिपदके ग्रहणसे अपनी शिल्प आदि विद्याकी निंदासे विद्वान् और शिल्प आदि ग्रहण करने और उस आक्रोशके दंडतारतम्य (न्यून अधिक) के लिये निष्ठुर आदि भेदसे तीन प्रकारका कहकर उसका लक्षण नारदनेंही कहाहै कि निष्ठुर अश्लील तीव्र इन भेदोंसे आक्रोश तीन प्रकारका कहाहै और उसके गौरवसे दंडभी क्रमसे गुरु होताहै उनमें मूर्ख और जालमको धिक्कार है ये जो आक्षेप सहित वचन वह निष्ठुर-भगिनी आदि गमनरूप न्यंग (पाप)सहित जो आक्रोश उसको अश्लील-तू मदिरा पीताहै-इत्यादि महापातकोंका जो आक्रोश उसे तीव्र कहतेहैं ॥

उन तीनोंमें सवर्णोंके विषे निष्ठुर आक्रोश का दंड कहतेहैं करचरण आदिसे जो विकल (रहित) वे न्यूनांग-नेत्र श्रोत्र आदिसे जो रहित वे न्यूनेंद्रिय-और जिनको देहकी त्वचा दुष्टहोय वे रोगी-इनको जो सत्य-मिथ्या-वा निंदापूर्वक स्तुतिसे-अर्थात् दोनों नेत्रोंसे हीनको यह अंधा है यह सत्यवचन-और नेत्रवालोंको यह अंधा है यह असत्य-वचन-और विकृताकृतिको तू बडा दर्शनीय है यह कहना अन्यथा स्तोत्र इसप्रकार जो क्षेप (निर्भर्त्सन वा निंदा करै)उसको राजा साढेतेरह पण दंडदे-और जो यह मनु-(अ. ८-श्लो. २१४)का वचनहै कि काणे वा खंज (लंगडे) वा ऐसेही अन्यको सत्यवचनसेभी काणा आदि कहै-उसको कमसे कम कार्षापणका दंडदे यह वचन अत्यंत दुराचारी वर्णके विषयमें है-और जब पुत्र आदि माता आदिकोंका आक्रोश करै तब सौका दंड मनु (अ.८श्लो.२१५) नेंही कहा है कि माता पिता जाया भ्राता गुरु इनका जो आक्रोश करै-और जो सन्मुख आते गुरुको मार्ग न दे उसको सौपणका दंड राजा दे-यहभी तब जानना जब माता आदिका अपराधहो और जायाका अपराध नहो॥

१ देशजातिकुलादीनामाक्रोशन्यंगसंयुतम्। यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ।

२ निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वात्तदपि त्रिविधं मतं । गौरवानुक्रमात्तस्य दंडोपि स्यात्क्रमाद्गुरुः ॥ साक्षेपं निष्ठुरं ज्ञेयमश्लीलं न्यंगसंयुतं । पतनीयैरुपक्रोशैस्तीव्रमाहुर्मनीषिणः ।

१ काणं वाप्यथवा खंजमन्यं वापि तथाविधं । तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दंडं कार्षापणावरं ।

२ मातरं पितरं जायां भ्रातरं श्वशुरं गुरुं। आक्षारयन् शतं दाप्यः पंथानं चाददद्गुरोः ।

योजना-तस्करज्ञानकरणात् द्यूतं एकमुखं कार्यम्-प्राणिद्यूते समाह्वये एषः एव विधिः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त द्यूत एक है मुख (प्रधान) जिसमें ऐसा और अध्यक्षोंसे अधिष्ठित (युक्त)-राजा करावे क्योंकि तस्करोंका ज्ञान इसी प्रकार होताहै-बहुधा चोरीसे धनसंचय करनेवाले ही कितव होते हैं इससे चोरोंके विज्ञान (पहचान)के अर्थ एकमुख ही द्यूतको राजा करावे- और प्राणियोंके द्यूतरूप समाह्वयमें यही पूर्वोक्त विधि जाननी अर्थात् उसमेंभी सौरुपये पर पांचरुपये आदिको सभापति ग्रहण करे ॥

भावार्थ-चोरोंके ज्ञानार्थ द्यूतमें एकको प्रधान राजा रक्खे और यही पूर्वोक्त विधि प्राणियोंका द्यूत जो समाह्वय उसमेंभी जाननी ॥ २०३ ॥

इति द्यूतसमाह्वयप्रकरणम् ॥ १७ ॥

अथ वाक्पारुष्यप्रकरणम् १८

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम् । क्षेपंकरोतिचेद्दंड्यः पणानर्द्धत्रयोदशान् ॥ २०४ ॥

पद-सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः३ न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम् ६ क्षेपं २ करोति क्रि- चेत्ऽ- दंड्यः १ पणान् २ अर्द्धत्रयोदशान् २ ॥

योजना-यः न्यूनांगेंद्रियरोगिणां सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः क्षेपं चेत् करोति सः अर्द्धत्रयोदशान् पणान् दंड्यः राज्ञेति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-अब वाक्पारुष्य प्रकरणका प्रस्ताव करतेहैं उसका लक्षण नारदनें कहाहै कि देश जाति कुल आदिका जो न्यंग (दोष वा पाप) सहित आक्रोश (ऊंचे स्वरसे कठोर वचन कहना) और जो प्रतिकूल (उद्वेग) ताको पैदा करै उसको वाक्पारुष्य कहतेहैं- उनमें गौडोंको कलह प्यारी होतीहै यह देशका आक्रोश (निंदा) है- ब्राह्मण नितांत (निश्चय) लोलुप (चंचल) होतेहैं यह जातिका आक्रोश है- विश्वामित्रोंका आचरण क्रूर होताहै यह कुलका आक्रोश है आदिपदके ग्रहणसे अपनी शिल्प आदि विद्याकी निंदासे विद्वान् और शिल्प आदि ग्रहण करने और उस आक्रोशके दंडतारतम्य (न्यून अधिक) के लिये निष्ठुर आदि भेदसे तीन प्रकारका कहकर उसका लक्षण नारदनेंही कहाहै कि निष्ठुर अश्लील तीव्र इन भेदोंसे आक्रोश तीन प्रकारका कहाहै और उसके गौरवसे दंडभी क्रमसे गुरु होताहै उनमें मूर्ख और जाल्मको धिक्कार है ये जो आक्षेप सहित वचन वह निष्ठुर-भगिनी आदि गमनरूप न्यंग (पाप)सहित जो आक्रोश उसको अश्लील-तू मदिरा पीताहै-इत्यादि महापातकोंका जो आक्रोश उसे तीव्र कहतेहैं ॥

उन तीनोंमें सवर्णोंके विषे निष्ठुर आक्रोश का दंड कहतेहैं करचरण आदिसे जो विकल (रहित) वे न्यूनांग-नेत्र श्रोत्र आदिसे जो रहित वे न्यूनेंद्रिय-और जिनको देहकी त्वचा दुष्टहोय वे रोगी-इनको जो सत्य-मिथ्या-वा निंदापूर्वक स्तुतिसे-अर्थात् दोनों नेत्रोंसे हीनको यह अंधा है यह सत्यवचन-और नेत्रवालोंको यह अंधा है यह असत्य-वचन-और विकृताकृतिको तू बडा दर्शनीय है यह कहना अन्यथा स्तोत्र इसप्रकार जो क्षेप (निर्भर्त्सन वा निंदा करै)उसको राजा साढेतेरह पण दंडदे-और जो यह मनु-(अ. ८-श्लो. २१४)का वचनहै कि काणे वा खंज (लंगडे) वा ऐसेही अन्यको सत्यवचनसेभी काणा आदि कहै-उसको कमसे कम कार्षापणका दंडदे यह वचन अत्यंत दुराचारी वर्णके विषयमें है-और जब पुत्र आदि माता आदिकोंका आक्रोश करैं तब सौका दंड मनु (अ.८श्लो.२१५) नेंही कहा है कि माता पिता जाया भ्राता गुरु इनका जो आक्रोश करै-और जो सन्मुख आते गुरुको मार्ग न दे उसको सौपणका दंड राजा दे-यहभी तब जानना जब माता आदिका अपराधहो और जायाका अपराध नहो॥

१ देशजातिकुलादीनामाक्रोशन्यंगसंयुतम्। यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ।

२ निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वात्तदपि त्रिविधं मतं । गौरवानुक्रमात्तस्य दंडोपि स्यात्क्रमाद्गुरुः ॥ साक्षेपं निष्ठुरं ज्ञेयमश्लीलं न्यंगसंयुतं । पतनीयैरुपक्रोशैस्तीव्रमाहुर्मनीषिणः ।

१ काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधं। तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दंडं कार्षापणावरं ।

२ मातरं पितरं जायां भ्रातरं श्वशुरं गुरुं। आक्षारयन् शतं दाप्यः पंथानं चाददद्गुरोः ।

अशक्तस्तुवदन्नेवदंडनीयःपणान्दश ।
तथाशक्तःप्रतिभुवंदाप्यःक्षेमायतस्यतु ॥

पद-अशक्तः १ तुऽ-वदन् १ एवऽ-दंडनीयः १ पणान् २ दश २ तथाऽ-शक्तः १ प्रतिभुवं २ दाप्यः १ क्षेमाय ४ तस्य६ तुऽ-॥

योजना-तुपुनः अशक्तः एवं वदन् दश पणान् दण्डनीयः तथा तुपुनः तस्य क्षेमाय शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः॥

ता०भा०-जो मनुष्य ज्वर आदिसे अशक्त हुआ वाणीसे बाहु आदिके पूर्वोक्त विनाशको कहै उसको राजा दशपणका दंडदे-और जो शक्त (समर्थ) मनुष्य अशक्तका पूर्वोक्त प्रकारसे आक्रोश करै तो उसको पूर्व कहे हुए सौपण दंडके अनंतर अशक्त मनुष्यकी रक्षाके लिये प्रतिभूका दंडदे अर्थात् उसकी सेवाके लिये एक मनुष्य उसके पास छुडवावै ॥ २०९ ॥

पतनीयकृतेक्षेपेदंडोमध्यमसाहसः ।
उपपातकयुक्तेतुदाप्यःप्रथमसाहसम्॥२१०

पद-पतनीयकृते ७ क्षेपे ७ दंडः १ मध्यमसाहसः १ उपपातकयुक्ते ७ तुऽ-दाप्यः १ प्रथमसाहसं २ ॥

योजना-पतनीयकृते क्षेपे मध्यमसाहसो दंडो भवति तुपुनः उपपातकयुक्ते क्षेपे प्रथमसाहसं दंडं दाप्यः ॥

ता०भा०-पतितके कारण (तू ब्रह्महत्यारा है)से वर्णोंका आक्रोश होयतो मध्यमसाहस दंड होता है और उपपातक (तू गोहत्यारा है)के योगमें प्रथमसाहस दंड देनेयोग्य होता है ॥ २१० ॥

त्रैविद्यनृपदेवानांक्षेपउत्तमसाहसः।
मध्यमोजातिपूगानांप्रथमोग्रामदेशयोः ॥

पद-त्रैविद्यनृपदेवानां ६ क्षेपे ७ उत्तमसाहसः १ मध्यमः १ जातिपूगानां ६ प्रथमः १ ग्रामदेशयोः ६ ॥

योजना-त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेपे उत्तमसाहसः जातिपूगानां क्षेपे मध्यमः ग्रामदेशयोः क्षेपे प्रथमः साहसो दंडो ज्ञेयः ॥

ता०भा०-तीन वेदोंके ज्ञाता त्रैविद्य राजा और देवता इनके क्षेप (आक्रोश)में उत्तमसाहस दंड-ब्राह्मण और मूर्द्धावसिक्त आदि जातिओंका जो संघ उसकी निन्दामें मध्यम साहस दण्ड-ग्राम और देशके प्रत्येक आक्षेपमें प्रथम साहस दण्ड जानना ॥ २११ ॥

इति वाक्पारुष्यदंडप्रकरणं ॥ १८ ॥

अथ दंडपारुष्यप्रकरणम् १९

असाक्षिकहतेचिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेनच ।
द्रष्टव्योव्यवहारस्तुकूटचिह्नकृतोभयात् ॥

पद-असाक्षिकहते ७ चिह्नैः ३ युक्तिभिः ३ च ऽ-आगमेन ३ च ऽ-द्रष्टव्यः १ व्यवहारः १ तु ऽ- कूटचिह्नकृतः ६ भयात् ५ ॥

योजना-असाक्षिकहते सति चिह्नैः चपुनः युक्तिभिः चपुनः आगमेन कूटचिह्नकृतः भयात् व्यवहारः द्रष्टव्यः ॥

तात्पर्यार्थ-अब दंडपारुष्यका प्रस्ताव करतेहैं-उसका स्वरूप नारदनें कहाहै कि पराये स्थावर जंगम द्रव्य गात्रोंमें-हस्त-पाद शस्त्र और ग्राव (पत्थर) आदिसे जो अभिद्रोह (हिंसा) अर्थात् दुःखको पैदाकरना और तैसेही भस्म-रज-कीच-पुरीष आदिसे स्पर्श करके पराए मनमें दुख पैदाकरना इस दोनों प्रकारको दंडपारुष्य कहतेहैं दंडपारुष्य शब्दका यह अर्थहै कि जिससे दंड दिया जाय वह देहदंड कहाताहै उस दंडसे जो जंगम आदि द्रव्यका विरुद्ध आचरण उसको दंडपारुष्य कहते हैं और उसको अवगोरण आदि करणोंके भेदसे तीन प्रकारका कहकर हीन मध्यम उत्तम द्रव्यरूप कर्मके तीन भेदोंसे फिर तीन प्रकारका नारदनें ही कहाहै कि हीन मध्यम उत्तमके क्रमसे वह साहस तीन प्रकारका है अवगोरण (गाली देना) निश्शंक होकर प्रहार-क्षत (घाव)का करनेसे- देखाहै और हीन मध्यम उत्तम द्रव्योंके अवलंघनसे तीन प्रकारकेही साहस कहेहैं उन साहसोंमेंही कंटकों (अपराधी)का शोधन राजा करे ये साहससे किये तीन प्रकारके दंडपारुष्य होते हैं तैसेही वाक्पारुष्य और दंडपारुष्य ये दोनों कलह जहां प्रवृत्तहों उनके मध्यमें जो क्षमा करै उसको केवल दंडका अभावही नहीं किंतु वह पूजाके योग्यभी है-तैसेही जो पहिले कलहमें प्रवृत्तहो उसको दंडभी गुरु (अधिक) होता है-और कलहमें वही दंडका भागी है जिसको बंधे हुये वैरका अनुसंधान (स्मरण) रहै-तैसे दोनोंके अपराध विशेषका ज्ञान न होयतो दोनोंको समान दंड होता है-तैसेही यदि श्वपच आदि आर्योंका अपराध करदें तो दंड दिलानेके अधिकारी सज्जनही होते हैं-यदि वे दंड देनेको शक्य नहों अर्थात् श्वपचोंको दंड न देसकै तो राजा श्वपचोंको मरवायही दे उनसे धनको ग्रहण न करै इस प्रकार पांच प्रकारकी विधिभी नारदनें ही कहा है कि इन दोनोंकी विधि पांच प्रकारकी कही है-क्रोधसे पारुष्य उत्पन्न हो और दोनों क्रोधियोंके मध्यमें वही मानता है जो क्षमा करता है, जो लंघन करता है

१ परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः । भस्मादिभिश्चोपघातो दंडपारुष्य उच्यते ॥

२ तस्यापदृष्ट त्रैविध्यं हीनमध्योत्तमक्रमात् ॥ अवगोरणनिःसगपातनक्षतदर्शनैः ॥ हीनमध्योत्तमानां तु द्रव्याणां समतिक्रमात् । त्रीण्येव साहसान्याहुस्तत्र कंटकशोधनम् ।

१ विधिः पंचविधस्तूक्त एतयोरुभयोरपि । पारुष्ये सति संरंभादुत्पन्ने क्रुद्धयोर्द्वयोः ॥ स मन्यते यः क्षमते दण्डभाग्योतिवर्तते । पूर्वमाक्षारयेयस्तु नियतं स्यात्स दोषभाक् ॥ पश्चाद्यः सोप्यसत्कारी पूर्वे तु विनयो गुरुः । द्वयोरापन्नयोः स्तुल्यमनुबध्नाति दः पुनः ॥ स तयोर्दंडमाप्नोति पूर्वो वा यदि वेतरः । पारुष्यदोषावृतयोर्युगपत्संप्रवृत्तयोः ॥ विशेषश्चेन्न लक्ष्येत विनयः स्यात्समस्तयोः । श्वपाकषंढचंडालव्यंगेषु वधवृत्तिषु ॥ हस्तिपव्रात्यदासेषु गुर्वाचार्यनृपेषु च । मर्यादातिक्रमे सद्यो घात एवानुशासनम् ॥ यमेव ह्यतिवर्तेरन्नेते सतं जनं नृषु । स एव विनय कुर्यान्न तद्विनयभाङ्नृपः ॥ मला ह्येते मनुष्याणां धनमेषां मलात्मकम् । अतस्तान्घातयेद्राजा नार्थदंडं न दंडयेत् ।

वह दंडका भागी होताहै जो प्रथम आक्षारण (अपराध) करै वह नियमसे दंडका भागी होताहै–जो पीछे करै वहभी असत्कारके योग्य है–परंतु पहलेको दंड गुरु होता है–यदि दोनों तुल्य आपत्तिवालेहों उनमें जो फिर अनुबंध (कलह वा दावा) करै वही उन दोनोंमें दंडको प्राप्त होता है वह पहिला होचाहे पिछलाहो–यदि पारुष्यदोषवाले एकसमयमें कलहमें प्रवृत्तहो और कुछ विशेष प्रतीत न होयतो दोनोंको समान दंड होता है–यदि श्वपाक–नपुंसक–चांडाल–अंगसे हीन–हस्तिप (पीलवान्)–व्रात्य–दास और हिंसासे जो जीवें ये सब गुरु–आचार्य राजा–इनके विषय मर्यादाका अवलंघन करैं तो इनकी शिक्षा मारनाही है–और ये मनुष्योंमें जिस सज्जनका अवलंघन करैं वही उसको दंडदे राजा नदे–ये श्वपच आदि मनुष्योंमें मलरूप हैं इनका धनभी मलरूप है इससे राजा इनको मारदे धनका दंड इनको न दे–

इस प्रकार दंडदेना–दंडके पारुष्य निर्णयसे होता है उसके स्वरूपके संदेह निवारणार्थ निर्णय कहते हैं– जब कोई मनुष्य राजाको यह निवेदन करै कि मुझे एकांतमें इसनें ताडना दी है (मारा है) तहां साक्षी न होय तो वर्ण और स्वरूप आदिके चिन्होंसे–युक्तिसे अर्थात् कारण और प्रयोजनके देखनेकी रीतिसे–आगम (जनोंका कथन) से और चशब्दके पढनेसे दिव्य प्रमाणसे इस लिये राजा परीक्षा करै कि इसमें कूट (मिथ्या) चिह्न करलेनेंका भय होता है ॥

भावार्थ–यदि मारनेका कोई साक्षी न ५ तो चिह्न युक्ति मनुष्योंका कथन–इनसे .। व्यवहारको कूट चिह्नोंके करनेके भयसे देखे ॥ २१२ ॥

भस्मपंकरजस्पर्शेदंडोदशपणःस्मृतः ।
अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठचूतस्पर्शनेद्विगुणः स्मृतः

पद–भस्मपंकरजःस्पर्शे ७ दंडः १ दशपणः १ स्मृतः १ अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने ७ द्विगुणः १ स्मृतः १ ॥

समेष्वेवंपरस्त्रीषुद्विगुणस्तूत्तमेषुच ।
हीनेष्वर्धदमोमोहमदादिभिरदंडनम् २११

पद–समेषु ७ एवं॰–परस्त्रीषु ७ द्विगुणः १ तु॰–उत्तमेषु ७ च॰–हीनेषु ७ अर्धदमः १ मोहमदादिभिः ३ अदंडनम् १ ॥

योजना–भस्मपंकरजःस्पर्शे दशपणः दंडः स्मृतः–अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः दंडः स्मृतः–एवं दंडः समेषु ज्ञेयः परस्त्रीषु चपुनः उत्तमेषु द्विगुणः दंडः बोध्यः हीनेषु अर्धदमः भवति–मोहमदादिभिः स्पर्शने अदंडनम् भवति ॥

तात्पर्यार्थ–भस्म (राख) पंक (कीच वा गारा) रज (रेणु) इनसे जो अन्यके स्पर्श करै उसको दशपण दंडदे–और अमेध्य[1] अर्थात् आंसू–कफ–और नख–केश–कानका मैल–दूषिका (नेत्रमल) भोजनका उच्छिष्ट पार्ष्णि (चरणका पिछला भाग–ऐडी) निष्ठ्यूत (थूक) इनसे दूसरेका स्पर्श करै तो पूर्वोक्त दशपणसे दूना (बीसपण) दंड कहा है–और पुरीष (विष्ठा) आदिके स्पर्शमें कात्यायननें विशेष कहा है कि छर्द–मूत्र–विष्ठा आदिका जो स्पर्श दूसरे मनुष्यके करै चौगुना वा छः गुना दंड कायाके मध्यमें स्पर्श करनेसे होता है–और मस्तकपर स्पर्श करै तो आठगुना दंड कहा है–आदि शब्दसे वसा शुक्र रुधिर मज्जा लेने–यह पूर्वोक्त दंड सवर्णके विषयमें जानना–और सब जाति-

१ छर्दिमूत्रपुरीषाद्यैराषाद्यः स चतुर्गुणः । षड्गुणः कायमध्ये स्यान्मूर्ध्नि त्वष्टगुणः स्मृतः ।

योंकी पराई स्त्री और उत्तम अर्थात् अपनेसे अधिक विद्या और आचरणवालोंके विषै पूर्वोक्त दशपण और वीसपणसे दूना दंड जानना और जो अपनेसे विद्या और आचरणमें न्यून हैं उनमें पूर्वोक्तसे आधा (दश-वीसपण) दंड होता है और मोह (चित्तकी बेकली) मद (मदिरा पीनेसे उन्मत्तता) आदि पदसे ग्रह (भूत) का प्रवेश-इनसे युक्त मनुष्य भस्म आदिका स्पर्श करें तो दंड न करना ॥

भावार्थ-भस्म और पंक रज इनके स्पर्श-में दशपण दंड कहा है और अपवित्र वस्तु-पार्ष्णि (एडी) थूक इनके स्पर्शमें दूना दंड कहा है-यह दंड सवर्णोंमें है और पराई स्त्री और अपनेसे उत्तमोंके स्पर्शमें दूना दंड और अपनेसे हीन गुणवालोंमें पूर्वोक्तसे आधा दंड होता है-और मोह और मदवाला मनुष्य भस्म आदिका स्पर्श करे तो उसको दंडका अभाव होता है॥२१३॥ २१४॥

विप्रपीडाकरंच्छेद्यमंगमब्राह्मणस्यतु । उद्गूर्णेप्रथमोदंडःसंस्पर्शेतुतदर्द्धिकः ॥

पद- विप्रपीडाकरं १ ... अब्राह्मणस्य६ तु-उद्गूर्णे ७ प्रथमः संस्पर्शे ७ तु-तदर्धिकः ॥

योजना-विप्रपीडाकरं अब्राह्मणस्य अंगं छेद्यं-उद्गूर्णे प्रथमः दंडः तुपुनः संस्पर्शे तदर्धिकः दंडः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणोंको पीडा देनेवाला जो ब्राह्मणसे भिन्न (क्षत्रिय आदि)का अंग है (कर चरण आदि) वह छेदन करने योग्य है-और क्षत्रिय वा वैश्यको पीडा करनेवाले शूद्रकाभी अंग छेदनके योग्यही है क्योंकि मनु (अ. ८ श्लोक. २७९) में जिस किसी अंगसे निचला वर्ण उत्तमवर्णकी हिंसा करै तो वही २ इसका अंगछेदन करना यह मनुकी आज्ञा है. तीनों द्विजातियोंके अपराधमें शूद्रका अंग छेदन कहनेसे वैश्यभी क्षत्रियका अपकार करै तो यही दंड तुल्यन्यायसे समझना-यदि उद्गूर्ण (मारनेकेलिये शस्त्र उठाना) करै तो प्रथम साहस दंड जानना-और शूद्रको तो उद्गूर्णमेंभी हस्तका छेदनही होता है-क्योंकि मनु (अ. ८श्लो. २०८) की स्मृति है कि हाथ वा हाथसे दंड उठाकर हाथके छेदन करने योग्य होता है-और उद्गिरणके लिये शस्त्र आदिका स्पर्श करे तो उससे आधा अर्थात् प्रथम साहसका आधादंड जानना-और प्रतिलोमके अपवाद (अपराधों)में क्षत्रिय और वैश्यको दूने और तिगुने दंड-वाक्पारुष्यके समान समझने शूद्रको तो उसमेंभी हस्तका छेदनही है क्योंकि मनुका वचन है (अ० ८-श्लोक० २८२) कि जो अभिमानसे किसीके ऊपर निष्ठीव (थूकै) ... ओष्ठोका-और मूत्र करै तो ... अधोवायु करै तो गुदाछेदन करै ॥

भावार्थ-ब्राह्मणकी पीडा करनेवाले क्षत्रियके अंगका छेदन करै-मारनेके लिये शस्त्र उठानेमें प्रथम साहसका दंड-और मारनेके लिये शस्त्रके छूनेमें उससे आधा दंड होता है॥ २१५ ॥

उद्गूर्णेहस्तपादेतुदशविंशतिकौदमौ । परस्परंतुसर्वेषांशस्त्रेमध्यमसाहसः ॥२१६॥

पद-उद्गूर्णे ७ हस्तपादे७ तु- दश-

१ येन केन चिदंगेन हिंस्याच्छ्रेयांसमंत्यजः । छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।

१ पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।

२ अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अव मूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ।

विंशतिकौ१ दमौ१ परस्परं२ तुऽ–सर्वेषां६ शस्त्रे७ मध्यमसाहसः १ ॥

योजना–हस्तपादे उद्गूर्णे सति दशविंशतिकौ दमौ वेदितव्यौ–तुपुनः परस्परं शस्त्रे उद्गूर्णेसति मध्यमसाहसः दंडो दाप्यः ॥

ता० भा०–ताडनाके लिए हाथ वा पैर उठावे तो क्रमसे दशपण–और वीसपण–दंड जानना–यदि संपूर्ण वर्ण मारनेके लिए परस्पर शस्त्र उठावें तो सबको मध्यम साहस दंड होता है॥२१६ ॥

पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषुपणान्दश ।
पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासेशतंदमः॥२१७

पद–पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषु ७ पणान्२ दश२ पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे७ शतं १ दमः ॥ १ ॥

योजना–पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषु दशपणान् दण्ड्यः पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमो भवति ॥

ता० भा०– चरण– केश पारुष्य निग्रथ– इनको पकडकर जो शीघ्र संदेह निवारणार्थ दंडदेने योग्य होता है– लपेटकर और खींचकर जो कोई पैरको घिसे तो राजा उसे सौपण दंडदे॥ २१७ ॥

शोणितेनविनादुःखंकुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः ।
द्वात्रिंशतंपणान्दंड्योद्विगुणंदर्शनेसृजः॥२१८

पद–शोणितेन३ विनाऽ– दुःखं२ कुर्वन्१ काष्ठादिभिः३ नरः १ द्वात्रिंशतं २ पणान्२ दण्ड्यः १ द्विगुणं२ दर्शने७ सृजः६ ॥

योजना– शोणितेन विना काष्ठादिभिः दुःखं कुर्वन् नरः द्वात्रिंशतं पणान् दंड्यः– असृजः दर्शने द्विगुणं दण्ड्यः ॥

ता० भा०–जो मनुष्य काष्ठ आदिसे दूसरेको दुःख करे और रुधिर न दीखतो बत्तीस ३२ पण दंड देने योग्य होता है और भारी ताडनासे रुधिर दीखजावतो द्विगुण (६४) दंडदेने योग्य होता है और त्वचा अस्थि मांसके भेदनेमें तो विशेष मनुनें दिखाया है (अ.८श्लो.२८४) कि त्वचाके भेदक और लोहितके दिखानेवालेको सौपणका दंड और मांसके दिखानेवालेको छः निष्कका दंडदे और जो अस्थि (हाड) को तोडे उसे देशसे निकास दे॥ २१८ ॥

करपाददतोभंगेछेदनेकर्णनासयोः ।
मध्योदंडोव्रणोद्भेदेमृतकल्पहतेतथा॥२१९

पद–कर५ददतः ६ भंगे७ छेदने७ कर्णनासयोः६ मध्यः १ दंडः १ व्रणोद्भेदे७ मृतकल्पहते७ तथाऽ– ॥

योजना– करपाददतो भंगे–कर्णनासयोः छेदने–व्रणोद्भेदे–तथा मृतकल्पहते मध्यमसाहसो दंडो भवति ॥

ता० भा०– हाथ–पैर– दांतका टूटना– अर्थात् और नाकके छेदनमें और व्रण (घाव) मेल–दूषिका (नेत्र–देखें ताडनामें जिसमें प्राणि (मृत्यु) तुल्य होजाय तो मध्यम साहस दंड जानना यहांभी अपराधके अनुसार दंडकी कल्पना करनी ॥ २१९ ॥

चेष्टाभोजनवाग्रोधेनेत्रादिप्रतिभेदने ।
कंधराबाहुसक्थ्नांचभंगेमध्यमसाहसः २२०

पद–चेष्टाभोजनवाग्रोधे ७ नेत्रादिप्रतिभेदने७ कन्धराबाहुसक्थ्नां६ चऽ– भंगे ७ मध्यमसाहसः १ ॥

योजना– चेष्टाभोजनवाग्रोधे–नेत्रादिप्रतिभेदने चपुनः कन्धराबाहुसक्थ्नां भंगे मध्यमसाहसः दंडो भवति ॥

१ त्वग्भेदकः शतं दंड्यो लोहितस्य च दर्शकः। मांसभेत्ता च षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ।

ता० भा०— और गमन— भोजन— भाषण इनके रोकने और नेत्र जिह्वाके भेदन करने और कन्धरा (ग्रीवा) बाहु सक्थि (जंघा) इन प्रत्येकके भंजनमें मध्यम साहस दंड जानना२२० ॥

एकंघ्नतांबहुनांचयथोक्ताद्विगुणोदमः ।
कलहापहृतंदेयंदंडश्चद्विगुणस्ततः॥२२६॥

पद—एकं२ घ्नतां६ बहूनां ६ च›— यथोक्तात्५ द्विगुणः १ दमः १ कलहापहृतं २ देयं२ दण्डः ५ च›— द्विगुणः १ ततः›—

योजना—एकं घ्नतां बहूनां यथोक्तात् द्विगुणो दमो ज्ञेयः कलहापहृतं देयं ततः द्विगुणो दंडः देयः —

तात्पर्यार्थ—जहां बहुतसे मनुष्य मिलकर एकके अंगभंग आदिको करें वहां जिस २ अपराध और२ दंड कहा है उससे [illegible] एकको [illegible] जानना—क्योंकि वे अत्यंत क्रूर [illegible] प्रतिलोम और अनुलोमके अपराधोंमेंभी सवर्णके विषयमें कहेहुए इन पूर्वोक्त दंडोंकी हानि और वृद्धिकी कल्पना दंड पारुष्य प्रकरणमें कहेहुए क्रमसे समझनी— क्योंकि यह स्मृति है कि वाक्पारुष्य प्रकरणमें जो दंड प्रतिलोम और अनुलोम क्रमसे वर्णोंको कहा है वही दंड दंडपारुष्य प्रकरणमें राजा क्रमसे दे—जो मनुष्य कलहके समय जिस द्रव्यको हरले उसको लोटादे और उससे दूना द्रव्य चोरी करनेके अपराधसे दे ॥

भावार्थ— बहुतसे मनुष्य एकको मारें उनको पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड होता है कलहके समय जो द्रव्यको चुरावे वह उसको और उससे दूने दंडदे॥ २२१ ॥

१ वाक्पारुष्ये य एवोक्तः प्रातिलोम्यानुलोमतः स एव दण्डपारुष्ये दाप्यो राज्ञा यथाक्रमम् ।

दुःखमुत्पादयेद्यस्तुससमुत्थानजंव्ययम् ।
दाप्योदंडंचयोयस्मिन्कलहेसमुदाहृतः ॥

पद—दुःखं२ उत्पादयेत् क्रि— यः १ तु›— सः १ समुत्थानजं२ व्ययं२ दाप्यः १ दंडं२ तु›—यः १ यस्मिन्७ कलहे७ समुदाहृतः १॥

योजना—तुपुनः यः यस्य दुःखं उत्पादयेत् सः समुत्थानजं व्ययं चपुनः यस्मिन् कलहे यः दंडः समुदाहृतः तंदंडं दाप्यः—

ता० भा०—जो मनुष्य ताडनासे जिसके दुःख (व्रण आदि)को पैदा करे वह मनुष्य उसके घावके रोपण (भरना) आदिके लिये जो औषधि और पथ्यभोजन उनका व्यय (खर्च) दे और जिस कलहमें जो दंड कहा है उस दंडके देने योग्य है केवल उनके व्यय मात्रही नही ॥ २२२ ॥

अभिघातेतथाछेदेभेदेकुड्यावपातने ।
पणान्दाप्यःपंचदशविंशतिंतद्व्ययंतथा २२३

पद— अभिघाते७ तथा›— छेदे७ भेदे७ कुड्यावपातने७ पणान्२ दाप्यः १ पंचदश२ विंशतिं२ तत्२ व्ययं२ तथा›— ॥

योजना—अभिघाते तथा छेदे भेदे कुड्यावपातने यथाक्रमं पंचदश विंशतिं पणान् दाप्यः तथा तद्व्ययं दाप्यः ॥

ता०भा०—पराई भींतके मुद्गर आदिसे फाडने और विदारण (छेदन) और भेदन करनेमें पांच दश बीस पणका दंड क्रमसे जानना और भींतके गिरानेमें तो ये सब दंड मिलाकर समझने और स्वामीको भींत बनानेके लिये व्यय (धन) भी दे ॥२२३॥

दुःखोत्पादिगृहेद्रव्यंक्षिपन्प्राणहरंतथा ।
षोडशाद्यःपणान्दाप्योद्वितीयोमध्यमंदमम्

पद—दुःखोत्पादि २ गृहे ७ द्रव्यं २ क्षिपन् १

प्राणहरं २ तथा॰-षोडश २ आद्यः २ पणान् २ दाप्यः १ द्वितीयः १ मध्यमं २ दमं २ ॥

योजना-गृहे दुःखोत्पादि तथा प्राणहरं द्रव्यं क्षिपन् यो भवति तयोः मध्ये आद्यः षोडश पणान् द्वितीयः मध्यमं दमं दाप्यः ।

ता॰भा॰-दुःख पैदा करनेवाले कंटक आदि द्रव्यको पराये घरमें जो फेंके उसे सोलह पणका और प्राण हरनेवाले विष सर्प आदिको जो फेंके उसे मध्यम साहसका दंड राजा दे॥ २२४ ॥

दुःखेचशोणितोत्पादेशाखांगच्छेदनेतथा । दंडःक्षुद्रपशूनांतुद्विपणप्रभृतिःक्रमात्२२५

पद-दुःखे ७ च॰-शोणितोत्पादे ७ शाखांगछेदने ७ तथा॰- दंडः १ क्षुद्रपशूनां तु॰-द्विपणप्रभृतिः १ क्रमात् ५ ॥

योजना-तुपुनः क्षुद्रपशूनां दुःखे शोणितोत्पादे तथा शाखांगछेदने क्रमात् द्विपणप्रभृतिः दंडो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अजा अवि मृग आदि क्षुद्र पशुओंकी ताडनाके विषे दुःख करने रुधिर निकालने शाखा अर्थात् जिनमें प्राणोंका संचार नहो ऐसे सींग आदि अंगोंके छेदन करनेमें दोपण आदि दंड समझना-अर्थात् जिस दंडमें दोपण हों उसे द्विपण कहते हैं-वह जिस दंड समुदायकी आदिमें हो वह द्विपणप्रभृति कहाता है और वह दंड समुदाय दोपण-चारपण-छःपण-आठ पण समझना-और दोपण-तीनपण-चारपण पांचपण आदि न समझना- कदाचित् कोई शंका करे कि यह क्यों न समझना और वही क्यों समझना तो उसका समाधान कहते हैं अपराधकी अधिकतासे पहिले दंडसे तीन दंड अत्यंत अधिक जाने जाते हैं-और उस दंडमें द्विपण शब्दमें बिना सुनी त्रित्व३ आदि संख्याके स्वीकारकी अपेक्षा सुनी हुई द्वित्व संख्याकेही अभ्यास (वारंवार) स्वीकार (बढाने)से दंडकी अधिकताका संपादन करना श्रेष्ठ है-इससे सब निर्दोष है ॥

भावार्थ-अजा आदि क्षुद्र पशुओंको दुःख देने रुधिर निकासने शींग काटने और अंगके छेदनमें द्विपण आदि क्रमसे दंड देने ॥ २२५ ॥

लिंगस्यच्छेदनेमृत्यौमध्यमोमूल्यमेवच । महापशूनामेतेषुस्थानेषुद्विगुणोदमः॥२२६

पद-लिंगस्य ६ छेदने ७ मृत्यौ ७ मध्यमः ९ मूल्यं १ एव॰- च॰- महापशूनां ६ एतेषु ७ स्थानेषु ७ द्विगुणः १ दमः १ ॥

योजना-तेषां लिंगस्य छेदने-मृत्यौ मध्यमसाहसो दंडो भवति चपुनः तन्मूल्यं दातव्यं-महापशूनां एतेषु स्थानेषु सत्सु द्विगुणो दमो दाप्यः ॥

ता॰भा॰-और उन क्षुद्र पशुओंके लिंगछेदन और मारनेमें मध्यम साहस दंड और स्वामीको मोलका देना होता है यदि गौ हस्ति अश्व आदिका ताडन-रुधिर निकासना आदि किये जांयतो पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड जानना॥२२६ ॥

प्ररोहिशाखिनांशाखास्कंधसर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणांचविंशतेर्द्विगुणोदमः॥२२७

पद-प्ररोहिशाखिनां ६ शाखास्कंधसर्वविदारणे ७ उपजीव्यद्रुमाणां ६ च॰-विंशतेः ६ द्विगुणः १ दमः १ ॥

योजना-प्ररोहिशाखिनां चपुनः उपजीव्यद्रुमाणां शाखास्कंधसर्वविदारणे विंशतेः द्विगुणः दमः यथाक्रमं ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-जिन वृक्षोंकी शाखा प्ररोह (अंकुर) वाली होती हैं अर्थात् काटकर लगानेसे जिनकी शाखा प्रतिकांड लगकर

हरी रहती हैं और फल फूल देती हैं ऐसी शाखावाले वृक्ष (वट आदि) प्ररोहि शाखी कहाते हैं–उनकी शाखाके छेदनमें–और जिससे मूल शाखा निकसती हैं उस स्कंध (गुद्दा) के छेदनमें–और समूलवृक्षके छेदनमें–और जिनसे जीविका होती है ऐसे आम्र आदि वृक्षोंकीभी शाखा आदिके छेदनमें–क्रमसे वीस पणसे लेकर पूर्व२से उत्त१ २ दंड दूना जानना अर्थात् वीसपण–चालीसपण–अस्सीपण–दंड शाखा–स्कंध सब वृक्षके छेदनमें क्रमसे जानना–और जो वृक्ष जीविकाके दाता नहीं है वा प्ररोहि शाखीभी नहीं हैं उनमें दंडकी कल्पना अपनी बुद्धिसे करनी ॥

भावार्थ–जिनकी शाखा लगानेसे दूसरा वृक्ष होजाय–और जिनसे जीविका हो ऐसे वृक्षोंकी शाखा स्कंध और सब वृक्षके छेदनमें वीस–चालीस–अस्सीपण दंड क्रमसे जानना॥२२७ ॥

चैत्यश्मशानसीमासुपुण्यस्थानेसुरालये ।
जातद्रुमाणांद्विगुणोदमोवृक्षेपुविश्रुते।२२८

पद–चैत्यश्मशानसीमासु ७ पुण्यस्थाने ७ सुरालये ७ जातद्रुमाणाम् ६ द्विगुणः१ दमः १ वृक्षे ७ अथ–विश्रुते ७ ॥

योजना–चैत्यश्मशानसीमासु-पुण्यस्थाने-सुरालये–जातद्रुमाणां–अथ विश्रुते वृक्षे–द्विगुणः दमः ज्ञेयः–

ता० भा०–चैत्य (चबूतरा) मश्शान–सीमा–पुण्य (पवित्र) इनमें उत्पन्न हुये स्थान–देवमंदिर–और पीपल पलाश आदि प्रसिद्ध वृक्ष–इनकी शाखा आदिके छेदनमें पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड जानना॥२२८ ॥

गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् ।
पूर्वस्मृतादर्द्धदंडःस्थानेषूक्तेपुकर्तने२२९॥

पद–गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् ६ पूर्वस्मृतात् ५ अर्धदंडः १ स्थानेषु ७ उक्तेषु ७ कर्तने ७ ॥

योजना– गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् उक्तेषु स्थानेषु कर्तने सति पूर्वस्मृतात् अर्धदंडः ज्ञेयः–

तात्पर्यार्थ–जिनकी बहुत लंबी और सघन लता न हों ऐसे मालती आदि गुल्म–और जो वल्लीरूप न हों ऐसे प्रायः सरल नहोंवे कुरंड आदि गुच्छ–और जो प्रायःसरलहों ऐसे करवीर आदि क्षुप–और दीर्घ (लंबी) चढनेवाली द्राक्षा आदिलता–और कांड प्ररोहसे रहित हों और सरल जांय वे सारिवा आदि प्रतान और फलके पकनेतक जो रहे वे व्रीही आदि ओषधि–और जो छेदन करनेसेभी अनेक प्रकारसे जमजांय वे गिलोह आदि वीरुध- कहाते हैं इनका पूर्वोक्त शाखा आदि स्थानोंमें छेदन करनेवाले मनुष्यको पूर्वोक्त दंडसे आधा दंड जानना ॥

भावार्थ–गुल्म–गुच्छ–क्षुप–लता–प्रतान–औषधि–वीरुध इनकी शाखा आदिके छेदन करनेमें पूर्वोक्त दंडसे आधा दंड जानना२२९

इति दंडपारुष्यप्रकरणम् ॥ १९ ॥

अथ साहसप्रकरणम् २०

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसंस्मृतम् ।
तन्मूल्याद्द्विगुणोदंडोनिह्नवेतुचतुर्गुणः२३०

पद–सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्५साहसं १ स्मृतम् १ तन्मूल्यात्५ द्विगुणः १ दंडः १ निह्नवे ७ तु॰–चतुर्गुणः ॥ १ ॥

योजना-सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात् साहसं स्मृतम् तन्मूल्यात् द्विगुणः दंडः भवति–तुपुनः निह्नवे चतुर्गुणः भवति॥

तात्पार्यार्थ–अब साहस नाम विवादपदके व्याख्यान करनेकी इच्छासे प्रथम साहसका लक्षण कहतेहैं–सामान्य (साधारण) द्रव्यके वा इच्छाके अनुसार दानके अयोग्य पराये द्रव्यके बलसे हरनेसे साहस कहा जाता है–यह बात कही समझो कि राजाकी दंड और जनोंकी निंदा इनको लंघकर–राजपुरुषसे भिन्न जनोंके सामने जो कुछ मारण–पराईस्त्रीका प्रधर्षण (ग्रहण) आदि जो कियाजाय वह सब साहस होता है यह साहसका सामान्य लक्षण है–इससे साधारणधन–परधन इनकेभी बलसे हरणको करै तो साहस कहा जाता है–नारदनेंभी साहसके स्वरूपका विवरण किया है कि बलके अभिमानसे जो कुछ कर्म किया जाता है वह साहस कहा है क्योंकि साहसपदमें सहका अर्थ बल कहा है–सो यह साहस चोरी–वाक्पारुष्य–दंडपारुष्य–स्त्रीसंग्रहण–इनमेंभी है तोभी बलके अभिमानरूप उपाधिसे भिन्न होता है इससे दंडकी अधिकताके लिये पृथक् कहा है–उसके दंडोंकी विचित्रता कहनेके लिये प्रथम साहस आदि भेदसे तीन प्रकार कहकर उसका लक्षण नारदनेंही स्पष्ट रीतिसे कहा है कि वह साहस फिर प्रथम मध्यम उत्तम भेदसे तीन प्रकारका जानना उनका लक्षण शास्त्रोंमें पृथक्२ कहा है–फल मूल जल आदि और क्षेत्रकी सामग्री–इनके भंग आक्षेप उपमर्दन (मलदेना) आदि करनेमें प्रथम साहस होता है–और वस्त्र पशु अन्न पान घरकी सामग्री इनके भंग आदि करनेमें मध्यम साहस कहा है–और विष और शस्त्र आदिसे मारना पराई स्त्रीका स्पर्श (संग) और जो अन्य प्राणोंका उपरोध (नाश) करनेवालाहो यह उत्तम साहस होता है–उस साहसका दंड यह है– कि प्रथम साहसका दंड कमसे कम सौ पण–और मध्यम साहसका पांच सौपण–और उत्तम साहसका दंड कमसे कम सहस्रपण इष्ट है और वध (फांसी) सर्वस्वका हरण–पुरसे निकासना–चिह्नका करना–और अपराधीके अंगका छेदन यह दंड उत्तम साहसमें कहा है–यहां वध आदि अपराधके तारतम्य (न्यून अधिक)से उत्तम साहसमें पृथक्२ वा समस्त देने योग्य हैं–चुरायेहुये द्रव्यके मोलसे दूनादंड–और जो मनुष्य साहस करके निह्नव (छिपाना) करै कि मैं साहस नही करा उसको मोलसे चौगुना दंड होता है–इसी विशेष दंडके कहनेसे प्रथम

१ सहसा क्रियते कर्म यत्किंचिद्बलदर्पितैः। तत्साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ।

१ तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं प्रथमं मध्यमं तथा। उत्तमं चेति शास्त्रेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक् । फलमूलोदकादीनां क्षेत्रोपकरणस्य च । भंगाक्षेपोपमर्दाद्यैः प्रथमं साहसं स्मृतम् । वासःपश्वन्नपानानां गृहोपकरणस्य च । एतेनैव प्रकारेण मध्यमं साहसं स्मृतं । व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनम् । प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसं । तस्य दण्डः क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः। मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावरः। उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते । वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनाङ्कने । तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दंड उत्तमसाहसे ।

साहस आदिका जो दंड है वह चोरीसे भिन्नके विषयमें है यह जानागया ॥

भावार्थ-साधारण द्रव्यके बलसे चुरानेमें साहस कहा है-उस चुराये द्रव्यके मोलसे दूनादंड स्वीकार करनेमें-और चुराकर छिपानेमें अर्थात् न माननेमें मोलसे चौगुना दंड होता है॥ २३०

यःसाहसंकारयतिसदाप्योद्विगुणंदमम् ।
यश्चैवमुक्त्वाहंदाताकारयेत्सचतुर्गुणम् ॥

पद-यः १ साहसं२ कारयति क्रि- सः १ दाप्यः १ द्विगुणं२ दमम्२ यः १ च- एवं- उक्त्वा- अहं१ दाता१ कारयेत् क्रि- सः १ चतुर्गुणम्२ ॥

योजना-यः साहसं कारयति-सः द्विगुणं दमं- चपुनः यः अहं दास्यामि एवं उक्त्वा कारयेत् सः चतुर्गुणं दाप्यः (दंडचः)-

ता०भावार्थ-जो मनुष्य साहसकर ऐसे कहकर साहस कराता है वह साहससे दूना-दंडदेने योग्य होता है-और जो मैं तुझे धन दूंगा तू साहसकर ऐसे कहकर साहस कराता है वह साहससे चौगुने दंडके योग्य होता है-क्योंकि उसका अपराध अधिक है॥ २३१ ॥

अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारदः ।
संदिष्टस्याप्रदाताचसमुद्रगृहभेदकृत् २३२

पद-अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृत् १ भ्रातृभार्याप्रहारदः १ संदिष्टस्य६ अप्रदाता १ च- समुद्रगृहभेदकृत् १ ॥

सामंतकुलिकादीनामपकारस्यकारकः ।
पंचाशत्पणिकोदंडएषामितिविनिश्चयः ॥

पद-सामंतकुलिकादीनां६ अपकारस्य ६ कारकः १ पंचाशत्पणिकः १ दंडः १ एषां६ इति- विनिश्चयः १ ॥

योजना-अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृत्- भ्रातृभार्याप्रहारदः- चपुनः संदिष्टस्य अप्रदाता- समुद्रगृहभेदकृत्- सामंतकुलिकादीनां अपकारस्य कारकः- यः अस्ति एषां दंडः पंचाशत्पणिकः भवति- इति विनिश्चयः ॥

ता०भावार्थ-पूजनेयोग्य आचार्य आदिका आक्रोश (निंदा) और आज्ञाका अवलंघन जो करै-और भ्राताकी स्त्रीको जो ताडना दे-और देनेकी प्रतिज्ञाकिये धनको जो नदे-और जो मुद्रित (बंद) घरको खोले-और अपने घर खेत आदिसे मिलेहुये घर और क्षेत्रके स्वामीयोंका और अपने कुलके मनुष्योंका और आदिपदसे अपने ग्राम और देशके मनुष्योंका जो तिरस्कार करै-इन सबको पचास पणका दंड होता है-यह निर्णय है॥ २३२॥ २३३ ॥

स्वच्छंदंविधवागामीविक्रुष्टेनाभिधावकः ।
अकारणेचविक्रोष्टाचंडालश्चोत्तमान्स्पृशेत्।

पद- स्वच्छंदं२ विधवागामी १ विक्रुष्टे७ न- अभिधावकः १ अकारणे ७ च- विक्रोष्टा १ चंडालः१ च- उत्तमान्२ स्पृशेत् क्रि-

शूद्रप्रव्रजितानांचदेवेपित्र्येचभोजकः ।
अयुक्तंशपथंकुर्वन्नयोग्योयोग्यकर्मकृत् ॥

पद-शूद्रप्रव्रजितानां६ च- दैवे७ पित्र्ये७ च- भोजकः १ अयुक्तं २ शपथं २ कुर्वन् १ अयोग्यः १ योग्यकर्मकृत् १॥

वृषक्षुद्रपशूनांचपुंस्त्वस्यप्रतिघातकृत् ।
साधारणस्यापलापीदासीगर्भविनाशकृत्॥

पद-वृषक्षुद्रपशूनां ६ च- पुंस्त्वस्य ६ प्रतिघातकृत् १ साधारणस्य ६ अपलापी १ दासीगर्भविनाशकृत् ॥ १ ॥

पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः ।
एषामपतितान्योन्यत्यागीचशतदंडभाक्॥

पद- पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः १ एषां ६ अपतितान्योन्यत्यागी १ च५-शतदंडभाक् १ ॥

योजना-यः स्वच्छंदं विधवागामी-विक्रुष्टे सति न अभिधावकः चपुनः अकारणे विक्रोष्टा-चपुनः यः चंडालः उत्तमान् स्पृशेत्-चपुनः शूद्रप्रव्रजितानां दैवे चपुनः पित्र्ये (कर्मणि) भोजकः- अयुक्तं शपथं कुर्वन्-यः अयोग्यः योग्यकर्मकृत्-चपुनः वृषक्षुद्रपशूनां पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत्-साधारणस्य अपलापी- दासीगर्भविनाशकृत-चपुनः ये पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः संति- एषां अपतितान्योन्य त्यागी सः शतदंडभाक्-भवतीतिशेषः ॥

ता० भावार्थ-और जो स्वच्छंद होकर (नियोगके विना अपनी इच्छासे) विधवाके संग गमन करे-और जो चोरोंके भयसे कोई आक्रोश (बुलावे) करे और समर्थ होकर उसके समीप न दौडे-और जो वृथा (झूटा) आक्रोश करे-जो चांडाल-ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णोंका स्पर्श करे-जो दिगंबर आदि शूद्र संन्यासियोंको देव और पितरोंके कर्ममें भोजन करावे-जो अयुक्त (मैं माताका गमन करूं इत्यादि) शपथ करे- और जो शूद्र आदि अयोग्य मनुष्य वेदपठन आदि योग्य कर्मको करे-और जो बैल क्षुद्रपशु (अज आदि) इनके पुंस्त्व (संतान पैदा करनेकी शक्ति) का नाश करे-जहां वृक्षक्षुद्रपशूनां यह पाठ है वहां यह अर्थ करनाकि हिंगु आदि औषधके प्रयोगसे जो वृक्षोंके फल फूल गिरावे-जो साधारण द्रव्यका अपलाप करे (ठगे)-और जो दासीकी गर्भका पात करावे-और जो अपतितही पिता-पुत्र-भगिनी-भ्राता-स्त्री-पुरुष-आचार्य-शिष्य-इनका परस्परका त्याग करे-ये सब एक २ के प्रति सौ २ पण दंडके योग्य होते हैं॥२३४॥२३५॥२३६॥२३७॥

इतिसाहसप्रकरणम् ॥ २० ॥

निर्णेजकादीनां दण्डकथनम् ।

वसानस्त्रीन्पणान्दंड्योनेजकस्तुपरांशुकम् । विक्रयावक्रयाधानयाचितेषुपणान्दश २३८

पद-वसानः १ त्रीन् २ पणान् २ दंड्यः नेजकः १ तु- परांशुकम् २ विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु ७ पणान् २ दश २ ॥

योजना-तुपुनः परांशुकं वसानः नेजकः त्रीन् पणान्- विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु-कृतेषु दश पणान्-दंड्यः-भवतीति शेषः-

तात्पर्यार्थ-साहसके प्रसंगसे साहसके तुल्य अपराधोंमें निर्णेजक आदिको दंड कहते हैं-नेजक (धोबी) यदि धोनेके लिये अर्पण किये पराये वस्त्रोंको स्वयं आच्छादन करै (पहने) तो वह तीन पण दंड देने योग्य होता है और जो नेजक उन वस्त्रोंका विक्रय करै वा अवक्रय (भाडेपर) इस रीतिसे देकि इतने कालपर्यंत उपभोगके लिये वस्त्रोंको देताहूं तू मुझे इतना धन दीजियो-अथवा जो नेजक वस्त्रोंको आधि (गिरवी) रखदे-और अपने मित्रोंको याचित (मांगे) देदे-उस धोबीको प्रति अपराध दश पणोंका दंड राजादे-और नेजक उन वस्त्रोंको चिकने सेंभलके पट्टेपर धोवै-पाषाण पर न धोवै-और उनका व्यत्यास (बदलना)भी न करै-और न अपने घरपर रक्खै-इस पूर्वोक्तसे अन्यथा करै तो दंड देने योग्य है क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० ३९६)का वचन है कि सेंभलके चिकने पट्टे पर धोबी वस्त्रोंको धोवै और दूसरेके वस्त्रोंमें वस्त्रोंको न मिलावै और न अपने घरमें रक्खै- और जो धोबी प्रमादसे वस्त्रोंको नष्ट करता है उसके नारदका कहा दंड जानना- कि एकवार धोये वस्त्रका मूल्यसे अठवां भाग हीन (कम) होता है दोवार धोनेमें दोपाद-तीनवार धोनेमें तीन भाग-चारवार धोनेमें आधा नष्ट हो जाता है- आधे नाशसे पीछे एक२ वार धोनेमें क्रमसे एक२पाद कम हो जाता है जब उसकी दशा (छोर) जीर्ण होगई होय तो वस्त्र जीर्ण कहाता है-जीर्णके क्षयका नियम नहीं है-तात्पर्य यह है कि आठ पणसे मोल लिया वस्त्र एक वार धोया जाय और उसको धोबी नष्ट करदे तो अष्टम भागसे हीन (सातपण) मूल्य धोबीदे-और दोवार धुला वस्त्र होयतो पादसे हीन- तीनवार धुला होयतो तीन भागसे हीन-चार वार धुलेका आधा भाग-अर्थात चारपण दंड धोबीदे-तिससे परे प्रत्येक धुलाईमें शेष वस्त्रके मोलको एक२ पाद घटा२ करदे-इतने वह वस्त्र जीर्ण नहो-और जीर्ण वस्त्रको नष्टकर देतो वहां अपनी इच्छासे मोल देनेकी कल्पना राजा करले ॥

१ शाल्मले फलके श्लक्ष्णे निज्याद्वासांसि नेजकः । न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ।

२ मूल्याष्टभागो हीयेत सकृद्धौतस्य वाससः । द्विपादस्त्रिस्तृतीयांशश्चतुर्धौतेर्धमेवच । अर्धक्षयात्तु परतः पादांशापचयः क्रमात् । यावत्क्षीणदशं जीर्णं जीर्णस्या नियमः क्षयः ।

भावार्थ-धोबी पराये वस्त्रोंको धारण करै (पहने) तो तीन पण दंड-और बेचे-वा भाडेपर दे अथवा गिरवी रक्खे और मांग देतो दशपण दंड-देने योग्य होता है॥२३८

पितापुत्रविरोधेतुसाक्षिणांत्रिपणोदमः अंतरेचतयोर्यःस्यात्तस्याप्यष्टगुणोदमः ॥

पद- पितापुत्रविरोधे ७ तु- साक्षिणां ६ त्रिपणः १ दमः१ अन्तरे७ च- तयोः६यः१ स्यात क्रि-तस्य६ अपि- अष्टगुणः१ दमः१

योजना- तुपुनः पितापुत्रविरोधे साक्षिणां त्रिपणः दमः भवति-चपुनः यः तयोः अन्तरे स्यात् तस्य अपि अष्टगुणः दमः ज्ञेयः ॥

ता० भा०-पिता पुत्रके विरोधमें जो मनुष्य साक्षी होना स्वीकार करता है और उनके कलहका निवारण नहीं करता वह

तीन पण दंड–और जो उनके पण सहित विवादमें पण दिवानेका प्रतिभू (जामिन) होता है और चकार पढनेसे जो उनके कलहको वढाता है वह तीन पणसे आठगुना (२४ पण) दंड देने योग्य होता है–स्त्री पुरुप आदिके विरोधमेंभी यही दंड समझना ॥ २३९ ॥

तुलाशासनमानानांकूटकृन्नाणकस्यच ।
एभिश्चव्यवहर्तायःसदाप्योदममुत्तमम् ॥

पद–तुलाशासनमानानां ६ कूटकृत् १ नाणकस्य६ च–एभिः ३ च– व्यवहर्ता १ यः १ सः १ दाप्यः १ दमं२ उत्तमम्२ ॥

योजना–यः तुलाशासनमानानां चपुनः नाणकस्य कूटकृत्–चपुनः यः एभिः व्यवहर्ता अस्ति सः उत्तमं दमं दाप्यः॥

तात्पर्यार्थ–तुला (तोलनेका दंड) और पूर्वोक्त शासन (शिक्षा) प्रस्थ द्रोण आदि तोलनेकी वस्तु–और राजमुद्रासे अंकित द्रम्म निष्क आदि नाणक इन सबको जो कूट करता है अर्थात् देशमें प्रसिद्ध परिमाणसे न्यून वा अधिक रूपसे अन्यथा करता है–अथवा द्रव्य आदिकी ऐसी मुद्राको करे जो व्यवहारमें प्रचलितनहो वा द्रम्म आदिके गर्भमें तांवा आदि करता है–और जो मनुष्य जानकर कूट उन पूर्वोक्तोंसे व्यवहार करता है वे दोनों उत्तम साहस दंडदेने योग्य होते है ॥

भावार्थ– तोल– राजाका शासन मान (वाट आदि) नाणक– इनको जो कूट करता है और जो कूटरूप इनसे व्यवहार करता है वे दोनों उत्तम साहस दंडदेने योग्य होते है॥ २४० ॥

पद–अकूटं२ कूटकं२ ब्रूते क्रि–कूटं२ यः१ च–अपि– अकूटकं२ सः १ नाणकपरीक्षी१ तु–दाप्यः १ उत्तमसाहसम्२ ॥

योजना–यः अकूटं कूटकं ब्रूते चपुनः कूटं अपि अकूटकं ब्रूते–सः नाणकपरीक्षी उत्तमसाहसं दाप्यः (दंडनीयः)–

ता०भावार्थ–जो नाणककी परीक्षा करनेवाला (जोहरी) तांबामिले द्रम्म आदि कूट नाणकको अकूट (श्रेष्ठ) और श्रेष्ठको कूट (मिलावट)का कहता है वह उत्तम साहस दंडदेने योग्य होता है ॥ २४१ ॥

भिषङ्मिथ्याचरन्दंड्यस्तिर्यक्षुप्रथमंदमम् ।
मानुषेमध्यमंराजपुरुषेषूत्तमंदमम्॥ २४२ ॥

पद–भिषक्१ मिथ्या–आचरन्१दंड्यः १ तिर्यक्षु७ प्रथमं२ दमम्२ मानुषे७ मध्यमं२ राजपुरुषेषु७ उत्तमं२ दमम् २ ॥

योजना–तिर्यक्षु मिथ्या आचरन् भिषक् प्रथमं दमं–मानुषे मध्यमं–राजपुरुषेषु उत्तमं दमं–दंड्यः–भवतीति शेपः ॥

तात्पर्यार्थ–जो वैद्य आयुर्वेदको न जानकर जीविकाकेलिये मैं चिकित्सा करना जानताहूं ऐसा समझकर तिर्यक् (पशु) मनुष्य–और राजाके पुरुष इनकी चिकित्सा (इलाज) करता है वह क्रमसे प्रथम–मध्यम–उत्तम–साहस दंड देने योग्यहोता है–उसमेंभी तिर्यक् आदिमें मोलके विशेपसे–मनुष्योंमें वर्णके विशेपसे और राजपुरुषोंमें राजाके समीपकी विशेपतासे दंडकी न्यूनता और अधिकता जाननी ॥

भावार्थ–वैद्य तिरच्छी योनियोंमें–और मनुष्योंमें– और राजाके पुरुषोंमें– मिथ्या चिकित्सा (झूठी हिकमत) करै तो क्रमसे प्रथम साहस–मध्यम साहस–उत्तम साहस दंड देने योग्यहोता है ॥ २४२॥

अवध्यंयश्चबध्नातिबद्धंयंश्चप्रमुंचति ।
अप्राप्तव्यवहारंचसदाप्योदममुत्तमम्२४३

पद-अवध्यं२ यः १ चऽ- बध्नाति क्रि- बद्धं२ यः १ चऽ- प्रमुंचति क्रि- अप्राप्तव्यवहारं२ चऽ- सः १ दाप्यः १ दमं२ उत्तमम्२ ॥

योजना-यः अवध्यं बध्नाति-चपुनः यः बद्धं-चपुनः अप्राप्तव्यवहारं प्रमुंचति सः उत्तमं दमम् दाप्यः (दंडयः) ॥

ता०भावार्थ-जो मनुष्य बंधनके अयोग्यको बांधता है और बंधेहुयेको और जिसका व्यवहार समाप्त न हुआहो उसको छोडता है वह उत्तम साहस दंडदेने योग्य है॥ २४३ ॥

मानेनतुलयावापियोंशमष्टमकंहरेत् ।
दंडंसदाप्योद्विशतंवृद्धौहानौचकल्पितम् ॥

पद-मानेन३ तुलया३ वाऽ-अपिऽ-यः १ अंशं२ अष्टमकं२ हरेत् क्रि-दंडं२ सः १ दाप्यः १ द्विशतं २ वृद्धौ ७ हानौ ७ चऽ- कल्पितम् २ ॥

योजना-यः मानेन वा तुलया अपि अष्टमकं अंशं हरेत सः द्विशतं दमं चपुनः वृद्धौ हानौ कल्पितं दमं दाप्यः ॥

ता०भावार्थ-जो व्यापारी मीहि और कपास आदि पण्य (विकने योग्य) द्रव्यके अष्टम अंशको कूटमान (काट आदि) वा कूट तुलासे वा किसी अन्य प्रकारसे हरता है अर्थात् कम देता है वह दोसौ पण दंड और चुराये द्रव्यकी वृद्धि वा हानिमें जो दंड कल्पितहो वह दंड देने योग्य होता है ॥ २४४ ॥

भेषजस्नेहलवणगंधधान्यगुडादिषु ।
पण्येषुप्रक्षिपन्हीनंपणान्दाप्यस्तुषोडश ॥

पद- भेषजस्नेहलवणगंधधान्यगुडादिषु ७ पण्येषु ७ प्रक्षिपन् १ हीनं २ पणान् २ दाप्यः १ तुऽ- षोडश २ ॥

योजना-तु पुनः भेषजस्नेहलवणगंधधान्यगुडादिषु पण्येषु हीनं प्रक्षिपन् वणिक् षोडश पणान् दाप्यः (दंड्यः) ॥

ता०भावार्थ-भेषज (औषध) घृत आदि स्नेह-लवण-उशीर-चंदन आदि गंध द्रव्य अन्न-गुड-और आदि शब्दसे हींग मिरच आदि-इन पण्य द्रव्योंमें जो हीन (असार) द्रव्य मिलाकर विक्रय करता है वह सोलह १६ पण दंडदेने योग्य होता है॥ २४५ ॥

मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् ।
अजातौजातिकरणेविक्रेयाष्टगुणोदमः२४६

पद- मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् ६ अजातौ ७ जातिकरणे ७ विक्रेयाष्टगुणः १ दमः १ ॥

योजना- मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कल वाससाम् अजातौ जातिकरणे विक्रेयाष्ट गुणः दमः (दंडः) ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-जिसकी बहुत मोलकी जाति नहो उस मिट्टी चर्म आदिको अजाति कहते हैं उस मिट्टी-चाम- मणि- सूत- लोहा- काठ-वक्कल-वस्त्रमें जातिको जो करै अर्थात् गंधवर्ण और अन्य रसके संचार (मिलावन) से अधिक मोलकी जातिके सदृश करै- जैसे चमेलीकी सुगंधको मिलाकर मिट्टीमें सुगंध आंवला बताना-बिलावके चर्ममें उत्तम वर्ण बनाकर व्याघ्रका चर्म बताना स्फटिक मणिमें अन्यके रंगको मिलाकर पद्मराग कहना-कपासके सूतमें गुणकी अधिकता बनाकर पट्टसूत (रेशम) बताना-काले लोहेमें उत्तम वर्ण करके चांदी बताना-बेलके काठमें चंदनकी सुगंध मिलाकर चंदन

बताना-कंकोलको त्वचारूप लौंगबताना कपासके वस्त्रमें श्रेष्ठ गुणका रंग मिलाकर कौशेय (रेशम) बताना इन सब अजातिके जाति करनेमें विक्रय करने (वेचने)योग्य बनाये द्रव्यका आठगुना दंड जानना-अर्थात् उत्तमसे आठगुना समझना ॥

भावार्थ-मिट्टी-चाम- मणि-सूत-लोहा-काठ- वक्कल-वस्त्र इन अजाति (अल्पमोल) के को जो जाति (अधिकमोलके) करै उसको विक्रयके योग्य द्रव्यके मोलसे आठगुना दंड होता है ॥ २४६ ॥

समुद्रपरिवर्तंचसारभांडंचकृत्रिमम् ।
आधानंविक्रयंवापिनयतोदंडकल्पना २४७

पद-समुद्रपरिवर्तं १ च ऽ- सारभांडं २ च ऽ- कृत्रिमं २ आधानं २ विक्रयं २ वा ऽ- अपि ऽ- नयतः ६ दंडकल्पना १ ॥

भिन्नेपणेतुपंचाशत्पणेतुशतमुच्यते ।
द्विपणेद्विशतेदंडोमूल्यवृद्धौचवृद्धिमान् ॥

पद-भिन्ने ७ पणे ७ तु ऽ- पंचाशत् १ पणे ७ तु ऽ- शतं १ उच्यते क्रि-द्विपणे ७ द्विशतं १ दण्डः १ मूल्यवृद्धौ ७ च ऽ- वृद्धिमान् १ ॥

योजना- समुद्रपरिवर्तं चपुनः कृत्रिमं सारभांडं आधानं विक्रयं वा नयतः पुंसः इयं दंडकल्पना ज्ञेया पणे भिन्ने (न्यूनपणमूल्ये) सति पंचाशत्पणः पणे (पणमूल्ये) शतं द्विपणे द्विशतं दंडः एवं मूल्यवृद्धौ वृद्धिमान् दंडः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ- मुद्रनाम पिधान (ढकना) कोई मुद्रसे जो युक्तहो उसे समुद्र कहते हैं उसके परिवर्तको जो करै अर्थात् ढकेहुये (पिटारी)को मोतियोंसे पूर्णको दिखाकर अपने हाथके लाघव (चतुराई) से स्फटिकोंके भरेकरंडका समर्पण करताहै और जो सारभांड (कस्तूरी आदि) को कृत्रिम (बनी) करके आधि रखता है वा विक्रय करताहै उसके दंडकी कल्पना यह जाननी कि यदि कृत्रिम कस्तूरी आदिका मोल पणसे न्यून होय तो उसके विक्रय आदि करनेमें पचासपणका दंड होता है और यदि पणही मोल होयतो सौ पण दंड- दो पणमोल होय तो दोसौ पण दंड होता है इस प्रकार मोलकी वृद्धिमें दंडकीभी वृद्धि जाननी ॥

भावार्थ-जो मनुष्य ढकीहुयी पिटारीको बदलकर देता है अर्थात् अन्य दिखाकर अन्यको देता है और जो कस्तूरी आदि सारभांड (उत्तमद्रव्य)को कृत्रिम बनाके आधि वा विक्रय करता है उसका दंड यह है कि कस्तूरी आदिका मोल १पणसे न्यून होय तो पचास पणका दंड- पण मोल होयतो सौ पण दंड- दो पण मोल होय तो दोसौ पण दंड होता है- इसी प्रकार मोलकी वृद्धिमें दंडकी वृद्धि जाननी॥२४८॥

संभूयकुर्वतामर्घंसबाधंकारुशिल्पिनाम् ।
अर्घस्यहासंवृद्धिंवाजानतोदमउत्तमः२४९

पद-संभूय ऽ- कुर्वतां ६ अर्घं २ सबाधं २ कारुशिल्पिनाम् ६ अर्घस्य ६ ह्रासं २ वृद्धिं २ वा ऽ- जानतां ६ दमः १ उत्तमः १ ॥

योजना-अर्घस्य ह्रासं वा वृद्धिं जानतां कारुशिल्पिनां अर्घं संभूय सबाधं कुर्वतां उत्तमः दमः ज्ञेयः ॥

ता० भावार्थ-जो मनुष्य राजाके नियतकिये अर्घ (भाव)की न्यूनता और अधिकताको जानते हुये व्यापारी मिलकर- रजक आदि कारु- और चित्रकार आदि शिल्पी इनको पीडा करनेवाले अन्य अर्घको अपने लाभके लोभसे करते हैं वे उत्तम साहस दंड देने योग्य होते हैं ॥ २४९ ॥

संभूयवणिजांपण्यमनर्घेणोपरुंधताम् ।
विक्रीणतांवाविहितोदंडउत्तमसाहसः २५०

पद–संभूय– वणिजां ६ पण्यं २ अनर्घेण ३ उपरुंधताम् ६ विक्रीणतां ६ वाऽ– विहितः १ दंडः १ उत्तमसाहसः१ ॥

योजना–अनर्घेण पण्यं संभूय उपरुंधतां– वा महार्घेण विक्रीणतां वणिजां उत्तमसाहसः दंडः विहितः (मन्वादिभिरितिशेषः) ॥

ता० भा०–जो वैश्य वा व्यापारी मिलकर देशांतरसे आये पण्य (विकनेयोग्य) व्यको–चाहते हुये अनर्घ (अल्पमोल) करकर विकनेसे रोकते हैं– अथवा महार्घ्य (महंगा)से वेचते हैं उन सबको उत्तम साहस दंड मनुआदिकोंने कहा है ॥२५०॥

राजनिस्थाप्यतेयोर्घःप्रत्यहंतेनविक्रयः ।
क्रयोवानिस्रवस्तस्माद्वणिजांलाभकृत्स्मृतः

पद–राजनि ७ स्थाप्यते क्रि– यः १ अर्घः १ प्रत्यहंऽ– तेन ३ विक्रयः १ क्रयः१ वाऽ– निस्रवः १ तस्मात् ५ वणिजां ६ लाभकृत् १ स्मृतः ॥ १ ॥

योजना–राजनि सनिहिते सति यः तेन अर्घः स्थाप्यते तेन प्रत्यहं विक्रयः वा क्रयः कर्तव्यः तस्मात् निस्रवः वणिजां लाभकृत् स्मृतः ॥

तात्पर्यार्थ–राजाके समीप रहते जो अर्घ (भाव) राजा वा द्रव्यका स्वामी स्थापन करदें उसी अर्घसे प्रतिदिन क्रय(खरीदना) और विक्रय (वेचना)करै और उस अर्घ (भाव)से जो स्रव (बढना) हो अर्थात् राजाके किये अर्घसे जो बढ वही व्यापारियोंका लाभकारी होता है और अपनी इच्छासे नियत किये अर्घसे लाभ वैश्योंको नही कहा है– मनुनें (अ. ८ श्लो.४०२) तो अर्घ करनेमें विशेष दिखाया है कि पांच– वे पांचवे दिन वा पक्ष वा मास [1] बीतनेपर राजा व्यापारियोंके समक्ष (रूबरू) अर्घका स्थापन करे–

भावार्थ–राजा जिस अर्घ (भाव)का स्थापन करदे उसीसे प्रतिदिन विक्रय वा क्रय करै उससे जो निस्रव (बढ) वही धन व्यापारि योंका लाभकारी कहा है ॥ २५१ ॥

स्वदेशपण्येतुशतंवणिक्गृह्णीतपंचकम् ।
दशकंपारदेश्येतुयःसद्यःक्रयविक्रयी २५२

पद–स्वदेशपण्ये ७ तुऽ–शतं २ वणिक् १ गृह्णीत क्रि– पंचकम् २ दशकं २ पारदेश्ये ७ तुऽ– यः१ सद्यःऽ– क्रयविक्रयी१ ॥

योजना–यः वणिक् सद्यः क्रयविक्रयी अस्ति सः स्वदेशपण्ये पंचकं शतं– तुपुनः पारदेश्ये दशकं शतं गृह्णीत ॥

तात्पर्यार्थ–जो व्यापारी अपने देशमें पैदा हुये पण्य द्रव्यको मोल लेकर शीघ्रही (उसीदिन) विक्रय करै वह सौपण पर पांच पण लाभको ग्रहण करै–और जो द्रव्य परदेशसे आया हो उसके शत पण मूल्यके हिसाबसे दश पण लाभको ग्रहण करै–और जो व्यापारी कालांतरमें वेचै उसको कालकी अधिकताके अनुसार लाभकी अधिकता करनी–इससे उस रीतिसे अपने देशके पण्यका अर्घ राजा नियत करै जैसे सौ पणपर पांच पणका लाभ व्यापारियोंको हो सकै ॥

भावार्थ–उस दिनके लिये पण्यको उसी दिन विक्रय करनेवाला व्यापारी अपने देश-

[1] पंचरात्रे पंचरात्रे पक्षे मासे तथा गते । कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ।

के पण्यमें सौपण पर पांचपण और पर देशसे आये पण्यमें सौपणपर दशपण लाभको ग्रहण करे ॥ २५२ ॥

पण्यस्योपरिसंस्थाप्यव्ययंपण्यसमुद्भवम् ।
अर्घोनुग्रहकृत्कार्यःक्रेतुर्विक्रेतुरेवच ॥२५३

पद–पण्यस्य ६ उपरि–संस्थाप्य–व्ययं२ पण्यसमुद्भवम् २ अर्घः १ अनुग्रहकृत१ कार्यः १ क्रेतुः ६ विक्रेतुः ६ एव–च–॥

योजना–पण्यसमुद्भवं व्ययं पण्यस्य उपरि संस्थाप्य क्रेतुः चपुनः विक्रेतुः अनुग्रहकृत् अर्घः राज्ञा कार्यः ॥

ता० भावार्थ–देशांतरसे आये पण्यमें देशांतरके आने जाने और भांडोंका ग्रहण और शुल्क आदि स्थानोंमें जो धन व्यय हुआ हो उतने धनको पण्यके मोलमें मिलाकर जैसे सौपणमें दश पणका लाभ हो उस प्रकार क्रेता और विक्रेताके अनुग्रह करनेवाले अर्घका स्थापन राजा करे ॥ २५३ ॥

इति निर्णेजकादि दंडकथनम् ॥

अथ विक्रीयासंप्रदानप्रकरणम्

गृहीतमूल्यंयःपण्यंक्रेतुर्नैवप्रयच्छति ।
सोदयंतस्यदाप्योसौदिग्लाभंवादिगागते॥

पद-गृहीतमूल्यं २ यः १ पण्यं २ क्रेतुः ६ नऽ-एवऽ-प्रयच्छति क्रि-सोदयं २ तस्य ६ दाप्यः १ असौ १ दिग्लाभं २वाऽ-दिगागते ७ ॥

योजना-यः पुरुषः गृहीतमूल्यं पुण्यं क्रेतुः न प्रयच्छति असौ तस्य सोदयं मूल्यं दिगागते पण्ये दिग्लाभं दाप्यः राज्ञेति शेषः॥

तात्पर्यार्थ-अब प्रसंगसे आये साहसके सदृश (तुल्य) अपराधोंके दंडका निरूपण करके विक्रीयासंप्रदानका प्रारंभ करते है उसका स्वरूप नारदने यह कहाहै[1] कि मोलसे पण्यको वेचकर क्रेताको जो न दियाजाय वह विक्रीयासंप्रदान नाम विवादका पद कहाता है-उसमेंभी विक्रेय (वेचने योग्य) द्रव्यके चर अचर दोभेद कर छः प्रकारका नारदनेही कहाहै[2] कि इस लोकमें जंगम और स्थावर रूप दो प्रकारका पण्यद्रव्य होता है बुद्धिमानोंने उसके देने और लेनेकी विधि छः प्रकारकी कहीहै कि गणित- तुलित- मेय-क्रियासे-रूपसे-लक्ष्मीसे-अर्थात् क्रमुकके फल आदि गिनतीसे-सुवर्ण कस्तूरी आदि तोलसे-शाली आदि परिमाणसे- वाहन दुहना आदि रूप क्रियासे अश्व भेंस आदि-और रूपसे पण्य स्त्री (वेश्या) आदि-लक्ष्मी (कांति)से मरकत पद्म राग आदि-लिये दिये जाते हैं-इस छः प्रकारकेभी पण्यको विक्रय करके जो न दे उसके दंडको कहते हैं कि ग्रहण किया है मोल जिसका ऐसे पण्यको विक्रय करनेवाला यदि प्रार्थना करतेहुये अपने देशके व्यापारी लेनेवालेको अर्पण नहीं करता है और वह द्रव्यक्रय (लेना)के समय बहुत मोलका हो और कालांतरमें अल्पमूल्यसेही मिलसके तो अर्घके ह्रास (कमी)से किया जो उदय (वृद्धि) स्थावर जंगमरूप पण्यद्रव्यकी उस वृद्धिसहित पण्यद्रव्यको विक्रेता विक्रेताको राजा दिवावे-और जहां मोलकी न्यूनताका किया पण्यका उदय न हो और क्रयके समयमें जितना मोल पण्यद्रव्यका निश्चित हुआहो- उतनेही उस पण्यद्रव्यको लेकर उसी देशमें विक्रय करते (वेचते) हुये मनुष्यको जो लाभ (नफा)उस सहित वा पूर्वोक्त सौ रुपये पर दो तीन रुपये वृद्धि सहित मूल्यको क्रेताकी इच्छाके अनुसार वेचनेवालेसे राजा दिवावे-सोई नारदने कहाहै[1] कि अर्घहीन होजायतो उदय (वृद्धि) सहित पण्यको दे-यह नियम एक स्थान वासियोंमें है-जो देशोंमें विचरते हैं उनको देश विचरनेका लाभभी दे और जब अर्घ (भाव)की अधिकता (तेजी)से पण्यकी न्यूनताहो तब उस गृह आदि पण्य को विक्रेतासे क्रेताको दिवावे-सोई नारदने कहाहै[2] कि जो मोलसे पण्यको वेचकर क्रेताको नहींदेता वह स्थावर धनकी हानि और जंगम धनकी क्रियाके फलका दंडदेने योग्य है-विक्रय करने वालेके उपभो-

१ विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेतुर्यन्न प्रदीयते। विक्रीयासंप्रदानं तद्विवादपदमुच्यते ।

२ लोकेस्मिन् द्विविधं पण्यं जगम स्थावरं तथा। षड्विधस्तस्य तु बुधैर्दानादानविधिः स्मृतः । गणितं तुलितं मेयं क्रियया रूपतः श्रिया ।

१अर्घश्चेदवहीयेत सोदयं पण्यमावहेत् । स्थानिनामेष नियमो दिग्लाभ दिग्विचारिणाम् ।

२ विक्रीय पण्यं मूल्येन यः क्रेतुर्न प्रयच्छति। स्थावरस्य क्षय दाप्यो जंगमस्य क्रियाफलम् ।

दमः १ तत्र‌ऽ-मूल्यात्५ तु‌ऽ-द्विगुणः१ भवेत् कि- ॥

योजना- यः अन्यहस्ते विक्रीतं वा दुष्टं अदुष्टवत् यदि विक्रीणीते-तत्र , मूल्यात् द्विगुणः दमः भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य पश्चात्तापके विनाही एकके हाथ विक्रयकिये पण्यको फिर अन्यके हाथ विक्रय करताहै-अथवा दोषवाले (बुरे) पण्यको दोषोंको छिपाकर अदुष्टके समान वेचताहै तो वह मूल्यसे दूने दंडके योग्य होताहै नारदनेभी यहां विशेष दिखायाहै कि ...ण्यके हाथ वेचकर जो अन्यको देताहै वह ...से दूने दंडको और उतनेही पण्यको देने- सदृश ...है और जो निर्दोषको दिखाकर दोष पण का ...तको देताहै वह मूल्यसे दूने दंडको और उतनेही पण्यका दंड देने योग्यहै-यह सब विधि उस पण्यमें जाननी जिसका मूल्यदे दियाहो-और जिस पण्यका मूल्य न दियाहो केवल वाणीसेही क्रयकिया (वेचा) हो वहां क्रेता और विक्रेता निर्णय किये समयको छोडकर प्रवृत्ति वा निवृत्तिमें कोई दोष नहीहै सोई नारदनें कहाहै कि दिया है मोल जिसका ऐसे पण्यकी यह विधि कहीहै- मोल न दियाहोय तो समयको छोडकर विक्रेताका अविक्रय नहीहोता ॥

भावार्थ-जो व्यापारी अन्यके हाथ वेचकर अन्यको वेचताहै वा दुष्ट पदार्थको अदुष्टके समान वेचताहै वहां दंड मूल्यसे दूना होताहै ॥ २५७ ॥

१ अन्यहस्ते च विक्रीय योन्यस्मै तत्प्रयच्छति। ...द्य तद्द्विगुणो दाप्यो विनयस्तावदेव तु । निर्दोषं ...र्शयित्वा तु सदोषं यः प्रयच्छति । स मूल्याद्द्विगुण ...प्यो विनयं तावदेव तु ।

२ दत्तमूल्यस्य पण्यस्य विधिरेष प्रकीर्तितः । अद...त्तेन्यत्र समयान्न विक्रेतुरविक्रयः ।

क्षयंवृद्धिंचवणिजापण्यानामविजानता ।
क्रीत्वानानुशयःकार्यःकुर्वन्षड्भागदंडभाक् ।

पद-क्षयं २वृद्धिं २ च‌ऽ- वणिजा ३ पण्यानां ६ अविजानता ३ क्रीत्वा‌ऽ- न‌ऽ-अनुशयः १कार्यः १ कुर्वन् १ षड्भागदंडभाक्१ ॥

योजना-पण्यानां क्षयं चपुनः वृद्धिं-अविजानता वणिजा पण्यं क्रीत्वा अनुशयः न कार्यः अनुशयं कुर्वन् वणिक् षड्भागदंडभाक् भवतीतिशेषः ॥

तात्पयार्थ-परीक्षा करके क्रीत (खरीदे) पण्योंका क्रय करनेके अनंतर क्रय कालके परिमाणसे अर्घ(भाव)से कीहुई वृद्धिको जो न जानसके वह क्रेता अनुशय न करे-इसी प्रकार विक्रेताभी महार्घ (महंगा) से हुये पण्यके क्षयको नजाने तो अनुशय न करे क्योंकि वृद्धि क्षयके ज्ञानसेही क्रेता और विक्रेताको अनुशय होताहै यह बात निषेधरूपसें कही समझनी-अनुशयके कालकी अवधि तो नारदनें कहाहै कि यदि क्रेता मूल्यसे पण्यको खरीदकर दुष्क्रीत (बुराखरीदा) माने तो विक्रेताको उसी दिन अविक्षत (ज्योंका त्यों) लौटादे-यदि क्रेता दूसरे दिन लौटावे तो तीसवां भाग विक्रेताको दे-और तीसरे दिन उससे दूना दे- इससे परे वह द्रव्य क्रेताकाही होताहै और परीक्षा किये विना जो क्रय विक्रयहै वह पण्यके वैगुण्य (दुष्टता)की अवधि-दश, एक, पांच दिन सप्ताह-इत्यादि वचनसे दिखापड़ी आर्यहै-तिससे इस वाणीकी युक्तिके द्वारा वृद्धि और क्षयका परिज्ञान (जानना) अनुशयका कारण जानागया।

१ क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी विक्रेतुः प्रतिदेयं तत्तस्मिन्नेवाह्न्यविक्षतम् । द्वितीयेह्नि ददत् क्रेता मूल्यात्त्रिंशांशमावहेत्।द्विगुणं तु तृतीयेह्नि परतः क्रेतुरेव तत् ।

घरहों वे प्रतिवेश कहाते हैं उनमें जो वसैं वे प्रातिवेश्य होते हैं- वेदपाठ और सदाचरणसे युक्त उन ब्राह्मणोंका यदि धनी होकर श्राद्ध आदिमें निमंत्रण न देतो यही दशपणका दंड उसकोभी जानना ॥

भावार्थ-यदि नाववाला (मलाह) स्थलके शुल्कको ग्रहण करै तो दशपण दंड देने योग्य होता है-और जो अपने आसपास रहते श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमंत्रण न दे उसकोभी यही दंड जानना ॥ २६३ ॥

देशांतरगतेप्रेतेद्रव्यंदायादबांधवाः ।
ज्ञातयोवाहरेयुस्तदागतास्तैर्विनानृपः ॥

पद-देशांतरगते ७ प्रेते ७ द्रव्यं २ दायादबांधवाः १ ज्ञातयः १ वाऽ- हरेयुः क्रि- तत्२आगताः १ तैः ३ विनाऽ-नृपाः १ ॥

योजना-देशांतरगते प्रेते सति आगताः दायादबांधवाः वा ज्ञातयः तत् द्रव्यं हरेयुः तैः विना नृपः हरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जब संभूय (इकट्ठे होकर) काम करनेवालोंके मध्यमें कोई मनुष्य देशांतरमें जाकर मरजाय तो उसके अंशको दायाद (पुत्रआदिसंतान) वा बांधव (मातृपक्षके मातुल आदि) ज्ञाति (अपत्यवर्गसे भिन्न वासपिंड)-आनकर उस धनको ग्रहण करैं अथवा देशांतरोंसे आये संभूयकारी लें-और वे दायाद आदि न होंयतो राजा ग्रहण करै-इसी वचनमें पढे वाशब्दसे विकल्पसे अधिकारको दिखाते हैं पूर्वको नले इसका नियमतो पत्नीदुहितरः इस वचनसे अपुत्र धनके विभागमें जो कह आये हैं वही यहांभी जानना- शिष्यसब्रह्मचारि ब्राह्मणका निषेध और व्यापारि (साझी) योंकोभी मिलना इस वचन बनानेका प्रयोजन है-व्यापारियोंके मध्यमेंभी जो पिंड देने और ऋण देनेमें समर्थ हो वही धनको ग्रहण करै-यदि किसीमेंभी सामर्थ्यकी विशेषता न होय तो सब विभाग करके ग्रहण करलें-वेभी न होंय तो दशवर्ष पर्यंत दायादोंकी प्रतीक्षा (बाटदेख) करके उनके न आनेपर राजा ग्रहण करले सोई यह सब नारदनें स्पष्ट किया है कि एक मरजाय तो उसका दायाद धनको प्राप्त होता है-दायाद न होय तो कोई अन्यही ले-औरसभी समर्थ होंय तो सबही ग्रहण करैं-वेभी न होंयतो राजा उस धनको दशवर्षतक गुप्त रखै-यदि दशवर्षतक स्थित किये धनका कोई दायाद और स्वामी न आवे तो राजा उस धनको अपने आधीन करले तो धर्ममें हानि नहीं होती ॥

भावार्थ-अन्य देशमें जाकर कोई व्यापारी मरजाय तो उसके द्रव्यको दायाद बांधव वा ज्ञातिके मनुष्य आकर ग्रहण करैं वे न होंयतो राजा ग्रहण करै ॥ २६४ ॥

जिह्मंत्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोन्येनकारयेत् ।
अनेनविधिराख्यातऋत्विक्कर्षककर्मिणां ॥

पद-जिह्मं २ त्यजेयुः क्रि- निर्लाभं २ अशक्तः १ अन्येन ३ कारयेत् क्रि-अनेन ३ विधिः१आख्यातः १ ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम् ६

योजना-जिह्मं निर्लाभं त्यजेयुः-अशक्तः अन्येन कारयेत्-ऋत्विक्कर्षककर्मिणां विधिः अनेन आख्यातः (कथितः) ॥

तात्पर्यार्थ-और जो व्यापारी वंचक (छलिया) है उसको निर्लोभ (लाभको छीन-

१ एकस्य चेत्स्यान्मरणं दायादोस्य तदाप्नुयात् । अन्यो वाऽसति दायादे शक्ताश्चेत्सर्व एव ते ।तदभावे तु गुप्तं तत्कारयेद्दश वत्सरान्। अस्वामिकमदायादं दशवर्षस्थितं ततः । राजा तदात्मसात्कुर्यादेवं धर्मो न हीयते ।

उनको राजाके निवेदन किये विना लाभके लोभसे विक्रय करता है वह सब विना मूल्यके दियेही राजगामि होता है अर्थात् उन सब पण्योंको राजा ग्रहण करले और मोल नदे ॥

भावार्थ-अर्घ (भाव)के नियत करनेसे वीसवां भाग कर राजा ग्रहण करले और निषेध किये और राजाके ,योग्य पण्यको जो वेचता है वह सब राजाका होता है॥ २६१ ॥

मिथ्यावदन्परीमाणंशुल्कस्थानादपासरन् ।
दाप्यस्त्वष्टगुणंयश्चसव्याजक्रयविक्रयी ॥

पद-मिथ्या०- वदन् १ परीमाणं२ शुल्कस्थानात् ५ अपासरन् १ दाप्यः१ तु०- अष्टगुणं २ यः १ च०- सव्याजक्रयविक्रयी॥१ ॥

योजना- परीमाणं मिथ्या वदन् शुल्कस्थानात् अपासरन् चपुनः यः सव्याजक्रयविक्रयी अस्ति सः अष्टगुणं दाप्यः ॥

ता०भावार्थ-जो मनुष्य व्यापारी होकर शुल्कको वंचनाके लिये पण्यके परीमाण (तोल)को मिथ्या कहता है वा शुल्कस्थान (पोनटोटों)से छिपकर जाता है और जो व्याज (बहाना)से अर्थात् यह इसका पण्य है वा इसका इसप्रकार विवादके योग्य पण्यको खरीदता है-वे सब पण्यसे आठगुने दंडदेने योग्य होते हैं॥ २६२ ॥

तरिकःस्थलजंशुल्कंगृह्णन्दाप्यःपणान्दश ।
ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमंत्रणे २६३

पद-तरिकः १ स्थलजं २ शुल्कं२ गृह्णन् १ दाप्यः १ पणान् २ दश२ ब्राह्मणप्रातिवेश्यानां६ एतत्१ एव०-अनिमंत्रणे७॥

योजना- स्थलजं शुल्कं गृह्णन् तरिकः दश पणान् दाप्यः ब्राह्मणप्रातिवेश्यानां अनिमंत्रणे एतत् एव दंडदानं ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-और शुल्क दोप्रकारका जल और स्थलके भेदसे होता है-उनमें स्थलका शुल्क- अर्घको नियत करनेसे वीसवें भागको राजा लेले- इस वचनमें कह आये जलका शुल्क मनु (अ.८ श्लो.४०४-५- ७-) नें कहा है कि नावमें यानसे एक पण मनुष्यसे आधापण- पशु और स्त्रीसे चौथाई पण- और रिक्त (भाररहित) मनुष्यसे पणका आठवां भाग ले- और जो यान (गाडी आदि) भांडोंसे भरे हों उनमें जैसे द्रव्यसे भरे हों उसके अनुसार लें-और रिक्तभांड होय तो और पुरुषोंके पासभी कुछ सामग्री न होयतो उनसे यत्किंचित् द्रव्य ले ले- और दो मास आदिकी गर्भवती स्त्री और संन्यासी मुनि और ब्रह्मचर्य आदि लिंगवाले ब्राह्मण इतने मनुष्योंसे नावकी उतराई न ले-और दोनों प्रकारके भी शुल्कोंमें यह औरभी विशेष कहाहै कि भिन्न (बने) सुवर्णपर शुल्क नही होता-और शिल्पसे जो जीविका करे-चालक-दूत-और जो भिक्षासे मिले-और चोरीका शेषहो और वेदपाठी-संन्यासी और यज्ञ-इनमें शुल्क नही होता-जिससे तरजांय उस नाव आदिको तरि कहते हैं उसके शुल्कका जो अधिकारी वह तरिक कहाता है यदि वह स्थलके शुल्कको ग्रहण करे तो दशपण दंड देने योग्य होता है-वेशनाम वेश्म (घर) काहै और वेशके संमुख वा समीपमें जो

१ पणं यानं तरे दाप्यः पुरुषोर्धपणं तरेः । पादपशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् । भांडपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ॥ रिक्तभांडानि यत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः । गर्भिणीतु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः॥ब्राह्मणालिंगिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं नराः

२ नभिन्नकार्षापणमस्ति शुल्कं न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न दूते।न भैक्षलब्धे न हृतावशेषे न श्रोत्रिये न प्रव्रजिते न यज्ञे ।

मिथ्याकारण साधनके द्वारा अभावकोभी विषय करताही है–जैसे इसकी जब वस्तुका नाश वा चोरी हुईथी तब मैं देशांतरमें था इस प्रकार प्रामाणिक मनुष्योंसे जब देशांतरमें स्थितिको सिद्ध करदिया तब चोरीका अभाव अर्थात् सिद्ध हो गया इससे अपराधसे शुद्धि हो सकती है ॥

भावार्थ–चोरीमें शंकासे पकडाहुआ मनुष्य यदि अपने आत्माको शुद्ध न करै तो चोरीमें गये द्रव्यको दिवाकर चोरका दंड राजा उसको दे ॥ २६९ ॥

चौरंप्रदाप्यापहृतंघातयेद्विविधैर्वधैः ।
सचिह्नंब्राह्मणंकृत्वास्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥

पद–चौरं २ प्रदाप्यऽ–अपहृतं २ घातयेत् क्रि–विविधैः ३ वधैः ३ सचिह्नं २ ब्राह्मणं २ कृत्वाऽ– स्वराष्ट्रात् ५ विप्रवासयेत् क्रि– ॥

योजना–चौरं अपहृतं प्रदाप्य विविधैः वधैः घातयेत्–ब्राह्मणं सचिह्नं कृत्वा स्वराष्ट्रात् विप्रवासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य पूर्वोक्त परीक्षासे वा परीक्षाके विनाही चोर निश्चित होजाय उससे स्वामीको चुराया धन वा उसका मोल दिवाकर नानाप्रकारके वधों (हिंसा) से मरवादे–यहभी उत्तम दंडकी प्राप्तिके योग्य उत्तम द्रव्यके विषयमें समझना–और पुष्प वस्त्र आदि क्षुद्र, मध्यम, द्रव्यकी चोरीके विषयमें नहीं है–क्योंकि इस नारदके वचनसे वधरूप उत्तम साहसका दंड उत्तम द्रव्यके विषयमेंही कहाहै कि तीन साहसोंमें जो दंड बुद्धिमानोंनें कहा है वही दंड तीन प्रकारके द्रव्योंकी चोरीमें क्रमसे जानना–जो यह वृद्धमनुका वचन है कि ये चोर अन्यायसे द्रव्यका संचय करते हैं इससे इन का धन मलरूप है इससे राजा चोरोंको मरवादे धनका दंड न दे–यहभी महान् अपराधके विषयमें समझना–और ब्राह्मण चोरको तो महान् अपराधमेंभी न मरवावे किंतु मस्तकपर चिह्न करकर अपने देशसे निकासदे–और चिह्नभी श्वपदके आकारका करना सोई मनु (अ० ९ श्लो० २३७) नें कहा है कि गुरुकी स्त्रीके गमनमें भग का चिह्न–मदिराका पानमें सुराकी ध्वजाका–और चोरीमें श्वपदका–और ब्रह्महत्यारेके विनाशिरके मनुष्यके चिह्नको करै–यहभी उसको है जो दंडके पीछे प्रायश्चित न किया चाहै– सोई मनु (अ. ९ श्लो. २४०)नें कहा है कि यथोचित प्रायश्चित्तको करतेहुये सब वर्णोंके मस्तकपर राजा चिह्न न करै किंतु उत्तम साहसका दंडदे ॥

भावार्थ– चोरसे चुराया धन स्वामीको दिवायकर अनेक प्रकारके वधोंसे मरवाय दे–और ब्राह्मण चोरको तो चिह्न करके अपने देशमेंसे निकास दे ॥ २७० ॥

घातितेपहृतेदोषोग्रामभर्तुरनिर्गते ।
विवीतभर्तुस्तुपथिचौरोद्धर्तुरवीतके ॥ २७१ ॥

पद–घातिते७ अपहृते७ दोषः १ ग्रामभर्तुः ६ अनिर्गते ७ विवीतभर्तुः ६ तुऽ– पथि७ चौरोद्धर्तुः ६ अवीतके७ ॥

योजना–चौरपदे अनिर्गते सति घातिते अपहृते ग्रामभर्तुः दोषः तुपुनःऽ–पथि विवीत-

१ साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दंडो मनीषिभिः । स एव दंडः स्तेयेपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ।

१ अन्यायोपात्तवित्तत्वाद्धनमेषां मलात्मकम् । अतस्तान्घातयेद्राजा नार्थदंडेन दंडयेत् ।

२ गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्मण्यशिराः पुमान् ।

३ प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम् । नाङ्क्या राज्ञा ललाटे तु दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ।

वसे कि मैं शूद्र नहीहूं– और नामका निन्हव कि मैं लपित्थ नहीहूं–आदि पदसे अपने देश ग्राम कुल आदिके अपलाप (छिपांना)से युक्तभी पकडने योग्य समझने–और द्यूत–वेश्या मदिरापीना आदि व्यसनोंमें जो अत्यंत आसक्त हों–और जिसको चोरीके पकडनेवाले ऐसे पूछें कि तू कहां रहता है यदि वह शुष्कमुख और भिन्नस्वर होजाय अर्थात् उसका मुख सूकजाय और गद्गद वाणीसे बोले–तो वहभी पकडने योग्य है और शुष्कभिन्नमुखस्वराः–इस बहुवचनसे जिनके मस्तकपर स्वेद आजाय उनकाभी ग्रहण है–तैसे जो मनुष्य विनाकारण इसके कितना धन है वा इसका घर कोनसा है इस प्रकार पूंछैं–और जो दूसरा वेष बदलकर अपने स्वरूपको छिपाकर विचरते हैं–और जो आय (प्राप्ति)के अभावमेंभी बहुत व्यय (खर्च) करते हैं और जो विनष्टद्रव्य अर्थात् ऐसे जीर्णवस्त्र–फूटेपात्र आदिको वेचते हैं जिनके स्वामीकी प्रतीति नहो–ये पूर्वोक्त सब चोरकी संभावनासे पकडने योग्य हैं–इस प्रकार नानाप्रकारके चिह्नोंसे पुरुषोंको पकडकर–यह भलीप्रकार परीक्षा करै कि ये चोर है वा साधु हैं–कुछ चिह्नके देखनेसेही चोरका निर्णय न करले–क्योंकि चोरसे भिन्नकेभी लोप्त्र आदिका चिह्न होसकता है सोई नारदेनें कहा है कि अन्यके हाथसे गिरे वा विनाही इच्छाके भूमिपर पडे वा चोरके गेरे लोभकी परीक्षा राजा यत्नसे करै–तैसेही कहा है कि असत्य सत्योंके समान–और सत्य असत्योंके समान अनेक प्रकारके र्भाव होते हैं तिससे परीक्षा करनी कही है ॥

भावार्थ–अन्यभी शंका जाति और नामके छिपानेसे और द्यूत– स्त्री–मदिरापान–इनमें आसक्त–और जिनका मुख शुष्क हो और स्वर (वाणी)का भेद हो–और जो पराये द्रव्य और गृहोंको पूछें–और छिपेहुये रूपसे विचरैं–और जो विना आयके अधिक व्यय करैं–और जो विनष्ट (निंदित वा फटे) द्रव्यका विक्रय करैं (वेचें) ये सब पकडनेयोग्य होते हैं ॥ २६७ ॥ २६८ ॥

गृहीतःशंकयाचौर्येनात्मानंचेद्विशोधयेत् ।
दापयित्वागतंद्रव्यंचौरदंडेनदंडयेत् २६९

पद–गृहीतः १ शंकया ३ चौर्ये ४ नऽ–आत्मानं २ चेतऽ– विशोधयेत क्रि–दापयित्वाऽ– गतं २ द्रव्यं २ चौरदंडेन ३ दंडयेत् क्रि– ॥

योजना–शंकया चौर्ये गृहीतः पुरुषः चेत् (यदि) आत्मानं न विशोधयेत् तर्हि गतं द्रव्यं दापयित्वा चौरदंडेन राजा दंडयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–यदि शंकासे चोरीमें पकडा हुआ मनुष्य उसके निस्तारके लिये अपने आत्माको शुद्ध न करै तो आगे वर्णन किये धन दिवाना वध आदि जो चोरके दंड हैं उनका दंड उसको राजादे इससे चोर अपनेको मानुष प्रमाण (साक्षीआदि) और वह न होयतो दिव्यसे शुद्ध करै कदाचित् कोई शंका करै कि (नाहंचोरः) मैं चोर नही हूं इस मिथ्या उत्तरमें कैसे प्रमाण होसकता है क्योंकि वह अभावरूप है–इसका समाधान कहते हैं–दिव्यप्रमाण भाव अभाव रूपसे दो प्रकारका (रुच्या वान्यतरः कुर्यात्) इस वचनमें कहआये हैं–और मानुष प्रमाण यद्यपि शुद्ध मिथ्याउत्तरमें अभावरूप नही होसकता तथापि किसी कारणसे–मिला है भावरूप जिसमें ऐसे

---

१ अन्यहस्तात्परिभ्रष्टमकामादुत्थितं भुवि। चौरेण वा परिक्षिप्तं लोप्त्रंयत्नात्परीक्षयेत् ।

२ असत्याः सत्यसंकाशाः सत्याश्चासत्यसन्निभाः । दृश्यन्ते विविधाभावास्तस्मादुक्तं परीक्षणं ।

र्णय करे क्योंकि वृद्ध मनुका वचन है कि यदि दिवानेयोग्य उस धनके मोष (चोरी) में संशय होयतो चोरसे शपथ ले अथवा उसके बंधुओंसे चोरीको सिद्ध करावे ॥

भावार्थ-अपनी सीमामें चोरी होयतो ग्राम दे वा जहां चोरका पद जाय वह ग्राम दे क्रोशसे बाहिर चोरी आदि होयतो पांच ग्राम वा दशग्रामोंका समूह दे ॥ २७२ ॥

बंदिग्राहांस्तथावाजिकुंजराणांचहारिणः ।
प्रसह्यघातिनश्चैवशूलानारोपयेन्नरान् २७३

पद-बंदिग्राहान्२तथा॰-वाजिकुंजराणां ६ च॰- हारिणः २ प्रसह्य॰- घातिनः २ च॰- एव॰- शूलान् २ आरोपयेत् क्रि-नरान्२ ॥

योजना-बंदिग्राहान् तथा वाजिकुंजराणां हारिणः चपुनः प्रसह्य घातिनः नरान् राजा शूलान् आरोपयेत् ॥

तात्प॰भावार्थ-बंदिग्राह (जो कैदीको पकडे) और अश्व और हाथियोंके चोर-और जो बलात्कारसे घाती (हिंसक) हैं उनको शूलीपर चढावै-यह वधके प्रकारका उपदेश इस मनु (अ॰ ९ श्लो॰ ३८०)के वचनके अनुसार है कि कोठार आयुधका घर देवमंदिर इनके भेदकोंको और हाथी अश्व रथ इनके चुरानेवालोंको विना विचारेही मारदे ॥

उत्क्षेपकग्रंथिभेदौकरसंदंशहीनकौ ।
कार्यौद्वितीयापराधेकरपादैकहीनकौ २७४

पद-उत्क्षेपकग्रंथिभेदौ १ करसंदंशहीनकौ १ कार्यौ १ द्वितीयापराधे ७ करपादैकहीनकौ १ ॥

[illegible]

कौ [illegible]

तात्पर्यार्थ-और वस्त्र आदिका जो उत्क्षेपण (चुराना) करै वह उत्क्षेपक वस्त्र आदिमें बंधे सुवर्ण आदिको खीचकर वा कांटकर जो चुरावै उसे ग्रंथिभेदक (गंढकटा) कहते हैं-उन दोनोंको प्रथम अपराधमें हस्त और संदंश (संडसी)के समान तर्जनी और अंगूठासे हीन करै-अर्थात् उत्क्षेपकके हाथको और ग्रंथिभेदकके तर्जनी और अंगूठेको क्रमसे छेदन करै-और दूसरे अपराधमें एककर और एकपादसे हीन करै अर्थात् दोनोंके एक २ हाथ-और एक २ पादको क्रमसे छेदन करै-यहभी उस द्रव्यकी चोरीमें समझना जो उत्तम साहस दंडकी प्राप्तिके योग्य है-क्योंकि नारदका वचन है कि उत्तम साहसमें दंड उसका अंगछेदन कहाहै-तीसरे अपराधमें तो वधही होता है सोई मनु (अ॰८-श्लो॰२७७-) नें कहा है कि पहिले ग्रह (पकडना)में ग्रंथिभेदाकी अंगुलियोंको और दूसरे ग्रहमें हाथ और चरणको छेदन करै और तीसरे ग्रहमें वधके योग्य होता है और जाति और द्रव्यके परिमाण और मोलके अनुसार दंडकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ-वस्त्र आदिके चोर और ग्रंथिभेदकके हाथको-और तर्जनी अंगूठेको क्रमसे पहिले अपराधमें छेदन करै और दूसरे अपराधमें एक पाद और एक चरणको छेदन करै ॥ २७४ ॥

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणेसारतोदमः ।
देशकालवयःशक्तीःसंचिंत्यदंडकर्मणि ॥

पद-क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे ७ सारतः॰-

शपथ दाप्यो:बंधुभिर्वापि दापयेत् ॥

२ कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् । हस्त्यश्वरथहर्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥

१ तदंगच्छेद इत्युक्तो दंड उत्तमसाहसे ।

२ अंगुलीर्ग्रंथिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे।द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ।

भर्तुः- अवीतके चौरोद्धर्तुः दोषः भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि ग्रामके मध्यमें मनुष्य आदि प्राणीका वध-वा धनकी चोरी होजाय तो उस समयमें ग्रामके भर्ता (जिमिदार) को चोरकी उपेक्षाका दोष है यदि वह ग्रामसे निकसे चोरके पद (पैड)को म दिखादे-और वह ग्रामका पति दोषके दूर करनेके लिये चोरको पकडकर राजाके अर्पण करदे-अर्पण न करसके तो चोरीका धन-धनके स्वामीको दे-यदि चौरके पदको ग्रामका भर्ता दिखायदे तो जहां पदका प्रवेशहो उसी देशका अधिपति चोर और धनका अर्पण करे-सोई नारदने कहा है कि-जिसके विषय (देश)में धनका लोप (नाश)हो वही चोरको पकडे और धन दे-यदि चोरका पद वहांसे न निकसाहो-और ग्रामसे निकसा पद यदि अन्यत्र न जाय तो सामंत मार्गके पालक और दिशाओंके पालकोंसे दिवावे-विवीत (ग्रामके समीप छुटी भूमि)में चोरी होयतो विवीतका जो स्वामी उसकाही अपराध है-और यदि मार्ग वा विवीतको छोडकर अन्य किसी क्षेत्रमें धनका नाश होयतो चोरोंका उद्धार (निकासना) करनेवाले मार्गपाल और दिशाओंके पालोंका दोष होता है॥

भावार्थ-ग्रामके मध्यमें प्राणीकी हत्या वा चोरी होजाय और चोरका पद ग्रामसे बाहिर न जायतो ग्रामके स्वामीका दोप है-विवीतमें नष्ट होयतो विवीतके स्वामी-का-और विवीतसे भिन्नमें वा मार्गमें नष्ट होयतो तो मार्गपाल आदि चोरोंके वताने-वालोंका दोष है॥ २७१ ॥

स्वसीम्निदद्याद्ग्रामस्तुपदंवायत्रगच्छति । पंचग्रामीबहिःक्रोशाद्दशग्राम्यथवापुनः ॥

पद- स्वसीम्नि७ दद्यात् क्रि-ग्रामः१ तुऽ-पदं१ वाऽ-यत्रऽ- गच्छति क्रि-पंचग्रामी१ बहिः ऽ- क्रोशात्५ दशग्रामी१ अथवा ऽ- पुनः ऽ-॥

योजना-तुपुनः स्वसीम्नि ग्रामः वा यत्र पदं गच्छति सः दद्यात् क्रोशात् बहिः पंचग्रामी-अथवा पुनः दशग्रामी दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-और जब ग्रामसे बाहिर सी-मापर्यंतके क्षेत्रमें चोरी आदि होंय और सी-मासे बाहिर चोरका पद न जाय तो ग्रामके वासीही चोरीके धनको दे-और ग्रामसे बा-हिर निकसा चोरका पद जिस ग्राम आदिमें जाय वही चोरका और धनका अर्पण करे-और जब ग्रामसे बाहिर अनेक ग्रामोंके मध्यमें क्रोशसे बाहिर देशमें घायल मनुष्य वा चौरी मिले और चोरका पद मनुष्योंके संमर्द (आना जाना) आदिसे नष्ट होगया हो तब पांच ग्रामोंका समूह वा दशग्रामोंका समूह चोर आदिको दें यहां पांच वा दश ग्राम दें यह विकल्पका कथन तो इस लिये है कि जैसा २ ग्रामोंका समीप हों वैसे २ ही धनको लौटावें-जब राजा चुराये हुये धनको अन्यसे न दिवायसके तो अपने कोशमेंसे दे-क्योंकि गौतमका वचन है कि चोरके हरे द्रव्यको राजा जीतकर यथास्थान (जहांका तहां) पहुंचा दे अथवा अपने कोशमेंसे दे-यदि चुराये और विना चुरायेका संदेह होयतो मानुष वा दिव्य प्रमाणसे नि-

---

१ गोचरे यस्य लुप्येत तेन चोरः प्रयत्नतः । ग्राह्यो-दाप्योऽथवा शेष पद यदि न निर्गतम् । निर्गते पुनरे-तस्मान्न चेदन्यत्र पातितं । सामंतान्मार्गपालांश्च दिक्पा-लांश्चैव दापयेत् ।

१ चौरहृतमवजित्य यथास्थानं गमयेत् स्वकोशा-द्वादद्यात् ।

अधिक अन्नकी चोरी करे तो वधका दंड और शेष चोरीयोंमें ग्यारह गुना दंड और स्वामीके धनकोदे–जिसमें बीस २० द्रोण अन्न आवे उसे कुंभ कहते हैं–और चुराया द्रव्य और स्वामी इनके गुणकी अपेक्षासे सुभिक्ष– दुर्भिक्ष– आदि कालकी अपेक्षासे चोरको ताडना–अंगछेदन–वध–ये दण्ड देने योग्य हैं–तैसेही संख्याके विशेषसे दंडका विशेष रत्न आदिमें कहा है(अ०८–श्लो०३३२) मनुनें कहाहे कि सुवर्ण चांदी उत्तम वस्त्र और सम्पूर्ण रत्न इनके सौसे अधिक चुरानेमें वधके और पचाससे अधिकके चुरानेमें हाथका छेदन इष्ट है–और शेषकी चोरीमें मूल्यसे ग्यारह गुने दंडको दे –तैसेही द्रव्यके विशेषसेभी मनुनें (अ०८–श्लो०३३३)दण्ड केदाहे कि कुलीन पुरुष और विशेषकर कुलीन स्त्री इनके चुरानेमें वधके योग्य होताहै–अकुलीनोंके हरनेमें तो यह दंड है कि पुरुषकी चोरीमें उत्तम साहस दण्ड कहाहै स्त्रीके अपराधके सर्वस्वका हरण और कन्याके चोरीके अपराधमें वध कहाहै और माषसे न्यून है मोल जिनका ऐसे जो क्षुद्र द्रव्य हैं उनकी चोरीमें मूल्यसे पांच गुना दंड है–क्योंकि यह नारदकी स्मृति है कि काष्ठके पात्र तृण आदि और मिट्टीकी वस्तु–वांस और वांसके पात्र और स्नायु (चरबी) अस्थि चर्म–शाक और आर्द्र मूली–फल और मूल–गोरस–ईखके विकार–लवण– तेल–पक्वान्न और कृतान्न–मत्स्य–मांस–इन सबकी चोरीमें मूल्यसे पांचगुना दंड होता है और जो क्षुद्र द्रव्योंमें कमसे कम सौपण वा पचास पणतक प्रथम साहस कहा है वह उसमें समझना जिसका माप वा माषसे अधिक मोलहो–और जो क्षुद्र द्रव्यके विषय मनुका वचन है कि मूल्यसे दूना दंड होता है वह उन शराव आदिमें है जितना प्रयोजन अल्प है–तैसेही अपराधकी अधिकतासेभी दंडकी अधिकता होती है कि जो चोर रात्रिमें संधि (किवाड)को छेदन करके चोरी करते हैं उनके हाथोंका छेदन करके राजा तीक्ष्ण (पैनी) शूलीपर आरोप (रखना) करै–इस प्रकार सब दंडके कारण अनंत हैं द्रव्यरके प्रति नही कहेजासकते इससे जाति परिमाण आदि कारणोंसे दंडके गुरु लघुभावकी कल्पना करलेनी–यदि पथिकोंका अल्प अपराध होयतो दंड नहीं है–सोई मनु (अ० ८ श्लो०३४१) नें कहा कि नहींहै जिनका जिसकी ऐसा मार्गमें चलनेवाला द्विज किसीके खेतमेंसे दो इक्षु (गांडे) दोमूली लेलेतो दंड देने योग्य नहीं होता–तैसेही चणे मोंठ गोधूम जौं मूंग उडद–इनकी एक मुट्ठीको

१ सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससां । रत्नानां चैव सर्वेषां शतादभ्यधिके वधः ॥ पचाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते । शेषेष्वेकादशगुणं मूल्याद्दंडं प्रकल्पयेत् ॥

२ पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः । रत्नानां चैव सर्वेषां हरणे वधमर्हति ॥ पुरुषे हरतो दंड उक्त उत्तमसाहस. अपराधे तु सर्वस्वं कन्यां तु हरतो वधः ॥

३ काष्ठभांडतृणादीनां मृन्मयानां तथैव च । वेणुवैणवभांडानां तथास्नाय्वस्थिचर्मणाम् ॥ शाकानामार्द्रमूलानां हरणे फलमूलयोः । गोरसेक्षुविकाराणां तथा लवणतैलयोः ॥पक्वान्नानां कृतान्नानां मत्स्यानामामिषस्य च । सर्वेषां मूल्यभूतानां मूल्यात्पंचगुणो दमः ॥

१ तन्मूल्याद्द्विगुणोदमः ।

२ संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वंति तस्कराः । तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् ॥

३ द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके । आददानः परक्षेत्रान्न दंडं दातुमर्हति ॥ चणकव्रीहिगोधूमयवानां मुद्गमाषयोः । अनिर्दिष्टैर्गृहीतव्यो मुष्टिरेकः पथि स्थितैः । तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता ॥ अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥

दमः १ देशकालवयःशक्तीः १ संचिंत्यं १ दंडकर्मणि ७ ॥

योजना-क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतः दमः चिंत्यः देशकालवयःशक्तीः दंडकर्मणि संचिंत्य ॥

तात्पर्यार्थ-अब प्रत्येक द्रव्यकी जाति और परिमाणका ज्ञान और अवस्था शक्ति-देशकालका ज्ञान आदि जो दंडकी अधिकता और न्यूनताके कारण हैं वे अनंत हैं इससे द्रव्य द्रव्यमें कहनेको शक्य नहीं-इसलिये सामान्यसे दंड देनेका उपाय कहते हैं क्षुद्र मध्य और उत्तम द्रव्योंके हरनेमें मूल्य आदिके अनुसार दंडकी कल्पना करनी-क्षुद्र आदि द्रव्योंका स्वरूप नारदनें कहाहै कि मिट्टिके पात्र आसन खट्वा अस्थि-चर्म तृण आदि और श्यामाक अन्न और पका अन्न ये क्षुद्र द्रव्य कहे हैं और रेशमसे भिन्न वस्त्र और गौसे भिन्न पशु सुवर्णसे भिन्न लोहा व्रीही और जो ये मध्यम द्रव्य कहेहैं-और सुवर्ण रत्न रेशमका वस्त्र स्त्री पुरुष गौ हाथी अश्व देवता ब्राह्मण राजा इनका द्रव्य उत्तम द्रव्य कहाता है- तीन प्रकारकेभी इनद्रव्योंमें प्रथम मध्यम उत्तम साहसके दंड-का स्वाभाविक नियम नारदनें ही दिखाया है कि बुद्धिमानोंनें जो दंड तीनो साहसोंमें कहा है वही दंड क्षुद्र मध्यम उत्तम द्रव्योंकी चोरीमें समझना- मिट्टिके पात्र मणि और मल्लिका आदि गौ अश्वसे भिन्न महिष भेड आदि पशु और ब्राह्मणके सुवर्ण अन्न आदि इनमें न्यूनाधिक भाव है इससे अधिक और न्यून दंडकी आकांक्षामें मूल्यके अनुसारसे दंडकी कल्पना करनी और उस दंडकी कल्पनामें दंडके कारण देशकाल अवस्था शक्तिकी भली प्रकार कल्पना करनी और यह जाति द्रव्य परिमाण परिग्रह आदिकाभी उपलक्षण है सोई दिखाते हैं कि शूद्रको चोरीका दंड अष्टपाद (अठगुना) होता है ॥ अर्थात् जिस द्रव्यकी चोरीमें जो दंड कहाहै यदि उस द्रव्यकी चोरी विद्वान् शूद्र करै तो अठगुना दंडदेने योग्य है यहां किल्बिष शब्दसे दंड लेते हैं-और वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण विद्वानोंको क्रमसे उत्तरोत्तर दूना दंड होता है-अर्थात् वैश्यको सोलह गुना क्षत्रियको बत्तीस गुना और ब्राह्मणको चौसठ गुना दंड होता है क्योंकि वर्ण २के प्रति विद्वानको धर्मके अवलंघनमें दंडकी अधिकता है-जिससे विद्वान् शूद्रको चोरीमें दंडकी अधिकता है इसीसे मनुनें यह अर्थ दिखाया है कि (अ० ८- श्लो० ३३७ -३३८-) शूद्रको चोरीका दंड अठगुना और वैश्यको सोलहगुना और क्षत्रियको ३२बत्ती-स गुना-और ब्राह्मणको चौसठ गुना वा सौगुना वा एकसौ अठाईस गुना होता है क्योंकि वह ब्राह्मण उस चोरीके दोष और गुणके जाननेवाला है-तैसेही परिमाणसेभी दंडकी अधिकता देखते हैं सोई मनुनें कहा है (अ०८ - श्लो० ३२०) दशकुंभसे

१ मृद्भाण्डासनखट्वास्थिदारुचर्मतृणादि यत् । शमीधान्यं कृतान्नं च क्षुद्रं द्रव्यमुदाहृतम्॥वासः कौशेय वर्ज्यं च गोवर्ज्यं पशवस्तथा । हिरण्यवर्ज्यं लोह च मध्यं व्रीहियवा अपि ॥ हिरण्यरत्नकौशेय स्त्रीपुंगोगज-वाजिनः।देवब्राह्मणराज्ञां च द्रव्यं विज्ञेयमुत्तमं ॥

२ साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दंडो मनीषिभिः । सएव दंडः स्तेयेपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥

१ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणी-तरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वं ।

२ अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषं। षोड-शैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य तु॥ब्राह्मणस्य चतुः-षष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् । द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्त-द्दोषगुणविद्धिनः ।

३ धान्य दशभ्यः कुंभेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः। शेषेप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धन ॥

योजना-विप्रदुष्टां पुरुषघ्नीं चपुनः सेतुभेदकरीं-अगर्भिणीं स्त्रियं शिलां बद्धा अप्सु प्रवेशयेत् ॥

तात्प०भावार्थ-और विशेषकर प्रदुष्ट (भ्रूणहत्यारी वा स्वगर्भकी पातिनी) और पुरुषकी हंत्री (हत्यारी) और मर्यादाका भेदन करनेवाली ये स्त्री गर्भवती न होंयतो गलेमें शिला बांधकर जलमें प्रवेश करदे ॥ २७८ ॥

विषाग्निदापतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् ।
विकर्णकरनासौष्ठींकृत्वागोभिःप्रमापयेत् ॥

पद-विषाग्निदां २ पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् २ विकर्णकरनासौष्ठीम् २ कृत्वाऽ गोभिः ३ प्रमापयेत् क्रि- ॥

योजना- विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् स्त्रीं विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इसवचनमें पिछले वचनसे अगर्भिणी पदकी अनुवृत्ति होतीहै- जो स्त्री अन्यके मारनेके लिये अन्न जल आदिमें विषदे-और जो दाहके लिये ग्राम आदिमें अग्निको दे-और जो अपने पति गुरु अपत्य इनको मारे-वह स्त्री गर्भिणी न होयतो उसके कान-हाथ-नाक-ओष्ठ-इनको काटकर नदी दमनकिये बैलोंसे मरवाय दे- चोरीके प्रकरणमें जो यह साहसिकका दंड कहा है यह प्रसंगसे है-यह मानने योग्य है

भावार्थ-विष और अग्निदेनेवाली-पति गुरु संतानके मारनेवाली स्त्री गर्भिणी न होयतो उसके कान हाथ नाक ओष्ठ काटकर-बैलोंसे मरवाय दे॥२७९ ॥

अविज्ञातहतस्याशुकलहंसुतबांधवाः ।
प्रष्टव्यायोषितश्चास्यपरपुंसिरताःपृथक् ॥

पद-अविज्ञातहतस्य ६ आशुऽ- कलहं२ सुतबांधवाः १ प्रष्टव्याः १ योषितः १ चऽ- अस्य६ परपुंसि७ रताः १ पृथक्ऽ- ॥

योजना-अविज्ञातहतस्य कलहं सुतबांधवाः चपुनः अस्य परपुंसि रताः योषितः पृथक् आशु (शीघ्रं) प्रष्टव्याः ॥

ता०भावार्थ- अज्ञात पुरुषनें जिसको माराहो उसके संबंधी पुत्र और समीपके बांधव और उसके संबंधकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे राजा पूछेकी इसके संग किसका कलह (लड़ाई) हुईथी ॥ २८० ॥

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामोवाकेनवायंगतःसह ।
मृत्युदेशसमासन्नंपृच्छेद्वापिजनंशनैः २८१

पद-स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामः १ वाऽ- केन ३ वाऽ-अयं१ गतः१ सहऽ-मृत्युदेशसमासन्नं२ पृच्छेत् क्रि- वाऽ- अपिऽ- जनं२ शनैः ऽ-॥

योजना-अयं स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामः वा केन सह गतः इति मृत्युदेशसमासन्नं जनं अपि शनैः पृच्छेत्॥

तात्पर्यार्थ-क्या यह मनुष्य स्त्रीद्रव्य-जीविका इनकी कामनासे और तैसेही किस स्त्रीमें इसकी प्रीतिथी और कोनसे द्रव्यमें प्रीतिथी-और किससे जीविकाकी कामनाथी-और किसके संग देशांतरमें गयाथा-इसरीति और नाना प्रकारोंसे पूर्वोक्त व्यभिचारिणी स्त्रियोंको पृथक्२ पूछे-और तैसेही मरनेके देशके निकट रहनेवाले गोप और वनके वासी आदि जन हैं उनकोभी विश्वास देकर पूर्वोक्त प्रकारसे शनैः२ पूछे-ऐसे अनेक प्रकारसे प्रश्नोंको करके और मारनेवालेका निश्चय करके उसको उचित दंड दे-

भावार्थ-स्त्री द्रव्य जीविकाके लिये यह किसके संग गयाथा-ऐसे मरनेके स्थानके समीप रहनेवाले मनुष्योंको शनैः२ पूछे॥ २८१ ॥

वैपथिक खेतमेंसे लेले जिनको कोई निषेध न करे–तैसेही सातवें भोजनके समयतक जिसको सातों भोजन न मिलेहों अर्थात् तीन दिनका भूखा हो वह उसी समयके भोजनयोग्य हीनकर्मा (नीचजाति)सेभी भोजनके लिये प्रतिग्रहको लेले परंतु अगले दिनके लिये नले ॥

भावार्थ–क्षुद्र–मध्यम–उत्तम–द्रव्यके चुरानेमें–मोलके अनुसार दंड होता है–और दंडके कर्म (देने)में देश काल अवस्था शक्ति–इनकी चिंता (विचार) करने योग्य है ॥ २७५ ॥

भक्तावकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान् ।
दत्वाचौरस्यवाहंतुर्जानतोदमउत्तमः २७६

पद– भक्तावकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान् २ दत्वाऽ– चौरस्य ६ वाऽ– हंतुः ६ जानतः ६ दमः १ उत्तमः १ ॥

योजना–चोरस्य–वा हंतुः भक्तावकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान्– दत्वा जानतः पुरुषस्य उत्तमः दमः–भवति ॥

तात्पर्यार्थ–भक्त (भोजन) अवकाश (निवासका स्थान) और शीतके दूर करनेके लिये अग्नि–और तृषा दूर करनेके लिये जल–मंत्र (चोरीका उपदेश)चोरीके साधनरूप उपकरण– और व्यय अर्थात् परदेशमें जाते हुये चोरको मार्गका खर्च– इतनी वस्तुओंको जो चोर वा हंता (मारनेवाला)को देता है अर्थात् दुष्टताको जानकरभी देता है और जो चोरकी उपेक्षा (छोडना) करता है उसको उत्तमसाहस दंड होता है क्योंकि यह नारदका वचन है कि जो समर्थ होकर चोरकी उपेक्षा करते हैं वेभी उसी दोषके भागी होते हैं ॥

१ शक्ताश्च य उपेक्षते तेपि तद्दोषभागिनः ।

भावार्थ–जो मनुष्य जानकर चोर वा हिंसकको भोजन–घर–अग्नि–जल–संमति–चोरीकी सामग्री–और मार्गका व्यय (खर्च) देता है उसको उत्तमसाहस दंड होता है ॥ २७६ ॥

शस्त्रावपातेगर्भस्यपातनेचोत्तमोदमः ।
उत्तमोवाधमोवापिपुरुषस्त्रीप्रमापणे२७७॥

पद– शस्त्रावपाते ७ गर्भस्य ६ पातने ७ चऽ– उत्तमः १ दमः १ उत्तमः १ वाऽ– अधमः१वाऽ–अपिऽ–पुरुषस्त्रीप्रमापणे ॥ ७ ॥

योजना– शस्त्रावपाते चपुनः गर्भस्य पातने उत्तमः दमः– पुरुषस्त्रीप्रमापणे उत्तमः वा अधमः दमः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ–और पराये गात्रमें शस्त्रका अवपात (मारना) और दासी और ब्राह्मणसे भिन्न गर्भके पातनमें उत्तम साहस दंड जानना–दासीके गर्भपातमें तो–दासीगर्भविनाशकृत्– इत्यादि वचनसे सौपणका दंड कह आये हैं और ब्राह्मणके गर्भमें तो– हत्वा गर्भमविज्ञातं– इस वचनमें ब्रह्महत्याका अतिदेश (मानना) कहेंगे पुरुष और स्त्रीके प्रमापण (मारना)में शील और आचरणकी अपेक्षासे उत्तम वा अधम दंड व्यवस्थासे जानना ॥

भावार्थ–शस्त्रका मारना गर्भका गिराना इनमें उत्तम साहसका दंड–और पुरुष और स्त्रीकी हिंसामें उत्तम वा अधम साहसका दंड होता है ॥ २७७ ॥

विप्रदुष्टांस्त्रियंचैवपुरुषघ्नीमगर्भिणीम् ।
सेतुभेदकरींचाप्सुशिलांबद्ध्वाप्रवेशयेत् ॥

पद–विप्रदुष्टां २ स्त्रियं२ चऽ–एवऽ–पुरुषघ्नीम् २ अगर्भिणीम् २ सेतुभेदकरीम् २ चऽ–अप्सु ७ शिलां २ बद्ध्वाऽ–प्रवेशयेत् क्रि

योजना-विप्रदुष्टां पुरुषघ्नीं चपुनः सेतुभेदकरीं-अगर्भिणीं स्त्रियं शिलां बद्ध्वा अप्सु प्रवेशयेत् ॥

तात्प०भावार्थ-और विशेषकर प्रदुष्ट (भ्रूणहत्यारी वा स्वगर्भकी पातिनी) और पुरुषकी हंत्री (हत्यारी) और मर्यादाका भेदन करनेवाली ये स्त्री गर्भवती न हों यतो गलेमें शिला बांधकर जलमें प्रवेश करदे ॥ २७८ ॥

विषाग्निदापतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् ।
विकर्णकरनासौष्ठींकृत्वागोभिःप्रमापयेत् ॥

पद-विषाग्निदां २ पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् २ विकर्णकरनासौष्ठीम् २ कृत्वा ऽ गोभिः ३ प्रमापयेत् क्रि- ॥

योजना- विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् स्त्रीं विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इसवचनमें पिछले वचनसे अगर्भिणीं पदकी अनुवृत्ति होतीहै-जो स्त्री अन्यके मारनेके लिये अन्न जल आदिमें विषदे-और जो दाहके लिये ग्राम आदिमें अग्निको दे-और जो अपने पति गुरु अपत्य इनको मारे-वह स्त्री गर्भिणी न होयतो उसके कान-हाथ-नाक-ओष्ठ-इनको काटकर नदी दमनकिये बैलोंसे मरवाय दे-चौरीके प्रकरणमें जो यह साहसिकका दंड कहा है यह प्रसंगसे है-यह मानने योग्य है

भावार्थ-विष और अग्निदेनेवाली-पति गुरु संतानके मारनेवाली स्त्री गर्भिणी न होयतो उसके कान हाथ नाक ओष्ठ काटकर-बैलोंसे मरवाय दे॥२७९ ॥

अविज्ञातहतस्याशुकलहंसुतबांधवाः ।
प्रष्टव्यायोषितश्चास्यपरपुंसिरताःपृथक् ॥

पद-अविज्ञातहतस्य ६ आशुऽ- कलहं२ सुतबांधवाः १ प्रष्टव्याः १ योषितः १ चऽ- अस्य६ परपुंसि७ रताः १ पृथक्ऽ-॥

योजना-अविज्ञातहतस्य कलहं सुतबांधवाः चपुनः अस्य परपुंसि रताः योषितः पृथक् आशु (शीघ्रं) प्रष्टव्याः ॥

ता०भावार्थ- अज्ञात पुरुषने जिसको माराहो उसके संबंधी पुत्र और समीपके बांधव और उसके संबंधकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे राजा पूछेकी इसके संग किसका कलह (लडाई) हुईथी ॥ २८० ॥

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामोवाकेनवायंगतःसह ।
मृत्युदेशसमासन्नंपृच्छेद्वापिजनंशनैः २८१

पद-स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामः १ वाऽ- केन ३ वाऽ-अयं१ गतः१ सहऽ-मृत्युदेशसमासन्नं२ पृच्छेत् क्रि- वाऽ- अपिऽ- जनं२ शनैः ऽ-॥

योजना-अयं स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामः वा केन सह गतः इति मृत्युदेशसमासन्नं जनं अपि शनैः पृच्छेत्॥

तात्पर्यार्थ-क्या यह मनुष्य स्त्रीद्रव्यजीविका इनकी कामनासे और तैसेही किस स्त्रीमें इसकी प्रीतिथी और कोनसे द्रव्यमें प्रीतिथी-और किससे जीविकाकी कामनाथी-और किसके संग देशांतरमें गयाथा-इसरीति और नाना प्रकारोंसे पूर्वोक्त व्यभिचारिणी स्त्रियोंको पृथक्२ पूछे-और तैसेही मरनेके देशके निकट रहनेवाले गोप और वनके वासी आदि जन हैं इनकोभी विश्वास देकर पूर्वोक्त प्रकारसे शनैः२ पूछे-ऐसे अनेक प्रकारसे प्रश्नोंको करके और मारनेवालेका निश्चय करके उसको उचित दंड दे-

भावार्थ-स्त्री द्रव्य जीविकाके लिये यह किसके संग गयाथा-ऐसे मरनेके स्थानके समीप रहनेवाले मनुष्योंको शनैः२ पूछे॥ २८१ ॥

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः ।
राजपत्न्यभिगामीचदग्धव्यास्तुकटाग्निना॥

पद-क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः१ राजपत्न्यभिगामी१ चऽ- दग्धव्याः १तुऽ- कटाग्निना३॥

योजना-क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः चपुनः राजपत्न्यभिगामी कटाग्निना दग्धव्याः ॥

ता०भावार्थ-पकेफल और सस्यसेयुक्त क्षेत्र वेश्म (घर) वन-ग्राम-और पूर्वोक्त विवीत-खलियान-इनका दाह करनेवाले और राजपत्नीके संग गमनका कर्ता इन सबको कट (वीरण तृण)से लपेटकर दग्ध करदे- इन क्षेत्र आदिके दग्धकरने वालोंके दंडका कथन- मारण दंडके प्रसंगसे है॥ २८२ ॥

इति स्तेय प्रकरणम् ॥ २३ ॥

अथ स्त्रीसंग्रहणप्रकरणम् २४

पुमान्संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः।
सद्योवा कामजैश्चिन्हैःप्रतिपत्तौद्वयोस्तथा॥

पद–पुमान्१ संग्रहणे ७ ग्राह्यः १ केशाकेशि–परस्त्रियाः ६ सद्यः–वा–कामजैः ३ चिन्हैः ३ प्रतिपत्तौ७ द्वयोः ६ तथा–

योजना–परस्त्रियाः संग्रहणे प्रवृत्तः पुमान् केशाकेशि आदिभिः वा कामजैः चिन्हैः तथा द्वयोः संप्रतिपत्तौ सत्यां सद्यः ग्राह्यः॥

तात्पर्यार्थ–अब स्त्रीसंग्रहण नाम विवादके पदकी व्याख्या करते हैं– प्रथम साहस आदि दंडकी प्राप्तिके लिये उसको तीन प्रकारका स्वरूप व्यासनें कहाहै कि वह प्रथम मध्यम उत्तम भेदसे तीन प्रकारका है–भिन्न २ जो देश काल भाषा इनसे और निर्जन स्थानमें पराई स्त्रीके संग कटाक्षसे देखना–हंसना–प्रथम साहस–और गंध माला–भेजना–धूप भूषण वस्त्र और अन्न पानका लोभदेना मध्यम साहस– और एकांतमें संग बैठना–परस्परका आश्रय केशाकेशि ग्रहण यह सम्यक् संग्रह कहा है स्त्री पुरुषके मैथुनको संग्रह कहते हैं–संग्रहणमें प्रवृत्तहुआ पुरुष–केशाकेशि आदि चिह्नोंसे जानकर ग्रहण करने योग्य है–परस्पर केशोंको पकडकर जो क्रीडा उसे केशाकेशि कहते हैं– केशाकेशिपदमें– तत्रतेनेदमितिसरूपे– इस सूत्रसे बहुव्रीहिसमास होता है उस सूत्रका अर्थ यह है कि सप्तम्यंत और तृतीयांत समान रूप (आकार)के दोनों पद ग्रहण करने और प्रहार करने अर्थमें और इस युद्ध इस अर्थमें समासको प्राप्तहों–फिर–इच्कर्मव्यतिहारे– इस सूत्रसे–केशाकेश–समासके अंतमें इच् प्रत्यय होजाता है–और केशाकेशि शब्दको अव्यय होनेसे तृतीया (भिस्) विभक्तिका लुक् होजाता–है–तिससे यह अर्थ होजाता है कि पराई भार्याके संग केशाकेशि क्रीडाकरके नखोंके नवीन हुये व्रणोंसे और प्रीतिसे किये चिन्ह वा दोनोंकी परस्पर संमतिसे ग्रहणमें प्रवृत्तहुआ मनुष्य पकडने योग्य है–यहां परस्त्रीकाग्रहण– नियुक्त और अवरुद्धा आदि स्त्रियोंके निषेधार्थ है॥

भ.वार्थ– पराईस्त्रीकेसंगकेशाकेशिसंग्रहण करनेमें और तत्कालके गात्रमें नख आदिके छेद आदि चिह्नोंसे और स्त्री और पुरुष दोनोंकी संमतिपाचि (सलाह)में– पकडने योग्य है॥ २८३॥

नीवीस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम्।
अदेशकालसंभाषंसहैकासनमेवच॥२८४॥

पद– नीविस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम् २ अदेशकालसंभाषं २ सहैकासनं २ एव–च–॥

योजना– नीविस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनं अदेशकालसभाषं–चपुनःसह एकासनं कुर्वाणः पुरुषः ग्राह्यः॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य पराई स्त्रीके परिधानवस्त्र (लहंगा)की ग्रंथिके स्थानका–कुचप्रावरण (चोली) जंघा और शिरके–केशोंका स्पर्श अभिलाषासे करै–तैसेही निर्जन देश और जनोंका समूह और अंधकारसे युक्त देशमें पराई स्त्रीके संग संभाषण करै–और पराई भार्याके संग एक शय्या आदिपर रमण करनेकी इच्छासे बैठे–स्त्री

---

१ त्रिविधं तत्समाख्यातं प्रथमं मध्यमोत्तमम्॥ अदेशकालभाषाभिर्निर्जने च परस्त्रियाः। कटाक्षावेक्षणं हास्यं प्रथमं साहसं स्मृतम्॥ प्रेषणं गंधमाल्यानां धूपभूषणवाससाम्। प्रलोभनं चान्नपानैर्मध्यमं साहसं स्मृतम्॥ सहासनं विविक्तेषु परस्परमुपाश्रयः॥ केशाकेशिग्रहं चैव सम्यक् संग्रहणं स्मृतम्॥

संग्रहणमें प्रवृत्त वहभी पुरुष ग्रहण करनेयोग्य है—यहभी उस पुरुषके विषयमें है जिसमें दोषकी शंकाहो अन्य पुरुषको तो दोष नहीं है सोई मनु (अ० ८ श्लो० ३५५) नें कहोहै कि जो मनुष्य पहिला अपराधी नहो और किसी कारणसें परस्त्रीके संग वार्तालाप करे तो वह किंचित् भी दोषको प्राप्त नही होता क्योंकि उसका किंचित्भी अपराध नहीं जो मनुष्य पराई स्त्री उसका स्पर्श करे और वह क्षमा करले तो वहभी पकडने योग्य है वहभी मनु (अ. ८ श्लो. ३५८ नेही कहा है जो मनुष्य गुप्त स्थानमे स्त्रीका स्पर्श करे वा स्त्रीके स्पर्शको सह ले यह सब परस्परकी सम्मतिमें संग्रहण कहाहै और जो मनुष्य अपनी बडाईके लिए सर्पके समान क्रूरजनोंके सामने यह कहे कि इस चतुर स्त्रीके संग मैने कईवार रमण किया है वहभी पकडने योग्य मनुनें कहा है कि अभिमान वा मोह वा बडाईसे जो स्वयं यह कहे कि यह स्त्री मैनें पहिले भोगी है वहभी संग्रहण कहाता है ॥

भावार्थ—नीवी—चोली—जंघा—केश—इनका स्पर्श—और कुदेश और कुसमयमें वार्तालाप और एकासनपर बैठना इनको जो पराई स्त्रीके संग करे वहभी पकडने योग्य है॥२८४॥

स्त्रीनिषेधेशतंदद्याद्विशतंतुदमंपुमान् ।
प्रतिषेधेतयोर्दंडोयथासंग्रहणेतथा॥२८५॥

पद—स्त्री १ निषेधे ७ शतं २ दद्यात्क्रि—द्विशतं २ तुऽ—दमं २ पुमान् १ प्रतिषेधे ७ तयोः ६ दण्डः १ यथाऽ—संग्रहणे ७ तथाऽ—

योजना—निषेधे स्त्री शतं तुपुनः पुमान् द्विशतं दमं दद्यात् प्रतिषेधे तयोः दण्डः—यथा संग्रहणे तथा ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ—जिस मनुष्यके संग संभाषण आदि करनेका पति पिता आदि निषेध करदें उसके संग संभाषण करती हुई स्त्री सौपण दंडदे—और इसी प्रकार निषेध करनेपर वार्तालाप आदि करता हुआ मनुष्य दोसौपण दंडदे—और यदि निषेध करनेपर दोनों वार्तालाप आदिमें प्रवृत्त होयतो उनको वही दंड होता है जो वर्णोंके अनुसार संग्रहण (भोग)में कहेंगे—यहभी चारण आदिको भार्याको छोडकर समझना—क्योंकि यह मनु (अ० ८ श्लो० ३६२) की स्मृति है कि यह विधिचारणोंकी स्त्री— और जो अपने देहसे जीते हैं उनकी (मजूर) स्त्री—इनमें नहीं है क्योंकि वे अपनी स्त्रियोंको सजाते हैं और छिपाकर परपुरुषोंके समीप भेजते हैं ॥

भावार्थ—निषिद्ध की हुई जो स्त्री परपुरुषके संग और निषिद्धकिया हुआ पुरुष पराई स्त्रीके संग संभाषण आदि करें तो स्त्री सौपण दंड—और पुरुष दोसौपण दंडदे— यदि निषेध करनेपर दोनोंही वार्तालाप आदि करें तो उनको वही दंड है जो पराई स्त्रीके भोगमें कहेंगे ॥२८५॥

स्वजातावुत्तमोदंडआनुलोम्येतुमध्यमः ।
प्रातिलोम्येवधःपुंसोनार्याःकर्णादिकर्तनं ॥

पद—सजातौ ७ उत्तमः१ दंडः १—आनुलोम्ये ७ तु ऽ— मध्यमः १ प्रातिलोम्ये ७ वधः१ पुंसः६ नार्याः ६ कर्णादिकर्तनम्१—

योजना—सजातौ उत्तमः—तुपुनः आनुलो-

---

१ यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।नदोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥

२ स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा ॥ परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं मतं ॥

३ दर्पाद्वा यदि वा मोहाच्छ्लाघया वा स्वयं वदेत् । पूर्वं मयेयं भुक्तेति तच्च संग्रहणं स्मृतम् ।

१ नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु । सज्जयंति हि ते नारीं निगूढाश्चारयंति च ।

म्ये– मध्यमः दंडः भवति–प्रातिलोम्ये पुंसः वधः–नार्याः कर्णादिकर्तनम्–दंडः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ– यदि चारोंवर्ण– बलात्कारसे अपनी सजातीय और गुप्त (पडदेदार) पराई स्त्रीके संग गमन करें तो उत्तम दंड (अस्सी ऊपरसहस्रपण) होता है–और जो आनुलोम्यसे अर्थात् उत्तमवर्ण नीचवर्णकी स्त्रीके संग गमन करें तो मध्यम दंड जानना –और अपने वर्णकी–गुप्तसे भिन्न स्त्रीके– और गुप्तभी नीचे वर्णकी स्त्रीके संग गमन करे तो मनुनें विशेष कहा है (अ० ८ श्लो० ३७८–३८३) कि यदि ब्राह्मण अगुप्त ब्राह्मणीके संग बलसे गमन करै तो सहस्रपण दंड–और चाहती हुई ब्राह्मणीके संग गमन करै तो पांचसौ पण दंड–दे–और यदि गुप्त उन पूर्वोक्तोंके संग गमन करे तो सहस्रपण दंडदे–और क्षत्रिय और वैश्यकोंभी शूद्राके गमनमें सहस्रपण दंड होता है– यहभी गुरु और मित्रकी भार्यासे भिन्नके विषयमें समझना–क्यौंकि नारदका वचन है कि माता माताकी बहिन–सास–मातुलकीस्त्री–पिताकी भगिनी–पितृव्य मित्र शिष्य इनकी स्त्री–भगिनी–भगिनीकी सखी–पुत्रवधू–पुत्री–आचार्यकी स्त्री–सगोत्रा– शरणआईहुणी– संन्यासिनी– धात्री (धाय)– साध्वी– उत्तमवर्णकी– इनमें अन्यतम (कोईसी) स्त्रीके संग गमन जो करै वह गुरुतल्पग कहता है उसका दंड शिश्न (लिंग)के काटनेसे अन्य नहीं है– और प्रतिलोममें उत्तम वर्णकी स्त्रीके गमनमें क्षत्रिय आदि वर्णोंमें पुरुषका वध होता है– यहभी गुप्त स्त्रीके विषयमें है अन्यके गमनमें तो धनका दंड होता है क्योंकि यह मनुकी स्मृति है (अ० ८ श्लो० ३७७–३७८–) कि यदि वे दोनों क्षत्रिय वैश्य–गुप्ता ब्राह्मणीके संग–धर्मसे पतित हुये गमन करें तो शूद्रके समान दंड देनेयोग्य हैं वा कटाग्निसे दग्ध करने–यदि वैश्य और क्षत्रिय अगुप्ता ब्राह्मणीके संग गमन करैं तो वैश्यको पांच सौ पणका और क्षत्रियको सहस्र पणका दंड दे–और शूद्र अगुप्ता उत्कृष्ट वर्णकी स्त्रीके संग गमन करे तो लिंग छेदन और सर्वस्वका हरना–और गुप्ताके संग गमन करे तो वध और सर्वस्वका अपहार होता है–यह मनुनेंही कहा है कि (अ० ८ श्लो० ३७३) यदि शूद्र, गुप्ता वा अगुप्ता द्विजाति स्त्रीकेसंग गमन करै तो अगुप्ताके गमनमें अंग और सर्वस्वसे हीन करै और गुप्ताके संग गमन करै तो सर्वस्वका हरण करै– यदि स्त्रीहीन वर्णके पुरुषके संग गमन करै तो कर्ण और आदिपदसे नासिकाका छेदन करै और अनुलोममें सजातीय पुरुषके संग गमन करनेवालीके दंडकी कल्पना अपनी बुद्धिसे करनी–और वध आदिका उपदेश राजाकेही करनेयोग्य है क्योंकि प्रजापालनका

---

१ सहस्र ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्ता विप्रा बलाद्व्रजन् । शतानि पच दंड्यः स्यादिच्छत्या सह संगतः ॥ सहस्र ब्राह्मणो दंड दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् । शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्र तु भवेद्दमः ॥

२ माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा । पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा ॥ दुहिताचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता । राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या ॥ आसामन्यतमां गच्छन् गुरुतल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्र नान्यो दंडो विधीयते ।

१ उभावपि हितावेव ब्राह्मण्या गुप्तयासह । विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना–ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु सेवेतां वैश्यपार्थिवौ । वैश्य पचशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ।

२ शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्–अगुप्तमंग सर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ।

अधिकार राजाकोही है-द्विजातिमात्रको नही है-क्योंकि उसमें यह निषेध है कि ब्राह्मण परीक्षाके लियेभी शस्त्रको ग्रहण न करै-और जहां राजाको निवेदन करनेमें कालका विलंबहो और कार्यके अतिपात (विगाड)की शंका होयतो स्वयंही जार आदिको हतदे-(मनु अ० ८ श्लो० ३४८) का वचन है कि जहां धर्मका अवरोध (रोक वा नाश)हो वहां ब्राह्मणभी शस्त्रको ग्रहण करै-मनु (अ० ८ श्लो० ३५१)का वचन है कि आततायी (शस्त्रधारी)के मारनेमें-मारनेवालेको कुछ दोष नही होता है चाहे प्रकट वा अप्रकट मारे-क्योंकि क्रोधही क्रोधको नष्ट करता है इस वचनसे शस्त्रग्रहण करनेकी आज्ञा ब्राह्मणकोभीहै-तैसे क्षत्रिय और वैश्य परस्परकी स्त्रीकि संग गमन करैं तो क्रमसे सहस्रपण और सौपण दंड जानने सोई मनु (अ० ८ श्लो० ३८२) नें कहा है कि वैश्य गुप्ता क्षत्रियाके संग और क्षत्रिय वैश्याके संग गमन करैं तो वे दोनों उस दंडके योग्य होते हैं जो अगुप्ता ब्राह्मणीके गमनमें होता है ॥

भावार्थ-सजातीय स्त्रीके गमनमें उत्तम और अनुलोम स्त्रीके गमनमें मध्यम दंड सब वर्णोंको होता है-और प्रतिलोम स्त्रीके *गमनमें पुरुषका वध और स्त्रीका कान* आदिका काटना होता है ॥ २८६ ॥

अलंकृतांहरेत्कन्यामुत्तमंह्यन्यथाधमम् ।
दंडंदद्यात्सवर्णासुप्रातिलोम्येवधःस्मृतः ॥

पद-अलंकृतां २ हरेत् क्रि-कन्यां २ उत्तमं २ हि ऽ-अन्यथा ऽ-अधमं २ दण्डम् २ दद्यात् क्रि-सवर्णासु ७ प्रातिलोम्ये ७ वधः १ स्मृतः १ ॥

योजना-यः अलंकृतां कन्यां हरेत् तस्य उत्तमं अन्यथा अधमं दंडं सवर्णासु दद्यात् प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः ॥

तात्प०-भा०-विवाहके समय अलंकार की हुई कन्याको हरे तो उत्तम साहस और विना विवाहके समय हरे तो अधम साहस दंड होता है-और प्रतिलोम वर्णकी कन्याके हरनेवाले क्षत्रिय आदिका तो वध कहा है यहां दंडके कहनेसे चुरानेवालेसे छीनकर वह कन्या अन्यको विवाह देनी यह बात अर्थात् जानीगई ॥ २८७ ॥

सकामास्वनुलोमासुनदोषस्त्वन्यथाधमः ।
दूषणेतुकरच्छेदउत्तमायांवधस्तथा ॥२८८

पद-सकामासु ७ अनुलोमासु ७ न ऽ-दोषः १ तु ऽ-अन्यथा ऽ-दमः १ दूषणे ७ तु ऽ-करच्छेदः १ उत्तमायां ७ वधः १ तथा ऽ- ॥

योजना-सकामासु अनुलोमासु गमने दोषः न भवति अन्यथा दमः भवति तुपुनः दूषणे करछेदः तथा उत्तमायां वधो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि अनुरागवाली हीनवर्णकी कन्याका अपहरण (चुराना) करै तो कुछ दोष नही और विना इच्छावालीका अपहरण करै तो प्रथम साहसका दंड होता है और अनुलोम वर्णकी नहीं चाहती हुई कन्याको बलात्कारसे नखक्षत (घाव) आदिसे दूषित करै तो उसके हाथ छेदन करने योग्य हैं और जो उसी पूर्वोक्त कन्याकी योनि अंगुलिके प्रक्षेपसे क्षत करके

---

१ ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रं नाददीत ।

२ शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मोयत्रो परुध्यते ।

३ नाततायिवधेदोषो हन्तुर्भवति कश्चन । प्रकाशं वा प्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति--

४ वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् यो ब्राह्मण्यामगुप्तायांतावुभौ दण्डमर्हतः ।

दूषण लगाता है तो उसको यह मनुका (अ० ८ श्लो० ३६७) कहा हुआ दंड जानना–कि जो मनुष्य नहीं सहकर अभिमानसे कन्याको दूषित करता है उसकी शीघ्र अंगुलि काटने योग्य है और वह छःसौ ६०० पण दंड देने योग्य है और यदि चाहती हुई कन्याको पूर्वोक्त प्रकारसे दूषित करै तो मनुनें (अ० ८ श्लो० ३६८) यह विशेष कहा है कि यदि सजातीय वर्णकी चाहती हुई कन्याको दूषित करै तो अंगुलि छेदनके योग्य नहीं होता है और पुनः सगकी निवृत्तिके लिए दोसौ पण दंड देने योग्य है और जब कन्याही, और वही स्त्री, कन्याको दूषित करै तो मनुनेंही (अ० ८ श्लो० ३६९) यह कहा है कि जो कन्याही कन्याको दूषित करै तो दोसौ पण दंड–और बडी स्त्री करै तो शीघ्रही मूंडने योग्य और अंगुलियोंके छेदन और खर (गधा) पर चढाने योग्य है–यहां कन्याके दूषणसे योनिमें घाव लेना और जो उत्तम जातिकी चाहती वा विना चाहती हुई कन्यासे क्षत्रिय आदि गमन करता है उसका मारनाही दंड इस मनु (अ० ८ श्लो० ३६६) के वचनसे है कि उत्तम वर्णकी कन्याके संग गमन करता हुआ हीन वर्ण वधके योग्य होता है–और जो चाहती हुई सवर्णा कन्यासे गमन करता है वह उस कन्याके पिताको दो गौ शुल्करूपसे देदे यदि वह पिता चाहै पिता शुल्करूपसे न चाहता होय तो वे दोनें गौ राजको देदे यदि नहीं चाहती हुई सवर्णाके संग गमन करै तो वधही कहा है–मनु (अ० ८ श्लो० ३६३–३६४) समान वर्णकी कन्याका सेवन करता हुआ मनुष्य पिता चाहैं तो शुल्कदे और नहीं चाहती हुईके संग जो गमन करता है वह वधके योग्य होता है और चाहती हुई कन्याको दूषित करता हुआ तुल्य वर्णका मनुष्य वधको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ–इच्छावाली अनुलोम कन्याका गमन करता हुआ मनुष्य दोषभागी नहीं होता और न चाहती हुएके संग गमन करै तो दंड होता है और दूषित करनेमें हाथोंका छेदन और उत्तम वर्णकी कन्याको दूषित करै तो वधके योग्य होता है ॥ २८८ ॥

शतंस्त्रीदूषणेदद्याद्द्वेतुमिथ्याभिशंसने ।
पशून्गच्छन्शतंदाप्योहीनांस्त्रींगांचमध्यमं

पद–शतं २ स्त्रीदूषणे ७ दद्यात् क्रि– द्वे २ तु–मिथ्याभिशंसने ७ पशून् २ गच्छन् १ शतं २ दाप्यः १ हीनां २ स्त्रीं २ गां २ च–मध्यमं २ ॥

योजना–स्त्रीदूषणे शतं–मिथ्याभिशंसने द्वेशते दद्यात् पशून् गच्छन् सन् शतं दाप्यः चपुनः हीनां स्त्रीं चपुनः गां गच्छन् सन् मध्यमं दाप्यः–

तात्पर्यार्थभा०–यहां स्त्री शब्दसे प्रकरणके बलसे कन्या समझनी उस कन्याके विद्यमानही अपस्मार (मिर्गि) राजयक्ष्मा आदि बडे निंदित रोग और मैथुन आदिको प्रकट करके जो मनुष्य उसको यह अकन्या (मैथुनके अयोग्य) है इस प्रकार दूषित करता है वह सौपण दंड देने योग्य है और

१ अविवाह्या तु य. कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः । तस्याशु कर्त्ये अंगुल्यौ दंड चार्हति षट्शत ।

२ सकामा दूषय स्तुल्यो नांगुलिच्छेदमर्हति। द्विशत तु दम दाप्य. प्रसंगविनिवृत्तये ।

३ कन्यैव कन्यायां कुर्यात्तस्यास्तु द्विशतो दमः यातु कन्यां प्रकुर्यात् स्त्रीसा सद्योमौण्ड्यमर्हति।

४ उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।

१ शुल्क दद्यात्सेवमानः सममिच्छेत्पिता यदि । योकामा दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति। सकामां दूषयस्तुल्यो न वध प्राप्नुयान्नरः ।

जो कन्यामें नही विद्यमान दोषोंको प्रकट करता है वह दोसौपण देने योग्य है और जो गौसे भिन्न पशुका गमन कर वह सौपण दंड देने योग्य है और जो मनुष्य सकाम वा निष्काम चाण्डालकी स्त्री वा गौके साथ गमन करता वह मध्यम साहस दंडके योग्य होता है ॥ २८९ ॥

अवरुद्धासुदासीपुभुजिष्यासुतथैवच ।
गम्यास्वपिपुमान्दाप्यः पंचाशत्पणिकंदमम् ॥

पद–अवरुद्धासु ७ दासीषु ७ भुजिष्यासु ७ तथाऽ–एवऽ–चऽ–गम्यासु ७ अपिऽ–पुमान् १ दाप्यः १ पंचाशत्पणिकं२ दमं २॥

योजना–अवरुद्धासु दासीषु चपुनः तथैव भुजिष्यासु गम्यासु अपि आसु गच्छन् पुमान् पंचाशत्पणिकं दमं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ–इस वचनमें पिछले वचनमेंसे गच्छन् पद आता है–पूर्वोक्त है लक्षण जिनका ऐसी अपने वर्णकी जो स्त्री वे दासी कहाती हैं उनको यदि स्वामी अपनी शुश्रूषामें हानि न पडनेके लिये अपने घरमेंही अन्य पुरुषोंके संग भोगनिवृत्तिके अर्थ रोक कर रक्खे तो वे अवरुद्धा दासी कहाती हैं–और पुरुषकी स्त्री बन कर जो रहैं वे भुजिष्या होती हैं–जो दासी अवरुद्धा और भुजिष्या होंयतो उनमें और चशब्दसे वेश्या और स्वैरिणी साधारण स्त्री जो भुजिष्या हैं उन सब साधारण मनुष्योंके गमन करने योग्य स्त्रियोंमें गमन करता हुआ मनुष्य पचास पण दंड देने योग्य है क्योंकि वे अन्यका परिग्रह होनेसे पराई स्त्रीके तुल्य हैं–यही नारदनें स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मणीसे भिन्न स्वैरिणी–वेश्या दासी निष्कासिनी जो स्त्री हैं वे अनुलोम क्रमसे गमन करने योग्य हैं–प्रतिलोमसे नही–यदि वे भुजिष्या होंयतो पराई दाराके समान दोष है–गमन करने योग्यभी उनमें गमन न करे क्योंकि वे पराई परिग्रह (स्त्री) हैं–स्वामीकी नही रोकी जो दासी निष्कासिनी होती है–कदाचित् कोई शंका करे कि स्वैरिणी आदिको साधारण रूपसे गमन योग्य कहना अयोग्य है क्योंकि जाति वा शास्त्रसे कोईभी स्त्री जगत्में साधारण नही मिल सकती–सोई दिखाते हैं–कि स्वैरिणी और दासी वर्णकी ही स्त्री होती हैं–क्योंकि मनुका वचन है कि जो स्वैरिणी पतिको छोडकर अपने सवर्णके पुरुषका कामनासे आश्रय लेती है ऐसे वर्णोंके अनुलोमक्रमसे दासभाव होताहै प्रतिलोमसे नही–और अपने वर्णकी स्त्रीको पतिके जीवते वा मरेपर अन्य पुरुषके संग भोग करनाभी नही घटता क्योंकि यह मनुमें (अ० ५ श्लो० १५४–१५७) निषेधका वचन है कि दुष्ट स्वभाव–यथेच्छाचारी–गुणोंसे हीनभी पतिकी, साध्वी स्त्री देवताके समान परिचर्या करे–चाहे पुष्प मूल फल इन श्रेष्ठोंसे देहको शुष्क करदे परंतु पतिके मरने पर–अन्य पुरुषका नामभी नले–और कन्या अवस्थामेंभी स्त्री साधारण नही हो सकती क्योंकि उसी कन्याके दानका शास्त्रसे उपदेश है जिसकी पितानें रक्षाकर रक्खी हो–और दाताके अभावमें भी वैसी हीको स्वयंवरका उपदेश

१ स्वैरिण्यब्राह्मणी वेश्या दासी निष्कासिनी च याः गम्याःस्युरानुलोम्येन स्त्रियो न प्रतिलोमतः ।आस्वेव तु भुजिष्यासु दोषः स्यात्परदारवत् । गम्यास्वपि हि नोपे याचत्ताः परपरिग्रहाः ।

१ स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥

२ दुःशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः । परिचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः । कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ।

है–और दासी होनेसे कुछ अपने धर्मसे पतित नही होती क्योंकि परतंत्र ही जाना दासभाव है कुछ अपने धर्मका त्याग नही–वेश्याभी साधारणी नही है अनुलोम वर्णोको छोडकर गमनके योग्य अन्य कोई जाति नही है–और उनकेही मध्यमें मानोगे तो पूर्वके समानही गमनके अयोग्यता है–और प्रतिलोमोंमें तो भली प्रकारही गमनके अयोग्य होंगी–इससे अन्य पुरुषके संग भोगमें उनको निंदित कर्मके अभ्याससे पतित होना होता है और पतितका संसर्ग निषिद्ध है इससे–सब पुरुषोंके भोगने योग्य नही हो सकती–यह शंका सत्य है–किंतु यहां स्वैरिणी आदिके उपभोगमें पिता आदि रक्षक– और राजदंड आदिका भय आदि दीखता हुआ दोषका अभाव है इससे गमन करने योग्य कहना युक्त है और वह गमन–अवरुद्धा दासीयोंमें दंडका अभाव है इससे नियमसे जो पुरुषोंका परिग्रहरूप उपाधिसे दंडका कहना है उस उपाधिसे जो रहित हैं–उनमें अर्थात् जाना जाता है अर्थात् वेही गमनके योग्य हैं–और स्वैरिणी आदिमें जो दंडका अभाव है वह दंडकी विधिके अभावसे है–और इस निषेधसेभी जाना जाता है कि उत्कृष्ट वर्णकी कन्याको जो भजे (सेवे) उसको कुछ दंड नदे–और अपने धर्मसे पतनका प्रायश्चित्त तो गमन करने योग्य स्त्री, और गमन करनेवाले पुरुष, इनको अविशेषसे होताही है–और जो वेश्याओंको भिन्न जातिके अभावसे वर्णोके अंतःपातिनी (बीचमें) अनुमानसे कहो है कि वेश्या–वर्ण और अनुलोमोंके मध्यमें है–मनुष्य होनेसे–ब्राह्मणोंके समान सो ठीक नही–वहां कुंडगोलक आदिमें होनेसे मनुष्यजात्याश्रयत्वात् यह हेतु अनैकांतिक है अर्थात् व्यभिचारी है क्योंकि कुंडगोलकमें मनुष्यत्व है और वर्णोके अंतःपातित्व (मध्यमें) उनमें नही है–इससे यह मानना योग्य है कि वेश्यानामकी कोई जाति अनादिसे है उसमें उत्तम जातिके वा समान जातिके पुरुषसे जो कन्या पैदा है उसकी जीविकाभी पुरुषके संभोगसे है और वह जाति ब्राह्मणत्वके समान लोक प्रसिद्ध है और यह प्रसिद्धि निर्मूलभी नही क्योंकि स्कंद पुराणमें कहाहै कि पंचचूडानाम किसी अप्सराके सकाशसे उसकी संतानमें पांचवी–वेश्या जाति हुई–इससे वे नियमसे पुरुषके संग विवाहकी विधिसे शून्य हैं इससे समान और उत्कृष्ट जातिके पुरुषके संग गमनमें अदृष्ट दोष नही है और न दंड है–और उनमेंभी जो अवरुद्ध है उनके संग गमन करनेवाले पुरुषोंको यद्यपि दंड नही है तथापि अदृष्ट दोष (पाप) तो है ही क्योंकि यह नियम है कि अपनी स्त्रीमेंही सदैव रत रहे और यह प्रायश्चित्तभी है कि पशु और वेश्याके गमनमें प्राजापत्य व्रत कहा है–इससे सब निर्दोष है ॥

भावार्थ–अवरुद्धा और भुजिष्या जो गमन करने योग्यभी हैं उनके संग गमन करनेवाले पुरुषको पचास पणका दंड होताहै२९०॥

प्रसह्यदास्यभिगमेदंडोदशपणःस्मृतः ।
बहूनांयद्यकामासौचतुर्विंशतिकःपृथक् ॥

पद–प्रसह्य–दास्यभिगमे ७ दंडः १ दशपणः१ स्मृतः१ बहूनां ६ यदि– अकामा १ असौ १ चतुर्विंशतिकः१ पृथक् १ ॥

१ कन्यां भजंतीमुत्कृष्टां न किंचिदपि दापयेत् ।
२ वेश्या वर्णानुलोमांत पातिन्यो मनुष्य जात्याश्रयत्वात् । ब्राह्मण्यादिवत् ।

१ पंचचूडानामकाप्सरसस्तत्संततिः वेश्याख्या पंचमी जातिः ।
२ स्वदारनिरतः सदा । पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्य विधीयते ॥

योजना–प्रसह्य दास्यभिगमे सति दशपणः दंडः स्मृतः–यदि असौ बहूनां अकामा भवेत् तदा चतुर्विंशतिकः पणः दंडः पृथक् २ ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्व दासी स्वैरिणी भुजिष्याके गमनमें दंड कहनेसे भुजिष्यासे भिन्नोंमें दंड नही यह अर्थात् कहा गया–अब उसकाभी अपवाद कहते हैं–पुरुषके संग भोगही है जीविका जिनकी ऐसी दासी स्वैरिणी आदिके संग शुल्क (मोल) दियेबिना बलात्कारसे गमन करै उसको दशपणका दंड होताहै–यादि बहुतसे मनुष्य–नही चाहती हुई एक वेश्याके संग बलसे गमन करैं तो प्रत्येक मनुष्यको चौवीस २ पण दंड होताहै–और जब वेश्याकी इच्छासे भाटि (भाडा) देकर वेश्याके न चाहनेपरभी गमन करैं तो उन पुरुषोंको दोष नही है जो उस वेश्याको व्याधि नहो–क्योंकि नारदका वचन है कि रोगिन–परिश्रमवाली–राजाके काममें लगी–वेश्या बुलाने पर न आवे तो दंड देने योग्य नही कही है ॥

भावार्थ–बलात्कारसे दासीके गमनमें दशपण दंड कहा है–यदि नही चाहती हुई स्त्रीके संग बहुतसे मनुष्य गमन करैं तो पृथक् २ चौवीस २ पण दंड दें ॥ २९१ ॥

[illegible]तीद्विगुणंवहेत् ।
अगृहीतेसमंदाप्यःपुमानप्येवमेवच२९२॥

पद–गृहीतवेतना १ वेश्या १ नऽ–इच्छंती १ द्विगुणं २ वहेत् क्रि– अगृहीते ७ समं २ दाप्यः १ पुमान् अपिऽ–एवंऽ–एवऽ–चऽ–॥

योजना–भोगं न इच्छंती गृहीतवेतना वेश्या द्विगुणं अगृहीते वेतने समंवहेत्–चपुनः पुमान् अपि एवमेव दाप्यः॥

तात्पर्यार्थ–जब शुल्कको लेकर स्वस्थभी वेश्या धनके स्वामीको न भजाचाहे तो दूना शुल्कदे और शुल्कदेकर पुरुषगमन न किया चाहे तो शुल्क न मिलेगा क्योंकि नारदने कहाहै कि शुल्कको लेकर भोगको न चाहती हुई स्त्री शुल्कको दूनादे और दिया है शुल्क जिसनें ऐसा पुरुष भोग न किया चाहे तो शुल्ककी हानिको प्राप्त होता है–और शुल्क न ग्रहण किया होय तो ठहरानेपर वेश्या उतनाही शुल्क दे–तैसेही अन्यभी विशेष उसनेही दिखायो हैं यादि पुरुष स्त्रीको कहकर शुल्क नदे और दांत और नख आदिके द्वारा बलसे गमन करै और योनिसे भिन्न स्थानमें गमन करे वा बहुत पुरुषोंसे गमन करावे तो आठगुण शुल्क वेश्याको और उतनाही दंड राजाकोदे जो प्रधान वेश्या है और वेश्याके घरमें रहनेवाले कामी पुरुष हैं उनसेही निर्णय वेश्यासंबन्धिकार्योंमें होता है ॥

भावार्थ–वेतनको ग्रहण करके पुरुषका सम्बध वेश्या न चाहे तो दूना शुल्क दे वेतन न लिया होय तो समान ही दे इसी प्रकार पुरुषभी दे ॥ २९२ ॥

अयोनौगच्छतोयोषांपुरुषंवापिमेहतः ।
चतुर्विंशतिकोदंडस्तथाप्रव्रजितागमे।२९३

पद–अयोनौ ७ गच्छतः ६ योषां २ पुरुषं २ वाऽ–अपिऽ–मेहतः ६ चतुर्विंशतिकः १ दण्डः १ तथाऽ–प्रव्रजितागमे ७ ॥

---

१ व्याधिताऽश्रमा व्यग्रा राजकर्मपरायणा । आमंत्रिता चेन्नागच्छेदद्दया वदवा स्मृता ।

१ शुल्कं गृहीत्वा पण्यस्त्री नेच्छती द्विगुणं वहेत् अनिच्छन्दत्तशुल्कोपि शुल्कहानिमवाप्नुयात् ।

२ अप्रयच्छस्तथा शुल्कमनुभूय पुमान् स्त्रियं आक्रमेण च सगच्छन् घातदंतनखादिभिः ॥ अयोनौ वापि गच्छेद्यो बहुभिर्वापि वासयेत् ॥ शुल्कमष्टगुणं दाप्यो विनयं तावदेव तु ॥ वेश्याप्रधाना यास्तत्र कामुकास्तद्गृहोषिताः ॥ तत्समुत्थेषु कार्येषु निर्णकसशये विदुः ।

योजना-योषां अयोनौ गच्छतः वा पुरुषं प्रति मेहतः तथा प्रव्रजितागमे पुरुषस्य चतुर्विंशतिको दंडोभवति ॥

ता० भा०-जो मनुष्य अपनी स्त्रीके मुख आदिमें गमन करता है वा पुरुषके सन्मुख मेहन (गमन) वा संन्यासिनीके संग गमन करता है वह चौवीस पण दंड देने योग्य है॥

अंत्याभिगमनेत्वंक्यःकुबंधेनप्रवासयेत् ।
शूद्रस्तथांत्यएवस्यादंत्यस्यार्यागमेवधः ॥

पद-अन्त्याभिगमने ७ तु॰-अंक्यः १ कुबंधेन ३ प्रवासयेत् क्रि-शूद्रः १ तथा॰-अंत्यः १ एव॰- स्यात् क्रि-अंत्यस्य ६ आर्यागमे ७ वधः १ ॥

योजना-तुपुनः अंत्याभिगमने कुबन्धेन अंक्यः शूद्रः अंत्याभिगमने अंत्य एव स्यात् अंत्यस्य आर्याभिगमने वधः एव स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अंत्या (चाण्डाली) के गमनमें यदि तीनों वर्णके मनुष्य प्रायश्चित्त न करें तो इस मनुके वचनसे सौ पण देकर और निंदितबंधन (भगाकार)का चिह्न करके अपने देशसे राजा उनको निकासदे कि अन्त्यज वर्णोंकी स्त्रीके गमनमें सहस्र पण दंड होता है और जो प्रायश्चित्त करनेको उद्यतहों उनको पूर्वोक्तही दंड होता है शूद्रतो चाण्डालीके गमनसे चाण्डालही होता है-यदि चाण्डाल उत्तम जातिकी स्त्रीके साथ गमन करे तो उसका वधही दंड है ॥

भावार्थ-चाण्डालीके गमनमें भगाकार चिह्न करके अपने देशसे निकासदे और शूद्र चाण्डालीके गमनमें चाण्डालही होता है चाण्डाल उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ गमन करे तो बधको प्राप्त होता है ॥ २९४ ॥

१ सहस्रन्त्वन्त्य वर्जास्त्रियम् ।

इति स्त्रीसंग्रहप्रकरणम् ॥ २४ ॥

अथ प्रकीर्णकप्रकरणम् २५

ऊनंवाभ्यधिकंवापिलिखेद्योराजशासनं ।
पारदारिकचौरंवामुंचतोदंडउत्तमः २९५॥

पद–ऊनं २ वा०–अभि०–अधिकं २ वा०–अपि०–लिखेत् क्रि–यः १ राजशासनम् २ पारदारिकचौरं २ वा०–मुञ्चतः ६ दण्डः १ उत्तमः १ ॥

योजना–ऊनं वा अधिकं वा योराजशासनं लिखेत तस्य वा पारदारिकचौरं मुञ्चतः पुरुषस्य उत्तमो दण्डो भवति ॥

तात्पर्यार्थ–व्यवहार प्रकरणके मध्यमें स्त्रीपुंयोग नामका अन्यभी विवादका पद मनु और नारदनें कहा है उसमें नारदका वचन है कि जिसमें स्त्री और पुरुषके विवाहकी विधि कहीजाय वह स्त्रीपुंयोग नाम विवादका पद कहाता है मनुनेंभी कहा है (अ० ८ श्लो० २) कि अपने कुलके मनुष्य स्त्रियोंको रातदिन अपने वशमें रक्खें और विषयोंमें लगी हुई होंयतो अपने वशमें रक्खे यद्यपि स्त्री और पुरुषका परस्पर अर्थी और प्रत्यर्थीरूपसे राजाके सामने व्यवहार निषिद्ध है तथापि प्रत्यक्षसे वा कर्णपरम्परा (सुनकर)से उनका परस्पर अपचार (अपराध) देखकर राजा स्त्री और पुरुष दोनोंको अपने २ धर्ममार्गमें स्थापन करे न करे तो राजा दोषका भागी होता है यह सब व्यवहारप्रकरणमेंही राजधर्मके मध्यमें स्त्री पुरुषका धर्मसमूह कहा है और विवाह प्रकरणमेंभी विस्तारपूर्वक कहा है इससे यहां पुनः (फिर) योगीश्वरनें नहीं कहा है–

अब प्रकीर्णक नामके व्यवहार पदका प्रस्ताव करते हैं–उसका लक्षण नारदनें कहा है कि प्रकीर्णकमेंभी राजाके आश्रयके व्यवहार जानने–राजाकी आज्ञाको न मानना–वा न माननेका कर्म करना–पुरः (नगरी) का दान–प्रकृति (राजाके सेवक)योंका भेदन–पाखंडी–नैगम श्रेणीगण इनके धर्मका विपर्यय–पितापुत्रका विवाद–प्रायश्चित्त न करना–प्रतिग्रहका नाश–आश्रमवालोंका क्रोध–वर्णसंकरका दोष–उनकी जीविकाका नियम–और जो पिछले प्रकरणोंमें न दीखे वह सब प्रकीर्णकमें होता है–प्रकीर्णक नामके विवादपदमें जो विवाद राजाका उल्लंघन–राजाकी आज्ञा करना के विषयमें हैं वे सब राजाके आधीन होते हैं–राजाही–उनमें धर्मशास्त्र और सदाचारके विरुद्ध जो वर्ताव करैं उनका प्रतिकूल होकर व्यवहारोंका निर्णय करे यह कहनेसे यह बात जानीगयी कि राजाके आधीन जो व्यवहार वह प्रकीर्णक कहाता है ॥

राजानें भूमि वा निबंधका जो परिमाण दियाहो उससे न्यून वा अधिक जो प्रकाश करके लिखता है–और पारदारिक (जार) वा चोरको पकडकर राजाके अर्पण किये विना जो छोडता है वे दोनों उत्तम साहस दंड देनेयोग्य होते हैं ॥

भावार्थ–जो मनुष्य न्यून वा अधिक राजाकी आज्ञाको लिखता है वा जार और

१ विवाहादिविधिः स्त्रीणां यत्र पुंसां च कीर्त्यते । स्त्रीपुंसयोगसंज्ञं तद्विवादपदमुच्यते ।

२ अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशं॥ विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या ह्यात्मनो वशे ।

१ प्रकीर्णके पुनर्ज्ञेया व्यवहारा नृपाश्रयाः । राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्मकरणं तथा । पुरप्रदानसंभेदः प्रकृतीनां तथैव च ॥ पाखंडिनैगमश्रेणिगणधर्मविपर्ययाः । पितापुत्रविवादश्च प्रायश्चित्तव्यतिक्रमः । प्रतिग्रहविलोपश्च कोप आश्रमिणामपि वर्णसंकरदोषश्च तद्वृत्तिनियमस्तथा ॥ न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णके ।

चौरको छोडता है वह उत्तम साहस दंड देनेयोग्य है ॥ २९५ ॥

अभक्ष्येणद्विजंदूष्यदंडउत्तमसाहसम् ।
मध्यमंक्षत्रियंवैश्यंप्रथमंशूद्रमर्द्धिकम् २९६

पद–अभक्ष्येण ३ द्विज २ दूष्यऽ–दंडः१ उत्तमसाहसम् १ मध्यमं १ क्षत्रिय २ वैश्यं २ प्रथमं १ शूद्रं २ अर्धिकम् १

योजना–द्विजं अभक्ष्येण दूष्य उत्तम साहसं–क्षत्रियं दूष्य मध्यमं–वैश्यं दूष्य प्रथमं–शूद्रं दूष्य अर्धिकं–दंड्यः भवति ॥

ता०भावार्थ–मूत्रपुरीष आदि अभक्ष्य पदार्थसे ब्राह्मणको दूषण लगाकर अर्थात् अन्नपान आदिमें मिलाकर भक्षण कराकर उत्तम साहस दंडके–और ऐसेही क्षत्रियको दूषित करके मध्यम साहस दंडके–और वैश्यको दूषित करके प्रथम साहस दंडके और शूद्रको दूषित करके प्रथम साहसके आधे दंडके योग्य होते है–और लशुन आदि अभक्ष्यसे दूषित करनेमें तो दोषके न्यून अधिक भावसे दंडको न्यूनाधिकता जाननी ॥ २९६ ॥

कूटस्वर्णव्यवहारीविमांसस्यचविक्रयी ।
अंगहीनस्तुकर्तव्योदाप्यश्चोत्तमसाहसम् ॥

पद–कूटस्वर्णव्यवहारी १ विमांसस्य६ चऽ–विक्रयी१ अंगहीनः १ तुऽ–कर्तव्यः १ दाप्यः १ चऽ–उत्तमसाहसं२ ॥

योजना–कूटस्वर्णव्यवहारी चपुनः विमांसस्य विक्रयी अंगहीनः कर्तव्यः चपुनः उत्तमसाहसं दाप्यः–

तात्पर्यार्थ–रसवेध आदिसे किए है उत्तम वर्ण जिनके ऐसे कूट (बनावटके) सुवर्णोसे व्यवहारकरनेका स्वभाव जिनका ऐसे स्वर्णकारको और श्वा आदिसे मिले कुत्सित मांसका विक्रय करनेवाला जो शौनिक– (हिंसक) आदि है उसको और च शब्दसे कूट चांदीके व्यवहारीको नासिका कर्ण और हाथसे हीन प्रत्येक २ को करै और उत्तम साहस दण्डदे जो मनुने यह कहा है (अ.९श्लो.२९२) कि सब कण्टकोंमें बड़ा पापी सुनार है यदि वह अन्यायमें प्राप्त होयतो उसका देह तिल२पर छुरीसे छेदन करे यह वचन देवता और ब्राह्मणके सुवर्णके विषयमें है–

भावार्थ–कूट स्वर्णके व्यवहारी कुत्सित मांसके बेचने वालेका अंग छेदन करे और उत्तम साहस दंडदे ॥ २९७ ॥

चतुष्पादकृतोदोषोनापैहीतिप्रजल्पतः ।
काष्ठलोष्टेषुपाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा २९८

पद– चतुष्पादकृतः १ दोषः १ नऽ– अपैहि क्रि–इतिऽ–प्रजल्पतः ६ काष्ठलोष्टेषु७ पाषाणबाहुयुग्यकृतः १ तथाऽ– ॥

योजना–अपैहीति प्रजल्पतः स्वामिनः चतुष्पादकृतः तथा काष्ठलोष्टेषु पाषाण-बाहुयुग्यकृतः दोषो न भवति ॥

तात्पर्यार्थ– अपसरणकरो (हटो) इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहतेहुए स्वामीको गौ गज आदि चतुष्पादोंके किए अपराधका दोष नहीं होता–तैसेही लकडी डेला बाण पत्थर इनके फेंकनेसे भुजाका और युग (जूआ) लेजाते हुए अश्व आदिका किया– पूर्वोक्त अपराधका दोष उसको नहींहोता जो काष्ठ आदिको फेंकताहो और अपने मुखसे हटजाओ ऐसा कहताहो वहां काष्ठ आदिके फेंकनेमें दोषका अभाव कहना दंडके अभाव कहनेके लिए है अज्ञानसे किए

१ सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः । प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ।

पापका प्रायश्चित तो करनाही पडता है यहां काष्ठ आदिका ग्रहण शक्ति और तो-मरकाभी उपलक्षण है॥

भावार्थ-हटो ऐसे कहतेहुए स्वामीको चोपाओंका किया दोष और काष्ठ लोष्ट फेंकतेहुए मनुष्यको पापाण भुजा और अश्व आदिका दोष नही लगता॥ २९८ ॥

छिन्ननस्येनयानेनतथाभग्नयुगादिना । पश्चाच्चैवापसरताहिंसनेस्वाम्यदोषभाक् ॥

पद-छिन्ननस्येन३ यानेन ३ तथाऽ-भग्न-युगादिना३ पश्चात्ऽ- चऽ-एवऽ-अपसरता३ हिंसने७ स्वामी१ अदोषभाक्१ ॥

योजना-छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना चपुनः पश्चात् अपसरता हिंसने सति स्वामी अदोषभाक् भवति॥

तात्पर्यार्थ- नासिकाकी रज्जुको नस्य कहते हैं-वह शकट आदिमें जुते जिस बलीवर्दकी नष्ट होगईहो वा युग्यकाभंग होगयाहो और वह अक्ष और चक्र आदिके भंगसे पीछेको चलकर वा तिरछा चलकर वा आगेको चलकर किसी मनुष्य आदि-की हिंसा करदे तो स्वामी वा सारथी दोषके भागी नहीहोते सोई मनुनें (अ० ८ श्लो.२९१- ९२-) कहाहै यदि यानके बलका नस्य (नाथ)का छेदन युगका भंग-अक्ष और चक्रका भंग-यंत्रोंका छेदन-रज्जुका छेदन-आदि होजानेसे वह तिरछा और सन्मुख चलाजाय और स्वामी हटो२ ऐसा कहता रहै तो कुछ दण्ड नही यह मनुनें कहा है॥

भावार्थ- बैलोंकी नाथके छेदन-युग्यको भंगसे पीछेको गमन करतेहुए शकट आदिसे हिंसा होय तो कुछ स्वामीको दोष नही॥ २९९ ॥

शक्तोप्यमोक्षयन्स्वामीदंष्ट्रिणांशृंगिणांतथा। प्रथमंसाहसंदद्याद्विक्रुष्टेद्विगुणंतथा ॥३००

पद- शक्तः१ अपिऽ- अमोक्षयन् १ स्वामी१ दंष्ट्रिणां६ शृंगिणां६ तथाऽ-प्रथमं२ साहसं२ दद्यात् क्रि- वि॰ क्रुष्टे७ द्विगुणं२ तथाऽ- ॥

योजना-दंष्ट्रिणां चपुनः शृंगिणां शक्तः अपि स्वामी अमोक्षयन् सन् प्रथमं साहसं तथा विक्रुष्टे सति द्विगुणं दद्यात्॥

तात्पर्यार्थ-यदि अप्रवीण (अनाडी) प्राजक (सारथि)की प्रेरणासे हाथी आदि दंष्ट्रवाले और गौ आदि सींगवाले पशु-ओंसे वधको प्राप्तहुए जीवको जो स्वामी नही छुटाता अर्थात् उपेक्षा करताहै तो उस स्वामीको इस लिये प्रथमसाहस दंड होता है कि उसने अकुशल सारथी क्यों रक्खा यदि मनुष्य ऐसे कहै कि मुझे मारता-है फिरभी न छुटावे तो दुगुना दंड होता है-यदि कुशल सारथीको स्वामी प्रेरे तो सारथीकोही दंड होता है स्वामीको नही-सोईमनुनें (अ० ८ श्लो. २८४) कहाहै कि सारथी कुशल होय तो वही दंडयोग्य होताहै प्राणीके भेदसे भी दंडका भेद समझना ऐसेही मनुनें कहा है (अ.८श्लो.२९६-९७-९८-) कि मनुष्यके मरणमें शीघ्रही अपराधी होताहै और बडे२ प्राणधारी

१ छिन्ननस्ये भग्नयुगे तिर्यक् प्रतिमुखागते । अक्षभंगे च यानस्य च क्रमभङ्गे तथैव च ॥ छेदने चैव यन्त्राणां योक्तृरश्म्योस्तथैव च आक्रन्दे सत्यपैहीति न दंडं मनुरब्रवीत् ॥

१ प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।

२ मनुष्यमरणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषी भवेत्। प्राण-भृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु । क्षुद्राणां तु पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः । पंचाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु । गर्दभाजाविकानां तु दंडः स्यात्पंच माषकः । माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वशूकरनिपातने ।

गौ गज अश्व ऊंट आदिकी बडी हिंसामें आधा दंड क्षुद्र पशु आदिकी हिंसामें दो सौ२००पण दंड–शोभन मृग पक्षी आदिकी हिंसामें पचासपण दंड–गर्दभ–अजा–भेडकी हिंसामें पाचमाष दंड होताहै–और श्वा–सूकर–इनकी हिंसामें एकमाष दंड होता है–

भावार्थ–यदि समर्थ होकर स्वामी दंष्ट्री और सींगवाले पशुसे न बचावे तो प्रथमसाहस दंड और मनुष्यके मुझे मारता है ऐसे कहनेपर स्वामी न बचावे तो दूनादंड होता है॥ ३०० ॥

जारंचौरेत्यभिवदन्दाप्यःपंचशतंदमम् ।
उपजीव्यधनंमुंचंस्तदेवाष्टगुणीकृतम् ३०१

पद–जारं २ चौर १ इति॰-अभिवदन् दाप्यः १ पंचशतं २ दमम् २ उपजीव्य॰- धनं २ मुंचन् तत् २ एव॰- *अष्टगुणीकृतम् २ ॥*

योजना–जारं चौर इति अभिवदन् पुरुषः पंचशतं दमं दाप्यः धनं उपजीव्य मुंचन् सत् अष्टगुणीकृ ततदेव दम दाप्यः॥

ता॰ भावार्थ–अपने वंशमें कलंक लगनेके भयसे पराई स्त्रीमें गमन करनेवाले जारको हे चोरत् निकस ऐसे जो कहता है वह पांचसौ पण दंड देने योग्य है जो मनुष्य जारके हाथसे धनको उत्कोच (कोड) रूपसे ग्रहण करके जारको छोडता है वह जितना धन ग्रहण किया हो उससे आठगुना दंड देने *योग्य है॥३०१॥*

राज्ञोनिष्टप्रवक्तारंतस्यैवाक्रोशकारिणम् ।
तन्मंत्रस्यचभेत्तारंछित्त्वाजिव्हांप्रवासयेत् ।

पद– राज्ञः ६–अनिष्टप्रवक्तारं २ तस्य ६ एव॰–आक्रोशकारिणम् २ तन्मंत्रस्य ६ च॰–भेत्तारं२ छित्वा॰–जिह्वां२प्रवासयेत्–क्रि॥

योजना–राज्ञः अनिष्टप्रवक्तारं–तस्य एव *आक्रोशकारिणम्*–चपुनः तन्मंत्रस्य भेत्तारं जिह्वां छित्त्वा प्रवासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–और राजाके अनिष्ट (शत्रुकी स्तुति आदि) को जो वारंवार कहै और राजाकीही जो निंदाकरै और राजाका जो अपने राज्यकी वृद्धि पराये राज्यकानाश इनके लिये मंत्र हो उसका जो भेदन करै अर्थात् राजशत्रुओंके कानोंमें कहै उसकी जिव्हाका छेदन करके अपने राज्यमेंसे निकासदे–और जो कोश आदिका अपहरण (चोरी) करै तो उसका तो वधही होता है *क्यों कि मनुकी स्मृति है(अ०९श्लोक०२७५)* कि राजाके कोशके चोरोंको और राजाकी *प्रतिकूलतामें स्थितों*(टिके)को और राजशत्रुओंके उपकारकर्ताओंको अनेक प्रकारके दंडोंसे मरवाय दे–अर्थात् सर्वस्वका हरण–अंगछेदन–वध–आदिका दंड दे–और सर्वस्वकें हरनेमें भी चोरके जीवनकी सामग्री हो वह न छीने किंतु चोरीकी ही सामग्री (कुद्दाल आदि)छीनले सोई नारदने कहा है कि शस्त्रोंसे जीनेवालोंके शस्त्र और वाहोंसे जीने वालोंके वाह(बैल आदि) और वेश्या

[illegible]

उपकरण (सामग्री) हो और जिससे कारुक (शिल्पी) जीवतें हों–इन सबको सर्वस्वके हरनेमें भी राजा हरनेके योग्य नहीं है–और ब्राह्मणको शरीरका दंड नहीं है इस निषेधसे वधके स्थानमें शिरका मुंडन आदि करै

१ राज्ञः कोशापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ।

२ आयुधान्यायुधीयानां वाह्यादीन्वाह्यजीविनां । वेश्यास्त्रीणामलंकारान्वाद्यातोद्यादि तद्विदाम् । यच्च यस्योपकरणं येन जीवति कारुकाः । सर्वस्वहरणेप्येतन्न राजाहर्तुमर्हति ।

क्योंकि मनुकी स्मृति है कि ब्राह्मणका वध-मुंडनाही है और मस्तकपर श्रेष्ठ अंक (दाग) और गर्धभपर गमन (चढाना) है ॥

भावार्थ-राजाके अनिष्टका वक्ता राजाका निंदक-राजाके मंत्र (सलाह) का भेदक इनकी जिह्वा काटकर-देशमेंसे निकास दे ॥ ३०२॥

मृतांगलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।
राजयानासनारोढुर्दंडउत्तमसाहसः ३०३

पद-मृतांगलग्नविकेतुः ६ गुरोः ६ ताडयितुः ६ तथाऽ- राजयानासनारोढुः ६ दण्डः १ उत्तमसाहसः १ ॥

योजना-मृतांगलग्नविक्रेतुः तथा गुरोः ताडयितुः राजयानासनारोढुः उत्तमसाहसः दंडो भवति ॥

ता० भा०-मरेहुये शरीरके सबन्धी वस्त्र पुष्प आदिके वेचनेवाला और पिता आचार्य-आदि गुरुको ताडना करनेवाला और जो राजाकी अनुमतिके विना राजाके अश्व गज आदि यान और सिंहासन आदि आसनपर बैठता है इन सबको उत्तम साहस दंड होता है॥ ३०३ ॥

द्विनेत्रभेदिनोराजद्विष्टादेशकृतस्तथा ।
विप्रत्वेनचशूद्रस्यजीवतोष्टशतोदमः ।३०४

पद-द्विनेत्रभेदिनः ६ राजद्विष्टादेशकृतः ६ तथाऽ-विप्रत्वेन ३ चऽ- शूद्रस्य६जीवतः ६ अष्टशतः १दमः १ ॥

योजना-द्विनेत्रभेदिनः तथा राजद्विष्टादेशकृतः चपुनः विप्रत्वेन जीवतः शूद्रस्य अष्टशतो दमो भवति॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य क्रोध आदिसे दूसरेके दोनों नेत्रोंको भेदन करता है और जो ज्योतिःशास्त्रको जाननेवाला हितकी इच्छाकरनेवाले गुरु आदिसे भिन्न राजाको जो अनिष्ट उपदेश करता है कि तेरा राज्य इस वर्षके अन्तमें नष्ट हो जायगा-और जो शूद्र भोजनके लिये यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणके चिन्होंको दिखाता है इन सबको आठ सौपण दंड देना-यहां स्मृत्यंतरमें कहा हुआ यह समझनाकि जो शूद्र श्राद्धभोजनके लिये ब्राह्मणके वेषको धारण करे उसके शरीरमें तपाई हुई शलाकासे यज्ञोपवीतके समान चिह्न करदे-और जो वृत्ति (जीवन) के लिए यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणके चिन्होंको धारण करे उसका वधही होता है क्योंकि यह वचन है कि द्विजके चिह्नोंको धारणकिएहुए शूद्रोंको नष्ट करदे ॥

भावार्थ-दोनों नेत्रोंका भेदन करनेवाला और राजाको अनिष्ट उपदेश करने वाला और ब्राह्मणके वेशको धारण करके जीवन करनेवाला शूद्र इनको आठसौ पण दंड देना-॥ ३०५ ॥

दुर्दृष्टांस्तुपुनर्दृष्ट्वाव्यवहारान्नृपेणतु ।
सभ्याःसजयिनोदंड्याविवादाद्द्विगुणंदमम्॥

पद-दुर्दृष्टान् २ तुऽ- पुनःऽ-दृष्ट्वाऽ-व्यवहारान् २ नृपेण ३ तुऽ- सभ्याः १ सजयिनः १ दंड्याः १ विवादात् ५ द्विगुणं २ दमम् २ ॥

योजना-तुपुनः नृपेण दुर्दृष्टान् व्यवहारान् दृष्ट्वा सजयिनः सभ्याः विवादात् द्विगुणं दमं दंड्याः-

तात्पर्यार्थ-धर्मशास्त्र और सदाचार धर्मके अवलंघनसे राग लोभके द्वारा भली

१ राज्ञः कोशापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैरीणा चोपकारकं ।

१ द्विजातिलिंगिनः शूद्रान् घातयेत् ।

प्रकार विना विचारे शंकासे युक्त व्यवहारोंको राजा पुनः स्वयं भलीप्रकार विचार कर निश्चित है दोष जिनका ऐसे पहिले निर्णय करनेवाले उन सभासदोंको और जीत जिसकी हुई है उस जयीको विवादके पदमें जो दंड पराजितको है उससे दूना दंड प्रत्येकको दे-यह वचन उसको दंडका विधान करता है जिस जयके अयोग्यको जय हुआ हो इससे राग लोभसे धर्मशास्त्रके विरुद्ध करने वालोंको पृथक् दंडदे इस पूर्वोक्त वचनसे पुनरुक्ति दोष नहीं है-और जहां साक्षियोंके दोषसे व्यवहारकी दुष्टताहो वहां साक्षीही दंड देने योग्य है जयी और सभासद नहीं-और जब राजाकी अनुमतिसे व्यवहारकी दुष्टता होयतो राजा सहित संपूर्ण सभासद आदि दंड देने योग्य हैं-क्योंकि यह वचन है कि पापका एक पाद कर्ताको एक पाद साक्षीको एक पाद सभासदोंको और एक पाद राजाको प्राप्त होता है-यह वचन प्रत्येक राजा आदिकोंको दोषका बोधक है-एक २ को पापके अपूर्वके विभागार्थ नहीं है-सोई कहा है कि अपूर्व जो होता है वह कर्तामें समवाय संबंधसे रहनेवाले फलको पैदा करता है-पाप और पुण्यका जो फलजनक संस्कार वह अपूर्व कहाता है-

भावार्थ-विशेष कर दुष्ट व्यवहारोंको देखकर और राजा पुनः स्वयं विचार कर सभासद और जीतनेवालेको विवादके धनसे दूना दंडदे ॥ ३०५ ॥

योमन्यताजितोस्मीतिन्यायेनापिपराजितः
तमायांतंपुनर्जित्वादापयेद्द्विगुणंदमम् ३०६

पद-यः १ मन्येत क्रि-अजितः १ अस्मि क्रि-इति ऽ-न्यायेन ३ अपि ऽ- पराजितः १ तं २ आयांतं २ पुनः ऽ-जित्वा ऽ-दापयेत् क्रि-द्विगुणं २ दमम् २ ॥

योजना-न्यायेन पराजितः अपि यः अजितः अस्मि इति मन्येत-आयांतं तं पुनः जित्वा द्विगुणं दमं दापयेत्-

तात्पर्यार्थ-न्यायके मार्गसे पराजितभी जो मनुष्य उद्धत पनेसे अपनेको यह माने कि मैं पराजित नहीं हुआ यह कहकर कूट लेख आदिके उपन्याससे धर्माधिकारीके समीप फिर आवे तो उसका धर्मसे फिर पराजय करके दूना दंड दिवावे-नारदनेभी कहा है कि जो पराजय किया वा शिक्षित किया मनुष्य अधर्मसे पराजय आदिको माने उसको दूना दंड देकर उसके कार्यका फिर उद्धार करे-इस वचनमें तीरित वह है जिसका साक्षी लेखहो चुकाहो और दंड जिसने न दियाहो-और अनुशिष्ट उसको कहते हैं जिसने दंड दियाहो अर्थात् दंडपर्यंत दे चुकाहो और जो मनुका यह वचन है (अ० ९ श्लो० २३३) कि जहां कहीं तीरित और अनुशिष्ट नहो उसको धर्मसे किया जाने, बुद्धिमान् मनुष्य उसको निवृत्त न करे-यह वचन इस लिये है कि अर्थी और प्रत्यर्थी इन दोनोंमें किसी एकके वचनसे अधर्म पूर्वक व्यवहार हो जानेकी शंका होनेपर फिर दूना दंडदे और प्रतिज्ञापूर्वक व्यवहारको पुनः प्रवृत्त करे और धर्मसे व्यवहार होनेके निश्चय होनेमें राजा लोभ आदिसे व्यवहारको प्रवृत्त न करे-और जो व्यवहार किसी अन्य

१ पादो गच्छति कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति। पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ।

२ कर्तृसमवायिफलजननस्वभावत्वादपूर्वस्य ।

१ तीरित चानुशिष्ट वा यो मन्येत विधर्मतः। द्विगुण दडमास्थाय तत्कार्य पुनरुद्धरेत् ।

२ तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन विद्यते । कृतं तद्धर्मतो ज्ञेय न तत्पाशो निवर्तयेत् ।

राजाने न्यायसे हीन (अन्यायसे) कार्य कियाहो उसको भी भलीप्रकार परीक्षा करके धर्म मार्गमें स्थापन करे–क्योंकि यह स्मृति है कि जो अन्य राजानें अज्ञानसे किया हो अन्यायसे किये उसकोभी फिर न्यायमें प्रवेश करे–

भावार्थ–न्यायसे पराजितभी जो मनुष्य अपनेको पराजित न माने–राज्यस्थानमें आये उसको फिर जीत कर दूना दंड दिवावे ॥ ३०६ ॥

राज्ञाऽन्यायेनयोदंडोगृहीतोवरुणायतम् ।
निवेद्यदद्याद्विप्रेभ्यःस्वयंत्रिंशद्गुणीकृतम् ॥

पद–राज्ञा ३ अन्यायेन ३ यः १ दंडः १ गृहीतः १ वरुणाय ४ तम् २ निवेद्य–दद्यात् क्रि–विप्रेभ्यः ४ स्वयं–त्रिंशद्गुणीकृतम् २ ॥

योजना–यः दंडः राज्ञा अन्यायेन गृहीतः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतं तं वरुणाय निवेद्य विप्रेभ्यः दद्यात्–

तात्पर्यार्थ–जो दंड राजानें लोभसे ग्रहण कियाहो उसको तीस गुणा करके और वरुणको संकल्प कर निवेदन करके ब्राह्मणोंको स्वयं देदे–क्योंकि अन्यायसे दंड रूपसे जितना ग्रहण कियाहो उतना उस कोही दे जिससे लियाहो अन्यथा चोरीका दोष होगा–और अन्यायसे दंडके ग्रहणमें पहिले स्वामीके स्वत्वका नाशभी नहीं होता

१ न्यायापेत यदन्येन राज्ञा ज्ञानकृत भवेत् । तदप्यन्यायविहित पुनर्न्याये निवेशयेत् ।

भावार्थ–जो दंड राजानें अन्यायसे लियाहो उसको संकल्प कर वरुणके निवेदन करके और तीस गुने उस धनको संकल्प करके ब्राह्मणोंको राजा स्वयंदे– ॥ ३०७ ॥

इति प्रकीर्णकप्रकरणं २५

इतिश्री याज्ञवल्कीयधर्मशास्त्रविवृतेः श्रीपद्मनाभभट्टात्मजश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यविज्ञानेश्वरभट्टारककृतामिताक्षरायाःमिताक्षरार्थबोधिन्याः पं. रामरक्षात्मज पं. मिहिरचंद्रकृतायां श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजगुप्तकारितायां मिताक्षरप्रकाश व्रजभाषाविवृतौ व्यवहाराध्यायः समाप्तः २ ॥

अब इस अध्यायकी अनुक्रमणिका कहतेहैं

 उपपद जिसके और आत्माके शिष्य विज्ञानेश्वरयोगीकी कृति (बनायी) यह धर्मशास्त्रकी विवृति (व्याख्या) है १ ।

इति मिताक्षराप्रकाशसहितः व्यवहाराध्यायद्वितीयः संपूर्णः ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृतिः
मिताक्षरा प्रकाशसहिता।

प्रायश्चित्ताध्यायः ३

अथाशौचप्रकरणम् १

ऊनद्विवर्षंनिखनेन्नकुर्यादुदकंततः
आश्मशानादनुव्रज्यइतरोज्ञातिभिर्मृतः १

पद–ऊनद्विवर्षं २ निखनेत्क्रि नऽ–कुर्यात् क्रि–उदकं २–ततःऽ–आऽ–श्मशानात् ५ अनुव्रज्यः१ इतरः१ ज्ञातिभिः३ मृतः१ ॥

यमसूक्तंतथागाथाजपद्भिर्लौकिकाग्निना
सदग्धव्यउपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् २

पद–यमसूक्तं २तथाऽ–गाथा १जपद्भिः ३ लौकिकाग्निना ३ सः १ दग्धव्यः१ उपेतः१ चेत्ऽ–आहिताग्न्यावृता ३ अर्थवत् ॥

योजना–ऊनद्विवर्ष प्रेतं भूमौ निखनेत् तत उदकं न कुर्यात् इतरः मृतः ज्ञातिभिः आश्मशानात् अनुव्रज्यो भवति उपेतश्चेत् यमसूक्तं तथा गाथाः जपद्भिः आहिताग्न्यावृता अर्थवत् सः लौकिकाग्निना दग्धव्यः ॥

तात्पर्यार्थ–इससे पहिले दोनों अध्यायोंमें गृहस्थ और आश्रमवालोंके नित्य और नैमित्तिक धर्म कहे और अभिषेक आदि गुणसे युक्त गृहस्थ विशेष (राजा) के गुण और धर्मदिखाये–अब उसके अधिकारके संकोच करनेवाले अशौचके कथनद्वारा उनके निषेधका प्रतिपादन करते हैं अशौच शब्द करके स्नान आदिसे दूर करने योग्य समय और पिण्ड जलदान विधि और पठन आदिके निषेधका निमित्त भूत पुरुषमें रहने वाला कोई एक धर्मविशेष कहा जाता है कुछ कर्मके अधिकारका अभाव हो नही क्योंकि अशुद्धा बांधवाः सर्वे–इत्यादि वचनमें अशुद्धिही कही है–यहां अशुद्ध शब्दका व्यवहारमें अग्निहोत्रीसे भिन्न दीक्षित आदिमें संपूर्ण अधिकारीयोंसे भिन्नमे प्रयोग नही है और वृद्धोंके व्यवहारकी व्युत्पत्तिसे भी यही शब्दार्थ प्रतीत होता है और जो अशौचवालोंको स्नान आदिका निषेध देखते हैं वहभी *अयोग्यता रूप अशौच शब्दका अर्थ* है और उसमें अनेकार्थ कल्पनाका दोष भी है इससे वह पक्ष त्यागने योग्य है ॥

जो प्रेत दो वर्षकी अवस्थासे कमहो उसको भूमिमें गढा खोदके गाडदे दाह न करे–एक वार उदक (जल) सींचे इसे आदि वचनोंसे विधान कियाजो प्रेतके निमित्त जलदान आदि और्द्ध्वदैहिक कर्म वह न करे–और इसकोभी गंध पुष्प चंदन आदिसे शोभित करके श्मशानसे भिन्न ऐसी शुद्ध भूमिमे ग्रामसे बाहिर गाडे जिसमें अस्थि न पडेहो–सोई मनुने कहा है कि (अ०५ श्लो०६८)

---

१ सकृत्प्रसिंचन्त्युदकम् ।

२ ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः। अलङ्कृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते । नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो नास्य कार्योदकक्रिया । अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्र्यहमेवतु ।

राजाने न्यायसे हीन (अन्यायसे) कार्य कियाहो उसको भी भलीप्रकार परीक्षा करके धर्म मार्गमें स्थापन करे–क्योंकि यह स्मृति है[1] कि जो अन्य राजानें अज्ञानसे किया हो अन्यायसे किये उसकोभी फिर न्यायमें प्रवेश करे–

भावार्थ–न्यायसे पराजितभी जो मनुष्य अपनेको पराजित न माने–राज्यस्थानमें आये उसको फिर जीत कर दूना दंड दिवावे ॥ ३०६ ॥

राज्ञाऽन्यायेनयोदंडोगृहीतोवरुणायतम् ।
निवेद्यदद्याद्विप्रेभ्यःस्वयंत्रिंशद्गुणीकृतम् ॥

पद–राज्ञा ३ अन्यायेन ३ यः १ दंडः १ गृहीतः १ वरुणाय ४ तम् २ निवेद्यऽ–दद्यात् क्रि–विप्रेभ्यः ४ स्वयंऽ–त्रिंशद्गुणीकृतम् २ ॥

योजना–यः दंडः राज्ञा अन्यायेन गृहीतः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतं तं वरुणाय निवेद्य विप्रेभ्यः दद्यात्–

तात्पर्यार्थ–जो दंड राजानें लोभसे ग्रहण कियाहो उसको तीस गुणा करके और वरुणको संकल्प कर निवेदन करके ब्राह्मणोंको स्वयं देदे–क्योंकि अन्यायसे दंड रूपसे जितना ग्रहण कियाहो उतना उस कोही दे जिससे लियाहो अन्यथा चोरीका दोष होगा–और अन्यायसे दंडके ग्रहणमें पहिले स्वामीके स्वत्वका नाशभी नही होता

[1] न्यायापेतं यदन्येन राज्ञा ज्ञानकृत भवेत् । तदप्यन्यायविहितं पुनर्न्याये निवेशयेत् ।

भावार्थ–जो दंड राजानें अन्यायसे लियाहो उसको संकल्प कर वरुणके निवेदन करके और तीस गुने उस धनको संकल्प करके ब्राह्मणोंको राजा स्वयंदे– ॥ ३०७ ॥

इति प्रकीर्णकप्रकरणं २५

इतिश्री याज्ञवल्कीयधर्मशास्त्रविवृतेः श्रीपद्मनाभभट्टात्मजश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यविज्ञानेश्वरभट्टारककृतामिताक्षरायाःमिताक्षरार्थबोधिन्याः पं. रामरक्षात्मज पं.मिहिरचंद्रकृतायां श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजगुप्तकारितायां मिताक्षरप्रकाश ब्रजभाषाविवृतौ व्यवहाराध्यायः समाप्तः २ ॥

अब इस अध्यायकी अनुक्रमणिका कहतेहैं

पहिला साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण १ असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण२ ऋणादान ३ उपनिधिः ४ साक्षिप्रकरण ५ लेख्यप्रकरण ६ दिव्यप्रकरण ७ दायविभाग८सीमाविवाद९स्वामिपालविवाद१०अस्वामिविक्रय११ दत्ताप्रदानिक१२क्रीतानुशय १३ अभ्युपेत्याशुश्रूषा१४संविद्व्यतिक्रम १५ वेतनादान १६ द्यूत समाह्वय१७वाक्पारुष्य१८दंडपारुष्य१९ साहस २० विक्रीयासंप्रदान २१ संभूय समुत्थान २२ स्तेयप्रकरण २३ स्त्रीसंग्रहण २४ प्रकीर्णक २५ इति पंचविंशति प्रकरणानि उत्तम है उपपद जिसके और आत्माके शिष्य विज्ञानेश्वरयोगीकी कृति (बनायी) यह धर्मशास्त्रकी विवृति (व्याख्या) है १ ।

इति मिताक्षराप्रकाशसहितः व्यवहाराध्यायद्वितीयः संपूर्णः ॥ २ ॥

उसके अनुसार लौकिक अग्निसे अर्थवत् (प्रयोजनवत्) दाह करने योग्य है-इसका यह अर्थ है कि यदि इसका कोई कार्यरूप प्रयोजन है अर्थात् भूमिकासेवन और प्रोक्षण आदिरूप वह ग्रहण करने योग्य है-और जिस पात्र योजन आदिका प्रयोजन नहीं उसकी निवृत्ति जाननी तैसेही लौकिक अग्निकी विधिसे यज्ञोपवीत हुए पीछे जो आग्निहोत्री नहीं उसकी दाहकी विधि गृह्याग्निसे है इससे प्रयोजन आदि न होनेसे आहवनीय आदि अग्निकीभी निवृत्ति समजना-अन्य अग्निकी विधिभी वृद्ध याज्ञवल्क्यनें कही है कि जो अग्निहोत्री हो उसका शास्त्रोक्त रीतिसे तीन अग्नियोंसे दाह करे और जो अग्निहोत्री नहीं उसका एक अग्निसे करे और अन्यमनुष्योंका दाह लौकिक अग्निसे करे-और शूद्र श्मशानमें काष्ठ और अग्नि द्विजोंके लिये न लेजाय क्योंकि यमे का यह वचन है कि जिस द्विजको लिये शूद्र अग्नि काष्ठ हवि लेजाता है उसको सदा प्रेतत्व रहता है और वह शूद्रभी अधर्मसे लिप्त होता है और तैसेही दाहभी स्नानके अनंतर कराना-क्योंकि यह स्मृति है कि सुगंधजलोंसे स्नान कराकर और माला पहनाकर प्रेतका दाह करें-प्रचेतानें भी कहा है कि पुत्रआदि प्रेतका स्नान और वस्त्र आदिसे पूजन करें और नग्न देहका दाह न करें और सबके वस्त्रोंमेंसे श्मशानवासी भूतोंके लिये एक वस्त्रत्याग दे-और प्रेतको श्मशानमें ले जानेमें विशेषभी मनु (अ० ५श्लोक १०४) ने दिखाया है कि अपने कुलके मनुष्य होते हुए मरे हुए ब्राह्मणको शूद्रसे न लिवाजाय शूद्रके स्पर्शसे दूषित हुई यह आहुति स्वर्ग देनेवाली नहीं होती-यहां अपने कुलके होते हुए यह अर्थ विवक्षित नहीं क्योंकी स्वर्गकी दाता नहीं होती इसके श्रवणसे सर्वथा स्वर्गकी दाता नहीं होती मरेहुए शूद्रको पुरके दक्षिण द्वारसे और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनको पश्चिम उत्तर पूर्वद्वारोंको क्रमसे लेजाय-तैसेही हारीतेकाभी वचन है कि ग्रामके सन्मुख प्रेतको न ले जाय और जब परदेशमें मरे हुयेका शरीर न मिले तो अस्थियोंकि प्रतिकृति (पुतला) बनाकर और अस्थि न मिलेतो पर्णशरोंसे शौनक आदिके गृह्यसूत्रकी विधिसे प्रतिकृति बनाकर संस्कार करे और इसका अशौच दश दिन आदि होता है क्योंकि वसिष्ठकी यह स्मृति है कि यदि अग्निहोत्री परदेशमें मरजायतो सबके समान अशौच होता है और अग्निहोत्रीन होयतो त्रिरात्र अशौच होता है क्योंकि यहै वचन है कि जलसे मिले चूनको लपेटकर अग्निसे दाह-यह स्वर्गलोकके लिये स्वाहा है यह कहकर बान्धव करें इस प्रकार पर्णशरको दग्ध करके तीनरात्र अशुद्ध होता है-तिससे यह सिद्धान्त हुआ

१ आहिताग्निर्यथान्याय दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः । अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः ।

२ यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृण काष्ठ हवींषि च। प्रेतत्वं हि सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते ।

३ प्रेतं दहेच्छुभैर्गंधैः स्नापितं स्त्रग्विभूषितं ।

४ स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नग्नदेहं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्यजेत् ।

१ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण हारयेत् । अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता ।

२ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः ॥ न ग्रामाभिमुखं प्रेतं हरेयुः ।

३ आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शवदशौचम् ।

४ सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैरेरयच्य्यश्च तथाग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा स बान्धवैः ॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।

कि नाम करणसे पहिले गाडनाही है जल दान आदि नही–उससे पीछे तीन वर्षतक अन्न जलदान विकल्पसे होते हैं अर्थात् करे चाहे न करे उससे परे यज्ञोपवीत पर्यंत विनामंत्र अग्नि और जलदानका नियम है–तीन वर्षसे पहिलेभी जिसका मुण्ड नहो चुकाहो और यज्ञोपवीतसे पीछे आहिताग्निकी प्रक्रियासे दाह करके सब और्द्ध्व देहिक कर्म करे इतना तो विशेष है कि जिसका यज्ञोपवीत हुआहो उसका लौकिक अग्निसे दाह करे और जो अग्निहोत्रीनहो उसका गृह्याग्निसे दाह करे और पात्र योजन आदिभी जितने मिले उतनोंका करे अर्थात् गृह्याग्निके पात्र आदिभी चितामें रखदे

भावार्थ–दो वर्षसे कमके प्रेतको भूमिमें गाडदे जलदान न करे उससे भिन्नमरे हुए प्रेतके संग ज्ञातिके मनुष्य श्मशान तक गमन करें और यमसूक्त और यमकी गाथाका गान करते हुए दाह करे–और बालकका यज्ञोपवीत हो चुका होयता बालकको अग्निहोत्र प्रक्रियासे यथार्थ दाह करे ॥१२॥

सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयंत्यपः ।
अपनःशोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥

पद–सप्तमात् ५ दशमात् ५ वाऽ–अपिऽ–ज्ञातयः १ अभ्युपयन्ति क्रि–अपः २ अपनः शोशुचदघमनेन ३ पितृदिङ्मुखाः १ ॥

योजना–सप्तमात् वा दशमात् पितृदिङ्मुखाः ज्ञातयः अपनःशोशुचदघमनेन अपः अभ्युपयन्ति–

तात्पर्यार्थ–सातमें वा दशमें दिनसे पहिले सपिण्ड और समानोदक ज्ञातिके मनुष्य दक्षिणा दिशाको मुख करके जल हमारे पापको दूर करो इस मंत्रको पढ कर जल दान करें इसी प्रकार मातामह और आचार्यकोभी जलदान करें यह जलदान अयुग्मतिथि योंमें करना क्योंकि यह स्मृति है कि पहिली तीसरी पांचमी सातमी तिथिमें जलदान करना यह जलदान स्नानके पीछे करना क्योंकि शातातपकी यह स्मृति है कि प्रेतके शरीरको अग्निमें दाह करके चिताको न देखते हुए जलके समीप जाय अर्थात् स्नान करके जलदान करें तैसेही प्रचेतानेभी यहां यह विशेष दिखाया है कि प्रेतके बांधव वृद्धोंके अनुसार जलमें प्रविष्ट होकर उदासीन रहें और जलके समीप वस्त्र और यज्ञोपवीतको अपसव्य करके दक्षिणाभिमुख हुए जलदान करें ब्राह्मण उत्तरको मुख किए क्षत्रिय और वैश्य पूर्वको मुख किए जलदान करें–अन्य स्मृतिमें तो जितने अशौचके दिनहों उनमें प्रतिदिन जलदान करना कहा है सोई विष्णुने कहाहै कि जितने दिन अशौचहो उतने दिन प्रेतको जल और पिण्डदानदे तैसेही प्रचेतानेभी कहा है कि प्रेतके कारण दिन २ जलकी भरी अंजलिदे इतने पिण्ड समाप्त हों तबतक अंजलियोंकि वृद्धि करता जाय अर्थात् दशमें पिण्डतक अंजलियोंको बढावे यद्यपि इन दोनों गुरु और लघु कल्पोंमें एक प्रकारके करनेसे शास्त्रका अर्थ सिद्धहै तथापि बहुत क्लेश देनेवाले गुरुतर कल्पमें किसीकी प्रवृत्ति नही होती परन्तु प्रेतका उपकार अधिक होता है यह कल्पना

१ प्रथमतृतीयपंचमसप्तमेषूदकक्रिया ।

२ शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्ष्यमाणा आपोऽभ्युपयन्ति

३ प्रेतस्य बांधवाः यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्धर्षेयुरुदकान्ते प्रसिंचेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणामिमुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः ।

४ यावदाशौचन्तावत्प्रेतस्योदकं पिण्ड च दद्युः ।

५ दिनेदिनेऽञ्जलीन्पूर्णान्प्रदद्यात्प्रेतकारणात् । तावद् वृद्धिः प्रकर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते ।

करनी अर्थात् अधिक कल्पसेही जलदान आदि करने अन्यथा गुरुकल्पके बोधक अनर्थकता होगी वशिष्टनेभी विशेष दिखाया है कि अपसव्य हाथोंसे जलदान करें ॥

भावार्थ-ज्ञातिके मनुष्य सातमें और दशमें दिनसे पहिले दक्षिणाभिमुख होकर जल हमारे पापको दूरकरो इस मंत्रको पढतेहुए जलदान करें ॥ ३ ॥

एवंमातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रिया ॥ कामोदकंसखिप्रत्तास्वस्त्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥

पद-एवं- मातामहाचार्यप्रेतानां६ उदकक्रिया१ कामोदकं१ सखिप्रत्तास्वस्त्रीयश्वशुरर्त्विजां ६ ॥

योजना-मातामहाचार्यप्रेतानां उदकक्रिया एवं कर्त्तव्या सखीप्रत्तास्वस्त्रीयश्वशुरर्त्विजां कामोदकं कर्त्तव्यं ॥

तात्पर्यार्थ-नामगोत्रसे दियेहुए जलदानका भिन्न गोत्र मातामह आदिकोंमेंभी अतिदेश (करना) कहते हैं-जैसे सगोत्र सपिण्ड प्रेतोंको जलदान दियाजाता है इसीप्रकार मातामह और आचार्य प्रेतोंकोभी नित्य जलदान करना और मित्र विवाहीहुई कन्या-भगिनी आदि औरभानजा श्वशुर और ऋत्विज मरेहुए इनको कामोदक करना अर्थात् प्रेतकी गतिकी कामना होय तो जलदान करना न होयतो न करना कुछ न करनेमें दोष नहीं-

भावार्थ-मातामह और आचार्य प्रेतोंकोभी इसीप्रकार जलदान करें मित्र विवाही कन्या भानजा श्वशुर ऋत्विज इनको जलदान करें चाहै न करें ॥ ४ ॥

सकृत्प्रसिंचंत्युदकंनामगोत्रेणवाग्यताः ॥ नब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकंपतितास्तथा ॥५॥

पद-सकृत् प्रसिंचन्ति क्रि- उदकं२ नामगोत्रेण३ वाग्यताः १ न- ब्रह्मचारिणः १ कुर्युः क्रि-उदकं२ पतिताः १ तथा-

योजना-वाग्यताः (सपिण्डाः) नामगोत्रेण सकृत् उदकं प्रसिंचन्ति ब्रह्मचारिणः तथा पतिताः उदकं न कुर्युः ॥

तात्पर्यार्थ-यह जलदान इसप्रकार करना कि सपिंड और समानोदक मौन हुये प्रेतके नामगोत्रका उच्चारण करके अर्थात् अमुक गोत्र और अमुक नामका प्रेत तृप्तहो यह कहकर एकवारही जलदान करें अथवा तीनबार करें क्योंकि प्रचेताकी यह स्मृति है कि प्रेत तृप्तहो यह कहकर प्रत्येक मनुष्य तीन२वार जलदान करें-प्रतिदिन अंजलियोंकी वृद्धिको कहआये हैं-तैसेही यह विशेषभी उसनेही कहा है कि फिर नदीके तटपर जायकर और यथार्थ रीतिसे शुद्ध होकर प्रथम वस्त्रोंको धोवै और फिर स्नानकरै फिर सचैल स्नानकर और पाषाणको लेकर उसके ऊपर ब्राह्मणको दश अंजलि क्षत्रियको बारह वैश्यको पंद्रहशूद्रको तीसदे फिर घरमें प्रवेश करे फिर स्नानकरे और घरकी लेप आदिसे शुद्धिकरै-अब सपिंडोंको मध्यमें किसी२को जलदानका निषेध कहते हैं कि ज्ञातिका मनुष्य होनेपरभी समावर्तनपर्यंत ब्रह्मचारी और जिनको द्विजातियोंके कर्मका अधिकार न हो वे पतित जल और पिण्डदान न करें और जो ब्रह्मचर्यके समयमें

१ सगोत्राभ्यां पांगभ्यामुदकक्रियां कुर्वीरन्

१ त्रि. प्रत्येकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु ।

२ नदीकूलं ततो गत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत् । वस्त्र संशोधयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् । सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्याद्दशांजलीन् । द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पंचदश स्मृताः । त्रिंशच्छूद्राय दातव्या ततः संप्रविशेद्गृहं । ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ।

मरेहों उनको जलदान और अशौच ब्रह्मचर्यके अनंतर अवश्य करै सोई मनु (अ.८-श्लो.८८)ने कहा है कि जिस ब्रह्मचारीको ब्रह्मचारीके कर्मोंकी (अपोशान दिनमें न सोना आदि)की आज्ञा है वह आदिष्टी ब्रह्मचारी जबतक व्रतकी समाप्तिहो तबतक जलदान न करै और व्रतकी समाप्ति होनेपर तो जलदेकर तीनरात्र अशुद्ध होता है यहभी पिता आदिसे भिन्नके विषय समझना यह आगे कहैंगे-आचार्य पिता उपाध्याय इस वचनमें आचार्य यह मानते हैं कि जिसनें प्रायश्चित्त का प्रारंभ कररक्खाहो वहही आदिष्टी कहाता है उसकोही यह जलदान आदिका निषेध है और प्रायश्चित्त रूप व्रतकी समाप्तिके अनंतर जलदान और अशौचकी विधिभी उसकोही है तैसेही नपुंसक आदिकोंको जलदान निषिद्ध है-क्योंकि वृद्धमनुका यह वचन है कि नपुंसक आदि पुत्र चोर जिनका समयपर यज्ञोपवीत न हुआ हो वह व्रात्य-विधर्मी गर्भ और भर्ताका द्रोह करनेवाली और मदिरापीने वाली स्त्री ये सब जलदान न करैं ॥

भावार्थ-मौन धारैं एकवार नाम गोत्र लेकर जलदान करै ब्रह्मचारी और पतित ये जलदान न करैं- ॥ ५ ॥

पाखंडयनाश्रिताः स्तेनाभर्तृघ्न्यः कामगादिकाः ॥ सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः ॥ ६ ॥

पद-पाखण्डी १ अनाश्रिताः १ स्तेनाः १ भर्तृघ्न्यः २ कामगादिकाः १ सुराप्यः १ आत्मत्यागिन्यः १ नऽ- आशौचोदकभागिनः १ ॥

योजना-पाखंडी अनाश्रिताः स्तेनाः भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः सुराप्यः आत्मत्यागिन्यः एते अशौचभागिनो न भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-मनुष्यका शिर और कपाल आदि वेदसे बाह्य चिन्हको जो धारण करैं वे पाखंडी और अधिकार होनेपरभी जिनोंनें ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका ग्रहण न कियाहो वे अनाश्रित सुवर्ण आदि उत्तम द्रव्योंको जो चुरावैं वे स्तेन-पतिकी हत्या करनेवाली और कुलटा अर्थात् जो विना प्रयोजन कुल२ में विचरैं वे कामग स्त्री, और आदि पदके ग्रहणसे अपना गर्भ और ब्राह्मणके हत्यारी और जिस जातिको जो मदिरा निषिद्धहो उसके पीनेवाली सुरापी और जो विष अग्नि जल और बंधनसे अपना घात करैं वे आत्मत्यागिनी ये पाखंडी आदि सब तीन रात्र वा दशरात्र जो आशौच कहैंगे उसके और जलदान आदि कोई देहिक कर्मके अधिकारी नही होते अर्थात् सपिंड आदिको इनके मरनेमें अशौच आदि नहीं होता इससे सपिंडभी जलदान आदि न करैं इसके लिये ये वचन है-यहां सुराप्य इत्यादिमें स्त्रीलिंग विवक्षित नही क्योंकि इस वचनमें लिंगको न मानने योग्योमें पढा है कि लिंग वचन-देश-कालकर्मका फल इन पांचोंको मीमांसामें कुशलोंने मानने योग्य नही कहा यहभी जानकर करनेमें समझना-सोई गौतमनें कहा है कि प्रायः (महाप्रस्थान) अनशन (भोजनका त्याग) शस्त्र अग्नि विष जल ईधन गिरिकी शिखिरसे गिरना इनसे जो मरनाचाहैं वे अशौचके भागी नही होते इस वचनमें इच्छतः यह कहनेसे दोष नही

१ आदिष्टी नोदकं कुर्यादा व्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।

२ क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः स्तेना व्रात्या विधर्मिणः । गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः ।

१ लिंगं च वचनं देशः कालोऽथ कर्मणः फलं । मीमांसाकुशलाः प्राहुरनुपादेयपंचकं ।

२ प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम् ।

-यह जानना क्योंकि अंगिराकी स्मृति है कि जो कोई मनुष्य प्रमादसे अग्नि और जलसे मरजाय उसका अशौच और जलदान करे तैसेही विशेष मृत्युसेभी अशौच आदिका निषेध इस वचनसे है कि चाण्डाल–जल–सर्प ब्राह्मण–बिजली–डाढवाले– और पशु–इनसे पापी मनुष्य मरते हैं उन पापियोंको जो जल और पिंड दिया जाता है वह उनको नही मिलता किंतु आकाशमेंही नष्ट हो जाता है यह भी तब है जब जानकर आत्महत्याकी हो क्योंकि गौतमके वचनमें जानकर जो आत्महत्या की हो उसकोही अशौचका निषेध कहा है इस वचनमेंभी चाण्डाल जल और सर्प इनके साहचर्य देखनेसे जान कर ही मरनेके विषयमें यह वचन है यह ही निश्चय है इससे अभिमान आदिसे जो चाण्डाल आदिके मारनेको गयाहो और उनोंनें मार दियाहो उसकी पिण्ड दानका निषेध है क्योंकि उसने सबसे अपनी आत्माकी रक्षा करे इस शास्त्रकी विधिका अवलंघन किया–इसी प्रकार दुष्ट सर्प आदिके पकडनेके लिये अभिमान आदिसे सन्मुख गयाहो और मरजायतो उसको यह पिण्डदान आदिका निषेध जानना यह आशौचका निषेधभी दशदिनकेका है क्योंकि इस वचनसे इनकी शीघ्रही शुद्धि कहेंगे कि ब्राह्मण गौ राजासे जो मरेहो और जिनोंने प्रत्यक्ष आत्महत्याकी हो उनकी शुद्धि शीघ्रही होती है तैसेही इनका दाह आदिभी न करना–क्योंकि यमराज की यह स्मृति है कि जो ब्राह्मणके दंडसे मरेहों उनका अशौच जलदान रोदन दाह आदि अन्त्येष्टि कर्म और कट (पीजरी) धारण न करे कदाचित् कोई शंका करे कि अग्निहोत्रीको अग्नि और यज्ञपात्रोंसे दाह करे इस श्रुतिसे कही अग्नि और यज्ञ पात्र आदिकी प्रतिपत्तिका लोप होगा इससे यह स्मृतिमें कहा हुआ दाह आदिका निषेध ब्राह्मण आदिसे हतकी अग्निके विषेमें न होगा यह शंका ठीक नही क्योंकि चाण्डाल आदिसे हते हुए अग्निहोत्रीके जो अग्निपात्र हैं उनकी दूसरी विधि अन्य स्मृतिमें कही है कि यदि अग्निहोत्री वृथा मराहो वैतान पात्रको जलमें फैंके आवसथ्यको चौराहेमें फैंके पात्रोंको अग्निमें फूंक दे तैसेही इनके शरीरकी भी दूसरी विधि कहीहै कि अपनी आत्माके त्यागी और पतित इनकी दाह आदि क्रिया करनी उचित नही किंतु इनका गंगामें तिसी प्रकारके संस्थापन (फेंकना) ही हित है–तिससे विना विशेषके सबको दाह आदिका निषेध है इससे स्नेह आदिसे इस निषेधका कोई अवलंघन करे तो प्रायश्चित्त करना योग्यहै क्योंकि यह स्मृति है कि अग्निदाह जलदान स्नान स्पर्श श्मशानमें ले जाना कथा रज्जुका छेदन रोदन इनको करके तप्त कृच्छ्रसे शुद्ध होताहै यहभी चाण्डालआदि प्रत्येकके लिये इनको जानकर करनेमें जानना अज्ञानसे करनेमें तो यह संवर्तका

१ अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः। तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया।

२ चाण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्। उदकं पिंडदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते। नोपतिष्ठति तत्सर्वमंतरिक्षे विनश्यति।

३ सर्वत एवात्मानं गोपायेत्।

४ हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम्।

१ नाशौचं नोदकं नाश्रु न दाहाद्यन्त्यकर्म च। ब्रह्मदण्डहतानां च न कुर्यात्कटधारणम्।

२ आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च।

३ वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे। पात्राणि तु दहेदग्नौ यजमाने वृथामृते।

४ आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया। तेषामपि तथा गंगातोये संस्थापनं हितम्।

५ कृत्वाग्निमुदकं स्नानं स्पर्शनं वहनं कथां। रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।

कहा हुआ प्रायश्चित्त समझना- इनमेंसे कोईसे प्रेतका जोले जाता है वा दग्धकरता है और कट और जलदान करता है वह सान्तपन कृच्छ्र करे और जो इस वचनसे उपवास कहाहै कि चाण्डालआदि शवका स्पर्श वा अशुभ बात करे और पूर्वोक्त दाह आदि न भी करे तो एकरात्र न करे यह उपवास, और तो सुमंतुने इस वचनसे भिक्षाका भोजन कहाहै वह कि कृच्छ्र करनेमें जो असमर्थ हो वा बंधन और छेदन करे वह एकमासतक त्रिकाल भिक्षाका भोजन करै ये दोनों वचन असमर्थके विषयमें हैं- इसी प्रकार अन्यभी इस विषयके स्मृतियोंके वचनोंकी व्यवस्था समझनी यह दाह आदिका निषेधभी उस वानप्रस्थसे भिन्नके विषयमें है जो नित्यकर्मके अनुष्ठानमें असमर्थ और जीर्ण हो क्योंकि तिनकोभी शास्त्रकी आज्ञा देखते हैं- क्योंकि यह स्मृति है कि वृद्ध जो शौच और स्मरणसे रहित हो और वैद्योंने जिसे त्याग दिया हो- यदि वह पर्वत अग्नि अनशन व्रत जल इनसे अपनी आत्माकी हत्या करे उसका त्रिरात्र अशौच होताहै दूसरे दिन अस्थिसंचय तीसरे दिन जलदान और चौथेदिनश्राद्ध करे ॥

इसी प्रकार जिस जिस उपाधिसे आत्महत्या कहीहै उससे भिन्नमार्गसे जो आत्महत्या करे उनका श्राद्ध आदि और्ध्व देहिक कर्म निषिद्ध है तो उनके लिये क्या करना चाहिये इस अपेक्षाके होनेमें वृद्ध याज्ञवल्क्य और छागलेयने कहाहै कि लोकनिंदाके भयसे मनुष्य उनके लिये नारायण बलि करै अन्यथा उनकी शुद्धि नही होती यह यमने कहाहै तिससे उनके निमित्त दक्षिणासहित अन्नदान करे- व्यासने भी कहाहै कि नारायणके निमित्त अथवा शिवके निमित्त जो दिया जाताहै वह प्रेतकी शुद्धिकी लिये कर्म है अन्यथा शुद्धि नही होती इस प्रकार नारायण बलि प्रेतकी शुद्धि करनेके द्वारा श्राद्ध आदिकी देनेकी योग्यताको पैदा करतीहै इससे संपूर्ण और्ध्वदेहिकभी करना चाहिये इसीसेही यह त्रिंशत्के मतसे भी और्ध्व देहिककी आज्ञा देखते हैं कि गौ ब्राह्मणसे हते और पतित इनका वर्षदिनके अनंतर संपूर्ण और्ध्व देहिक करे- इस प्रकार वर्षदिनसे पीछे नारायणबलि करके और्ध्वदेहिक करे- नारायणबलि इस प्रकार करनी चाहिये- किसी शुक्लपक्षकी एकादशीको विष्णु वैवस्वत और यमका यथार्थ पूजन करके और पिंडदान पर्यंत कर्मको करके पिण्डोंको जलमें फेंक दे पत्नी आदिको न दे- फिर उसी रात्रिमें अयुग्म ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर उपवास करे प्रातःकाल होनपर मध्याह्नके समय विष्णुका पूजन करके एकोद्दिष्ट विधिसे ब्राह्मणोके पादोंके प्रक्षालन (धोना) आदि तृप्तिके प्रश्न पर्यंत कर्मको करके पिण्डपितृयज्ञकी विधिसे उल्लेखन आदि अवनेजनः पर्यन्त कर्मको तूर्णीं (मौन) करके विष्णु ब्रह्मा और परिवार सहित यमको पिण्डदे कर नाम गोत्र सहित प्रेतका स्मरण करके

१ एषामन्यतमं प्रेत यो वहेत दहेत वा। कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सांतपन चरेत् ।

२ तच्छव केवलं स्पृष्टमश्रु वा पातित यदि। पूर्वोक्तानामकारी चेदेकरात्रमभोजनम् ।

३ वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः । तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ।

१ नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः। तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः । तस्मात्तेभ्योपि दातव्यमन्नमेव सदक्षिणम् ।

२ नारायण समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकर कर्म भवेत्तन्नैतदन्यथा ।

और विष्णुका नाम लेकर-पांचवां पिण्डदे-फिर आचमनके अनंतर ब्राह्मणोंको दाक्षिणासे प्रसन्न करके उन ब्राह्मणणांके मध्यमें किसी श्रेष्ठ गुणवाले ब्राह्मणका प्रेतबुद्धिसे स्मरण करता हुआ गो भूमि सुवर्ण आदिसे भली प्रकार उसको प्रसन्न करके पवित्र है हाथ जिनके ऐसे ब्राह्मणोंसे प्रेतके निमित्त तिल सहित जल दिवा कर अपने जनों सहित आपभी भोजन करावे-सर्पसेहतेमें तो यह विशेष है कि वर्ष दिनतक पुराणोक्त विधिसे पंचमीको नागपूजा करके पूर्ण वर्ष होनेपर नारायणबलि करके सोनेका नाग और प्रत्यक्ष गौदे फिर संपूर्ण और्ध्वदेहिक करै नारायण बलिका स्वरूप वैष्णवने कहा है कि जैसे शुक्ल पक्षकी एकादशी आने पर विष्णु और यम वैवस्वत देवका पूजन करैं और घीमिले हुए और सहत और तिल मिले हुए दश पिण्डोंको दश कुशाओं परदे दक्षिणाभिमुख होकर-दे- विष्णुको बुद्धिमें रखकर नदीके जलमें पिण्डोंका स्थापन करै नाम गोत्रले पुष्पोंसे पूजन करै-भक्ष्य भोज्यदे-पांच ५ सात ७ नो ९ ऐसे ब्राह्मणोंको निमंत्रणदे जो विद्या और तपसे वृद्ध हों कुलीन और सावधान हों दूसरा दिन आने पर मध्याह्नके समय उपवास करके विष्णुका पूजन करके उन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख ज्येष्ठ २ पितरोंका स्मरण करता हुआ बैठावे फिर विष्णुमें मनको लगा कर संपूर्ण देवताओंका आवाहन आदि कर्म सावधान होकर करे-फिर ब्राह्मणोंको तृप्त हुए जानकर-आप तृप्त हुये यह पूछे उसके अनंतर-हविष्य और तिल इनके पांच पिण्डबनाकर देवताके रूपका स्मरण करता हुआ इन वक्ष्यमाण देवताओंकोदे पहिला पिण्ड विष्णुको दूसरा शिवको तीसरा ब्रह्माको और चौथा पिण्ड अनुचरों सहित यमकोदे फिर गोत्रोच्चारण पूर्वक प्रेतका ध्यान और विष्णुका नाम लेकर पांचमा पिण्ड पूर्वकी समान प्रेतके निमित्त फेंकदे-फिर संपूर्ण ब्राह्मणोंकी दक्षिणासे और एक, वृद्ध किसी उत्तम ब्राह्मणकी सुवर्ण गो वस्त्र भूमि इनसे उस प्रेतको मनमें स्मरण करता हुआ पूजा करै-फिर वे ब्राह्मण हाथमें तिल जल कुशा लेकर उसके नामको बुद्धिमें विचारते हुए फेकैं और हवि गंध द्रव्य तिल जल इनको सावधान हो करदें-फिर वह यजमान मौन होकर मित्र भृत्य जनों सहित आप भोजन करै इस प्रकार वैष्णव मतमें स्थित होकर जो आत्मघातीके लिये देता है वह उसका शीघ्र ही उद्धार करताहै इसमें संशय नहीं

१ एकादशीं समासाद्य शुक्लपक्षस्य वै तिथिं । विष्णु समर्चयेद्देव यम वैवस्वत तथा । दशपिण्डान् घृताभ्यक्तान्दर्भेषु मधुसयुतान् । तिलमिश्रान्प्रदद्याद्वै संयतो दक्षिणामुखः । विष्णु बुद्धौ समासाद्य नद्यंभासि ततः क्षिपेत् । नामगोत्रग्रह तत्र पुष्पैरभ्यर्चनं तथा । धूपदीपप्रदान च भक्ष्य भोज्य तथा पर । निमन्त्रयेत विप्रान्वै पच सप्त नवापि वा । विद्यातपःसमृद्धान्वै कुलोत्पन्नान् समाहितान् । अपरेहनि सप्राप्ते मध्याह्ने समुपोषितः । विष्णोरभ्यर्चनं कृत्वा विप्रास्तानुपवासयेत् । उदङ्मुखान्यथाज्येष्ठं पितृरूपमनुस्मरन् । मनोनिवेश्य विष्णौ वै सर्वं कुर्यादतन्द्रित । आवाहनादि यत्प्रोक्त देवपूर्वं तदाचरेत् । तृप्तान् ज्ञात्वा ततो विप्रांस्तृप्तिं पृष्ट्वा यथाविधि । हविष्यव्यञ्जनेनैव तिलादिसहितेन च । पच पिण्डान्प्रदद्याच्च देवरूपमनुस्मरन् । प्रथम विष्णवे दद्याद्ब्रह्मणे च शिवाय च । यमाय सानुचराय चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत् । मृत सकीर्त्य मनसा गोत्रपूर्वमतः परं । विष्णोर्नाम गृहीत्वैव पंचम पूर्ववत्क्षिपेत् । विप्रानाचम्य विधिवद्दक्षिणाभिः समर्चयेत् । एक वृद्धतम विप्र हिरण्येन समर्चयेत् । गवा वस्त्रेण भूम्या च प्रेत तु मनसा स्मरन् । ततस्तिलाम्भो विप्रास्तु हस्तैर्दर्भसमन्वितैः । क्षिपेयुर्गोत्रपूर्वं तु नाम बुद्धौ निवेश्य च । हविर्गन्धतिलाम्भस्तु तस्मै दद्युः समाहिताः । मित्रभृत्यजनैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं विष्णुमते स्थित्वा यो दद्यादात्मघातिने । समुद्धरति त क्षिप्र नात्र कार्या विचारणा ।

सर्पसे डसे हुएके लिएतो सुमन्तुनें इस भविष्य-त्पुराणके वचनेंसे सुवर्ण प्रतिमाको सर्पका दान कहा है कि भार (परिमाणविशेष) भर सुवर्णका सर्प और गौ इनका व्यासके लिये विधिवत् दान करके पिताके ऋणसे विमुक्त हो जाता है

भावार्थ–पाखंडी–अनाश्रमी–चोर–पतिको मारनेवाली स्त्री–व्यभिचारिणी–मदिरापीने-वाली–जल आदिसे आत्महत्यारी–ये अ-शौच और जलकी भागिनी नही होती ॥६॥

कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मृदुशाद्वलसंस्थितान्
स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैःपुरातनैः ॥७॥

पद–कृतोदकान् २–समुत्तीर्णान् २ मृदु-शाद्वलसंस्थितान् २ स्नातान् २ अपवदेयुः क्रि–तान् २ इतिहासैः ३ पुरातनैः ३ ॥

योजना–कृतोदकान् समुत्तीर्णान् मृदु-शाद्वलसंस्थितान् स्नातान् (पुत्रादीन्) कुलवृद्धाः पुरातनैः इतिहासैः अपवदेयुः ॥

ता० भा०–इस प्रकार अपवाद सहित उदकका दान कहकर इसके अनन्तर क्या करना चाहिये इस अपेक्षासे कहते हैं जिनोने जल दिया है ऐसे कृतोदक और स्नात और जो भली प्रकार जलसे निकले हों और जो नये कोमल तृणसे आवृत पृथ्वीपर बैठेहों ऐसे पुत्र आदिकोंको कुलमें वृद्ध मनुष्य वक्ष्यमाण पुरातन इतिहासो (पूर्व-कथा)से शोकको दूर करावे–अर्थात् शोकके दूर करनेवाले वचनोंसे उनको बोध करें ॥ ७ ॥

मानुष्येकदलीस्तंभनिःसारेसारमार्गणम्
करोतियः ससंमूढोजलबुद्बुदसंनिभे ॥८॥

पद– मानुष्ये ७ कदलस्तंभनिःसारे ७ सारमार्गणम् २ करोति क्रि– यः १ सः १ संमूढः १ जलबुद्बुदसन्निभे ७ ॥

योजना– कदलीस्तंभनिःसारे जलबुद्बुदसंनिभे मानुष्ये यः सारमार्गणं करोति सः संमूढः भवति ॥

ता०भा०–यहां मनुष्य शब्दसे जरायुज अंडज आदि चार प्रकारका भूतोंका समुदाय लेते हैं ऐसे कदलीस्तंभके समान भीतर साररहित और जलके बुद्बुद (बबूला) के संमान शीघ्रही नष्ट होनेवाले संसारमें जो सार (स्थिरता)को ढूंढता है वह भलीप्रकार मूढ है अर्थात् नष्टचित्त है– तिससे संसारके ऐसे सारके जाननेवाले तुमको शोक न करना चाहिये ॥ ८ ॥

पंचधासंभृतःकायोयदिपंचत्वमागतः ॥
कर्मभिःस्वशरीरोत्थैस्तत्रकापरिदेवना ९॥

पद–पंचधाऽ– संभृतः १ कायः १ यदिऽ– पंचत्वं २ आगतः १ कर्मभिः ३ स्वशरीरोत्थैः ३ तत्रऽ– का १ परिदेवना १ ॥

योजना–यदि पंचधा स्वशरीरोत्थैः संभृतः कायः पंचत्वं आगतः तत्र परिदेवना का न कापि इत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ–जन्मांतरमें अपने शरीरसे उत्पन्नहुए अपने कर्म बीजोंसे अपने फलोंके भोगार्थ पृथिवी आदि पांचभूतसे पांच प्रकार रची हुई काया यदि फलके भोगकी निवृत्ति होनेपर पंचत्वको प्राप्त हो जाय अर्थात् फिर पृथिवी आदि पांचभूतोंमें लीन हो जाय उसमें आप लोगोंको शोककरना व्यर्थ है– अर्थात् निष्प्रयोजन होनेसे शोक न करना चाहिये क्योंकि जिस वस्तुकी स्थितिको कोई अवलंघन नही कर सक्ता वह वस्तुकी स्थिति ऐसेहीहै ॥

---

१ सुवर्णभारनिष्पन्न नागं कृत्वा तथैव गां । व्यासाय दत्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्नुयात् ।

भावार्थ—पांचभूतोंसे अपने शरीरके किए कर्मोंसे पैदा हुआ देह यदि पांचभूतोंमें मिल गया तो उसमें शोक करना वृथा है ॥ ८ ॥

गंत्रीवसुमतीनाशमुदधिर्देवतानिच ।
फेनप्रख्यः कथंनाशंमर्त्यलोकोनयास्यति१

पद—गन्त्री १ वसुमती१नाशं २उदधिः १ देवतानि १ च ऽ— फेनप्रख्यः १ कथंऽ— नाशं २ मर्त्यलोकः १ नऽ— यास्यति क्रि— ॥

योजना—वसुमती नाशं गंत्री उदधिः च पुनः देवतानि नाशं गंतृणि फेनप्रख्यः मर्त्यलोकः पुनः नाशं कथं न यास्यति ॥

तात्पर्यार्थ—और यह मरण आश्चर्य नहीहै क्योंकि पृथिवी आदि बडे बडे भूत भी नष्ट होयगे और जरा और मरणसे रहित समुद्र और देवताभी प्रलयके समय नाशको प्राप्त होयगे फेनके समान यह मर्त्यलोक अस्थिर होनेसे कैसे नाशको प्राप्त न होयगा अर्थात् अवश्य होयगा क्योंकि जिसका मरना धर्म है उसका जाना उचित है इससे शोकका करना उचित नही ॥

भावार्थ— पृथिवी समुद्र देवता येभी जब नाशको प्राप्त होयगे तब फेनके समान यह देह नाशको प्राप्त क्यों नही होगा अर्थात् अवश्य होयगा ॥ १० ॥

श्लेष्माश्रुबांधवैर्मुक्तंप्रेतोभुंक्तेयतोवशः ।
अतोनरोदितव्यंहिक्रियाःकार्याःस्वशक्तितः

पद—श्लेष्माश्रु २ बांधवैः३मुक्तं २ प्रेतः १ भुंक्ते क्रि— यतःऽ— अवशः १ अतःऽ— नऽ— रोदितव्यं १ हिऽ— क्रियाः १ कार्याः १ स्वशक्तितःऽ— ॥

योजना—यतः (यस्मात्) अवशः प्रेतः बांधवैः मुक्तं श्लेष्माश्रु भुङ्क्ते अतः युष्माभिः नहि रोदितव्यं किंतु स्वशक्तितः क्रियाः कार्याः ॥

ता०भा०—जिससे शोक करतेहुए बांधव मुख और नेत्रोंसे जो कफ और आंशु निकासते हैं उनको इच्छाके न होनेपरभी प्रेत खाता है तिससे प्रेतके हिताभिलाषी योंका रोना न चाहिये किन्तु अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्ध आदि क्रिया करैं॥ ११ ॥

इतिसंश्रुत्यगच्छेयुर्गृहंबालपुरःसुराः ॥
विदश्यनिंबपत्राणिनियताद्वारिवेश्मनः १२

पद—इतिऽ— संश्रुत्यऽ—गच्छेयुः क्रि—गृहं२ बालपुरःसराः १ विदश्यऽ—निम्बपत्राणि २ नियताः १ द्वारि७ वेश्मनः ६ ॥

आचम्याग्न्यादिसलिलंगोमयंगौरसर्षपान्॥
प्रविशेयुःसमालभ्यकृत्वाश्मनिपदंशनैः ॥

पद—आचम्यऽ—अग्न्यादि २ सलिलं२ गोमयं२ गौरसर्षपान्२ प्रविशेयुः क्रि— समालभ्यऽ—कृत्वाऽ—अश्मनि७ पदं२ शनैःऽ— ॥

योजना—इति कुलवृद्धवचांसि संश्रुत्य बालपुरसराः गृहं गच्छेयुः वेश्मनः द्वारि नियताः निम्बपत्राणि संदश्य आचम्य अग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् समालभ्य अश्मनि शनैः पदं कृत्वा प्रविशेयुः गृहमिति शेषः ॥

ता०भावार्थ—इस प्रकार कुलवृद्धोंके वचनोंको सुनकर शोकको त्यागकर और बालकोंको आगे करके घरको जांय और वहां जाकर घरके द्वारपर बैठकर और मनको रोककर नीमके पत्तोंको चाबकर और उन पत्तोंका त्याग करके अग्नि जल गोमय सरसों इनका स्पर्श करके आदि पदके ग्रहणसे दूबके अंकुर और बेलका स्पर्शभी

लेना क्योंकि शंखने इस वचनमें वेभी दो पढे हैं फिर पत्थरके ऊपर पैर रक्खे और शनैः २ गृहमें प्रवेश करैं॥१२॥१३॥

प्रवेशनादिकंकर्मप्रेतसंस्पर्शिनामपि ॥
इच्छतांतत्क्षणाच्छुद्धिःपरेषांस्नानसंयमात्

पद–प्रवेशनादिकं २ कर्म २ प्रेतसंस्पर्शिनां ६ अपि०– इच्छतां ६ तत्क्षणात् ५ शुद्धिः १ परेषां ६ स्नानसंयमात् ५ ॥

योजना–प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनां अपि भवति– इच्छतां तत्क्षणात् शुद्धिः भवति परेषां स्नानसंयमात् भवति ॥

तात्पर्यार्थ–जो यह नीमके पत्ते चावने और गृहमें प्रवेश आदि कर्म है वह केवल ज्ञातिके मनुष्योंको नही किन्तु धर्मके लिये प्रेतका अलंकार और श्मशानमें लेजानेके लिये जो स्पर्श करते हैं उनके लिएभी है–यहां आदिशब्द मांगलिक होनेसे प्रतिलोम क्रमका बोधक है अनुलोम का नही धर्मके लिये प्रेतके लेजानेमें प्रवृत्तहुए वे यदि उसी क्षणमें शुद्धिचाहैं तो सपिण्डोंसे भिन्न उनकी स्नान और प्राणायामोंसे शुद्धि होती है सोई पराशरने कहा है कि जो द्विजाति अनाथ ब्राह्मण प्रेतको लेजाते हैं वे पद२पर क्रमसे यज्ञके फलको प्राप्त होते हैं उन शुभकर्मवालोंको किंचित्भी अशुभ नही होता किंतु जलमें स्नान करनेसेही उनकी शीघ्र शुद्धि होजाती है स्नेहसे प्रेतके लेजानेमें तो मनु (अ० ५ श्लो० १०१-१०२–) कौ कहाहुआ विशेष जानना कि असपिण्ड द्विज प्रेतको ब्राह्मण अपने बंधुके समान और माताके श्रेष्ठ बांधवोंको लेजाकर तीन रात्रमें शुद्ध होता है–यदि उनके अन्नको भक्षण करे तो दश रात्रमें शुद्ध होता है–यदि उनके अन्न को न खाय और उनके घरमें नवसे तो एक रात्रमें शुद्ध होता है–यहां यह व्यवस्था है कि जो स्नेहसे प्रेतको श्मशानमें लेजाकर उसके अन्नको खाता है–और उसके घरमें वसता है उसकी दश रात्रमें शुद्धि होती है और जो उसके घरमें वसता है और उसके अन्नको नही खाता उसकी त्रिरात्रमें शुद्धि होती है–और जो केवल प्रेतको लेजाता है न उसके अन्नको खाता है न घरमें वसता है उसकी एकरात्रमें शुद्धि होती है–यह भी सजातीयके विषयमें है विजातीयके विषयमें तो जिस जातिके प्रेत को लेजाता है उस जातिकेही अशौचका भागी हो जाता है सोइ गौतमनें कहा है कि–यदि छोटावर्ण पूर्वको वा पूर्ववर्ण छोटे वर्णको श्मशानमें लेजाय तो उस शवका जो आशौच वही उसको कहा है ब्राह्मण शूद्रको लेजाय तो एक मासका और शूद्र ब्राह्मणको ले जायतो दश रात्रका अशौच होता है इस प्रकार शवके समान आशौच करना॥

भावार्थ–प्रेतके स्पर्श करनेवालोंको गृहमें प्रवेश आदि कर्म करना यदि वे चाहैं तो उसी क्षणमें शुद्धि होती है और सपिण्डोंकी स्नान करनेसेही शुद्धि होती है॥ १४ ॥

आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापिव्रतीव्रती ।
सकटान्नंचनाश्नीयान्नचतैःसहसंवसेत् १५॥

---

१ दूर्वाप्रवालमग्निवृषभौना ।

२ अनाथ ब्राह्मण प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।पदे पदे यज्ञफलमनुपर्वं लभन्ति ते ।

३ असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बंधुवत्।विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बांधवान् । यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेन विशुध्यति । अनदन्नन्नमह्नैव नचेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ।

१ अवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् पूर्वो वावरं तत्र तच्छवोक्तमाशौचम् ।

पद–आचार्यपित्रुपाध्यायान् २ निर्हृत्यऽ–अपिऽ–व्रती१ व्रती१ सकटान्नं २ चऽ– नऽ–अश्नीयात् क्रि–नऽ– चऽ– तैः ३ सहऽ–संवसेत् क्रि– ॥

योजना–व्रती आचार्यपित्रुपाध्यायान् निर्हृत्य अपि व्रती भवति सकटान्नं न अश्नीयात् चपुनः तैः सह न संवसेत् ॥

तात्पर्यार्थ–आचार्य– माता– पिता– उपाध्याय–इनको श्मशानमें लेजाकर ब्रह्मचारी ब्रह्मचारीही रहताहै उसका व्रत नष्ट नहीं होता यहां कट शब्दसे अशौच लेते हैं उसका जो अन्न उसे सकटान्न कहते हैं उसको न खाय न अशौच वालोंके साथ सोवै–यह कहनेसे यह बात अर्थात् कही गई कि आचार्य आदिसे भिन्नके लेजानेमें व्रत नष्ट होजाता है इसीसे वसिष्ठनें कहा है कि शवके कर्म करनेवाले ब्रह्मचारीकी व्रतसे निवृत्ति होती है माता और पिताके कर्मको करे तो व्रतसे निवृत्ति नहींहोती ॥[1]

भावार्थ–आचार्य पिता उपाध्याय इनको श्मशानमें लेजाकर ब्रह्मचारीका व्रतभंग नहीं होता परंतु वह अशौचका अन्न न खाय और न अशौच वालोंके संग बसै ॥१५॥

क्रीतलब्धाशनाभूमौस्वपेयुस्तेपृथक्पृथक्॥
पिंडयज्ञावृतादेयंप्रेतायान्नंदिनत्रयम्॥१६॥

पद–क्रीतलब्धाशनाः १ भूमौ ७ स्वपेयुः क्रि– ते१ पृथक्ऽ–पृथक्ऽ– पिण्डयज्ञावृता ३ देयं १ प्रेताय४ अन्नं १ दिनत्रयम्२॥

योजना–क्रीतलब्धाशनाः ते भूमौ पृथक् २ स्वपेयुः पिण्डयज्ञावृता प्रताय अन्न दिनत्रय देयं ॥

तात्पर्यार्थ–वे अशौचवाले मोलका अयाचित वा अकस्मात् मिले भोजनको करें यदि यह पूर्वोक्त भोजन न मिलेतो अर्थात् अनशन व्रत करैं इसीसे वशिष्टने कहाहै कि घरमें जाकर भूमिके विस्तरपर तीन दिन तकविना– भोजनकिए बैठें अथवा मोलके अन्नका भक्षण करें अशौचवालोंके सोने वा बैठनेके लिए जो तृणोंका विस्तर उसे अधःप्रस्तर कहतेहैं और वे सपिण्ड भूमिमेंही पृथक् २ सोवें खट्वा आदिपर नहीं–मनुं[2] (अ० ५ श्लो० ७३) ने भी यहां विशेष दिखायाहै कि खारालवण जिसमे नहो ऐसे अन्नको भक्षण करतेहुए वे तीन दिनतक–स्नानकरें और मांसका भक्षण न करें तैसेही गौतमनेंभी[3] विशेष कहा है कि शवके कर्म करनेवाले भूमिपर सोवें और ब्रह्मचारी रहें और पिण्डपितृयज्ञकी प्रक्रियासे अर्थात् अपसव्य होकर प्रेतके लिए पिण्डरूप अन्न तीन दिनतक मौनहोकर भूमिपर दें सोई मरीचिनें[4] कहा है कि दर्भ और मंत्रसे वर्जित प्रेतका पिण्डस्थान और सावधानीसे पूर्व और उत्तर दिशामें चरु बनाकर ग्रामसे बाहिर दे यहां कुशा और मंत्रसे वर्जित कहना उसकेलिए है जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो क्योंकि प्रचेतोंकी[5] यह स्मृति है कि जिनका संस्कार न हुआ हो उनका पिण्ड भूमिमें और जिनका संस्कार होचुकाहो उनको कुशाओंपर दे– तैसेही

[1] ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः ।

[1] गृहान् व्रजित्वाधःप्रस्तरे त्र्यहमनश्नन्तः आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

[2] अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहं । मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक्क्षितौ ।

[3] अधःशय्याशयिनो ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणः ।

[4] प्रेतपिंडं बहिर्दद्याद्दर्भमंत्रविवर्जितं । प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ।

[5] असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु

कर्त्ताका नियमभी गृह्यपरिशिष्टसे जानना कि असगोत्रहो वा सगोत्रहो स्त्री हो वा पुरुषहो पहिले दिन जो देवे सोही दश-दिनतक कर्मकी समाप्ति करे तैसेंही द्रव्य-का विनिमय (देना) शुनःपुच्छनें दिखाया है साठी सत्तु वा शाक इनसे पिण्ड दे और पहिलेदिन जिस द्रव्यसे पिण्डदे उसी द्रव्यसे दशदिनतक पिण्डदे–और सेचन–फूल–धूप–दीप–इनको विना मंत्रदे–और पिण्डको पाषाणपर दे माला पिण्ड जल इनको भूमिमें वा पत्थरपरदे यह शंखने कहाहै– कदाचित् दद्युः (दें) इस बहुवचनसे जलदानके समान सब पिण्डदान करें यह शंका न करनी किं तु पुत्रही पिण्डदान करे–पुत्र न होयतो समीपके सपिण्डोंमेंसे कोई करे वे भी न होयतो माताके सपिण्डोंमेंसे कोई करे क्योंकि गौतमकी यह स्मृति है कि पुत्रके अभावमें सपिण्ड, माताके सपिण्ड, शिष्य, पिण्डदान करें ये न होयतो ऋत्विक् और आचार्य पिण्डदान करें और बहुत पुत्रोंके होनेपरभी ज्येठाही पिण्डदान करे–क्योंकि मरीचिका वचन है कि सबकी अनुमतिसे जो जेठेने विभक्त द्रव्यसेभी किया वह सब-का किया होता है–पिण्डकी संख्याका नियम विष्णुनें कहा है कि ब्राह्मणके दश-पिण्ड–क्षत्रियके बारह पिण्ड अशौचके दिनकी संख्यासे होते हैं जितना अशौच उतना जल और पिण्ड दें–तैसेही अन्य-स्मृतिमें कहा है कि नो ९ दिनोंमें नो पिण्ड सावधानीसे दे–दशमें पिंडको देकर एक रात्रिमें शुद्ध होता है यह शुद्ध होनेका व-चन अगले दिन श्राद्ध करनेके लिए और ब्राह्मणोंके निमंत्रणके लिये है योगीश्वरनेतो तीन पिंडका दान कहा है उन दोनों गुरु लघु कल्पोंकीभी वही व्यवस्था जाननी जो जलदानके विषयमें कह आये हैं–यहां और भी विशेष शातातपनें कहा है कि आशौचके अल्प होनेपरभी दशही पिण्ड दे–जिनको तीन रात्रका अशौच है उनको पारस्करनें विशेष दिखाया है कि पहले दिन सावधान होकर तीन पिण्ड दे दूसरे दिन चार पिण्ड और अस्थिसंचयन करे तीसरे दिन चार पिण्ड दें और वस्त्रोंको धोवै–

भावार्थ–मोल लिए भोजनको खाते हुए वे भूमिमें सोवें और अपसव्य होकर तीन दिन तक प्रेतको पिण्ड दे ॥ १६ ॥

जलमेकाहमाकाशेस्थाप्यंक्षीरंचमृ-
न्मये । वैतानोपासनाःकार्याःक्रि-
याश्च श्रुतिचोदनात् ॥ १७ ॥

पद–जलं १ एकाहं २ आकाशे ७ स्था-प्य १ क्षीरं १ चऽ– मृन्मये ७ वैतानो-पासनाः १ कार्याः १ क्रियाः १ चऽ– श्रुति-चोदनात् ५ ॥

१ असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ।

२ शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्वपेत्।प्रथमे हनि यद्द्रव्यं तदेवस्याद्दशाह्निकम् ।

३ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च दीपं धूपं तथैव च । भूमौ माल्यं पिंडपानीयमुपले वा दद्युः ।

४ पुत्राभावे सपिंडा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च तदभावे ऋत्विगाचार्यौ ।

५ सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतं । द्रव्येण वा विभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ।

६ यावदाशौचं प्रेतस्योदकं पिण्डं च वा दद्युः ।

१ नवभिर्दिवसैर्दद्यान्नव पिण्डान्समाहितः । दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत् ।

२ आशौचस्य तु ह्रासेपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु ।

३ प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्या-त्तृतीयेह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्तथा ।

योजना-जलं चपुनः क्षीरं मृन्मये पात्रे एकाहं आकाशे स्थाप्यं श्रुतिचोदनात् वेतानोपासनाः चपुनः क्रियाः कार्याः-

तात्पर्यार्थ-जल और क्षीर मट्टीके दो पात्रोंमें शिक्य आदिमें रखकर प्रेतके निमित्त आकाशमें एक दिन दे यहां विशेषके न कहनेपरभी एक दिन पहिला लेना है प्रेत यहां स्नानकर इस वचनसे और इसका पानकर इस वचनसे दूधका स्थापन करे तैसेही अस्थिसंचयनभी प्रथम आदि दिनोंमें करना सोई संवर्तने कहा है कि पहिले तीसरे सातमें नौमें दिन सगोत्रीयोंको साथ लेकर अस्थिसंचयन करें कहींतो दूसरे दिन अस्थिसंचयन करें यह कहा है विष्णुपुराणमें तो कहा है कि चौथे दिन अस्थिसंचयन करें और उनको गंगाजलमें स्थापन कर दे-इससे इनमेंसे कोई से दिन अपनी गृह्यसूत्रकी विधिसे अस्थिसंचयन करे- अंगिराने यहां यह विशेष दिखाया है कि अस्थिसंचयनके दिन देवताओंका यज्ञ कहा है जो मनुष्य शुद्ध होकर उस दिन देवताओंका पूजन नही करता उसको देवता शाप देते हैं-यहां देवता श्मशानवासी लेने क्योंकि अंगिरानेही कहा है कि पहिले दग्ध होनेवाले श्मशानमें बसनवाले सबके देवता कहे हैं इससे तत्काल मरे हुए प्रेतके निमित्त उन देवताओंका धूपदीप आदिसे पूजन करे तैसेही दशमें दिन मुण्डनभी करना क्योंकि देवलनें यह कहा है कि दशमे दिनके आनेपर ग्रामसे बाहिर स्नान होता है उसी दिन वस्त्र-केश-श्मश्रु- और- नख-ये त्यागने योग्य हैं-तैसेही अन्यस्मृतिमेंभी लिखा है कि दूसरे- तीसरे- पांचमें सातमें दिन श्राद्ध देनेसे पहिले मुण्डन करावे सिद्धान्त यह है कि एकादशाहके श्राद्ध देनेसे पहिले मुण्डनकरानेका नियम नही,चाहैं जिस दिन करे मुण्डन करे इस आकांक्षामें आपस्तम्बनें कहा है कि अनुभावियोंका मुण्डन होता है इसका यह अर्थ है कि शवके दुःखको जो मानें उनको अनुभावी (सपिण्ड) कहते हैं-उन सपिण्डोंमें अविशेषसे सबका मुण्डन होता है अथवा छोटी अवस्था वालोंका इस अपेक्षामें भी यही वचन उपस्थित होता है कि तब यह अर्थ है कि अनु (पीछे) उत्पन्न होंय उनें अनुभावी कहते हैं अर्थात् छोटी अवस्थावालोंका मुण्डन होता है कोई पुत्रोंकोही अनुभावी जानते हैं क्योंकि यह नियमें देखते हैं कि गंगा भास्करक्षेत्र माता पिता गुरुका मरण आधान सोमपान इन सातमें मुण्डन होता है ॥

अशौच कि अशुद्धिमें संपूर्ण वेद और स्मृतियोंके कर्मकी निवृत्ति पाई उनमें किसी कर्मकी आज्ञाके लिए कहते हैं अग्नियोंके विस्तारके वितान कहते हैं उसमें जो होनेवाली क्रिया अर्थात् त्रेताग्निमें होने

---

१ प्रथमेह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ।

२ द्वितीये त्वस्थिसंचयः ।

३ अस्थिसंचयने यागो देवानां परिकीर्तितः । प्रेतीभूतं तमुद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् । देवतानां तु यजनं त शपन्त्यथ देवताः ।

४ पूर्वदग्धाः श्मशानवासिनो देवाः शवानां परिकीर्तिताः

१ दशमेहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ।

२ द्वितीयेहनि कर्तव्य क्षुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीये पचमे वापि सप्तमे वा प्रदानतः ।

३ अनुभाविनां च परिवापनम् ।

४ गंगायां भास्करे क्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ ॥ आधानकाले सोमे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ।

वाली अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास आदि क्रिया को वैतान कहते हैं–प्रतिदिन जिसकी उपासनाकी जाय उपगृह्य अग्निको उपासन कहते हैं उसमें करने योग्य सायंकाल प्रातः कालकी क्रियाको औपासन कहते हैं इन वैतान औपासन नाम वेदोक्त कर्मोको अशौचमेंभी करे–कदाचित कोईकहै कि ये वेदोक्त कैसे हैं इससे कहा है कि (श्रुतिचो०) वेदमें कहनेसे–सोई दिखाते हैं कि इतने जीवै अग्नि होत्र करे इत्यादि श्रुतियोंसे अग्नि होत्र आदिका वेदमें कहना स्पष्ट है तैसेही इस श्रुतिसे ओपासनहोमभी कहा है कि प्रतिदिन स्वाहा करे अन्नके अभावमें काष्ठपर्यन्त किसीसे करे–यहां श्रौत (वेदोक्त) विशेषणके देनेसे स्मृतियोंमें कही दान आदि क्रियाओंका न करना जानागया–इसीसे वैयाघ्रपादने कहीं है कि राहुके सूतकसे अन्य सूतकमें स्मृतिमें कहेहुए कर्मोका त्याग होता है और वेदोक्त कर्मोमें तो उसी कालमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है–यहां वेदोक्तकर्मोका करना जो कहा है वह नित्य और नैमित्तिकके अभिप्रायसे है सोई पैठीनसीने कहा है कि वैतान कर्मको छोडकर नित्य कर्मो की निवृत्ति होती है और कोई शालाग्निके कर्मोकी निवृत्ति कहते हैं–नित्य कर्म निवृत्त होते हैं इस अविशेष कहनेसे आवश्यक नित्य नैमित्तिक कर्मोकी निवृत्ति पाई इससे वैतान कर्मको छोडकर इस वचनसे तीन अग्नि साध्य अवश्य कर्मोका निषेध कहा है

और कोई शालाग्निमें कहते हैं इस वचनसे गृह्याग्निमें होने वाले आवश्यकोंकाभी निषेध कहा है इससे उन पूर्वोक्त कर्मोके विषे अशौच नहीं है–काम्य कर्मोका तो शुद्धिके अभावसे न करनाही श्रेष्ठ है–मनुनेभी इसी अभिप्रायसे कहा है (अ० ५ श्लो० ८४)कि अग्नियोंके कर्मको न करे जो अग्नियोंमें नहीं होते उन पंचमहायज्ञ आदिकोंकी निवृत्ति होती हैं इसीसे संवर्तने कहा है कि–मरण और जन्मके अशौचमें शुष्क अन्न वा फलोंसे होम करना और पंचमहायज्ञ न करने–वैश्वदेव कर्मको अग्निसे साध्यभी होने पर वचनसे निवृत्ति होती है क्योंकि तिसकाही यह वचन है कि ब्राह्मण दश दिनतक बलि वैश्वदेवसे रहितरहै–यद्यपि सूतकमें संध्या आदि कर्मोका त्याग कहा है–इस वचनसे संध्याकीभी निवृत्ति शास्त्रमें सुनी जाती है तथापि सूर्यके निमित्त अंजलिका प्रक्षेप करे क्योंकि पैठीनसीका वचनहै कि सूतकोंमें गायत्रीसे अंजलि देकर और सूर्यकी प्रदक्षिणा करके ध्यान करता हुआ नमस्कार करे यद्यपि वैतान उपासना क्रियाओंको करे यह सामान्यसे कहाहै तथापि औरसे करादे–क्योंकि पैठीनसिने यह कहाहै कि अन्य मनुष्य इनकर्मोको करे– बृहस्पतिने भी

१ यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् ।

२ अहरहः स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केन चिदाकाष्ठात् ।

३ स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके । श्रौते कर्मणि तत्काले स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ।

४ नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवर्ज्यं शालाग्नौ चैके ।

१ प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः ।

२ होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा । पञ्चयज्ञविधानन्तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ।

३ विप्रो दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः ।

४ सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ।

५ सूतके सावित्र्या चाञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् ।

६ अन्ये एतानि कुर्युः ।

७ सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ।

कहाहै कि सूतक-मरण-असामर्थ्य श्राद्ध भोजन-परदेशआदि निमित्तोंमें दूसरेसे होम करावे और त्याग न करे तिसी प्रकार स्मृतिधर्मशास्त्रोक्त होनेपर भी पिण्डपितृयज्ञ- श्रावणीका कर्म आश्वयुजी कर्म-आदि, नित्यहोम अवश्य करना- क्योंकि जातुकर्ण्यका वचन है कि सूतकके होनेपर स्मार्तकर्मको किस प्रकार करना चाहिये ऐसी आकांक्षामें यह विधि है कि पिण्डपितृयज्ञ-चरु-होम-ये अपने असगोत्रीसे करावे यद्यपि अङ्गसहित कर्ममें कर्ता नहीं हो सकता तथापि अपने द्रव्यका दानरूप प्रधानकर्म स्वयं करे क्योंकि उसको अन्य नहीं कर सकता- इसीसे पीछे कह आये है कि वेदोक्त कर्ममें स्नान करनेसे शुद्ध होताहै और जो यह होमका निषेध है कि दान प्रतिग्रह होम वेदपाठ ये सूतकमें निवृत्त होते हैं वह निषेध काम्यकर्मके अभिप्रायसे है ऐसी व्यवस्था जाननी तैसेही सूतकके अन्नकाभी भोजन न करे- क्योंकि यह यमका वचन है कि जन्म और मरण दोनों सूतकोंमें दशदिनतक कुलके अन्नको भोजन न करे- अर्थात् जिस कुलमें सूतक हो उस कुलके अन्नको असकुल्य नखाय और सकुल्योंको दोष नहीं क्योंकि यमनेही कहाहै कि सूतकमें कुलके अन्नका दोष नहीं यह मनुने कहाहै यह निषेधभी तब जानना जब दाता और भोक्तामें कोईसेने जन्म और मरण जानलिया हो क्योंकि वह षट्त्रिंशत् के मतसे यह देखते है कि दोनोंको ज्ञान न होय तो सूतकका दोष नहीं और एकको ज्ञान होय तो भोक्ताकोही दोष होताहै- तैसेही विवाह आदिमें सूतक होनेसे पहिले ब्राह्मणोंके लिये पृथक् किया अन्न भोजन करने योग्य है- क्योंकि बृहस्पतिका वचन है कि विवाह उत्सव यज्ञ इनके बीचमें सूतक होजाय तो पूर्व संकल्प किए पदार्थमें दोष नहीं कहा तैसे अन्यभी विशेष षट्त्रिंशत्के मतमें दिखाया है कि विवाह उत्सव यज्ञ इनके मध्यमें मरण और सूतक हो जाय तो भिन्न गोत्री अन्नको दें और ब्राह्मण भोजन करें-ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समय मरण और सूतक होजाय तो अन्य गृहके जलसे आचमन करनेसे वे शुद्ध होजाते हैं- तैसेही अशौचके होनेपर भी किन्हीं एक द्रव्योंमें दोषका अभाव है सोई मरीचिने कहाहै कि लवण-मधु-मांस-पुष्प-मूल-फल-शाक-काष्ठ-तृण-जल-दधि-घी-दूध-तिल-औषध-मृगछाला-मोदक आदि पक्व-और तण्डुल आदि अपक्व-और बेचनेकी सम्पूर्ण वस्तु-इनमें मरण और जन्मके सूतकका दोष नहीं- किंतु स्वामीकी आज्ञासे इनको स्वयंहि ग्रहण करले-पक्व-और अपक्व अन्न स्वामीकी आज्ञासे सत्रके विषयमें लेना क्योंकि अंगिराका वचन है

१ सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् । पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत् ।

२ दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ।

३ उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।

४ सूतके तु कुलस्यान्नमदोषं मनुरब्रवीत् ।

१ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके । पूर्वसंकल्पितार्थेषु न दोषः परिकीर्तितः ।

२ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके । परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः । भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः ।

३ लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च । शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयस्सु च । तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयं ग्रहः । पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ।

४ अन्नमत्रप्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम् । भुक्त्वा-पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु पयः पिबेत् ।

कि सत्रके अन्नमें जो प्रवृत हैं उनका आम (कच्चा) अन्न निन्दित नहीहै और इनके पक्वान्नको खाकर तीन रात्रतक दुग्धका पान करे यहां पक्वान्न शब्दसे भक्ष्यसे भिन्न ओदन आदि लेना-शवके संसर्गसे हुए अशौचमें तो अंगिराने विशेष कहाहै कि जिस गृहस्थीको संसर्गसे अशौच होय उसके कर्मोका लोप नहीं होता और उसके घरमें होनेवाले भार्या आदि और द्रव्योंको अशौच नहीं लगता किन्तु केवल उस गृहस्थकोही अशौच होता है-अशौचके बीतनेंपरभी यही अर्थ अन्यस्मृतिमें दिखाया है कि दश दिनके बीतनेंपीछे गृहस्थीको अशौचका ज्ञान होयतो उसका तीन रात्र अशौच होता है उसके द्रव्यको कदाचित् नहीं होता ॥

भावार्थ-एक दिन आकाशमें जल और दूध मट्टीके पात्रमें रक्खे और श्रुतिकी आज्ञासे वतान और औपासन कर्मोंको करे अर्थात् त्रेताग्निमें करनेयोग्य अग्निहोत्र आदि और गृह्याग्निमें करनेयोग्य सायंकाल प्रातःकालके होम आदिको करे ॥ १७ ॥

त्रिरात्रंदशरात्रंवाशावमाशौचमिष्यते ।
ऊनद्विवर्षउभयोःसूतकंमातुरेवहि॥ १८ ॥

पद-त्रिरात्रं २ दशरात्रं २ वाऽ-शावं २ आशौचं २इष्यते क्रि-ऊनद्विवर्षे ७उभयोः ६ सूतकं १ मातुः ६ एवऽ-हिऽ- ॥

योजना-ऊनद्विवर्षे शावं आशौचं उभयोः त्रिरात्रं वा दशरात्र इष्यते सूतकं मातुः एव भवति ॥

शव है निमित्त जिसका उसे शाव कहते हैं जन्मकेवाची सूतक शब्दसे उसके निमित्त आशौच लेते हैं-ऐसे कहते हुए आचार्यनें जन्म और मरणको आशौचका निमित्त कहा वह जन्म और मरण पैदा होनेंपरभी जानकरही आशौचका निमित्त होता है क्योंकि यह उसमें प्रमाण देखते हैं कि दश दिनके भीतर ज्ञातिका मरण और पुत्रका जन्म सुनकर आशौच होता है-तैसेही इस वाक्यके आरंभसेभी जन्म और मरणका ज्ञानही निमित्त है उत्पत्ति नहीं कि परदेशमें टिके हुएका जो दशदिनके भीतर मरना सुने वह उतनेंही कालतक अशुद्ध होता है जो दशरात्रका शेष हो यदि उत्पत्तिकोही केवल अशौचका निमित्त मानोंगे तो दशदिन आदि अशौचकालके नियम तिस२सेंही अवश्य होयगे-दशदिनके भीतर ज्ञाति मरणके सुननेंपर दशरात्रकाही अशौच अर्थात् सिद्ध होयगा-फिर दशरात्रका जो शेष इस वचनके आरंभका क्या प्रयोजन था तिससे जाने हुए जन्म और मरणही अशौचके निमित्त हैं वे दोनों निमित्त हैं जिसके ऐसा अशौच तीनरात्र और दशरात्रही मनु आदिकोंनें माना है-इस आशौच प्रकरणमें दिनका ग्रहण और रात्रिका ग्रहण अहोरात्रका बोधक है मनुआदिकोंने दशरात्र और तीनरात्र अशौच माना है यह वचनभी मनु आदिकोंने कहे सपिण्ड और समानोदक रूप-विषयभेद दिखानेंके लिये है सोई दिखाते हैं कि मरणका अशौच सपिण्डोंमें

दशदिनतक कहा है-और जन्ममेंभी पूरी-शुद्धि चाहते हुएको इतनाही अशौच होता-है-और जन्ममें समानोदकोंकी शुद्धि तीन रात्रमें होती है शवका स्पर्शकरनेवाले और समानोदक तीनरात्रमें शुद्ध होते हैं इत्यादि वचनोंसे त्रिरात्र और दशरात्रकी समानोदक और सपिण्डके विषयसे व्यवस्था की है इससे सातपीढीतक सपिण्डोंको अविशेषसे दशरात्र और समानोदकोंको त्रिरात्र अशौच होता है और जो यह अन्यस्मृतिका वचन है कि चौथी पीढीतक दशरात्र और-पांच-मीमें छःरात्र छठीमें चारदिन और सातमीमें एक दिनमें शुद्धि होती है-वह वचन नि-न्दित होनेसे आदर करनेयोग्य नही-यद्यपि शास्त्रका वचन होनेसे निन्दित नही तथापि मधुपर्कमें गोहिंसाके समान जगत्में निंदित होनेसे करनेयोग्य नही क्योंकि यह मनुका वचन है कि स्वर्गके न देनेवाले जगत्में निंदित धर्मकाभी आचरण न करै और यह युक्त नही कि सातमी पीढीके समीप सपिण्डोंको एक दिनका और विप्रकृष्ट (दूरके) अष्टम पीढी आदिके समानोदकोंमें तीन दिनका अशौच मानना इस प्रकार अविशेषसे सपिण्डोंको आशौच पाया कहीं एक नियमके लिए कहते हैं कि दोवर्षसे कमका बालक मर जाय तो माता और पिताकोही दशरात्रको अशौच होताहै सब सपिण्डोंको नही सपिण्डोंको तो इस वच-नसे दांत जमनेसे पहिले शीघ्रही शुद्धि कहेंगे सोई पैंग्येने कहाहै कि गर्भमें बालक मरनेसे माताको दशदिनतक और जन्मकर मरनेमें माता-पिता-दोनोंको दशदिनतक और नाम रखनेके अनंतर मरनेपर सोदर भाई-योंको दशदिनतक अशौच होताहै अथवा यह अर्थ है कि दोवर्षसे कमका बालक मरनेपर स्पर्श न करनारूप अशौच माता-पिताकोही होताहै सपिंडोंको नही सोई अन्यस्मृतिमें लिखा है कि दो वर्षसे कमके बालकके मरनेपर मातापिताओंकाही अशौच है अन्योंको नही इस वचनमें भी स्पर्श न करनाही लिया है-किसी कर्मको न करना रूप जो अन्य आशौच है वह, सपिण्डोंमें दांत जमनेसे पहिले शीघ्र शुद्धि होतीहै इत्यादि वचनोंसे कहैंहै इसमें दृष्टान्त है कि जैसे जन्म है निमित्त जिसमें ऐसा स्पर्श न करनारूप अशौच माताकोही होताहै ऐसेही दो वर्षसे कमके मरनेमें माताको पिताको स्पर्श न करनारूप अशौच होताहै- दो वर्षसे कमके मरनेमें स्पर्श न करनेका निषेध कहते हुए आचार्यने दो वर्षसे अधिकके मरनेमें स्पर्श न करनेकी आज्ञा अर्थात् दीहै- सोई देवलने कहाहै कि अपने अशौचका जो समय उसके तीसरे भागमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनको शास्त्रके अनुसार स्पर्श करना कहाहै यह भी उस बालकके अतिक्रान्त अशौच और त्रिरात्रमें है जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो और जिसका यज्ञोपवीत हो चुका

१ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पञ्चमे । षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे त्वहरेव तु ।

२ अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु ।

३ ऊनद्विवर्षे संस्थिते उभयोरेव मातापित्रोर्दशरात्र-माशौचं न सर्वेषां सपिण्डानां

४ तेषां तु वक्ष्यति आ दंतजननात्सद्यः ।

१ गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाह जाते उभयोः कृते नाम्नि सोदराणां ।

२ ऊनद्विवर्षे प्रेते मातापित्रोरेव नेतरेषां ।

३ सपिण्डेष्वपि आ दन्तजन्मनः सद्यः ।

४ स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं च त्रिभागतः । शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यथाशास्त्रं प्रचोदितं ।

हो उसके मरनेमें तो देवलनेही यह कहाहै कि दशादिनतक आदि तीन भागमें अस्थि-संचयन किए हुए पीछे तत्त्वके देखनेवाले वर्णोंके अंगका स्पर्श चाहते हैं– तीन-चार-पांच-दशदिनमें ब्राह्मण आदि चारों वर्णक्रमसे स्पर्श करने योग्य है और ब्राह्मणका अन्न दशदिनमें-क्षत्रियका बारह दिनमें और वैश्यका १३ दिनमें और शूद्रका द्रका १५ पंद्रह दिनमें भोजन करने योग्य होता है ॥

भावार्थ–तीन वा दश रात्र दोवर्षसे कमके शवका अशौच माता पिता दोनोंको इष्ट है और सूतक तो दोनोंको होता है ॥ १८ ॥

पित्रोस्तुसूतकंमातुस्तदसृग्दर्शनाद्धुवम् ।
तदहर्नप्रदुष्येतपूर्वेषांजन्मकारणात् ॥१९॥

पद–पित्रोः ६ तु ऽ– सूतकं १ मातुः ६ तदसृग्दर्शनात् ५ ध्रुवं २ तत् १ अहः १ न ऽ– प्रदुष्येत क्रि– पूर्वेषां ६ जन्मकारणात् ॥५॥

योजना–पित्रोः सूतकं भवति–तदसृग्दर्शनात् मातुः ध्रुवं सूतकं भवति–पूर्वेषां जन्मकारणात् तत् अहः न प्रदुष्येत ॥

तात्पर्यार्थ–जन्म है निमित्त जिसका ऐसा अस्पर्श करने रूप अशौच माता पिता दोनोंको होता है सब सपिंडोंको नहीं और वह स्पर्श न करना रूप माताको तो निश्चयसे होता है क्योंकि माताके शरीरमेंसे रुधिर निकलता है–इसीसे वशिष्ठनें कहा है कि यदि स्पर्श न करै तो पिताको अशौच नहीं होता–जन्ममें रज अशुद्ध होता है वह रज पुरुषमें नहीं होता पिताको अशौच ध्रुव नहीं होता किन्तु स्नान करनेसेही स्पर्शको अभावनिवृत्त हो जाता है–सोई संवर्तनें कहा है कि पुत्रके होनेपर पिताको सचैल स्नान कहा है कि माता दश दिनमें शुद्ध होती है और पिता स्नानसे शुद्ध होता है–माताकी दश दिनमें शुद्धिभी व्यवहार की व्योग्यताकेही लिये है और धर्मार्थ कार्योंके लियेतो पैठी नसीने विशेष कहा है कि पुत्रवाली सूतिका पर दश दिनमें कार्य करावे और जिसके कन्या हुई हो उससे एक मासमें कार्य करावे–अंगिरानें तो सपिण्डोंको स्पर्श करना कहा है सूतकमें सूतिकाको छोडकर अन्य मनुष्यके स्पर्श करनेका निषेध नहीं–सूतिकाका स्पर्श करलेतो स्नानही कहा है–जिस दिन बालकका जन्म होय वह दिन दूषित नहीं होता अर्थात् उस दिनमें करने योग्य दान आदिका अधिकार बना रहता है–क्योंकि उस दिन पिता आदिही पुत्र रूपसे पैदा होते हैं सोई वृद्ध याज्ञवल्क्यने कहा है की बालकके जन्म दिनमें ब्राह्मण–सुवर्ण–भूमि–गौ–अश्व–बकरी–वस्त्र–शय्या–आसन आदिका प्रतिग्रह लें–इन सबका प्रतिग्रह तो लें परन्तु कि-

१ दशाहादित्रिभागेन कृते सञ्चयने क्रमात् । अगस्पर्शनमिच्छन्ति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः । त्रिचतुःपञ्चदशभिः स्पृश्या वर्णाः क्रमेण तु । भोज्यान्नो दशभिर्विप्रः क्षेत्रा [illegible]

२ नाशौचं दिवसे पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ।

१ जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । माता शुध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ।

२ सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेत् । मासेन स्त्रीजननीं ।

३ सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते । संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते ।

४ कुमारजन्मदिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः । हिरण्यभूगवाश्वाजवासःशय्यासनादिषु ॥ तत्र सर्वं प्रतिग्राह्यं कृतान्नं न तु भक्षयेत् । भक्षयित्वा तु तन्मोहाद्द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।

एहुए अन्नका भक्षण न करै–जो द्विज मोहसे भक्षण करता है वह चांद्रायण करै–व्यासने-भी यहां विशेष कहा है कि सूतिकाके ग्रहमें है स्थान जिसका ऐसी जन्मदा नाम देवता है उनकी पूजाके निमित्त जन्ममें शुद्धि कही है–पहिले–छठे–दशमेदिन–पुत्रके जन्ममें सूतक न करै–मार्कंडेयनेभी कहा है कि सूतकमें छठीरात्रिकी विशेषसे रक्षा करै रात्रिमें जागरण करै और जन्मदानाम देवता को बलिदे–पुरुष–हाथमें शस्त्र रक्खे–और स्त्री नृत्य और गीतसे रात्रिमें जागरण करै और ये सब कर्म दशमी रात्रिमें दशमें दिन विशेषकर करै

भावार्थ–माता–पिताको सूतक होता है–और माताको तो उसके रुधिरके निकलनेसे अवश्यही सूतक होता है वह दिन दान आदिके ग्रहण करनेमें दूषित नही क्योंकि उसमें पूर्व (पिता) आदिही पुत्र रूपसे उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥

अंतराजन्ममरणेशेषाहोभिर्विशुध्यति ।
गर्भस्रावेमासतुल्यानिशाःशुद्धेस्तुकारणम् ॥

पद–अन्तरा॰–जन्ममरणे ७ शेषाहोभिः ३ विशुध्यति क्रि–गर्भस्रावे ७ मासतुल्याः १ निशाः १ शुद्धेः ६ तु॰– कारणम् १ ॥

योजना–अन्तरा जन्ममरणे सति शेषाहोभिः विशुध्यति गर्भस्रावे मासतुल्याः निशाः शुद्धेः कारणं भवन्ति–

तात्पर्यार्थ–वर्ण और अवस्थाकी अपेक्षासे जिसका जितने दिनका आशौच लिखा है उसके भीतर यदि उस आशौचके समान वा उससे न्यून (कम) कालवाले आशौचका निमित्त रूप जन्म वा मरण हो जाय तो उस पहिले आशौचके शेष दिनोंसेही शुद्धि हो जाती है अर्थात् फिर उस पीछे उत्पन्न हुए बालकके जन्मका आशौच पृथक्२ (जुदाजुदा) न करना–और जो वर्तमान आशौच अल्प (थोडे दिनका) हो उसके भीतर बहुत दिनका आशौच आन पडे तो पूर्व आशौचके शेष दिनोंसे शुद्धि नही होती सोई उशनाने कहा है कि अल्प आशौचके मध्यमें जो दीर्घ आशौच आनपडे तो उसकी शुद्धि स्वकाल (अपना नियतकाल) से होती है पूर्वाशौचके शेष दिनोंसे नही–यमनेभी कहा है कि दीर्घ कालिक आशौच अपने नियत दिनोंसेही निवृत्त होता है–यहां अन्तरा जन्म मरणे यह वचन अविशेषसे कहा है तथापि जन्म सूतकके भीतर मरे हुए-का आशौच पूर्व शेषसे शुद्ध नही होता–यही अंगिराने कहा है कि सूतकमें मृत्यु हो जाय अथवा मृतकमें सूतक हो जायतो वहां मृतक आशौचके शेष दिनोंसे सूतक आशौचकी शुद्धि होजातीहै सूतक आशौचसे मृतक आशौच नही–तैसेही षट्त्रिंशत्के मतसेभी कहाहै कि शाव आशौचके होनेपर सूतक हो जायतो शावसे सूतीकी शुद्धि होजातीहै सूतिसे शावकी शुद्धि नही-तिससे सूतकके भीतर मरे हुए शाव आशौचकी शुद्धि पूर्वशेषसे

१ सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्त तु शुचिर्जन्मनि कीर्तिता । प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ।

२ रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः । रात्रौ जागरण कार्यं जन्मदानां तथा बलिः । पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ।

१ स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौच भवेद्यदि । न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात्स्वकालेनैव शुध्यति ।

२ अहो वृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् ।

३ सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकं।तत्राधिकृत्य मृतक शौचं कुर्यान्न सूतकं ।

४ शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ।

नहीं होती-किन्तु शाव आशौचके मध्यमें हुए सूतककीही होती है सजातीय शाव आशौचके मध्यमें हुए शावकी पूर्व शेषसे शुद्धिका अपवाद अन्यस्मृतिमें दिखाया है कि पहिले मरी हुई माताके आशौचमें यदि पिता मरजाय तो उस आशौचकी शुद्धि पिताके शेष आशौचसे होती है माताकी पक्षिणी (दो दिन एक रात) करे-इसका यह अर्थ है कि पूर्व मरी हुई मातासे उत्पन्न हुए आशौचमें यदि पिताका मरण होजाय तो पूर्वशेषसे शुद्धि नहीं होती किन्तु उसकी शुद्धि पिताके मरण निमित्तक आशौचके शेष दिनोंसे करनी और इसी प्रकार पिताके मरण आशौचके मध्यमें माताका स्वर्ग लोक (मरण) होजाय तोभी पूर्व शेषसे शुद्धि नहीं होती अर्थात् पिताके आशौचको समाप्त करके फिर माताकी पक्षिणी करे-आशौचके सन्निपात कालका विशेष अपवाद गौतमने कहा है कि रात्रि शेष रहनेपर दो दिनमें प्रातःकालके होनेपर तीन दिनमें शुद्धि होती है-इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पहिले आशौचमें रात्रिमात्र शेष हो तब कोई अन्य आशौच आन पड़े तो फिर उस आशौचकी समाप्ति हुए पीछे दो रात्रिमें शुद्धि होती है-प्रभातमें अथवा उस रात्रिको अन्तके प्रहरमें जो कोई जन्म आदिका आशौच हो जाय तो वह, तीन रात्रमें शुद्धि है तच्छेष मात्रसे नहीं-शातातपनेभी कहा है कि रात्रिके शेषमें दो दिनमें प्रहरके शेषमें तीन दिनमें शुद्धि हो जाती है पुनः सूतकके होनेपरभी प्रेत क्रिया निवृत्त नहीं होती-क्योंकि उसनेंही कहा है कि जन्म होनेसे पीछे दश दिनके भीतर यदि मरण होजाय तो प्रेतके निमित्त अपने बन्धु पिण्डदान करें-प्रेत क्रियाके प्रारंभ होनेपर मध्यमें जनन होजाय तोभी उसी प्रकार शेष पिण्डोंको करे-इसी प्रकार शाव आशौचके होनेपरभी प्रेत क्रिया करे तथा अन्य आशौचके होनेपर पुत्रजन्म निमित्तक जातकर्म आदि क्रियाकोभी करे-सोई प्रजापतिनें कहा है कि आशौचके होनेपर पुत्रका जन्म होय तो कर्मकर्त्ताकी तात्कालिक शुद्धि हो जाती है क्योंकि वह पूर्वाशौचसे शुद्ध होजाता है-प्रसव (उत्पत्ति)का काल और जनना शौचको कहकर अब असमय गर्भके पतनका आशौच कहते हैं-यद्यपि लोकमें स्रवति धातुका प्रयोग वहां दिया जाता है जहां परिस्यन्द उस धातुकी क्रियाका कर्त्ता द्रव (*बहती*) *द्रव्य होता है तथापि यहां* (*गर्भस्रावे*) स्रवति धातु-द्रव और अद्रवरूप साधारण द्रव्यके अधः पतन (नीचे गिरना में) वर्तती है क्योंकि जो द्रवद्रव्यके अधःपतनमेंही मानेंगेतो-मासतुल्याः निशाः यह बहुवचन नबनेगा-क्योंकि वह द्रवगर्भमें द्रवत्व (पतला पन) पहिलेही मासमें संभव होता है तो गर्भस्राव पहिलेही महीनेके गर्भके पतनका नाम होगा तो उसमें मासतुल्य निशा शुद्धिका हेतु है ऐसा कहनेसे वह एक मासही *लिया जायगा* तो फिर यह बहुवचन असंगत होगा-गर्भस्रावमें उतनी निशा आशौच मानना जितने महीने गर्भधा-

१ मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता। पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम्।

२ रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते सति तिसृभिः।

३ रात्रिशेषे द्व्यहाच्छुद्धिः यामशेषे शुचिस्त्र्यहात्।

१ अन्तर्दशाहे जननात्पश्चात् स्यान्मरणं यदि। प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं स्वबन्धुभिः। मध्ये प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत्। तथैवाशौच-पिण्डांस्तु शेषान् दद्याद्यथाविधि।

२ आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति।

-रण किये हुए हो यह स्त्रीकोही समझना क्योंकि वशिष्ठकी स्मृति है कि गर्भस्रावमें स्त्रीकी मासतुल्य रात्रिसे शुद्धि और पुरुषकी स्नान मात्रसे होती है और जो गौतम ने कहा है कि त्र्यहं अर्थात् तीन रात्रमें शुद्धि होती है वह तीन माससे पूर्व गर्भ स्रावके विषयमें समझना-क्योंकि ऐसा मरीचिका वचन है कि तीन माससे पूर्व गर्भस्राव होय तो ब्राह्मणकी तीनरात्र-क्षत्रियको चाररात्र वैश्यको पांच और शूद्रको आठ रात्रमें शुद्धि होती है- यह सब छः महीनेंके भीतर गर्भस्रावके विषय समझनी- सप्तम आदिमासमें प्रसव आशौच परिपूर्ण करना-क्योंकि सप्तम मासमें परिपूर्ण अंगवाले गर्भका जीवसहित निर्गम होता है-इससे उसे लोकमें प्रसव कहते हैं-इसमें यह स्मृतिभी प्रमाण है कि छः मासके भीतर जब गर्भका स्रावहो उतनें महीनोंकी संख्यावाले दिनोंसे शुद्धि होती है-इसके अनन्तर अपनी जातिमें कहा अशौच पूर्ण होता है और सपिण्डोंकी शुद्धि गर्भके पतनमें सद्यः (स्नानानन्तर) होती है-यह सपिंडोंको सद्यःशौच द्रव गर्भके पडनेके विषयमें समझना-और जो यह वसिष्ठका वचन है कि दो वर्षसे कम बालकके मरनेमें और गर्भके पतनमें सपिण्डोंको तीनरात्र आशौच है वह वचन पांच और छठे महीनेमें पडेहुए कठिन गर्भके विषयमें समझना-क्योंकि मरीचिका वचन है कि चोथे महीनेकेको स्राव-पांचमें छठेको पात-इससे अनंतरकेको प्रसूति कहते हैं और दशदिनको सूतक कहते है-स्रावमें माताको तीन रात्र आशौच सपिण्डोंको नही-पातमें माताको मासके समान दिन-और पिता आदिको तीन दिन आशौच होता है-सप्तम आदि मासमें मराहुआ पैदा हो वा पैदा होताही मरगया होय तो सपिण्डोंको जन्मनिमित्तक परिपूर्ण आशौच होता है-क्योंकि हारीतका वचन है कि पैदा होताही मरगया हो वा मराहुआही पैदा हुआ होय-तो सपिण्डोंको दशदिन आशौच होताहै-पारस्करनें भी कहा है कि जन्मसे सूतिका का उठना (दशदिन)तक सूतकके समान आशौच होता है सूतकवत् इसका यह अर्थ है कि शिशुके मरण निमित्तक जलदान आदिसे रहित रहै-बृहन्मनुकाभी वचन है कि दशदिनका जो बालक मरगया होयतो उसका शावाशौच नही होता किंतु सूत्याशौच होता है-इसीप्रकार स्मृत्यन्तरेमेंभी-लिखा है कि दशदिनके भीतर जो मरगया होयतो-सूतकके दिनोंसेही आशौच होता है-इत्यादि वचनोंके देखनेसे सपिण्डोंको

१ गर्भस्रावे मासतुल्या रात्रयः स्त्रीणां स्नानमात्रमेव पुरुषस्य ।

२ त्र्यहं च ।

३ गर्भस्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः । राजन्ये तु चतूरात्रं वैश्ये पंचाहमेव तु । अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ।

४ षण्मासाभ्यन्तरे यावद्गर्भस्रावो भवेद्यदा । तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते । अत ऊर्द्ध्वं स्वजात्युक्तं तासामाशौचमिष्यते । सद्यःशौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ।

५ ऊनद्विवार्षिके प्रेते गर्भस्य पतने च सपिण्डानां त्रिरात्रम् ।

१ आ चतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्द्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् । स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनं । पाते मातुर्यथामासं पित्रादीनां दिनत्रयम् ।

२ जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम् ।

३ अतः सूतके चेदोत्थानादाशौचं सूतकवत् ।

४ दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बांधवैः । शावाशौच न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते ।

५ अन्तर्दशाहेपरतस्य सूतकाहोभिरेवाशौचम् ।

जन्म निमित्तक आशौच होता है यह बात प्रतीत होती है–जो कि बृहद्विष्णुका वचन है कि उत्पन्न होता मरजाय वा मराहुआही उत्पन्न हुआहो तो कुलको सद्यः आशौच होता है उसको बालकमरणनिमित्तक आशौचकी स्नानसे शुद्धि होती है इस बातके सूचनके विषयमें समझना–कुछ प्रसव निमित्तके विषयमें नही सोई पारस्करनें कहा है कि गर्भके विषयमें यदि विपत्ति होजायतो दशदिन सूतक होता है क्योंकि सापिंडोंको जन्मका आशौच विद्यमान है–इससे जीता हुआ उत्पन्न होकर यदि मरजाय तो सद्यः (स्नानसे) शुद्धि होजाती है यह वचन प्रेत आशौचके अभिप्रायसे है–सोई शंखने कहा है कि नामकरणसे पूर्वमरनेमें शीघ्रही शुद्ध होजाता है–और जोकि यह कात्यायनका वचन है कि दशदिनके न व्यतीत होनेपर जो बालक पंचत्व (मरण)को प्राप्त होजाय तो सद्यः शुद्धि होती है उसे प्रेतके निमित्त उदक आदिका दान न करे–वहभी विष्णुके वचनके समान है और जब कि (न प्रेतं नैव सूतकं) ऐसा पाठ है तब सूतक शब्दका यह अर्थ है कि पिता आदिको स्पर्श करनेका अभाव नही होता–अथवा यह अर्थ है कि दश दिनके भीतर जो बालक मरगया होय तो प्रेतआशौच नही होता यदि उसमें किसी सपिंडके बालक उत्पन्न हो जाय तो तन्निमित्तक आशौचभी नही करना किन्तु पूर्वाशौचसेही शुद्धि होजाती है–और जो कि यह बृहन्मनुका वचन है कि जीनाही उत्पन्न हुआ हो फिर मरजाय तो माताको पूरा आशौच होता हैं और पिता आदिको तीन रातकाही होता है–और जो कि यह बृहत्प्रचेताका वचन है कि एक मुहूर्त्तजीकर बालक मरजाय तो माताकी दश दिनमें शुद्धि और सगोत्रियोंकी सद्यः शुद्धि होती है यहां अब यह व्यवस्था है कि जननसे पश्चात् और नाल छेदनसे पूर्व मरजाय तो जनन निमित्तक आशौच तीन दिन पिताआदिकोंको होताहै और सद्यःशौच तो अग्निहोत्रके लिये कहाहै क्योंकि शंखकी स्मृति है कि अग्निहोत्रके लिये स्नानके करनेसे तत्काल शुद्धि होतीहै–नाल छेदनसे उत्तर कालमें शिशुके मरनेपर जनन निमित्तक समस्त आशौच सापिण्डोंको होताहै क्योंकि जैमिनीका वचन है कि जबतक नाल छेदन न हो तबतकही सूतक नही होता नाल छेदनसे पीछे सब सापिण्डोंको सूतक होताहै–मनु (अ०५श्लो०६६) नेंभी यही अर्थ दिखाया हैकि गर्भस्रावके होनेपर जितने महीनेमें गर्भस्राव हुआ हो उतनी रात्रिमें शुद्धि होतीहै– और रजस्वला स्त्री रजः (स्त्रीका वीर्य) के निवृत्त हो जाने पीछे स्नानसे शुद्ध होतीहै–इस वचनके उत्तर भागका यह अर्थ है कि निक-

१ जाते मृते मृतजाते कुलस्य सद्यःशौचं ।

२ गर्भे यदि विपत्तिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् । जीवन् जातो यदि प्रेयात्सद्य एव विशुद्ध्यति ।

३ प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम् ।

४ अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति । सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया ।

५ जीवञ्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु । सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रतः ।

१ मुहूर्त्तं जीवितो बालः पंचत्वं यदि गच्छति । मातुः शुद्धिर्दशाहेन सद्यः शुद्धास्तु गोत्रिणः ।

२ अग्निहोत्रार्थं स्नानोपस्पर्शनात्तत्काल शौचं ।

३ यावच्च छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकं । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।

४ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ।

लनेसे जब रजकी निवृत्ति होजाय तब रजस्वला स्त्री साध्वी देव आदिकर्मके योग्य होती है और स्पर्श आदिके योग्य तो चाहैं रज निवृत्त न हो तोभी चौथे दिन स्नानके करनेसे शुद्ध होजातीहै- सोई वृद्ध मनुने लिखाहै कि स्पर्श आदि व्यवहारकेलिये चौथेदिन स्त्री शुद्ध होजातीहै- तिसी प्रकार स्मृत्यन्तरमें भी कहाहै कि रजस्वला स्त्री पतिके लिये तो चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होजातीहै और दैव पित्र्यकर्मके करनेके लिये तो पांचमें दिन शुद्ध होतीहै- पंचमेहनि यह वाक्य रजोनिवृत्ति कालका उपलक्षण है अर्थात् जब रजकी निवृत्ति हो तबही शुद्ध होतीहै और जो रजोदर्शनसे लेकर सतरह १७ दिनके भीतर फिर रजो दर्शन हो जाय तो फिर अशुद्धि नही होती अठारह १८ में दिन रजो दर्शन होय तो एक दिनमें शुद्धि उन्नीशमें दिन दोदिनमें फिर उससे पीछे तीनदिनमें शुद्धि होतीहै सोई अत्रिनें कहाहै कि जो रजस्वला स्त्री स्नानकिए पीछे फिर रजस्वला अठारह दिनसे पूर्व हो जाय तो अशुद्ध नही होती उन्नीशमें दिनसे पूर्व एक दिनमें बीसमेंसे पूर्व दो दिनमें- फिर बीस दिनसे आगे होय तो तीनदिन अशुद्ध होतीहै और किसी अन्य स्मृतिमें चौदहमें दिनसे पूर्व हो जाय तो अशुद्ध नही होती यह लिखा है उसमें स्नानसे पीछे चौदहमा दिन इष्ट है इससे विरोध नही- यह अशुचित्वका निषेध उसके विषयमें है कि जिस स्त्रीका रजोधर्म प्रायः बीसदिनके पीछेही होता हो और जिसको चढतीहुई यौवनकी अवस्था हो उस स्त्रीका अठारह दिनसेही पूर्वही बहुत रजका निकलना होताहै उसकी शुद्धि तो तीनरात्रमेंही होगी उस स्त्रीको तीनरात्रतक स्नान आदिसे रहित होना चाहिये क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है रजस्वला तीनरात्र अशुद्ध होतीहै वह न आंखोंमें अंजन लगावै- न शरीरसे उबटना करै- न जलोंमें स्नान करै- नीचे सोवै- दिनमें न सोवै- न सूर्य आदि ग्रहोंको देखै- न अग्निका स्पर्श करै-न अत्यंत भोजन करै-न रस्सी बांटै- न दन्तधावन करै- न हंसै-न कोई काम करै-अखर्व (बडा) पात्र- वा अंजली (पस) वा लोहेके पात्रसे जलको पीवै-अंगिराने भी विशेष दिखाया है-हाथमें वा मट्टीके पात्रमें खीर खाय-पृथ्वीपर सोवै-ऐसी रजस्वला चौथे दिन स्नानसे शुद्ध होतीहै-पाराशरनेभी विशेष कहाहै कि यदि स्त्रीको नैमित्तिक स्नान करना होय और रजस्वला हो जायतो पात्रान्तरित जलसे स्नान करके व्रतकरै जलसे अपने गात्रका प्रोक्षण

---

१ चतुर्थेहनि संशुद्धिर्भवति व्यावहारिकी ।

२ शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेहनि शुध्यति ।

३ रजस्वला यदि स्नात्वा पुनरेव रजस्वला। अष्टादशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते । एकोनविंशतेरर्वागेकाहं स्यात्ततोद्व्यहं। त्रिंशत्प्रभृत्युत्तरेषु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।

४ चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते ।

१ रजस्वला त्रिरात्रमशुचिर्भवति सा च नाञ्जीत नाभ्यंजीत नाप्सु स्नायादधः शयीत न दिवा स्वप्यात् न ग्रहान्वीक्षेत नाग्निं स्पृशेन्नाश्नीयान्न रज्जुं सृजेत् न च दन्तान्धावयेत् न हसेन्न च किंचिदाचरेत् अखर्वेण पात्रेण पिबेदञ्जलिना वा पात्रेण लोहितायसेन वेति विज्ञायते ।

२ हस्तेऽश्नीयान्मृन्मये वा हविर्भुक् क्षितिशायिनी । रजस्वला चतुर्थेह्नि स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।

३ स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् । सिक्तगात्रा भवेदद्भिः सांगोपांगा कथंचन। न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ।

करके सांगोपांग न वस्त्रोंको निचोडे न अन्य वस्त्रोंको धारण करे-उशनानेभी यहां विशेष दिखाया है कि जिस स्त्रीको ज्वर आता हो और रजस्वला हो जाय तो उसका शौच किस प्रकार होना चाहिये और उसका स्पर्श करके किस कर्मसे उसकी [१]शुद्धि होय इस अपेक्षासे कहते हैं कि जब चौथा दिन हो तब कोई स्त्री सचैल जलमें स्नान वारंवार करके पुनः स्पर्श करे और फिर दश वा द्वादशवार वारंवार आचमन करे-उसके अनंतर उस वस्त्रोंको त्यागदे इससे वह रजस्वला शुद्ध होती है फिर शक्तिके अनुसार दान देकर पुण्याहवाचनसे शुद्ध होती है-यह स्नानविधि आतुर मात्रके विषय समझनी-क्योंकि [२]पाराशरने कहा है कि आतुरको जब अवश्य स्नान करना होय तब अनातुर दशवार वारंवार स्नान करके स्पर्श करे-अर्थात् छूवे फिर स्नान करे इस तरह आतुर शुद्ध हो जाता है-जब रजस्वला वा सूतिका (जच्चा) स्त्री मर जायतो वहां यह स्नानका प्रकार है कि [३]सूतिकाके मरने पर याज्ञिक इस प्रकार करे कि एक घटमें जल और पंचगव्य लेकर उस जलको पुण्याहवाचनकी ऋचासे अभिमंत्रित करके वाणीसे शुद्ध करे फिर उस जलसे स्नान कराकर यथाविधि दाह करे और रजस्वला मरजायतो पंचगव्यसे स्नान कराकर और किसी अन्य वस्त्रमें लपेट कर यथा विधि दाह करे-ये रजोदर्शन और पुत्रका जन्म आदि यदि सूर्योदयसे पश्चात् हुई होयतो उसी दिनसे लेकर आशौचके दिनरात्र गिनें-और जो रात्रिमें हुए होतो यह व्यवस्था है कि यदि अर्द्ध रात्रिसे पूर्व हुए होतो यद्यपि वह आशौच पूर्वदिनमेंभी है तोभी पहिले दिनसेही आशौचके दिन गिनें ये पूर्वकल्प है-और कोई यह मानते हैं और दूसरा यह कल्प है कि रात्रिके तीन भाग (हिस्से) करके पहिले दो भागोंमें जन्म आदि हुआ होयतो पहिले दिनसे और सूर्योदयसे पूर्व हुआ होयतो दूसरा दिन-सोई [१]कश्यपने कहा है कि सूर्यके उदय होने पर स्त्रियोंका रजोदर्शन होय वा जन्म आदि हो वा विपत्ति होयतो उसके सूतकमें अर्द्ध रात्रिपर्यंत वहही दिन लिया जायगा जिसमें सूर्य उदय हुआहो-अथवा रात्रिके तीन भाग करके पहिले दो भाग पूर्व दिनमें समझने पिछला तीसरा भाग ऋतु सूतकमें दूसरे दिनमें समझना-और रजस्वला स्त्रीके मरनेके विषयमें यह है कि रात्रिके होनेपर जबतक सूर्य उदय नहीं तब पहिलाही दिन समझना-इन सब

१ ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा। चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियं। सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्। दशद्वादशकृत्वो वा आचमेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा। दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुद्ध्यति।

२ आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः।

३ सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वीत याज्ञिकाः॥ कुम्भे सलिलमादाय पंचगव्यं तथैव च। पुण्यर्ग्भिरभिमन्त्र्यापो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः। तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि। पंचभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलां। वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम्।

१ उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः। जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी। अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते रात्रिं कुर्यात्त्रिभागां तु द्वौ भागौ पूर्व एव तु। उत्तरांशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके। रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः।

कल्पोंकि व्यवस्था देशाचारसे समझनी- यह आशौच अग्निहोत्रीके मरनेमें तो दाहके दिनसे अनग्निहोत्रीके मरनेमें मरनेके दिनसे होता है-और अस्थिसंचयन तो दोनोंका दाहके दिनसेही होता है यह जानना-सोई अंगिरानें कहा है कि अनग्निहोत्रीका आशौच मरण दिनसे और अग्निहोत्रीका दाहके दिनसे गिना जाता है और संचयन दोनोंका दाहके दिनसे लिया जाता है और श्राद्ध करनेकें लिये मरनेका दिन वही होता है जिस तिथीको मराहो-यहां साग्नेः संस्कारकर्मण इसके सुननेसे यह अनुसंधान करना यदि अग्निहोत्री पिता देशान्तरमें मरगया होयतो उसके पुत्र आदिको जबतक उसका दाह न हो तबतक संध्या आदि कर्मका लोप नही होता-सोई पैठीनसिने कहा है कि अनग्निहोत्रीद्विजका आशौच द्विजोंको मरण दिनसे होता है और परदेशमें मरे हुए अग्निहोत्रीका आशौच दाहसे होता है-

भावार्थ-प्रथम आशौचके मध्यमें जन्म वा मरण हो जाय तो उस पहिले आशौचके शेष-दिनोंसे शुद्धि होतीहै गर्भस्राव हो जायतो-मासतुल्य रात्रियोंसे शुद्धि होती है ॥ २० ॥

हतानांनृपगोविप्रैरन्वक्षंचात्मघातिनाम् ।
प्रोषितेकालशेषःस्यात्पूर्णेदत्त्वोदकंशुचिः ॥

पद-हतानां ६ नृपगोविप्रैः ३ अन्वक्षं०-च०-आत्मघातिनां ६ प्रोषिते ७ कालशेषः १ स्यात्क्रि-पूर्णे ७ दत्त्वा०-उदकं २ शुचिः १ ॥

योजना-नृपगोविप्रैः हतानां चपुनः आत्मघातिनां शुद्धिः अन्वक्षं भवति-प्रोषिते कालशेषः शुद्धिः हेतुर्भवति-पूर्णे उदकं दत्त्वा शुचिर्भवति-

तात्पर्यार्थ-जिसका अभिषेक आदि कर्म हुआ हो ऐसा क्षत्रिय आदिनृप सींग और डाढवाले गौआदिपशु-यहां विप्रशब्द शूद्रका भी उपलक्षणहै विप्रआदि इनसे जो मरे हों और जो विष (जहर) फांसीसें अपने संबंधी सापिण्डोंको जो मारते हैं वे आत्मघाती-यहां आत्मघाती पद पाखण्डच नाश्रिता इस श्लोकमें कहे हुए सब पतीतोंका उपलक्षणहै-उनके संबंधियोंको सद्यः शौच होताहैं दशदिन आदिनही-सोई गोतमने कहाहै कि गौ ब्राह्मणसे मरे हुए राजाके क्रोधसे मरे हो और युद्धके विनाही प्रायः नष्ट न करनेवाले शस्त्र अग्नि विष जल उद्बन्धन (फासी) और प्रपतन (ऊंचेसे पडना) इनसे मरनेकी इच्छावाले जो मनुष्य उनका सद्यः शौच होताहै-यहां क्रोधका ग्रहण जो प्रमादसे मारा हो उसके नियम (निवृत्ति) के लिये है और अयुद्ध ग्रहण युद्धमें मरेका एकदिन आशौच होताहै इस बातके जतानेके लिये है-क्योंकि यह स्मृति है कि जो ब्राह्मणके लिए मरे हो गौसे जो मरे हो जो युद्धमें मारे गये हो उनका एकरात्र अशौच होताहै यह वचन- युद्धके समयके क्षत (घाव) आदिसेही जो कालान्तरमें मरा हो उसके लिये है- और संग्राममेंही मारा गयाहो उसका तो सद्यःशौच होताहै सोई मनु (अ. ५ श्लो. ९८) ने कहाहै कि युद्धके

१ अनग्निमत उत्क्रान्तेः साग्नेः संस्कारकर्मणः । शुद्धिः संचयनं दाहान्मृताहस्तु यथातिथि ।

२ अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचं हि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति ।

१ गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्चायुद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बंधनप्रपतनैश्चेच्छताम् ।

२ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च । सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमिति स्थितिः ।

विषे उठाये हुये शस्त्रोंसे जो क्षत्रधर्मसे मराहो वहां यज्ञकी प्राप्ति और आशौच सद्यःकाल होताहै– अब यह दिखाते हैं कि ज्ञात (जाने हुये) जन्म आदिही आशौचमें हेतु है इससे जन्म होनेसे पीछे जो जाना है उसमें दशदिन आदि आशौचका अपवाद दिखाते है कि जिस देशान्तरमें स्थित हुए सपिण्डके पुत्रआदिका जन्म घरके सपिण्डनें पहिलेही दिनमें न जाना होय तो उस सपिण्डको दशदिन आदिके आशौचके जितने दिनशेषहों उतनेही दिनमें शुद्धि होतीहै और जो सब आशौच पूरा होनेपर सुना जाय तो प्रेतको जल देकर शुद्धि होती है– उदकका दान स्नान पूर्वक होता है इससे स्नान और जल देकर शुद्ध होताहै– सोई मनु (अ. ५ श्लो. ७७) नें कहाहै दशदिनके अनंतर जाति मरण वा पुत्र जन्म सुना जाय तो सचैल जलमें कूदकर मनुष्य शुद्ध होताहै–यहां (पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः) इस पदसे यह जाना जात है कि प्रेतको उदकदान सहित आशौचकाल शुद्धिका कारण है इससे सपिण्डोंको पुत्र जन्मका आशौच दशदिनके अनंतर सुननेसे नहीं होता– और पिताको तो दशदिनसें अनन्तर भी स्नान करना क्योंकि यह वचन है कि पुत्रके जन्मको सुनकर स्नान करे– इस पदसे पुत्र शब्दका ग्रहण भी यही सूचन करता है कि जन्ममें अतिक्रान्ता शौचसपिण्डोंको नहीं होता– अन्यथा ऐसाही कहना उचित था कि दशदिनके अनंतर ज्ञातिमरण और जन्मको सुनकर पूर्वोक्त करे– इससे पुत्रका ग्रहण इसी लिये है कि जिसका पुत्र हो उसीको स्नानको

१ निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ।

२ निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा जन्म च निर्दशम् ।

विधि है अन्यको नही सोई देवलने कहाहै कि आशौचके दिनोंके बीतनेपर प्रसव आशौच नही होता– तिससे यही मर्यादा है कि विपत्तिके विषयमेंही अतिक्रान्ताशौच होताहै जन्ममें नही– कोई इस (हतानां नृपेत्यादि) श्लोकको अन्यथा पढते हैं कि प्रोषित मनुष्यके मरण आदिमें कालशेषसे शुद्धि हैं और जो शेष न होय तो तीन दिनमें शुद्धि होती है–और जो वर्षादिनके व्यतीत होनेपर सुनाजाय तो प्रेतको जल देकर शुद्धि होती है–इसका अन्यभी अर्थ स्पष्टरीतिसे करते हैं कि–देशान्तरमें, जो मरजाय तो सब ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णोंकी शुद्धि अविशेषसे कालशेषसे होती है और जो अशेष अर्थात् दश आदि दिन व्यतीत हो गये होय तो सब वर्णोंकी तीन दिनमें शुद्धि होती है–और वर्ष दिनके पूरे होनेपर परदेशीका मरण सुना जाय तो सब ब्राह्मण आदिवर्ण स्नान और जल देकर शुद्ध होते है–सोई मनुनें कहा है कि (अ० ५–श्लो० ७६–) वर्ष दिन पुरा होजाय तो जलकेही स्पर्शसे शुद्ध होता है वह तीन दिनमें शुद्धि–दश दिनसे ऊपर और तीन महीनोंसे पूर्व २ सुना जायतो समझनी–पूर्वोक्त सद्यः शौचतो नौ महीनोंसे ऊपर और वर्ष दिनसे पूर्व २ समझना–और जो कि यह वशिष्ठको वचन है कि दश दिनमें ऊपर सुनकर एक रात्र अशौच होता है वह छः महीनोंसे ऊपर नोमें महीनासे पूर्वके विषयमें जानना–और जो गौतमका वचनें है

१ नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि ।

२ प्रोषिते कालशेषः स्यादशेषे त्र्यहमेव तु । सर्वेषां वत्सरे पूर्णे प्रेते दत्त्वोदकं शुचिः ।

३ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वापो विशुध्यति ।

४ ऊर्ध्वं दशाहाच्छ्रुत्वा एकरात्रम् ।

५ श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी ।

कि दशमें दिनसे ऊपर पक्षिणी (एक रात्र दो दिन) आशौच होता है यह तीन माससे ऊपर छठे महीनेसे पूर्व २ समझना-सोई वृद्ध वशिष्ठने कहा है कि तीन महीनेसे पूर्व तीन रात्र-और छः महीनसे पूर्व २ पक्षिणी और नौमहीनेसे पूर्व २ एक दिन और इससे ऊपर स्नान मात्रसेही शुद्ध होता है यह आशौच माता पितासे भिन्नके विषयमें समझना-क्योंकि यह पैठीनसीकी स्मृति है कि माता पिता मरगये हों पुत्र परदेशमें होय तो सुनकर दश दिन सूतकी होता है-और सोई स्मृत्यन्तरमें भी लिखा है कि महागुरु (पिता)के मरनेपर वर्ष दिन व्यतीत हो जाय तोभी-आर्द्र वस्त्र और व्रती होकर विधिपूर्वक प्रेत क्रियाको करै-अर्थात् आशौच- जलदानको करै-उसमें स्नान मात्रसे शुद्धि नही होती-मातासे भिन्न पिताको स्त्रीमें विशेष स्मृत्यंतरमें दिखाया है कि मातासे भिन्न पिताकी स्त्रीके मरनेमें वर्ष व्यतीत होजाय तोभी ब्राह्मण तीन रात अशुद्ध होता है-और जो कि सपिंड नदी-आदिसे व्यवहित देशांतरमें मरा होय तो सपिण्डोंको दश दिनके पीछे और तीन माससे पूर्वभी सद्यः शौच होता है-क्योंकि यह वचन है कि देशान्तरमें जो हो-नपुंसक-वैखानस-(वानप्रस्थ) और यति इनके मरनेको सुनकर और गर्भस्रावमें सगोत्री मनुष्य स्नानसे शुद्ध होते हैं-देशांतरका लक्षण बृहस्पतिनें यह कहा है कि जिसमें गंगाआदि महानदीका व्यवधानहो और जहां पर्वतका व्यवधान हो और जहां वाणीका भेद (बोलीमें फर्क) होजाय उसे देशान्तर कहते हैं-और कोई साठ योजनपर देशान्तर कहतेहैं-कोई चालीस और कोई तीस योजनपर देशान्तर कहते हैं-यह अतिक्रान्ताशौच उपनीतके मरनेके विषय समझना-अवस्था विशेष विषयके जो आशौच उनके विषयमें न समझना-सोई व्याघ्रपादने कहा है कि सब वर्णोंको अवस्था निमित्तक आशौच और अतिक्रान्ताशौच समान होता है और वह आशौच उपनीतके विषयमें विषम होता है और तिसीके विषयमें अतिक्रान्ताशौच होता है-इसका यह अर्थ है कि तीन वर्ष आदि अवस्थाके विषै जो दांत जमने पर्यंत सद्यः शौच होता है इत्यादि वाक्योंसे आशौच कहा है वह सब ब्राह्मण आदि वर्णोंको समान है-और दश दिन आदिके व्यतीत होनेपर जो तीन दिन आदिका आशौच कहा है वहभी सब वर्णोंमें समान है-परंतु उपनीत मरनेसे-दश बारह पंद्रह और तीसदिन क्रमसे ब्राह्मण आदिकोंको होता है इत्यादि वाक्यसे विषम आशौच ब्राह्मण आदि वर्णोंको होता है-और अतिक्रान्त आशौचभी इसी उपनीतके मरनेके विषयमें समझना-उस तीन वर्ष आदिके बालकके मरनेमें नहींसमझना॥

१ मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ।

२ पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ।

३ महागुरुनिपाते तु आर्द्रवस्त्रोपवासिना । अतीतेऽब्देपि कर्तव्यं प्रेतकार्यं यथाविधि ।

४ पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्ज्यं द्विजोत्तमः । संवत्सरे व्यतीतेपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।

५ देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ । मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः ।

१ महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः । वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते । देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतं । चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च ।

२ तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च । उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजे ।

भावार्थ-राजा गौ ब्राह्मण इनसे मरेहुए और आत्मघाती इनका सद्यःशौच होता है-और परदेशके मरनेमें-आशौचके शेष दिनोंसे और पूर्ण होनेपर स्नानपूर्वक जल दानसे शुद्धि होती है ॥ २१ ॥

क्षत्रस्यद्वादशाहानिविशःपंचदशैवतु ॥
त्रिंशद्दिनानिशूद्रस्यतदर्धंन्यायवर्तिनः॥२२॥

पद-क्षत्रस्य ६ द्वादशाहानि १ विशः ६ पंचदश १ एव- तु- त्रिंशद्दिनानि १ शूद्रस्य ६ तदर्द्धं १ न्यायवर्तिनः ६ ॥

योजना-क्षत्रस्य-द्वादशाहानि विशः पंचदश अहानि तुपुनः शूद्रस्य त्रिंशत् दिनानि-न्यायवर्तिनः (शूद्रस्य राज्ञः) तदर्द्धं आशौचं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनको सपिंडके मरने और पैदा होनेमें क्रमसे द्वादश १२ पंद्रह १५ और तीस ३० दिन आशौच होता है-और पाक यज्ञ द्विजकी शुश्रूषाके विषय जो तत्पर हो ऐसे न्यायवर्ती शूद्रको महीनेका अर्द्ध अर्थात् पंद्रह दिन आशौच होताहै-इससे त्रिरात्रंवा इत्यादि कहा दश रात्रका आशौच परिशेषसे ब्राह्मणके विषयमें समझना-अन्य स्मृतिओंमेंतो क्षत्रिय आदिकोंको दशदिन आदिकाभी आशौच दिखाया है-सोई पराशरने कहा है कि अपने कर्ममें तत्पर और शुद्ध क्षत्रिय दश दिनमें और वैश्य बारह दिनमें शुद्धिको प्राप्त होता है-शातातपनेभी कहाहै कि मरण सूतकके विषय क्षत्रिय ग्यारह दिन वैश्य बारह दिन और शूद्र तीस रात्रिमें शुद्ध होता है-और वसिष्ठ तो यह कहते हैं कि पंद्रह रात्रिमें क्षत्रिय और वीस रात्रिमें वैश्य शुद्ध होता है-और अंगिरा यह कहता है कि शातातपने यह कहाहै कि सब वर्णोंकी शुद्धि मृत सूतकके विषै दश दिनमें होजाती है-इस प्रकार अनेक थोडे और बहुत दिनोंके आशौच कल्प दिखाये हे परन्तु उनका आचार लोकमें न होनेसे बहुत व्यवस्था दिखानी उपयोगी नहीं है इससे उनकी व्यवस्था अब नहीं दिखाते-जबकि ब्राह्मण आदिके क्षत्रिय आदि सपिण्ड होंय तो यह हारीत आदिका कहाहुआ आशौच समझना कि यदि ब्राह्मण सजातीय सपिण्ड के मरनेमें दश दिनमें शुद्धि और क्षत्रिय वा वैश्य अथवा शूद्र सपिण्ड होयतो उनके मरण और जन्ममें क्रमसे छः तीन और एक रात्रमें शुद्धि होती है-विष्णुनेभी कहा है कि क्षत्रियकी वैश्य शूद्र सपिंडके मरनेपर क्रमसे छः रात और तीन रातमें, वैश्यकी शूद्र सपिण्डके मरनेमें छः रातमें, हीन वर्णकी अपनेसे उत्कृष्ट सपिण्डके मरनेमें वा जन्ममें जब आशौच निवृत्त होजाय तब शुद्धि होती है-बौधायनने अविशेषसे सबकी दश दिनमें शुद्धि कही है कि जो क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये ब्राह्मणके बांधव होयतो इनके आ-

१ क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः । तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयात् ।

२ एकादशाहाद्राजन्यः वैश्यो द्वादशभिस्तथा । शूद्रो त्रिंशद्रात्रेण शुद्ध्यते मृतसूतके ।

१ पंचदशरात्रेण राजन्यो विंशतिरात्रेण वैश्यः ।

२ सर्वेषामेव वर्णानां मृतके सूतके तथा । दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ।

३ दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ।

४ क्षत्रियस्य विट्शूद्रेषु सपिण्डेषु षड्रात्रत्रिरात्राभ्यां वैश्यस्य शूद्रे सपिण्डे षड्रात्रेण शुद्धिर्हीनवर्णानां उत्कृष्टेषु सपिण्डेषु जातेषु मृतेषु वा तदाशौचव्यपगमे शुद्धिः ।

५ क्षत्रविट्शूद्रजातीया ये स्युर्विप्रस्य बांधवाः । तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ।

शौचमें ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होता है-इनदोनों पक्षोंकी व्यवस्था आपत्ति और अनापत्तिके विषयसे है-दासी आदिको स्वामीके आशौचकी निवृत्ति होनेपर स्पर्शकी योग्यता तो होजाती है-परन्तु मासपर्यंत कर्म करनेका अधिकार नहीं होता सोई अंगिराने कहा है कि दासी वा दास जिस वर्णके हों उस वर्णको उनके मरनेमें सद्यः शौच होता है और दासीको उस वर्णके मरनेमे एक मास सूतक रहता है-और प्रतिलोमा ओंका तो आशौच नहीं होता है क्योंकि ये स्मृति है कि प्रतिलोम धर्मसे हीन होते हैं उनके जन्म और मरणमें केवल मूत्र और पुरीष (विष्ठा)के शौचकी समान उस मलके निवृत्त करनेके लिये शौचही होता है ॥

भावार्थ-क्षत्रियको बारह दिन वैश्यको पंद्रह दिन शूद्रको तीस दिन और धर्मात्मा शूद्रको पंद्रह दिन आशौच होता है ॥२२॥

आदंतजन्मनःसद्यआचूडान्नैशिकीस्मृता ॥
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम् २३॥

पद-आदन्तजन्मनः ५ सद्यः ऽ-आचूडात् ५ नैशिकी १ स्मृता १ त्रिरात्र १ आऽ-व्रतादेशात् ५ दशरात्रं १ अतः ऽ- परं १

योजना-आदन्तजन्मनः सद्यः शुद्धिः आचूडात् नैशिकी शुद्धिः आव्रतादेशात् त्रिरात्रं अतः परं दशरात्रं शुद्धेः कारणं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-आयुः और अवस्थाविशेषसेभी दश दिन आदि आशौचका अपवाद कहते हैं कि जितने कालमें दांत उपजे तिस कालमें मरेहुए बालकोंके सपिंडोंको सद्यः शौच-और मुण्डनसे पूर्व मरेहुएका एक रात्र दिन-यज्ञोपवीत होनेसे पूर्व-और मुंडनसे पीछे मरेहुएका तीन रात आशौच होता है-यद्यपि दन्त जमनेसे पूर्व सद्यः शौच होता है यह वचन अविशेषसे कहा है तथापि यह आशौच अग्नि संस्कार (दाह) न हुआ होय तो समझना-क्योंकि इस विष्णुके वचनसे अग्निसंस्कारसे रहितकोही सद्यः शौच कहा है कि जिसके दांत न निकलेहों ऐसे बालकके मरनेमें सद्यः शौच होता है और इसका अग्निमें दाह और जल दान आदि क्रिया न करनी-यदि अग्नि संस्कार होजाय तो बालक-और जिनका वाग्दान (सगाई) न कियाहो ऐसी कन्याओंका एक दिनका आशौच इस वक्ष्यमाण वचनसे होता है-सोई यमने कहा है कि जिनके दांत न निकलेहों ऐसे बालकके मरनेमें और गर्भस्रावमें सब सपिंडोंको दिनरातका आशौच होता है-नामकरणसे-पूर्व तो नियमसे सद्यःशौचही होता है-क्योंकि ये शंखकी स्मृति है कि-नाम करणसे पूर्व सद्यः शौच होता है-चूडाकर्म इस स्मृतिसे पहिले वा तीसरे वर्षमें होता है-कि सब द्विजातियोंको श्रुतिकी प्रेरणासे चूडाकर्म पहिले वा तीसरे वर्षमें करना-तिससे दांत जमनेके अनंतर प्रथम वार्षिक चूडाकर्म पर्यंत एक दिनका आशौच है और जो दंत जमजाय और चूडाकर्म न होय तोभी

१ दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् । तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्यां मासस्तु सूतकं ।

१ अदन्तजाते बाले प्रेते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारो नोदकक्रिया ।

२ अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनं ।

३ अदंतजाते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपिंडानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकं ।

४ प्राङ्नामकरणात्सद्यःशौचं ।

५ चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।

तीन वर्षतक एक दिनकाही आशौच रहैगा सोई विष्णुनें कहा है कि दांत जमआयेहों और चूडाकर्म न हुआहोय तो अहोरात्रसे शुद्धि है-तिसके अनंतर उपनयनसे पूर्व तीन दिनम शुद्धि होती है-और जो कि यह मनु (अ० ५-श्लो० ६७)का वचन है कि जिनका मुंडन न हुआ हो उनकी शुद्धि अहोरात्रमें और जिन होगया हों उनकी तीन रातमें शुद्धि होती है उसका तो यह (पूर्वोक्त)ही विषय है-परन्तु फिर जो दोवर्षसे कमके बालकके उद्देशसे मनु (अ० ५ श्लो० ६९)ने कहा हैं कि वनमें काष्ठकी समान गेरकर तीन दिन उसका अशौच करे-और जो यह वशिष्ठने कहा है कि दो वर्षसे कम बालकके मरनेमें और गर्भके पडनेमें सपिंडोंको तीन रात्र अशौच होता है सो यह कथन वर्षदिनमें चूडाकर्मके अभिप्रायसे है-अर्थात् यह शंका है कि जब तीसरे वर्षतक चूडाकर्मकी मर्यादा है तो वर्षसे पूर्व अकृतचूड होनेसे अहोरात्रका आशौच मात्तथा इससे फिर दो वर्षसे कमको तीन रात्रका आशौच जो दिखाया है वह मुंडन रहित प्रथम वर्षतक है-इस अभिप्रायसे है इससे विरोध नहीं-जो कि यह अंगिराको वचन है कि यद्यपि मुण्डन न हुआ हो और दांत निकलनेसे अनंतर मरगयाहोय तोभी इसको अग्निमें दग्ध करके तीनरात आशौच करे-वहभी कुल धर्मकी अपेक्षासे जो तीन वर्षसे ऊपर मुण्डन होय तो उसके विषयमें समझना-क्योंकि उसनेही फिर यह कहा है कि तीन वर्षसे कम ब्राह्मण मरजाय तो अहोरात्रमे शुद्धि होती है-कदाचित् कोई यहां यह शंका करे कि यह एक दिनका आशौच जिसके दांत न निकले हो उसके विषेभी मानना पडेगा-सो ठीक नही क्योंकि तीन वर्षसे कमके बालकके दांत न निकले ऐसी बातही संभव नहीहोसक्ती-और दांत निकल आएहो मुंडन न हुआहोय तो एक दिनका आशौच होता है इस विष्णुके वचनके साथ जो विरोध है उसका भी परिहार न होसकेगा-इससे विरोध आदिके होनेसे पूर्व कीहुई जो व्याख्या (कुलधर्मकी अपेक्षा इत्यादि) नही श्रेष्ठ है-जो कि यह कश्यपको वचन है कि जिनके दांत न पैदा हुएहो उनका तीन रात आशौच होताहै वह माता पिताके विषयमें समझना-क्योंकि इस वचनसे तीनरात्रके आशौचमें जन्यजनकभावसंबन्धरूप उपाधिही नियामकहै कि मनुष्य वीर्यको स्खलन (गेरा) करके जलके स्पर्शसे शुद्ध होता है और वैजिक संबन्ध अर्थात् परपूर्वा स्त्रीके विषें सन्ततिको पैदा करके तीनरात अशुद्ध होता है-इससे यहां यह व्यवस्था समझनी कि नामकरणसे पूर्व मरे तो सद्यः शौच-उसके अनंतर दांत जमनेसे पूर्व मरे और अग्नि संस्कारहो गया होय तो एक दिन आशौच अन्यथा सद्यः शौच होता है-दांत निकलनेके अनंतर और प्रथम वार्षिक मुंडनसे पूर्व मरा होयतो एक दिन-प्रथम वर्षसे पीछे तीन

१ दन्तजातेऽप्यकृतचूडेऽहोरात्रेण शुद्धिः ।

२ नृणामकृतचूडानामशुद्धिर्नैशिकी स्मृता । निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।

३ अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्र्यहमेव तु ।

४ ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रम् ।

५ यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तश्च संस्थितः । तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत् ।

१ त्रिवर्षे न्यूनत्रिवर्षे तु मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ।

२ बालानामदन्तजातानां त्रिरात्रेण शुद्धिः ।

३ निरस्य तु पुमाञ्छुक्रमुपस्पृश्यैव शुध्यति । बैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ।

वर्षसे पूर्व मुंडन होगया होय तो तीन दिन आशौच-अन्यथा एक दिनका आशौच होता है-तीन वर्षसे ऊपर जो मुंडन न हुआ होय तोभी तीन दिनका आशौच होता है-यज्ञोपवीतके अनंतर सब ब्राह्मण आदिकोंको दशरात्र आदिका आशौच होता है॥

भावार्थ-दांतोके पैदा होनेतक सद्यः आशौच और मुण्डन पर्यंत अहोरात्र-और यज्ञोपवीत पर्यंत तीनरात्र और इससे परे दशरात्रका आशौच होता है ॥ २३ ॥

अहस्त्वदत्तकन्यासुबालेषुचविशोधनम् ॥
गुर्वंतेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषुच॥२४॥

पद-अहः १ तु॰-अदत्तकन्यासु ७ बालेषु ७ च॰-विशोधनं १ गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु ७ च॰- ॥

योजना-अदत्तकन्यासु चपुनः बालेषु चपुनः गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु अहोरात्रं विशोधनं भवति

तात्पर्यार्थ-जिनका विवाह न हुआ हो ऐसी कन्याओंका आशौच सपिण्डोंको मुण्डन होनेके अनंतर और वाग्दानसे पूर्व अहोरात्र होताहै कन्याओंका सापिण्ड्य तीन पुरुष पर्यंत इस वसिष्ठकी स्मृतिसे होता है कि-अदत्त कन्याओंका सपिण्ड्य तीन पुरुष पर्यंत शिष्टजन कहते हैं-जिनके दांत न निकलेहो ऐसे बालकोंका आशौच अग्निसंस्कार होनेपर अहोरात्र होता है- और जिनका मुण्डन न हुआ हो ऐसी कन्याओंका सद्यःशौच होता है क्योंकि आपस्तम्बका वचन है कि जिनका चूडाकर्म न हुआहो ऐसी कन्याओंका सद्यः शौच होता है-और वाग्दानके अनंतर विवाह होनेसे पूर्व-पितृपक्ष (कुल) और पति पक्षमें तीनरात्रका आशौच होता है-सोई मनु (अ० ५ श्लो० ७२)ने कहा है कि जिनका संस्कार न हुआहो ऐसी कन्याओंके मरनेमें बान्धव (पतिपक्ष) तिनरात्रमें और सनाभि (सपिण्ड) अर्थात् पिता पक्षके मनुष्य निवृत्तचूडकानां इत्यादि श्लोकसे कहा जो तीन रात्रका आशौच उससे शुद्ध होते हैं दशरात्रसे नहीं क्योंकि विवाह होनेसे पूर्व उसकी प्राप्ति नहीं-इससे ही मरीचिने कहा है कि वाग्दान की हुई कन्याजो जल आदान (संकल्प) पूर्वक जो न दी हो वह असंस्कृत होती है उसका आशौच दोनोंपक्षोंमें तीनरात्र होता है-विवाहमें पीछे तो यह विष्णुने विशेष दिखाया है कि विवाही हुई कन्याका आशौच-पितृ पक्षमें नहीं होता-यदि उसके पुत्र आदिका प्रसव अथवा मरण पिताके घर होयतो पितृ पक्षमें तीन रात वा एक रात्रआशौच होताहै तिसमें भी प्रसवमें एकरात और मरणमें तीनरात आशौच होता है यह व्यवस्था है यह वयोवस्था आशौच-सब वर्णोंको साधारण है क्योंकि तत्तद्वर्णका असाधारण आशौच क्षत्रियको बारह दिनका आशौच होता है- इत्यादि वचनसे तिस तिस वर्णको पृथक्२ कह कह दिखाया है-इससे यह तीनरात आदिका आशौच अविशेषसे सब वर्णोंको समान है- इसीसे मनुनेभी चारों वर्णोंका अधिकार (प्रकरणसे उत्तरोत्तर संबंध)

१ अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते ।
२ अकृतचूडायां तु कन्यायां सद्यः शौचं विधीयते ।

१ स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्धयन्ति बान्धवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्धयन्ति तु सनाभयः ।
२ वारिपूर्वं प्रदत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतं ।
३ संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे तत्प्रसवमरणे चेत्पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं वा ।

होनेपरभी (चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः) इस अपने श्लोकमें चतुर्णां वर्णानां जो लिखा है वह इसी बातके जतानेके लिये है कि जिसमें वर्ण विशेषका उपादान नही किया ऐसी आशौचकी विधि सब वर्णोंमें साधारण है– सोई अंगिराने कहा है कि संस्कार से पूर्व अविशेषसे सब वर्णोंकी तीनरातमें शुद्धि और कन्याके मरनेमें एक दिनमें शुद्धि होती है– अवस्था निमित्तका आशौच सब वर्णोंको तुल्य होता है इत्यादि व्याघ्रपादका वचनतो पूर्व दिखाय आए–जैसे पिण्डयज्ञा वृता देयं इत्यादि वचनसे कही हुई पिण्डदान और जलदानकी विधि और अंतरा जन्ममरणे इत्यादि सन्निपाताशौचके विधि और गर्भस्रावेमास-तुल्यानिशा इत्यादि स्रावाशौचकी विधि और प्रोषिते कालशेषःस्यादशेषे त्र्यहमेवतु-इत्यादि विदेशस्थ आशौचके विधि–और जैसे–गुरु आदिके आशौचकी विधि–सब वर्णोंको साधारण है–तिसी प्रकार वयोवस्था निमित्तक आशौचभी सब वर्णोंको साधारण होनाही उचित है–ईसीसे तिन वर्षसे ऊपर चूडाकर्मके होनेपर–क्षत्रियको छःदिनका आशौच–वैश्यको नौ दिनका और शूद्रको बारह दिनका आशौच होताहै तैसेही जिसमें ब्राह्मणोंको तीन रातका आशौच दिखाया है उसमें शूद्रको बारह दिनका और क्षत्रियको छःदिनका और शूद्रको नौ दिनका आशौचहोताहै–इत्यादि–धारेश्वर–विश्वरूप–और मेधातिथि आचार्योंने इस साधारण पक्षको स्वीकार किया है और इन ऋष्यशृंग आदिके कहे हुए वचनोंका तिरस्कार विगीत (निंदित) जानकर किया है और जो वचन अविगीत (यथार्थ) हैं व आर्त (रोगी) और अनार्त क्षत्रिय आदिके विषयमें व्याख्येय (समझने) हैं ॥ जो पढावै वह गुरु– अन्तेवासी (शिष्य) व्याकरण आदि वेदोंके अंगके पढनेवाला अनूचान और मातुल शब्दसे अपने बन्धु माताके बन्धु और पिताके बन्धु योनिसंबन्ध पत्नीदुहितर इत्यादि वचनमें कहे हुए समझने वे–और एक शाखाका पढने वाला श्रोत्रिय–क्योंकि बौधायनकी स्मृति है कि एक शाखाको जो पढे वह श्रोत्रिय होता है इनके मरनेपर अहोरात्र आशौच होता है– और जो कि मुख्य गुरु पिता है उसको दशदिनका आशौच होता है–और जो पुत्रको पैदा करके संस्कार और वेदको पढावे और वेदके अर्थको बताकर वृत्ति (आजीवन) कराता है वह महागुरु है उसके मरनेमें इस आश्वलायनका कहा हुआ आशौच समझना कि महागुरुके मरनेमें बारहरात्र दान और अध्ययनको वर्ज दे– आचार्यके मरनेमें तो तीन रात्रही आशौच होता है–सोई मनु (अ० ५–श्लो० ८०)ने कहा है कि आचार्यके मरनेमें तीनरात्रका और उसके पुत्र वा स्त्रीके मरनेमें अहोरात्रका आशौच होता है–और जो शिष्य आचार्य आदिका अन्त्येष्टि (प्रेतकर्म) कर्म करै तो दशरात्र आशौच होता है–क्योंकि मनु (अ० ५ श्लो० ६५)नेही कहा है कि मरे

१ अविशेषेण वर्णानामर्वाक् संस्कारकर्मणः । त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते ।

२ क्षत्रे षड्भिः कृते चौले वैश्ये नवभिरुच्यते । ऊर्ध्वं त्रिवर्षाच्छूद्रे तु द्वादशाहो विधीयते । यत्र त्रिरात्रमाशौचं विप्राणां च प्रदर्श्यते । तत्र शूद्रे द्वादशाहः षण्नव क्षत्रवैश्ययोः ।

१ द्वादशरात्रं वा दानाध्ययने वर्जयेत् ।

२ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ।

३ गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेताहारैः समं तत्र दशाहेन विशुध्यति ।

हुये गुरुकी जो शिष्य प्रेतक्रिया करै तो प्रेतके लेजानेवालोंके समान-दशदिनमें शुद्ध होता है-एक गाममें वसनेवाले श्रोत्रियके मरनेमें तो एकदिन आशौच इस आश्वलायनके वचनसे होता है कि-जिसने एक आचार्यसे उपनयन करायाहो वह सब-ब्रह्मचारी और श्रोत्रिय इनके मरनेमें एक दिन आशौच होता है-यह दूर मरे होयतो समझना-और जो समीप मरे होयतो तीन-रात्रकाही आशौच होता है-सोई मनु (अ० ५ श्लो० ८१)ने कहा है कि श्रोत्रियके मरनेमें तीनरात्र मामाके मरनेमें पक्षिणी (दोदिन एकरात) और शिष्य ऋत्विज और बांधव इनके मरनेमें पक्षिणी आशौच होता है-उपसंपन्न शब्दसे मैत्री-समीप रहना आदि जिसकेसाथ संबन्धहो-और वा जो शीलयुक्तहो-मातुलशब्दसे मौसी आदिभी समझनी-और बांधवशब्दसे अपने बंधु माताके बंधु और पिताके बंधु समझने-बृहस्पतिनेभी कहा है कि भ्राता आचार्य और श्रोत्रिय इनके मरनेमें तीनरात्र अशुद्ध होता है-सोई प्रचेताने कहा है कि ऋत्विज और याज्य इनके मरनेमें तीनरातमें शुद्ध होता है-वसिष्ठनेभी कहा है कि दौहित्र (धेवता) और भानजेके मरनेमें पक्षिणी रात्रि और जो संस्कृत होयतो तीनरात्र आशौच होता है ये धर्मकी व्यवस्था है-मातापिताके मरनेमें विवाही कन्याओंको किसतरह आशौच होता है इसमें यमने कहा है कि तीनरात्रमें शुद्धि होती है-और इसीप्रकार सास-श्वशुर-भगिनी-भाई-मामा-और मातापिताकी बहन इनके मरनेमें पक्षिणी आशौच होता है-और यहभी वचन है कि मामा श्वशुर-मित्र-गुरु-गुरुकीस्त्री-और नानी इनके मरनेमें पक्षिणी आशौच होता है-सोई गौतमने कहा है कि जो सपिण्ड नहीं ऐसे योनिसंबंध और सहाध्यायी इनके मरनेमें पक्षिणी आशौच होता है-योनिसंबंध मामा-मौसीका पुत्र-और बूआका पुत्र ये होते हैं-जाबालिनेभी कहा है कि समानोदकोंका तीनदिन, सगोत्रियोंका एकदिन, माताके बन्धु-गुरु-मित्र-राजा-इनके मरनेमें एक दिन, आशौच होता है-विष्णुनेभी कहा है कि जो सपिण्ड अपने घरपर जायतो एक दिन आशौच होता है-तैसेही वृद्धवसिष्ठने कहा है कि विवाही हुई बहन-असंस्कृत भाई-मित्र-जामाता-दौहित्र-भानजा-शाला-शालेकापुत्र-इनके मरनेमें स्नानमात्रसे सद्यः शुद्धि होती है-और ग्रामका अधिपति-कुलकापति-श्रोत्रिय-तपस्वी-शिष्य-इनके म-

१ एकाह सब्रह्मचारिणि समानग्रामिणे च श्रोत्रिये।
२ श्रोत्रिये तूप सपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बांधवेषु च ।
३ त्र्यह मातामहाचार्यश्रोत्रियेष्वशुचिर्भवेत् ।
४ मृते चार्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ।
५ सस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ।
६ पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथ भवेत् । त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्यमः । श्वशुरयोर्भगिन्या च मातुलान्यां च मातुले । पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशां ।

१ मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वंगनासु च । आशौच पक्षिणीं रात्रिं मृता मातामही यदि ।
२ पक्षिणीमसपिण्डे योनिसंबंधे सहाध्यायिनि च।
३ एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतं । मातृबंधौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा ।
४ असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रं ।
५ भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते । मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते । श्यालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुध्यति । ग्रामेश्वरे कुलपतौ श्रोत्रिये च तपस्विनि । शिष्ये पंचत्वमापन्ने शुचिर्नक्षत्रदर्शनात् । ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् । ग्रामस्य तावदाशौच निर्गते शुचितामियात् ।

रनेमें सायंकालको नक्षत्र (तारे) के देखनेसे शुद्धि होती है–ग्रामके बीचमें जबतक शव (मुर्दा) रहे तबतक ग्रामको आशौच है उसके निकलनेपर ग्राम शुद्ध होता है–इत्यादि विशेष आशौचके प्रतिपादक स्मृतिओंके वचन स्मृतिओंमें देखनें ग्रन्थके बढनेके भयसे इसमें नही लिखते–इन वचनोंमें जो ऐसे वचन है कि एकके विषयमेंही गुरु (बडा) और लघु (छोटा) और शौचके प्रतिपादन करनेसे परस्पर जिनमें विरोध आता है उनकी व्यवस्था–समीप–और परदेशकी अपेक्षासे समझनी–अर्थात् जो समीप होय तो गुरु आशौच और परदेशमें होय तो लघु आशौच करना ॥

भावार्थ–जो कन्या न विवाही हों और बालक इनके मरनेमें एक दिन आशौच तथा गुरु अन्तेवासी–अनूचान–मामा श्रोत्रिय इनके मरनेमें एक दिनरात आशौच होता है॥

अनौरसेषुपुत्रेषुभार्यास्वन्यगतासुच ॥
निवासराजनिप्रेतेतदहःशुद्धिकारणम् २५॥

पद–अनौरसेषु ७ पुत्रेषु ७ भार्यासु ७ अन्यगतासु ७ च–निवासराजनि ७ प्रेते ७ तत् १ अहः १ शुद्धिकारणम् १ ॥

योजना–अनौरसेषु पुत्रेषु–चपुनः अन्यगतासु–भार्यासु–मृतासु निवासराजनि–प्रेते–सति– तत् (यस्मिन्मृतः) अहः शुद्धिकारणं भवति–

तात्पर्यार्थ–क्षेत्रज–दत्तक आदि अनौरस पुत्र–उनके उत्पन्न होने और मरनेमें और अपनी विवाही स्त्री प्रतिलोमसे भिन्नके आश्रय जो होजाय उसके मरनेमें अहोरात्र आशौच होता है यद्यपि ये सपिंड हैं तोभी दश रात्रका नही होता–और जो कि प्रतिलोमके आश्रय स्त्री हैं उनके मरनेमें तो पाषंडयनाश्रिता इत्यादि श्लोकसे आशौच का अभावही है–ये भार्या और पुत्रशब्द–संबन्धी शब्द है इससे जिसकी अपेक्षासे जिन स्त्री और पुत्रोंमें भार्यात्व–और–पुत्रत्वहो अर्थात् जिसके स्त्री और पुत्रहों उसकोही आशौच है–अन्य सपिंडोंको नही–इसीसे प्रजापीतनें कहाहै कि जो अन्यके आश्रय स्त्री और जो अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्र हैं उनके मरनेमें और पैदा होनेमें सगोत्री स्नानसे और पिता तीन रातमें शुद्ध होता है–और जो स्वैरिणी (व्याभिचारिणी) आदि जिसके आश्रय हैं उसकोभी तीन रात्रका आशौच होता है–सोई विष्णुने कहा है कि अनौरस पुत्रोंके पैदा होने और मरनेमें और परपूर्वा स्त्रीके सन्तति होने वा मरनेमें तीन रात्र आशौच होता है–इन तीन रात और एक रात्रकी–समीप और पर देशकी अपेक्षासे व्यवस्था है–जब पिताको तीन रातका आशौच होय तो सपिण्डोंको एक रातका आशौच होता है–सोई मरीचिने कहा है कि परपूर्वा स्त्री–और उनके पुत्रोंके पैदा होने और मरनेमें तीनरात आशौच होता है जिसमें पिताको तीन रातका आशौच हो उसमें सपिण्डोंको एक दिनका होता है–अपने देशका अधिपति जिस दिन मरे–वह दिन और रात शुद्धिमें कारण है–और रात्रिमें मरा होयतो प्रात २ में सूतक निवृत्त हो जाता है–इसीसे मनु (अ० ५ श्लो० ८२) ने कहा है कि राजाके मरनेमें सज्योतिः आशौच होता है अर्थात्

१ अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च। गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता ।

२ अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च। परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च ।

३ सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः। एकाहस्तु सपिंडानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः ।

४ प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ।

दिनमें मरा होयतो जबतक सूर्य दीखै तब-तक रात्रिमें मरा हो तो जबतक तारागण दीखें तबतक आशौच होता है ॥

भावार्थ-अनौरस पुत्र और अन्य पुरुषमें आसक्त स्त्री और अपने देशका राजा इनके मरनेमें अहोरात्रसे शुद्धि होती है ॥ २५ ॥

ब्राह्मणेनानुगंतव्योनशूद्रोनाद्विजः-
क्वचित् ॥ अनुगम्यांभसिस्ना-
त्वास्पृष्ट्वाग्निंघृतभुक्शुचिः ॥ २६ ॥

पद-ब्राह्मणेन ३ अनुगन्तव्यः १ न०-शूद्रः १ न०- द्विजः १ क्वचित्०- अनुगम्य०-अम्भसि ७ स्नात्वा०- स्पृष्ट्वा०- अग्निं३ घृत-भुक् १ शुचिः १ ॥

योजना-ब्राह्मणेन शूद्रः-वा द्विजः क्वचित् न अनुगंतव्यः-अनुगम्य पुनः अंभसि स्नात्वा अग्निं स्पृष्ट्वा-तथा घृतभुक् सन् शुचिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ-असपिण्ड ब्राह्मण-विप्र आदि द्विज और शूद्र इन प्रेतोंके संग अनुगमन न करै अर्थात् इन मरे हुएओंके साथ न जाय-यदि स्नेह आदिसे इनके संग चला जाय तो तडाग आदिके जलमें स्नान-अग्निका स्पर्श और घृतका भोजन करके शुद्ध होता है-उस दिन भोजन करनेमें इस घृत प्राशनकाही विधान है अर्थात् घृतकोही खाय और कुछ न खाय ऐसी कल्पनामें कोई प्रमाण नही इससे भोजन करनेका प्रतिषेध नही-यह प्रायश्चित्त सामन और उत्कृष्ट जातिके विषयमें समझना-सोई मनु (अ० ५ श्लो० १०३)ने लिखा है कि सजातीय वा विजातीय प्रेतके साथ इच्छासे गमन करके सचैल स्नान-अग्निका स्पर्श-और घृत खा कर शुद्ध होता है-ज्ञाति शब्दसे माताके सपिण्ड लेने-अन्योंके संग गमनको शास्त्र विहित होनेसे दोष नही-अपनेसे निकृष्ट (नीच) जातिके संग गमन करनेमें तो यह स्मृत्यंतरमें कहा हुआ देखना तहां शूद्रके संग गमन करनेमें तो यह पाराशरने कहा है कि जो ज्ञानसे दुर्बल ब्राह्मण मरेहुए शूद्रके संग गमन करता है वह तीन रात्रमें शुद्ध होता है-जब तीन रात्र व्यतीत होजाय तब समुद्रमें जिसका प्रवाह पडे ऐसी नदीपर जाकर सौ प्राणायाम और घी खाकर शुद्ध होता है-ब्राह्मणको क्षत्रियके संग अनुगमन करनेमें यह वसिष्ठका कहा अहोरात्रका आशौच समझना कि मनुष्यकी स्निग्ध हड्डीको छूकर तीनरात और मनुष्यकी अस्निग्ध(रूखी) हड्डीको छूकर अहोरात्र और शव (मुर्देके) संग अनुगमन करनेसे एक रातदिन अशौच होताहै-वैश्यके संग जानेमें पक्षिणी अशौच ब्राह्मणको इस वचनसे होता है-और क्षत्रियको अनंतर(अव्यवहित)वैश्यके संग जानेमें अहोरात्र-एकान्तर अर्थात् एक वैश्य है मध्यमें जिसके ऐसे शूद्रके संग जानेमें पक्षिणी अशौच और वैश्यको शूद्रके संग जानेमें एक दिनका अशौच होताहै-यह बात विचार लेनी-तैसेही रोनेमेंभी पारस्करने यह कहाहै कि बांधवोंसहित मरेहुए मनुष्यका रोदन और शोक आदिको करै उस दिनरात दान और श्राद्ध आदि कर्मको वर्जदे-तैसेही

१ अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च । स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।

१ प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अनुगच्छेन्नीयमानं स त्रिरात्रेण शुध्यति । त्रिरात्रे तु ततश्चीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगां । प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।

२ मानुषास्थि स्निग्धं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमाशौचं अस्निग्धे त्वहोरात्रं शवानुगमने चैकं ।

३ मृतस्य बांधवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनं । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानं श्राद्धादिकर्म च ।

प्रेतका अलङ्करण (शृंगार)भी न करे- क्योंकि करनेमें यह प्रायश्चित्त शंखने दिखाया है कि असपिण्ड प्रेतके शृंगार करनेमें पादकृच्छ्रव्रत करे और जो अज्ञानसे किया होयतो उपवासकरे जो शक्ति न होयतो स्नान करे ॥

भावार्थ-ब्राह्मण असपिण्ड द्विजके और शूद्रके संग कदाचित् गमन न करे जो करे तो जलमें स्नान अग्निका स्पर्श और घी खाकर शुद्ध होताहै ॥२६॥

महीपतीनांनाशौचंहतानांविद्युतातथा ॥
गोब्राह्मणार्थेसंग्रामेयस्यचेच्छतिभूमिपः२७

पद-महीपतीनां ६ न०- आशौचं १ हतानां ६ विद्युता ३ तथा०- गोब्राह्मणार्थे ७ संग्रामे७ यस्य६ च०-इच्छति क्रि-भूमिपः१॥

योजना-महीपतीनां तथा विद्युता हतानां गोब्राह्मणार्थे हतानां यस्य आशौचाभावं भूमिपः इच्छति तस्य च आशौचं न कार्यं ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि मही शब्द संपूर्ण भूगोलका वाची है तथापि उसका एकदेशरूप मण्डल लेते हैं-क्योंकि संपूर्ण पृथ्वीका एक पति नही होसक्ता और एकपतिकोही मानो तो महीपतीनां यह बहुवचन असंगत होगा- इससे इस बहुवचनके अनुरोधसे मण्डलही लेतेहैं-उसके पालन करनेमें नियुक्त और जिनका अभिषेक हुआ है-ऐसे क्षत्रिय आदिको आशौच नही-अर्थात् सपिण्डके मरनेमें उनको आशौच नहीं करना-और जो बिजलीसे वा गौ ब्राह्मणके लिए मरेहैं-उनके सपिण्डोंको तथा जिन मंत्रि पुरोहित आदिको ये राजा इस अपने कार्यकी सिद्धिके लियेकि इनके बिना मंत्र अग्निहोत्र और अभिचार आदि कर्म अन्यसे नही होसक्ता जो आशौचके अभावकी इच्छा करता हो उन मंत्रि पुरोहित आदिको आशौच नही होता-यहां जो राजाके असाधारण (जिनको और कोई न करसके) प्रजापालन स्वकर्म हैं वह जिस दान-मान-सत्कार और व्यवहारका दर्शन आदि कर्मके विना न होसके उसी कर्मके करनेमें राजाओंको आशौचका अभाव है- कुछ पंचमहायज्ञ आदिके विषे नही-सोई मनु (अ० ५ श्लो० ९५) ने कहाहै कि राज्यपदके विषे वर्तमान राजाको सद्यः शौच होता है इस आशौचाभावमें अन्नदान शान्ति होम आदिसे जो प्रजाकी रक्षाके- लिये राज्यासन पर बैठना वोही कारण है-गौतमनेभी कहाहै कि राजाओंको कार्यका नाश न हो इस लिये आशौच नही होता राजाके भृत्योंकोभी आशौच नही होता- सोई-प्रचेताने कहा है कि-कारु (सूपकारआदि) चित्रके बनानेवाले वस्त्रोंके धोनेवाले शिल्पी-वैद्य-दासी-दास-राजा- और राजाके भृत्य इनको सद्यः शौच होता है-यह आशौचाभाव किस कर्मके विषे है इस अपेक्षामें यही बात बुद्धिमें आती है कि कर्म है निमित्त जिनमें ऐसे शिल्पी आदि शब्दसे जो आशौचा भाव दिखाया है वह उसी असाधारण कर्मके विषयमें है जिसको निमित्त मानकर जो नाम है जैसे शिल्प कर्मके करनेसे शिल्पी-इससे उसी कर्मके विषे समझना-इसीसे विष्णुने राजकर्ममें राजा-

१ अलङ्कारे प्रेतस्य देवाचरणे कृते। अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते।

१ राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते। प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम्।

२ राज्ञां च कार्यविरोधात्।

३ कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः।

४ न राज्ञां राजकर्मणि न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे न कारूणां कारुकर्मणि।

ओंको प्रतके विषें व्रतिओंको यज्ञके विषें याज्ञिकोंको कारु कर्ममें कारुको आशौच नही होता ऐसा कहनेसे जिसका जो नियत कर्म है उसीमें आशौचका अभाव दिखाया है-शातातपकी स्मृतिमेंभी कहा है कि मूल्य कर्म (नोकरीके) करनेवाले शूद्र-दासी-दास-ये स्नान-शरीर संस्कार-और गृहका कर्म (लेपन आदि) इनके करनेमें दूषित नही होते-यह दास आदिकी शुद्धि जिसका परिहार न होसके अर्थात् जिसको अन्य कोई न करसके ऐसे प्राप्त स्पर्शके विषेमें है यह बात समझनी इसीसे स्मृत्यंतरमें लिखाहै कि गर्भदास (जो अपनी दासीमें पैदा हो) सद्यःस्पर्श करने योग्य और भक्तदास (जो अपना भोजन खाता हो) तीन दिनमें शुद्धिके योग्य होता है-तैसेही यह वचन है कि जो चिकित्सक (वैद्य) जिस कर्मको करता है उसको अन्य नहीं कर सक्ता इससे चिकित्सक नित्यस्पर्श करनेके लिये शुद्ध होता है ॥

भावार्थ-महीपति-बिजलीसे वा गौ ब्राह्मण के लिये जो मरेहैं उनके सपिंडोंको और जिसके अशौचभावकी राजा इच्छा करे उन मंत्री आदिकोंको आशौच नही होता ॥ २७ ॥

ऋत्विजांदीक्षितानांचयज्ञियंकर्मकुर्वताम् । सत्रिव्रतिब्रह्मचारीदातृब्रह्मविदांतथा २८॥

पद-ऋत्विजां ६ दीक्षितानां ६ च अ-यज्ञियं २ कर्म २ कुर्वतां ६ सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां ६ तथा अ-

दानेविवाहेयज्ञेचसंग्रामेदेशविप्लुवे । आपद्यपिहिकष्टायांसद्यःशौचंविधीयते २९

१ मूल्यकर्मकराः शूद्रा दासी दासास्तथैव च स्नाने शरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यदूषिताः ।

२ चिकित्सको यत्कुरुते तदन्येन न शक्यते । तस्माच्चिकित्सकः स्पर्शे शुद्धो भवति नित्यशः ।

पद-दाने ७ विवाहे ७ यज्ञे ७ च अ-संग्रामे ७ देशविप्लुवे ७ आपदि ७ अपि अ-हि अ-कष्टायां ७ सद्यः १ शौचं १ विधीयते क्रि-

योजना-ऋत्विजां-दीक्षितानां-चपुनः यज्ञियं कर्म कुर्वतां-सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां-चपुनः दाने-विवाहे-यज्ञे-संग्रामे देशविप्लुवे (एषां विषये) हि- (निश्चयेन) कष्टायां आपदि सत्यां अपि सद्यः शौचं विधीयते ॥

तात्पर्यार्थ-जिनका वरण होगयाहो ऐसे यज्ञमें होम करनेवाले ऋत्विज जिनको यज्ञमें दीक्षादीहो ऐसे दीक्षित यज्ञके कर्म करनेवाले इनको सद्यः शौच होता है- यद्यपि यहां वैतानोपासनाः कार्याः इस वचनसे दीक्षितको अधिकार सिद्धथा तथापि पुनः दीक्षित शब्दका ग्रहण यज्ञ करानेवालोंमें स्वयंकर्तृत्वका विधान(खुद करना) और सद्यःस्नानकी अविधि (अभाव) के लिये है-सत्रि शब्दसे अन्न सत्रमें जो प्रवृत्त उनका सन्ततानुष्ठान (निरंतर करना) के समान ग्रहण है मुख्य सत्रियोंको तो आशौचका अभाव दीक्षितके ग्रहणसेही सिद्ध है-यहां व्रती शब्दसे कृच्छ्र चांद्रायण स्नातकव्रत और प्रायश्चित्त तथा ब्रह्मचर्य व्रत इनके करनेवाले और श्राद्धके कर्त्ता और भोक्ता लिये जाते है-सोई स्मृत्यंतरमें लिखा है कि नित्य अन्नके देनेवाला कृच्छ्र चांद्रायण को करनेवाला-कृच्छ्र होम आदिमें प्रवृत्त-भोजनमें प्रवृत्त ब्राह्मण आदि-ब्रह्मचर्य

१ नित्यमन्नप्रदस्यापि कृच्छ्रचांद्रायणादिषु । निवृत्ते कृच्छ्रहोमादौ ब्राह्मणादिषु भोजने । गृहीतनियमस्यापि तस्मादन्नस्य कस्यचित् । निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमंत्रितस्य विप्रस्य स्वाध्यायादिरतस्य च । गेह पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित् । प्रायश्चित्तप्रवृत्तानां दातृब्रह्मविदां तथा ।

आदि नियमवाला-निमंत्रित ब्राह्मण-श्राद्ध कर्मका आरंभ जिसने किया हो और उसमें निमंत्रित ब्राह्मण-वेदके अध्ययनसे जो निवृत्त हुआ हो-जिसके घर पितर बैठे हो-प्रायश्चित्तके करनेवाले-और दाता और श्रोत्रिय-इनको कदाचित् आशौच नही होता-सत्री-और व्रतीओंकी शुद्धि सत्र-और व्रतकेही विषयमें है कुछ अन्य समस्त कर्म वा व्यवहारके विषेमें नही सोई विष्णुने कहा है कि व्रतीयोंको व्रतमें और सत्रियोंको सत्रमें आशौच नही होता-ब्रह्मचारि-उपकुर्वाणक और नैष्ठिक दोनों प्रकारके समझने -और दाता शब्दसे उसीका ग्रहण हैं कि जो नित्य दाताही हो प्रतिग्रह न लेता हो ऐसा वैखानस (वानप्रस्थ) ब्रह्म (वेद) के जानने वाला यति (संन्यासी) इन तीनों आश्रमियोंकी सब कर्ममें शुद्धि है विशेष कर्मके विषे कोई प्रमाण नही पूर्व जिसका संकल्प कर लिया हो ऐसे द्रव्यके देनेमें आशौच नही होता-क्योंकि क्रतुकी स्मृति है कि पूर्व संकल्प किया द्रव्य दिया जाय तो दोष नही-स्मृत्यंतरमें तो यहां विशेष कहा है कि विवाह-उत्सव-और वृषोत्सर्ग आदि यज्ञके विषे जो अन्तरा-(भोजनके मध्य) जो मृत्यु वा सूतक होजाय तो उस शेष (ब्राह्मणोच्छिष्ट) अन्नको अन्य मनुष्योंसे दिवावे दाता (स्वामी) और भोजन करनेवालोंका स्पर्श न करे-विवाह और यज्ञ शब्दसे जिसकी पूर्व भोजन आदि सामग्री इकट्टी कर लीहो वह विवाह और यज्ञ लेना-सोई स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि जिसकी सामग्री इकट्ठी करली हो ऐसा यज्ञ और विवाह श्राद्धकर्म इनमें सद्यः शौच होता है-विवाहका ग्रहण पूर्व प्रारंभ किए चूडा-यज्ञोपवीत-आदि संस्कारकाभी उपलक्षण है-और यज्ञ ग्रहण-पूर्व प्रारंभ किए-कि देव प्रतिष्ठा आराम (बाग) आदिका उत्सव इनका उपलक्षण है-क्योंकि यह विष्णुकी स्मृति है कि ॥ देवप्रतिष्ठा-उत्सर्ग-विवाह-देशकाउपद्रव-अत्यन्तकष्टआपत्तिमें आशौच नहीहोता-संग्रामके विषे आशौच नही होता-अर्थात् संग्रामके विषे राजाको सन्नद्ध करे इस आश्वलायन आदिकी कही सन्नहन (तैयारी) विधि के विषे प्रस्थानके समय जो शान्तिहोम आदि किएजाते हैं उनमें सद्यःशुद्धि होती है-देशमें विस्फोर (शीतला) आदि उपसर्ग वा राजाके भयसे जो उपद्रव हो उसकी शान्तिके लिए जो शान्तिकर्म किए जाते हैं उनमेंभी शुद्धि सद्यः होती है-विप्लवके अभावमेंभी कहीं देश विशेषसे पैठीनसि ने कहाहै कि *विवाह यज्ञ किला यात्रा और तीर्थ* इनमें सूतक नही होता इनमें यज्ञ आदि कर्मको करे-व्याधि आदिके जोरसे जो मरनेकी अवस्था प्राप्त होगईहो इसमें जो पापकी शान्तिके लिये दान किया जाय धन आदिसे संकुचित वृत्ति (कंजूस) होनेसे जो माता पिता आदि कुटुम्ब क्षुधासे अत्यंत व्याकुल होजांयतो उनके उदरपोषणके निमित्त जो *प्रतिग्रह लियाजाय* इनमें सद्यःशौच होता है-यह सद्यःशौच जिसकी सद्यःशौचके विना क्षुधा आदि पीडाकी शान्ति नही हो

१ न व्रतिनो व्रते न सत्रिणो सत्रे ।

२ पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ।

३ विवाहोत्सवयज्ञादिष्वन्तरा मृतसूतके । शेषमन्नं परैर्देयं दातृन्भोक्तृंश्च न स्पृशेत् ।

१ यज्ञे सम्भृतसंभारे विवाहे श्राद्धकर्मणि ।

२ न देवप्रतिष्ठोत्सर्गविवाहेषु न देशविभ्रमे नापद्यपि च कष्टायामाशौचं ।

३ विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत् ।

ऐसे अश्वस्तनिक (जो एक दिनके निर्वाह मात्र अन्नसंग्रह करे) के विषयमें है–जिसके एक दिनको उदर पूर्णाके लिए संचित धन हो उसको एक दिनका–तीन दिनके लिए होयतो तीन दिनका–चार दिनके लियेहो उसको चार दिनका–और कुसूलधान्यको दश दिनका आशौच होता है–इस प्रकार जिसके जितने काल क्षुधा आदि पीडाका अभाव रहे तिसको उतने कालतक आशौच रहता है–क्योंकि आशौचके संकोचमें आपत्ति उपाधि (कारण) है–इसीसे मनुने (अ० ४ श्लो० ७) कुसूलधान्यक और कुंभीधान्य त्र्यहिक और अश्वस्तनिक गृहस्थीहो इस श्लोकसे गृहस्थोंको चार प्रकारका कहकर इसी अभिप्रायसे सपिण्डोंको दश दिनका आशौच अथवा अस्थिसंचयतक वा तीन दिनका वा एक दिनका आशौच होता है यह चार कल्प आशौच के प्रतिपादन करे हैं–और जो किसी स्मृतिमें समानोदकोंको यह तीन प्रकारका जो संकुचित आशौचका कल्प दिखाया है कि पक्षिणी (दो दिन एक रात) एकादिन–वा सद्यःशौच समानोदकोंको है वहभी इसी वृत्तिके संकोचसे समझना–यह आशौचका संकोच (कमकरना) जिस प्रतिग्रह आदिके बिना आर्ति हो उसके विषय है अन्य कर्ममें नहीं–कदाचित् कोई शंका करे कि अग्न्याधान और वेद करके युक्त ब्राह्मण एक दिनमें और केवल वेदके पढनेवाला तीन दिनमें और इन दोनोंसे रहित दशदिनमें शुद्ध होता है इत्यादि अन्यस्मृतियोंके देखनेसे वेदाध्ययन अग्न्याधान आदिके करनेवाले ब्राह्मणकी एकदिन आदिसे शुद्धि कर्मसामान्यमें प्रतीत होती है इस कर्म सामान्यमें शुद्धि तुम इष्ट क्यों नहीं मानते उसका यह समाधान करते हैं कि शाव आशौच सपिंडोंको दशदिन होता है इस वाक्यसे जो दशदिनका आशौच सामान्यसे प्राप्तथा उसको बाध करता हुआ ब्राह्मण एक दिनमें शुद्ध होता है यह वाक्य विशेष आशौचका विधायक है–बाधक होनेमें अनुपपत्ति अर्थात् समस्त अपने विषयमें सामान्य वाक्यकी प्रवृत्ति होनेसे अपने विषयमें चरितार्थ न होना कारण है इससे जितने विषयमें बाध्यको विना बाधे अनुपपत्तिका क्षय नहो उतने विषयमें बाध्य बाधा जाता है इससे अब यह अपेक्षा हुई कि यह (एकाहाद्ब्राह्मणःशुध्येत्) वाक्य कितने विषयमें बाध्यको बाधकर चरितार्थ होगा तो इसी वाक्यमें अग्नि और वेदसे युक्त ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होता है इस विशेषके देखनेसे अग्निहोत्र कर्म और स्वाध्याय इन दोनों विषयोंमेंही बाध्यको बाधकर इसकी चरितार्थताकी अवस्थिति प्रतीत होती है इससे यह वाक्य अग्निहोत्र और स्वाध्याय इन विशेष कर्मोंमेंही एक दिनके आशौचका विधायक है अन्य दान आदि कर्मके विषयमें नहीं–क्योंकि अपने विषयमें चरितार्थहुए पीछे अचरितार्थतारूप जो अनुपपत्तिथी उसका क्षय होगया तो फिर अन्य विषयमें बाध्यकी प्रवृत्तिको यह वचन नहीं हटासक्ता–इस बातके सिद्धहुए पीछे अग्निवेद समन्वित इस पदमें अग्नि और वेद पदका एक दिन आशौचरूप जो कार्य है उसमें अन्वय है अर्थात् अग्नि आदि कर्ममें एक दिनका आशौच है यह अर्थ सिद्ध हुआ–अन्यथा जितने अग्निसाध्य कर्म कियाहो उसकी एक दिनमें शुद्धि

१ कुसूलधान्यको वास्यात्कुम्भीधान्यक एव वा। त्र्यहैहिकोवापि भवेदश्वस्तनिक एव वा। दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते। अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव वा।

होती है इस पुरुष विशेषका उपलक्षण अग्नि और वेद होजाता-जो की विरोध आदिके होनेसे त्याज्य है-जबकि अग्नि-और वेदपद कार्यान्वयी हुए तो इस वाक्यकी इन मनुके वाक्योंसे एक वाक्यता सिद्ध हुई कि अग्निओंमें होम आदि अनुष्ठानको करे और वेदमें कही हुई वैतान अग्निकी उपासना करे. तथा ब्राह्मणको स्वाध्यायकी निवृत्तिके अर्थ सद्यःशौच होता है-और इन दश दिन पर्यंत भोजन आदिके प्रतिषेध करतेहुए यम आदिके वचनोंके संग विरोधका परिहार भी सिद्ध हुआ की दोनों आशौचोंमें दशदिनतक कुलके अन्नको नखाय-इससे यह आशौचके संकोचका विधान किसी कर्म विशेषमें है सब व्यवहारोंके विषयमें नहीं-अब हम इस प्रपंचको समाप्त करते हैं यह सद्यःशौचका विधान बहुत वेदके पढनेवालेकी वेदके त्यागनेसे उत्पन्न हुई पीडाके विषयमें समझना अन्यको तो यह प्रतिषेधही है कि दान-प्रतिग्रह होम और स्वाध्याय निवृत्त हो जाते हैं-इसी प्रकार ब्राह्मण आदिके मध्यमें जिसको जितने कालका आशौच कहा है वह उस कालके अनंतर इन स्नान आदिसे शुद्ध होता है केवल कालकेही व्यतीत होनेसे नहीं जैसे कि मनु (अ० ५ श्लो० ९२) नें कहा है कि प्रेत क्रियाके किएपीछे स्नान करके हाथसे जलका स्पर्श करके शुद्ध होता है क्षत्रिय अपने वाहन (घोडा आदि) और अस्त्रोंको छूकर वैश्य रथकी रस्सी वा प्रतोद (कोडा) को छूकर और शूद्र यष्टिकाको छूकर शुद्ध होता है-यह स्पृष्ट्वा इस पदसे स्पर्शही लेते हैं स्नान और आचमन नहीं क्योंकि इसी पदका वाहन आदिमें अन्वय होता है अथवा क्रियाको कृतक्रिय अर्थात् आशौचकालतक उदक आदि कर्मको करके पीछे ब्राह्मण आदि जल आदिका स्पर्श करके शुद्ध होता है यह स्पर्श आशौच कालके अनंतर जो स्नान होता है उसका प्रतिनिधि समझना-

भावार्थ-ऋत्विज-दीक्षित-यज्ञके कर्मके करनेवाले-सत्री-व्रती-ब्रह्मचारी-दाता श्रोत्रिय-इनको और दान-विवाह-यज्ञ-संग्राम-देशोपद्रव-और अत्यंतकष्ट-इनमें सद्यः शौच होता है॥२८॥२९॥

उदक्याशुचिभिःस्नायात्संस्पृष्टस्तै-
रुपस्पृशेत् । अब्लिंगानिजपे-
च्चैवगायत्रींमनसासकृत् ॥ ३० ॥

पद-उदक्याशुचिभिः ३ स्नायात् क्रि-संस्पृष्टः १ तैः ३ उपस्पृशेत् क्रि-अब्लिंगानि२ जपेत् क्रि-चऽ-एवऽ-गायत्रीं२ मनसा३ सकृत् ऽ ॥

योजना-उदक्याशुचिभिः संस्पृष्टः सन् स्नायात् तैः (संस्पृष्टैः) संस्पृष्टः सन् उपस्पृशेत् चपुनः अब्लिंगानि मंत्राणि तथा मनसा गायत्रीं सकृत् जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-उदक्या (रजस्वला) और शव (मुर्दा) चाण्डाल (भंगी) पतित (कलंकीआदि) सूतकी तथा शावाशौची (मृतकसूतकी) इनको छूकर स्नान करे और इन रजस्वला आदिके संग भिटेहुएको छूकर आचमन करे-आचमन किए पीछे आपोहिष्ठामयोभुवः इत्यादि तीन ऋचाओंको जपे-तीनके बोध करनेसे बहुवचन चारितार्थ हो लिया इससे तीन ऋचाओंका ग्रहण है-तथा मनसे एकवार गायत्रीको जपे-यहां कोई यह शंका करे कि उदक्या-संस्पृष्टः स्नायात् यहां संस्पृष्टः जो यह एक

१ दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ।

२ विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधं । वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ।

१ आपोहिष्ठामयो भुवः । तानऊर्जे दधात नः । महेरणाय चक्षसे ।

वचनसे बोधन किया है उसका (तैः) इस बहु वचनसे परामर्श कैसा किया-तो इसका यह उत्तर है कि जो रजस्वला आदिसे स्पर्श किए गए हैं उनसे भिन्न जो स्नानके योग्य हैं उन सबोंके साथ स्पर्श करनेमेंभी आचमन करना इससे यह (तैः) बहुवचनका निर्देश है इससे विरोध नहीं-वे स्नानके योग्य अन्य स्मृतियोंसे समझने-पाएंगे जैसे कहा है कि दुष्ट स्वप्न के देखनेमें-मैथुन-वमन विरेचन और क्षौर कर्मके करानेमें तथा चिति-(चिता) यूप (प्रेतकास्तंभ) और श्मशान इनमें स्थित मनुष्यके साथ स्पर्श करनेमें स्नान करै-सोई मनु (अ० ५ श्लो० १४४)ने कहा है[1] कि वमन-और रेचन जिसने किया हो वह मनुष्य स्नान करके घीको खाय-और अन्नको खाकर आचमन करे तथा जिसने मैथुन किया हो वह स्नान करै-मैथुन करने वालेको स्नान ऋतुकालके विषयमें है-क्योंकि यह बृहस्पतिकी स्मृतिहै[2] कि ऋतुसे भिन्न-समयमें गमन करनेवालेको मूत्र विष्ठाके समान शौच करना-अनृतु (ऋतुसे भिन्न) मेंभी काल विशेषसे स्नान स्मृत्यन्तरमें कहा है[3] कि अष्टमी चतुर्दशी दिन और पर्व इनमें मैथुन करके सचैल स्नान करै वारुणी ऋचा ओंसे मार्जन करै सोई यमने कहाहै[4] किअजीर्ण-अभ्युदय-वमन-इनमें सूर्यकेअस्त होनेकेसमय खोटे स्वप्नके देखनेमें-दुर्जनकेसाथ स्पर्शकरनेमें स्नानमात्रको करै-तिसीप्रकार बृहस्पतिनेभी कहा है[5] कि-मैथुन-और कट (चिता)के धूआंके लगनेमें सद्यः स्नान करै सो यह स्नानमात्रका विधान जो वस्त्र न पहिनेहो ऐसे मनुष्यकेसाथ स्पर्शके विषयमें है-और सचैल चितिस्थ आदिके साथ स्पर्श होजानेमेंतो सचैलही स्नानका विधान है-सोही च्यवनेने कहा है[2] कि-श्वान-चाण्डाल-चिताका धूम्र ब्राह्मणआदिके दानके लिए जो द्रव्य है उससे जीवे-ग्रामयाजी-सोमविक्रयी-यूपचिति (प्रेतके स्तंभका चबूतरा) चिताका काष्ठ-मदिरा-मदिराका पात्र-स्नेहयुक्त मनुष्यका अस्थि-मुर्देसे भिड़ाहुआ-रजस्वला-महापातकी- (कलंकी आदि) और शव (मुर्दा) इनको छूकर वस्त्रोंसहित जलमें गोता लगावे फिर निकलकर अग्निका स्पर्श करके आठवार गायत्री जपे-घीको खाकर फिर स्नानको करकर तीनवार-आचमन करै-यह प्रायश्चित्त जानकर स्पर्शके विषयमें है-अज्ञानसेतो स्नान मात्रसे शुद्धि होजाती है-क्योंकि बृहस्पतिकी स्मृति है[3] कि शवसे स्पर्श कियाहुआ दिवाकीर्ति (दिनका आशौची) चिति-यूप-और रजस्वला-इनको विनाजाने छूकर स्नानसे ब्राह्मण शुद्ध होता है-इसीप्रकार वक्ष्यमाण वचनोंमेंभी विषयोंकी समानता

---

१ दुःस्वप्ने मैथुने वान्ते विरिक्ते क्षुरकर्मणि। चितियूपश्मशानस्थस्पर्शने स्नानमाचरेत्।

२ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत्। आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्।

३ अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत्।

४ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम्। कृत्वा सचैलं स्नात्वा च वारुणीभिश्च मार्जयेत्।

५ अजीर्णेऽभ्युदिते वान्ते तथाप्यस्तमिते रवौ। दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते॥

---

१ मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते।

२ श्वानं श्वपाकं प्रेतधूमं देवद्रव्योपजीविनं ग्रामयाजिनं सोमविक्रयिणं यूपचितिं चितिकाष्ठं मद्यं मद्यभाण्डं सस्नेहं मानुषास्थि शवस्पृष्टं रजस्वलां महापातकिनं शवं स्पृष्ट्वा सचैलमभ्यवगाह्योत्तीर्याग्निमुपस्पृश्य गायत्रीमष्टवारं जपेत् घृतं प्राश्य पुनः स्नात्वा त्रिराचामेत्।

३ शवस्पृष्टं दिवाकीर्तिं चितिं यूपं रजस्वलाम्। स्पृष्ट्वा त्वकामतो विप्रः स्नानं कृत्वा विशुध्यति।

समझनी—सोई कश्यपने कहा है कि उदय और सूर्यास्तके समय वीर्यस्खलन करके अक्षिस्पंदन (आंख फेरना) कर्णाक्रोशन—(कानमें शब्द करना) चित्यारोहण (चितापर चढना) और यूप (प्रेतका स्तंभ) के स्पर्श करनेमें सचैलस्नानको करके—पुनर्माम इत्यादि ऋचाको जपे फिर—महाव्याहृति (ॐभूः स्वाहा इत्यादि) योंसे सात घीकी आहुतियोंसे होम करे—सोई स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि देवलकको छूकर वस्त्रोंसहित जलमें कूदे—देवलक वो होता है जो तीनवर्ष धनके निमित्त देवताकी पूजामें तत्पर रहै वह सब देवकर्म और पितृकर्ममें निंदित है—तैसेही ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि शैव—पाशुपत—लोकायतिक—तथा नास्तिक—विरुद्धकर्मके करनेवाले द्विज—और शूद्र इनको छूकर सचेल जलमें प्रवेश करे शूद्र—के स्पर्शमें निषेधविधायक यहभी प्रमाण है कि शूद्रके स्पर्शसे दूषित हुई शवरूपी आ—हुति स्वर्गदायक नहीं होती—तिसीप्रकार अंगिरानेभी कहा है कि—जो ब्राह्मण चाण्डा—लकी छायामें बैठे तो स्नान और घृतप्राशनसे शुद्ध होता है—व्याघ्रपादनेभी कहा है कि चाण्डाल और पतित इनको दूरसेही वर्जे दे—और गौके चवरके पवन लगनेसे पहिले वस्त्रोंसहित जलमें प्रवेश करे—अर्थात् गौके वालोंका स्पर्श होजायतो उनसेही शुद्धि हो सकती है—यहभी अत्यंत संकटमें समझना अन्यत्रतो बृहस्पतिने कहा है कि चांडा—ल— सूतिका—उदक्या—पतित—इनके स्पर्शमें एक—दो—तीन—चार—युगोंतक क्रमसे नरक होता है—तिसीप्रकार पठीनसिनेभी कहा है कि काक और उलूके स्पर्श करनेमें सचेल स्नान और जलकेविना मूत्र और पुरीषके करनेमें सचैल स्नान और महाव्याहृतियोंसे होम करे—विनाजलके मूत्र आदि करना यह वचन जो मनुष्य चिर (बहुत) कालतक मूत्र वा दिशा जाकर आशौच न करे उसके विषयमें है—अंगिरानेभी कहा है कि उलू—काक—बिलाव—गधा—ऊंट—कुत्ता—और सू—कर—और अमेध्य द्रव्यको छूकर. सचैल जलके बीचमें प्रवेश करे मार्जारके स्पर्शका स्नान उच्छिष्टके समय—वा अनुष्ठानके सम—यके विषयमें समझना—क्योंकि वह घरमें बेरोक फिरता रहता है—अन्यसमयके विषे तो इस वचनसे स्नानका अभावही है कि मार्जार—कडछी—और पवन ये सदा शुद्ध रहते हैं—कुत्ताके स्पर्शमें नाभि (टूंडी) से ऊपर यदि स्पर्श होयतो स्नान समझना—यदि नाभिसे नीचे स्पर्श करलेतो जल छिडकनेसे शुद्ध होजाता है—क्योंकि उसीने कहा है कि नाभिसे ऊपर यदि हाथोंसे अतिरिक्त

१ उदयास्तमययोः स्कन्दित्वा अक्षिस्पन्दने कर्णाक्रोशने चित्यारोहणे यूपस्पर्शने च सचैलं स्नानं पुनर्माम इति जपेत् महाव्याहृतिभिः सप्ताज्याहुतीर्जुहुयात् । स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत् । देवार्चनपरो विप्रो वित्तार्थं वत्सरत्रयं । असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ।

२ शैवान् पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान् । विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत् ।

३ अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता ।

४ यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणो ह्यधिरोहति । तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ।

५ चाण्डालं पतितं चैव दूरतः परिवर्जयेत् । गोवालव्यजनादर्वाक् सवासा जलमाविशेत् ॥

१ युगं च द्वियुगं चैव त्रियुगं च चतुर्युगं । चाण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात् ।

२ काकोलूकस्पर्शने सचैलं स्नानमनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलं स्नानं महाव्याहृतिहोमश्च ।

३ भासवायसमार्जारखरोष्ट्रं च श्वशूकरान् । अमेध्यानि च संस्पृश्य सचैलं जलमाविशेत् ।

४ मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदाशुचिः ।

हड्डीके स्पर्शमें तो विष्णुने कहा है कि जो भक्ष्य नही है ऐसे पांच नखवाले मरे जीवको वा उसकी स्नेहसहित हड्डीको छूकर स्नान करे और पहिले वस्त्रोंको धोकर पहरे—इसी प्रकार अन्यभी स्नानार्ह स्मृत्यन्तरसे समझने—इस प्रकार स्नानार्होंके बहुत होनेसे उनके अभिप्रायसे जो (तैः) यह वचन श्लोकमे लिखा है उसमें विरोध नहीं है— (उदक्याशुचिभिः स्नायात्) यह वचन चाण्डाल आदि अचेतनव्यवधान (शवका साक्षात स्पर्श नहो)के स्पर्शमें समझना चेतन व्यवधानमें तो मनु (अ० ५ श्लो० ८५)ने यह कहा है कि दिवाकीर्ति—रजस्वला पतित—मुर्दा—इनको वा उनके छूनेवालेको छूकर स्नानसे शुद्ध होता है तृतीय (चाण्डालसे भिडेहुए मनुष्यका जो स्पर्श करे उसको छूनेवाला)की आचमन मात्रसे ही शुद्धि होती है क्योंकि संवर्तका वचन है कि पतित आदिसे भिडेहुएकाही जो स्पर्श करे उसकोही स्नान फिर आचमन—और द्रव्योंका प्रोक्षण (छिडकना) इनकी विधि है—यह अज्ञान पूर्वक स्पर्शके विषयमें है और जो जानके छूवे तो स्नानही करना जैसे कि गौतमनें कहा है कि पतित—चांडाल—सूतिका रजस्वला—शव—इनके स्पर्श करनेवाला—और इनसे स्पृष्टका स्पर्श करनेवाला मनुष्य सचैल जलमें स्नानसे शुद्ध होता है—और चौथे मनुष्यकी तो आचमनसे शुद्धि है—क्यों-कि देवलको वचन है कि अशुद्धसे स्पर्श किये हुये तीसरे मनुष्यका स्पर्श करके मनुष्य जलसे हाथ पाओंको धोकर आचमनसे शुद्ध होता है—अशुद्धके साथ जो रजस्वला आदि स्पर्श करे तो उसमें विशेष देवलने कहा है कि चाण्डाल—पतित—व्यंग (जिसका अंग बिगडगयाहो) उन्मत्त—शवके लेजानेवाला—सूतिका—जिसके सन्तति हुई हो वह साविका—रजस्वला—ग्रामके कुत्ता—मुर्गा—शूकर इनको छूकर मनुष्य वस्त्रोंसहित शिरतक स्नान करनेसे उसी समय शुद्ध होजाता है—और स्वयं अपि अशुद्ध मनुष्य इन अशुद्धों का यदि स्पर्श करे तो उपवास वा कृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है—यहां कृच्छ्रव्रत श्वपाक आदिके स्पर्शमें है—और कुत्ता आदिसे स्पर्श करे तो उपवासही करना—यह व्यवस्था है ॥

भावार्थ—रजस्वला और अशुद्ध पतित आदिसे स्पर्श करे तो स्नान और स्पर्श किए हुएको जो छूवे वह आचमन—आपोहिष्ठा इत्यादि ऋचा—और मनसे एकवार गायत्रीका जप करे ॥ ३० ॥

कालोऽग्निःकर्ममृद्वायुर्मनोज्ञानंतपोजलम् ।
पश्चात्तापोनिराहारःसर्वेमीशुद्धिहेतवः ३१

पद—कालः १ अग्निः १ कर्म १ मृत् १ वायुः १ मनः १ ज्ञानं १ तपः १ बलं १ पश्चात्तापः १ निराहारः १ सर्वे १ अमी १ शुद्धिहेतवः १ ॥

---

१ दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा। शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति।

२ तमेव तु स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते। ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा।

३ पतितचाण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलमुदकोपस्पर्शनाच्छुद्ध्येत् ।

१ उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं तृतीयं वापि मानवः। हस्तौ पादौ च तोयेन प्रक्षाल्याचम्य शुध्यति।

२ श्वपाकं पतितं व्यंगमुन्मत्तं शवहारकं। सूतिकां साविकां नारीं रजसा च परिप्लुताम्। श्वकुक्कुटवराहांश्च ग्रामान् संस्पृश्य मानवः। सचैलः सशिराः स्नात्वा तदानीमेव शुध्यति । अशुद्धान् स्वयमप्येतानशुद्धस्तु यदि स्पृशेत् । विशुद्ध्यत्युपवासेन तथा कृच्छ्रेण वा पुनः ।

योजना-कालः अग्निः कर्ममृत् वायुः मनः ज्ञानं तपः बलं पश्चात्तापः निराहारः अमी सर्वे शुद्धिहेतवो भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-जैसे ये सब अग्नि आदि अपने विषयमे शुद्धिके कारण हैं तिसी प्रकार दशरात्र आदि आशौचकालभी शुद्धिका हेतु है-शुद्धिकी कारणता शास्त्रसे जानी जाती है इससे उसीको दिखाते हैं-अग्नि जिस प्रकार शुद्धिका हेतु है वह पुनः पाकान्महीमयं अर्थात् मट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्ध हो ताहै इत्यादि पूर्व कह आए कर्म जैसे शुद्धिका हेतु है वह अश्वमेधावभृतस्नानात् अर्थात् अश्वमेधके यज्ञांतस्नानसे शुद्ध होता है इत्यादिसे कहेंगे मट्टीकोभी शुद्धिमें कारण इत्यादि वचन दिखाय आये कि शुद्धिके लिए भस्म और मट्टी इनसे मांजकर जलसे धोवे-वायु जैसे शुद्धिका हेतु है वहभी मारुतेनैव शुध्यन्ति अर्थात् पवनसेही शुद्ध होते हैं इत्यादि वचनसे पूर्व कह आए-मनभी वाणीकी शुद्धिमें जिस प्रकार हेतु है वहभी मनसा वा इषिता वाग्वदति इत्यादिसे कह आए-आध्यात्मिक ज्ञान जैसे बुद्धिकी शुद्धिमें आदिकारण है वह क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञान त् इत्यादि वचनसे आगे कहेंगे- कृच्छ्र आदि तप जैसे हेतु है वहभी प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समोवा गुरुतल्पग इत्यादि वचनसे आगे दिखावेंगे-जैसे जलभी शरीर आदिकी शुद्धिमें हेतु है वहभी वर्ष्मणो जलं इत्यादिसे दिखावेंगे-पश्चात्ताप जैसे शुद्धिका हेतु है वह ख्यापनेनानुतापेन अर्थात् पापके प्रकट करनेसे और पश्चात्तापसे शुद्ध होता है इत्यादिसे कह आए-निराहार जैसे शुद्धिका कारण है वह आगे तीनरात्र उपवास करके जपकरै इत्यादिसे कहेंगे ॥

१ सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये।

भावार्थ-काल-अग्नि-कर्म-मट्टी-पवन-मन-ज्ञान-तप-जल-पश्चात्ताप निराहार-ये सब शुद्धिमे कारण होते हैं ॥ ३१ ॥

अकार्यकारिणांदानंवेगोनद्याश्चशुद्धिकृत् ।
शोध्यस्यमृच्चतोयंचसंन्यासोवैद्विजन्मनाम् ॥

पद-अकार्यकारिणां ६ दानं १ वेगः १ नद्याः ६ च०-शुद्धिकृत् १ शोध्यस्य ६ मृत् १ च०-तोयं १ च०-संन्यासः १ वै०-द्विजन्मनां ६ ॥

तपोवेदविदांक्षांतिर्विदुषांवर्ष्मणोजलम् ।
जपःप्रच्छन्नपापानांमनसःसत्यमुच्यते ॥ ३३

पद-तपः १ वेदविदां ६ क्षांतिः १ विदुषां ६ वर्ष्मणः ६ जलं १ जपः १ प्रच्छन्नपापानां ६ मनसः ६ सत्यम् १ उच्यते क्रि-॥

भूतात्मनस्तपोविद्येबुद्धेर्ज्ञानंविशोधनम् ।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिःपरमामता ३४॥

पद-भूतात्मनः ६ तपोविद्ये १ बुद्धेः ६ ज्ञानं १ विशोधनं १ क्षेत्रज्ञस्य ६ ईश्वरज्ञानात् ५ विशुद्धिः १ परमा १ मता १ ॥

योजना-अकार्यकारिणां-दानं-नद्याः वेगः-चपुनः शोध्यस्य मृत्-तोयं वै इति निश्चयेन द्विजन्मनां संन्यासः शुद्धिकृत्-तथा-वेदविदांतपः-विदुषां क्षान्तिः वर्ष्मणः जलं- प्रच्छन्नपापानां जपः-मनसः सत्यं शुद्धिकृत् उच्यते ॥ भूतात्मनः तपोविद्ये विशोधने स्तः-बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनं भवति-क्षेत्रज्ञस्य (जीवस्य) ईश्वरज्ञानात् परमा विशुद्धिः मता ॥

तात्पर्यार्थ-अकार्यकारी अर्थात् निषिद्धके सेवन करनेवाले मनुष्योंका दानही मुख्य शुद्धिका हेतु है जैसे कि पात्रको पूर्ण धन देकर कहेंगे इत्यादिसे आगे ग्रीष्म आदि ऋतुमें अल्प जलके होनेसे जिसके तीरपर

अमेध्य वस्तुका संसर्ग होगयाहो ऐसी नदीका वेग अर्थात् कूलको तोडनेवाला जो जलका प्रवाह है वह शुद्धिका हेतु है-शोध्य द्रव्यका मट्टी और जल शुद्धि करनेवाला है जैसे कि यह कहा है अमेध्यसे संसृष्ट द्रव्यकी मट्टी और जलसे जब उसकी गंध निकलजाय तब शुद्धि होती है-संन्यास द्विजोंके मानसकर्मका शुद्धि करनेवाला है-तप अर्थात् वेदाभ्यास वेदके-ज्ञाताओंका शुद्ध करनेवाला है-कृच्छ्र आदि सबकी शुद्धिमें कारण है केवल वेदके जाननेवालोंकी नहीं-वेदके अर्थके जाननेवालोंकी क्षमा शोधकहै-चर्म अर्थात् शरीरका जलशोधक है-जिनोंनें अपने पापको प्रकट नहींकिया है ऐसे प्रच्छन्न पापोंका अघमर्षण आदि सूक्तका जप शुद्धिका साधन है-सत् (श्रेष्ठ) असत् (दुष्ट) कर्मोंका संकल्परूप जो मन है वह असत् संकल्पके करनेसे अशुद्ध होजाता है उसका सत्य अर्थात् सत्य संकल्पही शुद्धिका हेतु है-भूत शब्दसें यहां उसके विकार देह इंद्रियोंका संबंध लेते हैं-उस देह और इंद्रियोंसे संबंध करके जो यह आत्मा इस अभिमानसे वर्तता है कि मैं स्थूलहूं-मैं कृशहूं-मैं काणाहूं-मैं बधिरहूं-अर्थात् उन स्थूल कृश आदि शरीर और इंद्रियोंके धर्मोंको अपने धर्म मानता है वह भूतात्मा (जीव) तप और विद्या (ज्ञान)से शुद्ध होता है-यहां तपशब्दसे-अनेक जन्मोंमें अथवा एक जन्ममें जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओंमें आत्माका तो अन्वय-(होना) और शरीर आदिका-व्यतिरेक (न होना) वह कहते हैं जैसे तपसे ब्रह्मके जाननेकी इच्छाकर इस पंचकोशसे भिन्न आत्माके बोधकवाक्यमें पूर्वोक्त,आत्माका अन्वय व्यतिरेक, लेते हैं-विद्याशब्दसे त्वंपदार्थका निरूपण है विषय जिसका ऐसे उपनिषद्के वाक्यसे उत्पन्न हुआ जो-यह आत्मा न स्थूल है न सूक्ष्म है-न ह्रस्व है-न किसीसे संबंध रखता है-इस प्रकारका ज्ञान वह लेते हैं-इन दोनोंसे इस शरीरकी शुद्धि होती है शरीर आदिकी व्यतिरेक बुद्धि जो संशयविपर्ययरूप होनेसे अशुद्ध हुई उसका प्रमाणरूप ज्ञान शुद्धिका कारण है-तप और विद्यासे शुद्ध हुआ त्वं इस पदका अर्थरूप जो क्षेत्रज्ञ है उसकी तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यसे उत्पन्न हुआ समानाकाररूप ईश्वरका ज्ञान (जीवब्रह्मका अभेद ज्ञान) उससे मुक्तिरूप अत्युत्तम आत्माकी शुद्धि होती है-भूतात्मा आदिकी शुद्धिका अभिधान इसप्रशंसाके लिए किया है कि जैसे यह शुद्धि परमपुरुषार्थ रूप है इसी प्रकार कालशुद्धिभी अत्यंत युक्त है ॥

भावार्थ-निषिद्धसेवियोंका दान-नदीका वेग-शोध्यके मट्टी और जल-द्विजोंका संन्यास-वेदविदोंका तप-विद्वानोंकी क्षान्ति-शरीरका जल-प्रच्छन्न पापोंका जप-मनका सत्य-भूतात्माका तप-और विद्या-बुद्धिका ज्ञान-और क्षेत्रज्ञका ईश्वरज्ञान-परमशुद्धिका कारण हैं॥३२॥३३॥३४ ॥

१ अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गंधापकर्षणात् ।

१ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ।

इत्याशौचप्रकरणम् ॥ १ ॥

अथापद्धर्मप्रकरणम् २

क्षात्रेणकर्मणाजीवेद्विशांवाप्यापदिद्विजः ।
निस्तीर्यतामथात्मानंपावयित्वान्यसेत्पथि॥

पद-क्षात्रेण ३ कर्मणा ३ जीवेत् क्रि- विशां ६ वा-अपि-आपदि ७ द्विजः १ निस्तीर्य-तां २ अथ-आत्मानं २ पावयित्वा- न्यसेत् क्रि- पथि ७ ॥

योजना-द्विजः आपदि अपि क्षात्रेण वा विशां कर्मणा जीवेत्-अथ तां निस्तीर्य आत्मानं पावयित्वा पथि न्यसेत् ॥

तात्पर्यार्थ-मुख्य आशौचोंके कल्पोंका अनुष्ठान न होसके तो आपत्तिकालमें सद्यःशौच होता है इत्यादि वचनसे सद्यःशौच आदि कल्पको पूर्व दिखाया अब उसके प्रसंगसे यह कहते हैं कि आपत्तिकालमें प्रतिग्रहोऽधिकोविप्रे याजनाध्यापने तथा इत्यादि वचनसे कहीहुई मुख्यवृत्ति न होसकै अन्यवृत्तिसे आजीवन करे ॥

द्विज अर्थात् विप्र बहुत कुटुम्ब होनेसे अपनीवृत्तिसे जो आजीवन करनेको न समर्थ होय तो क्षत्रिय संबंधी जो शस्त्र धारण आदि कर्म हैं उनसे आपत्तिकालमें जीवै-और उस कर्मसेभी जो जीवनेको न समर्थ होय तो वैश्यके वाणिज्य आदि कर्मसे जीवे-परंतु शूद्रकी वृत्तिसे आजीवन न करे-सोई मनु (अ० १० श्लो० ८२) ने कहा है कि यदि दोनों वृत्तियोंसे न जी सके तो कैसे करे इस अपेक्षासे कहा है कि कृषि वा गोरक्षा रूपी कर्मको करके वैश्यकी वृत्तिसे जीवे- तिसी प्रकार-आपत्तिकालमेंभी हीन वर्ण ब्राह्मणकी वृत्तिको कदाचित् स्वीकार न करे-किंतु ब्राह्मण क्षत्रियवृत्ति क्षत्रिय वैश्य वृत्ति और वैश्य शूद्रवृत्तिको इन अपने वर्णसे अनन्तर हीन वर्णकी वृत्तिकोही स्वीकार करे-क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि अपने धर्मसे न जीतेहुए ब्राह्मण आदि अनन्तर हीनवर्णकी वृत्तिसे जीवन करे अपनेसे उत्तम जातिकी वृत्तिसे कदाचित् भी न जीवे यहां ज्यायसी वृत्तिसे ब्राह्मणकी वृत्ति लेते हैं-सोई स्मृत्यन्तरमें लिखाहै कि शूद्रको उत्कृष्ट अर्थात् ब्राह्मण कर्मसे और ब्राह्मणको अपकृष्ट अर्थात् शूद्रके कर्मसे आजीवन न करना अन्य क्षत्रिय और वैश्यके कर्म आपत्ति कालमें सब वर्णोंको साधारण हैं- शूद्र आपत्ति कालमें वैश्यकी वृत्ति-अथवा शिल्पकर्म (कारीगरी)से जीवै-क्योंकि यह पूर्व कह आये हैं शूद्र द्विजोंकी शुश्रूषा (सेवा) करे यदि उससे न जीसके तो, द्विजातियोंके हितको करताहुआ वैश्यकर्म वा अनेक प्रकारकी कारीगरीसे जीवे- मनु (अ० १० श्लो० १००) ने यहां विशेष दिखाया है कि जिन किएहुए कर्मोंसे द्विजातियोंकी शुश्रूषा होती है उन कारुकर्म और शिल्प कर्मोंको शूद्र करे-इसी प्रकार अनुलोमोंसे जो उत्पन्नभए हैं वेभी अपनी जातिसे अनंतर वर्णकी वृत्तिसे जीवै यहभी समझना-इस प्रकार अनन्तर हीन वर्णकी वृत्तिसे आपत्तिको व्यतीत करके फिर प्रायश्चित्त करनेसे आत्माको पवित्र करे और पथि अर्थात् अपनीवृत्तिमें स्थापन करे- अथवा-पथि न्यसेत् इस वाक्यका यह अर्थ है कि निंदित वृत्तिसे इकट्ठे किए धनको

१ उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथंस्यादितिचेद्भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ।

१ अजीवन्तः स्वधर्मेणानन्तरां पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन् न कदाचिज्ज्यायसीम् ।

२ उत्कृष्ट वापकृष्टं वा तयोः कर्म न विद्यते। मध्यमे कर्मणी हित्वा सर्वसाधारणे हिते ।

३ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः। तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ।

त्यागदे–सोई मनु (अ० १० श्लो० १११) ने कहा है कि याजन और अध्यापनसे किए पापको जप और होमसे और प्रतिग्रहसे किए पापको त्याग वा तपसे दूर करै॥

भावार्थ–द्विज आपत्तिकालमें क्षत्रिय वा वैश्यके कर्मसे जीवै–फिर उस आपत्तिको व्यतीत करके प्रायश्चित्तसे आत्मको पवित्र करै और अपने धर्म मार्गमें स्थापित करै३५॥

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः।
तिलौदनरसक्षारान्दधिक्षीरंघृतंजलम्॥३६॥

पद–फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः२ तिलौदनरसक्षारान् २ दधि २ क्षीरं २ घृतं २ जलं २ ॥

शस्त्रासवमधूच्छिष्टंमधुलाक्षांचबर्हिषः॥
मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः॥३७॥

पद–शस्त्रासवमधूच्छिष्टं २ मधु २ लाक्षां २ च ऽ– बर्हिषः २ मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः २ ॥

कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान्।
शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगंधांस्तथैवच ३८

पद–कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान् २ शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगंधान् २ तथाऽ– एवऽ– चऽ–

योजना–फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः तिलौदनरसक्षारान् दधि क्षीरं घृतं जलं–शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधु लाक्षां चपुनः बर्हिषःमृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान्शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगंधान्–द्विजो न विक्रीणीत॥

तात्पर्यार्थ–यहां फल शब्दसे बदर(बेर) और इंगुदके (गोंदी) फलोंको छोड कर अन्य कदलीफल (केलाकी गैर) आदि लेते हैं–जैसेकी नारदने कहा है कि अपने–आप वृक्षसे शीर्ण (झडे)हुए पत्ते–और फलोंमें बेर और इंगुद (गोंदी) रस्सी और जो विकृत न हुआ हो ऐसा कपासका सूत्र इनको बेचै–उपल शब्दसे माणिक्य (मुंगेर) आदि सब पत्थर लेते हैं–क्षौम–अर्थात् भेडकी उनका वस्त्र क्षौम ग्रहण सब तांतव आदिका उपलक्षण है–जैसे कि मनु (अ० १० श्लो० ८७) ने कहा है कि रंगेहुए सब तांतव (वस्त्र) और शण क्षुमा (भेडकी ऊन) और बकरीकी ऊनके विनारंगे वस्त्र तथा मूल–फल–और औषधि इनको न बेचै–सोम–मनुष्य पदसे सामान्य स्त्री पुरुष नपुंसक लेतेहैं–अपूप शब्दसे मण्डक (मांड) आदि सब भक्ष्य पदार्थ–वीरुध अर्थात् बेत अमृतलता–तिल–ओदन शब्दसे संपूर्ण भोज्य पदार्थ समझने–गुड–ईखकारस––शर्करा आदि रस–तैसेंही मनु (अ० १० श्लो०८८) ने लिखाहै कि क्षीर सहत–दही–घी–तेल–मधु–गुड–कुशा–इनको न बेचै–यवक्षार (जवाखार) आदि क्षार–दधि क्षीरका ग्रहण–दही दूधके विकार जो मस्तु (मथा–दही) पिण्डकिलाट (नोनी) और कूर्चिका (लपसी) आदि है उन सबका उपलक्षण है–जैसे कि गौतम ने कहा है कि दूध और उसके विकारोंको न बेचै–घृत–शब्द तेल आदि सब स्नेहोंको उपलक्षण है–जल–खड्ग आदि शस्त्र–आसव अर्थात्

१ जप होमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतं। प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव तु।

१ स्वयं शीर्णानि पर्णानि फलानां बदरेंगुदे। रज्जुः कार्पासिकं सूत्रं तच्चेदविकृतं भवेत्।

२ सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च। अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः।

३ क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान्।

४ क्षीरं सविकारम्।

सब प्रकारकी मद्य-मधूच्छिष्ट (मोम) मधु (सहत) लाक्षा (लाख) बर्हि (कुशा)-मट्टीचर्म (मृगचर्म) पुष्प-बकरीकी लोमका कम्बल-कुप्या-चमरि-गौ आदिके बाल-तक्र (मठा) विष (शंखे आदि) क्षिति शब्दसे भूमि लेते हैं-जैसे कि सुमंतुने कहा कि भूमि-धान-जौ-बकरी-भेड-घोडा-बैल-धेनु-और अनड्वान इनको न बेचे कोई ऐसे कहते हैं-कि क्षौम (रेशमी वस्त्र) नील-लवण शब्दसे विड-सौवर्चल-सैन्धव-सामुद्र-सोमक-और कृत्रिम-ये सबतरहके नोन लेते हैं-मांस-एक शफ (घोडा आदि)-सीस शब्दसे सब प्रकारके लोहे समझने-सब शाक-औषधि जो फलके पकनेतक रहती हैं वे गेहू जो आदि-इसमें आर्द्रौषधि इस विशेष के कहनेसे शुष्क औषधियोंमें दोष नहीं-पिण्याक पशुशब्दसे वनके पशु लेते हैं क्योंकि मनु (अ० १०-श्लो० ८९)नें कहा है कि वनके पशु-डाढवाले जीव-और पक्षी-इनको न बेचे-चन्दन कस्तूरी आदि गंध-इन सब पदार्थोंको वैश्य वृत्तिसे जीता-हुआ ब्राह्मण कदाचितभी न बेचै-क्षत्रिय आदिको तो इनके बेचनेमें दोष नहीं-इसी से नारदनें इस वचनमें ब्राह्मण पदका ग्रहणकियाहै कि वैश्यवृत्तिमें ब्राह्मण दूध दहीको न बेचै ॥

भावार्थ-फल-पत्थर-कंबल-सोम-मनुष्य-अपूप-वीरुध-तिल-भात-रस-यवक्षार-दही-दूध-घी-जल-शस्त्र-मदिरा-मधूच्छिष्ट-सहत-लाख-कुशा-मरी-मृगचर्म-फूल-कुप्या-बाल-मठा-पृथ्वी-रेशमीवस्त्र-नील-नोन-मांस-घोडा आदि एक खुर वाले-सीसा-शाक-गीलिऔषधि-पिण्याक-पशू-और गन्ध-इनको ब्राह्मण न बेचे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वैश्यवृत्त्यापिजिवन्नोविक्रीणीतकदाचन ॥
धर्मार्थविक्रयंनेयास्तिलाधान्येनतत्समाः ॥

पद-वैश्यवृत्त्या३ अपि॰- जीवन् १ नो॰-विक्रीणीत क्रि- कदाचन॰- धर्मार्थ २ विक्रयं २ नेयाः १ तिलाः १ धान्येन ३ तत्समाः १ ॥

योजना-वैश्यवृत्त्या अपि जीवन् ब्राह्मणः कदाचित् इमान् नो विक्रीणीत-धर्मार्थ तिलाः धान्येन तत्समाः विक्रयं नेयाः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि पाकयज्ञ आदि आवश्यक कर्म- उसके साधनभूत ब्रीहि आदि धान्यके विना न होसके तो-धान्यसे तिलोंकोसम (बराबर) करके बेचे-अर्थात् द्रोणभर नाजसे द्रोणभर तिल दे-सोई मनु-(अ० १० श्लो० ९०)नें कहा है कि किशानके कर्मको करता हुआ यथेच्छ खेतीको पैदा करके शुद्ध और जो बहुत दिनके नहीं ऐसे तिलोंको धर्मकी सिद्धि (पाकयज्ञ)के लिए बेचे-यहां धर्म ग्रहण अन्य आवश्यक भेषज (औषधि) आदिकाभी उपलक्षण है-इसीसे नारदनें कहा है कि-अशक्तिमें-भेषजके निमित्त-और यज्ञके लिए यदि तिल अवश्यही बेचनेहोंय तो धान्यसे बराबर करके बेचदे-यदि अन्यथा (अन्य कर्मके लिये) बेचे तो यह मनु (अ० १० श्लो० ९४)का कहा दोष है

१ नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके ।
२ आरण्यांश्च पशून् सर्वान् दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ।
३ वैश्यवृत्ताविक्रेय ब्राह्मणस्य पयो दधि ।

१ काममुत्पाद्य कृष्या तु स्वयमेव कृषीवलः । विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिर स्थितान् ।
२ अशक्तौ भेषजस्यार्थे यज्ञहेतोस्तथैव च । यद्यवश्य तु विक्रेयास्तिला धान्येन तत्समाः ।

कि भोजन-अभ्यञ्जन-और दान इनसे अन्यके लिए जो तिलोंको वेचता है वह उस पापसे पितरोंसहित कीड़ा होकर कुत्तेकी विष्ठामें प्राप्त होता है-सजातीयके साथ तो विनिमय (अदलाबदला) करनेमें दोष नहीं सोई मनु (अ० १० श्लो० ९४)ने कहा है कि रसोंको रसोंके साथ बदलले परन्तु रसोंसे लवणको न बदले-पक्वान्नको पक्वान्नसे-और बराबरकर करके तिलोंको धान्यसे बदलले जबकि कृतान्नं चाकृतान्नेन ऐसा पाठ है तब यह अर्थ है कि पक्व अन्नको अपक्व तण्डुल (चावल आदि) आदिसे बदलले ॥

भावार्थ-इन पूर्वोक्त फल आदिको वैश्यवृत्तिसे जीताहुआ ब्राह्मण न वेचे परन्तु धर्मके निमित्त धान्यसे बराबरके तिलोंको वेचे तो दोष नहीं ॥ ३९ ॥

लाक्षालवणमांसानिपतनीयानिविक्रये ।
पयोदधिचमद्यंचहीनवर्णकराणितु ॥४०॥

पद-लाक्षालवणमांसानि १ पतनीयानि१ विक्रये ७ पयः १ दधि १ च- मद्यं१ च- हीनवर्णकराणि १ तु- ॥

योजना-लाक्षालवणमांसानि विक्रये पतनीयानि स्युः तथा पयः दधि चपुनः मद्यं हीनवर्णकराणि स्युः ॥

तात्पर्यार्थ-लाख-नोंन-और मांस यदि इनको ब्राह्मण वेचै तो सद्यः ही सब द्विजकर्मोंसे पतित होजाता है-और दुग्धआदिको वेचैतो शूद्रकी तुल्यताको प्राप्त होता है-और इनसे भिन्न अविक्रेयवस्तुके वेचनेमें वैश्यकी तुल्यताको प्राप्त होताहै-जैसे मनु (अ०१० श्लो० ९२-९३)ने कहा है कि लाख-नोन-मांस इनके वेचनेसे शीघ्रही पतित होता है और दूधके वेचनेसे तीन दिनमें विप्र शूद्र होजाताहै-अन्य अपण्य वस्तुओंको इच्छासे वेचनेसे सातरातमें वैश्य भावको प्राप्त हो जाता है ॥

भावार्थ-लाखनोनके और मांसके वेचनेसे पतित- दही-दूध-के वेचनेसे हीन वर्णको ब्राह्मण प्राप्त होता है ॥४० ॥

आपद्गतःसंप्रगृह्णन्भुंजानोवायतस्ततः ॥
नलिप्येतैनसाविप्रोज्वलनार्कसमोहिसः४१

पद-आपद्गतः १ संप्रगृह्णन् १ भुंजानः१ वा- यतः- ततः- न- लिप्येत क्रि- एनसा ३ विप्रः १ ज्वलनार्कसमः १ हि- सः १ ॥

योजना-आपद्गतः विप्रः यतः ततः संप्रगृह्णन् वा तदन्नं भुंजानः अपि एनसा न लिप्येत-हि अतः सः ज्वलनार्कसमो भवति

तात्पर्यार्थ-जो निर्धन अत्यंत कुटुम्बके होनेसे आपत्तिकोभी प्राप्तहोकर क्षत्रिय वा वैश्यकी वृत्तिमें प्रवेश नहीं करना चाहता है और यतस्ततः दीनसे हीनपरसे प्रतिग्रह लेताहुआ वा उसके अन्नको खाताहुआ पापसे लिप्त नहीं होता-क्योंकि उस ब्राह्मणको उस आपत्ति कालमें दूषितभी प्रतिग्रह लेनेका अधिकार है इससे अग्नि और सूर्यकी समान है अर्थात् जैसे अग्नि दूषित वस्तुके संसर्गसे दूषित नहीं होती तिसी प्रकार आपत्तिकालमें दूषित प्रतिग्रहके लेनेसे ब्राह्मणभी दूषित नहीं-येही अग्निकी

१ भोजनाभ्यंजनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः। कृमिभूत्वा श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ।

२ रसा रसैर्निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः । कृतान्नं च कृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ।

१ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च । त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् । इतरेषामपण्यानां विक्रयादिह कामतः । ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं निगच्छति ।

समानता है-ऐसे कहनेसे यह बात सूचित (जाहिर) हुईकी आपत्तिको प्राप्तहुए मनुष्यको दूसरेके धर्म सेवनसे अपने धर्मका अनुष्ठान दूषितभी मुख्य (अच्छा) होताहै सोई मनु (अ० १० श्लो० ९७)ने कहाहै कि अपना विगुणभी धर्म कल्याणकारक होताहै और पराया अच्छाभी धर्म श्रेयस्कर नहीं होता क्योंकि दूसरेको धर्मके सेवनसे विप्रजातिसे पतित हो जाता है ॥

भावार्थ-आपत्तिको प्राप्तहुआ ब्राह्मण हीनजातिसे प्रतिग्रह और उसके अन्नको खाकर पापसे लिप्त नहीं होता क्योंकि वह अग्नि और सूर्यकी समान होता है ॥४१ ॥

कृषिःशिल्पंभृतिर्विद्याकुसीदंशकटंगिरिः । सेवानूपंनृपोभैक्ष्यमापत्तौजीवनानितु ४२॥

पद-कृषिः १ शिल्पं १ भृतिः १ विद्या १ कुसीदं १ शकटं १ गिरिः १ सेवानूपं १ नृपः १ भैक्ष्यं १ आपत्तौ ७ जीवनानि १ तुऽ- ॥

योजना-एतानि आपत्तौ जीवनानि भवंति कृषिः शिल्पं भृतिः विद्या कुसीदं शकटं गिरिः सेवानूपं नृपः भैक्ष्यं ॥

तात्पर्यार्थ-आपत्तौ जीवनानि इस विशेषणसे यह वचन इस बातको जनाता है कि इन कृषि आदि वृत्तियोंमें जिस वृत्तिका जिसको अनापत् कालमें प्रतिषेध लिखा है उस मनुष्यको आपत्तिकालमें उस प्रतिषिद्ध वस्तुसे आजीवन करना-जैसे कि आपत्तिकालमें ब्राह्मण और क्षत्रियको वैश्य वृत्ति जो कृषि कर्म है उसकी स्वयं करनेकी आज्ञा है-इसी प्रकार वैश्यको शिल्पआदि-सूपकरण आदि शिल्प-भृति (नोकरी)-विद्या अर्थात् नोकरहोकर पढाना-कुसीद अर्थात् व्याजके लिए द्रव्य देना-इनको स्वयं करनेकी शास्त्रकी आज्ञा है-शकट-जोकि भाडेसे दूसरेकी द्रव्यको ले जाताहै-जिसको छकडा वा गाडी कहते हैं-गिरि-अर्थात् उसके तृण वा इन्धनसे जो जीवन-सेवा अर्थात् दूसरेके चित्तके अनुसार चलना-अनूप जिसमें बहुत तृण-वृक्ष हो-और जहां थोडा जल हो ऐसा प्रदेश-तथा नृपसे याचनारूपभिक्षा- ये आपत्ति कालमें स्नातकके भी जीवन है-सोई मनु (अ. १० श्लो. ११६)ने कहा है कि विद्या-शिल्प-भृति-सेवा -गोरक्षा-दुकान-खेती-पर्वतकी वस्तु-भिक्षा-व्याज-ये दश जीवनके हेतु हैं अर्थात् इन दशसे आजीवन करे ॥

भावार्थ-कृषि-कारीगरी-नोकरी-विद्या-व्याज-छकडा-पर्वत-शुश्रूषा-अनूप-राजा-भिक्षा-ये आपत्ति कालमें जीवनके हेतु हैं ॥

बुभुक्षितस्त्र्यहंस्थित्वाधान्यमब्राह्मणाद्धरेत्। प्रतिगृह्यतदाख्येयमभियुक्तेनधर्मतः ४३॥

पद-बुभुक्षितः १ त्र्यहं २ स्थित्वाऽ-धान्यम् २ अब्राह्मणात् ५ हरेत् क्रि-प्रतिगृह्यऽ-तत्१ आख्येयं१अभियुक्तेन३धर्मतःऽ-

योजना-बुभुक्षितः १ त्र्यहं स्थित्वा अब्राह्मणात् धान्यं आहरेत् प्रतिगृह्य अभियुक्तेन धर्मतः तत्तथा आख्येयम् ॥

तात्पर्यार्थ-धान्यके अभावसे तीन रात भूखा रहकर अब्राह्मण अर्थात् शूद्रसे उसके अभावमें वैश्यसे और उसकेभी अभावमें क्षत्रियसे एकदिनतकके लिए धान्यको लावे-जैसेकि मनु (अ० ६ श्लो० ११७)ने

१ वर स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः । परधर्मोश्रयाद्विप्रः सद्यः पतति जातितः ।

१ विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः । गिरिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दशजीवनहेतवः ।

२ तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्य हीनकर्मणः ।

कहा है कि छः भक्त भोजन न करता हुआ सप्तम भक्तमें अपनेसे हीनकर्म करनेवाले से अश्वस्तन (जो कि दूसरे दिनको नर- हैं) विधि करके धान्यको लावै–अब लेनेके अनंतर यदि नाष्टिक (जिसका धन नष्टहो- ता है) स्वामी ऐसा कहैकि क्या आप मेरा- धान्य लेचले हो तो जो लिया हो उसे ध- र्मसे वृत्तांत सहित यथावत् कहदे–जैसे कि मनुने कहा है कि खल (पैर) वा खेत वा घरसे जितने धान्यको ले उसको यदि उसका स्वामी पूछे तो उससे यथावत् कहदे ॥[1]

भावार्थ–तीन दिन भूखा रहकर ब्राह्मणसे अन्य वर्णसे धान्यको लावै यदि उसको कोई पूछे तो उसे यथावत् कहदे ॥ ४३ ॥

तस्यवृत्तंकुलंशीलंश्रुतमध्ययनंतपः ।
ज्ञात्वाराजाकुटुंबंचधर्म्यांवृत्तिंप्रकल्पयेत् ॥

पद–तस्य ६ वृत्तं २ कुलं २ शीलं २ श्रुतं २ अध्ययनं २ तपः २ ज्ञात्वाऽ–राजा १ कुटुंबं २ चऽ–धर्म्यां २ वृत्तिं २ प्रकल्पयेत् क्रि– १ ॥

योजना–राजा तस्य वृत्तं कुलं शीलं श्रुतं अध्ययनं–तपः ज्ञात्वा चपुनः कुटुंबं ज्ञात्वा धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य क्षुधासे व्याकुल होकर दुखी हो उसके आचार और कुल आत्माका स्वभाव शास्त्रश्रवण अध्ययन और कृच्छ्रचांद्रायणादिव्रत इनकी परीक्षा करके राजा धर्मके अनुकूल उसकी वृत्तिकी कल्पना करे यदि न करै तो राजाको दोष होता है जैसे कि मनु (अ० ७ श्लो० १३४) ने कहा है कि जिस राजाके देशमें वेद- पाठी ब्राह्मण क्षुधासे व्याकुल रहता है उस राजाका देश दुर्भिक्ष (अकाल) और व्या- धि(विशूचिका आदि)सें सदैव पीडित रहता है[1]

भावार्थ–राजा वेदपाठी ब्राह्मणके आचार. कुल शील शास्त्र वेदाध्ययन और कुटुंबको जानकर उसकी उत्तम वृत्तिसे पालना करै ॥

[1] खलात् क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते । आ- ख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ।

[1] यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा। तस्य सीदति तद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥

इत्यापद्धर्मप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ वानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ३

सुतविन्यस्तपत्नीकस्तयावानुगतोवनम् । वानप्रस्थोब्रह्मचारीसाग्निःसोपासनोव्रजेत्॥

पद–सुतविन्यस्तपत्नीकः १ तया ३ वाऽ– अनुगतः १ वनं २ वानप्रस्थः १ ब्रह्मचारि १ साग्निः १ सोपासनः १ व्रजेत् क्रि–

योजना–सुतविन्यस्तपत्नीकः अथवा तया अनुगतः ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनः वानप्रस्थःसन् वनं व्रजेत् ॥

तात्पर्यार्थ–वनमें जो नियमसे टिके वह वानप्रस्थ अर्थात् वक्ष्यमाण वृत्तिको ग्रहण करके जो वनमें जानेकी इच्छा करे–वह वानप्रस्थ अपनी स्त्रीको तू इसका यथावत् पोषण करियो इस प्रकार पुत्रको सौंपदे–यदि वह स्त्रीभी पतिकी परिचर्याकी अभिलाषासे आपभी वनजानेकी इच्छा करतीहोय तो उसकोभी साथ लेले-और ब्रह्मचारी अर्थात् ऊर्द्धरेता होकर वैतान अग्नि और उपासनाअग्निको लेकर वनको गमन करे-स्त्रीकोतो पुत्रको सौंपदे (सुतविन्यस्तपत्नीकः) इस पदसे यह दिखायाकि गृहस्थाश्रमको जिसने भोग लियाहो उसीको वानप्रस्थका वनवास करनेका अधिकार है यह बात आश्रमोंके समुच्चयपक्षको स्वीकार करके कहीहै अन्य पक्षमेंतो जिसका ब्रह्मचर्य भ्रष्ट नहो वह जिस आश्रमकी इच्छा करे उसमें बसे इत्यादि वचनसे जो गृहस्थाश्रममें नहीआया वहभी वनवास करनेमें अधिकारी है हो–यह वनमें प्रवेश जिसका जरा अवस्थासे शरीर जर्जर होगयाहो वा जिसके पौत्र उत्पन्न होगयाहो उसको है–जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो०२) ने कहा है कि गृहस्थी जब अपने बालोंको पलित (पीले) देखे और पुत्रके पुत्रको देखले तब वनमें जाकर बसै–यह पुत्रोंको स्त्रीका सौंपना जिसकी स्त्री विद्यमान हो उसको है क्योंकि आपस्तम्ब आदिनें जिसकी स्त्री मरगई हो उसकोभी वनवास कहा है–इससे (सुतविन्यस्तपत्नीकः) इस पदसे यह संशय न करना कि जिसकी स्त्री विद्यमानहो उसकोही अधिकार मृतभार्यको नही–इससे अग्निहोत्रसे दाह करके पुनः अग्न्याधान करे इत्यादिसे जो पुनः अग्न्याधानका विधान है वह जिसके कषायोंका परिपाक न हुआ हो उसके विषय है–और श्रौत और गृह्याग्निको साथ लेकर जाय यहांभी जो अर्धाधान (श्रौत स्मार्त अग्निओंका पृथक्करण) कियाहोय तो श्रौत और गृह्य अग्निओंको साथ लेकर जाय और सर्वाधान किया होय तो केवल श्रौत अग्निओंकोही संग लेकर गमन करे–यदि किसी प्रकार ज्येष्ठ भाईको अनाहिताग्नि होनेसे जो श्रौताग्निका आधान न किया होय तो उपासन अग्निकोही लेकर गमनकरे यह बात समझनी–यह अग्निका लेजाना उसमें करनेयोग्य अग्निहोत्र आदि कर्मकी सिद्धिके लिये है–इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ९) ने कहा है कि वितान अग्निमें अग्निहोत्रको यथाविधि करे और अमावास्या पूर्णमासी और पर्व इनको शक्तिसे श्राद्धकरे–यहां कोई शंका करे कि स्त्रीको साथ लेकर होम करे इस वचनसे स्त्रीको साथ लेकरही होम करनेका अधिकार है तो फिर जिसने पुत्रको स्त्री सौंपदी है वा स्त्रीसे रहित है उस वानप्रस्थको अग्निहोत्र आदि कर्मका अनुष्ठान किस तरह वन

सकता है सो यह उस वादीकी शंका सत्यहै परन्तु यहां पुत्रपर स्त्रीको सोंफनेकी जो विधि है उससेही यह बात जानीजाती है कि वानप्रस्थको स्त्रीकेविनाभी अग्निहोत्र करनेका अधिकार है इसमें दृष्टांत है कि जैसे रजस्वला स्त्रीके विषें इस अवरोधकी विधिकेबलसे उसकी अग्निहोत्र आदिमें अपेक्षा नही कि जिस मनुष्यकी स्त्री व्रतके दिन रजस्वला होजाय तो उसका अवरोध (रोक) करके यज्ञकरै-तिसी प्रकार यहां भी समझना-अथवा कुछ विरोध नही क्योंकि वनको जातेहुये पतिको स्त्री अनुमती देती है-कदाचित् कोई फिर शंका करै कि जैसे ब्रह्मचारी और स्त्रीसे रहित वानप्रस्थको अग्निहोत्र आदि कर्मका अभाव है इसीप्रकार जिसने स्त्रीको सोंफदीहो उसको अग्निहोत्रका अभाव है सो ठीक नही क्योंकि ये अग्न्याधान अपाक्षिक रूप अर्थात् जो पुत्रकी सोंफजाय उसको और जो साथ लेजाय उसकोभी अग्निका लेजाना सामान्यसे पूर्व श्लोक (सुतविन्यस्त इत्यादि)में सुनाजाता है इससे स्त्रीको छोडकर जानेवालेको अग्निहोत्रका अभाव नहीं-इसी प्रकार ब्रह्मचारी और विधुर(स्त्री रहित)को भी अग्निसाध्य अग्निहोत्र आदि कर्मके करनेमें अधिकारका अभाव नही है-क्योंकि पांच महीनेसे पीछे जब श्रावणिक अग्निका आधान किया जाता है उसमें उनदोनोंकोभी अग्निहोत्र कर्म करनेका अधिकार इस वसिष्ठकी स्मृति से देखा जाता है कि वानप्रस्थ जटाओंको धारण करै चीर और मृगचर्मको ओढै-जिसमें हल चलै उस क्षेत्रमें निवास न करै-जो हलकर्मसे न उत्पन्नहुएहो उस पत्र और मूल फल इनको इकट्ठा करै-उर्द्धरेता रहै-पृथ्वीपर सोवै-दान दे प्रतिग्रह न ले-पांचमहीनेसे पीछे श्रावणिक अग्निका आधान करके आहिताग्नि हो उसके द्वारा पितर और मनुष्य देवता इनको मूल फलदे वह अनन्त स्वर्गको प्राप्त होता है-यहां श्रावणिकका यह अर्थ है कि वैदिक मार्गसे अग्न्याधान करै लौकिकसे नही ॥

भावार्थ-वनमें प्रस्थानकी इच्छाकरनेवाला अपनी स्त्रीको पुत्रको सोंफकर अथवा उसकरके सहित औपासन और वैतानाग्निको साथ लेकर ब्रह्मचारी होकर वनम जाय४५॥

अफालकृष्टेनाग्नींश्चपितृन्देवातिथीनपि ।
भृत्यांश्चतर्पयेत्श्मश्रुजटालोमभृदात्मवान्

पद-अफालकृष्टेन १ अग्नीन् २ चऽ-पितृन् २ देवातिथीन् २ अपिऽ- भृत्यान् २ चऽ- तर्पयेत् क्रि-श्मश्रुजटालोमभृत् १ आत्मवान् १ ॥

योजना-श्मश्रुजटालोमभृत् तथा आत्मवान् सन् वानप्रस्थः अफालकृष्टेन अग्नीन् चपुनः पितॄन् देवातिथीन् तथा भृत्यान् तर्पयेत्

तात्पर्यार्थ-फालग्रहण कर्षण (पृथ्वीकाखनन)के साधन समस्त हल आदिका उपलक्षण है-जो कर्षण न कियाजाय ऐसे क्षेत्रमें उत्पन्नहुए नीवार (समाके चावल) वेणु श्यामाक आदिसे अग्निसाध्यकर्म (अग्नि होत्र आदि)च शब्दसे भिक्षादान पितर-देवता-अतिथि-और अपिशब्दसे भृत इनकी तृप्तिको करै-और चकारसे आश्रम आएहुए भृत्योंकोभी तृप्त करै-सोई मनुने (अ० ६ श्लो० ७)कहा है कि जो भक्ष्य नी-

१ वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा न फालकृष्टमधितिष्ठेत् अकृष्ट मूलफलं संचिन्वीत ऊर्द्धरेताः क्ष्माशयो दद्यान्न प्रतिगृह्णीयादूर्ध्वं पंचभ्यो मासेभ्यः श्रावणिकेनाग्निमाधायाहिताग्निर्वृक्षमूलको दद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत् स्वर्गमानंत्यम् ।

१ यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः । अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ।

वार आदि हो उससेही बलि वैश्वदेव और शक्त्यनुसार भिक्षादान करै-और आश्रममें आएहुओंका जल-मूल-फल-इनसे सत्कार करै-इसीप्रकार पंचमहायज्ञोंको करके आपभी उससे शेष अन्नकोखाय-क्योंकि मनु (अ० ६ श्लो० १२)ने कहा है कि वनमें उत्पन्नएहु मेध्य हविसे देवताओंका-होम (बलि वैश्वदेव) करके शेष हविको आप खाय और स्वयंकृत लवणको खाय-यहां-स्वयंकृत शब्दसे ऊखर (रण)से उत्पन्नहुआ नोन लेते हे-भोजन और याग आदिमें मुनिओंके अन्नके नियमसे ग्रामके गोधूम आदिका परित्याग अर्थात् सिद्ध है-इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ३)ने कहा है कि ग्रामके सब आहार और परिच्छद (खट्टा आसनआदिको) छोडकर वनवास करै-यहां कोई यह शंकाकरै कि अमावस्या और पूर्णमासीके होम आदि तो ग्रामके व्रीहि (धान) आदिसे सिद्ध होते हैं और उसके लिए ये उपयोगी हे तो फिर इनका परित्याग कैसे कहते हो कदाचित् कोई यहां कहने लगे कि जिसमें हल न चलै ऐसे क्षेत्रमें उत्पन्नहुए अन्नसे अग्निमें होम करै इस विशेष वचन (अफालकृष्टेनाग्नींस्तर्पयेत्)की सामर्थ्यसे वानप्रस्थको अग्निमें व्रीहि आदिसे होम करनेका बाध (अभाव) है-सो ठीक नहीं क्योंकि केशादि विशेष कर्मका बोध न करनेवाला स्मृतिका वचन हो उससे श्रुति (वेद) विहित कर्मका बाध अन्याय्य है अर्थात् उचित नहीहै और वास्तवमें बाधभी नहीं हो सक्ता क्योंकि बाध तब होता है कि जब अपनें विषयमें बाधक सर्वथा चरितार्थ नहो यहां अफालकृष्टसे अग्निमें होम स्मार्त अग्निके विषयमें चरितार्थ है इससे बाधकभी नही होसक्ता-वह शंका ठीक है परन्तु व्रीहि आदि अफालकृष्ट अर्थात् विनाजोते खेतमेंभी पैदा होतेहैं इससे ग्रामके व्रीहि आदिके परित्यागमें श्रुति विरोध नहीं इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ११)ने कहा है कि वसंत और शरदऋतुमें उत्पन्नहुए मेध्य मुनि अन्नोंको स्वयं लाकर उनके पुरोडाश और चरु बनाकर पृथक् २ होम करै-यहां नीवार आदि मुनि अन्न जो स्वयं उत्पन्नहुए उनको यद्यपि स्वतः मेध्यत्व सिद्धथा तथापि फिर मेध्यशब्दका लिखना यज्ञके योग्य व्रीहि आदिकोंभी प्राप्तिकेलिए है-क्योंकि मेध्य शब्दका यह अर्थ है कि मेध नाम यज्ञ उसके जो योग्य हो उसे मेध्यकहते हैं तिसीप्रकार श्मश्रु (दाढी मूछ) जटारूप शिखा बाल और कक्ष (बगल)के बालोंको धारण करके-लोमशब्द नखोंकाभी उपलक्षण है सोई मनुनें कहा है कि जटा-श्मश्रु-लोम-नख-इनको सदा धारण करै-तिसी प्रकार आत्माकी उपासनामें तत्पररहै ॥

भावार्थ-विना जोते खेतमे पैदाहुए अन्नसे अग्नि पितर देवता अतिथि भृत्य इनको तृप्त करै-और जटा श्मश्रु लोम नख इनको सदैव धारण करै-और आत्माकी उपासनामें तत्पर रहै ॥४६॥

अह्नोमासस्यषण्णांवातथासंवत्सरस्यवा ।
अर्थस्यसंचयंकुर्यात्कृतमाश्वयुजेत्यजेत् ॥

पद-अह्नः ६ मासस्य ६ षण्णां ६ वाऽ- तथाऽ- संवत्सरस्य ६ वाऽ- अर्थस्य ६

---

१ देवताभ्यश्च तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः । शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ।

२ संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदं ।

ट्टा

संचयं २ कुर्यात् क्रि- कृतं २ आश्वयुजे ७ त्यजेत् क्रि- ॥

योजना-अह्नः मासस्य षण्णां वा मासानां तथा संवत्सरस्य उपयोगि- अर्थस्य संचयं कुर्यात् कृतं आश्वयुजे त्यजेत् ॥

ता० भा०-जिसमें एक दिनके भोजन यज्ञआदि दृष्ट अदृष्ट कर्म होजाय उतने धनका अथवा महीना वा छः महीने या वर्ष दिनके संबंधि कर्म जितनेमे होजाय उतने धनका संचय करै और इस तरह करनेपरभी यदि अधिक होजाय तो उस अधिक धनको आश्विनके महीनेमें त्यागदे ४७

दांतस्त्रिषवणस्नायीनिवृत्तश्चप्रतिग्रहात् ।
स्वाध्यायवान्दानशीलःसर्वसत्वहितेरतः ॥

पद-दान्तः १ त्रिषवणस्नायी १ निवृत्तः च- प्रतिग्रहात् ५ स्वाध्यायवान् १ दानशीलः १ सर्वसत्वहिते ७ रतः १ ॥

योजना-दान्तः त्रिषवणस्नायी तथा प्रतिग्रहात् निवृत्तः स्वाध्यायवान् दानशीलः सर्वसत्वहितेरतः स्यात् ॥

ता० भा० वानप्रस्थ सदैव-अभिमानसे रहित प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालोंमें स्नानयुक्त प्रतिग्रह और याजनसे पराङ्मुख-स्वाध्यायमें और वेदाभ्यासमें और फलमूलकी भिक्षा आदिके [illegible]न करनेमें और सम्पूर्ण प्राणियोंके हित [illegible]नेमें तत्पर रहै ॥ ४८ ॥

[illegible] ।
श्रौतंस्मार्तंफलस्नेहैःकर्मकुर्यात्तथाक्रियाः ।

पद-दन्तोलूखलिकः १ कालपक्वाशी १ वा- अश्मकुट्टकः १ श्रौतं २ स्मार्तं २ फलस्नेहैः ३ कर्म २ कुर्यात् क्रि- तथा- क्रियाः २ ॥

योजना-दन्तोलूखलिकः कालपक्वाशी-वा अश्मकुट्टकः सन् फलस्नेहैः श्रौतं स्मार्तं कर्म तथा क्रियाः कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-वह वानप्रस्थ अपने दांतोंको ही उलूखल (जिसमें कूटनेसे अन्नका तुष दूर होजाता है वह ओखली) बनावै समयपर पकेहुए समाके चावल-वेणु श्यामाक आदि अन्न और बेर इंगुद आदि फल इनके खानेका स्वभाव रखै-श्लोकमें वा शब्द अग्निमें पकेहुएको अथवा समयपर पकेहुएको खाय क्योंकि इस मनुके वाक्यमें जो अग्निमें पक्व अन्नका भोजन है वह उसीके अभिप्रायसे है-अथवा पत्थरसे कूटकर खाय तथा और श्रौतस्मार्तकर्म और जिनका-फल प्रत्यक्ष देखा जाता है वे भोजन आदि क्रिया इनको मधूक (महुआ)आदि मेध्य वृक्षोंके फलसे उत्पन्नहुये स्नेह द्रव्योंसे करै घृतआदिसे नहीं-सोई मनु (अ० ६ श्लो० १३)ने लिखा है कि मेध्यवृक्ष और फलोंसे उत्पन्नहुए स्नेहको खाय ॥

भावार्थ-दांतोंकोही जिसने ओखली बनाया है-समयपर पकेहुए द्रव्योंको खानेवाला वा पत्थरसे कुचलकर खानेवाला वानप्रस्थ फलोंके स्नेहसे श्रौत स्मार्त कर्म और भोजन आदि क्रियाको करै ॥ ४९ ॥

चांद्रायणैर्नयेत्कालंकृच्छ्रैर्वावर्तयेत्सदा ।
पक्षेगतेवाप्यश्नीयान्मासेवाहनिवागते ५० ॥

पद-चांद्रायणैः ३ नयेत् क्रि- कालं २ कृच्छ्रैः ३ वा- वर्तयेत् क्रि-सदा- पक्षे ७ गते ७ वा- अपि- अश्नीयात् क्रि- मासे ७ वा- अहनि ७ वा- गते ७ ॥

योजना-चांद्रायणैः कालं नयेत् वा सदा कृच्छ्रैः वर्तयेत्-पक्षे गते सति वा मासे

१ अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ।
२ मेध्यवृक्षोद्भवानद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ।

गतेसति अथवा अहनि गते सति अश्नीयात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो आगे कहे जांयगे उन चांद्रायण व्रतोंसे समयको व्यतीत करे अथवा कृच्छ्र वा प्राजापत्य आदि व्रतोंसे समयको वितावे-अथवा पक्ष (१५ दिन) के बीतनेपर वा महीनाके व्यतीत होनेपर अथवा दिनके व्यतीत होनेपर अर्थात् रात्रिमें भोजन करे-अपिशब्दसे चतुर्थकाल आदिमें भोजन करे-जैसे कि मनुं (अ० ६ श्लो० १९)ने कहा है कि रात्रिमें भोजन करे वा दिनके चौथेकालमें अथवा अष्टमकालमें शक्तिके अनुसार भोजन करे-इन कालोंके नियमका अपनी शक्तिकी अपेक्षासे विकल्प है ॥

भावार्थ-चांद्रायण वा कृच्छ्र प्राजापत्य आदि व्रतोंसे अपने कालको वितावे पंद्रह दिन वा महीना वा दिनके बीतनेपर भोजन करे ॥ ५० ॥

स्वप्याद्भूमौशुचीरात्रौदिवासंप्रपदैर्नयेत् ।
स्थानासनविहारैर्वायोगाभ्यासेनवातथा ॥

पद-स्वप्यात् क्रि- भूमौ ७ शुचिः १ रात्रौ ७ दिवाऽ- संप्रपदैः ३ नयेत् क्रि-स्थानासनविहारैः ३ वाऽ- योगाभ्यासेन ३ वाऽ- तथाऽ- ॥

योजना-शुचिः सन् रात्रौ भूमौ स्वप्यात्-दिवा (दिवसं) संप्रपदैः नयेत् अथवा स्थानासनविहारैः वा योगाभ्यासेन नयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-आहार और विहारके समयको छोडकर सावधानीसे रात्रिकेविषे सोवे न तो बैठे और न खडा रहै-रात्रिमे सोवे यह वचन दिनके सोनेकी निवृत्तिके लिए-नहीं है-क्योंकि दिनके सोनेका निषेध तो पुरुषमात्रकेलिए कहनेसेही सिद्धथा इससे यह वानप्रस्थको रात्रिमें बैठने और खडे होनेकी निवृत्तिकेलिए है-और भूमिमेंही सोवे अर्थात् भूमिपर न कुछ चटाई आदि बिछाकर सोवे न पलंग बिछाकर सोवे-और दिनको संप्रपद अर्थात् इधर उधर फिरकर अथवा स्थान आसनरूप विहार कि कुछ थोडीदेर खडा रहना कुछदेर बैठना इससे व्यतीत करे-अथवा योगाभ्याससे व्यतीत करे-सोई मनुं (अ० ६ श्लो० २९)ने कहा है कि ब्रह्मकी प्राप्तिके निमित्त नानाप्रकारकी उपनिषदकी श्रुतियोंको पढे उनके अर्थका अभ्यास करे-तिसीप्रकार पृथ्वीपर लोटनेसे व्यतीत करे क्योंकि मनुं (अ० ६ श्लो० २२)ने कहा है कि पृथ्वीपर लोटे वा खडा रहे अथवा पाओंके अग्रभागसे बैठा रहे ॥

भावार्थ-रात्रिमें भूमिपर प्रयत्नसे सोवे-दिनको भ्रमण खडारहने-वा बैठने-वा योगाभ्याससे व्यतीत करे ॥ ५१ ॥

ग्रीष्मेपंचाग्निमध्यस्थोवर्षासुस्थंडिलेशयः ।
आर्द्रवासास्तुहेमंतेशक्त्यावापितपश्चरेत् ॥

पद-ग्रीष्मे ७ पंचाग्निमध्यस्थः १ वर्षासु ७ स्थंडिलेशयः १ आर्द्रवासाः १ तुऽ-हेमन्ते ७ शक्त्या ३ वाऽ- अपिऽ- तपः २ चरेत् क्रि-

योजना-ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थः वर्षासु स्थण्डिलेशयः हेमन्ते आर्द्रवासाः अथवा शक्त्या तपः चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त इनके देखनेसे तीन ऋतुओंका वर्ष रोज होता है उनमें ग्रीष्म ऋतुके जो चैत्र आदि चारमास हैं उनमें चार अग्नि चारोंदिशाओंमें पांचमां ऊपर सूर्य इस पांच अग्नियोंके बीचमें बैठे-

१ [illegible] ।

१ विविधार्थोपनिषदर्थसंप्रसिद्धये श्रुतीः ।
२ भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ।

और वर्षाऋतुके जो श्रावण आदि चारमास हैं उनमें स्थण्डिल अर्थात् जिसमें वर्षाकी धाराओंके रोकनेवाला कोई आवरण न हो ऐसी भूमिपर निवास करे-और हेमन्त ऋतुके जो मार्गशीर्ष आदि चारमास हैं उनमें गीले वस्त्रोंको ओढे-यदि इस प्रकारके तपकरनेमें समर्थ न होय तो अपनी शक्तिके अनुसार तपको करे-और जिस प्रकार यह शरीर सूखे उसीप्रकार यत्न करे क्योंकि मनु (अ० ६ श्लो० २४) में लिखा है कि अत्यंत उग्र तपको करताहुआ अपने शरीरको सुखावे ॥

भावार्थ-ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निके मध्यमें बैठे वर्षा ऋतुमें स्थण्डिल पर सोवे हेमन्तऋतुमें गीले वस्त्रोंको ओढे-अथवा अपनी शक्तिके अनुसार तप करे ॥ ५२ ॥

यःकंटकैर्वितुदतिचंदनैर्यश्चलिंपति ।
अक्रुद्धोपरितुष्टश्चसमस्तस्यचतस्यच ५३॥

पद-यः १ कण्टकैः ३ वितुदति क्रि-चंदनैः ३ यः १ च-लिंपति क्रि-अक्रुद्धः १ अपरितुष्टः १ च- समः १ तस्य ६ च-तस्य ६ च- ॥

योजना-यः कण्टकैः तुदति चपुनः यः चंदनैः लिम्पति-तस्य तस्य उपरि अक्रुद्धः अपरितुष्टःसन् समो भवेत् ॥

ता०भा० जो कांटे आदिसे अपने अंगको पीडादे उसके ऊपर क्रोध न करै और जो अपने शरीरको चंदन आदिके लगानेसे सुखदे उसके ऊपर प्रसन्न न हो अर्थात् उन दोनोंके ऊपर सम (उदासीन) रहै ॥

अग्नीन्वाप्यात्मसात्कृत्वावृक्षावासोमिताशनः।[1] वानप्रस्थगृहेष्वेवयात्रार्थंभैक्ष्यमाचरेत्

पद-अग्नीन् २ वा-अपि-आत्मसात्-कृत्वा- वृक्षावासः १ मिताशनः १ वानप्रस्थगृहेषु ७ एव- यात्रार्थं २ भैक्ष्यं २ आचरेत् क्रि- ॥

योजना-अथवा अग्नीन् अपि आत्मसात् कृत्वा वृक्षावासो मिताशनः सन् वानप्रस्थगृहेषु एव यात्रार्थं भैक्ष्यं आचरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब अग्निकी परिचर्या करनेमें जो असमर्थ हो उसकेप्रति कहते हैं अग्नियोंको आत्मामें समारोप करके वृक्षकोही कुटी बनावे और थोडा भोजन करे और अपि शब्दसे फल मूल इनका भोजन करे जैसेकि मनु (अ० ६ श्लो० २५) ने कहा है कि वैतान अग्निओंका भस्मपान आदि से विधिपूर्वक आत्मामें समारोपण करके अग्नि और गृहसे रहित होकर मौन व्रतको धारणकर मूलफलोंको खाय और मूल फलभी न मिलैं तो जितनेमें प्राणोंकी धारणा हो उतनी भिक्षाको वानप्रस्थोंके गृहोंसे लावै॥

भावार्थ-अग्निओंका भस्मपान आदिसे आत्मामें आरोप करके वृक्षोंके नीचे वसे थोडा आहार करे प्राणोंकी धारणाके लिए वानप्रस्थोंके गृहोंसे भिक्षाको लावे ॥ ५४ ॥

ग्रामादाहृत्यवाग्रासानष्टौभुंजीतवाग्यतः ।
वायुभक्षःप्रागुदीचींगच्छेद्वावर्ष्मसंक्षयात् ॥

पद-ग्रामात् ५ आहृत्य-वा- ग्रासान् २ अष्टौ २ भुंजीत क्रि-वाग्यतः १ वायुभक्षः १ प्रागुदीचीं २ गच्छेत् क्रि-वा- आ-वर्ष्मसंक्षयात् ५ ॥

योजना-अथवा ग्रामात् आहृत्य वाग्यतः सन् अष्टौ ग्रासान् भुंजीत वायुभक्षः सन् आवर्ष्मसंक्षयात् प्रागुदीचीं दिशं गच्छेत्॥

---

१ तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः।

[1] अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि।अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः।

तीन आश्रमीयोंको पुण्य लोककी प्राप्ति कही है-इस प्रकार आश्रमोंका स्वरूप और उन आश्रमीयोंको पुण्य लोककी प्राप्तिको कह-कर ब्रह्ममें है निष्ठा जिस्की ऐसा आश्रमी मोक्षको प्राप्त होताहै इस वचनमें परिशेषसे ब्रह्मसंस्थ परिव्राजक (संन्यासी) को ही मुक्तिरूप अमृतत्वकी प्राप्ति कही है-सत्यवादी श्राद्धके करनेवाला गृहस्थी मोक्षको प्राप्त होता है इस वचने से जो गृहस्थीको मोक्षका प्रतिपादन कियाहै वह जिसने अन्य जन्ममें संन्यस्त धर्मको धारण किया हो उस गृहस्थीके विषयमें समझना ॥

भावार्थ-ग्रामसे भिक्षाको लाकर मौनी होकर आठग्रासोंको खाय अथवा वायुको खाताहुआ मरणपर्यंत ईशानदिशाको गमन करै ॥ ५५ ॥

१ ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ।

१ श्राद्धकृत सत्यवादी च गृहस्थोपि विमुच्यते ।

इति वानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ यतिधर्मप्रकरणम् ४

वनाद्गृहाद्वाकृत्वेष्टिंसार्ववेदसदक्षिणाम् ।
प्राजापत्यांतदंतेतानग्नीनारोप्यचात्मनि ॥

पद-वनात्५गृहात्५वा०-कृत्वा०-इष्टिं२ सार्ववेदसदक्षिणाम् २ प्राजापत्यां २ तदन्ते ७ तान् २ अग्नीन्२ आरोप्य०- च०- आत्मनि ७ ॥

अधीतवेदोजपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् ।
शक्त्याचयज्ञकृन्मोक्षेमनःकुर्यान्नुनान्यथा॥

पद-अधीतवेदः १ जपकृत् १ पुत्रवान्१ अन्नदः १ अग्निमान् १ शक्त्या ३ च०- यज्ञकृत् १ मोक्षे ७ मनः २ कुर्यात् क्रि-तु०- न०-अन्यथा०- ॥

योजना-वनात् अथवा गृहात् अनंतरं सार्ववेदसदक्षिणां प्राजापत्यां इष्टिं कृत्वा तदन्ते अग्नीन् आत्मनि समारोप्य अधीतवेदः जपकृत् अन्नदः अग्निमान् चपुनः शक्त्या यज्ञकृत् सन् मोक्षे मनः कुर्यात् अन्यथा न कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-बडे तीक्ष्ण तपके करनेसे जिसने अपने शरीरको सुखा दिया है ऐसे वानप्रस्थका जितने कालमें विषयोंका परिपाक होजाय और फिर मदसे उत्पन्न हुई आशंका (भय) न हो तबतक वनमें वसकर उसके पीछे मोक्षमें मनको लगावै-यहां वन और गृह शब्दसे उनके सम्बन्धी आश्रम (वानप्रस्थ गृहस्थ) लेते हैं और मोक्ष शब्दसे मोक्षही है मुख्य फल जिसका ऐसा चतुर्थ आश्रमलेते हैं-इस वचनके पढनेसे यह बात सूचन करीकि आश्रमोंका समुच्चयपक्ष अर्थात् चारों आश्रमोंको भोगना-जो पूर्व कहा है उसमें विकल्प है सोई जाबालकी श्रुति[1] में देखा जाता है कि ब्रह्मचर्य आश्रमको समाप्त करके गृहस्थी होय और गृहस्थको समाप्त करके वानप्रस्थ होय-और वानप्रस्थके अनंतर परिव्राजक होय-अथवा-ब्रह्मचर्यसेही संन्यासी हो अथवा गृहस्थाश्रमके बीतनेपर हो अथवा वानप्रस्थके अनन्तर हो तिसी प्रकार गृहस्थाश्रमके पीछे अन्य आश्रमका अभाव गौतमनें[2] दिखाया है कि अथवा एक गृहस्थही आश्रमको रक्खे क्योंकि गृहस्थकी विधि प्रत्यक्ष है-इन सब समुच्चय-विकल्प-और बाध पक्षोंका श्रुतिसिद्ध होनेसे अपनी इच्छासे विकल्प है अर्थात् जो ब्रह्मचर्यके अनन्तर संन्यास लेनेकी इच्छा होय तो संन्यास लेले न होय तो गृहस्थाश्रममें आजाय-इत्यादि-इससे अपनेको पण्डित माननेवालोंमें जो कहा है कि नैष्ठिकब्रह्मचर्य आदि स्मृति विहित हैं इससे उनका वेदविहित गृहस्थाश्रमसे बाध है अर्थात् जो गृहस्थाश्रमके योग्य हो वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आदिको ग्रहण न करे अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आदि उनके विषयमें है जो गृहस्थाश्रमके अधिकारी नहीं हैं ऐसे अन्धे लूले नपुंसक आदि जो हैं-सो इस उन पण्डितंमन्योंके कथनमें वेदाध्यनकी शून्यता कारण है-अर्थात् वे वेदको नहीं जानते इससे उनका कथन सर्वथा त्यागनेयोग्य है जैसे कि श्रौत कर्म (यज्ञ आदि) के विषय पंगु अंधे आदिको अधिकार इस लिये नहीं है कि वे विष्णुकी परिक्रमा और घृतका अवेक्षण (देखना) आदि नहीं करसके तिसी प्रकार स्मार्त कर्म (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य) आ-

१ ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेद्गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेद्यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वनाद्वा ।

२ ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्य ।

दिमेंभी वे जलसे भरे घडेको लाना-भिक्षाके अर्थ जाना इत्यादि कर्मके करनेमें वे समर्थ नहीं हैं तो फिर किस प्रकार नैष्ठिक आदिको उनपंगु आदिके विषय माननेसे चरितार्थ मानते हो-इस चतुर्थ आश्रमके विषे ब्राह्मणकोही अधिकार है-सोई मनु (अ० ६ श्लो० २५)ने कहा है कि आत्मामें अग्निओंका आरोप करके ब्राह्मण संन्यासको ले-तैसेही मनु (अ० ६ श्लो० ९७)ने कहा है कि-हे ऋषीश्वरो इस प्रकार ब्राह्मणके चार प्रकारके धर्म तुमको बताए-इस प्रकार प्रारंभ और समाप्तिके वचनोंसे मनुने ब्राह्मणकोही अधिकार सूचन किया है-इससे और ब्राह्मण परिव्राजहो इस श्रुतिसे ब्राह्मणको ही अधिकार है द्विजाति मात्रको नहीं और अन्यतो त्रैवर्णिकानां-इसको अधिकारसे और वेदाध्ययनपूर्वक चारों आश्रम तीनों वर्णोंको होते हैं इस सूत्रकारके वचनें से द्विजाती मात्रको संन्यासका अधिकार कहते हैं-जब गृहस्थ वा वानप्रस्थसे संन्यास लेना चाहैं तब सम्पूर्ण वेदकी जिसमें दक्षिणा है प्रजापति जिसका देवता है ऐसे यज्ञको करै-उससे पीछे वैतान अग्निओंको वेदविहित विधिसे आत्मामें आरोपण करै-और च शब्दसे पूर्णमासीके दिन पूर्व पुरश्चरण करके शरीरको शुद्ध कर आठ वा बारह श्राद्धोंको करै इस बौधायनके कहे पुरश्चरणकोकर जप करनेमें युक्त पुत्र जब होजाय-और दीन अंधे कृपण इनको धनका अर्पण करके-यथा शक्ति अन्नको देकर-

और अपनेसे ज्येष्ठ भाईने अग्न्याधान न किया होय तो आप अग्न्याधन न करै-इस प्रतिबन्धके न होनेपर अग्न्याधानको करके उसमें नित्य-नैमित्तिक यज्ञको करके मोक्षमे मनको करै-अर्थात् चतुर्थ आश्रममें प्रविष्ट होय अन्यथा नहीं-इस वचनसे जिसने तीनों ऋण निवृत्त न किये हो उसको संन्यासका अधिकार नहीं यह बात सूचन करी-जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो० ३५)ने कहा है कि तीन ऋणोंको निवृत्त करके मनको मोक्षमें लगावै-और ऋणोंको विना निवृत्तकिए जो संन्यासका सेवन करता है वह नरकमें पडता है-जो कि ब्रह्मचर्यसे पीछे संन्यासी होनाचाहे उसको सन्तानकी उत्पत्ति करनेका नियम नहीं-क्योंकि पुत्रके उत्पादन आदिमें जिसने दारपरिग्रह (विवाह) न किया हो उसको अधिकार नहीं-और विवाहमें राग निमित्त है इससे दार परिग्रह नित्य नहीं-कदाचित् कोई शंका करै कि तीनों ऋणोंके दूर करनेकी विधिसेही दाराओंका आक्षेप होता है क्योंकि विवाहके किए विना ऋण निवृत्त नहीं होसक्ता यह ऋणकी निवारणविधि दारपरिग्रहके नियम करने वाली है-सो ठीकनहीं क्योंकि विद्या और धनके अर्जन (इकट्ठा करना) के नियमके समान यह ऋणनिवारक विधिभी स्त्रीके परिग्रहका आक्षेप नहीं करती क्योंकि वह विधि जिसने स्त्री का परिग्रह किया है उसके विषय चरितार्थ है-कदाचित् कोई यह कहने लगेकी उत्पन्न (पैदा) होतेही सम्पूर्ण ब्राह्मण तीन ऋणोंके साथ जन्म लेते हैं इससे ब्रह्मचर्य आश्रमसे ऋषिओंके ऋणको और यज्ञसे देवता ओंके ऋणको और प्रजा (संतान) से पितरोंके ऋणको निवृत्त करै

१ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।

२ एषवोभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।

३ ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति ।

४ त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः ।

५ पौर्णमास्यां पुरश्चरणमादौ कृत्वा शुद्धेन कायेनाष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् द्वादश वा ।

१ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ।

इस वचनसे ब्राह्मण मात्रको प्रजाका उत्पादन आदि आवश्यक है यह दिखाया है-सो ठीक नही क्योंकि इस वचनका यह अर्थ है कि जिसने दारा और अग्निका परिग्रह न कियाहो उस ब्राह्मण मात्रको यज्ञ आदि कर्ममें अधिकार नहीं इससे अधिकारीही जायमान ब्राह्मण आदि यज्ञ आदि कर्मको करे इससे जिसका यज्ञोपवीत होगयाहो उसको वे दाध्ययन ही आवश्यक कर्म है अन्य नहीं-और जिसने स्त्री और अग्निको ग्रहण किया हो प्रजाका उत्पादनभी आवश्यक कर्म है-इससे सब निर्दोष है॥

भावार्थ-वानप्रस्थ वा गृहस्थाश्रमके अनन्तर सब वेदोंकी जिसमें दक्षिणाहै प्रजापति जिसका देवता है ऐसे यज्ञको करके और उसके पीछे वैतान अग्निओंका आत्मामें आरोप करे जिसने वेद पढलियाहो-जप करने वालाहो-जिसके पुत्र उत्पन्न हो लिया हो-यह अन्नदान-और आधान कीहुई अग्निमें शक्तिके अनुसार यज्ञको करके मोक्षमें मनको लगावे-अर्थात् चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करे अन्यथा न करे॥५६॥५७॥

सर्वभूतहितःशांतस्त्रिदंडीसकमंडलुः ।
एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ॥

पद-सर्वभूतहितः१ शान्तः१ त्रिदण्डी १ सकमण्डलुः १ एकारामः १ परिव्रज्य-भिक्षार्थी १ ग्रामम् २ आश्रयेत् क्रि-॥

योजना-परिव्रज्य (संन्यासी भूत्वा) सर्वभूतहितः शान्तः त्रिदण्डी सकमण्डलुः एकारामः भवेत्-भिक्षार्थी सन् ग्रामं आश्रयेत्

तात्पर्यार्थ-प्रिय (हर्ष) करने वाले-और अप्रिय (दुःख) करने वाले सब प्राणियोंका हित करे अर्थात् हर्षके देनेवालेसे अत्यंत हित और दुःखदेनेवालेसे उदासीनता न करे-क्योंकि गौतम की स्मृति है कि हिंसा और अनुग्रहको न करे-वा हित और अन्तःकरणमें शान्त (राग द्वेष रहित) रहे-तीन दण्ड वालेको त्रिदंडी कहते हैं-वे दंड वेणु (वांस)के समझने-उनको ग्रहण करे-क्योंकि ऐसा स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि प्राजापत्य यज्ञके अनंतर मस्तकतक जो लम्बेहो ऐसे तीन वांसके दण्डोंको दाहिने हाथसे धारण करे और वामहाथमें जल सहित कमण्डलुको धारण करे-अथवा एक दण्डकोही धारण करे क्योंकि बौधायनकी स्मृति है कि एक दंडवाला हो अथवा तीन दंडवाला त्रिदंडीहो-और चतुर्विंशतिके मतमेंभी यह लिखाहैकि सब संगोंसे रहित होकरएक दंड वा तीन दंडको धारण करके ब्रह्मविद्यामें तत्पर ब्राह्मण चतुर्थ आश्रममें प्राप्त होय-तिसी प्रकार शिखाका धारण करनाभी वैकल्पिक (धारण करना न वा करना) है क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि मुण्डन करादे अथवा शिखाको धारण करे-वशिष्टनेभी कहा है कि मुण्डन करादे-ममतासे रहित रहै-क्रोध और परिग्रह इनकोभी त्यागदे-यज्ञोपवीतके धारणमेंभी विकल्प है क्योंकि काठककी श्रुतिमें

---

१ जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः।

१ हिंसानुग्रहयोरनारम्भी।

२ प्राजापत्येष्ट्यनन्तरं त्रीन्वैणवान्दण्डान् मूर्धप्रमाणान्दक्षिणेन पाणिना धारयेत् सव्येन सोदकं कमण्डलुम्।

३ एकदण्डी त्रिदण्डी वा।

४ चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणः। एकदण्डी त्रिदण्डी वा सर्वसंगविवर्जितः।

५ मुण्डः शिखी वा।

६ मुण्डोऽममोऽक्रोधोऽपरिग्रहः।

७ सशिखान्केशान्निकृन्त्य विसृज्य यज्ञोपवीतम्।

मणकी न होयतो चार महीनापर्यंतभी एक स्थानपर स्थित रहै–वर्षाकालको छोडकर एक स्थानपर बहुतकालतक न वसे–क्योंकि देवलकी स्मृति है कि[1] वर्षालक्षण इननेही कहा है श्रावणआदि[2] चार महीना वर्षाकाल होता है–कण्वऋषिनेभी[3] कहा है कि ग्राममें एकरात्र और नगरमें पांचरात्र और वर्षाऋतुमें किसी स्थानपर चार महीना निवास करै ॥

भावार्थ–सब कर्मोका परित्याग करके सब भूतोपरहित रक्खे शान्त रहै–तीनदण्ड और कमण्डलुको धारण करै–अकेला रहै–भिक्षाके निमित्त ग्राममें प्रवेश करै ॥ ५८ ॥

अप्रमत्तश्चरेद्भैक्षंसायाह्नेनभिलक्षितः ॥
रहितेभिक्षुकैर्ग्रामेयात्रामात्रमलोलुपः ५९॥

पद–अप्रमत्तः १ चरेत् क्रि– भैक्षं २ सायाह्ने ७ अनभिलक्षितः १ रहिते ७ भिक्षुकैः ३ ग्रामे ७ यात्रामात्रं २ अलोलुपः १ ॥

योजना–संन्यासी अप्रमत्तःअनभिलक्षितः तथा अलोलुपः सन् सायाह्ने भिक्षुकैः रहिते ग्रामे यात्रामात्रं भैक्षं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–अप्रमत्त अर्थात् वाणी और नेत्र आदिकी चपलतासे रहित होकर भिक्षाको मांगे–वसिष्ठनें[4] यहां विशेष दिखाया है कि जो संकल्पित (मनमें विचारे) नहीं ऐसे सात घर भिक्षामांगे–सायाह्न शब्दसे दिनका पांचमांभाग समझना–तिसी प्रकार मनुं (अ० ६ श्लो० ५६) ने[5] कहाहै कि जिस समय धूआं न रहै–मुसलका शब्द न होताहो–मनुष्य सब भोजन कर चुके हों–शराब (सराई) कोभी फेंकदीहो–उस समय यति सदा भिक्षा करै (मांगे) तैसेही यहभी कहाहै[1] कि एक समय भिक्षाको लावे भिक्षाके अत्यंतविस्तारमें आसक्तनहो क्योंकि बहुतसी भिक्षामें आसक्त हुआ यति विषयोंमेंभी आसक्त होजाता है–अनभिलक्षित रहै अर्थात् ज्योतिष विद्याके प्रश्न–मुहूर्त्त–आदिका बताना–रूप चिह्नको नरक्खे सोई मनुं (अ० ६ श्लो० ५०) ने[2] कहा है कि उत्पात–मुहूर्त्त आदिका बताना–क्षत्रियकी विद्याका उपदेश–उत्तम शिक्षा–और वाद–इन कारणोंसे संन्यासी भिक्षाकी कदाचित् भी लेनेकी इच्छा न करै–जोकि फिर वसिष्ठ नें[3] यह कहा है कि ब्राह्मणके कुलमें जो कुछ मिले उसकोही मांसकेबिना सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करै–सो यह वचन असमर्थके विषयमें है–भिक्षा मागनेका जिनका स्वभाव है ऐसे पाखण्डी आदिसे रहित ग्राममें भिक्षा करै–मनुं (अ०६ श्लो० ५१) ने[4] यहां यह विशेष दिखाया है कि जो गृह तपस्वी ब्राह्मण पक्षी कुत्ता और अन्य भिक्षुक इनसे आकीर्ण (व्याप्त)नहो उसमें भिक्षा की याचना करै–जितने अन्नसे प्राणोंकी यात्रा हो उतनीही भिक्षा करै सोई संवर्त ने[5] कहा है कि सन्यासी आठ सात

1 न चिरमेकत्र वसेदन्यत्र वर्षाकालात् ।

2 श्रावणाद्यश्चत्वारो मासा वर्षाकालः ।

3 एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे रात्रिपंचक । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत् ।

4 सप्तागारान्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्षम् ।

5 विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ।

1 एककालं चरेद्भिक्षां प्रसज्जेत न विस्तरे । भैक्षप्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ।

2 न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ।

3 ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत् तद्भुञ्जीत सायंप्रातर्मांसवर्जम् ।

4 न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः । आकीर्णं भिक्षुकैरन्यैरागारमुपसंव्रजेत् ।

5 अष्टौ भिक्षाः समादाय मुनिः सप्त च पञ्च वा । अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वास्ततोऽश्नीयाच्च वाग्यतः ।

जिस्का ऐसे इन ध्यान और योगोंसे-सूक्ष्म शरीर-और प्राण आदिसे पृथक् क्षेत्रज्ञ जिसका नाम है और ब्रह्मके बीचमें अवस्थित है इस प्रकार तत्त्व और पदार्थोंकी ऐक्यताको भली प्रकार देखै-इसीसे इस श्रुतिमें आत्मा देखने योग्य है इस वाक्यसे आत्माको साक्षात्काररूप दर्शनको कहकर उसके साधनरूप-इस वाक्यसे श्रवण-मनन-और निदिध्यासनको कहा है ॥

भावार्थ-गर्भमेंनिवास-कर्मसे पैदाहुई-गति-आधि-व्याधि-क्लेश जरा रूपविपर्यय अनेक जातियोंके विषे जन्म-प्रिय (इष्ट) अप्रियका विपर्यय इनको विचारपूर्वक देखै आत्मामें स्थित सूक्ष्म आत्मा है इस प्रकार ध्यानयोगसे आत्माके स्वरूपको विचारै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

नाश्रमःकारणंधर्मेक्रियमाणोभवेद्धिसः । अतोयदात्मनोपथ्यंपरेषांनतदाचरेत्॥६५॥

पद-न॰- आश्रमः १ कारणं १ धर्मे ७ क्रियमाणः१ भवेत् क्रि- हि॰- सः१ अतः॰-यत् १ आत्मनः ६ अपथ्यं १ परेषां ६ न॰- तत् १ आचरेत् क्रि- ॥

योजना-आश्रमः धर्मे कारणं नास्ति हि यस्मात् सः क्रियमाणो भवेत् तस्मात् यत् आत्मनः अपथ्यं तत् परेषां न आचरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वश्लोकमें कहा जो आत्माकी उपासनारूप धर्म है उसमें आश्रम अर्थात् दण्ड कमण्डलुआदिका धारणकारण नहीं है क्योंकि वह कियाजाय तो अत्यंत दुष्कर नहीं-तिससे जो आत्मामें उद्वेग-करनेवाले कठोर भाषण आदि हैं उनको पराए निमित्त न करै-इस वचनसे आश्रम-का निराकरण-ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारणरूप अन्तःकरणकी शुद्धिके पैदा करनेमें राग द्वेषका परित्याग अन्तरंग रूपसे प्रधान (मुख्य कारण) है इस रागद्वेषकी प्रशंसाके लिए है कुछ आश्रमके परित्यागके लिए नही क्योंकि वह स्मृतिसे विहित है-सोई मनु (अ० ६ श्लो० ६६) ने कहा है दूषितभी मनुष्य जिस किसी आश्रममें वसता हुआ धर्मको करै-सब प्राणीयोंके ऊपर सम रहै-क्योंकि केवल लिङ्ग कमण्डलु आदि धर्ममें कारण नही ॥

भावार्थ-आश्रम धर्मके विषै कारण नही क्योंकि वह करनेमें अत्यंत दुष्कर नही है-इससे जो आत्माके उद्वेग करनेवाले कठोर वचन आदि है उनको दूसरेके निमित्त न करै ॥ ६५ ॥

सत्यमस्तेयमक्रोधोह्रीःशौचंधीर्धृतिर्दमः । संयतेंद्रियताविद्याधर्मःसर्वउदाहृतः ॥ ६६॥

पद-सत्यं १ अस्तेयं१ अक्रोधः१ ह्रीः१ शौचं १ धीः १ धृतिः १ दमः १ संयतेन्द्रियता१ विद्या१ धर्मः१ सर्वः१ उदाहृतः १

योजना-सत्यं अस्तेयम् अक्रोधः ह्रीः शौचं धीः धृतिः दमः संयतेन्द्रियता विद्या एष सर्वः धर्मः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ-यथार्थ-और प्रियवचनका उच्चारणरूप-और दूसरेके द्रव्यको न चुराना-वह अस्तेय-और अपना जो तिरस्कार करै उसके ऊपरभी क्रोध नहीं करना वह अक्रोध-ह्री (लज्जा) आहार आदिकी शुद्धिरूप शौच हित और अहितको जो विचारनारूप धी-इष्ट वस्तुके वियोग होनेपर और अनिष्ट (दुःख) वस्तुकी प्राप्ति होनेपर

१ आत्मा वारे द्रष्टव्यः ।
२ श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।

१ दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे वसन् । समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।

जो चित्तमें हलचलता पैदाहो उस चित्तको जो पूर्वकी समान स्थिर करना वह धृति-मदका जो त्याग-वह दम जिनका-प्रतिषेध नही है ऐसे विषयोंपरभी चित्तका जो न लगाना वह संयतेन्द्रियता-आत्माका जो ज्ञान वह विद्या-इन सब सत्य आदिके करनेसे सम्पूर्ण धर्मका अनुष्ठान यथावत् हो जाता है-इस श्लोकसे दण्ड कमण्डलु आदि जो बाह्यचिह्न हैं उनसे सत्य आदि आत्माके गुणोंको अन्तरंगता (श्रेष्ठता वा आवश्यकता) द्योतन की ॥

भावार्थ-सत्य-चोरी न करना-क्रोधसेरहितहोना-लज्जा-शौच-बुद्धि-धैर्य-दम-इंद्रियोंको जीतना-और आत्मज्ञान ये सम्पूर्ण धर्मका स्वरूप है ॥ ६६ ॥

निःसरंतियथालोहपिंडात्तप्तात्स्फुलिंगकाः। सकाशादात्मनस्तद्वदात्मानःप्रभवंतिहि ॥

पद-निःसरन्ति क्रि- यथाऽ- लोहपिण्डात्५ तप्तात् ५ स्फुलिंगकाः १ सकाशात् ५ आत्मनः ६ तद्वत्ऽ- आत्मानः १ प्रभवंति क्रि-हिऽ-॥

योजना-यथा तप्तात् लोहपिण्डात् स्फुलिंगकाः निःसरन्ति तद्वत् आत्मनः सकाशात् आत्मानः प्रभवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि जीव और परमात्मामें पारमार्थिक कोई भेद नही है तथापि परमात्माके सकाशसे अविद्यारूप उपाधिभेदसे भिन्न जीवात्मा उत्पन्न होते हैं इससे जीव और परमात्मामें भेदका व्यपदेश (व्यवहार) किया जाता है-जैसे अग्निमें तपाहुए लोहेके गोलेमेंसे स्फुलिंग (अग्निके कण) निकलते हैं और उनको जगत्में स्फुलिंग इस नामान्तरसे उच्चारण करते हैं-इससे उत्पन्न (स्थित हुआ) आत्माको आत्माके विषे स्थित देखना-अथवा इसका यह दूसरा उत्थानिकापूर्वक अर्थ करते हैं कि जब सब क्षेत्रज्ञ सुषुप्ति और प्रलयकालके समय ब्रह्ममें लीन (अन्तर्धान) होजाता हैं तब आत्माकी उपासनाविधि किस क्षेत्रज्ञके विषय है-इससे यह निःसरन्तिआदि श्लोकसे उत्तर कहते हैं कि यद्यपि प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपसे सब क्षेत्रज्ञ लीन होजाते हैं तथापि फिर उसी ब्रह्मके सकाशसे अविद्यारूप उपाधिके भेदसे भिन्नरूप जीवात्मा उत्पन्न होते हैं और कर्मके वशसे स्थूल शरीरके अभिमानी (कि मैं स्थूल हूं-कृशहूं) होजाते हैं-तिससे आत्माकी उपासना विधिमें विरोध नही-लोह पिण्डका दृष्टान्त इस समताको सूचन करनेको दिया है कि जैसे लोहपिण्डकी अग्निसे उत्पन्नहुए अग्निके कण भिन्न प्रतीत होते हैं इसीप्रकार परमात्मासे उत्पन्न हुए जीव पृथक् हैं-परमार्थतः कुछ भेद नही ॥

भावार्थ-जैसे तपाएहुए लोहेके गोलेमेंसे स्फुलिंग निकलते हैं इसीप्रकार आत्माके सकाशसे आत्मा (जीव) उत्पन्न होते हैं ॥ ६७ ॥

तत्रात्माहिस्वयंकिंचित्कर्मकिंचित्स्वभावतः करोतिकिंचिदभ्यासाद्धर्माधर्मोभयात्मकं ॥

पद-तत्रऽ- आत्मा १ हिऽ- स्वयंऽ-किंचित्ऽ- कर्म २ किंचित्ऽ-स्वभावतःऽ-करोति क्रि-किंचित्ऽ-अभ्यासात् ५ धर्माधर्मोभयात्मकम् २ ॥

योजना-हि (निश्चयेन) तत्र आत्मा किंचित् धर्माधर्मोभयात्मकं कर्म स्वयं करोति किंचित् स्वभावतः किंचित् अभ्यासात् करोति ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि तिस प्रलयरूप अव-

स्थामें परिस्पन्द (हलन चलन) रूप क्रिया नहीं होती तथापि धर्म और अधर्मका अध्यवसायरूप मानसकर्म होता है और उस कर्मकोही विशिष्ट (जरायुज) शरीर आदिके ग्रहणमें कारणता है क्योंकि मनु (अ० १२ श्लो० ९.)ने लिखाहै कि वाणीसे किए कर्मोंसे पक्षी और मृगकी योनिको और मनसे किए कर्मोंसे चाण्डालयोनिको प्राप्त होता है-इसप्रकार मानसकर्मसे शरीरको ग्रहण करके स्वयंही-अर्थात् इस अन्वयव्यतिरेककी अपेक्षाके विनाही स्तनसे उत्पन्न हुए दूधके पीनेपर तृप्ति होती है और उसके न पीनेपर तृप्ति नहीं होती-और पूर्वजन्मके अनुभव (ज्ञान)का संस्कार जो है उसको किसी अदृष्टके केवल से उद्बुद्ध (खुलना) होनेसे जिसको पूर्वजन्ममें किएहुए हित अहित कार्योंका स्मरण होजाता है वह किंचित् दुग्धपान आदिकर्मोंको करता है-और किसी प्रयोजन आदिके विनाही पिपीलिका (चेंटी) आदिके भक्षणरूप कर्मको यदृच्छासे करता है-और किसी धर्म अधर्मरूप कर्मको जन्मान्तरके अभ्यासके बलसे करता है सोई स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि जो जन्म जन्ममें दान वा अध्ययन वा तप अभ्यास(अतिशयसे) किया है-उसी अभ्यासके बलसे फिरभी उसी दान आदिका अभ्यास करता है-इस प्रकार यह बात युक्त हुईकि जीवोंको कर्मोंकी विचित्रतासे-जरायुज आदि देहकी विचित्रता प्राप्त होती है ॥

भावार्थ-ऐसी अवस्थामें यह आत्मा किसी कर्मको स्वयं करता है किसीको स्वभावसे करता है और किसी धर्म और अधर्मरूप कर्मको पूर्व जन्मके अभ्यासके बलसे करताहै ॥ ९८ ॥

निमित्तमक्षरःकर्ताबोद्धाब्रह्मगुणीवशी ।
अजःशरीरग्रहणात्सजातइतिकीर्त्यते ।९९।

पद-निमित्तम् १ अक्षरः १ कर्ता १ बोद्धा १ ब्रह्म १ गुणी १ वशी १ अजः १ शरीरग्रहणात् २ सः १ जातः १ इति-कीर्त्यते क्रि- ॥

योजना-निमित्तं-अक्षरः कर्ता बोद्धा ब्रह्म गुणी वशी अजः सः शरीरग्रहणात् जातः इति कीर्त्यते ॥

तात्पर्यार्थ-वह सत्य आत्मा इस संपूर्ण जगत्के प्रपंचको प्रकट होनेपर अविद्याके समावेशसे स्वयंही समवायी-असमवायी-और निमित्तरूप तीन प्रकारका कारणही है-कार्य कोटिमें प्रविष्ट नहीं है क्योंकि वह अक्षर अर्थात् नाशसे रहित है-कदाचित् कोई शंका करै कि इस कार्यरूप जगत्में सुख दुःख और मोहरूप सत्त्व आदि गुणके विकार देखे जातेहैं, तो उस गुणवाली प्रकृतिकोही जगत्का कर्ता मानना उचित है उन गुणोंसे रहित ब्रह्मको नहीं-सो ठीक नहीं-क्योंकि जीवोंको भोगने योग्य जो सुख और दुःख हैं उनका कारणरूप जो अदृष्ट (धर्म अधर्म) है उसका देखनेंवाला ब्रह्मही है इससे आत्माही कर्ता है प्रकृति नहीं-और यह प्रकृति अचेतन है इससे नाम और रूपोंसे नाना प्रकारके जो भोक्ता ओंके समूह हैं उनके भोगके अनुकूल भोग्य(उत्तम पदार्थ) और भोगायतन (शरीर आदि) जिसमें रचेजाते हैं ऐसे इस जगत् की रचनाभी उसके विषय युक्त नहीं है-इससे यह धर्म और अधर्मका साक्षी चेतन ब्रह्मही कारणहै-और यही ब्रह्म अर्थात् इस जगत्का विस्तार करनेवाला

१ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ।

२ प्रतिजन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः। तेनैवाभ्यासयोगेन तदेवाभ्यसते पुनः ।

है-और यह ब्रह्म निर्गुणभी नही है क्योंकि प्रकृति प्रधान है दूसरा नाम जिस्का ऐसी अविद्या रूप जो तीनों गुणोंकी शक्ति जिसमें विद्यमान है-इससे यद्यपि आप निर्गुणभी है तोभी उस अविद्यारूप शक्तिके द्वारा सत्व आदि गुणोंका सम्बन्धी कहा जाता है-इस इतनी बातसेही प्रकृतिको कारणता नही है-क्योंकि वह आत्मा वशी अर्थात् स्वतंत्र है और प्रकृति परतंत्र है-यदि आत्माके समान प्रकृतिहीको जगत करनेमें स्वतत्र अन्य पदार्थ है ऐसा विचारो सोभी ठीक नही क्योंकि प्रकृतिको उस प्रकारकी माननेमें कोई प्रमाण नही-इससे आत्माही जगतका तीन प्रकारका कारण है-तथा अज अर्थात् उत्पत्तिसे रहित है इससे उसकी साक्षात् उत्पत्ति नहीहै तथापि शरीरके ग्रहण करनेसे जात (उत्पन्न) ऐसा कहा जाता है-क्योंकी वह अन्य अवस्थाके संबन्धसे उत्पन्न होताहै-जैसे गृहस्थाश्रमके सम्बन्धसे-गृहस्थोयं जात ऐसा कहते हैं ॥

भावार्थ-वह आत्मा कारण अविनाशी जगत्का कर्ता-भोक्ता-ब्रह्म सत्व आदि गुणवाला-वशी (स्वतंत्र) अज अर्थात् उत्पत्तिसे रहित है और वह केवल शरीरके ग्रहण करनेसे जात (पैदा हुआ) कहा जाता है ॥ ६९ ॥

सर्गादौसयथाकाशंवायुंज्योतिर्जलंमहीम् । सृजत्येकोत्तरगुणांस्तथादत्तेभवन्नपि ।७०।

पद-सर्गादौ ७ सः १ यथा- आकाशं २ वायुं २ ज्योतिः २ जलम् २ महीं २ सृजति क्रि-एकोत्तरगुणान् २ तथा- आदत्ते क्रि-भवन् १ अपि- ॥

योजना-सः सर्गादौ यथा आकाशं वायुं ज्योतिः महीं-एकोत्तरगुणान् सृजति-तथा भवन् अपि आदत्ते ॥

तात्पर्यार्थ-सृष्टिके रचनेके समय जिस प्रकार परमात्मा- शब्द है एक गुण जिस्का ऐसे आकाशको और शब्द-स्पर्श ये दो हैं गुण जिसमें ऐसी वायुको और शब्द-स्पर्श-रूप-ये तीन हैं गुण जिसमें ऐसे तेजको-और शब्द-स्पर्श-रूप-रस-ये चार गुण हैं जिसमें ऐसे जलको-और शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-ये पांच गुण हे जिसमें ऐसी पृथ्वीको-इस प्रकार पूर्वसे २ एक २ गुण है अधिक जिनमें ऐसे इनको रचता है-तिसी प्रकार आत्माभी जीव भावको प्राप्त होकर उत्पन्न हुआ अपने शरीरके आरंभक रूपसे उनको ग्रहण करता है-

भावार्थ-सर्ग आदिमें जैसे परमात्मा एक२ गुण जिनमें पूर्वसे अधिकहै ऐसे इन आकाश-वायु-तेज-जल-पृथ्वी-इनको रचता है उसी प्रकार आपभी जीवन भावको प्राप्त होकर उनको शरीर रूपसे ग्रहण करता है॥७०॥

आहुत्याप्यायतेसूर्यःसूर्याद्वृष्टिरथौषधिः। तदन्नंरसरूपेणशुक्रत्वमधिगच्छति ॥७१॥

पद-आहुत्या ३ आप्यायते क्रि-सूर्यः १ सूर्यात् ५ वृष्टिः१ तथा- औषधिः१ तदन्नं १ रसरूपेण ३ शुक्रत्वम् २अधिगच्छति क्रि-॥

योजना-आहुत्या सूर्यः आप्यायते-सूर्यात् वृष्टिः-तथ वृष्टेः औषधिः औषध्या अन्नं जायते तत् अन्नं रसरूपेण शुक्रत्वम् अधिगच्छति-(प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ-यजमान जो पुरोडाश आदि आहुतिको अग्निमें गेरता है उसके रससे सूर्य वृद्धिको प्राप्त होता है और जिसमें कालके वस घृत आदि हविका रस परिपाकको प्राप्त होजाता है ऐसे सूर्यसे वर्षा होती है और उस वर्षासे व्रीहि (धान) आदि औषधिरूप अन्न पैदा होता है और वह अन्न

भक्षण किया हुआ रससे रुधिर इत्यादि क्रमसे वीर्य और शोणितरूपको प्राप्त होताहै ॥

भावार्थ–आहुतिके देनेसे सूर्य वृद्धिको प्राप्त होता है–और उस सूर्यसे वर्षा होती है और उस वर्षासे ओषधि रूप अन्न उत्पन्न होता है–वह अन्न रसरूपसे शुक्र शोणित रूपको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेविशुद्धेशुक्रशोणिते ।
पंचधातून्स्वयंपष्ठआदत्तेयुगपत्प्रभुः ।७२।

पद–स्त्रीपुंसयोः ६ तु॰– संयोगे ७ विशुद्धे ७ शुक्रशोणिते ७ पंचधातून् २ स्वयं॰– षष्ठः १ आदत्ते क्रि– युगपत्॰–प्रभुः ॥ १ ॥

योजना–स्त्रीपुंसयोः संयोगे सति विशुद्धे शुक्रशोणिते स्थित्वा पंचधातून्–स्वयं षष्ठः प्रभुः युगपत् आदत्ते–(गृह्णाति)

तात्पर्यार्थ–ऋतुकालके समय स्त्री और पुरुषका संयोग होनेपर जो स्त्रीका और पुरुषका वीर्य–और शोणित, इस स्मृत्यंतरमें कहेहुए दोषोंसे रहित अर्थात् वात पित्त कफ दुष्टग्रंथि पूय क्षीणमूत्र पुरीष गंध वीर्य–इन सब चीजोंसे हीन–परस्पर मिलते रहै उसम स्थित होकर–पृथिवी आदि पंच भूतरूप जो पांच धातु हैं उनको यह प्रभु अर्थात् शरीरके बनानेमें अधर्मधर्मरूपी कर्मके संबन्धसे समर्थ छठा आप चेतन स्वरूप आत्मा एक कालमें ग्रहण करता है अर्थात् उसको भोगका आयतन (जिसमें भोग भोगा जाय) बनाता है–सोई शारीरक में लिखा है कि स्त्री–और पुरुषके मिलनेपर जो यह वीर्य योनिमें जाकर स्त्रीके रजसे मिलता है उस समय उसी क्षणमें–भूतात्मा और सत्वगुण–रजोगुण–तमोगुण–इन तीन गुणों सहित वायु प्रेरणासे गर्भाशयमें स्थित होता है ॥

भावार्थ–स्त्री और पुरुषके संयोग होनेपर दोषसे रहित शुक्र और शोणितमें स्थित होकर वह भूतात्मा पृथिवी आदि पांच भूत और छठा आप एक कालमेंही ग्रहण करता है ॥ ७२ ॥

इंद्रियाणिमनःप्राणोज्ञानमायुःसुखंधृतिः ।
धारणाप्रेरणंदुःखमिच्छाहंकारएवच ७३॥

पद–इन्द्रियाणि १ मनः १ प्राणम् १ आयुः १ सुखम् १ धृतिः १ धारणा १ प्रेरणं १ दुःखम् १ इच्छा १ अहंकारः १ एव॰– च॰– ॥

प्रयत्नआकृतिर्वर्णःस्वरद्वेषौभवाभवौ ।
तस्यैतदात्मजंसर्वमनादेरादिमिच्छतः ७४

पद–प्रयत्नः१ आकृतिः १ वर्णः १ स्वरद्वेषौ १ भवाभवौ १ तस्य ६ एतत् १ आत्मजं १ सर्वं १ अनादेः ६ आदिम् २ इच्छतः ६ ॥

योजना–इन्द्रियाणि मनः प्राणः ज्ञानम् आयुः सुखम् धृतिः धारणा प्रेरणं दुःखम्–इच्छा चपुनः अहंकारः प्रयत्नः आकृतिः वर्णः स्वरद्वेषौ भवाभवौ एतत् सर्वम् आदिमिच्छतः अनादेः तस्य आत्मनः आत्मजम् आत्मजन्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–जो आगे कहेंगे वे ज्ञानेन्द्रिय–और कर्मेन्द्रिय–और मन–आश्रयके भेदसे जो भिन्न कहेजाते हैं ऐसे प्राण–अपान–व्यान–उदान–और समान ये शरीरकी वायु–रूप–प्राण–ज्ञान–शतवर्ष आदितक

१ वातपित्तश्लेष्मदुष्टग्रंथिपूयक्षीणमूत्रपुरीषगंधरेतो-दोषवर्जितानि ।

२ स्त्रीपुंसयोः संयोगे योनौ रजसाभिसंगते शुक्रे तत्क्षणेन सह भूतात्मना गुणैश्च सत्त्वरजस्तमोभिः सह वायुना प्रेर्यमाणं गर्भाशये तिष्ठति ।

जीवनरूप आयु-सुख-धृति (चित्तकी स्थिरता) और प्रज्ञा-और मेधारूप-धारण और ज्ञानेंद्रिय-और कर्मेन्द्रियोंका अधिष्ठातृत्वरूप-प्रेरण-दुःख-(चित्तका उद्वेग)-इच्छा-अहंकार-प्रयत्न (उद्यम) आकार गौर-कृष्ण आदि वर्ण षड्गांधार-आदि स्वर-वैर-पुत्र और पशु आदिका विभवरूप। भव और इनका न होना रूप अभव ये सब शरीरके ग्रहण करनेकी इच्छावाला जो अनादि नित्य ब्रह्म है-उससे उत्पन्न होते है अर्थात् वह आत्मा जो पूर्व जन्ममें कर्म करता है उसीके अनुकूल ये सब पैदा होते हैं ॥

भावार्थ-इन्द्रिय-मन- प्राण- ज्ञान-अवस्था- सुख-धैर्य- बुद्धि-प्रेरण--दुःख-इच्छा-- अहंकार-- प्रयत्न-- आकार--वर्ण--स्वर--द्वेष--भव-अभव-ये सब शरीरकी इच्छावाले नित्य आत्मा (भूतात्मा) से उत्पन्न होते है ॥७३॥७४॥

प्रथमेमासिसंक्लेदभूतोधातुविमूर्च्छितः ।
मास्यर्बुदंद्वितीयेतुतृतीयेंगेंद्रियैर्युतः ।७५।

पद-प्रथमे ७ मासि ७ संक्लेदभूतः १ धातुविमूर्च्छितः १ मासि ७ अर्बुदं १ द्वितीये ७ तुऽ- तृतीये ७ अंगेन्द्रियैः ३ युतः१

योजना-प्रथमे मासि धातुविमूर्छितः संक्लेदभूतो भवति द्वितीयमासे अर्बुदरूपो भवति तुपुनः तृतीयेमासि अंगेन्द्रियैः युतो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यह चेतन आत्मा पृथिवी आदि धातुओंके विषे जल और दूधके समान एक होकर प्रथम मासमें द्रव (पतला) रूप रहताहै करडा नही होता और दूसरे महीनेमें कुछ २ करडा-मांसके पिण्ड (लोंदा) कैसा आकार होता है यहां यह अभिप्राय है कि गर्भाशयकी पवन-और पेटकी पाचनअग्नि इन दोनोंसे कुछ २ सूकता सूकता वह वीर्यके संबन्धसे पतला जो पृथिवी आदिका समूह हैं सो तीस दिनमें जाकर करडापनको प्राप्त होताहै-सोई सुश्रुतमें लिखा है कि कुछ ठंडी और गरम वायु और जठराग्निसे परिपाकको प्राप्तहुआ पृथिवी आदिका समूह करडा होजाता है-और वह तीसरे महीनेमें इंद्रियोंसे युक्त होता है ॥

भावार्थ-यह भूतात्मा पृथिवी आदिके साथ मिलाहुआ पहिले महीनेमें पतला होता है-और दूसरे महीनेमें कुछ २ मांसके लोंदे कैसा आकार कडा होजाता है और तीसरे महीनेमें इंद्रियोंसे युक्त होता है॥७५॥

आकाशाल्लाघवंसौक्ष्म्यंशब्दंश्रोत्रंबलादिकं
वायोश्चस्पर्शनंचेष्टांव्यूहनंरौक्ष्यमेवच ७६॥

पद-आकाशात् ५ लाघवं १ सौक्ष्म्यं ३ शब्दं २ श्रोत्रं २ बलादिकम् २ वायोः ५ चऽ- स्पर्शनं २ चेष्टां २ व्यूहनं २ रौक्ष्यम् २ एवऽ-चऽ ॥

पित्तात्तुदर्शनंपक्तिमौष्ण्यंरूपंप्रकाशितां ।
रसात्तुरसनंशैत्यंस्नेहंक्लेदंसमार्दवं ॥७७॥

पद-पित्तात् ५ तुऽ- दर्शनम् २ पक्तिम् २ औष्ण्यम् २ रूपम् २ प्रकाशिताम् २ रसात् ५ तुऽ-रसनं २ शैत्यम् २ स्नेहम् २ क्लेदम् २ समार्दवम् २ ॥

भूमेर्गंधंतथाघ्राणंगौरवंमूर्तिमेवच ।
आत्मागृह्णात्यजःसर्वंतृतीयेस्पंदतेततः ७८

पद-भूमेः ५ गन्धम् तथाऽ- घ्राणम् २ गौरवम् २ मूर्तिम् २ एवऽ- चऽ- आत्मा १ गृह्णा-

१ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिपच्यमानो भूतसंघातो घनो जायते ।

भक्षण किया हुआ रससे रुधिर इत्यादि क्रमसे वीर्य और शोणितरूपको प्राप्त होताहै ॥

भावार्थ-आहुतिके देनेसे सूर्य वृद्धिको प्राप्त होता है-और उस सूर्यसे वर्षा होती है और उस वर्षासे ओषधि रूप अन्न उत्पन्न होता है-वह अन्न रसरूपसे शुक्र शोणित रूपको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेविशुद्धेशुक्रशोणिते ।
पंचधातून्स्वयंषष्ठआदत्तेयुगपत्प्रभुः ।७२।

पद-स्त्रीपुंसयोः ६ तु॰- संयोगे ७ विशुद्धे ७ शुक्रशोणिते ७ पंचधातून् २ स्वयं॰- षष्ठः १ आदत्ते क्रि- युगपत्॰-प्रभुः ॥ १ ॥

योजना-स्त्रीपुंसयोः संयोगे सति विशुद्धे शुक्रशोणिते स्थित्वा पंचधातून्-स्वयं षष्ठः प्रभुः युगपत् आदत्ते-(गृह्णाति)

तात्पर्यार्थ-ऋतुकालके समय स्त्री और पुरुषका संयोग होनेपर जो स्त्रीका और पुरुषका वीर्य-और शोणित, इस स्मृत्यंतरमें कहेहुए दोषोंसे रहित अर्थात् वात पित्त कफ दुष्टग्रंथि पूय क्षीणमूत्र पुरीष गंध वीर्य-इन सब चीजोंसे हीन-परस्पर मिलते रहे उसमें स्थित होकर-पृथिवी आदि पंच भूतरूप जो पांच धातु हैं उनको यह प्रभु अर्थात् शरीरके बनानेमें अधर्मधर्मरूपी कर्मके संबन्धसे समर्थ छठा आप चेतन स्वरूप आत्मा एक कालमें ग्रहण करता है अर्थात् उसको भोगका आयतन (जिसमें भोग भोगा जाय) बनाता है-सोई शारीरक में लिखा है कि स्त्री-और पुरुषके मिलनेपर जो यह वीर्य योनिमें जाकर स्त्रीके रजसे मिलता है उस समय उसी क्षणमें-भूतात्मा और सत्वगुण-रजोगुण-तमोगुण-इन तीन गुणों सहित वायु प्रेरणासे गर्भाशयमें स्थित होता है ॥

भावार्थ-स्त्री और पुरुषके संयोग होनेपर दोषसे रहित शुक्र और शोणितमें स्थित होकर वह भूतात्मा पृथिवी आदि पांच भूत और छठा आप एक कालमेंही ग्रहण करता है ॥ ७२ ॥

इंद्रियाणिमनःप्राणोज्ञानमायुःसुखंधृतिः ।
धारणाप्रेरणंदुःखमिच्छाहंकारएवच ७३॥

पद-इन्द्रियाणि १ मनः १ प्राणम् १ आयुः १ सुखम् १ धृतिः १ धारणा १ प्रेरणं १ दुःखम् १ इच्छा १ अहंकारः १ एव॰- च॰- ॥

प्रयत्नआकृतिर्वर्णःस्वरद्वेषौभवाभवौ ।
तस्यैतदात्मजंसर्वमनादेरादिमिच्छतः ७४

पद-प्रयत्नः१ आकृतिः १ वर्णः १ स्वरद्वेषौ १ भवाभवौ १ तस्य ६ एतत् १ आत्मजं १ सर्वं १ अनादेः ६ आदिम् २ इच्छतः ६ ॥

योजना-इन्द्रियाणि मनः प्राणः ज्ञानम् आयुः सुखम् धृतिः धारणा प्रेरणं दुःखम्-इच्छा चपुनः अहंकारः प्रयत्नः आकृतिः वर्णः स्वरद्वेषौ भवाभवौ एतत् सर्वम् आदिमिच्छतः अनादेः तस्य आत्मनः आत्मजम् आत्मजन्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-जो आगे कहेंगे वे ज्ञानेन्द्रिय-और कर्मेन्द्रिय-और मन-आश्रयके भेदसे जो भिन्न कहेजाते हैं ऐसे प्राण-अपान-व्यान-उदान-और समान ये शरीरकी वायु-रूप-प्राण-ज्ञान-शतवर्ष आदितक

१ वातपित्तश्लेष्मदुष्टग्रंथिपूयक्षीणमूत्रपुरीषगंधरेतां-स्यष्टानि ।

२ स्त्रीपुंसयोः संयोगे योनौ रजसाभिसंसृष्टं शुक्रं तत्क्षणमेव सह भूतात्मना गुणैश्च सत्त्वरजस्तमोभिः सह वायुना प्रेर्यमाणं गर्भाशये तिष्ठति ।

जीवनरूप आयु-सुख-धृति (चित्तकी स्थिरता) और प्रज्ञा-और मेधारूप-धारण और ज्ञानेंद्रिय-और कर्मेन्द्रियोंका अधिष्ठातृत्वरूप-प्रेरण-दुःख-(चित्तका उद्वेग)-इच्छा-अहंकार-प्रयत्न (उद्यम) आकार गोर-कृष्ण आदि वर्ण षड्गांधार-आदि स्वर-वैर-पुत्र और पशु आदिका विभवरूप। भव और इनका न होना रूप अभव वे सब शरीरके ग्रहण करनेकी इच्छावाला जो अनादि नित्य ब्रह्म है-उससे उत्पन्न होते हे अर्थात् वह आत्मा जो पूर्व जन्ममें कर्म करता है उसीके अनुकूल ये सब पैदा होते हे ॥

भावार्थ-इन्द्रिय-मन- प्राण- ज्ञान-अवस्था- सुख-धैर्य- बुद्धि-प्रेरण--दुःख-इच्छा-- अहंकार-- प्रयत्न-- आकार--वर्ण--स्वर--द्वेष--भव-अभव-ये सब शरीरकी इच्छावाले नित्य आत्मा (भूतात्मा) से उत्पन्न होते हे ॥७३॥७४॥

प्रथमेमासिसंक्लेदभूतोधातुविमूर्च्छितः ।
मास्यर्बुदंद्वितीयेतुतृतीयेंऽगेंद्रियैर्युतः ।७५।

पद-प्रथमे ७ मासि ७ संक्लेदभूतः १ धातुविमूर्च्छितः १ मासि ७ अर्बुदं १ द्वितीये ७ तुऽ- तृतीये ७ अंगेन्द्रियैः ३ युतः१

योजना-प्रथमे मासि धातुविमूर्छितः संक्लेदभूतो भवति द्वितीयमासे अर्बुदरूपो भवति तुपुनः तृतीयेमासि अंगेन्द्रियैः युतो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यह चेतन आत्मा पृथिवी आदि धातुओंके विषे जल और दूधके समान एक होकर प्रथम मासमें द्रव (पतला) रूप रहताहै करडा नही होता और दूसरे महिनेमें कुछ २ करडा-मांसके पिण्ड (लोंदा) कैसा आकार होता है यहां यह अभिप्राय है कि गर्भाशयकी पवन-और पेटकी पाचनअग्नि इन दोनोंसे कुछ २ सूकता सूकता वह वीर्यके संबन्धसे पतला जो पृथिवी आदिका समूह हैं सो तीस दिनमें जाकर करडापनको प्राप्त होताहै-सोई सुश्रुतमें लिखा है कि कुछ ठंडी और गरम वायु और जठराग्निसे परिपाकको प्राप्तहुआ पृथिवी आदिका समूह करडा होजाता है-और वह तीसरे महीनेमें इंद्रियोंसे युक्त होता है ॥

भावार्थ-यह भूतात्मा पृथिवी आदिके साथ मिलाहुआ पहिले महीनेमें पतला होता है-और दूसरे महीनेमें कुछ २ मांसके लोंदे कैसा आकार करडा होजाता है और तीसरे महिनेमें इंद्रियोंसे युक्त होता है॥७५॥

आकाशाल्लाघवंसौक्ष्म्यंशब्दंश्रोत्रंबलादिकं
वायोश्चस्पर्शनंचेष्टांव्यूहनंरौक्ष्यमेवच ७६॥

पद-आकाशात् ५ लाघवं १ सौक्ष्म्यं ३ शब्दं २ श्रोत्रं २ बलादिकम् २ वायोः ५ चऽ- स्पर्शनं २ चेष्टां २ व्यूहनं २ रौक्ष्यम् २ एवऽ-चऽ ॥

पित्तात्तुदर्शनंपक्तिमौष्ण्यंरूपंप्रकाशितां ।
रसात्तुरसनंशैत्यंस्नेहंक्लेदंसमार्दवं ॥७७॥

पद-पित्तात् ५ तुऽ- दर्शनम्२ पक्तिम् २ औष्ण्यम् २ रूपम् २ प्रकाशिताम् २ रसात् ५ तुऽ-रसनं २ शैत्यम् २ स्नेहम् २ क्लेदम् २ समार्दवम् २ ॥

भूमेर्गंधंतथाघ्राणंगौरवंमूर्तिमेवच ।
आत्मागृह्णात्यजःसर्वंतृतीयेस्पंदतेततः ७८

पद-भूमेः ५ गन्धम् तथाऽ- घ्राणम् २ गौरवम् २ मूर्तिम्२एवऽ- चऽ-आत्मा१ गृह्णा-

१ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिपच्यमानो भूतसंघातो घनो जायते ।

ति क्रि- अजः १ सर्वं २ तृतीये ७ स्पन्दते क्रि- ततः ऽ- ॥

योजना-आत्मा आकाशात् लघिमानं-सौक्ष्म्यं शब्दं श्रोत्रम् बलादिकम् वायोःसकाशात् स्पर्शनम् चेष्टाव्यूहनं रौक्ष्यम् चपुनः पित्तात् (तेजसः) दर्शनम् पक्तिम् औष्ण्यम् रूपम् प्रकाशिताम् तुपुनः रसात् रसनम् शैत्यम् स्नेहम् समार्दवम् क्लेदं भूमेः सकाशात् गन्धम् तथा घ्राणम् गौरवं चपुनः मूर्तिम्-गृह्णाति ततः (तदनन्तरम्) स्पन्दते ॥

तात्पर्यार्थ-यहां-आत्मा गृह्णाति इस पदका सबकेसाथ संबन्ध होता है-वह भूतात्मा आकाशसे लंघनरूप क्रियामें उपयोग करनेवाली लघुता-सौक्ष्म्य (सूक्ष्मता) शब्द-श्रवणेंद्रिय-और दृढतारूपी बल-और आदिपदसे-छिद्र-औरमुख आदि अवकाश इनको ग्रहण करता है-क्योंकि गर्भोपनिषदमें यह देखा जाता है कि आत्मा आकाशसे-शब्द-श्रोत्र-अवकाश- और सम्पूर्ण छिद्र इनको प्राप्त होताहै-और पवनसे-स्पर्शके ज्ञानवाली त्वचारूप इंद्रिय-गमन आगमन (जाना आना) आदि चेष्टा हस्त चरण आदि अंगोंका अनेक प्रकारसे जो फैलाना वह व्यूहन-कर्कशता (थकावट) और च शब्दसे स्पर्श-इनको प्राप्त होताहै-और तेजसे-दर्शन (देखना) चक्षुरूप इंद्रिय-खाये हुए अन्नका जो पचजाना-वह पक्ति-उष्ण स्पर्श-श्याम आदिरूप-प्रकाशता (मुख आदि अंगकी तेजी) और इसी प्रकार संताप (चित्तकी तीक्ष्णता) सहनशीलता इनको प्राप्त होता है-क्योंकि गर्भोपनिषदमें लिखा है कि शूरवीरता-असहन-तीक्ष्णता-अन्नका पचना-शरीरमें गरमाई-मुखपर तेजी (दमदमाट) संताप-वर्ण-और रूपके ग्रहणकरनेवाली इंद्रिय ये तेजसे पैदा होते हैं-इसी प्रकार जलसे-रसके ग्रहण करनेवाली जिह्वा-शरीरमें ठंडापन-चिकनाई-कोमलता- और आर्द्रता (गीलापन) और पृथिवीसे गंधके ग्रहण करनेवाली घ्राण इंद्रिय-भारीपन-शरीरका आकार-इनको ग्रहण करता है-इस प्रकार यद्यपि आत्मा वास्तवमें जन्मसे रहित है तथापि इन सबको तीसरे मासमें ग्रहण करताहै-फिर चौथे मासमें इधर उधर चलने लगता है सोई शारीरकमें लिखाहै कि तिससे चलने आदिमें चौथे मासके विषे यत्न करता है ॥

भावार्थ-आत्मा-वास्तवमें उत्पत्तिसे रहित है तथापि गर्भमें स्थित होकर तीसरे मासमें आकाशसे लघुता-सूक्ष्मता-शब्द-कर्ण इंद्रिय- बलआदि-और वायुसे-स्पर्श इंद्रिय-चेष्टा-अंगोका फैलाना-कर्कशता-और तेजसे-देखना-पचना-गरमाई-रूप-तेजी- और जलसे-जिह्वा-ठंढापन-शरीरपर चिकनाई-कोमलता-गीलापन-और पृथिवीसे गन्धके ग्रहण करनेवाली नासिका इंद्रिय-भारीपन-और शरीरका आकार इनको ग्रहण करता है फिर चौथे महीनेमें चलने लगता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

दौहृदस्याप्रदानेनगर्भोदोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यंमरणंवापितस्मात्कार्यंप्रियंस्त्रियाः ॥

पद-दौहृदस्य ६ अप्रदानेन ३ गर्भः १ दोषं २ अवाप्नुयात् क्रि-वैरूप्यम् २ मरणम् २ वा ऽ-अपि ऽ-तस्मात् ५ कार्यम् १ प्रियं १ स्त्रियाः ६ ॥

---

१ आकाशाच्छब्दं श्रोत्रं रिक्तता सर्वछिद्रसमूहश्च ।

२ शौर्यं तैक्ष्ण्यमपाकमौष्ण्यमामिष्णुतासंतापवर्णरूपेन्द्रियाणि ।

१ तस्माच्चतुर्थे मासि चलनादावर्थप्रयत्नं करोति ।

योजना–गर्भो द्विहृदस्य अप्रदानेन दोषं वैरूप्यम् अथवा मरणम् अपि अवाप्नुयात् तस्मात् स्त्रियाः प्रियं कार्यम्–

तात्पर्यार्थ–एक गर्भका हृदय–और दूसरा गर्भिणी स्त्रीका हृदय इस प्रकार दो हृदयवाली स्त्रीका जो मनोरथ होता है उसे द्वौहृद कहते हैं–उसके न देनेसे अर्थात् पूरण न करनेसे–गर्भ कुत्सित रूप वा मरण रूप दोषको प्राप्त हो जाता है इससे उस दोषके परिहारके लिए गर्भिणी स्त्रीको जो अच्छालगे उस मनोरथको अवश्यही सिद्ध करना–सोई सुश्रुतमें लिखा है कि दोहृदय वाली स्त्रीको द्विहृदया कहते हैं उसके मनोरथको सिद्ध किया जायतो वह अत्यंत पराक्रमी और बहुत कालतक जीने वाले पुत्रको पैदा करती है–वह स्त्री तिसी प्रकार गर्भ ग्रहणसे लेकर व्यायाम (कसरतका काम) आदिकोभी छोडदे क्योंकि सुश्रुतमेंही लिखाया है कि व्यायाम–वा मैथुन–अति भोजन–दिनमें सोना–रातमें जागना–शोक–डर–सवारीमें बैठना–भागकर चलना–मुर्गेकी तरह बैठना–और रुधिरका छोडना–इनको गर्भिणी स्त्री वर्जदे–इस स्त्रीको गर्भ है यह बात श्रम आदि चिन्होंसे जाननी क्योंकि सुश्रुत में ही लिखा है कि–जिसने सद्यः ही गर्भका ग्रहण किया हो उस स्त्रीको श्रम–जी मिचलाना–प्यासका लगना–सक्थि (गोडे) ओंमें दर्द होना–वीर्य और शोणित इन दोनोंकी गांठ बंधनी–और योनिका स्फुरण ये होते हैं ॥

भावार्थ–दौहृदके न देनेसे गर्भ कुत्सितरूप अथवा मरणको प्राप्त हो जाता है इससे स्त्रीको इष्ट वस्तुकी सिद्धि अवश्यही करनी चाहिये ॥ ७९ ॥

स्थैर्यंचतुर्थेत्वंगानांपंचमेशोणितोद्भवः ।
षष्ठेबलस्यवर्णस्यनखरोम्णांचसंभवः ।८०।

पद–स्थैर्यं १ चतुर्थे ७ तुऽ– अंगानां ६ पंचमे ७ शोणितोद्भवः १ षष्ठे ७ बलस्य ६ वर्णस्य ६ नखरोम्णां ६ चऽ– संभवः १ ॥

योजना–तुपुनः चतुर्थे मासि अंगानां स्थैर्यं भवति पंचमे मासि शोणितोद्भवः षष्ठे मासि बलस्य वर्णस्य चपुनः नखरोम्णां संभवो भवति ॥

तात्पर्यार्थ–भा०–तीसरे मासमें प्रकटहुए अंगोंकी स्थिरता चौथे महीनेमें होतीहै और पांचमेंमासमें रुधिरकी उत्पत्ति और छठे महीनेमें बल और वर्ण और नख–और शरीरके रोमोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ८० ॥

मनश्चैतन्ययुक्तोसौनाडीस्नायुशिरायुतः ।
सप्तमेचाष्टमेचैवत्वङ्मांसस्मृतिमानपि ८१ .

पद–मनश्चैतन्ययुक्तः १ असौ १ नाडीस्नायुशिरायुतः १ सप्तमे ७ चऽ– अष्टमे ७ चऽ– एवऽ– त्वङ्मांसस्मृतिमान् १ अपिऽ– ॥

योजना–असौ गर्भः सप्तमे मासे मनश्चैतन्ययुक्तः नाडीस्नायुशिरायुतो भवति चपुनः अष्टमे मासे त्वङ्मांसस्मृतिमान् भवति ॥

ता० भा०–यह पूर्वोक्त गर्भ सातमें महीनेमें मन–चेतना–सब शरीरमें प्राणवायुको ले जानेवाली नाडी अस्थि (हड्डी)योंको बांधनेवाली स्नायु–और वातपित्त– श्लेष्म इनको शरीरमें प्राप्त करनेवाली शिरा–इनसे

१ द्विहृदयां नारीं दौहृदिनीमाचक्षते तदभिलषितं दद्याद्वीर्यवन्तं चिरायुषं पुत्रं जनयति ।

२ ततःप्रभृति व्यायामव्यवायातितर्पणदिवास्वप्नरात्रिजागरणशोकभययानारोहणवेगधारणकुक्कुटासनशोणितमोक्षणानि परिहरेत् ।

३ सद्योगृहीतगर्भायाः श्रमोग्लानि-पिपासा सक्थिसीदनम् । शुक्रशोणितयोरवबन्धः स्फुरणं च योनेः ।

युक्त हो जाता है और आठमें महीनेमें त्वचा-मांस-और स्मृति इनसे युक्त होताहै ॥८१॥

पुनर्धात्रींपुनर्गर्भमोजस्तस्यप्रधावति ।
अष्टमेमास्यतोगर्भोजातःप्राणैर्वियुज्यते ॥

पद-पुनः ऽ- धात्रीं २ पुनः ऽ- गर्भं २ ओजः १ तस्य ६ प्रधावति क्रि- अष्टमे ७ मासि ७ अतःऽ- गर्भः १ जातः १ प्राणैः ३ वियुज्यते क्रि- ॥

योजना-तस्य (अष्टममासिकस्य) गर्भस्य ओजः धात्रीं गर्भं पुनः पुनः धावति अतः अष्टमे मासि जातो गर्भः प्राणैः वियुज्यते

तात्पर्यार्थ-उस आठ महीनेके गर्भका ओज जिसका नाम है ऐसा कोई गुण तेजरूप होताहै वह धात्री और गर्भकेप्रति वारं वार अत्यंत चंचलतासे चलायमान रहताहै इससे आठमें महीनेमें जो गर्भ पैदा होताहै वह प्राणोंसे रहित हो जाता है इससे यह बात दिखाई कि उस ओजकी स्थितिही जीवनमें कारण है- ओजका रूप स्मृत्यन्तरे में यह दिखाया है कि जो हृदयके बीचमें निर्मल और कुछ गरम पित्तकरके सहित स्थित रहता है उसको शरीरमें ओज कहते हैं-वह शरीर उस ओजके नाश होनेपर नाशको प्राप्त होजाता है॥

भावार्थ-तिस आठ महीनेके गर्भका ओज कभी धात्रीमें और कभी गर्भमें इस प्रकार बडी चंचलतासे दोडता रहता है इससे आठमें महीनेमें उत्पन्न हुआ गर्भ प्राणोंसे रहित हो है ॥ ८२ ॥

नवमेदशमेवापिप्रबलैःसूतिमारुतैः ।
निःसार्यतेबाणइवयंत्रच्छिद्रेणसज्वरः ॥८३॥

पद-नवमे ७ दशमे ७ वाऽ- अपिऽ- प्रबलैः ३ सूतिमारुतैः ३ निःसार्यते क्रि- बाणः १ इवऽ- यन्त्रच्छिद्रेण ३ सज्वरः १ ॥

योजना-नवमे वा दशमे अपि मासे प्रबलैः सूतिमारुतैः गर्भः सज्वरः यंत्रच्छिद्रेण बाण इव निःसार्यते ॥

तात्पर्यार्थ-जब गर्भ चक्षु आदि इंद्रिय और हस्त चरण आदि अंगोंसे परिपूर्ण हो जाता है तब उत्पन्न करनेमें प्रबल कारण जो वायु है वह उस गर्भको दशमें वा नौमें महीनेमें और अपि शब्दसे सप्तम और आठमें मासमें-स्नायु और हड्डी-चर्म आदिसे बनायाहुआ जो यन्त्र है उसके छिद्रके द्वारा बडेभारी दुःखोंसे पीडित करती हुई इस प्रकार निकालती है जैसे धनुषधारी पुरुष धनुषके यन्त्रसे अत्यंत वेगसे बाणको निकाल देता है-निकलनेके अनंतर जब उसके शरीरसे बाहिरकी पवनका स्पर्श होताहै तब उसको उसी समय पूर्व जन्मका स्मरण सब नष्ट होजाताहै क्योंकि निरुक्तके अठारहमें अध्यायमें यह लिखा है कि- उत्पन्न होनेके समय जब उससे वायुका स्पर्श होता है तब पूर्व जन्मके-जन्म मरण-शुभ और अशुभ कर्म इनका स्मरण जाता रहता है ॥

भावार्थ-नौमें वा दशमें महीनेमें उस गर्भको पवन योनिके छिद्रद्वारा इस प्रकार शीघ्र निकालती है जैसे धनुषसे बाण निकलता है ॥ ८३ ॥

तस्यपोढाशरीराणिषट्त्वचोधारयंतिच ।
षडंगानितथास्थ्नांचसहषष्ट्याशतत्रयम् ॥८४

पद-तस्य ६ षोढाऽ- शरीराणि १ षट् २ त्वचः २ धारयन्ति क्रि- चऽ- षट् २ अंगानि २ तथाऽ- अस्थ्नां ६ चऽ- सहऽ- षष्ट्या ३ शतत्रयम् २ ॥

१ हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीषदुष्णं सपीतकम् । ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाशमृच्छति ।

१ जातः स वायुना स्पृष्टो न स्मरति पूर्वजन्म मरणं कर्म च शुभाशुभम् ।

योजना-तस्य षोढा शरीराणि षट् त्वचः धारयन्ति चपुनः षट् अंगानि तथा अस्थ्नां षष्ट्यासह शतत्रयं धारयन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-उस आत्माके जो जरायुज-अण्डज रूप शरीर हैं वे रुधिर आदि छः धातुओंके परिपाक करनेवाली जो छः अग्नि हैं उनके स्थानके संबन्धसे छः प्रकारके होते हैं-सोई कहते हैं कि जब अन्नका रस जठर (पेट)की अग्निसे परिपाकको प्राप्त होताहै तब वह रुधिररूप होजाता है-और जब वह रुधिर अपने कोश (स्थान) की अग्निसे पकता है तब मांस हो जाताहै-वह मांस अपने कोशकी अग्निद्वारा पकनेसे मेदरूप होजाता है-वह मेद भी अपने कोशकी अग्निसे पचनेमें हड्डीरूप होता है-और वह अस्थि अपने कोशकी अग्निसे पकनेसे मज्जारूप हो जाता है-और वह मज्जाभी अपने कोशकी अग्निसे चरम धातु-रूप (वीर्य) से परिणाम (रूपान्तर)को प्राप्त होताहै-वह चरम धातु-परिणामको नहीं प्राप्त होता-वह चरम धातुही आत्माका प्रथम कोश है-इस प्रकार छः कोशकी अग्निके सम्बन्ध होनेसे शरीर छः प्रकार-के हैं-और अन्न रसरूपी जो प्रथम धातु है उसकी स्थितिका नियम न होनेसे उसकी अपेक्षाको लेकर शरीरका छः प्रकारसे अन्य प्रकार नहीं है-और वे शरीर छः त्वचाओंको धारण करते हैं-अर्थात्-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र-ये जिनके नाम हैं तैसी ये छः धातु केलाके स्तम्भकी त्वचा (वक्कल) के समान बाह्य और आभ्यन्तररूपसे स्थित हुए त्वचा (छाल)की समान आच्छादक होनेसे छः त्वचाओंको धारण करते हैं-सो यह बात आयुर्वेदमें प्रसिद्ध है-तिसी प्रकार दो हाथ-दो चरण-एक मुख-और एकगात्र इन छः अंगोंको और जो आगेके छः श्लोकोंसे कहेंगे वे ३६० तीनसौ साठ हड्डी इनको ग्रहण करता है ॥

भावार्थ-उसका छः प्रकारका शरीर छः त्वचाओंको और छः अंगोंको और तीनसौ-साठ हड्डीयोंको ग्रहण करता है-॥ ८४ ॥

स्थालैःसहचतुःषष्टिर्दंतावैविंशतिर्नखाः ।
पाणिपादशलाकाश्चतेषांस्थानचतुष्टयम् ॥

पद-स्थालैः ३ सह।- चतुःषष्टिदन्ताः १ वै।- विंशतिः १ नखाः१ पाणिपादशलाकाः१ च।-तेषां ६ स्थानचतुष्टयम् १ ॥

योजना-स्थालैः सह चतुःषष्टि (६४) दन्ताः विंशतिः नखाः चपुनः पाणिपादशलाकाः भवन्ति तेषां स्थानचतुष्टयं विज्ञेयम्॥

तात्पर्यार्थ-दांतोंके मूलके बतीस अस्थियोंको स्थाल (जड) कहते हैं उन करके सहित चौसठ-दांत होते हैं-और नख और हाथ और चरणोंकी शलाका अर्थात् शलाईके आकारकी हड्डी जो मणिबन्धके ऊपर अंगुलेयोंके मूलमें रहती हैं-वे वीश होती है-इन वीस२ नख और शलाका ओंके स्थान चार होते हैं अर्थात् दो चरण दो हाथ इस प्रकार एक सो चार १०४ अस्थि होते हैं-

भावार्थ-मूलके अस्थियों सहित चौसठ दांत और वीस२ नख और हाथ पैरोंकी शलाका होती है जिनके दो हाथ दो पैर ये चार स्थान है ॥ ८५ ॥

षष्टचंगुलीनांद्वेपाष्ण्योर्गुल्फेषुचचतुष्टयं ।
चत्वार्यरत्निकास्थीनिजंघयोस्तावदेवतु ८६

पद-षष्टिः १ अंगुलीनाम् ६ द्वे १ पाष्ण्योः ६ गुल्फेषु ७ तु।-चतुष्टयम् १ चत्वारि १ अरत्निकास्थीनि १ जंघयोः ६ तावत् १ एव।- तु।-॥

योजना-अंगुलीनां षष्टिः पाष्ण्योः द्वे गु-

ल्फषु चतुष्टयम् तुपुनः अरत्निकास्थीनि चत्वारि तुपुनः जंघयोः तावत् अस्थिसमूहो भवति–

तात्पर्यार्थ–और प्रत्येक बीस अंगुलियोंमें तीन ३ अस्थि होनेसे साठ अस्थि होते हैं–और चरणोंके पश्चिम भागको पार्ष्णि(एडी) कहते हैं उनके दो २ अस्थि होते हैं–और एक२पादमें दो दो गुल्फ (टकने) होते हैं–और उनके चार अस्थि होते हैं–अरत्नि है प्रमाण जिनका ऐसे चार अस्थि भुजा ओंमें और चार अस्थि जंघा ओंमें होते हैं–इस प्रकार चौहत्तर ७४ अस्थि होते हैं॥

भावार्थ–अंगुलीयोंमें साठ और एडीमें दो गुल्फोंमें चार और जंघाओंमें अरत्नि कितना जिनका प्रमाण है ऐसे चार अस्थि होते हैं॥ ८६॥

द्वेद्वेजानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे।
अक्षतालूषकश्रोणीफलकेचविनिर्दिशेत् ८७

पद–द्वे १ द्वे १ जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे ७ अक्षतालूषकश्रोणिफलके ७ च॰–विनिर्दिशेत् क्रि–॥

योजना–जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे चपुनः अक्षितालूषकश्रोणिफलकेद्वेद्वे अस्थी विनिर्दिशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जानु अर्थात् जंघा और उसकी संधि (गोडा) कपोल (गाल) ऊरु (सक्थि) का फलक अंस (कंधा) अर्थात् भुजाका शिर अक्ष अर्थात् कर्ण और नेत्रके मध्यमें शंखका अधोभाग तालूषक (तालवा या काकुद) श्रोणि (ककुद्मती) का फलक–इन सातोंमें प्रत्येक दो२ अस्थि होते हैं–इस प्रकार चौदह अस्थि हुए॥

भावार्थ–जानु–कपोल–ऊरुका फलक अंस अक्ष–तालु–और श्रोणिका फलक–इनमें दो२ अस्थि होते हैं॥ ८७॥

भगास्थ्येकंतथापृष्ठेचत्वारिंशच्चपंचच।
ग्रीवापंचदशास्थ्स्याज्जत्र्वेकैकंतथाहनुः॥

पद–भगास्थि १ एकम् १ तथा॰–पृष्ठे ७ चत्वारिंशत् १ च॰– पंच१ च॰–ग्रीवा १ पंचदशास्थी १ स्यात् क्रि– जत्रु १ एकैकम् २ तथा॰– हनुः१ ॥

योजना–भगास्थि एकम् तथा पृष्ठे पंच चपुनः चत्वारिंशत् अस्थीनि ४५ भवन्ति ग्रीवा पंचदशास्थी स्यात् जत्रुणी एकैकं अस्थि तथा हनुः एकास्थि भवति॥

ता॰ भा॰–भग (गुह्य)का अस्थि एक होता है और पृष्ठ (पश्चिम भाग) में ४५ पैंतालीस और ग्रीवा (कंधरा) में १५पंद्रह अस्थि होते हैं और जत्रु अर्थात् वक्षस्थल और कांधेकी सन्धि उन दोनोंमें एक२ अस्थि होता है–और हनु (ठोडी) में एक अस्थि होता है–इस प्रकार६४चौंसठ अस्थि हुए८८

तन्मूलेद्वेललाटाक्षिगंडेनासाघनास्थिका।
पार्श्वकाःस्यालकैःसार्द्धमर्बुदैश्चद्विसप्ततिः।

पद–तन्मूले ७ द्वे १ ललाटाक्षिगण्डे ७ नासा१ घनास्थिका १ पार्श्वकाः१स्यालकैः३ सार्द्ध॰– अर्बुदैः ३ च॰–द्विसप्ततिः १ ॥

योजना–तन्मूले ललाटाक्षिगण्डे द्वे अस्थिनी भवतः नासा घनास्थिका भवति स्यालकैः चपुनः अर्बुदैः सार्द्धं पार्श्वकाः द्विसप्ततिः भवंति॥

तात्पर्यार्थ–उस हनूके मूलमें और ललाट नेत्र और गण्ड (कपोल नेत्रोंका मध्यभाग) इनमें दो २ अस्थि होते हैं और नासिकामें घन नामका एक अस्थि होता है–और कक्षके नीचले प्रदेशमें जो अस्थि उन पार्श्व

कहते हैं-वे उनके आधार भूत स्थालक और अर्बुद नामके अस्थियोंसहित बहत्तर ७२ पार्श्वक होते हैं-पूर्वोक्त नौ अस्थियोंके मिलानेसे ये इकासी अस्थि होते हैं ॥

भावार्थ-हनुका मस्तक-नेत्र-गंडस्थल-इनमें दो २ अस्थि होतेहैं नासिकामें घन नामका एक अस्थि होताहै और कक्षके अधःप्रदेशके अस्थि स्थालक और अर्बुदों-सहित बहत्तर होते हैं ॥ ८९ ॥

द्वौशंखकौकपालानिचत्वारिशिरसस्तथा ।
उरःसप्तदशास्थीनिपुरुषस्यास्थिसंग्रहः ॥

पद-द्वौ १ शंखकौ १ कपालानि १ चत्वारि १ शिरसः ६ तथाऽ- उरः १ सप्तदशास्थीनि १ पुरुषस्य ६ अस्थिसंभवः १ ॥

योजना-शंखकौ द्वौ तथा चत्वारि कपालानि उरः सप्तदशास्थीनि भवन्ति अयं पुरुषस्य अस्थिसंग्रहः उक्तः ॥

ता० भा०-भृकुटी और कर्णके मध्यप्रदेशके जो अस्थि उनें शख कहते हैं- वे दो होतेहैं और शिरके कपाल चार होते हैं-उर (छाती)के अस्थि सतरहहोतेहैं इस प्रकार २३ तेईस अस्थि होते हैं- पूर्वोक्त सब अस्थियोंके मिलानेसे ३६० तीनसौ साठ अस्थि हुए इस प्रकार पुरुषके अस्थियोंका वर्णन किया ॥ ९० ॥

गंधरूपरसस्पर्शशब्दाश्चविषयाःस्मृताः ।
नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रंचेंद्रियाणि च

पद-गंधरूपरसस्पर्शशब्दाः १ चऽ- विषयाः १ स्मृताः २ नासिका १ लोचने १ जिह्वा १ त्वक् १ श्रोत्रं १ चऽ- इंद्रियाणि १ चऽ- ॥

योजना-चपुनः गंधरूपरसस्पर्शशब्दाः विषयाः स्मृताः चपुनः नासिका लोचने जिह्वा त्वक् श्रोत्रंच इंद्रियाणि भवंति ॥

ता० भा०-गंधरूप रसस्पर्शशब्द ये पुरुषके बन्धनमें हेतु होनेसे विषय कहेहैं क्योंकि विषय शब्द षिञ् बन्धने धातुका रूप है- और गंध आदि पांचों विषयोंका ज्ञान जिनसे होवे नासिका-नेत्र-जिह्वा-त्वचा-श्रोत्र रूप पांच ज्ञानेन्द्रिय होतीहैं ९२

हस्तौपायुरुपस्थंचजिह्वापादौचपंचवै ।
कर्मेंद्रियाणिजानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम्

पद-हस्तौ १ पायुः १ उपस्थं १ चऽ- जिह्वा १ पादौ १ चऽ- पंच १ वैऽ- कर्मेंद्रियाणि २ जानीयात् क्रि- मनः २ चऽ- एवऽ- उभयात्मकम् ॥

योजना-हस्तौ पायुः उपस्थं चपुनः जिह्वा पादौ एतानि पंचकर्मेंद्रियाणि जानीयात् चपुनः मनः उभयात्मकं जानीयात् ।

तात्पर्यार्थ-हस्त-पायु-(गुदा) उपस्थ (लिंग) जिह्वा-पाद-ये हस्त आदि पांच कर्मेन्द्रिय जानने-अर्थात् इनसे ग्रहण मलका त्याग-विषयका आनन्द-बोलना-गमन-ये पांचकर्म होतेहैं- और एककालमें दो आदि ज्ञानके न होनेसे जाननेयोग्य जो मन-वह ज्ञान और कर्मेन्द्रिय दोनोंका सहकारी होनेसे उभयरूप जानना ॥

भावार्थ-हाथ-गुदा-लिंग-जिह्वा-पाद ये पांच कर्मेन्द्रिय जानने और मन ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय उभयरूप जानना ॥ ९२ ॥

नाभिरोजोगुदंशुक्रंशोणितंशंखकौतथा ।
मूर्धासकंठहृदयंप्राणस्यायतनानिच ९३

पद-नाभिः १ ओजः १ गुदं १ शुक्रम् १ शोणितं १ शंखकौ १ तथाऽ- मूर्द्धासकंठहृदयं १ प्राणस्य ६ आयतनानि १ चऽ- ॥

योजना–नाभिः ओजः गुदं शुक्रं शोणितं तथा– शंखकौ मूर्द्धांसकंठहृदयं प्राणस्य आयतनानि एतानि भवन्ति ॥

ता० भा०–नाभि ओज (बल) गुदा शुक्र शोणित दोनों शंख मस्तक कांधे कण्ठ हृदय ये प्राणके दश स्थान होतेहैं– यद्यपि समान नामका पवन सम्पूर्ण अंगमें विचरता है तथापि नाभि आदि स्थान विशेषोंका कहना अधिकताके अभिप्रायसे है अर्थात् अन्यस्थानोंकी अपेक्षा इनमें समान वायु अधिक रहताहै ॥ ९३ ॥

वपावसावहननंनाभिःक्लोमायकृत्प्लिहा ।
क्षुद्रांत्रंवृक्ककौवस्तिःपुरीपाधानमेवच ९४

पद–वपा १ वसा १ अवहननम् १ नाभिः १ क्लोमा १ यकृत् १ प्लिहा १ क्षुद्रांत्रम १ वृक्ककौ १ बस्तिः १ पुरीपाधानम्१ एव– च– ॥

आमाशयोथहृदयंस्थूलांत्रंगुदएवच ।
उदरंचगुदौकोष्ठ्यौविस्तारोयमुदाहृतः९५

पद–आमाशयः १ अथ– हृदयम् १ स्थूलान्त्रम्१ गुदः१ एव– च– उदरं१ च– गुदौ १ कोष्ठ्यौ १ विस्तारः१अयं१उदाहृतः॥

योजना–वपा वसा–अवहननम् नाभिः क्लोमा यकृत् प्लिहा क्षुद्रान्त्रम् वृक्ककौ वस्तिः पुरीपाधानम्–चपुनः आमाशयः हृदयम्–स्थूलान्त्रम् चपुनः गुदः उदरं गुदौ कोष्ठ्यौ–अयं प्राणायतनस्य विस्तारः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ–वपा वसा (मांसका स्नेह) नाभि–अवहनन–(फुप्फुस) क्लोमा–यकृत्–प्लिहा (तापतिल्ली)क्षुद्रान्त्र (छोटीआंत) जो हृदयमें रहती हैं– इनमें अवहनन–और प्लीहा–मांसपिण्डाकार वाम कुक्षिमें होतेहैं– और कालिकाको यकृत् और मांसपिण्डोंको क्लोमा कहते हैं– और वृक्कक–अर्थात् हृदयके समीपमें स्थितमांसके पिण्ड–बस्ति (मूत्रस्थान) पुरीपाधान (मलाशय) आमाशय (अपक्व अन्नका स्थान)हृदय स्थूल आंत–गुदा–उदर–और बाहिरके गुद वलयसे भीतरके जो दो गुदाके वलय उनें कोष्ठ कहते हैं वे नाभिके नीचले प्रदेशमें होतेहैं– यह प्राणके स्थानोंका विस्तार कहा– पहिले श्लोकमें तो संक्षेप कहा था– इसीसे पहिले श्लोकमें कहे हुओंके मध्यमें किसि किसीका यहां फिर पाठ पढा है ॥

भावार्थ–वपा–वसा–अवहनन–नाभि–लोमा–यकृत्–प्लिहा–क्षुद्रान्त्र–वृक्कक–वस्ति–मलाशय–आमाशय–हृदय–स्थूलान्त्र–गुदा–उदर–और गुदाके भीतरके दो कोष्ठ ये प्राणोंके स्थानोंका विस्तार कहा है॥९४॥९५॥

कनीनिकेचाक्षिकूटेशष्कुलीकर्णपत्रकौ ।
कर्णौशंखौभ्रुवौदंतवेष्टावोष्ठौककुंदरे ॥९६॥

पद–कनीनिके १ च–अक्षिकूटौ १ शष्कुली १ कर्णपत्रकौ १ कर्णौ १ शंखौ १–भ्रुवौ १ दन्तवेष्टौ १ ओष्ठौ १ ककुंदरे १ ॥

वंक्षणौवृषणौवृक्कौश्लेष्मसंघातजौस्तनौ ।
उपजिह्वास्फिजौबाहूजंघोरुपुचपिंडिका ॥

पद–वंक्षणौ १ वृषणौ १ वृक्कौ १ श्लेष्मसंघातजौ १ स्तनौ १ उपजिह्वा १ स्फिजौ १ बाहू १ जंघोरुपु ७ च–पिण्डिका १

तालूदरंवस्तिशीर्षंचिबुकेगलशुंडिके ।
अवटश्चैवमेतानिस्थानान्यत्रशरीरके ९८॥

पद–तालूदरं १ बस्तिशीर्षं १ चिबुके १ गलशुण्डिके १ अवटः १ च–एवं– एतानि १ स्थानानि १ अत्र–शरीरके ७ ॥

अक्षिवर्णचतुष्कंचपद्धस्तहृदयानिच ।
नवच्छिद्राणितान्येवप्राणस्यायतनानितु ॥

पद-अक्षिवर्णचतुष्कं १ च- पद्धस्तहृदयानि १ च- नव १ छिद्राणि १ तानि १ एव-प्राणस्य ६ आयतनानि १ तु-

योजना-कनीनिके चपुनः अक्षिकूटे शष्कुली कर्णपत्रको कर्णौ शखौ भ्रुवौ दंतवेष्टौ ओष्ठौ ककुंदरे वंक्षणौ वृषणौ वृक्कौ श्लेष्मसंघातजौ स्तनौ-उपजिह्वा-स्फिजौ-बाहू-जंघोरुषु पिण्डिका-तालूदरं-बस्तिशीर्षं-चिबुके-गलशुण्डिके चपुनः अवटः एतानि अत्र शरीरके प्राणस्य स्थानानि भवन्ति-अक्षिवर्णचतुष्कं चपुनः पद्धस्तहृदयानि तान्येव नवछिद्राणि प्राणस्य आयतनानि भवन्ति ॥

ता० भा०-कनीनिका (नेत्रोंके तारे) अक्षिकूट (नेत्र और नासिकाकी सन्धि) शष्कुली (कर्णछिद्र) कर्णपत्र (कर्णपाली-) कर्ण-दन्तवेष्ट (दन्तवाली) ओष्ठ-ककुंदर-(जघनके कूप) वंक्षण (जघन और उनकी संधि) और पूर्वोक्त वृक्क-श्लेष्मके संघातसे पैदाहुए स्तन-उपजिह्वा (घंटिका) स्फिज (कटिकाप्रोथ) बाहु-जंघा और ऊरुकी पिण्डिका-अर्थात् मांसल प्रदेश-गलशुण्डिका-अर्थात् हनुका मूल और गलेकी सन्धि-अवट (शरीरमें निम्नभाग) ये इस शरीरमें प्राणके स्थान होते हैं और नेत्रकनीनिकाके समीपके चारवर्ण जो श्वेत होते हैं-चरण हाथ हृदय वेदी पूर्वोक्त नव छिद्र अर्थात् दो नासिका-दो नेत्र-दो कान-मुख पायु-उपस्थ-ये प्राणके आयतन-(रहनेके स्थान) होते हैं-॥ ९६॥९७॥९८॥९९ ॥

शिराःशतानिसप्तैवनवस्नायुशतानिच ।
धमनीनांशतेद्वेतुपंचपेशीशतानिच॥१००॥

पद-शिराः १ शतानि १ सप्त १ एव-नव १ स्नायुशतानि १ च- धमनीनां ६ शते १ द्वे १ तु-पंच-पेशीशतानि १ च-॥

योजना-सप्तशतानि शिराः चपुनः स्नायुशतानि नव धमनीनां द्वे शते पेशीशतानि पंच भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-नाभिसे मिली वात पित्त श्लेष्मको वहनेवाली चालीश शिरा होती हैं सकल शरीर व्यापिनी वे नाना शाखावाली सातसौ होती हैं-तैसेही अंग और प्रत्यंगकी संधियोंके बन्धन-स्नायु-नौसो होते हैं-नाभिसे उत्पन्न हुई चोवीस धमनी-प्राण आदि वायुओंको प्रेरणेवाली शाखाके भेदसे २०० दोसौ होती हैं-और पेशी अर्थात् मांसल है आकार जिनका और ऊरु पिण्डिका आदि अंग प्रत्यंगकी सन्धिरूप पेशी-पाचसौ होती हैं ॥

भावार्थ-सातसौ शिरा नौसौ स्नायु दोसौ धमनी पांचसौ पेशी शरीरमें होती हैं॥१००॥

एकोनत्रिंशल्लक्षाणितथानवशतानिच ।
पट्पंचाशच्चजानीतशिराधमनिसंज्ञिताः ॥

पद-एकोनत्रिंशल्लक्षाणि १ तथा-नवशतानि१च-पट्पञ्चाशत् १ च-जानीत क्रि-शिराः १ धमनिसंज्ञिताः १ ॥

योजना-शिराः धमनिसंज्ञिताः एकोनत्रिंशल्लक्षाणि तथा नवशतानि चपुनः पट्पञ्चाशत् यूयं जानीत ॥

ता० भा०-शिरा और धमनि ये दोनों मिलकर शाखाके भेदसे उनतीस लाख-नौसो छप्पन (२९००९५६) होती हैं हे सामश्रम आदि मुनियों यह तुम जानो १०१

त्रयोलक्षास्तुविज्ञेयाःश्मश्रुकेशाःशरीरिणां
सप्तोत्तरंमर्मशतंद्वेचसंधिशतेतथा ॥१०२॥

पद-त्रयः १ लक्षाः १ तु- विज्ञेयाः १ श्मश्रुकेशाः १ शरीरिणाम् ६ सप्तोत्तरंमर्मशतं १ द्वे १ च-सन्धिशते १ तथा-॥

योजना-शरीरिणां श्मश्रुकेशाः त्रयोलक्षाः

विज्ञेयाः ससोत्तरं मर्मशतं विज्ञेयं तथा द्वे सन्धिशते विज्ञेये ॥

ता० भा०–शरीरधारियोंके श्मश्रु और केश मिलकर तीन लाख होते हैं मरण और क्लेश करनेवाले मर्मस्थान १०७ एकसौसात होते हैं-और अस्थिओंकी सन्धि दोसौ होती हैं स्नायु और शिराओंकी सन्धि तो अनन्त हैं ॥ १०२ ॥

रोम्णांकोट्यस्तुपंचाशच्चतस्रःकोट्यएवच।
सप्तषष्टिस्तथालक्षाःसार्द्धाःस्वेदायनैःसह॥

पद–रोम्णां६ कोट्यः १ तु ऽ– पंचाशत् १ चतस्रः १ कोट्यः१ एव ऽ– च ऽ– सप्तषष्टिः १ तथा ऽ– लक्षाः१ सार्द्धाः १ स्वेदायनैः३सह ऽ-॥

वायवीयैर्विगण्यंतेविभक्ताःपरमाणवः ॥
यद्प्येकोऽनुवेत्त्येषांभावनांचैवसंस्थितिम्॥

पद–वायवीयैः३विगण्यन्ते क्रि–विभक्ता १ परमाणवः १ यदपि ऽ– एकः १ अनुवेत्ति क्रि– एषां ६भावानां६ च ऽ– एव ऽ– संस्थितिम् २ ॥

योजना–रोम्णां परमाणवः वायवीयैः स्वेदायनैः सह विभक्ताः पंचाशत् कोट्यः चपुनः चतस्रः कोट्यः तथा सार्द्धाः सप्तषष्टिलक्षाः विगण्यन्ते हेमुनयः यदपि एषां भावानां संस्थितिम् यः अनुवेत्ति सः एकः मुख्य इति यत्नतः ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्तशिरा और केशोंसहित रोमोंके परमाणु स्वेद झरनेके सुषिरोंसहित सूक्ष्मसे अत्यंत सूक्ष्मभाग चम्मन किडोर साडे सडसत लाख पवनके परमाणुसे पृथक् कर गिने जाते हैं यह बात शास्त्र दृष्टिसे कही हैं क्योंकि चक्षु आदि इंद्रियोके द्वारा यह विषय जाननेके अयोग्य है इस शिरा आदि भावोंकी स्थितिके अत्यन्त कठिनअर्थको हे मुनियों जो कोई जानता है वह एकही है अर्थात् प्रधान है–इससे तुमारे मध्यमें इसको जो कोई जानें वहभी तुमारे मध्यमें मुख्य है–इससे बुद्धिमान् मनुष्य भावोंकी स्थितिको यत्नसे जानें ॥

भावार्थ–रोमोंके परमाणु स्वेदके वहनेवाले वायुके परमाणुसे पृथक् कियेहुए चम्मन किडोर सडिसडसत लाख होते हैं इन भावोंकी स्थितिको जो जानता है वह मुख्य है॥ १०३॥१०४ ॥

रसस्यनवविज्ञेयाजलस्यांजलयोदश ।
ससैवतुपुरीषस्यरक्तस्याष्टौप्रकीर्तिताः ॥

पद–रसस्य ६ नव१ विज्ञेयाः १ जलस्य६ अंजलयः १ दश १ सप्त १ एव ऽ– तु ऽ– पुरीषस्य ६ रक्तस्य ६ अष्टौ १ प्रकीर्तिताः१

षट्श्लेष्मापंचपित्तंचचत्वारोमूत्रमेवच ।
वसात्रयोद्वौतुमेदोमज्जैकोर्धंतुमस्तके १०६

पद– षट् १ श्लेष्मा १ पंच१ पित्तं१ च ऽ– चत्वारः१ मूत्रम्१एव ऽ– च ऽ– वसा १ त्रयः१ द्वौ१ तु ऽ–मेदः १ मज्जा १ एकः १ अर्द्धं १ तु ऽ– मस्तके ७ ॥

श्लेष्मौजसस्तावदेवरेतसस्तावदेवतु ।
इत्येतदस्थिरंवर्ष्मयस्यमोक्षायकृत्यसौ ॥

पद–श्लेष्मौजसः६तावत्१ एव ऽ– रेतसः६ तावत् १ एव ऽ– तु ऽ– इति ऽ–एतत् १ अस्थिरम् १ वर्ष्म १ यस्य ६ मोक्षाय ४ कृती१ असौ १ ॥

योजना–रसस्य नव अंजलयः जलस्य दश अंजलयः पुरीषस्य सप्त अंजलयः रक्तस्य अष्टौ अंजलयः प्रकीर्तिताः श्लेष्मा षट् पित्तं पंच –चपुनः मूत्रं चत्वारः वसाः त्रयः मेदः द्वौ मज्जा एकः मस्तके अर्द्धं श्लेष्मौजसः तावत् (अर्द्धं) तुपुनः रेतसः तावत् अंजलयः प्रकीर्तिताः यस्य एतत्

चर्म अस्थिरम् इति बुद्धिः असौ मोक्षाय कृती भवति–मोक्षाधिकार्यस्ति इत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ–भली प्रकार परिणामको प्राप्त हुआ जो भोजन उसका जो सार उसे रस कहते हैं–उसका प्रमाण शरीरमें नौ अंजलि होता है–पृथ्वीके परमाणुका संयोग है निमित्त जिसमें ऐसे जलकी दश अंजलि जाननी और पुरीष (मल) की सात जठराग्निके परिपाकसे रक्त हुआ जो अन्नका रस उसे रक्त वा रुधिर कहते हैं उसकी आठ अंजलि होती हैं कफकी छः पित्तकी पांच मूत्रकीचार वसा (मांसका स्नेह) की तीन मेदा (मांसका रस) की दो मज्जा अर्थात् अस्थियोंमें रहनेवाला जो सुषिर उसमें स्थित रसविशेष–उसकी एक अंजलि होती है मस्तकमें आधी अंजली–कफ और वीर्यके सारकीभी आधी अंजलि होती है यह कथनभी इस अभिप्रायसे है जिसकी संपूर्ण धातु समान भावसे रहती हों और जिसकी धातु विषम हों उसका नियम नहीं क्योंकि आयुर्वेदमें यह लिखा है कि शरीरोंके अस्थायी और विलक्षणता होनेसे दोष धातु मल इनका कोई परिमाण नहीं है–इस प्रकार ऐसा अस्थि और स्नायु आदिसे रचा हुआ यह देह अस्थिर है यह जिस पुरुषकी बुद्धि है वह मनुष्य मोक्षके लिए कृती अर्थात् समर्थ है–क्योंकि वैराग्य और नित्य अनित्य वस्तुका विवेकही मोक्षका हेतु है–इसीसे व्यासनें लिखा है कि सब प्रकार अशुद्धताका निधान कृतघ्न–विनाशी–जो शरीर उसके निमित्तभी मूढ मनुष्य पापोंको करते हैं–जो इस देहका रूप–भीतर (रुधिर आदि) है यदि वह बाहिर होजाय तो यह लोक दण्डको लेकर कुत्ते और काकोंको निवारण करै–तिससे ऐसे निन्दित शरीरकी आत्यन्तिक (सर्वथा) निवृत्तिके लिये आत्माकी उपासनामें यत्न करै ॥

भावार्थ–रसकी नो अंजलि जलकी दश मलकी सात रुधिरकी आठ कफकी छः पित्तका पांच मूत्रकी चार वसाकी तीन मेदाकी दो अंजलि होती हैं–मज्जाकी एक मस्तकमें आधी अंजलि कफ और वीर्यकी आधी अंजलि होती है–यह शरीर अस्थिर है यह जिसकी बुद्धि है वह मनुष्य मोक्षको समर्थ होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

द्वासप्ततिसहस्राणिहृदयादभिनिः-
सृताः। हिताहितानामनाड्यस्तासां
मध्येशशिप्रभम् ॥ १०८॥

पद–द्वासप्ततिसहस्राणि १ हृदयात् ५ अभिनिःसृताः १ हिताहिताः १ नामऽ–नाड्यः १ तासां ६ मध्ये ७ शशिप्रभम् १॥

मंडलंतस्यमध्यस्थआत्मादीपइवाचलः ।
सज्ञेयस्तंविदित्वेहपुनराजायतेनतु १०९॥

पद–मण्डलं १ तस्य ६ मध्यस्थः १ आत्मा १ दीपः १ इवऽ–अचलः १ सः १ ज्ञेयः १ तं २ विदित्वाऽ–इहऽ–पुनःऽ–आजायते क्रि नऽ–तुऽ–॥

योजना–हृदयात् अभिनिःसृताः द्वासप्ततिसहस्राणि हिताहिता नाम नाड्यः भवन्ति तासां मध्ये शशिप्रभं मण्डलम्भवति तस्य मध्यस्थः यः दीपः इव अचलः सः आत्मा ज्ञेयः तं विदित्वा इह संसारे पुनः नआजायते

तात्पर्यार्थ–हृदयके स्थानसे निकसीहुई कदम्बके पुष्पकी केशरके समान चारों त-

१ वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च ॥ दोषधातुमलानां च परिमाणं न विद्यते ।

२ सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ॥ यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत् । दण्डमादाय लोकोयं शुनः काकांश्च वारयेत् ।

ब्रह्मको प्राप्त होता है अर्थात् सामवेदके शब्दमें लगी है चित्तकी एकाग्र वृत्ति जिसकी ऐसा पुरुष सामके गानमें कुशल हुआ शब्दाकार शून्यकी उपासनासे परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है-सोई कहाहै कि जो शब्द ब्रह्ममें कुशल है वह परब्रह्मको प्राप्त होता है यह शब्द ब्रह्मकी उपासना उसके लिये है जिसकी चित्तवृत्ति निराकारालंबन रूपसे समाधिमें न लगे-

भावार्थ-विधिपूर्वक सावधानीसे सामवेद पढताहुआ मनुष्य उसके अभ्याससे पर ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ११२ ॥

अपरांतकमुल्लोप्यंमद्रकंमकरींतथा ॥
औवेणकंसरोबिंदुमुत्तरंगीतकानिच ११३॥

पद-अपरान्तकम् १ उल्लोप्यम् १ मद्रकम् १ मकरीम् १ तथा- औवेणकम् १ सरोबिन्दुम् १ उत्तरम् १ गीतकानि १ च-॥

ऋग्गाथापाणिकादक्षविहिताब्रह्मगीतिका ।
गेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ११४

पद-ऋग्गाथा १ पाणिका १ दक्षविहिता १ ब्रह्मगीतिका १ गेयम् १ एतत् १ तदभ्यासकरणात् ५ मोक्षसंज्ञितम् १ ॥

योजना-अपरान्तकं उल्लोप्यं मद्रकं तथा मकरीं-औवेणकं- सरोबिंदुं-उत्तरं-एतानि-गीतकानि-ऋग्गाथा पाणिका दक्षविहिता ब्रह्मगीतिका-एतज्ज्ञेयं भवति तदभ्यासकरणात् मोक्षसंज्ञितम् भवतीति शेषः ॥

ता० भा०-अपरान्तक उल्लोप्य मद्रक मकरी औवेणक सरोबिंदु उत्तर ये सातगीत होतेहैं और चकारके पढनेसे आसारित वर्द्धमानक आदि महागीत लेने-और ऋग्गाथा पाणिका दक्षविहिता ब्रह्मगीतिका ये चार गीतिका होतीहैं- यह अपरांतक आदि गीतोंका समूह माना है आत्मका भाव जिसमें ऐसा और मोक्षका हेतु होनेसे मोक्ष संज्ञित माननेयोग्य है अर्थात् इनके गानेसे मोक्ष होताहै क्योंकि इसका अभ्यास एकाग्रताका संपादक होनेसे आत्माके संग जीवकी एकताका कारण है ॥११३॥११४॥

वीणावादनतत्त्वज्ञःश्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेनमोक्षमार्गंनियच्छति ॥

पद-वीणावादनतत्त्वज्ञः १ श्रुतिजातिविशारदः १ तालज्ञः १ च- अप्रयासेन ३ मोक्षमार्गं २ नियच्छति क्रि- ॥

योजना-वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः पुनः तालज्ञः पुरुषः अप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ-भरत आदि मुनियोंके कहेहुए वीणावादनके तत्त्वका ज्ञाता और जो श्रवण कीजाय वह श्रुति जो सातोंस्वरोंमें बाईस २२ प्रकारकी होती हैं कि षड्ज मध्यम धैवत ये तीनों प्रत्येक चार २ श्रुतिवाले होते हैं और ऋषभ और धैवतमें प्रत्येक तीन २ श्रुति होतीहै गांधार निषादमें प्रत्येक दो २ श्रुति होतीहैं- और स्वरोंकी जाति तो शुद्धरूप षड्ज आदि सात और संकर जाति ग्यारह इस प्रकार अठारह प्रकारकी हैं उनमें प्रवीण और ताल (गीतका परिमाण) के स्वरूपका ज्ञाता पुरुष उन स्वरोंमें अनुविद्ध (व्याप्त) ब्रह्मकी उपासनासे थोडेही परिश्रमसे मोक्षके मार्गको प्राप्त होताहै क्योंकि गानेमें ताल आदिके भंगके भयसे चित्तकी वृत्ति आत्मामें अनायाससे हो जाती है ॥

भावार्थ-वीणा बजानेके तत्त्वका ज्ञाता श्रुतियोंकी जातिमें चतुर और तालका

१ शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधि गच्छति ।

ज्ञाता पुरुष बिना परिश्रमही मोक्षमार्गको प्राप्त हो जाता हैं ॥ ११५ ॥

गीतज्ञोयदियोगेननाप्नोतिपरमंपदम् ।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वातेनैवसहमोदते॥११६॥

पद–गीतज्ञः १ यदिऽ– योगेन ३ नऽ– आप्नोति क्रि– परमं २ पदम् २ रुद्रस्य ६ अनुचरः १ भूत्वाऽ– तेन ३ एवऽ–सहऽ– मोदते क्रि– ॥

योजना–यदि गीतज्ञः पुरुषः योगेन परमं पदं न आप्नोति तर्हि रुद्रस्य अनुचरः भूत्वा तेन एव सह मोदते ॥

ता० भा०–चित्तके विक्षेप आदि विघ्नसे हतेहुयेकोभी अन्यफल कहते हैं कि यदि गीतका ज्ञाता किसी प्रकारसे योगके द्वारा परम पदको प्राप्त न होय तो रुद्रका मंत्री अगिले जन्ममें होकर रुद्रके संगही क्रीडा करता है ॥ ११६ ॥

अनादिरात्माकथितस्तस्यादिस्तुशरीरकम्
आत्मनस्तुजगत्सर्वंजगतश्चात्मसंभवः११७

पद–अनादिः १ आत्मा १ कथितः १ तस्य ५ आदिः १ तुऽ– शरीरकम् १ आत्मनः ६ तुऽ– जगत् १ सर्वम् १ जगतः ५ चऽ-आत्मसंभवः १ ॥

योजना–आत्मा अनादिः कथितः तस्य आदि शरीरकं भवति सर्वं जगत् आत्मनः [illegible] भवति चपुनः जगतः आत्मसंभवः भवति [illegible] शेषः ॥

ता० भा०–पूर्वोक्त रीतिसे आत्मा (क्षेत्रज्ञ वा जीव) अनादि कहाहै और शरीरका ग्रहण करनाही उसकी आदि (जन्म) कहाहै ऐसे सब जगत् आत्मासे होताहै और उत्पन्नहुये उस पृथिवी आदि भूतोंके समूहसे स्थूल शरीर रूपसे आत्माका संभव (जन्म) सर्ग आदिमें कहा है कि वह आत्मा आकाश आदिके अनुसार है ॥ ११८ ॥

कथमेतद्विमुह्यामःसदेवासुरमानवम् ॥
जगदुद्भूतमात्माचकथंतस्मिन्वदस्वनः ॥

पद–कथंऽ-एतत् १ विमुह्यामः क्रि–सदेवासुरमानवम् १ जगत् १ उद्भूतं १ आत्मा १ चऽ-कथंऽ-तस्मिन् ७ वदस्व क्रि– नः ६ ॥

योजना–सदेवासुरमानवम् एतत् जगत् कथं उद्भूतं चपुनः तस्मिन् आत्मा कथं उद्भूतः एतस्मिन् वयं विमुह्यामः नः (अस्माकं) त्वं विस्तरेण वदस्व ॥

ता०भा०–जो यह देवता असुर मनुष्य सहित संपूर्ण जगत् है वह आत्माके सकाशसे कैसे उत्पन्न हुआ और उस जगत्में आत्मा कैसे तिरछी योनि मनुष्य सर्प आदि शरीरधारी होता है–इस विषयमें हम मोहको प्राप्त होतेहैं इससे मोह दूर करनेके लिये हमारे प्रति विस्तारसे कहो ॥ ११८ ॥

मोहजालमपास्येहपुरुषोदृश्यतेहियः ॥
सहस्रकरपन्नेत्रःसूर्यवर्चाःसहस्रकः ११९॥

पद–मोहजालं२ अपास्यऽ- इहऽ- पुरुषः१ दृश्यते क्रि–हिऽ-यः१सहस्रकरपन्नेत्रः१सूर्यवर्चाः १ सहस्रकः १ ॥

सआत्माचैवयज्ञश्चविश्वरूपःप्रजापतिः ।
विराजःसोन्नरुपेणयज्ञत्वमुपगच्छति १२०

पद–सः१ आत्मा१चऽ- एवऽ-यज्ञः१ चऽ-विश्वरूपः १ प्रजापतिः १ विराजः १ सः १ अन्नरूपेण ३ यज्ञत्वं २ उपगच्छति क्रि–॥

योजना–मोहजालं अपास्य इह यः पुरुषः सहस्रकरपन्नेत्रः सूर्यवर्चाः सह–

१ स यथाकाशम् ।

सकः दृश्यते सआत्मा चपुनः यज्ञः विश्वरूपः प्रजापतिः विराजः अस्ति सः आत्मा अन्नरूपेण यज्ञत्वं उपगच्छति (प्राप्नोति)॥

तात्पर्यार्थ-इस जगत्में जो यह स्थूल शरीर आदि आत्मासे भिन्नमें आत्माका अभिमानरूप मोहजाल है उसको दूर करके-और उससे भिन्न जो अनेक चरण हाथ नेत्रवाला और सूर्यके समान तेजधारी अनंत किरण और अनेक शिरवाला दीखता है वह आत्मा है यह इससे कहा है कि तिस२ पदार्थकी शक्तिका आधार वह आत्मा है क्योंकि उस आत्माको साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) आदिके संबंधका अभाव है और यज्ञ प्रजापति है क्योंकि वह विश्वरूप (सर्वरूप) है क्योंकि वह विराज है इससे पुरोडाश आदि अन्न रूपसे यज्ञके रूपको प्राप्त होता है और यज्ञसे वृष्टि आदिके द्वारा प्रजाकी रचना होती है इस प्रकार आत्मा विश्वरूपहै॥

भावार्थ-मोहके जालको दूर करके जो पुरुष अनेक करचरण नेत्रधारी सूर्यके समान तेजस्वी-और अनेक शिरधारी दीखता है वह आत्मा है और वही यज्ञ प्रजापति विश्वरूप है-क्योंकि वह विराजरूप अन्यरूपसे यज्ञ रूपको प्राप्त होता है॥१२०॥

योद्रव्यदेवतात्यागसंभूतोरसउत्तमः ।
देवान्संतर्प्यसरसोयजमानंफलेनच १२१

पद- यः १ द्रव्यदेवतात्यागसंभूतः १ रसः १ उत्तमः १ देवान्२ संतर्प्यऽ-सरसः१ यजमानं २ फलेन ३ चऽ-॥

संयोज्यवायुनासोमंनीयतेरश्मिभिस्ततः ।
ऋग्यजुःसामविहितंसौरंधामोपनीयते१२२

पद-संयोज्यऽ-वायुना ३ सोमम् २ नीयते क्रि-रश्मिभिः ३ ततःऽ- ऋग्यजुःसामविहितं २ सौरं २ धाम २ उपनीयते क्रि- ॥

स्वमंडलादसौसूर्यःसृजत्यमृतमुत्तमम् ।
यज्जन्मसर्वभूतानामशनानशनात्मनाम् ॥

पद-स्वमण्डलात् ५ असौ १ सूर्यः १ सृजति क्रि-अमृतं२ उत्तमं२ यत् १ जन्म१ सर्वभूतानां ६ अशनानशनात्मनां ६ ॥

तस्मादन्नात्पुनर्यज्ञःपुनरन्नंपुनःक्रतुः ।
एवमेतदनाद्यंतंचक्रंसंपरिवर्तते १२४

पद-तस्मात् ५ पुनःऽ- यज्ञः १ पुनःऽ- अन्नं१पुनःऽ- क्रतुः१ एवंऽ- एतत्१ अनाद्यन्तम् १ चक्रं १ सम्परिवर्तते क्रि- ॥

योजना- द्रव्यदेवतात्यागसंभूतः यः उत्तमः रसः सः रसः देवान् संतर्प्य चपुनः यजमानं फलेन संयोज्य वायुना सोमं नीयते ततः रश्मिभिः ऋग्यजुःसामविहितं सौरं धाम उपनीयते असौ सूर्यः स्वमण्डलात् तत् उत्तमं अमृतं सृजति यत् अशनानशनात्मनां सर्वभूतानां जन्म तस्मात् अन्नात् पुनः यज्ञः पुनः अन्नं पुनः क्रतुः भवति एवं एतत् अनाद्यन्तं चक्रं संपरिवर्तते ॥

तात्पर्यार्थ-चरु पुरोडाश आदि द्रव्यका जो देवताके निमित्त त्याग उससे जो आत्माका परिणामान्तर अदृष्टरूप और संपूर्ण जगत्का बीज होनेसे अत्यन्त उत्तम जो रस पैदा होता है वह रस संप्रदान कारकरूप देवताओंको भलीप्रकार तृप्त करके और यजमानको वांछित फलसे करके पवनकी प्रेरणासे चंद्रमण्डलके प्रति प्राप्त किया जाता है फिर चंद्रमण्डलसे किरणोंके द्वारा ऋग्वेद- यजुर्वेद-सामवेदरूप सूर्यमण्डलके प्रति प्राप्त किया जाता है वह सूर्य अपने मण्डलसे उस वृष्टिरूप उत्तम रसको रचता है जो चर अचर संपूर्ण भूतोंके निमित्त होता है वृष्टिसे पैदाहुए और प्रजाकी उत्पत्तिके हेतुरूप उस अन्नसे-फिर यज्ञ

सहस्रों योनियोंमें चाण्डाल आदि अन्त्यज और काक आदि पक्षी और वृक्ष आदि स्थावर रूपको प्राप्त होता है-तिससे अविद्याके सम्बन्धसेही आत्माका जन्म है स्वरूपसे नहीं ॥

भावार्थ-यह जीव मन वाणी काया कर्मोंसे किये हुए दोषोंसे अन्त्यज और पक्षी और स्थावर भावको प्राप्त होता है ॥१३१॥

अनंताश्चयथाभावाःशरीरेषुशरीरिणाम् ।
रूपाण्यपितथैवेहसर्वयोनिषुदेहिनाम् १३२

पद-अनन्ताः १ चऽ- यथाऽ- भावाः १ शरीरेषु ७ शरीरिणां ६ रूपाणि१ चऽ- तथाऽ- एवऽ-इहऽ-सर्वयोनिषु ७ देहिनां ६ ॥

योजना-शरीरिणां शरीरेषु यथा भावाः अनन्ता भवन्ति तथा देहिनां सर्वयोनिषु रूपाणि भवन्ति ॥

ता० भा०-जैसे शरीरोंके विषै जीवोंके भाव (अभिप्राय) सत्त्व आदि गुणोंकी अधिकताके तारतम्यसे अनन्त होते हैं तैसेही देहधारियोंके कुब्ज वामन आदि रूपभी अनन्त होते हैं ॥ १३२ ॥

विपाकःकर्मणांप्रेत्यकेषांचिदिहजायते ।
इहवामुत्रवैकेषांभावस्तत्रप्रयोजनम् १३३

पद-विपाकः १ कर्मणां ६ प्रेत्यऽ- केषांचित्ऽ- इहऽ- जायते क्रिऽ- इहऽ- वाऽ-अमुत्रऽ- वैऽ-केषां ६ भावः १ तत्रऽ- प्रयोजनम् १ ॥

योजना-कर्मणां विपाकः प्रेत्य केषांचित् इह जायते केषांचित् इह वा अमुत्र जायते तत्र प्रयोजनं भावः अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि कुब्ज आदिरूप कर्मोंसे पैदा होते हैं तो कर्मके पीछेही तत्काल होने चाहियें इसलिये कहते हैं कि किनहीं२ कर्मोंका (ज्योतिष्टोम आदि) विपा[illegible] (फल) प्रेत्य (अन्य देह) में होताहै और किसी २ कारीरी यज्ञ आदिकर्मका फल (वृष्टिआदि) यहां ही होता है और किसी २ चित्र आदिका फल पशुआदि इसदेहमें वा अन्य देहमें अनियमसें होताहै कुछ शास्त्रका यह तात्पर्य नहीं है कि कर्मके अनंतरही कर्मका फल हो जाय और यहां कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी जनकतामें सत्त्व आदि भावही प्रयोजकहै क्यों कि फलोंका तारतम्य उसकेही आधीन है ॥

भावार्थ-किसी कर्मका फल अन्य जन्ममें और किसीका फल इस जन्ममें और किसीका फल इस जन्ममें वा अन्य जन्ममें होताहै उसमें प्रयोजक सत्त्व आदि भाव होता है ॥ १३३ ॥

परद्रव्याण्यभिध्यायंस्तथानिष्टानिचिंतयन् ।
वितथाभिनिवेशीचजायतेंत्यासुयोनिषु ॥

पद-परद्रव्याणि २ अभिध्यायन् १ तथाऽ- अनिष्टानि २ चिंतयन् १ वितथाभिनिवेशी१ चऽजायते क्रि- अंत्यासु७ योनिषु७॥

योजना-परद्रव्याणि अभिध्यायन् तथा अनिष्टानि चिंतयन् च पुनः वितथाभिनिवेशी पुरुषः अंत्यासु योनिषु जायते-॥

तात्पर्य भावार्थ-पराये द्रव्योंको कैसे चुराऊं यह अभिमुख होकर ध्यान करता हुआ और हिंसा आदि अनिष्टोंकी चिंता करता हुआ और झूटी वस्तुमें आग्रह करता हुआ मनुष्य चांडाल आदि अंत्य योनियोंमें उत्पन्न होताहै-॥ १३४ ॥

पुरुषोनृतवादीचपिशुनःपरुषस्तथा ।
अनिबद्धप्रलापीचमृगपक्षिषुजायते १३५॥

पद-पुरुषः१अनृत वादी १ चऽ- पिशुनः१ परुषः १ तथाऽ-अनिबद्धप्रलापी १ चऽ- [illegible]पक्षिषु ७ जायते क्रि- ॥

योजना–अनृतवादी च पुनः पिशुनः तथा परुषः च पुनः अनिबद्धप्रलापी पुरुषः मृगपक्षिषु जायते ॥

तात्पर्यभावार्थ–झूट बोलनेवाला और पिशुन (चुगलखोर) और परुष (कठोर) जिसकी वाणीसे दूसरा डरै और अनिबद्धप्रलापी अर्थात् प्रकरणके असंगत अर्थका कहनेवाला पुरुष जानकर वा विनाजानें वृत्तिके तारतम्यसे हीन और उत्तम मृगपक्षियोंमें अपनी वृत्तिके अनुसार पैदा होता है१३५

अदत्तादाननिरतःपरदारोपसेवकः ।
हिंसकश्चाविधानेनस्थावरेष्वभिजायते ॥

पद–अदत्तादाननिरतः १ परदारोपसेवकः१ हिंसकः १ च ऽ– अविधानेन ३ स्थावरेषु ७ अभिजायते क्रि ॥

योजना–अदत्तादाननिरतः परदारोपसेवकः च पुनः अविधानेन हिंसकः पुरुषः स्थावरेषु अभिजायते ॥

तात्प॰भावार्थ–विना दिये पदार्थके ग्रहण करनेमें तत्पर (चोर) पराई स्त्रीमें आसक्त और शास्त्रोक्त विधिके विना प्राणियोंका हिंसक मनुष्य दोषके गुरु लघु भावके अनुसार वृक्षलताप्रतान आदि स्थावरोंमें उत्पन्न होता है ॥ १३६ ॥

आत्मज्ञःशौचवान्दांतस्तपस्वीविजितेंद्रियः
धर्मकृद्वेदविद्याविस्सात्त्विकोदेवयोनिताम्॥

पद–आत्मज्ञः १ शौचवान् १ दांतः १ तपस्वी १ विजितेंद्रियः १ धर्मकृत् १ वेदविद्यावित् १ सात्त्विकः १ देवयोनिताम्२ ॥

योजना–आत्मज्ञः शौचवान् दांतः तपस्वी विजितेंद्रियः धर्मकृत् वेदविद्यावित् १ सात्त्विकः पुरुषः देवयोनिताम् प्राप्नोति॥

तात्पर्यार्थभावार्थ–आत्मज्ञानी अर्थात विद्या धन अभिजन आदिके अभिमानसे रहित और बाह्य (देहका) और आभ्यंतरके शौचसे युक्त दांत अर्थात् शांतचित्त और तपस्वी (कृच्छ्रआदि तपसे युक्त) और इंद्रियोंकी विषयोंमें आसक्तिसे रहित और नित्य नैमित्तिक कर्मोंके करनेमें तत्पर और वेदके अर्थका ज्ञाता जो सात्विक (सत्त्वगुणी) मनुष्य सत्त्वगुणके तारतम्यसे उत्तम और अत्यंत उत्तम देवयोनियोंमें उत्पन्न होता है ॥ १३७ ॥

असत्कार्यरतोधीरआरंभीविषयी च यः ।
सराजसोमनुष्येषुमृतोजन्माधिगच्छति ॥

पद–असत्कार्यरतः१ अधीरः १ आरंभी१ विषयी १ च ऽ– यः १ सः १ राजसः १ मनुष्येषु ७ मृतः१ जन्म २ अधिगच्छति क्रि-॥

योजना–असत्कार्यरतः अधीरः आरंभी च पुनः विषयी यः अस्ति सः राजसः पुरुषः मृतः सन् मनुष्येषु जन्म अधिगच्छति (प्राप्नोति) ॥

तात्प॰भावार्थ–तूर्य वादित्र नृत्य आदि असत्कर्मोंमें रत और अधीर (व्यग्रचित्त) आरंभी अर्थात् सदैव कार्योंमें व्याकुल और विषयोंमें अत्यंत आसक्त जो पुरुष है वह रजोगुणी मनुष्य मरकर रजोगुणके न्यून-अधिक भावके अनुसार हीन और उत्तम मनुष्य जातियोंमें जन्मको प्राप्त होताहै ॥ १३८ ॥

निद्रालुःक्रूरकृल्लुब्धोनास्तिकोयाचकस्तथा॥
प्रमादवान्भिन्नवृत्तोभवेत्तिर्यक्षुतामसः ॥

पद–निद्रालुः १ क्रूरकृत् १ लुब्धः १ नास्तिकः १ याचकः१ तथाऽ–प्रमादवान् १ भिन्नवृत्तः१ भवेत् क्रि–तिर्यक्षु७ तामसः१ ॥

योजना–निद्रालुः क्रूरकृत् लुब्धःनास्तिकः तथा याचकः प्रमादवान् भिन्नवृत्तः तामसः पुरुषः तिर्यक्षु योनिषु भवेत् ॥

ता० भा०-आत्माके रचनेका प्रकार कहतेहैं जैसे कुलाल मिट्टी चक्र चीवर आदिके संयोग (लेना)से घट करक शराव आदि नाना प्रकारके कार्यसमूहको और गृहकारक (वर्द्धकिः) अर्थात् राजतृण मिट्टी काष्ठ जो परस्पर सापेक्ष हैं उनसे एक गृह (घर) रूप कार्यको करता है-और जैसे हेमकारक (सुनार) केवल सुवर्णको लेकर सुवर्णके अनुरूप कडे-मुकुट-कुंडल-आदि कार्यको उत्पन्न करता है-और जैसे कोशकारक (कीटविशेष अंजनहारी नामसे प्रसिद्ध) अपनी लालके संयोगसे अपने बंधनरूप कोशको रचता है तिसीप्रकार आत्माभी पृथिवी आदि परस्पर सापेक्षकारणों (साधन) को और श्रोत्र आदि करणोंको ग्रहण करके इस संसारके विषै तिसर देव आदि योनियोंमें आपही अपने बंधन रूप शरीरको रचता है॥१४६॥१४७॥१४८॥

महाभूतानिसत्यानियथात्मापितथैवहि ॥
कोन्यथैकेननेत्रेणदृष्टमन्येनपश्यति १४९॥

पद-महाभूतानि १ सत्यानि १ यथा॰-आत्मा १ अपि॰-तथा॰-एव॰-हि॰- कः १ अन्यथा॰- एकेन ३ नेत्रेण ३ दृष्टं २ अन्येन ३ पश्यति क्रि- ॥

योजना-यथा महाभूतानि सत्यानि तथा एव आत्मा अपि सत्यः अन्यथा एकेन नेत्रेण दृष्टं अन्येन कः पश्यति (जानाति) ॥

ता० भा०-अब विषयोंके जाननेवाली ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्माके होनेमें प्रमाण कहते हैं-जैसे पृथिवी आदि महाभूत-प्रमाणोंसे जानने योग्य होनेसे सत्य हैं तिसीप्रकार आत्माभी सत्य है अन्यथा (सत्य न मानोगे तो) अर्थात् ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न ज्ञाता ध्रुव (नित्य) न होगा तो एकचक्षु इंद्रियसे देखी हुयी वस्तुको अन्य स्पर्श (त्वचा) इंद्रियसे कौन जानैगा कि जिसको मैं देखा उसकाही मैं स्पर्श करताहूं १४९॥

वाचंवाकोविजानातिपुनःसंश्रुत्यसंश्रुताम् ॥
अतीतार्थस्मृतिःकस्यकोवास्वप्नस्यकारकः

पद-वाचं २ वा॰-कः १ विजानाति क्रि-पुनः॰- संश्रुत्य॰-संश्रुताम् २ अतीतार्थस्मृतिः १ कस्य ६ कः १ वा॰- स्वप्नस्य ६ कारकः १॥

जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिरहंकृतः ।
शब्दादिविषयोद्योगंकर्मणामनसागिरा ॥

पद-जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिः ३ अहंकृतः १ शब्दादिविषयोद्योगं २ कर्मणा ३ मनसा ३ गिरा ३ ॥

योजना-संश्रुत्य संश्रुतां वाचं पुनः कः वा विजानाति-अतीतार्थस्मृतिः कस्य भवेत् वा स्वप्नस्य कारकः कः भवेत्-जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिः अहंकृतः कः भवेत्-कर्मणा मनसा गिरा शब्दादिविषयोद्योगं कः कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-तैसेही किसी पुरुषकी वाणीको पहिले सुनकर उस सुनीहुयी वाणीको यह उसकी वाणी है यह कौन जानैगा तिससे ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्मा है यह सिद्ध हुआ और जो आत्मा नित्य न होता तो पहिले देखे (जाने) हुये पदार्थका स्मरण जो पूर्व अनुभवसे उत्पन्न हुये संस्कारके उद्बोधसे होता है वह किसको होगा क्योंकि अन्यकी देखी हुयी वस्तुका स्मरण अन्यको नहीं होसकता तैसेही स्वप्नका करनेवाला कौन होगा शांतहुआ है व्यापार जिनका ऐसी इंद्रिय उस स्वप्नके करनेवाली नहीं हो सकती तैसे मैंही जातिरूप अवस्था आचरण विद्या आदिसे संपन्न हूं इस अनुसंधानकी प्रतीति स्थिर आत्मासे भिन्न किसको होगी तैसेही शब्द स्पर्श आदि विष-

योंके भोगनेके लिए मन काया वाणीसे उद्योग को न करेगा तिससे ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्मा स्थित भया ॥

भावार्थ-पहिले सुनी वाणीको उसकी यह वाणी है यह कौन जानेगा वीतेहुये पदार्थकी स्मृति और स्वप्न किसीको होगा-और जाति रूप अवस्था आचरण विद्या आदिसे अहंकार किसको होगा और कर्म मन वाणीसे शब्द आदि विषयोंका उद्योग कौन करेगा यदि ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्माको न मानोगे तिससे आत्मा इंद्रियोंसे भिन्नहै ॥१५०॥१५१

ससंदिग्धमतिःकर्मफलमस्तिनवेतिवा ॥
विप्लुतःसिद्धमात्मानमसिद्धोपिहिमन्यते ॥

पद-सः१ संदिग्धमतिः १ कर्मफलं१ अस्ति क्रि-नऽ-वाऽ-इतिऽ-वाऽ-विप्लुतः१सिद्धं२ आत्मानं २ असिद्धः१अपिऽ-हिऽ-मन्यते क्रि-॥

योजना-यः आत्मा विप्लुतः सः कर्मफलं अस्ति न वा इति संदिग्धमतिः भवति असिद्धः अपि आत्मानं सिद्धं मन्यते ॥

ता० भा०-उपासना विशेषकी सिद्धिके लिये संसारके स्वरूपका विवरण करते हैं जो यह पूर्वोक्त आत्मा विप्लुत अर्थात् अहंकारसे दूषित है यह सब कर्मोंमें फल है वा नहीं है इस प्रकार संदिग्ध बुद्धि होजाती है और तैसेही असिद्ध (अकृतार्थ)भी अपने आत्माको सिद्ध (कृतार्थ) मानता है॥१५२॥

ममदाराःसुतामात्याअहमेषामितिस्थितिः।
हिताहितेषुभावेषुविपरीतमतिःसदा १५३॥

पद-मम ६ दाराः१ सुतामात्याः १अहं१ एषां ६ इतिऽ- स्थितिः १ हिताहितेषु ७ भावेषु ७ विपरीतमतिः १ सदाऽ-॥

योजना-मम दाराः सुतामात्याः संति एषां अहं स्वामी अस्मि इति तस्य स्थितिः भवति सदा हिताहितेषु भावेषु विपरीतमतिः भवति ॥

ता० भा०-और तिस नष्ट बुद्धिकी दारा (स्त्री) पुत्र मंत्री मेरे हैं और मैं इनका स्वामी हूं इस प्रकार अत्यंत ममतासे व्याकुल स्थिति होती है और तैसेही हित अहितकारी कार्यके समूहमें सदैव विपरीत मति रहता है अर्थात् हितको अहित और अहितको हित समझता है ॥ १५३ ॥

ज्ञेयज्ञेप्रकृतौचैवविकारेवाविशेषवान्
अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी १५४

पद-ज्ञेयज्ञे ७ प्रकृतौ७ चऽ-एवऽ-विकारे७ वाऽ- अविशेषवान् १ अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी १ ॥

एवंवृत्तोविनीतात्मावितथाभिनिवेशवान् ।
कर्मणाद्वेषमोहाभ्यामिच्छयाचैवबद्ध्यते ॥

पद-एवंवृत्तः १ अविनीतात्मा १ वितथाभिनिवेशवान् १ कर्मणा ३ द्वेषमोहाभ्यां ३ इच्छया ३ चऽ- एवऽ- बद्ध्यते क्रि -॥

योजना-ज्ञेयज्ञे च पुनः प्रकृतौ वा विकारे अविशेषवान् भवति अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी भवेत् एववृतः अविनीतात्मा वितथाभिनिवेशवान् सन् कर्मणा द्वेषमोहाभ्यां च पुनः इच्छया बद्ध्यते ॥

ता० भा०-ज्ञेयके जाननेवाले आत्मामें आत्माके तीनों गुणोंकी साम्यअवस्थारूप प्रकृतिमें और अहंकार आदि विकारोंमें विवेकका ज्ञान नष्टबुद्धिको नहीं होता और तैसेही अनशन (भोजनका त्याग) अग्नि और जलमें प्रवेश इनमें उद्यम करता है इस प्रकार नानाप्रकारके अनर्थोंमें प्रवृत्तहुआ नहीं वशीभूत मन जिसके ऐसा असत्कर्मके आग्रहसे युक्त मनुष्य उस आग्र-

इसे किये कर्मोसे और रागद्वेष और मोहसे बंधनको प्राप्त होताहै ॥१५४-१५५॥

आचार्योपासनंवेदशास्त्रार्थेषुविवेकिता ॥
तत्कर्मणामनुष्ठानंसंगःसद्भिर्गिरःशुभाः ॥

पद–आचार्योपासनं १ वेदशास्त्रार्थेषु ७ विवेकिता १ तत्कर्मणां६ अनुष्ठानं १ संगः१ सद्भिः ३ गिरः १ शुभाः १ ॥

स्त्र्यालोकालंभविगमःसर्वभूतात्मदर्शनम् ॥ त्यागःपरिग्रहाणांचजीर्णकाषायधारणम् ॥ १५७ ॥

पद–स्त्र्यालोकालंभविगमः १ सर्वभूतात्मदर्शनम् १ त्यागः १ परिग्रहाणां ६ चऽ-जीर्णकाषायधारणम् १ ॥

विषयेंद्रियसंरोधस्तंद्रालस्यविवर्जनम् ।
शरीरपरिसंख्यानंप्रवृत्तिष्वघदर्शनं१५८॥

पद–विषयेन्द्रियसंरोधः १ तंद्रालस्यविवर्जनम् १ शरीरपरिसंख्यानम्१ प्रवृत्तिषु७ अघदर्शनम् १ ॥

नीरजस्तमसासत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहताशमः ।
एतैरुपायैःसंशुद्धःसत्त्वयोग्यमृतीभवेत् ॥

पद–नीरजस्तमसा ३ सत्त्वशुद्धिः१ निःस्पृहता १ शमः १ एतैः ३ उपायैः ३ संशुद्धः १ सत्त्वयोगी १ अमृती १ भवेत् क्रि–॥

योजना–आचार्योपासनं वेदशास्त्रार्थेषु विवेकिता तत्कर्मणाम् अनुष्ठानं सद्भिः संगः शुभा गिरः स्त्र्यालोकालंभविगमः सर्वभूतात्मदर्शनम् च पुनः परिग्रहाणां त्यागः जीर्णकाषायधारणं विषयेन्द्रियसंरोधः तंद्रालस्यविवर्जनम् शरीरपरिसंख्यानम् च पुनः प्रवृत्तिषु अघदर्शनम् नीरजस्तमसा सत्त्वशुद्धिः निःस्पृहता शमः एतैः उपायैः संशुद्धः सत्त्वयोगी अमृती भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ–भा० विद्याके लिए आचार्यकी सेवा वेदान्त और पातंजल आदि शास्त्रोंका विवेक और उनमें कहेहुए ज्ञान और धर्मोंको करना सत्पुरुषोंका संग प्रिय और हित वचन कहना स्त्रियोंके दर्शन और स्पर्शका त्याग सब भूतोंमें आत्माके समान देखना और पुत्र क्षेत्र कलत्र आदि परिग्रहोंका त्याग जीर्ण काषाय वस्त्रोंको धारना और शब्द स्पर्श विषयोंमें श्रोत्र आदि इंद्रियोंकी प्रवृत्तिको रोकना तंद्रा और आलस्यका त्याग और शरीरकी अशुद्ध आदि अवस्थाका स्मरण और संपूर्ण गमन आदि प्रवृत्तियोंमें सूक्ष्म २ प्राणियोंके वधको देखना रजोगुण और तमोगुण रहित प्राणायाम आदिसे अन्तःकरणकी शुद्धि विषयोंकी इच्छाका त्याग बाह्य इंद्रिय और अंतःकरणको रोकना इन आचार्य आदिकी सेवा आदि उपायोंसे शुद्धहुआ मनुष्य ब्रह्मकी उपासनासे मुक्त होता है ॥ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्त्वयोगात्परिक्षयात्।
कर्मणांसन्निकर्षाचसतांयोगःप्रवर्तते १६०

पद–तत्त्वस्मृतेः६ उपस्थानात्५सत्त्वयोगात् ५ परिक्षयात् ५ कर्मणां ६ सन्निकर्षात् ५ चऽ–सतां६ योगः १ प्रवर्तते क्रि–॥

योजना–तत्त्वस्मृतेः उपस्थानात् सत्त्वयोगात् कर्मणां परिक्षयात् चपुनः सतां सन्निकर्षात् योगः प्रवर्तते ॥

ता० भा०–आत्मरूप तत्त्वकी निश्चल स्थितिसे और सत्व शुद्धिके योगसे और कर्मबीजोंके नाशसे और सत्पुरुषोंके संगसे आत्मयोगकी प्रवृत्ति होती है ॥ १६० ॥

शरीरसंक्षयेयस्यमनःसत्त्वस्थमीश्वरम् ॥
अविप्लुतमतिःसम्यग्जातिसंस्मरतामियात्।

पद-शरीरसंक्षये ७ यस्य ६ मनः १ सत्वस्थं २ ईश्वरं २ अविप्लुतमतिः १ सम्यक्ऽ- जातिसंस्मरतां २ इयात् क्रि- ॥

योजना-यस्य शरीरसंक्षये मनः सत्वस्थं ईश्वरं प्रति व्याप्रियते सः अविप्लुतमतिः सम्यक् जातिसंस्मरतां इयात् ॥

तात्पर्यार्थ-नहीं नष्ट है बुद्धि जिसकी ऐसे जिस योगीका सत्व गुणसे युक्त मन मरणके समय ईश्वरमें लगता है-वह यद्यपि उपासनाके प्रयोगमें अप्रवीण होनेसे आत्मज्ञानको प्राप्त नहीं होता तथापि उत्तम संस्कारकी श्रेष्ठताके वशसे जन्मांतरमें देखे हुए जो कृमि कीट आदि नाना गर्भवासोंके दुःख उनके स्मरणको प्राप्त होताहै-अर्थात् उसे पूर्वजन्मके दुःखोंका ज्ञान हो जाता है और उन दुःखोंके स्मरणसे पैदा हुआहै उद्वेग जिसको ऐसा वह उस दुःखोंके नाशक मोक्षमें प्रवृत्त होजाता है ॥

भावार्थ-जिस योगीका सत्वगुणी मन मरणके समय ईश्वरमें लगता है भली प्रकार स्थिरबुद्धि वह पूर्व जन्मके स्मरणको प्राप्त होता है ॥ १६१ ॥

यथाहिभरतोवर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् ॥
नानारूपाणिकुर्वाणस्तथात्माकर्मजास्तनूः

पद-यथाऽ- हिऽ- भरतः१ वर्णैः ३ वर्णयति क्रि- आत्मनः६ तनुं२ नानाऽ-रूपाणि२ कुर्वाणः १ तथाऽ- आत्मा १ कर्मजाः १ तनूः २ ॥

योजना-नाना रूपाणि कुर्वाणः भरतः (नटः) यथा आत्मनः तनुं वर्णैः वर्णयति तथा आत्मा आत्मनः कर्मजाः तनूः वर्णयति

ता०भा०जैसे राम रावण आदि नाना रूपोंको करता हुआ नट शुक्ल पीत कृष्ण आदि वर्णोंसे अपने शरीरको रचता है तैसेही आत्माभी तिस २ कर्मके भोगार्थ कर्मोंसे पैदा हुए कुब्ज वामन रूप नाना प्रकारोंसे कलेवरोंको पैदा करते हैं ॥ १६२ ॥

कालकर्मात्मबीजानांदोषैर्मातुस्तथैवच ॥
गर्भस्यवैकृतंदृष्टमङ्गहीनादिजन्मतः १६३॥

पद-कालकर्मात्मबीजानां ६ दोषैः ३ मातुः ६ तथाऽ- एवऽ- चऽ- गर्भस्य ६ वैकृतं१ दृष्टं १ अंगहीनादि१ जन्मतःऽ -

योजना-कालकर्मात्मबीजानां दोषैः तथैव मातुः दोषैः अंगहीनादि गर्भस्य वैकृतं जन्मतः दृष्टम् ॥

ता०भा०केवल कर्मही कुब्ज वामन आदिमें निमित्त नहीं किन्तु काल कर्म पिताका वीर्य माताका दोष येभी सहकारी कारण हैं इस अदृष्टरूप कारणके समूहसे गर्भका अंगहीन आदि विकार जन्मसे देखा है ॥ १६३ ॥

अहंकारेणमनसागत्याकर्मफलेनच ॥
शरीरेणचनात्मायंमुक्तपूर्वःकथंचन १६४॥

पद-अहंकारेण ३ मनसा ३ गत्या ३ कर्मफलेन ३ चऽ- शरीरेण ३ चऽ- नऽ- आत्मा १ अयं १ मुक्तपूर्वः १ कथंचनऽ- ॥

योजना-अहंकारेण-मनसा-गत्या चपुनः कर्मफलेन शरीरेण अयं आत्मा कथंचन मुक्तपूर्वो न भवति ॥

ता०भा०-कदाचित् कोई शंका करै कि प्राकृतिक प्रलयके समय महत्तत्व आदि अखिल विकारोंके नाश होनेपर कर्म के आधीन प्रथम देहका ग्रहण कैसे हो सकता है इससे लिखते हैं कि अहंकार मन गति अर्थात् संसारका हेतु दोषोंकी राशि और धर्मअधर्मरूप कर्मोंका फल और लिंग शरीर इन अहंकार आदिसे तब तक यह आत्मा छुट नहीं सका जबतक मोक्ष नहीं होता ॥ १६४ ॥

वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथादीपस्यसंस्थितिः ।
विक्रियापिचदृष्टैवमकालेप्राणसंक्षयः १६५

पद–वर्त्याधारस्नेहयोगात् ५ यथाऽ–दीपस्य ६ संस्थितिः १ विक्रिया १ अपिऽ–चऽ– दृष्टा १ एवंऽ–अकाले७ प्राणसंक्षयः१॥

योजना–वर्त्याधारस्नेहयोगात् यथा दीपस्य संस्थितिः चपुनः विक्रिया दृष्टा एवं अकाले प्राणसंक्षयः दृष्टः ॥

तात्पर्यार्थ–कदाचित् कहो कि पृथक् पृथक् कर्मवाले जीवोंका पृथक् २ मरणही युक्त है एक वार संग्राम आदिमें अकालमृत्यु कैसे होती है–सो ठीक नही कि जैसे तेलसे भिगोई अनेक प्रकारकी ज्वालावाली अनेक बत्ती दीपक और तेल इनके योगसे दीपककी स्थिति, और अत्यंत चलते हुए पवनकी ताड़ना रूप विपत्तिके होनेसे एकवार नाशरूप विकार होता है तिसी प्रकार संग्रामके समय अकालमें रथी सारथि वाजी कुंजर आदि जीवोंका युद्धरूप उपपत्तिका हेतु होनेसे एकवार अकालमें प्राणोंका नाश अनुपपन्न नही–इससे यह बात कही गईकि पृथक् २ कालमें विपत्ति (मरण) का हेतु जो जीवोंका अदृष्टथा, उसका उससे विरुद्धरूप कार्य करनेवाला जो संग्रामरूप दृष्ट हेतु उसके होनेसे प्रतिबंध होता है ॥

भावार्थ–बत्ती आधार और स्नेह इनके योगसे जैसे दीपकमें स्थिति और विकार देखा है इसी प्रकार अकालमें प्राणोंका संक्षय होता है ॥ १६५ ॥

अनंतारश्मयस्तस्यदीपवद्यःस्थितोहृदि ।
सितासिताःकर्बुरूपाःकपिलानीललोहिताः।

पद–अनंताः १ रश्मयः १ तस्य ६ दीपवत्ऽ– यः १ स्थितः१ हृदि ७ सितासिताः १ कर्बुरूपाः १ कपिलाः १ नीललोहिताः १ ॥

ऊर्ध्वमेकःस्थितस्तेषांयोभित्त्वासूर्यमंडलम्।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्यतेनयातिपरांगतिम् ॥

पद–ऊर्ध्वंऽ- एकः १ स्थितः १ तेषां ६ यः १ भित्त्वाऽ- सूर्यमण्डलं २ ब्रह्मलोकं २ अतिक्रम्यऽ- येन३ याति क्रि–परां२ गतिम्२॥

योजना–यः दीपवत् हृदि स्थितः तस्य अनंताः रश्मयः सितासिताः कर्बुरूपाः कपिलाः नीललोहिताः सन्ति यः एकः तेषां मध्ये सूर्यमण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं अतिक्रम्य ऊर्ध्वं स्थितः तेन परांगतिं याति ॥

ता०भा०–जो यह जीव हृदयमें दीपकके समान स्थित है उसकी शुक्ल कृष्ण कबरी नीली लाल अनन्त रश्मि (पूर्वोक्त बहत्तर सहस्र नाडी) हैं उनके मध्यमें जो एक रश्मि सूर्यमण्डलको भेदन करके और ब्रह्मलोकका अतिक्रमण करके ऊपरको स्थित है उससे वह जीव परम गतिको प्राप्त होता है– ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेवव्यवस्थितम् ।
तेनदेवशरीराणिसधामानिप्रपद्यते १६८॥

पद–यत् १ अस्य१ अन्यत्१ रश्मिशतं१ ऊर्ध्वंऽ-एवऽ-व्यवस्थितं १ तेन ३ देवशरीराणि २ सधामानि २ प्रपद्यते क्रि– ॥

योजना–अस्य यत् अन्यत् रश्मिशतं ऊर्ध्वं एव व्यवस्थितम् अस्ति तेन सधामानि देवशरीराणि प्रपद्यते (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थभावार्थ–इस आत्माकी मुक्तिका मार्ग जो रश्मिहै उससे अन्य ऊपरको सैकडों रश्मि स्थित हैं उनसें देवताओंके तैजस शरीर जो केवल सुख भोगके साधन होते हैं और सुवर्ण रजत रत्नोंसे रचित देवताओंके पुर उनको प्राप्त होताहै ॥ १६८ ॥

येनैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयश्चमृदुप्रभाः ॥
इहकर्मोपभोगायतैःसंसरतिसोऽवशः १६९

पद-ये१नैकरूपाः१ च॰-अधस्तात्॰- रश्मयः १ च॰-मृदुप्रभाः१इह॰-कर्मोपभोगाय ४ तेः३ संसरति कि-सः१ अवशः १

योजना-ये नैकरूपा मृदुप्रभाः रश्मयः अधस्तात् स्थिताः तेः अवशः इह कर्मोपभोगाय संसरति ॥

तात्प॰भावार्थ-और जो अनेक रूप कोमल कांतिवाली रश्मि नीचेको स्थित हैं उनसे कर्म फलोंके भोगार्थ उन कर्मोंके आधीन हुआ संसारमें जन्म लेताहै ॥ १६९ ॥

वेदैःशास्त्रैःसविज्ञानैर्जन्मनामरणेनच ।
आर्त्यागत्यातयागत्यासत्येनह्यनृतेनच ॥

पद-वेदैः ३ शास्त्रैः ३ सविज्ञानैः ३ जन्मना ३ मरणेन ३ च॰-आर्त्या ३ गत्या ३ तथा॰-अगत्या ३सत्येन३ हि॰-अनृतेन ३च॰-

श्रेयसासुखदुःखाभ्यांकर्मभिश्चशुभाशुभैः ।
निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैःफलैः ॥

पद-श्रेयसा३ सुखदुःखाभ्यां ३ कर्मभिः३ च॰- शुभाशुभैः ३ निमित्तशाकुनज्ञानग्रहैः संयोगजैः ३ फलैः३

तारानक्षत्रसंचारैर्जागरैःस्वप्नजैरपि ।
आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा ॥

पद-तारानक्षत्रसंचारैः३जागरैः३ स्वप्नजैः३ अपि॰- आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैः १ तथा॰-

मन्वंतरैर्युगप्राप्त्यामंत्रौषधिफलैरपि ।
वित्तात्मानंवेद्यमानंकारणंजगतस्तथा१७३

पद-मन्वंतरैः३ युगप्राप्त्या ३ मंत्रौषधिफलैः३ अपि॰- वित्त क्रि-आत्मानं २ वेद्यमानं२ कारणं २ जगतः६ तथा॰-

योजना-वेदैः सविज्ञानैः शास्त्रैः जन्मना च पुनः मरणेन आर्त्या गत्या तथा अगत्या सत्येन च पुनः अनृतेन श्रेयसा सुखदुःखाभ्यां च पुनः शुभाशुभैः कर्मभिः निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैः फलैः तारानक्षत्रसंचारैः जागरैः स्वप्नजैः आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैः मन्वंतरैः युगप्राप्त्या मंत्रौषधिफलैः अपि वेद्यमानं तथा जगतः कारणं आत्मानं यूयं वित्त- ॥

तात्पर्यार्थ-अब भूतोंको जो चैतन्य मानता है उसके पक्षका निराकरण करते हैं कि वह यह नेति नेति से जाननेयोग्य अस्थूल अनणु अह्रस्व अपाणिपाद अर्थात् स्थूल अणु ह्रस्व करचरण वालेसे भिन्न आत्मा है इत्यादि वेदों से और मीमांसा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रोंसे और मेरा यह शरीर है इत्यादि आत्मासे भिन्न ज्ञानोंसे और जन्मांतरमें किये अधर्म धर्मके आधीन जन्म मरणोंसे देहसे भिन्न आत्माका अनुमान करो और जन्मांतरमें किये कर्मोंके कर्ताको नियमसे होने वाले दुःखसे और ज्ञान इच्छा प्रयत्नवालेसे जो होते हैं उन गमन और अगमनोंसे भौतिक देहसे भिन्न आत्माका अनुमान करो क्योंकि इससे देह चैतन्य नहीं हो सक्ता जिससे कारण गुणोंके क्रमसे कार्य द्रव्यमें वैशिषिक गुणोंका आरंभ देखा है और पार्थिव देहके कारण पार्थिव परमाणुओंमें चैतन्यका समवाय नहीं हो सक्ता क्यों कि परमाणुसे बने स्तंभ कुंभ आदिकोंमें चैतन्य को नहीं देखते कदाचित् कोई शंका करे कि मदशक्तिके समान जल आदि द्रव्यान्तरके संयोगसे चैतन्य हो जाताहै सो ठीक नहीं क्यों कि शक्ति एक साधारण गुणहै इससे भौतिक देहसे भिन्न चैतन्य आदि का समवायी अंगीकार करना सत्य और झूठसे श्रेय (हितप्राप्ति) से परलोकके सुख

१ सएषनेतिनेतात्मेति अस्थूलमनण्वह्रस्वमपाणिपादम् ।

और दुःखोंसे तैसेही शुभ कर्मके करने और अशुभ कर्मके परित्यागसे ज्ञानवान्में नियमसे रहनेवाले इनसेभी देहसे भिन्न आत्माका अनुमान करो भूकम्प और पिंगल आदिसे शकुनोंका ज्ञान अर्थात् पक्षियोंकी चेष्टासे शुभ अशुभ जानना सूर्य आदि ग्रहोंके संयोगका फल अश्विनी आदिसे भिन्न ज्योति वाले तारे और अश्विनी आदि नक्षत्र इनके संचारसे शुभ अशुभ फलके जतानेवाले जाग्रत् अवस्थाके छिद्र सहित सूर्य आदिके दर्शनोंसे और तैसेही खर वाराहसे युक्त रथमें बैठना आदि स्वप्नके ज्ञानसे तैसेही जीवके उपभोगार्थ रचेहुए आकाश पवन ज्योति जल भूतिमिरोंसे और युगांतरकी प्राप्ति जो देहमें नहीं हो सक्ति उससे और ज्ञान बुद्धिसे किये हुए मंत्र और औषधि आदि क्षुद्र२ कर्मोंसे इन सबसे साक्षात् वा परंपरासे जाननेयोग्य आत्माको हे मुनियों तुमजानो ॥

भावार्थ-विज्ञान सहित वेद शास्त्र जन्म मरण आर्ति गमन अगमन सत्य झूट श्रेय सुख दुःख शुभ और अशुभकर्म भूकम्प आदि शाकुनज्ञान सूर्य आदिके संयोगका फल अश्विनी आदि नक्षत्रोंका संचार जागर स्वप्न आदिका ज्ञान आकाश पवन ज्योति जल पृथिवी अंधकार मन्वंतर युगोंकी प्राप्ति और मंत्र औषधियोंका फल इनसे जानने योग्य और जगत्के कारण आत्माको तुम जानो ॥ १७३ ॥

अहंकारःस्मृतिर्मेधाद्वेषोबुद्धिःसुखंधृतिः ॥
इंद्रियांतरसंचारइच्छाधारणजीविते १७४

पद-अहंकारः १ स्मृतिः १ मेधा १ द्वेषः १ बुद्धिः १ सुखं १ धृतिः १ इंद्रियांतरसंचारः १ इच्छा १ धारणजीविते १ ॥

स्वर्गःस्वप्नश्चभावानांप्रेरणंमनसोगतिः ॥
निमेषश्चेतनायत्नआदानंपाञ्चभौतिकम् ॥

पद-स्वर्गः १ स्वप्नः १ च७-भावानां ६ प्रेरणं १ मनसः६ गतिः१ निमेषः १ चेतना१ यत्नः १ आदानं १ पांचभौतिकम् १ ॥

यतएतानिदृश्यंतेलिंगानिपरमात्मनः ॥
तस्मादस्तिपरोदेहादात्मासर्वगईश्वरः१७६

पद-यतः५-एतानि१ दृश्यंते क्रि लिंगानि१ परमात्मनः ६ तस्मात् ५ अस्ति क्रि-परः१ देहात् ५ आत्मा १ सर्वगः १ ईश्वरः १ ॥

योजना-अहंकारः स्मृतिः मेधा द्वेषः बुद्धिः सुखं धृतिः इंद्रियान्तरसंचारः इच्छा धारणजीविते-स्वर्गः चपुनः स्वप्नः भावानां प्रेरणम्-मनसः गतिः-निमेषः चेतना यत्नः पांचभौतिकं आदानं-यतःएतानि परमात्मनः लिंगानि दृश्यंते तस्मात् देहात्परः (भिन्नः) सर्वगः ईश्वरः आत्मा अस्ति-

तात्पर्यार्थ-अहंकार-पूर्व जन्मके अनुभवसे उत्पन्न हुआ जो आत्मामें संस्कार उसके उद्बोधसे होने वाली बालकके दूधपीने आदिकी स्मृति-इस लोकका सुख-धीरता अन्य इंद्रियके देखे हुये पदार्थमें अन्य इंद्रियका संचार जैसे जिसको मैं देखा उसका ही मैं स्पर्श करताहूं-यह अनुसंधान रूप इंद्रियांतर संचार-इस प्रकरणमें इच्छा प्रयत्न चैतन्य स्वरूपसे लिंगहै और पहिले श्लोकमें गमन सत्य वचन आदिका हेतु होनेसे आर्थिक लिंग (प्रमाण) है इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है-शरीरका धारण और जीवित (प्राणधारण)-अनियमसे देहांतरमें भोगने योग्य सुख विशेष रूप स्वर्ग-स्वप्न-पहिले श्लोकमें शुभ फलके द्योतनार्थ स्वप्न लिंग है यहां स्वरूपसे इससे पुनरुक्ति दोष नही है-तैसेही भावों (इंद्रिय) का विषयोंमें प्रेरण-चेतनके अधिष्ठानसे मनकी गति-निमेष-तैसेही पंचभूतोंका उपादान (ग्रहण) जिससे भूतोंमें न होने वाले साक्षात्

वा परंपरासे परमात्माके द्योतक ये लिंग (हेतु) दीखतेहैं-तिससे सर्व व्यापी ईश्वर आत्मा देहसे भिन्न है ॥

भावार्थ-अहंकार-स्मरण-मेधा-द्वेष-बुद्धी-सुख-धैर्य- इंद्रियांतरसंचार-इच्छा शरीर और प्राणोंका धारण-स्वर्ग स्वप्न-इंद्रियोंका प्रेरण-मनकी गति-निमेष-चेतना-यत्न-पंच भूतोंका ग्रहण-जिससे परमात्माके येलिंग दीखते है तिससे सर्व व्यापक ईश्वर आत्मा देहसे भिन्न है ॥ १७४॥१७५॥१७६ ॥

बुद्धींद्रियाणिसार्थानिमनःकर्मेंद्रियाणिच ॥
अहंकारश्चबुद्धिश्चपृथिव्यादीनिचैवहि१७७

पद-बुद्धीन्द्रियाणि १ सार्थानि १ मनः१ कर्मेन्द्रियाणि१ चऽ- अहंकारः१ चऽ-बुद्धिः १ चऽ-पृथिव्यादीनि १ चऽ- एवऽ- हि-

अव्यक्तमात्माक्षेत्रज्ञःक्षेत्रमस्यानिगद्यते ।
ईश्वरःसर्वभूतस्थःसन्नसन्सदसंश्रयः १७८

पद-अव्यक्तं१ आत्मा १ क्षेत्रज्ञः १क्षेत्रं१ अस्य६ निगद्यते क्रि- ईश्वरः१ सर्वभूतस्थः१ सन् १ असन् १ सदसन् १ चऽ-यः १ ॥

योजना-सार्थानि बुद्धीन्द्रियाणि-मनःच-पुनः कर्मेन्द्रियाणि-अहंकारः बुद्धिः-चपुनः पृथिव्यादीनि-अव्यक्तं (प्रकृतिः) एतत् अस्य क्षेत्रं-यः असौ ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन् असन् सदसद्रूपः आत्मा अस्ति सः क्षेत्रज्ञः निगद्यते ॥

तात्प० भावार्थ-श्रोत्र आदि ज्ञानेंद्रिय और उनके शब्द आदि विषय-मन और कर्मेन्द्रिय-अहंकार बुद्धि और पृथिवी आदि भूत अव्यक्त (प्रकृति) यह उस परमात्मा का क्षेत्र कहाता है और जो ईश्वर सब भूतोंमें स्थित और प्रमाणांतरसे जाननेके अयोग्य होनेसे सद्रूप और स्पष्ट प्रतीत न होनेसे असत् रूप-और सदसत् रूप आत्मा है वह क्षेत्रज्ञकहाता है ॥ १७७॥१७८॥

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहंकारसंभवः ॥
तन्मात्रादीन्यहंकारादेकोत्तरगुणानिच ॥

पद-बुद्धेः ६ उत्पत्तिः १ अव्यक्तात् ५ ततःऽ-अहंकारसंभवः१ तन्मात्रादीनि१ अहंकारात् ५ एकोत्तरगुणानि १ चऽ-

योजना-अव्यक्तात् बुद्धेः उत्पत्तिः ततः अहंकारसंभवः अहंकारात् एकोत्तरगुणानि तन्मात्रादीनि उत्पद्यंते ॥

तात्प०-सत्त्व आदि गुणोंकी साम्यावस्थाको अव्यक्त कहते हैं उससे सत्त्व रज तमो गुणमयी तीन प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न होती है उस बुद्धिसे वैकारिक तैजस तामस रूप तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न होता है उनमें तामस भूतादि नामके अहंकारसे भूतोंकी शब्द स्पर्श रूप रस गंध रूप मात्रा और आकाश आदि भूत उत्पन्न होते हैं और वे मात्रा एकोत्तर गुणी होती है अर्थात् भूतोंके क्रमसे एक२मात्रा बढती जाति है और च शब्द के पढनेसे वैकारिक और तैजस अहंकारसे ज्ञान और कर्मेंद्रियोंकी उत्पत्ति समझनी ॥

भावार्थ-अव्यक्तसे बुद्धिकी उत्पत्ति और बुद्धिसे अहंकारकी और अहंकारसे एकोत्तर गुणी शब्द आदि मात्राओंकी उत्पत्ति होती है ॥ १७९ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चतद्गुणाः ॥
योयस्मान्निसृतश्चैषांसतस्मिन्नेवलीयते ॥

पद-शब्दः १ स्पर्शः १ चऽ- रूपं१ चऽ- रसः १ गंधः १ चऽ- तद्गुणाः१ यः१ यस्मात् ५ निसृतः१ चऽ- एषां ६ सः१ तस्मिन्-एवऽ- लीयते क्रि- ॥

योजना-शब्दः स्पर्शः रूपं रसः चपुनः

गंधः इमे तद्गुणाः ज्ञेयाः एषां मध्ये यः यस्मात् निसृतः सः तस्मिन् एव लीयते ॥

ता० भा०इन आकाश आदि पांच भूतोंके एक २की वृद्धिसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच गुण जानने-इन पूर्वोक्त बुद्धि आदि विकारोंके मध्यमें जो जिससे उत्पन्न हुआ है वह उसी प्रकृति आदिमें प्रलयके समय सूक्ष्म रूपसे लीन होजाताहै- ॥ १८० ॥

यथात्मानंसृजत्यात्मातथावःकथितोमया ।
विपाकात्त्रिप्रकाराणांकर्मणामीश्वरोपिसन् ॥

पद-यथा>-आत्मानं २ सृजति क्रि-आत्मा १ तथा>- वः ६ कथितः १ मया ३ विपाकात् ५ त्रिप्रकाराणाम् ६ कर्मणाम् ६ ईश्वरः १ अपि>- सन् १ ॥

सत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्तस्यैवकीर्तिताः ।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यतेह्यसौ ।

पद-सत्त्वं १ रजः १ तमः १ च>-एव>-गुणाः १ एव>- कीर्तिताः १ रजस्तमोभ्यां ३ आविष्टः १ चक्रवत्>- भ्राम्यते क्रि- हि>-असौ १ ॥

अनादिरादिमांश्चैवसएवपुरुषःपरः ।
लिंगेंद्रियग्राह्यरूपःसविकारउदाहृतः ॥

पद-अनादिः १ आदिमान् १ च>-एव>-सः १ एव>- पुरुषः १ परः१ लिंगेंद्रियग्राह्यरूपः १ सविकारः १ उदाहृतः १ ॥

योजना-आत्मा त्रिप्रकाराणां कर्मणां-विपाकात् ईश्वरोपिसन् यथा आत्मानं सृजति तथा मया यः युष्माकं कथितः चपुनः सत्त्वं रजः तमः गुणाः तस्य एव कीर्तिताः रजस्तमोभ्यां आविष्टः सन् असौ चक्रवत् भ्राम्यते सएव परः पुरुषः अनादिः आदिमान् लिंगेंद्रियग्राह्यरूपः सविकारः उदाहृतः॥

ता०भा०-मानस आदि तीन प्रकारके कर्मके विपाकसे ईश्वर हुआभी वह आत्मा जिसप्रकार आत्माको रचता है वह प्रकार आपको कहा और सत्व आदि गुणभी उसकेही कहै और रजोगुण तमोगुणसे आविष्ट (युक्त) वह इससंसारके विषें चक्रके समान भ्रमता है यहभी कहा और वही अनादि परम पुरुष शरीरके ग्रहण करनेसे आदिमान् और कुब्ज वामन आदि विकारोंसहित और स्थूल आकारके परिमाणसे लिंग और इंद्रियोंसे ग्रहण करने योग्य कहा ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

पितृयानोजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् ।
तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति ॥

पद-पितृयानः१ अजवीथ्याः६ च>-यत् १ अगस्त्यस्य ६ च>- अंतरं १ तेन ३ अग्निहोत्रिणः ६ यान्ति क्रि-स्वर्गकामाः १ दिवं२ प्रति>- ॥

योजना-अजवीथ्याः चपुनः अगस्त्यस्य यत् अंतरं असौ पितृयानः तेन स्वर्गकामाः अग्निहोत्रिणः दिवंप्रति यान्ति ॥

ता० भा०-अजवीथी (देवमार्ग) और अगस्त्यमुनि इनका जो मध्य उसे पितृयान कहते हैं स्वर्गकी कामनावाले अग्निहोत्री उस मार्गसे स्वर्गमें प्राप्त होते हैं ॥ १८४ ॥

येचदानपराःसम्यगष्टाभिश्चगुणैर्युताः ॥
तेपितेनैवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः॥ १८५॥

पद-ये १ च>- दानपराः १ सम्यक् २ अष्टाभिः३च>- गुणैः३ युताः १ ते १ अपि>- तेन ३ एव>- मार्गेण३ सत्यव्रतपरायणाः १ ॥

योजना-सम्यक् दानपराः चपुनः अष्टाभिः गुणैः युताः चपुनः सत्यव्रतपरायणाः तेपि तेन एव मार्गेण दिवं यान्ति ॥

ता० भा०-जो मनुष्य दंभको छोड़कर

दान आदि स्मार्त कर्ममें तत्पर हैं और गौतम आदि मुनियोंके कहे हुए इन दया क्षमा अनसूया शौच अनायास मंगल अकार्पण्य अस्पृहा आठ आत्माके गुणोंसे युक्त हैं और जो सत्य वचनमें रत हैं वेभी उसी पितृयानसे स्वर्गमें प्राप्त होते हैं॥१८५॥

तत्राष्टाशीतिसाहस्रमुनयोगृहमेधिनः ॥
पुनरावर्तिनोबीजभूताधर्मप्रवर्तकाः १८६॥

पद-तत्र‌ऽ-अष्टाशीतिसाहस्रमुनयः १ गृहमेधिनः १ पुनरावर्तिनः १ बीजभूताः १ धर्मप्रवर्तकाः १ ॥

योजना-गृहमेधिनः पुनरावर्तिनः बीजभूताः धर्मप्रवर्तकाः तत्र अष्टाशीतिसाहस्रमुनयः सन्ति ॥

ता० भा०-उस पितृयानमें अठासी सहस्र मुनि गृहस्थी और पुनः आवृत्ति धर्मवाले और स्वर्गकी आदिमें वेदका उपदेशक होनेसे वेदरूप वृक्षके बीजरूप हुए अग्निहोत्र आदिके प्रवर्तक हैं-इससे नैमित्तिक प्रलयके समयमें सब अध्यापकोंका प्रलय होनेसे अग्निहोत्र आदि कर्मोंका प्रचार कैसे होगा यह दोष नहीं ॥१८६॥

सप्तर्षिनागवीथ्यन्तर्देवलोकं समाश्रिताः ॥
तावंतएवमुनयःसर्वारंभविवर्जिताः॥१८७॥

पद-सप्तर्षिनागवीथ्यन्तः‌ऽ-देवलोकं २ समाश्रिताः १ तावन्तः १ एव‌ऽ- मुनयः१सर्वारंभविवर्जिताः १ ॥

तपसाब्रह्मचर्येणसंगत्यागेनमेधया ।
तत्रगत्वावतिष्ठंतेयावदाभूतसंप्लवम्॥१८८॥

पद-तपसा ३ ब्रह्मचर्येण ३ संगत्यागेन ३ मेधया ३ तत्र‌ऽ-गत्वा‌ऽ-अवतिष्ठते क्रि- यावत्‌ऽ- आभूतसंप्लवम् १ ॥

१ दया क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहा ।

योजना-तावन्तः एव सर्वारंभविवर्जिताः मुनयः सप्तर्षिनागवीथ्यन्तः देवलोकं समाश्रिताः सन्ति तपसा ब्रह्मचर्येण संगत्यागेन मेधया युक्ताः तत्र गत्वा यावत् आभूतसंप्लवं तावत् अवतिष्ठंते ॥

ता० भा०-सप्तऋषि और नागवीथी (ऐरावतमार्ग) इनके मध्यमें उतनेही अठासी सहस्र मुनि सब आरंभोंसे रहित केवल ज्ञानमें तत्पर तप ब्रह्मचर्य और संगका त्याग और बुद्धिसे युक्त देवलोकमें रहनेवाले वहां जाकर तब तक टिकते हैं जबतक सब भूतोंका प्रलय होय और वहां बैठे हुए आध्यात्मिक आदि धर्मोंका सृष्टिके आदिमें उपदेश करते हैं ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

यतोवेदाःपुराणानिविद्योपनिषद-
स्तथा । श्लोकाःसूत्राणिभाष्या-
णियच्चकिंचनवाङ्मयम् ॥ १८९ ॥

पद-यतः‌ऽ- वेदाः १ पुराणानि१ विद्या१ उपनिषदः १ तथा‌ऽ- श्लोकाः १ सूत्राणि १ भाष्याणि१यत्२च‌ऽ-किंचन‌ऽ- वाङ्मयम् १ ॥

योजना-यतः वेदाः पुराणानि विद्या उपनिषदः तथा श्लोकाः सूत्राणि-भाष्याणि चपुनः यत्किंचन वाङ्मयं प्रवृत्तम् ॥

तात्पर्यार्थ-उसी दोप्रकारके मुनियोंके समूहसे चारोंवेद-पुराण-अंगविद्या-और उपनिषद-नित्यभूतभी ये पठन पाठनकी परम्परासे प्रवृत्तहुए-तिसीप्रकार इतिहासरूपी श्लोक-शब्दशास्त्र और मीमांसाके सूत्र-और सूत्रोंकी व्याख्यारूप भाष्य और जो आयुर्वेद आदि वाङ्मय (शास्त्र) है वहभी उनसेही प्रवृत हुआ ऐसे वे मुनिधर्मके प्रवर्तक हैं-इस रीतिसे वेदको अनित्यताका दोष नहीं-

भावार्थ-उनसेही वेद-पुराण-विद्या-उप-

निपद-श्लोक-सूत्र-भाष्य-और संपूर्ण वाङ्मय शास्त्र प्रवृत्त हुअ ॥ १८९ ॥

वेदानुवचनंयज्ञोब्रह्मचर्यंतपोदमः ।
श्रद्धोपवासःस्वातंत्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः ॥

पद-वेदानुवचनं १ यज्ञः १ ब्रह्मचर्यं १ तपः १ दमः १ श्रद्धा १ उपवासः १ स्वातन्त्र्यम् १ आत्मनः ६ ज्ञानहेतवः १ ॥

योजना-वेदानुवचनं-यज्ञः ब्रह्मचर्यं तपः दमः श्रद्धा उपवासः स्वातन्त्र्यं एते आत्मनः ज्ञानहेतवः सन्ति-

तात्पर्यार्थ भावार्थ-वेदपाठ-यज्ञ-ब्रह्मचर्य-तप-दम-श्रद्धा-उपवास-स्वातंत्र्य ये अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा आत्माके ज्ञानमें हेतु हैं ॥ १९० ॥

सह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यःसमस्तैरेवमेवतु ।
द्रष्टव्यस्त्वथमंतव्यःश्रोतव्यश्चद्विजातिभिः

पद-सः-हि- आश्रमैः ३ विजिज्ञास्यः१ समस्तैः ३ एवं-एव-तु-द्रष्टव्यः १ तु-अथ-मन्तव्यः १ श्रोतव्यः १ च-द्विजातिभिः ३ ॥

यएनमेवंविंदंतियेचारण्यकमाश्रिताः ।
उपासतेद्विजाःसत्यंश्रद्धयापरयायुताः ॥

पद-ये १ एनं २ एवं-विंदन्तिक्रि-ये १ च-आरण्यकम् २ आश्रिताः १ उपासते-क्रि-द्विजाः १ सत्यं २ श्रद्धया ३ परया ३ युताः १ ॥

योजना-हि अतः सः समस्तैः आश्रमैः द्विजातिभिः विजिज्ञास्यः द्रष्टव्यः तुपुनः मन्तव्यः श्रोतव्यः-ये द्विजातयः एवं आत्मानं परया श्रद्धया युताः चपुनः ये आरण्यकं आश्रिताः उपासते ते एनं सत्यं विदन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-जिससे नित्य होनेसे आत्मोंमें प्रमाणरूप वेद है तिससें वेदोक्त मार्गके द्वारा वह परमेश्वर संपूर्ण आश्रमवालोंको नानाप्रकारसे जानने योग्य है-उसी प्रकारको दिखातेहैं द्विजातियोंको द्रष्टव्य है अर्थात् प्रत्यक्ष करने योग्य है उसमें उपाय दिखाते हैं कि श्रोतव्य और मंतव्य है अर्थात् प्रथम वेदान्तके श्रवणसे निर्णय करने योग्य है और फिर युक्तियोंसे विचार करने योग्य है इस प्रकार करनेसे यह आत्मा ध्यानसे प्रत्यक्ष होता है जो द्विजाति अत्यंत श्रद्धासे युक्त होकर निर्जन देशमें बैठेहुए पूर्वोक्त मार्गसे इस परमार्थभूत सत्य आत्माकी उपासना करते हैं ते आत्माको प्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ-सब आश्रमवाले द्विजातियोंको वह आत्मा जानने और देखने और सुनने योग्य हैं-जो द्विज वनमें बैठे और उत्तम श्रद्धासे युक्तहुए इस सत्य आत्माकी उपासना करते हैं-वे आत्माको प्राप्त होते हैं १९१ १९२

क्रमात्तेसंभवंत्यार्चिरहःशुक्लंतथोत्तरम् ॥
अयनंदेवलोकंचसवितारंसवैद्युतम् १९३॥

पद-क्रमात् ५ ते १ संभवन्ति क्रि-अर्चिः २ अहः २ शुक्लं २ तथा-उत्तरम् २ अयनं २ देवलोकं २ च-सवितारं २ सवैद्युतम् २ ॥

ततस्तान्पुरुषोभ्येत्यमानसोब्रह्मलौकिकान्
करोतिपुनरावृत्तिस्तेपामिहनविद्यते१९४॥

पद-ततः-तान् २ पुरुषः १ अभ्येत्य-मानसः १ ब्रह्मलौकिकान् २ करोति क्रि-पुनः-आवृत्तिः१ तेषां६ इह-न-विद्यते क्रि-॥

योजना-ते विदितात्मानः अर्चिः अहः शुक्लं तथा उत्तरं अयनं देवलोकं च पुनः सवैद्युतं सवितारं क्रमात् प्राप्य अर्चिः-आदि संभवन्ति-ततः मानसः पुरुषः तान् अ-

भ्येत्य ब्रह्मलौकिकान् करोति-इह तेषां आवृत्तिः पुनः न विद्यते-

तात्पर्यार्थ-वे विजितात्मा अग्नि आदि अभिमानी देवताओंके स्थान जो मुक्तिके मार्ग हैं उनमें विश्राम करके परमपदको प्राप्त होते हैं-अर्थात् अग्नि-दिन-शुक्ल पक्ष-उत्तरायण-देवलोक-सूर्य-वैद्युत (तेज) इनमें क्रमसे जाकर ब्रह्मलोकमें प्राप्त होते हैं कि फिर अग्नि आदिके स्थानोमें प्राप्त हुए उनको मानस पुरुष आकर ब्रह्मलोकके वासी करता है-इस संसारमें उनकी आवृत्ति (जन्म) नही होता-किंतु प्राकृतप्रलयके समय लिंगशरीरको छोडकर परमात्मामें एक हो जाते हैं ॥

भावार्थ-फिर वे क्रमसे अग्नि-दिन-शुक्लपक्ष-उत्तरायण-देवलोक-सूर्य-और तेजरूप हो जाते हैं फिर मानस पुरुष उसको आनकर ब्रह्मलोकमें पहुंचताहै फिर उनका इस लोकमें जन्म नहीं होता ॥१९३॥१९४॥

यज्ञेनतपसादानैर्येहिस्वर्गजितोनराः ॥
धूमंनिशांकृष्णपक्षंदक्षिणायनमेवच १९५॥

पद-यज्ञेन ३ तपसा ३ दानैः३ ये १ हि-स्वर्गजितः १ नराः१ धूमं २ निशां २ कृष्णपक्षं २ दक्षिणायनं २ एव्ऽ च्ऽ- ॥

पितृलोकंचंद्रमसंवायुंवृष्टिंजलंमहीम् ॥
क्रमात्तेसंभवंतीहपुनरेवव्रजंतिच ॥१९६॥

पद-पितृलोकं२ चंद्रमसं२ वायुं २वृष्टिं२ जलम् २ महीम् २ क्रमात् ५ ते १ संभवंति क्रि- इहऽ- पुनऽ-एवऽ- व्रजंति क्रि-चऽ- ॥

एतयोनविजानातिमार्गद्वितयमात्मवान् ॥
दंदशूकःपतंगोवाभवेत्कीटोथवाकृमिः१९७

पद-एतत् २ यः १ नऽ- विजानाति क्रि- मार्गद्वितयम् २ आत्मवान् १ दंदशूकः १ पतंगः १ वाऽ- भवेत् क्रि- कीटः१ अथवाऽ- कृमिः १

योजना-ये नराः यज्ञेन तपसा दानैः स्वर्गजितः संति ते धूमं निशां कृष्णपक्षं चपुनः दक्षिणायनं पितृलोकं चंद्रमसं-वायुं वृष्टिं जलं महीं क्रमात् प्राप्य इह संभवंति चपुनः पुनः एव व्रजंति-यः आत्मवान् एतत् मार्गद्वितयं न विजानाति सः दंदशूकः वा पतंगः कीटः अथवा कृमिः भवेत् ॥

तात्प०भावार्थ-जो मनुष्य शास्त्रोक्त यज्ञ दान तपसे स्वर्गफलको भोगते हैं वे क्रमसे धूम रात्रि कृष्णपक्ष दक्षिणायन पितृलोक और चंद्र लोकको प्राप्त होकर-फिर वायु वृष्टि जल भूमिको प्राप्त होकर अर्थात् व्रीहि आदि अन्य रूपसे शुक होकर इसलोकमें संसारी होते हैं और पुनः स्वर्ग आदिमें जाते हैं जो आत्मज्ञानी इन दो मार्गोको नही जानता अर्थात् दोनों मार्गोके हेतु धर्मको नही करता वह सर्प पतंग (पक्षी) कृमि वा कीट होता है ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्येन्यस्योत्तरंकरम् ॥
उत्तानंकिंचिदुन्नाम्यमुखंविष्टभ्यचोरसा ॥

पद-ऊरुस्थोत्तानचरणः १ सव्ये ७ न्यस्यऽ-उत्तरं २ करं २ उत्तानं २ किंचित्ऽ-उन्नाम्यऽ- मुखं २ विष्टभ्यऽ- चऽ- उरसा ३ ॥

निमीलिताक्षःसत्वस्थोदंतैर्दंतानसंस्पृशन् ।
तालुस्थाचलजिह्वश्चसंवृतास्यःसुनिश्चलः ॥

पद-निमीलिताक्षः १ सत्वस्थः १ दंतैः३ दंतान् २ असंस्पृशन् १ तालुस्थाचलजिह्वः १ चऽ- संवृतास्यः १ सुनिश्चलः १ ॥

सन्निरुध्येंद्रियग्रामंनातिनीचोच्छ्रितासनः ।
द्विगुणंत्रिगुणंवापिप्राणायाममुपक्रमेत् ॥

पद-संनिरुध्यऽ-इंद्रियग्रामं २ नातिनीचो-

च्छ्रितासनः१ द्विगुणं २ त्रिगुणं२ वाऽ- अपिऽ- प्राणायामं २ उपक्रमेत् क्रि-॥

ततोध्येयःस्थितोयोसौहृदयेदीपवत्प्रभुः ।
धारयेत्तत्रचात्मानंधारणांधारयन्बुधः ॥

पद-ततःऽ ध्येयः१ स्थितः१ यः१असौ१ हृदये७ दीपवत्ऽ- प्रभुः१धारयेत् क्रि- तत्रऽ- चऽ आत्मानं २ धारणां २ धारयन् १ बुधः१

योजना-ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये उत्तानं उत्तरं करं न्यस्य-मुखं किंचित् उन्नाम्य च पुनः उरसा विष्टभ्य निमीलिताक्षः सत्त्वस्थः दंतैः दंतान् अस्पृशन् तालुस्थाचलजिह्वः संवृतास्यः सुनिश्चलः नातिनीचोच्छ्रितासनः पुरुषः इंद्रियग्रामं संनिरुद्ध्य-द्विगुणं वा त्रिगुणं अपि प्राणायामं उपक्रमेत् ततः यः असौ प्रभुः हृदये दीपवत् स्थितः सः ध्येयः च पुनः धारणां धारयन् बुधः तत्र आत्मानं धारयेत्

तात्पर्यार्थ-ऊरुओंपर स्थित हैं उत्तान चरण जिसके अर्थात् पद्मासन बांधकर और उत्तान (सीधे) वाम हाथपर सीधा दक्षिण हाथ रखकर और मुखको यत्किंचित् उठाकर और उर (छाती) से थामकर मिचे हैं नेत्र जिसके सत्व गुणमें स्थित अर्थात् काम क्रोध आदिसे रहित और दांतोंसे दांतोंका स्पर्श न करता हुआ और तालुपरस्थित है निश्चल जिह्वा जिसकी संवृत (बुचा) है मुख जिसका और भली प्रकार निश्चल अर्थात् कंपरहित-और न अत्यंत नीचा और न अत्यंत ऊंचा है आसन जिसका ऐसा चित्तके विक्षेपसे रहित पुरुष-इंद्रियोंके समूहको विषयोंसे रोक कर दुगुने वा तिगुने प्राणायामके अभ्यासका प्रारंभ करे-फिर प्राणरूप पवनको वशमें होनेसे जो प्रभु हृदयके विषे दीपकके समान प्रकाशरूप स्थित है वह ध्यान करने योग्य है अर्थात् उसका ध्यान करे और उस हृदयमें मनसे आत्माको धारे अर्थात् धारणासे आत्मामें मन लगावे-धारणाका स्वरूप यह है कि जानुके ऊपर करके अग्रभागको भ्रमा कर छोटिका (चुटिया) के टकी देनेका जो समय उसे मात्रा कहते हैं उन पंद्रह मात्राओंसे जो प्राणायाम वह अधम तीस मात्राओंसे मध्यम-पैंतालीस मात्राओंसे उत्तम होता है-इस प्रकार तीनप्राणायामोंकी एक धारणा होती है उन तीन धारणाओंको योग कहते हैं और उनही तीन धारणाओंको धारण करे-सोई अन्ययोगोंके ग्रंथोंमें कहाहै कि कराग्रसे जानुमंडलको प्रदक्षिणाकर छोटिका (चुटकी) दे वह काल एक मात्रा कहाती है पंद्रह मात्रा ओंसे अधम प्राणायाम कहा है इससे दूना मध्यम और तिगुना श्रेष्ठ कहा है-तीन-तीन प्राणायामोंसे एक २ धारणा और तीन धारणाओंको योग कहते हैं अर्थात् उन पूर्वोक्त धारणाओंसे योग सिद्ध होता है ॥

भावार्थ-ऊरूपर सीधेचरणको रक्खे और सीधे वाम हाथ पर सीधे दक्षिणहाथको रक्खे-और मुखको किंचित् उठाकर और छातीसे थामकर-नेत्रोंकोभी मीचकर और काम क्रोधसे रहित और दांतोंसे दांतोंका स्पर्श न करता हुआ तालुपर जिह्वाको लगाकर मुखको मीचकर और भली प्रकार निश्चल और इंद्रियोंको विषयोंसे रोककर और नहीहै अत्यन्त नीचा वा ऊंचा आसन जिसका ऐसा पुरुष दुगुने वा तिगुने प्राणायामका अभ्यास करे फिर जो यह प्रभु

१ संभ्रम्य छोटिकां दद्यात्कराग्रं जानुमण्डले । मात्राभिः पंचदशभिः प्राणायामोऽधमः स्मृतः ॥ मध्यमो द्विगुणः प्रोक्तस्त्रिगुणो धारणा तथा । त्रिभीस्त्रिभिस्मृतैका ताभिर्योगस्तथैव च ।

हृदयमें दीपकके समान स्थितहै उसका ध्यान करै और उसीमें मनको धारणा करताहुआ बुद्धिमान् मनुष्य धारै॥१९९॥२००॥२०१॥

अंतर्धानंस्मृतिःकांतिर्दृष्टिःश्रोत्रज्ञतातथा ॥
निजंशरीरमुत्सृज्यपरकायप्रवेशनम् २०२

पद-अंतर्धानं १ स्मृतिः १ कांतिः १ दृष्टिः१ श्रोत्रज्ञता१ तथाऽ- निजं२शरीरं२उत्सृज्यऽ-परकायप्रवेशनम् १

अर्थानांछंदतःसृष्टिर्योगसिद्धेर्हिलक्षणम् ।
सिद्धेयोगेत्यजन्देहममृतत्वायकल्पते ॥

पद-अर्थानां ६ छंदतःऽ-सृष्टिः१ योगसिद्धेः ६ हिऽ- लक्षणम् १ सिद्धे७ योगे७ त्यजन् १ देहं २ अमृतत्वाय ४ कल्पते क्रि-॥

योजना-अंतर्धानंस्मृतिः कांतिः दृष्टिः तथा श्रोत्रज्ञता निजं शरीरं उत्सृज्य परकाय प्रवेशनम् अर्थानां छंदतः सृष्टिः एतत् योग सिद्धेः लक्षणं भवति योगे सिद्धे सति देहं त्यजन् सन् अमृतत्वाय कल्पते मुक्तो भवती त्यर्थः ।

तात्पर्यार्थ-अब धारणारूप योगाभ्यासके प्रयोजनको कहते हैं कि अणिमा रूप सिद्धिकी प्राप्तिसे अन्य मनुष्योंको जो न दीखना उसे अंतर्धान (छिपना) कहते हैं वह अंतर्धान और अतींद्रिय (जानने अयोग्य) भी विषयोंका मनुष्य आदिके समान स्मरण-कांति (कोमलता) भूत और भविष्यत् अर्थोंको देखना और अत्यन्त दूरभी देशमें होनेवाले अर्थात् जहां श्रोत्र इंद्रिय न पहुंच सके ऐसे शब्दोंका ज्ञान अपने शरीरको त्यागकर परायी कायामें प्रवेश अपनी वांच्छाके अनुसार साधनोंके विनाही पदार्थोंकी रचना ये योगसिद्धिके लक्षण होते हैं कुछ येही योगसिद्धिके प्रयोजन नही किंतु योगसिद्धिके अनंतर जो देहको त्यागताहै वह ब्रह्मको प्राप्त होता है ।

भावार्थ-अंतर्धान (छिपना) स्मृति कोमलता दृष्टि दूरसे श्रवण और अपने शरीरको छोडकर परायी कायामें प्रवेश इच्छाके अनुसार पदार्थोंकी रचना ये योग सिद्धिके लक्षण हैं योगके सिद्ध होनेपर जो योगी देहको त्यागता है वह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

अथवाप्यभ्यसन्वेदंन्यस्तकर्मावनेवसन् ॥
अयाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात्

पद-अथवाऽ-अपिऽ-अभ्यसन् १ वेदं२न्यस्तकर्मा १ वने ७ वसन् १ अयाचिताशी १ मितभुक् १ परां २ सिद्धिं २ अवाप्नुयात् क्रि-॥

योजना-अथवा न्यस्तकर्मा वेदं अपि अभ्यसन् वने वसन् अयाचिताशी मितभुक् पुरुषः परां सिद्धिं अवाप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ-अथवा कामनाओंको त्यागकर एकान्त वनमें बसताहुआ और विना याचनासे मिले प्रमित (थोडा) अन्नके भक्षण करनेसे शुद्धहै अंतःकरण जिसका ऐसा योगी आत्माकी उपासनासे मुक्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ २०४ ॥

न्यायागतधनस्तत्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः॥
श्राद्धकृत्सत्यवादीचगृहस्थोपिहिमुच्यते ॥

पद-न्यायागतधनः १ तत्त्वज्ञाननिष्ठः १ अतिथिप्रियः १ श्राद्धकृत् १ सत्यवादी १ चऽ-गृहस्थः १ अपिऽ-मुच्यते

तात्पर्यार्थ भावार्थ-श्रेष्ठप्रतिग्रह आदिसे कियाहै धनसंचय जिसने तत्त्वज्ञानमें है निष्ठा जिसकी अतिथियोंकी पूजामें तत्पर और नित्य नैमित्तिक श्राद्धोंका कर्ता और सत्यवादी ऐसा गृहस्थीभी जिससे मुक्तिको प्राप्त होताहै तिससे केवल संन्यासका ग्रहणही मुक्तिका साधन नही ॥ २०५ ॥

इति अध्यात्मप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ प्रायश्चित्तप्रकरणम् ५

महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्यदारुणान् ।
कर्मक्षयात्प्रजायंते महापातकिनस्त्विह २०६

पद–महापातकजान् २ घोरान् २ नरकान् २ प्राप्य- दारुणान् २ कर्मक्षयात् ५ प्रजायंते क्रि– महापातकिनः १ तु- इह- ॥

योजना–महापातकजान् घोरान् दारुणान् नरकान् प्राप्य कर्मक्षयात् महापातकिनः इह प्रजायंते (उत्पद्यन्ते)

तात्पर्यार्थ–वर्ण और आश्रमोंके संपूर्ण धर्मोंको हमारे प्रति कहो इस वचनमें प्रतिपादन (कथन) करनेके लिये प्रतिज्ञा किये छः प्रकारके धर्ममेंसे पांच प्रकारके धर्मको कहकर अब शेष रहे नैमित्तिक धर्मके समूह (प्रायश्चित्त) का प्रारंभ करते हुये पहिले उसकी रुचिके और अधिकारियोंके दिखानेके लिये अर्थवादरूप कर्मविपाक (कर्मोंका फल) को कहतेहैं कि–

ब्रह्महत्या आदि पांचोंकी महापातक संज्ञा ब्रह्महामद्यपः इस वचनमें कहेंगे उसके कर्त्ता को महापातकी कहतेहैं वे महापातकसे पैदा हुये अपने २ पापोंके अनुसार तामिस्र आदि घोर अर्थात् अत्यन्त तीव्र वेदना (दुःख) के देनेसे भयंकर और दारुण अर्थात् केवल दुःखके स्थान नरकोंको प्राप्त होकर कर्मके क्षयसे अर्थात् कर्मसे मिले नरकोंको दुःख भोगके अनंतर कर्मशेषसे फिर इस संसारमें अत्यन्त दुःखवाली कुत्ता सृगाल आदि योनियोंमें वारंवार जन्म लेतेहैं यहां महापातकीयोंका ग्रहण उपपातकियोंका भी बोधकहै और उनकोभी तिरछीयोनिकी प्राप्ति कहेंगे

१ वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः ।

भावार्थ–महापातकी महापातकसे पैदा हुये घोर और दारुण नरकोंको प्राप्त होकर कर्मके क्षय होनेपर इस संसारमें जन्म लेते हैं॥२०६॥

मृगश्वसूकरोष्ट्राणांब्रह्महायोनिमृच्छति ॥
खरपुल्कसवेनानांसुरापोनात्रसंशयः २०७

पद–मृगाश्वसूकरोष्ट्राणाम् ६ ब्रह्महा १ योनिं २ ऋच्छति क्रि– खरपुल्कसवेनानाम् ६ सुरापः १ न- अत्र- संशयः १ ॥

कृमिकीटपतंगत्वंस्वर्णहारीसमाप्नुयात् ॥
तृणगुल्मलतात्वंचक्रमशोगुरुतल्पगः २०८

पद–कृमिकीटपतंगत्वं २ स्वर्णहारी १ समाप्नुयात् क्रि– तृणगुल्मलतात्वं २ च- क्रमशः- गुरुतल्पगः १ ॥

योजना–ब्रह्महा मृगाश्वसूकरोष्ट्राणां– सुरापः १ खरपुल्कसवेनानां योनिं ऋच्छति अत्र संशयः न अस्ति–स्वर्णहारीकृमिकीट पतंगत्वं–चपुनः गुरुतल्पगः तृणगुल्मलतात्वं क्रमशः समाप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ–ब्रह्महत्यारा मृग कुत्ता सूकर ऊंट इनकी योनियोंको अपने कर्मके शेषसे प्राप्त होता है–मदिरा पिनेवाला–खर (गर्दभ) पुल्कस (जो प्रतिलोमज निषादसे शूद्रीमें उत्पन्नहो)–वेन (जो वैदेहिकसे अंबष्ठीमें उत्पन्नहो) इनकी योनिको प्राप्त होता है इसमें संशय नही है–ब्राह्मणके सुवर्णका चोर–कृमि (जो सजातीयके संभोग विना मांस विष्ठा गोमयमें उत्पन्नहों)–और उनसे कुछ बडे पक्षके अस्थियोंसे रहित पिपीलिका आदि कीट–पतंग (शलभ) इनकी योनिओंको प्राप्त होता है–और गुरुतल्पग (गुरुकी स्त्रीके संग भोग करनेवाला) काश आदि तृण–गुल्म और लता इनकी जातिकी योनिको क्रमसे प्राप्त होता है–यहभी अज्ञा

नसे कियेके विषयमें समझना जानकर पूर्वोक्त पाप करनेसे तो दुःख है बहुत जिनमें ऐसी अन्य योनियोंमेंभी जन्मते हैं-सोई मनुने[1] (अ० १२ श्लो० ५५-५८) कहा है कि ब्रह्महत्यारा-कुत्ता- सूकर-खर-ऊंट-गौ-अश्व-मृग-पक्षी-चंडाल-पुल्कस इनकी योनिको प्राप्त होता है-और मदिरा पीने वाला ब्राह्मण-कृमि-कीट-पतंग-और विष्ठा खाने वाले पक्षी-और हिंसा करने वाले जीव-इनकी योनिको प्राप्त होता है और चोर ब्राह्मण-लूता (ऊर्णनाभि) सर्प-सरट (कृकलास) और जलमें विचरने वाले तिरच्छी योनि-हिंसक और पिशाच इनकी योनिको सहस्रों जन्मतक प्राप्त होते हैं और गुरुकी शय्या पर गमनका कर्ता तृण गुल्म लता-और मांस भक्षक और दंष्ट्री (जो दाडसे काटें) और क्रूर कर्म करने वाले इनकी सैंकडों योनिको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-मृग-कुत्ता-सूकर ऊंट इनकी योनिको ब्रह्महत्यारा-और खर पुल्कस वेन इनकी योनिको मद्यप प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं कृमि कीट पतंग इनकी योनिको सुवर्णका चोर और तृण गुल्मलता इनकी योनिको गुरुकी शय्या पर गमनका कर्ता क्रमसे प्राप्त होता है ॥ २०७॥२०८॥

ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्सुरापःश्यावदंतकः ॥
हेमहारीतुकुनखीदुश्चर्मागुरुतल्पगः २०९

पद-ब्रह्महा १ क्षयरोगी १ स्यात् क्रि-सुरापः १ श्यावदन्तकः १ हेमहारी १ तु-कुनखी १ दुश्चर्मा १ गुरुतल्पगः १ ॥

योयेनसंवसत्येषांसतल्लिंगोभिजायते ।
अन्नहर्तामयावीस्यान्मूकोवागपहारकः ॥

पद-यः १ येन ३ संवसति क्रि-एषां ६ सः १ तल्लिंगः १ अभिजायते क्रि-अन्नहर्ता१ आमयावी१ स्यात् क्रि-मूकः१वागपहारकः१॥

धान्यमिश्रोतिरिक्तांगःपिशुनःपूतिनासिकः
तैलहृत्तैलपायीस्यात्पूतिवक्त्रस्तुसूचकः ॥

पद-धान्यमिश्रः १ अतिरिक्तांगः १ पिशुनः१ तैलहृत्१ तैलपायी १ स्यात् क्रि-१ पूतिवक्त्रः १ तु-सूचकः १ ॥

योजना-ब्रह्महा-क्षयरोगी-सुरापः श्यावदन्तकः तुपुनः हेमहारी कुनखी चपुनः गुरुतल्पगः दुश्चर्मा स्यात्-यः एषां मध्ये येन सह भवति सः तल्लिंगः अभिजायते अन्नहर्ता आमयावी वागपहारकः मूकः स्यात् धान्यमिश्रः अतिरिक्तांगः पिशुनः पूतिनासिकः तैलहृत् तैलपायी तुपुनः सूचकः पूतिवक्त्रः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब तिर्यग् योनिके अनंतर ब्रह्महत्यारे आदिके मनुष्यमें लक्षण कहतेहैं इस प्रकार रौरव आदि नरकोंमें और श्वा-सूकर-खर आदि योनियोंमें दारुण दुःखभोगके अनंतर पापके शेषसे जन्मके समयही क्षयरोग आदि लक्षणोंसे युक्त अनेक मानवशरीरोंमें उत्पन्न होते हैं कि ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी अर्थात् राजयक्ष्मी होताहै और निषिद्ध सुरापानका कर्ता स्वभावसे कृष्णदंत होताहै ब्राह्मणके सुवर्णका हर्ता निंदित नखवाला होता है गुरुकी स्त्रीका गामी दुश्चर्मा (कुष्ठी) होताहै इन ब्रह्महत्यारा आदिके मध्यमें जिसके संग जो मेल करताहै वहभी उसकेही चिह्न वाला होता है और अन्नका चोर आमयावी

1 श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोवाजिमृगपक्षिणाम् । चंडालपुल्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति । कृमिकीटपतंगानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् । हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् । लूताहिसरटानां च तिरश्चां चांबुचारिणाम् । हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः । तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि । क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ।

(अजीर्णान्न) होता है वागपहारक अर्थात् विना आज्ञासे पढनेवाला वा पुस्तकोंका चोर मूक अर्थात् वाणी इन्द्रियसे रहित होता है धान्यमिश्र (पराये अन्नका मिलानेवाला) के छः अंगुलि आदि अधिक अंग होता है और पिशुन जो विद्यमान पराए दोषोंको कहै उसकी नासिकामें दुर्गंध आती है तैलका चोर तैलपीनेवाला कीट होता है वृथा पराए दोषोंको कहनेवाले सूचकके मुखमें दुर्गंध आती है–यह भी तिर्यग् योनिके प्राप्तिके अनंतर जानना क्योंकि मनु (अ० १२ श्लो० ६८) का यह वचन है कि जैसे तैसे पराए द्रव्यको बलसे हरकर और विना होमकी हविको भक्षण कर मनुष्य तिरछी योनिको अवश्य प्राप्त होता है॥

भावार्थ–ब्रह्महा क्षयरोगी और मद्यप कृष्णदंत होता है–सुवर्णका चोर कुनखी और गुरुकी स्त्रीका गामी कुष्ठी होता है और इन ब्रह्महा आदिके मध्यमें जो जिसके साथ-वसे उसकाभी वही चिह्न होता है जो उस पतितका होता है, अन्नका चोर आमयावी और वाणीका चोर मूक होता है धान्य मिलाने वालेके अधिकअंग–और पिशुनकी नासिकामें दुर्गंध आती है–तैलका चोर तैल पीनेवाला जीव होता है–और सूचकके मुखमें दुर्गंध आती है॥२०९॥२१०॥२११॥

परस्ययोषितंहृत्वाब्रह्मस्वमपहृत्यच ॥
अरण्येनिर्जलेदेशेभवतिब्रह्मराक्षसः २१२

पद–परस्य ६ योषितं २ हृत्वाऽ–ब्रह्मस्वं २ अपहृत्यऽ–चऽ–अरण्ये ७ निर्जले ७ देशे ७ भवति क्रि–ब्रह्मराक्षसः १ ॥

योजना–परस्य योषितं हृत्वा च पुनः ब्रह्मस्वं अपहृत्य–अरण्ये निर्जले देशे ब्रह्मराक्षसो भवति–

ता० भा०–पराईस्त्री और सुवर्णसे भिन्न ब्राह्मणके धनको हरकर अरण्य (वन) निर्जल देशमे ब्रह्मराक्षस होता है ॥ २१२ ॥

हीनजातौप्रजायेतपररत्नापहारकः ।
पत्रशाकंशिखीहत्वागंधान्छुच्छुंदरीशुभान्

पद–हीनजातौ७प्रजायेतक्रि–पररत्नापहारकः १ पत्रशाकं २ शिखी १ हत्वाऽ– गंधान् २ छुच्छुंदरी १ शुभान् २–

योजना–पररत्नापहारकःहीनजातौ प्रजायेत पत्रशाकं हत्वा शिखी भवति शुभान् गंधान् हत्वा–छुच्छुंदरी भवति–

ता०भा०–पराए रत्नोंका चोर सुनारवा पक्षीयोंकी योनिमें प्राप्त होता है सोई मनु (अ० १२ श्लो० ६१)ने कहा है कि मणि–मोती–मूंगा–इनको और अनेक रत्नोंको चुराकर सुनारोंमे जन्म लेता है पत्तोंके शाकको हरकर मोर और श्रेष्ठ गंधोंको हरकर चुछुंदरी अर्थात् राजदुहिता नामकी मूषिका होती है॥ २१३ ॥

मूषकोधान्यहारीस्याद्यानमुष्ट्रःकपिःफलम्
जलंप्लवःपयःकाकोगृहकारीह्युपस्करम् ॥

पद–मूषकः १ धान्यहारी १ स्यात् क्रि–यानं २ उष्ट्रः१ कपिः१ फलं२ जलं२ प्लवः१ पयः २ काकः १ गृहकारी १ हिऽ–उपस्करम् २ ॥

मधुदंशःपलंगृध्रोगांगोधाग्निंबकस्तथा ।
श्वित्रीवस्त्रंश्वारसंतुचीरीलवणहारकः २१५

पद–मधु २ दंशः १ पलं२ गृध्रः १ गां२ गोधा १ अग्निं २ बकः १ तथाऽ–श्वित्री १ वस्त्रं २ श्वा १ रसं २ तुऽ–चीरी १ लवणहारकः १ ॥

१ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः । अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ।

१ मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः। विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ।

योजना-धान्यहारी मूषकः स्यात् यानं हृत्वा उष्ट्रः-फलं हृत्वा कपिः जलं हृत्वा प्लवः पयः हृत्वा काकः उपस्करं हृत्वा गृहकारी मधु हृत्वा दंशः पलं हृत्वा गृध्रः गां हृत्वा गोधा तथा अग्निं हृत्वा बकः वस्त्रं हृत्वा श्वित्री-तुपुनः रसं हृत्वा श्वा लवणहारकः चीरी स्यात् ॥

ता० भा०-धान्यका चौर मूसा होता है यानको चुराकर ऊंट-फलको चुराकर वानर-जलको चुराकर जलमुरगा-दूधको चुराकर काक-और उपस्कर (मुसल आदि गृहसामग्री) को चुराकर गृहकारी (चिडिया) मधुको चुराकर दंश-मांसको चुराकर गीध- गौको चुराकर गोधा- अग्निको चुराकर बगला-वस्त्रको चुराकर श्वित्री (श्वेतकुष्ठी) ईष आदिके रसको चुराकर कुत्ता लवणको चुराकर चीरी (झींझर) होता है २१४-२१५॥

प्रदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तंस्तेयकर्माणि ॥
द्रव्यप्रकाराहियथातथैवप्राणिजातयः ॥

पद-प्रदर्शनार्थं २ एतत् १ तुऽ-मया ३ उक्तं १ स्तेयकर्मणि ७ द्रव्यप्रकाराः १ हिऽ-यथाऽ-तथाऽ-एवऽ-प्राणिजातयः १-

योजना-एतत् मया स्तेयकर्मणि प्रदर्शनार्थं उक्तं हि अतः यथा द्रव्यप्रकाराः भवन्ति तथा एवप्राणिजातयो भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-चौरीके कर्ममें मैंने ये फल प्रदर्शनार्थ कहे चुराने योग्य द्रव्यके भेद जैसे २ हैं वैसे वैसेही प्राणियोंके भेद होते हैं जैसे कांसीका चुराने वाला हंस होता है अथवा जिस फलके साधन द्रव्यको चुराते हैं उसी साधनसे रहित होता है अश्वके चुराने वाला पंगु-शंखनें तो कहीं २ विशेष भी दिखाया है कि ब्रह्महत्यारा कुष्ठी-तेजका चौर मण्डली-देव-और ब्राह्मणोंका निंदक खलति (गंजा) विष और अग्निके दाता उन्मत्त गुरुके प्रति हननेवाला अपस्मारी-गोहत्यारा अंधा-धर्मपत्नीको छोडकर अन्य स्त्रीका भोगी- शब्दभेदी- भगकाभक्षण करनेवाला कुंडाशी-देव ब्राह्मणके धनका चौर पाण्डुरोगी-न्यास (धरोहर) का चौर काणा-स्त्रीके व्यापारसे जो जीवै वह पण्ड (नपुंसक) कुमार अवस्थामें स्त्रीका त्यागी-दुर्भागी-स्वच्छ एक मनुष्यके घरका अन्न खानेवाला-वातगुल्मी-अभक्ष्यका भक्षक गण्डमाली-ब्राह्मणीका गामी-वीर्यरहित-और क्रूरकर्मका कर्ता वामन-वस्त्रका चौर पक्षी-शय्याका चौर क्षपणक-शंख और शुक्तिका चौर कपाली-दीपकका चौर कौशिक-मित्रका द्रोही क्षयरोगी-मातापिताकी निंदा करनेवाला-खण्डकार-होता है-गौतमने भी कोई विशेष कहा है कि झूट बोलनेवाला उल्बल (जिसकी वारंवार वाणी लगे) स्त्रीका त्यागी जलोदर-झूठासाक्षी श्लीपदी-जिसके जंघा और चरण मोटे होजाय-विवाहमें विघ्नकर्ता छिन्नोष्ठ अवगुरणी (झिडकनेवाला) के हाथ छिन्न होते हैं-माताका-हंता अंधा-पुत्रवधूका गामी वातवृषण-चौरा हेमें विष्ठा और मूत्रका त्यागी मूत्रकच्छ्री-कन्याको दूषण लगानेवाला नपुंसक-ईर्ष्या करनेवाला मच्छर-पिताके संग विवादी अपस्मारी-न्यासका चौर संतानहीन-रत्नोंका चौर अत्यंत दरिद्री-विद्याका विक्रेता-मृग-वेदका विक्रेता-गर्डो बहुतोंको यज्ञकरानेवाला जलमुर्गा-यज्ञके करानेके अयोग्योंकी यज्ञकरानेवाला वराह- विनानिमंत्रण भोजन करनेवाला काक-स्वच्छ एककाही भोजन जो करै वह वानर-जहांतहां भोजनका कर्ता मार्जार-तृण और वनको जलानेवाला खद्योत (पटवीजना) स्त्रीका आचार्य मुखमें दुर्गंध वाला-पर्युषित (बासी) भोजी कृमि

विनादिए पदार्थको ग्रहण करनेवाला बैल-मत्सरी (पराई बढाईको न सहै) भ्रमर-अग्निका नाशक-मण्डलकुष्ठी-शूद्रोंका आचार्य काक-गौका हर्ता सर्प-स्नेहका चौर क्षयरोगी-अन्नका चौर अजीर्णी-ज्ञानका चौर मूक-चाण्डाली और पुल्कशीके गमनमें अजगर-संन्यासिनीके गमनमें-मारवाडका पिशाच-शूद्रीके गमनमें दीर्घकीट-सुवर्णा-स्त्रीके गमनमें दरिद्री-जलका चौर मत्स्य दूधका चौर बगला-वार्धुषिक (व्याजलेनेवाला) अंगसे हीन-वेचनेके अयोग्योंको वेचनेवाला गीध-राजाकी स्त्रीका गामी नपुंसक-राजाका निंदक गर्दभ-गौकागामी मैंडक-अनध्यायमें पढनेवाला शृगाल-परद्रव्यका चौर परायासेवक-मत्स्यकाहंता गर्भवासी होताहै-ये सब अनूर्ध्व गमन हैं अर्थात् इनकी ऊर्द्धगति नहीं होती-स्त्रीभी इन पूर्वोक्त पापोंके करनेसे पूर्वोक्त जातियोंमें स्त्रीयोनिको प्राप्त होती हैं-सोई मनु (अ० १२ श्लो० ६९)ने कहा है कि स्त्रीभी इसी प्रकार वस्तुओंको हरकर इन्ही जीवोंकी भार्या होती हैं-और यहक्षयी आदि लक्षणोंका कहना-प्रायश्चित्त आदि करनेको उद्यत जो ब्रह्महा आदि हैं उनको उद्वेगके लिये है कुछ क्षय आदिरोग वालोंको द्वादश वर्षके व्रतकी प्राप्तिके लिए और उनके संसर्गकी निवृत्तिके लिए नहीं सोई दिखाते हैं कि प्रायश्चित्त पापक्षयके लिए होता है प्रारब्धका फल पापका अपूर्व जब नष्ट होचुका तो प्रायश्चित्त करनेका कुछ प्रयोजन नहीं-क्योंकि धनुषसे छुटा हुआ बाण लक्ष्यके वीधनेमें वा उसकी और उसके व्यापारकी सत्ताकी फिर अपेक्षा नहीं करता-और उसने आरंभ किये हुये फलोंके नाशार्थभी अपूर्वका नाश ढूंढने योग्य नहीं है क्योंकि घटके कारण जो चक्रचीवर आदि उनके नाशसे उनसे बने हुये घटका नाश नहीं होता और स्वाभाविक (जन्मसे हुये) कुनख आदि फिर अच्छेनहीं हो सकते-और नरक और तिरछीयोनि आदिके दुखोंकी परंपराको भोगकर उसके कुनख आदि विकार चरमफल (अंत्यके कार्य) होते हैं-वह उत्पन्न होतेही अपने कारणरूप अपूर्वके नाशको पैदा कर देते हैं जैसे मथनसे पैदा हुई अग्नि अरणिको नष्ट कर देती है-तिससे पापके नाशार्थ व्रतोंका करना नहीं है और न उसके संग व्यवहार के अर्थ है-क्योंकि शिष्ट कुनखी आदिके संग संसर्गको त्याग देते हैं-पूर्व जन्मके क्षयरोगसे पापका नाश होनेपर सम्यक् व्यवहारभी सिद्धहो जायगा इससे व्रत करनेका कोई प्रयोजन नहीं-जो वसिष्ठने कहा है कि कुनखी और कृष्णदंत द्वादशरात्रका कृच्छ्र करैं वे क्षामवत्त्व (दुर्बलता) आदिके समान नैमित्तिक मात्र हैं पापके क्षय और भली प्रकार व्यवहारके लिये नहीं यह मानने योग्य है॥

भावार्थ-चोरीके कर्मके ये पूर्वोक्त फल मैंने दिखानेके लिये कहे हैं क्योंकि जैसे २ चोरीके द्रव्योंके भेद होते हैं वैसी २ ही प्राणियोंकी जाति होती हैं॥ २१६॥

यथाकर्मफलंप्राप्यतिर्यक्त्वंकालपर्ययात्।
जायंतेलक्षणभ्रष्टादरिद्राःपुरुषाधमाः २१७

पद-यथाकर्म ऽ- फलं २ प्राप्य ऽ- तिर्यक्त्वं २ कालपर्ययात् ५ जायंते क्रि-लक्षणभ्रष्टाः १ दरिद्राः १ पुरुषाधमाः १॥

योजना-यथाकर्म फलं तिर्यक्त्वं प्राप्य कालपर्ययात् लक्षणभ्रष्टाः पुरुषाधमाः दरिद्राः जायन्ते॥

१ स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः। एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः।

१ कुनखी श्यावदंतश्च कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्।

तात्प०भावार्थ–अपने किये पाप कर्मके अनुसार नरक आदि फल और तिरछी योनियोंको प्राप्त होकर कालके क्रमसे कर्म क्षीण होनेपर दुष्ट लक्षणी दरिद्री पुरुषोंमें अधम (नीच) होते हैं ॥ २१७ ॥

ततोनिष्कल्मषीभूताःकुलेमहतिभोगिनः ॥
जायंतेविद्ययोपेताधनधान्यसमन्विताः ॥

पद–ततः– निष्कल्मषीभूताः १ कुले ७ महति ७ भोगिनः १ जायंते क्रि–विद्यया ३ उपेताः १ धनधान्यसमन्विताः १ ॥

योजना–निष्कल्मषीभूताः विद्ययाउपेताः धनधान्यसमन्विताः महति कुले भोगिनः जायंते ॥

तात्प०भावार्थ–फिर दुष्ट लक्षण मनुष्य जन्मके अनंतर निष्पाप होकर अर्थात् नरक आदिके भोगसे क्षीण पाप हुये पूर्व जन्मके शेषपुण्यसे महान् कुलमें–भोग विद्या और धनधान्यसे युक्त उत्पन्न होते हैं ॥ २१८ ॥

विहितस्याननुष्ठानान्निंदितस्यचसेवनात् ॥
अनिग्रहाच्चेंद्रियाणांनरः पतनमृच्छति ॥

पद–विहितस्य ६ अननुष्ठानात् ५ निंदितस्य ६ च– सेवनात् ५ अनिग्रहात् ५ च– इंद्रियाणाम् ६ नरः १ पतनं २ ऋच्छति क्रि–॥

तस्मात्तेनेहकर्तव्यंप्रायश्चित्तंविशुद्धये ॥
एवमस्यांतरात्माचलोकश्चैवप्रसीदति २२०

पद–तस्मात् ५ तेन ३ इह– कर्तव्यं– प्रायश्चित्तं १ विशुद्धये ४ एवं– अस्य ६ अंतरात्मा १ च– लोकः १ च– एव– प्रसीदति क्रि– ॥

योजना–विहितस्य अननुष्ठानात् चपुनः निंदितस्य सेवनात् चपुनः इंद्रियाणाम् अनिग्रहात् नरः पतनं ऋच्छति तस्मात् तेन इह विशुद्धये प्रायश्चित्तं कर्तव्यं एवं कृते सति अस्य अंतरात्मा चपुनः लोकः प्रसीदति ॥

तात्पर्यार्थ–विहित कर्म अर्थात् जो आवश्यक संध्योपासन अग्निहोत्र आदि नित्य और अशुद्धके स्पर्शमें कहे हुये स्नान आदि नैमित्तिक, वे दोनो विहित (शास्त्रोक्त) कहाते हैं उनके न करनेसे और निंदित (निषिद्ध) सुरापान आदिके सेवनसे और विषयोंसे इंद्रियोंके न रोकनेसे नर पतन (नरक या दुःख)को प्राप्त होता है अर्थात् पापी होजाता है कदाचित् कोई शंका करै कि संपूर्ण इंद्रियोंके विषयोंमें जानकर आसक्त न हो इस वचनसे इंद्रियोंमें प्रसक्ति भी निषिद्ध है इससे निंदित कहनेसे यहभी आजाती–इंद्रियोंके अनिग्रहसे यह पृथक् क्यों कहा इसका समाधान कहते हैं क्योंकि इंद्रियोंमें प्रसंगका निषेध एकांतसे (निश्चयसे) निषेध रूप नही क्योंकि यह स्नातकके व्रतोंमें पढा है और वहां यह अधिकार है कि इन व्रतोंका धारण करै इससे वहां नञके सुननेसे इंद्रियोंमें प्रसक्ति करनेवाला संकल्प विधान किया जाता है यह संकल्प प्रमथ गम होता है इससे पृथक् पढा है कदाचित् कोई शंका करै कि विहितके न करनेसे प्रत्यवायी (पापी) होता है यह किसप्रकार निश्चय किया क्योंकि अग्निहोत्र आदिकी जो चोदना (विधि) है यह पुरुषको अप्रवृत्तिरूप अनुष्ठान (न करना)को प्रत्यवायका हेतु बोधन नही करती किंतु (कार्य) अनुष्ठान (करने)को पुरुषार्थ मात्र बोधन करती हुई दिखा, इतनेसेही प्रवृत्तिके होनेसे फिर न करनेको प्रत्यवायका हेतु न कहेगी क्योंकि क्षीण शक्ति होनेसे उसकाभी बोध-

१ इंद्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
२ व्रतानीमानि धारयेत् ।

न नही हो सकता–कदाचित् अनुपपत्तिके उपशम (न होना)मेंभी प्रवृत्तिकी सिद्धिके लिये अर्थान्तरकी कल्पना करोंगे तो निषेधके योग्य प्रत्यवायके निवारणार्थही उसके वर्जनेको पुरुषार्थ सिद्धिमेंभी अन्य फलकी कल्पना की जायगी और यह किसीकोभी संमत नहीं है कदाचित् कोई शंका करे कि जैसे निषिद्ध पदार्थोंमें अर्थवादसे जाने हुये प्रत्यवायके निवारण रूपसेही पुरुषार्थत्व है तैसेही विहितों (शास्त्रोक्त) मेंभी अर्थवादसे जाने करनेसे जन्मे प्रत्यवायकी निवारकता क्यों न होजाय ऐसे मत कहो क्योंकि सर्वत्र अग्निहोत्र आदिमें तैसे अर्थवाद नही है कदाचित् कहो विहितके न करनेसे मनुष्य पतित होता है यह स्मृतिही[१] वाक्य शेषके स्थानमें है अर्थात् अर्थवाद रूप है यह ठीक है परन्तु यहभी ठीक नहीं क्योंकि अन्य वाक्यसे बोधन किये कार्यमें वाक्यांतरसे अर्थवाद नही होता अथवा कथंचित् (किसी प्रकारसे) एक वाक्यतासे अर्थवाद हो तोभी अभाव रूप विहितका न करना कार्यांतरके पैदा करानेको समर्थ नही हो सकता कदाचित् शंका करोकि ज्वर और अतीसारमें लंघन परम औषध है इस आयुर्वेदके[२] वचनसे भोजनका अभावरूप लंघन जैसे ज्वर शांतिको करता है तैसेही यहांभी क्यों नहो ऐसे मत कहो जिससे यहांभी लंघनसे ज्वरकी शांति नहीं है किंतु ज्वरके नाशका प्रतिबंधक जो भोजन उसका अभाव होनेपर जठराग्निके परिपाक वश धातुओंकी साम्यतासे ज्वर शांत होता है यह मानने योग्य है तिससे विहितके न करनेसे मनुष्य पतित होता है इस स्मृतिकी कैसे गति होगी इसका समाधान कहते है कि अग्निहोत्रके अधिकारकी असिद्धि रूप प्रत्यवायके अभिप्रायसे गति होगी इससे कुछ दोष नही कदाचित् शंका करो कि विहितके न करनेमें प्रत्यवायके बोधक ये मनु (अ० १२ श्लो० ७१–७२)के[१] वचन कैसे घटेंगे कि अपने धर्मसे पतित ब्राह्मण वांताशी उल्कामुख प्रेत होता है और क्षत्रिय अमेध्य कुणपाशी कटपूतन होता है और वैश्य पूयका भोक्ता मैत्राक्ष ज्योतिक प्रेत होता है और अपने धर्मसे पतित शूद्र चैलाशक प्रेत होता है इसका समाधान कहते है कि जैसे वमनको खानेवाले (वांताशी) को उल्कासे दग्ध मुख होनेसे दुःख होता है तैसे विहितके न करनेसे इसको होता है इससे पुरुषके पुरुषार्थकी असिद्धि होनेसे न करनेकी निंदा करनेमें रुचिके लिये है इससे कुछ विरोध नही अथवा पूर्वजन्मके निषिद्ध आचरणसे अनुमान किया और विहितके करनेका विरोधि राग आलस्य आदिसे पैदा हुआ वांताशी और उल्कामुख प्रेत होता है इससे कहीभी अभाव कारण नहीं यह मानने योग्य है कदाचित् शंका करोकि व्यभिचारिणीका गमन वानर वा खरकी दृष्टि और मिथ्याभिशाप आदिमें कोईभी विहितका न करना आदि नही तो प्रत्यवाय कैसे घट सकता है और प्रत्यवायके न होनेसे प्रायश्चित्त क्यों कहा ॥ इसका समाधान कहते हैं कि इसीसे पापके क्षयार्थ प्रायश्चित्तका विधानहै तिससे जन्मांतरमें किये निषिद्ध सेवा आदिसे पैदा हुए पापके अपूर्व मिथ्या अभिशाप आदिका आक्षेप होता है उसके निमित्त प्रायश्चित्तसे दूर

१ विहितस्याननुष्ठानान्नरः पतनमृच्छति ।

२ ज्वरे चैवातिसारे च लंघन परमौषधम् ।

१ वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः। अमेध्यकुणपाशी तु क्षत्रियः कटपूतनः । मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् । चैलाशकस्तु भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ।

करने योग्य कर्म करनेंकी कल्पना करते हैं पुरुषको प्रयत्नकी अपेक्षाके विना कार्यरूप पापकी उत्पत्ति नहीहो सक्ती और व्यभिचारिणी आदिके प्रयत्नसे अन्यपुरुषमें पापकी उत्पत्ति नहीहो सक्ती क्योंकि धर्म अधर्म ये दोनों कर्त्ताके समवायी होते हैं अर्थात् इनका फल कर्त्ताकोही होताहै तिससे पूर्वोक्त तीनों निमित्तोंकी प्रायश्चित्तमें पूर्वगणना युक्तहै सोई मनु (अ० ११ श्लो० ४४) ने कहा है कि शास्त्रोक्तकर्मके न करने और निन्दितके करने और इन्द्रियोंका विषयमें लगनेसे नर प्रायश्चित्त करने योग्य होताहै इस वचनमें नरका ग्रहण प्रतिलोमजातियोंकोभी प्रायश्चित्तकी प्राप्तिकेलिए है क्योंकि उनकोभी अहिंसा आदि साधारण धर्मका व्यतिक्रम (नकरना) हो सक्ता है जिससे इसप्रकार निषिद्धाचरण आदिसे प्रत्यवायी पाप होताहै तिससे की है निषिद्ध सेवा आदि जिसने ऐसा वह मनुष्य इसलोक और परलोकके लिए प्रायश्चित्त करै यह प्रायश्चित्त शब्द पापक्षयके लिए नैमित्तिक कर्म विशेषमें रूढहै इसप्रकार प्रायश्चित्त करनेसे इस मनुष्यका अंतरात्माभी प्रसन्न होताहै और जगत्‌भी उसके संग व्यवहार करनेके लिए प्रसन्न होताहै. यह कहते हुए याज्ञवल्क्यनें यह दिखाया कि यह प्रायश्चित्ताधिकार नैमित्तिक है और उसमें अर्थवाद गत दुरितका क्षयभी जातेष्टिन्यायसे स्वीकार कियाहै इससे पापके क्षयकी इच्छावालाही उसे करै इतनेसे कामाधिकारकी शंका न करनी जिससे इस मनु (अ० ११ श्लो० ५३) वचन में न करनेमें दोष सुननेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता जानी जाती है कि–इससे विशुद्धिके लिए नित्य प्रायश्चित्त करै क्योंकि जिनोंनें प्रायश्चित्त नही किया वे निन्दित लक्षणोंसे युक्त संसार में जन्मते हैं

भावार्थ–शास्त्रोक्त न करनेसे और निन्दितके करनेसे और इंद्रियोंको विषयोंसे न रोकनेसे नर पतित होताहै तिससे वह जगतमें विशुद्धिके लिए प्रायश्चित्त करै इसप्रकार इसका आत्मा और जगत् दोनों प्रसन्न होते हैं ॥ २१९॥२२० ॥

प्रायश्चित्तमकुर्वाणाःपापेषुनिरतानराः ॥
अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान्यांतिदारुणान् ॥

पद–प्रायश्चित्तं २ अकुर्वाणाः १ पापेषु ७ निरताः१ नराः१ अपश्चात्तापिनः१ कष्टान् २ नरकान् २ यान्ति क्रि– दारुणान् २

योजना–प्रायश्चित्तं अकुर्वाणाः पापेषु निरताः अपश्चात्तापिनः नराः कष्टान् दारुणान् नरकान् यान्ति

तात्पर्यार्थभावार्थ–शास्त्रोक्तके व्यतिक्रम से पैदा हुए पापोंमें प्रसक्त और पश्चात्ताप न करते हुए अर्थात् मैं पाप किया इसप्रकार उद्वेगसे रहित और प्रायश्चित्त न करते हुए मनुष्य दुःसह नरकोंको प्राप्त होते हैं अर्थात् महान् २ दुखोंको भोगते हैं ॥ २२१ ॥

तामिस्रंलोहशंकुंचमहानिरयशाल्मली ॥
रौरवंकुड्मलंपूतिमृत्तिकंकालसूत्रकम् २२२॥

पद–तामिस्रं २ लोहशंकुं२ च०- महानिरयशाल्मली २ रौरवं २ कुड्मलं २ पूतिमृत्तिकं २ कालसूत्रकं २

संघातंलोहितोदंचसविषंसंप्रपातनम् ॥
महानरककाकोलंसंजीवनमहापथं २२३॥

पद–संघातं २ लोहितोदं २ च०-सविषं २

१ अकुर्वन् विहित कर्म निंदित च समाचरन्। प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ।

२ चरितव्यमतो नित्य प्रायश्चित्त विशुद्धये । निंद्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्ते निष्कृतै नराः ।

संप्रपातनं २ महानरककाकोलं २ संजीवनमहापथम् २॥

अवीचिमंधतामिस्रंकुंभीपाकंतथैवच ॥
असिपत्रवनंचैवतापनंचैकविंशकम् २२४ ॥

पद-अवीचिं २ अंधतामिस्रं २ कुंभीपाकं२ तथाऽ-एवऽ- चऽ- असिपत्रवनं २ चऽ- एवऽ- तापनं २ चऽ- एकविंशकं २

महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैस्तथा ।
अन्विताऽयांत्यचरितप्रायश्चित्तानराधमाः॥

पद-महापातकजैः ३ घोरैः३ उपपातकजैः३ तथाऽ-अन्विताः१यान्ति क्रि- अचरितप्रायश्चित्ताः १ नराधमाः १

योजना-महापातकजैः घोरैः तथा उपपातकजैः घोरैः अन्विताः अचरितप्रायश्चित्ताः नराः तामिस्रं चपुनः लोहशंकुं महानिरयशाल्मली रौरवं कुड्मलं पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकं संघातं चपुनः लोहितोदं सविषं संप्रपातनं महानरककाकोलं संजीवनमहापथं अवीचिं अंधतामिस्रं चपुनः कुंभीपाकं असिपत्रवनं चपुनः एकविंशकं तापनं यान्ति ॥

ता० भा०-ब्रह्महत्याआदि महापातक और उपपातकोंसे उत्पन्न हुए भयंकर पापोंसे युक्त मनुष्य जो प्रायश्चित्तको नही करते वे नराधम जैसे २ दुःखके देनेवालेहैं वैसेही नामसे जो भिन्न २ हैं ऐसे इन इक्कीस २१ नरकोंमें प्राप्त होतेहैं कि तामिस्र १ लोहशंकु २ महानिरय ३ शाल्मलि ४ रौरव ५ कुड्मल ६ पूतिमृत्तिक ७ कालसूत्र ८ संघात ९ लोहितोद १० सविष ११ संप्रपातन १२ महानरक १३ काकोल १४ संजीवन १५ महापथ१६ अवीचि १७ अंधतामिस्र १८ कुंभीपाक १९ असिपत्रवन २० और इक्कीसवा तापन २१ ॥२२२॥२२३ ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

प्रायश्चित्तैरपैत्येनोयदज्ञानकृतंभवेत् ॥
कामतोव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते२२६

पद-प्रायश्चित्तैः ३ अपैति क्रि- एनः २ यत् १ अज्ञानकृतं १ भवेत् क्रि- कामतःऽ- व्यवहार्यः १ तुऽ- वचनात् ५ इहऽ-जायते क्रि

योजना-यत् एनः अज्ञानकृतं भवेत् तत् प्रायश्चित्तैः अपैति (नश्यति)-जनः इह संसारे कामतः कृते एनसि व्यवहार्यः जायते एनस्तु न नश्यतीत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-जो पाप अज्ञानसे किया हो वह पाप वक्ष्यमाण प्रायश्चित्तोंसे दूर होता है और ज्ञानसे किया पाप दूर नही होता किंतु प्रायश्चित्तके बोधक वचनोंके बलसे वह मनुष्य व्यवहार (सम्बंध) के योग्य होता है-इस वचनमें अज्ञानकृत पाप प्रायश्चित्तोंसे दूर होता है उस अज्ञानका प्रतियोगी ज्ञानतः (ज्ञानसे) ऐसा कहनाथा जो कामतः यह कहाहै वह ज्ञान और काम इन दोनोंको तुल्यता दिखानेके लिए है-सोई दिखाते हैं कि जो अज्ञानियोंको पाप कहा है वह ज्ञानसे दूना होता है तैसेही अज्ञानसे किये कर्ममें आधा प्रायश्चित्त है तैसेही यदि कथंचित् म्लेच्छ शूद्राके संग गमन करे तो तीन कृच्छ्र करे और जानकर करे तो द्विगुण प्रायश्चित्त करे-इत्यादि वचनोंसे ज्ञान और काममें तुल्य प्रायश्चित्तके दिखानेसे तुल्य फल है और विषय (पदार्थ) के ज्ञान और कामनासे पुरुषकी स्वतंत्र प्रवृत्ति नियमसे है उनमें एकके न होनेसे प्रवृत्तिका असंभवहै इससे कामतःयह कहा अथवा ज्ञानाज्ञानतः यह कहो तो काम आजाता

१ विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं भवेत्। तथा अबुद्धिपूर्वक्रियायामर्द्धं प्रायश्चित्तं तथा म्लेच्छोपगमने शूद्रा तत्समासु कथयन कृच्छ्रत्रयं बुद्धि ज्ञानात् द्विगुणं भवेत् ।

है क्योंकि कामके विना अज्ञान नही हो सक्ता अभावके ज्ञानमें प्रतियोगीका ज्ञान कारण होता है-कदाचित् कोई कहै कि चोर आदि जिसे बलसे प्रवृत्त करदें उसे विषयका ज्ञानहै भी कामनाका अभाव होनेसे अविनाभाव नही-सोठीक नही-जिससे यहां विद्यमानभी ज्ञान प्रवृत्तिका हेतु न होनेसे असत्के समान है जो किसीने कहा कि शुष्क स्थलमेंभी-गिरनेवाले मनुष्यका भ्रान्तिसे कीचमें पतन होता है यहांभी वास्तव ज्ञानके अभावसे. उस ज्ञानकी कामनाका अभावही है इसी प्रकार अज्ञान और कामकाभी व्यभिचार नही है कदाचित् कोई शंका करे कि प्रायश्चित्तोंसे पाप दूर होता है यह युक्त नही क्योंकि कर्मका नाश फलसे होता हे सोठीक नही-क्योंकि जैसे पापकी उत्पत्ति शास्त्रसे जानी जाती है इसी प्रकार पापका नाशभी शास्त्रसे जाना जाता है इसमें दूसरा प्रमाण नही चलसक्ता इसीसे गौतमने पूर्वोत्तर पक्षकी रीतिसे यही बात दिखाई है कि प्रायश्चित्त करे वा न करै यह विचार करते हैं कोई यह कहते हैं कि न करे क्योंकि किया हुआ कर्म नष्ट नही होता और कोई कहते है कि करे क्योंकि फिर स्तोम यज्ञ करके फिर सवनमें आतेहैं अर्थात् सवनसे होनेवाले ज्योतिष्टोम आदि द्विजातियोंके जो कर्म उनके योग्य होते हैं-कदाचित् शंका करो कि यह अर्थवादही है सोठीक नही क्योंकि रात्रिमें सत्रके न्यायसे अधिकारिके विशेषणकी आकांक्षा होने पर अर्थवादके फलकी कल्पनाही न्याय्य (उचित) है केवल अर्थवादकी नही-इससे यह युक्त है कि प्रायश्चित्तोंसे पाप दूर होता है कदाचित् शंका करो कि जानकर किये कर्ममें प्रायश्चित्तका अभाव है इससे वह व्यवहारके योग्य कैसे होता है और व्यवहार योग्य न होना इस वसिष्ठके और मनुके वचनसे जानते है कि अनभिसंधि (अज्ञान) से किये अपराधमें प्रायश्चित्त है-अज्ञानसे ब्राह्मणके मारनेकी यह शुद्धि कही-जानकर ब्राह्मणके वधमें निष्कृति (प्रायश्चित्त) नही है यह शंका ठीक नही है क्योंकि जो मनुष्य कीसी प्रकार महा पाप करे उसका प्रायश्चित्त पर्वत से और अग्निमें पडनेसे अन्य नही है जो प्रायश्चित्त अज्ञानियोंको कहा है-ज्ञानसे करनेमें वह दूना होता है इन वचनोंसे जानकर करनेमेंभी प्रायश्चित्त देखते हैं-जो तो वसिष्ठका वचन है उसकाभी यह अभिप्राय है कि अज्ञानसे किये अपराधमें प्रायश्चित्त शुद्धिको करता है कुछ यह अभिप्राय नही है कि जान कर किये पापमें प्रायश्चित्तका अभाव है और जो पूर्वोक्त मनुका वचन है कि अज्ञानसे ब्राह्मणके मारनेकी यह शुद्धि कही जानकर ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त नही है उसकाभी यह तात्पर्य है कि इयं (यह) इस सर्व नामसे परामर्श किये बारह वर्षकी व्रतचर्याकाही उस वचनसे जानकर ब्राह्मणके वधमें निषेध है कुछ प्रायश्चित्त मात्र (सब) का निषेध नही है-क्योंकि मरणांतिक आदि प्रायश्चित्त देखते हैं कदाचित् शंका करो कि जो जानकर कियेमेंभी प्रायश्चित्त है तो अविशेषसे पापका नाशभी

१ तेन प्रायश्चित्त कुर्यान्नकुर्यादिति मीमांसन्ते न कुर्यादित्याहुर्नहि कर्म क्षीयते इति कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्ट्वा पुनःसवनमायान्तीति विज्ञायते व्रात्यः स्तोमेनेष्ट्वा ब्रह्मचर्य चौदुपनयनत इति सर्वे पाप्मानं तरति भ्रूणहत्यां योश्वमेधेन यजते इति पुनः सवनमायान्ति ।

१ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजं । कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ।

२ न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्निपतनादृते । तथा । विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं भवेत् ।

क्यों नही यदि पापका क्षयभी नही होयतो व्यवहार करनेकी योग्यताभी कैसे होती है इसका समाधान कहते हैं कि दोनोंके प्रायश्चित्तोंमें कुछ विशेषभी नही तोभी शास्त्रसे फल विशेष जाना जाता है अज्ञानसे किये कर्मोंमें तो सर्वत्र पापका क्षय होता है और जहां- ब्रह्महत्यारा-मदिरा पीनेवाला-गुरुतल्पग-माता पिताकी योनिमें जिसके अंगका संबंध हो-चोर नास्तिक-निंदित कर्मका अभ्यासी-प्रतितका अत्यागी-और अपातितका त्यागी-पतित-और पातकके प्रेरक-ये व्यवहारके अयोग्य हैं इन गौतमेके कहे महापातक आदिमें व्यवहारकाभी पातकीके संग निषेध है उसी पतन करने योग्य कर्ममें कामसे करनेपर व्यवहार करने योग्य मात्र है पापका नाश नही हैं-कदाचित् शंका करो कि पापक्षयके अभावमें व्यवहारकी योग्याताभी अनुपपन्न (नही हो सकती) है-सो ठीक नही क्योंकि पापकी दो शक्ति हैं एक नरक उत्पन्न करनेवाली दूसरी व्यवहार रोकनेवाली-उनमें नरक पैदा करनेवाली शक्तिका नाश न भी होतो व्यवहार रोकनेवाली शक्तिका नाश अनुपपन्न नहीं अर्थात् अवश्य होगा-तिससें पाप न भी जाय तोभी व्यवहार करने योग्य होना अनुपपन्न नही-जो यह मनु (अ० ११-श्लो० ४५) का वचन है अज्ञानसे किये पापमें बुद्धिमानोंने प्रायश्चित्त कहा है जानकर किये पापमेंभी श्रुतिमें देखनेसे कोई पाप कहते हैं-वह वचनभी कामनासे कियेमेंभी प्रायश्चित्तकी प्राप्तिके लिये है कुछ पापकें क्षयका प्रतिपादक नहीं है-और जो कर्म पतन करनेका हेतु नही और जानकर किया जाता है उसमें प्रायश्चित्तसे पापका क्षय अवश्य होगा-क्योंकि यह मनु (अ० ११ श्लो० ४६) ने कहा है कि अकामसे किया पाप वेदके अभ्यास करनेसे नष्ट होता है और मोहसे कामनासे किया पाप पृथक् २ किये प्रायश्चित्तोंसे नष्ट होता है-पतन करनेके कर्ममें इच्छासे करनेपर मरणांतिक प्रायश्चित्तोंसें पापका क्षय अवश्य होगा-क्योंकि अन्य फलका अभाव है-क्योंकि आपस्तंबका वचन है कि इसकी अन्य लोकमें प्रत्यापत्तिः (बदला) नही है-पापका तो नाश होता ही है ॥

भावार्थ-अज्ञानसे किया पाप जो होता है वह प्रायश्चित्तोंसे नष्ट हो जाता है और वचनके बलसे कामनासे किये पापोंमें इस लोकके विषे प्रायश्चित्तोंसे व्यवहार करनेकें योग्य हो जाता है ॥ २२६ ॥

ब्रह्महामद्यपःस्तेनस्तथैवगुरुतल्पगः ॥
एतेमहापातकिनोयश्चतैःसहसंवसेत् २२७

पद-ब्रह्महा १ मद्यपः १ स्तेनः १ तथा- एव- गुरुतल्पगः १ एते [illegible] यः १ च- तैः [illegible] इसलिये अल्पफलहै [illegible] आक्रोशन (निंदा) करना आदिहै प्रवृत्तिके हेतु क्रोधजनक होनेसे व्यवहित (दूर) है और वह मरनेके अनुसंधान विनाही प्रवृत्त है अर्थात् वह यह न जानता था कि मेरे आक्रोश करनेपर यह मरजायगा कदाचित् शंका करो कि व्यवहित मनुष्यको भी हिंसा आदिका यदि कारण मानोगे तो हिंसा करने वालेके पैदा करनेवाले माता पिता भी हननके कर्ता हो जांयगे सो ठीक नही क्यों कि कुछ जो पूर्व भावी हो वही २ कारण नहीं होता क्यों कि

१ ब्रह्महा सुरापो गुरुतल्पगो मातृपितृयोनिसंबन्धागस्तेननास्तिकनिंदितकर्माभ्यासिपतितात्यागपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च ।

२ अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ।

त्तिको बल देते हो इससे हिंसाके फलमें हेतु हो सक्ती हैं–तिसी प्रकार अन्यभी झिडकना–ताडना–धनको हरने आदिसे–अन्योंको क्रोधकरावे–वहभी मरणका हेतु क्रोधकी उत्पत्तिके द्वारा हिंसाका हेतु हो सक्ता है इसीसे विष्णुने कहा है कि झिडकने ताडने वा धन छीननेसे जो मनुष्य जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्यागदे वह भी ब्रह्मघातक कहाता है तैसेही ज्ञाति मित्र स्त्री सुहृद् क्षेत्र इनके अर्थ जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्यागे उसको भी ब्रह्मघातक कहते हैं कदाचित् कहो कि आक्रोश (निंदा वा झिडकना) करने परभी किसी २ मनुष्यको क्रोधकी उत्पत्ति नही देखते इससे झिडकना आदि हिंसाके कारण नही हो सक्ते सो ठीक नही क्योंकि पुरुषोंके स्वभावकी विचित्रतासे जिनको थोडेभी झिडकने पर क्रोध आ जाताहै उनसें व्यभिचार नहीं इससे कारण हो सक्ता है और इन अनुग्राहक और प्रयोजक आदिकोंसे प्रत्यासत्ति और व्यवधान (तुरन्त बाहिरमें) की अपेक्षासे और व्यापारके गौरव और लाघवकी अपेक्षासे हिंसाका फल और प्रायश्चित्तका गौरव और लाघव जानना क्यों कि यह वचनहै कि जो वारंवार आरंभ करताहै उसको विशेष फल होताहै तैसेही स्वयं हिंसामें प्रवृत्त हुए अनुग्राहकको स्वतन्त्र कर्तृत्वभी है तोभी साक्षात् प्राण वियोगहै फल जिसका ऐसे खड्गप्रहार आदि व्यापारवाला न होनेसे साक्षात्कर्ताके समान वारंवार हिंसाका फल न होनेसे अल्प फल और प्रायश्चित्त अल्प होताहै प्रयोजक स्वतन्त्र कर्ताकी प्रवृत्तिका जनक है इससे व्यवधान होनेसे उसको अल्प फल होताहै प्रयोजकोंके मध्यमें पराये अर्थ प्रवृत्त हुए उपदेष्टाको हिंसाका फल अल्प होताहै कदाचित् कोई शंका करे कि प्रयोजक प्रयोजकके हाथके समान है उसको फलका संबंध युक्त नही यदि परकी प्रेरणासे प्रवृत्त हुएकोभी हिंसाके फलका संबंध होय तो स्थपति (स्वामी) के तलावमें खनिता (खोदनेवाला) आदि जो मूल्यसे प्रवृत्त होते हैं उनको भी स्वर्ग आदि फलका संबंध हो जायगा इस शंकाका समाधान कहते हैं कि शास्त्रका फल प्रयोजकको होताहै इस न्यायसे अधिकारी जो कर्ता उसको फल देनेवाले देवमंदिर कूप तलाव इनके रचने आदि होते हैं और स्थपति और तलावके कर्ता आदि देवता कूप तलाव करने आदि में अधिकारी नहीं हैं क्यों कि वे स्वर्गके कामी हैं और यह परायी प्रेरणासे प्रवृत्त हुये भी हिंसामें अधिकारी हैं इससे उनको हिंसा का दोष हो सकताहै अनुमंताको प्रयोजकसे इसलिये अल्पफल होता है कि वह प्रयोजकके व्यापारसे बहिरंगहै और अनुमति भी लघुअपराधहै. और निमित्तकर्ताको अनुमंताके सकाशसे इसलिये अल्पफलहै कि उसका जो आक्रोशन (निंदा) करना आदिहै प्रवृत्तिके हेतु क्रोधजनक होनेसे व्यवहित (दूर) है और वह मरनेके अनुसंधान विनाही प्रवृत्त है अर्थात् वह यह न जानता था कि मेरे आक्रोश करनेपर यह मरजायगा कदाचित् शंका करो कि व्यवहित मनुष्यको भी हिंसा आदिका यदि कारण मानोगे तो हिंसा करने वालेके पैदा कर नेवाले माता पिता भी हननके कर्ता हो जांयगे सो ठीक नही क्यों कि दुष्ट जो पूर्व भायी हो यही २ कारण नही होता क्यों कि

कारण होनेसेही पूर्वभावी हो सकताहै वही कारण होताहै जो कार्यके पूर्व नियमसे रहै यह निश्चयहै कि जो कार्यके स्वरूपसे भिन्न कार्यकी उत्पत्तिके अनुगुण व्यापार वाला होवाहै वही कारण होताहै जो रथंतरसामा सोम होय तो ऐंद्रवायवाग्र ग्रहोंको ग्रहण करसकताहै इस वचनसे रथंतरकी सामताही क्रतु (यज्ञ) की ऐंद्रवायवाग्रतामें कारणहै वहां सोमयज्ञरूपसे कारण नहीं क्यों कि उसमें व्यभिचारहै ऐसे ही मातापिताकोभी पूर्वोक्त लक्षणका योग नहींहै इससे कुछ दोष नहींहै और आक्रोश आदिके समान कूप खननमें खोदने के निमित्त मरना नहींहै कि इसने कूप खुदवाया इससे मैं अपने देहका व्यापादन (नाश) करूंगा इससे कूपका कर्ता भी कारणहै हिंसाका हेतु नहीं इससे माता पिताके तुल्यही है तैसेही कहीं २ हिंसाका निमित्त योगके होनेपरभी परोपकारके लिये प्रवृत्त होने वालेको वचनसे दोषका अभाव होताहै सोई संवर्तने कहाहै कि चिकित्साके लिये गौके बांधनेमें और गूढगर्भ के मोचन (निकालना) में यत्न करनेपर मरण हो जाय तो प्रायश्चित्त नहीं है औषध स्नेह भोजन इनको गौ ब्राह्मण आदिको देने पर मरण होजाय तो वह देनेवाला पापसे लिप्त नहीं होता दाहका छेदन शिराका भेद (फस्त) इन यत्नोंसे जो प्राणोंकी रक्षाके लिये उपकार करते हैं उनकोभी मरनेपर प्रायश्चित्त नहीं है यह भी उस वैद्यके विषयमें है जो आदान और निदानमें निपुण हो-उससे भिन्नको तो मिथ्या आचरण करता हुआ वैद्य दंड देनेयोग्य है इस वचनसे दोष दिखा आये हैं-और जो मनुष्य क्रोधके निमित्त आक्रोश आदि न करनेवालेकाभी नाम लेकर उन्माद आदिसे अपने आत्माको नष्ट करदे वहांभी दोष नहीं-क्योंकि यह स्मृति है कि जो कोई द्विज विनाकारण प्राणोंको त्याग दे वहां उसकोही दोष है जिसका नाम ले उसको नहीं-जैसे जहां आक्रोश आदिसे पैदा हुये क्रोधसे अपने देहमें खड्ग आदिका प्रहार करै और मरणसे पहिले उसका आक्रोश करनेवाला धन आदिसे संतोष करदे और वह बहुतसे मनुष्योंके समक्ष (आगे) ऊंचे स्वरसे सुनादे कि मैं प्रसन्नहूं इसमें आक्रोश कर्ताका अपराध नहीं वहांभी वचनसे दोष नहीं-सोई विष्णुने कहाहै कि यदि किसी उद्देशसे क्रोध हुआ अपने देहमें मारै और संतुष्ट हुआ फिर सुना दे कि इसका दोष नहीं उसके मरनेपर-दोनोंके ऊंचे स्वरसे कहनेसे दोष नहीं है-और इन प्रयोजक आदिकोंके दोषके गुरु लघुभावको देखकर प्रायश्चित्तका विशेष कहेंगे ॥

भावार्थ-ब्रह्महत्यारा-मदिरा पीनेवाला-चोर-गुरुस्त्रीकागामी और जो इनके संग संवास करै ये पांच महापातकी होते हैं२२७

पद–गुरूणाम् ६ अध्याधिक्षेपः १ वेदनिंदा १ सुहृद्वधः १ ब्रह्महत्यासमं १ ज्ञेयं १ अधीतस्य ६ चऽ– नाशनम् १ ॥

योजना–गुरूणां अध्यधिक्षेपः वेदनिंदा सुहृद्वधः चपुनः अधीतस्य नाशनं एतत् ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ–गुरुओंका अधिकतासे अधिक्षेप (झूटी निंदा) क्योंकि गौतमको वचन है कि गुरुकी झूटी निंदा महापातकके समान है–यहभी उस दोषकी निंदाके विषयमें है जो जगतमें अविदितहो क्योंकि आपस्तंबकी स्मृति है कि दोषको जानकर पूर्व जो श्रेष्ठ है उनके दोषको न कहै और व्यवहारमें इसको त्याग दे–और नास्तिक होनेके आग्रहसे वेदकी निंदा–ब्राह्मणसे भिन्नभी मित्रका वध–और पढे हुऐ वेदका असत् (बुरे) शास्त्रके विनोदसे वा आलस्य आदिसे नाशन (विस्मरण) अर्थात् भूलना–ये सब प्रत्येक ब्रह्महत्याके समान है–और जो वेद अग्नि पुत्र इनका त्याग उपपातकहै इस वचनमें अधीत (पढावेद)के त्यागको उपपातकोंके मध्यमें गिना है वह उस विस्मरणमें जानना जो कष्टसे कुटंबके पोषणकी व्याकुलता और असतशास्त्रके श्रवणकी व्यग्रतासे होता है ॥

भावार्थ–गुरुओंकी अधिक निंदा–मित्रका वध–और वेदकी और वेदका नाश ये ब्रह्महत्याके समान जानने ॥ २२५ ॥

निपिद्धभक्षणंजैहयमुत्कर्षेचवचोनृतम् ।
रजस्वलामुखास्वादःसुरापानसमानि तु ॥

पद–निपिद्धभक्षणं १ जैह्यं १ उत्कर्षे ७ चऽ–वचः १ अनृतं १ रजस्वलामुखास्वादः१ सुरापानसमानि १ तुऽ– ॥

योजना–निषिद्धभक्षणं जैह्यं चपुनः उत्कर्षे अनृतं वचः रजस्वलामुखास्वादः एतानि सुरापानसमानि भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ–निपिद्ध लशुन आदिका जानकर भक्षण–इसीसे मनु (अ० ५ श्लो० १९) ने कहा है कि छत्राक–विष्टाका भक्षक सुकर लहसन–ग्रामका कुकुट (मुर्गा)–पलाण्डु (सलगम) गाजर इनको जानकर खानेसे मनुष्य पतित होता है और अज्ञानसे भक्षणमें तो प्रायश्चित्त मनु (अ० ५ श्लो० ३०) नेही कहा है कि अज्ञानसे इन छःको खाकर सान्तपन कृच्छ्र और यतिचांद्रायण व्रतको करै और शेष पापोंमें एक दिन उपवास करै–जैह्य (कुटिलता) अर्थात् अन्यकी प्रतिज्ञा करके अन्य कहना वा अन्य करना–यद्यपि यहां सामान्यसे कुटिलता कही है तथापि प्रायश्चित्तके गौरवसे कुटिलता रूप निमित्तभी गुरुही लेना–अर्थात् अधिक कुटिलतामें यह प्रायाश्चित्त समझना और नैमित्तिक (कार्य)के देखनेसे निमित्तकी विशेषताका ज्ञान देखते है–जैसे जिस पुरुषकी दोनों अग्नि अनुगत हों और वे नष्टहो जाय तो वहां पुनः आधानही प्रायश्चित्त है–इस वचनमें उभौ यह निमित्तका विशेषण है–इससे दोनों हवियोंके समान अविवक्षितभी है तोभी दोनों अग्निके उत्पादक पुनः आधेयमें नैमित्तिक विधिके बलसे दोनों अग्नियोंकीही निमित्त रूपसे कल्पना करते

१ गुरोरनृताभिशासनम् इति महापातकसमानि ।

२ दोषं बुद्धा न पूर्वपरो समाख्याता स्याद्व्यवहारे चैन परिहरेत् ।

१ छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटं पलाण्डुं गृंजनं चैव । मत्याजग्ध्वा पतेन्नरः ।

२ अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् । यतिचांद्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ।

३ यस्योभावग्नी अनुगतौ स्यातामभिनिम्लोचेद्वा पुनराधेयं तत्र प्रायश्चित्तिः ।

हैं-तैसेही यहांभी निमित्तके गौरवकी कल्पना युक्त है और अपनी बडाईके निमित्त राजकुल आदिमें चतुर्वेदी होनेपरभी मैं चतुर्वेदी हूं ऐसे झूठ बोलना- और कामके वशीभूत न होकर रजस्वलाके मुखका सेवन-ये पांच ५ सुरापानके समान है ॥

भावार्थ-निषिद्ध लहसन आदिका भक्षण-कपटका करना—उत्तमहोनेके लिए झूट बोलना-रजस्वला स्त्रीके मुखका चूंमना ये पांच मदिरापानके समान होते हैं॥२२९॥

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणंतथा ॥
निक्षेपस्यचसर्वंहिसुवर्णस्तेयसंमितम् २३०

पद-अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं १ तथा॰-निक्षेपस्य ६ च॰- सर्वं १ हि॰-सुवर्णस्तेयसंमितम् ॥

योजना-अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा निक्षेपस्य हरणं तत् सर्वं सुवर्णस्तेयसंमितं भवति ॥

ता॰ भावार्थ-ब्राह्मणके अश्व- रत्न- मनुष्य-स्त्री-भू-धेनु-इनका और सुवर्णसे भिन्न निक्षेप (धरोहर) का हरना-ये सब सुवर्णकी चोरीके समान जानने ॥ २३० ॥

सखिभार्याकुमारीषुस्वयोनिष्वंत्यजासुच ॥
सगोत्रासुसुतस्त्रीषुगुरुतल्पसमंस्मृतम्२३१

पद-सखिभार्याकुमारीषु ७ स्वयोनिषु ७ अंत्यजासु ७ च॰- सगोत्रासु ७ सुतस्त्रीषु ७ गुरुतल्पसमं १ स्मृतम् १ ॥

योजना-सखिभार्याकुमारीषु-स्वयोनिषुच-पुनः अंत्यजासु-सगोत्रासु-सुतस्त्रीषु गमने गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ-सखा (मित्र) की भार्या और उत्तम जातिकी कुमारी (कन्या) इनमें गमन करना गुरुतल्पके समान कहा है क्योंकि इच्छा करती हुई अनुलोम जातियोंमें दोष नहीं-अन्यथा गमन करे तो दण्ड है और दूषण लगानेमें हाथोंका छेदन और उत्तम वर्णकी कन्याको दूषण लगावे तो वध कहा है इस वचनसे वहांही दण्ड विशेषके कहनेसे प्रायश्चित्तका गौरव युक्त है और स्वयोनि (भगिनी) अन्त्यजा (चाण्डाली) सगोत्रा पुत्रकी स्त्री-इन प्रत्येकका गमनभी गुरुतल्पके समान है यहभी वीर्य सींचनेके अनंतर जानना-सींचनेसे पूर्व निवृत्त हो जायतो गुरुतल्पके समान नहीं किन्तु अल्पही प्रायश्चित्तहै-क्योंकि मनु (अ॰ ११ श्लो॰५८) ने इस श्लोकमें रेतःसेक (वीर्य सींचना) यह विशेषण दिया है कि अपनी भगिनी कुमारी-अन्त्यजा-मित्र और पुत्रकी स्त्री-इनमें वीर्यका सींचना-गुरुतल्पके समान समझना-सगोत्राके ग्रहणसेही पुत्रकी स्त्रीका ग्रहण-सिद्धथा-पुनः-कहना-प्रायश्चित्तकी गौरवता कहनेके लिये है और गुरुकी निंदा आदिको जो ब्रह्महत्याके समान कहना है वह ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्त बोधन करनेके लिये है कदाचित् शंका करोकि-वेदनिंदा आदिमें दोष लघु है इससे ब्रह्महत्या आदि गुरु प्रायश्चित्त युक्त नहीं है सोठीक नहीं-क्योंकि गुरुप्रायश्चित्तके दोष बलसेही दोषका गौरव जाना जाता है और प्रायश्चित्तके कहनेके लियेही यह वचन नहीं किंतु दोषके गौरवकाही प्रतिपादक है-यह शंकाभी ठीक नहीं क्योंकि केवल-दोष गौरवकाही प्रतिपादक वचन होता तो यह ब्रह्महत्याके समानहै यह गुरुतल्पके समान है इत्यादि भेदसे कहना सिद्ध नहीं होता और सम शब्दसे कहा हुआ वह प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या आदि

१ सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः। दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा।

२ रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ।

प्रायश्चित्तोंसे कुछ न्यूनही कहा है क्योंकि जगत्में राजाके समान मंत्री है इत्यादि वचनमें किंचित् न्यूनमेंभी सम शब्दका प्रयोग देखते हैं–बडा महान् पातक और अल्प पातककी तुल्यता युक्त नहीं–इससे याज्ञवल्क्यनें ब्रह्महत्याके समान कहे हुए वेदका त्याग–वेदकी निंदा–मित्रकावध–इनको जो मनु (अ० ११ श्लो० ५६) नें सुरापानके समान कहा है वह प्रायश्चित्तके विकल्पार्थ कि ब्रह्म (वेद) का त्याग-ब्रह्मकी निंदा-झूठी साक्षी–मित्रका वध निंदित अन्न और घीका भक्षण ये सुरापानकी समान हैं इसी प्रकार अन्य वचनोंमेंभी विरोधका परिहार करना–और जो वसिष्ठनें लघु प्रायश्चित्त कहा है कि. गुरुको झूठा दोष लगावेतो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके गुरुके प्रसादसे पवित्र होता है–वह अज्ञानसे करने वा एक बार करनेमें जानना ॥

भावार्थ–मित्रकी भार्या–कुमारी–भगिनी–चाण्डाली और सगोत्रा–पुत्रकी स्त्री इनके गमनमें गुरुतल्पके समान प्रायश्चित्त होताहै॥

पितुःस्वसारंमातुश्चमातुलानींस्नुषामपि ।
मातुःसपत्नींभगिनीमाचार्यतनयांतथा ॥

पद–पितुः ६ स्वसारं २ मातुः ६ च–मातुलानीं २ स्नुषां २ अपि–मातुः ६ सपत्नीं २ भगिनीं २ आचार्यतनयां २ तथा–॥

आचार्यपत्नींस्वसुतांगच्छंस्तुगुरुतल्पगः ॥
लिंगंछित्त्वावधस्तत्रसकामायाःस्त्रियाअपि

पद–आचार्यपत्नीं २ स्वसुतां २ गच्छन् १ तु–गुरुतल्पगः १ लिंगं २ छित्वा–वधः १ तत्र–सकामायाः ६ स्त्रियाः ६ अपि–

योजना–पितुः चपुनः मातुः स्वसारं मातुलानीं स्नुषां–मातुःसपत्नीं–भगिनीं तथा आचार्यतनयां आचार्यपत्नीं तु पुनःस्वसुतां गच्छन् गुरुतल्पगो भवति तत्र सकामायाः स्त्रियाः अपि लिंगं छित्त्वा वधः प्रायश्चित्तं भवति–

तात्पर्यार्थ–पिता और माताकी भगिनी (बुआ मामसी) मातुलानी (माई) पुत्रकी वधू–माताकी सपत्नी (सौत) भगिनी–आचार्यकी पुत्री और आचार्यकी पत्नी अपनी पुत्री इनमें गमन करता हुआ गुरुकी शय्यापर गमन करनेवालेके समान होता है उसका और कामनासे पुरुषोंके संग भोग करने वाली स्त्रियोंका लिंगको छेदन करके राजा वध करे–यहां वधही दण्ड और प्रायश्चित्त है और च शब्दसे राणी संन्यासिनी आदिकोंका ग्रहण है सोई नारदनें कहा है कि माता–माताकी भगिनी-सास-मातुलानी–बुआ–चाचा मित्र और शिष्य इनकी स्त्री और अपनी भगिनी और भगिनीकी सखी पुत्रकी वधू–पुत्री और आचार्यकी भार्या–सगोत्रा–शरणागत–राणी-संन्यासिनी– धाय–साध्वी–उत्तमवर्णकी–इनमें अन्यतम (कोईसी) स्त्रीके संग गमन करता हुआ पुरुष गुरुस्त्रीगामी कहाता है–उसमें लिंग छेदनसे अन्य कोई दण्ड नही कहा–यहां राज्ञी पदसे राज्य करनेवालेकी भार्या लेनी क्षत्रियकी नहीं–क्योंकि क्षत्रियकी स्त्रीके गमनमें अन्य प्रायश्चित्त कहा है–और धात्री पदसे मातासे भिन्न वह लेनी जो स्तन्यदान आदिसे पोष-

१ ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः । गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ।

२ गुरोरलीकनिर्बन्धे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा सचैलः स्नातो गुरुप्रसादात्पूतो भवति ।

१ माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा । पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा । दुहिताचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता । राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या ॥ आसामन्यतमां गच्छन् गुरुतल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्र नान्यो दण्डो विधीयते ।

णकरै-साध्वी पदसे व्रत करनेवाली और वर्णोत्तमा पदसे ब्राह्मणी लेना और यहां माता पदका ग्रहण दृष्टांतके लिये है और यह लिंगछेदन और वधरूप दंड ब्राह्मणसे अन्यको समझना-क्योंकि सब पापोंमें टिके भी ब्राह्मणकी हत्या न करै इस वचनसे ब्राह्मणके वधका निषेध है-और यहां वधही प्रायश्चित्तरूप है-इसका विषय गुरुतल्प प्रकरणमें विस्तारसे कहैंगे-इस श्लोकमें कहे हुए गुरु तल्पके समान-पुत्रवधू और भगिनीका जो पुनः ग्रहण है वह प्रायश्चित्त विकल्पार्थ है-और यदि ये स्त्रीभी जानकर पुरुषोंको वश करके भोगें तौ उनकाभी पुरुषोंके समानवधही प्रायश्चित्त है-और ये जो गुरुकी निंदासे लेकर पुत्रीके गमन पर्यंत हैं वे शीघ्रही पतनका हेतु होनेसे महापातकके अतिदेशके विषय है इससे पातक कहाते हैं-सोई यमने कहा है कि माताकी भगिनी माताकी सखी-पुत्री-बुआ-भाई-अपनी बहन सास-इनके संग गमन करके मनुष्य शीघ्रही पतितहोता है-गौतमने तो औरभी पातक कहे है कि माता पिताकी योनिके संग संबद्ध है अंग जिसको वह चोर नास्तिक बारंबार निंदितकर्मी-पतितका अत्यागी-और अपतितका त्यागी-और पतित और पातकके संयोजक (प्रेरक) ये पातकी कहाते हैं-इनका पातक और उपपातकोंके मध्यमें पाठसे ये महापातकसे न्यून और उपपातकसे गुरु जानने-सोई कहा है कि जो पाप महापातकके तुल्य कहे हैं उनकी पातक संज्ञा है और उनसे न्यून उपपातक होता है सोई अंगिराने कहा है कि पातकों में सहस्र वर्षतक महापातकोंमें द्विगुण उपपातकोंमें चौथाई वर्षोंकी संख्यासे नरक होता है ॥

भावार्थ-माता और पिताकी भगिनी-भाई-पुत्रवधू-माताकी सपत्नी-अपनी भगिनी आचार्यकी पुत्री और पत्नी-और अपनी पुत्री-इनमें गमन करनेवाला गुरुतल्पग कहाता है उसका और जानकर पुरुषोंको भोगनेवाली स्त्रीका लिंगछेदन करके वधही दंड-और प्रायश्चित्त है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

गोवधोव्रात्यतास्तेयमृणानांचानपाक्रिया ॥
अनाहिताग्नितापण्यविक्रयःपरिवेदनम् ॥

पद-गोवधः १ व्रात्यता १ स्तेयं १ ऋणानां ६ च ऽ- अनपाक्रिया १ अनाहिताग्निता १ अपण्यविक्रयः १ परिवेदनम् १ ॥

भृतादध्ययनादानंभृतकाध्यापनंतथा ॥
पारदार्यंपारिवित्त्यंवार्धुष्यंलवणक्रिया ॥

पद-भृतात् ५ अध्ययनादानं १ भृतकाध्यापनं १ तथाऽ- पारदार्यं १ पारिवित्त्यं १ वार्धुष्यं १ लवणक्रिया १ ॥

स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधोनिंदितार्थोपजीवनम् ॥
नास्तिक्यंव्रतलोपश्चसुतानांचैवविक्रयः ॥

पद-स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः १ निंदितार्थोपजीवनम् १ नास्तिक्यं १ व्रतलोपः १ चऽ- सुतानां ६ चऽ- एवऽ- विक्रयः १ ॥

धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानांचयाजनम् ॥
पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः ॥

---

१ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितः ।

२ मातृष्वसा मातृसखी दुहिता च पितृष्वसा । मातुलानी स्वसा श्वश्रूर्गत्वा सद्यः पतेन्नरः ।

३ मातृपितृयोनिसंबद्धांगस्तेननास्तिकनिंदितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च ।

१ महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यूनमुपपातकम् ।

२ पातकेषु सहस्रं स्यान्महत्सु द्विगुणं तथा । उपपाते तुरीयं स्यान्नरकं वर्षसंख्यया ।

पद-धान्यकुप्यपशुस्तेयम् १ अयाज्यानां ६ च-याजनं १ पितृमातृसुतत्यागः १ तडागारामविक्रयः १ ॥

कन्यासंदूषणंचैवपरिविंदकयाजनम् ॥
कन्याप्रदानंतस्यैवकौटिल्यंव्रतलोपनम् ॥

पद-कन्यासंदूषणं १ च-एव-परिविंदकयाजनं १ कन्याप्रदानं १ तस्य ६ एव-कौटिल्यं १ व्रतलोपनं १ ॥

आत्मनोर्थेक्रियारंभोमद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागोबांधवत्यागएवच ॥

पद-आत्मनः ६ अर्थे ७ क्रियारंभः १ मद्यपस्त्रीनिषेवणं १ स्वाध्यायाग्निसुतत्यागः १ बांधवत्यागः १ एव- च- ॥

इंधनार्थंद्रुमच्छेदःस्त्रीहिंसौषधजीवनम् ॥
हिंस्रयंत्रविधानंचव्यसनान्यात्मविक्रयः ॥

पद-इन्धनार्थ २ द्रुमच्छेदः १ स्त्रीहिंसा १ औषधजीवनं १ हिंस्रयन्त्रविधानं १ च-व्यसनानि १ आत्मविक्रयः १ ॥

शूद्रप्रेष्यंहीनसख्यंहीनयोनिनिषेवणम् ॥
तथैवानाश्रमेवासःपरान्नपरिपुष्टता २४१ ॥

पद- शूद्रप्रेष्यं १ हीनसख्यं १ हीनयोनिनिषेवणं १ तथा-एव- अनाश्रमे ७ वासः १ परान्नपरिपुष्टता १ ॥

असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता ॥
भार्यायाविक्रयश्चेषामेकैकमुपपातकं २४२

पद-असच्छास्त्राधिगमनं १ आकरेषु ७ अधिकारिता १ भार्यायाः ६ विक्रयः १ च-एषां ६ एकैकं १ उपपातकं १ ॥

योजना-गोवधः व्रात्यता स्तेयं-चपुनः ऋणानां अनपक्रिया-अनाहिताग्निता-अपण्यविक्रयः-परिवेदनम् भृतात् अध्ययनादानं-तथा पारदार्य-पारिवित्र्यं वार्धुष्यं-लवणक्रिया-स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः-निंदितार्थोपजीवनम्-नास्तिक्यं-व्रतलोपः-चपुनः सुतानां विक्रयः-धान्यकुप्यपशुस्तेयं-चपुनः अयाज्यानां याजनं-पितृमातृसुतत्यागः-तडागारामविक्रयः-चपुनः कन्यासंदूषणं-परिविंदकयाजनं-तस्य एव कन्याप्रदानं-कौटिल्यं-व्रतलोपनं-आत्मनः अर्थे क्रियारंभः-मद्यपस्त्रीनिषेवणं-स्वाध्यायाग्निसुतत्यागः- चपुनः बांधवत्यागः-इंधनार्थं द्रुमछेदः-स्त्रीहिंसा-औषधजीवनं-हिंस्रयन्त्रविधानं चपुनः व्यसनानि-आत्मविक्रयः-शूद्रप्रेष्यं-हीनसख्यं-हीनयोनिनिषेवणं-तथा अनाश्रमे वासः-परान्नपरिपुष्टता-असच्छास्त्राधिगमनं-आकरेषु अधिकारिता-भार्यायाः विक्रयः-एषां मध्ये एकैकं उपपातकं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-महापातक और उनके समानोंको कह कर उपपातकोंको कहते हैं- गोवध अर्थात् गौके देहका पातन-और शास्त्रोक्त समयमें यज्ञोपवीत न होना रूप व्रात्यता और ब्राह्मण वा ब्राह्मणके समानसे भिन्नके सुवर्णको चुराना रूप स्तेय-और ग्रहण किये सुवर्ण आदिका अनपाकरण (न देना) रूप ऋणानपाकरण-तैसेही देव ऋषि पितर इनके ऋणका अनपाकरण लेना-अधिकार होनेपर आहिताग्नि न होना कदाचित् कोई शंका करै कि ज्योतिष्टोम आदि कामनाओंका श्रवण अपने अंगभूत अग्निकी सिद्धिके लिये आधानको प्रयुक्त करता है इसे मीमांसकोंकी प्रसिद्धिसे जिसका अग्नियोंसे प्रयोजन सिद्ध होता है उसकोही उसके उपायरूप आधानमें प्रवृत्ति होती है जैसे व्रीहियोंके अर्थीकी धनके संचयमें-और जिसका अग्नियोंसे प्रयोजन नही तिसकी प्रवृत्ति नही होती इससे

१ ज्योतिष्टोमादिकामश्रुतयः स्वांगभूताग्नि-स्वकार्यमाधानं प्रयुंजते ।

अग्निका आधान न करना दोष कैसे है–इसका समाधान कहते हैं कि इसीसे आधान को आवश्यकता कहनेसे नित्य श्रुतिभी अधिकारियोंके अविशेषसे आधानकी प्रयोजक है यह अभिप्राय स्मृतिकारोंका लखाजाता है इससे कुछ दोष नहीं है–तैसेही वेचनेके अयोग्य लवण आदिका विक्रय अपण्य विक्रय–सहोदर ज्येष्ठ भाईके विद्यमान रहते छोटे भाईको स्त्री और अग्निका ग्रहणरूप परिवेदन पण (सरत) पूर्वक अध्यापक (गुरु) से पढना पणपूर्वाध्यापन–गुरु और गुरुके समानसे भिन्न पराई दाराका सेवन छोटे भाईके विवाह होने पर बडे भाईका विवाह न होना पारिवित्य–वार्धुष्य अर्थात् निषिद्ध वृद्धि (व्याज) से जीविका–लवणको उत्पन्न करना–आत्रेयीसे भिन्न ब्राह्मणीभी स्त्रीका वध शूद्रवध अदीक्षित वैश्य क्षत्रियका वध–निंदितार्थोपजीवन अर्थात् राजासे भिन्न स्थापन किये धनसे जीविका करना–नास्तिक्य अर्थात् पर लोक नहीं है यह आग्रह–व्रतका लोप यह ब्रह्मचारीको समझना–स्त्रीका प्रसंग–और सुतों (अपत्य) का विक्रय–व्रीहि आदि धान्य और तुच्छ द्रव्य कुप्य (लाखसीसा आदि) गो आदि पशु–इनकीचोरी–पूर्व कहे हुये स्तेयके ग्रहण से ही सिद्धथा फिर धान्य कुप्य आदि स्तेयका ग्रहण नित्य के लिये है इससे धान्यसे भिन्न द्रव्यकी चोरीमें अवश्य यही प्रायश्चित्त नहीं है किन्तु उससे न्यूनभी हो सकता है इससे यहभी व्याख्यात हुआ कि बांधवके त्यागके ग्रहणसेही सिद्धथा पुनः पित्रादिका ग्रहण न्यून प्रायश्चित्तके लिये है–जाति वा कर्मसे दुष्ट जो शूद्र व्रात्य आदि अयाज्य उनको यज्ञ कराना–अपतित जो पिता माता सुतहैं उनको घरसे निकासना–तड़ाग बाग उद्यान उपवन इनका वेचना कन्याकी अंगुलि आदिसे योनिका विदारण (छेदन) लेना भोगनहीं उसको सखाकी भार्या और कुमारीका गमन गुरु तल्पके समान है इस पूर्वोक्त वचनसे कह आये हैं–परिविंदकका याजन और उसको कन्याका दान–गुरुको छोडकर कौटिल्य गुरुके विषे कुटिलताको तो सुरापानके समान कहा है–और पुनः व्रतलोपका ग्रहण तो उपदेश न किये–और अनिषिद्धजो व्रत–ऐसे हैं कि हरिचरणकमलोंके देखनेसे पहिले तांबूलभक्षण न करूंगा–उनकी प्राप्तिके लिये है स्नातकव्रतकी प्राप्तिके लिये नहीं क्योंकि उसमें मनुने (अ० ११ श्लो० २०३) स्नातकके व्रत लोपमें अभोजन प्रायश्चित्त–लघु प्रायश्चित्त कहा है तैसेही अपने लिये पाकरूप क्रियाका आरंभ–उसका मनुने (अ० ३ श्लो० ११८) वह केवल पापको खाता है जो अपने लिये पकाता है इस वचनसे निषेध किया है–क्रियामात्र (सबक्रिया) के विषयमें मानोगे तो निषेधकी कल्पनासे गौरव हो जायगा–मदिरापीनेवाली जाया वा स्त्रीका निषेवण (भोग) स्वाध्याय (वेद) का त्याग–श्रौत वा स्मार्त अग्नियोंका त्याग पुत्रका त्याग अर्थात् संस्कार आदि न करना–पितृव्य मातुल आदि बांधवोंका त्याग–अर्थात् रक्षा करनेके सामर्थ्यमें रक्षा न करना पाक आदि दृष्ट फलके लिये वृक्षोंका छेदन–आहवनीय अग्निकी रक्षाके लिये नहीं–स्त्रीहिंसा–औषधसे जीवन–उनमें स्त्री जीवन यह है कि भार्याको पण्यभावमें (वेश्यापना) लगाकर उससे मिले द्रव्यसे जीवन वा स्त्रीके धनसे जीवन–प्राणियोंके वधसे जो जीवन वह हिंसया जीवन–वशी करण आ-

१ व्रतवत्व्रतलोपेच प्रायश्चित्तमभोजनम् ।
२ अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।

दिसे औषध जीवन-हिंस्रयंत्रका प्रवर्तन (तिल ईख पीडनेका कोल्हू बनाना) और मृगया आदि अठारह प्रकारके व्यसन-सोई मनुने (अ०७श्लो०४७-५३)कहे हैं कि मृगया जूआ दिनमें सोना-निंदा-स्त्री-मद-तौर्यत्रिक-वृथागमन-ये दश कामसे पैदा होते हैं-चुगली साहस-द्रोह-ईर्ष्या-असूया-अर्थमें दूषण लगाना-कठोर वाणी-कठोर दंड-ये आठ क्रोधसे उत्पन्न हैं-इन दोनोंका कविगन जिसे मूल जानते हैं उस लोभको यत्नसे जीते क्योंकि ये दोनों गण क्रोधसे पैदा होता है-मदिरा पान-अक्ष (जूआ) स्त्री मृगया-इन चारोंको क्रमसे कामजगणमें अतीव कष्टदायी जाने-दंडका देना कठोर वाणी-पदार्थमें दूषण-क्रोधसे उत्पन्न गणमें इन तीनोंको दुःख दायी जाने-सर्वत्र है संबंध जिसका ऐसे इस सात वर्गके मध्यमें पहिले २ व्यसनको आत्मज्ञानी अत्यंत गुरु जाने-व्यसन और मृत्युइन दोनोंके मध्यमें व्यसन दुःखदायी कहा है क्योंकि मरकर व्यसनी नरकमें और अव्यसनी स्वर्गमें जाता है और आत्मविक्रय (द्रव्य लेकर पराई सेवा करनी) शूद्रकी सेवा-हीनों (नीच) में मित्रता करनी-नहीं विवाही हैं सवर्णा दारा जिसने वह हीन वर्णकी दाराको विवाहै और साधारण स्त्रीका भोग-अधिकार होनेपर आश्रमको ग्रहण न करना-पराये अन्नसे पुष्टता (पर पाकमें प्रीति) चार्वाक आदि असत् शास्त्रका ज्ञान-सुवर्ण-आदिकी उत्पत्तिके स्थानोंमें राजाकी आज्ञासे अधिकार-भार्याका विक्रय-च शब्दसे मनु आदिके कहे अभिचार (शत्रुमारण) और अज्ञानसे लशुन आदिका भक्षण लेना-इन गोवध आदिकी प्रत्येक उपपातक संज्ञा जाननी-मनुने और भी निमित्त जाति भ्रंशकर-संकरीकरण-अपात्रीकरण-मलिनीकरण नामके गिने हैं (अ० ११ श्लो० ६७-७०) ब्राह्मणको पीडा करना सूंघने अयोग्य और मदिराको सूंघना जेहय (कपट) और पुरुषमें मैथुन-ये जातिभ्रष्टकर कहेहैं-गधा-अश्व-ऊंट-मृग-हाथी-बकरी-भेड इनका वध-मीन-सर्प-भैसा इनका वध-संकरीकरण जानना-निंदितोंसे धनका ग्रहण-व्यापार-शूद्रकी सेवा और झूट बोलना ये अपात्री करण जानने कृमि कीट पक्षी इनकी हत्या-मदिरा सहित भोजन-फल ईंधन पुष्प इनकी चोरी-अधीरता ये मलावह (मलिनी करण) जानने-इससे अन्य जो निमित्तोंका समूह है वह प्रकीर्णक कहाता है-वृद्धविष्णुने तो संपूर्ण प्रायश्चित्तके निमित्त उत्तरउत्तर लघु पृथक् २ संज्ञाके भेदसे भिन्न २ दिखाये हैं कि ब्रह्महत्या सुरापान ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी गुरुदाराका गमन और इन चारोंका

१ मृगयाक्षा दिवास्वापः परिवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः। पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणं। वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः। द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ। पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्। एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजेगणे- दंडस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे। क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा। सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषंगिणः पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान्। व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते। व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।

१ ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः। जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्। खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा। संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च। निंदितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम्। अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्। कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्। फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम्।

संयोग ये पांच महापातक हैं–माता और पुत्री पुत्रकी वधूका गमन ये अतिपातक हैं यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यका वध रजस्वला–गर्भवती आत्रिगोत्रा इनके अज्ञात गर्भका और शरणागतका मारना ये ब्रह्महत्याके समानहैं–कूट (झूटी) साक्षी मित्रका वध ये सुरापानके तुल्यहैं–ब्राह्मणकी भूमिका हरना सुवर्णकी चोरीके समान है–चाचा मातामह मामा राजा इनकी पत्नीका गमन गुरु दाराके संग गमन तुल्य है–पिता माताकी भगिनी–वेद पाठी ऋत्विज उपाध्याय और मित्रकी पत्नी–भगिनीकी सखी–सगोत्रा और उत्तम वर्णकी स्त्री–रजस्वला–शरण आई–संन्यासिनी–निक्षिप्त (रोकी) इन सब स्त्रियोंका गमन अनुपातक है–झूट बोलना–अपना उत्कर्ष होनेसे राजाकी चुगली गुरुके झूटे दोषोंका कथन–वेदकी निंदा पढे हुये वेदका त्याग–और अग्नि पिता माता पुत्र दारा इनका त्याग–खानेके अयोग्य अन्नका भक्षण–परधनका हरना–पराई दाराका गमन–अयाज्योंको यज्ञ कराना–व्रात्य होना–भृतक (नोकरी) होकर पढाना और पढना–सब आकरोंमें अधिकार–महायंत्र (कोल्हू) की प्रवृत्ति–वृक्ष–गुल्म लता वल्ली औषध इनकी हिंसासे जीवन–अभिचार (मृत्यु) के मूल जो कर्म उनमें प्रवृत्ति–अपने लिये क्रिया (पाक) का आरंभ–आहिताग्नि न होना–देवता ऋषि पितर इनके ऋणको दूर न करना–निंदित शास्त्र पढना–नास्तिक होना–निंदित स्वभाव–मदिरा पीनेवाली स्त्रीकी सेवा ये सब उपपातक हैं–और ब्राह्मणको दुःख देना–सूंघनेके अयोग्य और मदिराको सूंघना–कपटता पशु और पुरुषमें मैथुन करना–ये सब जातिभ्रंश करणहैं–ग्राम वा वनके पशुओंकी हिंसा संकरीकरण है–निंदितोंसे धनका ग्रहण–वाणिज्य (व्यापार) कुसीद (व्याज) से जीवन–झूटबोलना–शूद्रकी सेवा–ये अपात्रीकरण हैं–पक्षी–जलचारी और जलमें उत्पन्न इनको मारना–कृमि कीटोंको मारना–जिसमें मदिरा मिलीहो ऐसा भोजन ये मलावह (मलिनी करण) हैं–जो पाप नही कहा है वह प्रकीर्णक है–कात्यायनने तो महापातकोंके समान जो उपपातक विष्णुने कहे हैं उनकी पातक संज्ञा दिखायी है कि महापाप–अतिपाप और पातक प्रासंगिक इस प्रकार पापके पांच गण हैं–कदाचित् शंका करोकि उपपातक आदि कैसे पातक हो सकते हैं क्योंकि पतनके हेतु नहीं हो सकते–यदि वेभी पतनके हेतु हैं तो माता पिताकी योनिमें संबद्ध है अंग जिसका इत्यादिकोंकी गिनती व्यर्थ है–कदाचित् ऐसे कहो कि महापातक और उनके तुल्यपापोंके समान ये सद्यःपतनके हेतु नहीं हैं–तोभी अभ्यासकी अपेक्षासे पतित होनेके हेतु माननेमें कोई विरोध नही क्योंकि निंदित कर्मका अभ्यासी पतित है ऐसा गौतमका वचन है–ऐसा मतकहो–क्योंकि अभ्यासका रूप कह नहीं सकते दोवार वा सौवारको अभ्यास कहोगे–इसमेंभी अविशेषसे मानोगे तो–जो मनुष्य दिनमें दो वार सोताहै और जो सौवार गोवध करताहै इन दोनोंके पतित होनेमें विशेष न होगा–यहां यह कहते हैं–कि जहां अर्थवादमें प्रत्यवाय (पाप) की विशेषता सुनीजाय वा जिसमें अधिक प्रायश्चित्तहो तिस निंदित कर्मके जितना अभ्यास करनेमें महापातककी तुल्यताहो उतना अभ्यास पातित्यका हेतुहै दिनमें सोना तो सहस्रवार अभ्यास करनेपरभी महापातकके तुल्य नहीं हो सकता इससे उसके कर-

१ महापापं चातिपापं तथा पातकमेव च । प्रासंगिकं चोपपातकमित्येवं पञ्चको गणः ।

नेसें पतित नही हो सकता इससें यह बात युक्त है कि उपपातक आदि अभ्यासकी अपेक्षा पतनका हेतुहैं॥

भावार्थ–गोवधसे लेकर भार्याके विक्रय पर्यंतोंमें एक एक उपपातक कहाताहै उनके नाम तात्पर्यार्थमें दिखा आये हैं इससे पुनः नही लिखे ॥ २३४॥२३५॥२३६॥२३७॥ ॥२३८॥२३९॥२४०॥२४१॥२४२॥

शिरःकपालीध्वजवान्भिक्षाशीकर्मवेदयन्।
ब्रह्महाद्वादशाब्दानिमितभुक्शुद्धिमाप्नुयात्॥

पद–शिरःकपाली १ ध्वजवान् १ भिक्षाशी १ कर्म २ वेदयन् १ ब्रह्महा १ द्वादशाब्दानि२ मितभुक्१ शुद्धि २आप्नुयात् क्रि-॥

योजना–ब्रह्महा शिरःकपाली ध्वजवान् भिक्षाशी द्वादशाब्दानि कर्म आवेदयन् सन् मितभुक् शुद्धिं आप्नुयात्॥

तात्पर्यार्थ–इस प्रकार व्यवहारके लिये नामके भेदोंसहित प्रायश्चित्तके निमित्तोंको गिनकर नैमित्तिकोंको दिखाते हैं ब्रह्महा शिरके कपालको धारणकिये और ध्वजा लिये क्योंकि मनु (अ ११ श्लो ७२) ने कहा है कि शवके शिरकी ध्वजाको करके फिरै और अन्य शिरके कपालको दंडके आगे रक्खे जो ध्वजारूप उनको ग्रहण करै और वह कपाल अपने मारेहुये ब्राह्मणके शिरका लेना क्यों कि शातातपकी यह स्मृति है कि ब्राह्मण ब्राह्मणको मारकर उसकेहि शिरके कपालको लेकर तीर्थोंमें विचरै वह कपाल न मिले तो अन्य ब्राह्मणकाही कपाल लेना ये दोनों हाथमेंही लेने क्यों कि गौतम की स्मृति है कि खट्वांग कपालको हाथमें ले यहां खट्वांगशब्दसे दंडमें लगा शिरका कपालरूप ध्वज लेते हैं कुछ खट्वाका एक देश नही तिसकी महोक्ष (बडा बैल) खट्वांग परशु इत्यादि व्यवहारोंमें जोहै उसमें ही खट्वांग शब्दकी प्रसिद्धिहै यह कपालका धारण चिह्नके लिये है और भोजन और भिक्षाके लिये नही क्यों कि गौतमकी स्मृति है कि मिट्टीके कपालको हाथमें लिये भिक्षार्थ ग्राममें प्रवेश करै तिससे वह ब्रह्महा वनका वासी हो क्यों कि मनु (अ० ११ श्लो० ७२) ने कहाहै कि कुटी बनाकर बारह वर्ष तक वनमें वसे वा ग्रामके समीप वसे क्यों कि मनु (अ० ११ श्लो०७८) काही कथन है कि वा मुंडन कराकर ग्रामके समीप वा गौओंके व्रजमें आश्रम वा वृक्षकी जडमें सब भूतोंमें रतहुआ वसे वा मुंडन कराकर इस विकल्पके कहनेसे यह बात जानी गयी कि जटाको धारे इसीसे संवर्तने कहाहै कि ब्रह्महा बारह वर्षतक बालोंके वस्त्रोंको धारणकर जटा ध्वजाको धारण करै तैसेही भिक्षाके भोजनमें शील रक्खे और भिक्षाभी लाल मिट्टिके खंड शरावसे ग्रहण करनी क्यों कि आपस्तंबका वचनहै कि लाल फूटे शरावसे भिक्षाके लिये ग्राममें प्रवेश करै सात घरोंमेंही जिनमें स्वच्छ मिले और जो पहिले संकेत न किये हों उनमेंसे ग्रहण करै

१ कृत्वा शवशिरोध्वजम्।

२ ब्राह्मणो ब्राह्मणं घातयित्वा तस्यैव शिरःकपालमादाय तीर्थान्यनुसंचरेत्।

१ खट्वांगकपालपाणिः।

२ मृन्मयकपालपाणिर्भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशेत्।

३ ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत्।

४ कृतवापनो वा निवसेत् ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा। आश्रमे वृक्षमूले वा सर्वभूतहिते रतः।

५ ब्रह्महा द्वादशाब्दानि वालवासा जटी ध्वजी।

६ लोहितकेन खंडशरावेण ग्रामं भिक्षार्थं प्रविशेत्।

क्यों कि वसिष्ठ का वचन है कि अ-संकल्पित सात घरोंमें भिक्षाके लिए प्रवेश करके भिक्षाका आचरण करे और सायंकालमें ही भिक्षा ग्रहण करनी क्यों कि वसिष्ठ नेही एककाल भोजन कहाहै वह भिक्षा ब्राह्मण आदि चार वर्णोंमें ही करनी क्योंकि संवर्त की स्मृति है कि खट्वांग धारै और मनको रोककर चार वर्णोंमें भिक्षा मांगै तैसे ही ब्रह्महाहूं ऐसे अपने कर्मको विख्यात करता हुआ द्वारपर स्थित हो कर भिक्षा मांगे क्यों कि पराशरकी स्मृति है कि भिक्षाका अर्थी ब्रह्मघातक मैं घरके द्वारपर खडाहूं और यह भिक्षाके भोजनका नियम वनके फलोंसे जीवन न हो सके तब जानना क्यों कि संवर्तकी स्मृतिहै कि वनके फलोंसे न जीवे तो भिक्षाके लिए ग्राममें प्रवेश करै तिसीप्रकार वह ब्रह्मचर्य आदिसे युक्त रहे क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि खट्वांगको हाथमें लेकर बारह १२ वर्षतक ब्रह्मचारीहुआ भिक्षाके लिए कर्मको कहता हुआ ग्राममें प्रवेश करे और सज्जनोंके दर्शनके लिये गमन करै-स्थान और आसनसे विहार करै और त्रिकाल आचमन करके शुद्ध होताहै-इस गौतमके वचनमें ब्रह्मचारीका ग्रहण इस लिये है कि ब्रह्मचारी प्रकरणमें कहेहुए जो ब्रह्मचारीके धर्म कि मधु-मांस-गंध-माल्य-दिनमें सोना-अंजन उबटना-उपानह-छत्र-काम-क्रोध-लोभ-मोह-हर्ष-नृत्य-गीत-निंदा-भय-इनको वर्जदे-इनके अनुकूल धर्मकी प्राप्तिके लिए है-इसीसे शंखने कहाहै कि वह ब्रह्महा-स्थान और वीरासनको धारे हुए-मौन-मौंजी-मेखला-दंड-कमण्डलु-दीक्षाकाआचरण-अग्निहोत्र-कूष्मांडी ऋचाओंसे सदा जप करे-इस ब्रह्महाको सवन-(संध्या वा यज्ञ) आचमनके और स्नानके कहनेसे उसके अंग मंत्र आदिका उच्चारणभी जाना जाताहै तैसेही शुद्ध होकर कर्म करै यह सब कर्मोंमें साधारण स्मृतिहै कि व्रतचर्याके अंग शौचके लिए जो स्नान-उसके समान संध्योपासनभी वह करै-क्योंकि संध्याभी शुद्धि करनेके द्वारा सब कर्मोंका शेषहै सोई दक्षने कहाहै कि जो संध्यासे हीनहै वह सदैव अशुद्ध और सबकर्मोंमें अशुद्ध है जो कुछ कर्म करता है उसके फलका भागी नहीं होता कदाचित् शंका करोकि द्विजातिकर्मोंसे हानिकोही पतन कहते है-इस वचनसे द्विजातिका कर्म होनेसे संध्योपासनाकी प्राप्ति ब्रह्महाको न होगी सो ठीक नहीं-क्योंकि पतितकोही व्रतचर्याका उपदेश किया है व्रतोंका अंग होनेसे सध्योपासनादिकी प्राप्तिहै इससे द्विजातियोंके जो पढना-यज्ञ-दान-और ब्राह्मणके जो अधिक पढाना-यज्ञ कराना-प्रतिग्रह-है इत्यादि व्रतचर्याके अंग द्विजातियोंके कर्म है उनकी ही पतितको हानि है सब कर्मोंकी नहीं-क्योंकि उनकेही बाधकर हानिका वचन चरितार्थ है यह जो द्वादश वर्षकी व्रतचर्या-मनु-याज्ञव-

१ भिक्षार्थं प्रविशेत्सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्षम् । एककालाहारः

२ चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्षं खट्वांगी संयतात्मवान् ।

३ गेहगो द्वारि तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ।

४ भिक्षार्थे प्रविशेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ।

५ खट्वांगपाणिर्द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भिक्षायै ग्रामं प्रविशेत् कर्माचक्षाणः पथोपक्रामेत् संदर्शनादार्यस्य स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूदकोपस्पर्शी शुध्येत् ।

१ स्थानवीरासनो मौनी मौंजी दंडकमंडलुः ॥ भिक्षाचर्याग्निकार्ये च कूष्मांडीभिः सदा जपः ।

२ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ।

३ द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम् ।

ल्क्य-गौतम-आदिने कही है वह एकही हैं और परस्पर सापेक्ष और अविरोध होनेसे भिन्न २ नही सोई दिखाते हैं याज्ञवल्क्यने भिक्षाका भोजन कर्मको कहता हुआ करे इसमें कोन भिक्षापात्र-कितने-वा किनके घरोंमें भिक्षाके मांगे यह आकांक्षा होतीही है-उस आकांक्षाको लाल फूटे शरावसे भिक्षा मांगे इस आपस्तंबके वचनसे पूर्णकरना विरुद्ध नही-इससे सबने एक कल्पकाही उपदेशसे किसीने कहा है कि मनु-गौतम-आदिकी कहीहुई इति कर्तव्यता परस्पर सापेक्षभी है तोभी विकल्प है-वह उनका कथन यथार्थ निरूपण करके नही यह मानने योग्य है-इस प्रकार बारह वर्षतक व्रतचर्याको करके ब्रह्महा शुद्ध होता है यहभी जानकर किए ब्राह्मणके वध विषयमें समझना-क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ८९) की स्मृति है कि यह शुद्धि अज्ञानसे ब्राह्मणको मारनेमें कही जानकर ब्राह्मणके मारनेमें तो प्रायश्चित्तही नही कहा-यहां यह विचारने योग्य है कि क्या द्विज और ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तका तन्त्र है वा आवृत्ति है उसमें कोई यह मानते हैं कि ब्रह्महा बारह वर्षतक यहां ब्रह्मशब्द एक-दो-बहुतसे ब्राह्मणोंके बोधन करनेमें साधारण है-इससे एक ब्राह्मणके वधमें जो प्रायश्चित्त है वही दूसरे और तीसरेमें है-वहां एक ब्राह्मण वधके निमित्त एक प्रायश्चित्त करनेपर यह प्रायश्चित्त किया-और यह न किया यह नही कहसक्ते-और प्रयोगके संबंधी देश-काल कर्ता-एक है-इससे अविशेषसे तंत्रके अनुष्ठानसेही पापक्षयरूप कार्यकी सिद्धियुक्त है-जैसे आग्नेय आदि कर्मोमें तंत्रसे करे हुए प्रयाज आदिकोंके तंत्रसेही अनेक उपकार रूप कार्यकी उत्पत्ति होती है और ऐसे नही कहना-कि द्विज ब्राह्मणके वधमें पाप गुरु होता है इससे गुरुपापमें गुरु और लघुमें लघु प्रायश्चित्त होते हैं-इस गौतमके वचनसे आवृत्तिसेही प्रायश्चित्तका करना युक्त है-सो ठीक नही-क्योंकि विलक्षण दो कार्योंकी सिद्धि तंत्रसे होसकती है जिससे यह वचन आवृत्ति बोधक नही किंतु कहे हुए गुरु लघु कल्पों (प्रकार)की व्यवस्थाका प्रतिपादक है और दूसरे ब्राह्मणके वधमें प्रमाणके अभावसे पाप गुरुभी नही होसक्ता और जो मनु देवलोंने यह कहा है कि पहिली विधिसे दूसरे दुगना और तीसरेमें तिगुना और चौथेमें प्रायश्चित्त नही वहभी प्रतिनिमित्त नैमित्तिक कर्मकी आवृत्ति होती है इस न्यायसे द्विज ब्राह्मणके वधमें नैमित्तिक शास्त्रकी आवृत्तिके अनुवादसे चौथेमें आवृत्तिके अभावका बोधक है कुछ दूसरे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तकी द्विगुणताका बोधक नही-अन्यथा वाक्यभेद हो जायगा-तिससे द्विज ब्राह्मणके वधमेंभी बारह वर्षका प्रायश्चित्तही युक्त है-जैसे कामनावान् अग्निके निमित्त-अष्टाकपाल पुरोडाशको इत्यादि वचनोंसे गृहदाह आदि निमित्तोंमें कहे जो क्षामवती आदि उनका एक बारही गृहदान आदिमें अनुष्ठान है आवृत्ति नही-इसमें हम यह कहते हैं कि वचनके विरोधमें न्याय समर्थ नही होता-अर्थात् वचनको नही बाध सक्ता वचन पहिली विधिसे दूसरेमें दुगुना तीसरेमें तिगुना और चौथीमें प्रायश्चित्तके अभावका बोधक होनेसे प्रा-

१ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजं। कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते।

१ द्विजब्राह्मणवधे पापस्य गुरुत्वादेनसि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनि।

२ विधेः प्राथमिकादस्माद् द्वितीये द्विगुणं भवेत्। तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तं चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः।

३ प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्तते।

४ आग्नेयं कामयते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्।

यश्चित्तकी आवृत्तिको कहता है-ऐसा होने-पर न्यायसे प्राप्त हुए तंत्रानुष्ठानको बाधकर आवृत्ति विशेषका कर्ता होगा- ऐसे न मानोगे तो शास्त्रसे पायी प्राप्तिका अनुवादक होनेसे वचन अनर्थक होजायगा-कदाचित् कहो वाक्य भेद है-सो ठीक नही-क्योंकि चतुर्थ आदि ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तके निषेधसे और तीनतक प्रायश्चित्तकी आवृत्तिके विधानसे वचनका एक अर्थ है-और चौथेमें प्रायश्चित्त नही इस प्रमाणके देखनेसे हते हुए ब्राह्मणकी संख्याकी अधिकतामें दोषकी अधिकता जानी जाती है-तैसेही देवल आदिका वचन है कि जो विना विचारे पाप कर्म एकवार किया है उसी का यह प्रायश्चित्त धर्मके ज्ञाता बुद्धिमानोंने देखा है-और विलक्षण-गुरु लघुदोषों का नाश तंत्रसे होभी नही सक्ता-इससे ब्रह्महत्या आदि पापोंमें दोषकी गुरुता और कर्मकी विलक्षणतासे प्रतिनिमित्त नैमित्तिक कर्मकी आवृत्ति युक्त है क्षामवती आदिमें तो कार्य विलक्षण नही इससे वहां तंत्रका अभाव युक्त है अब विस्तारसे अलम् (पूर्ण) होते हे और यह वचन है कि चौथेमें प्रायश्चित्त नही वहभी महा पातकके विषयमें है क्योंकि पापके अतिगुरु होनेसे प्रायश्चित्तके अभावकाही प्रतिपादक है-इससे शूद्रान्न भोजन आदिका बहुतवार अभ्यास किया होयतो उसके अनुकूल प्रायश्चित्तकी आवृत्तिही कल्पना करने योग्य है कुछ वहां प्रायश्चित्तका अभाव नही-इसीसे मनु ने कहा है (अ० ११ श्लो० १४०) कि जिनमें अस्थि नही हो ऐसे हने हुए जीवोंसे गाडी भरजाय तो शूद्र हत्याका व्रत करे और यह बारह वर्षका व्रत ब्रह्महा पद से साक्षात् हनने वालेकोही समझना अनुग्राहक और प्रयोजक आदिको तो दोषके अनुसार न्यून वा अधिक प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी उसमें अनुग्राहक जिस प्रायश्चित्तके भागी पुरुषपर अनुग्रह करे वह उस प्रायश्चित्तको पादोन (पौन) करे इससे उसको द्वादश वर्षका प्रायश्चित्त पादोन नौ वर्षका और प्रायोजकको अर्द्धोन प्रायश्चित्त ६ छः वर्षका है अनुमंता सार्द्धपाद साडे४॥ चार वर्षका और निमित्ती एकपाद ३ वर्षका प्रायश्चित्त करे इसीसे सुमंतुने कहा है कि तिरस्कार किया हुआ निर्गुण ब्राह्मण अपने देहमें मारकर साहस वा क्रोधसे घर क्षेत्र आदिके कारण मरजाय तो उस पापकी शुद्धिके लिए ३ तीन वर्षका व्रत करे और सरस्वती नदीपर प्राची दिशाको गमन करे अत्यन्त निर्गुणी ब्राह्मण अत्यन्त निर्गुणके ऊपर विना झिडके क्रोधसे मरजाय तो शुद्धिके अर्थ तीन वर्षतक कृच्छ्र व्रत करे और जहां निमित्तवाले अत्यंत गुणवान्के ऊपर अत्यंत निर्गुण मनुष्य आत्महत्या करे तो एक वर्षही ब्रह्महत्या व्रत करे-क्योंकि सुमन्तु ने ही यह कहा है कि केश श्मश्रु नख आदिका मुण्डन कराकर वनमें ब्राह्मण एक वर्षमें शुद्ध होता है इसी मार्गसे अनुग्राहक और प्रयोजक आदिके जो अनुग्राहक प्रयोजक हैं उनकेभी प्रायश्चित्तकी

१ यत्स्यादनभिसंधाय पापकर्म सकृत्कृत । तस्येयं निष्कृतिर्दृष्टा धर्मविद्भिर्मनीषिभिः ।

२ पूर्णे चानस्यनस्थ्यान्तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।

३ तिरस्कृतो यदा विप्रो हत्वात्मानं मृतो यदि । निर्गुणः साहसात्क्रोधाद्गृहक्षेत्रादिकारणात् । त्रैवार्षिकं व्रत कुर्यात्प्रतिस्रोतां सरस्वतीं।गच्छेद्वापि विशुद्धयर्थं तत्पापस्येति निश्चितं।अत्यर्थं निर्गुणो विप्रो ह्यत्यर्थं निर्गुणोपरि । क्रोधाद्वै म्रियते यस्तु निर्निमित्तं तु मानवः । वत्सरत्रितय कुर्यान्नरः कृच्छ्रं विशुद्धये ।

३ केशश्मश्रुनखादीनां कृत्वा तु वपनं वने । ब्रह्मचर्यं चरन्विप्रो वर्षेणैकेन शुद्धयति ।

कल्पनाकरनी और इस कल्पनामें यह आपस्तम्बका वचन मूल है कि प्रयोजक अनुमन्ता कर्ता ये स्वर्ग नरक देनेवाले कर्मोंके फलभागी होते हैं जो वारंवार करता है उसको फलका विशेषहोता है तैसेही प्रोत्साहक (उत्साह देनेवाला) आदिकोभी दंड और प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी सोई पैठीनैसीने कहा है कि हंता अनुमंता उपदेशका कर्ता संप्रतिपादक प्रोत्साहक सहायक तैसेही मार्गका उपदेशक आश्रय और शस्त्रका दाता भोजनका दाता और समर्थ होकर विकर्मीयोंका उपेक्षक दोषोंको जो कहै अनुमोदक ये सब अकार्य करनेवाले हैं इनके प्रायश्चित्तकी और शक्तिके अनुसार इनके दंडकी कल्पना करै तैसेही बालक और वृद्धोंको पापका कर्ता होने परभी आधेही दंडकी कल्पना करै क्योंकि अंगिरा की स्मृति है कि जिसके अस्सीवर्ष हो और जो सोलहसे न्यून वर्षका बालक हो और स्त्री रोगी ये सब आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं तैसेही बारह वर्षसे पहिले और अस्सीवर्षके पीछे पुरुषोंका आधा और स्त्रियोंको चौथाई प्रायश्चित्त होता है तैसेही अनुपनीत बालकको भी चौथाई ही प्रायश्चित्त है क्योंकि विष्णु की स्मृति है कि स्त्री वृद्ध रोगी इनको आधा बालकोंको पाद प्रायश्चित्त दे यह सब पापोंमें मर्यादा है इससे जो शंखने ग्यारह वर्षसे न्यून और पांच वर्षसे परे प्रायश्चित्तको भ्राता वा अन्यकोई मित्रजन करै यह कह कर कहा है इससे अत्यंत बालक इसका न अपराध है नपातकहै–न प्रायश्चित्त है–न राजदंड है–वह शंखका कथनभी संपूर्ण प्रायश्चित्तके प्रभावका बोध कहै कुछ सर्वथा प्रायश्चित्तके अभावका बोधक नही आश्रमविशेषकी अपेक्षाको छोडकर श्रवण किये जो ब्राह्मणको न मारे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य मदिरा पान न करैं इत्यादि वचनें में अवस्था विशेषकी अपेक्षाको छोडकर प्रायश्चित्त (पाप) कहा है इससे उसके प्रायश्चित्तको पिता आदि करैं क्योंकि पुत्रोंको पैदाकर उनका संस्कार वेद पढाकर उनकी जीविकाका प्रबंध करै इसै वचनसे पिताही पुत्रके हिताचरणका अधिकारी है और जहां कहीं एक ब्राह्मणके वधमें प्रयोजकहो और दूसरे ब्राह्मणके वधकासाक्षात्कर्ता होजाय वहां गुरु लघु प्रायश्चित्तके संनिपात (मेल) में बारह वर्षका जो गुरु प्रायश्चित्तके अंतर्गत (मध्य) का प्रयोजकका लघु प्रायश्चित्त है उसकी प्रसंगसे सिद्धि हो जाती है–कदाचित् शंका करो कि इसी·

---

१ प्रयोजयितानुमता कर्ता चेति स्वर्गनरकफलेषु कर्मसु भागिनो भूय आरभते तस्मिन्फलविशेषः।

२ हंता मतोपदेष्टा च तथा सप्रतिपादकः। प्रोत्साहकः सहायश्च तथा मार्गानुदेशकः। आश्रयः शस्त्रदाता च भक्तदाता विकर्मिणाम्। उपेक्षकः शक्तिमांश्चेद्दोषवक्तानुमोदकः। अकार्यकारिणस्तेषां प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्। यथाशक्त्यनुरूपं च दण्डं चैषां प्रकल्पयेत्।

३ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्धमर्हंति स्त्रियो रोगिण एवच। तथा। अर्वाक्तु द्वादशाद्वर्षादशीतेरूर्ध्वमेव वा। अर्धमेव भवेत्पुंसां तुरीयं तत्र योषिताम्।

---

१ स्त्रीणामर्धं प्रदातव्यं वृद्धानां रोगिणां तथा। पादो बालेषु दातव्यः सर्वपापेष्वयं विधिः।

२ ऊनैकादशवर्षस्य पंचवर्षात्परस्य च। प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वान्यः सुहृज्जनः। अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकं। राजदंडो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते।

३ ब्राह्मणो न हंतव्यस्तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च सुरां न पिबेत्।

४ पुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्य वेदमध्याप्य वृत्तिं विदध्यात्।

प्रकार लघु कल्पसे बडे प्रायश्चित्तकीभी सिद्धि हो जायगी सो ठीक नहीं क्योंकि यहां तो महान्‌के मध्यमें छोटेके आजानेसे उसके करनेमें विशेषता नहीं जाती इससे प्रसंग से कार्य सिद्धि जानी जाती है और लघुके मध्यमें महान् आ नहीं सकता इससे प्रसंगकी आशंका कहां–कदाचित् शंका करोकि चैत्रके वधसे पैदा हुये पापकी निवृत्तिके लिये किये प्रायश्चित्तसे विष्णुमित्रके वधसे पैदा हुये पापकी निवृत्ति कैसे होगी सो ठीक नहीं–चैत्रका उद्देश (नाम) को अतंत्रत, है–इससे जैसे काम्य नियोगकी सिद्धिके लिये स्वर्गार्थ किये आग्नेय आदिसे नित्य नियोगकी सिद्धि होती है उसी प्रकार लघु प्रायश्चित्तकेभी कार्यकी सिद्धि हो जायगी और जो मध्यम अंगिराका वचन है कि सहस्रगौ सुपात्र ब्राह्मणोंको विधिसे दानकरै तो ब्रह्महा सब पापोंसे छुटता है वह वचन सवनमें टिके गुणवाले ब्राह्मणके विषयमें है और यहभी–सवनमें टिके ब्राह्मणको दूना व्रत कहे इस वाक्यसे विधान किया जो द्वादश वर्षकी व्रतचर्यासे दूना प्रायश्चित्त उसके करनेमें असमर्थको जानना–क्योंकि प्रायश्चित्त अत्यंत गुरु है और आवृत्तिसे न किये बारहवर्षके विषयमें नहीं है–क्योंकि वहां बारह दिनोंमें एक २ प्राजापत्य होता है इस गिनतीसे तीनसौ साठ प्राजापत्य होते हैं–यद्यपि प्राजापत्य व्रतके अंतमें तीनदिन उपवास अधिक है–तथापि यहां वनको वास जटाका धारण वनफलोंका भोजन आदि विशेष तपसे युक्तको उपवासके अभावमेंभी एक एक द्वादशाह व्रतको प्राजापत्यकी तुल्यता है–तिससे प्राजापत्य क्रियामें जो अशक्त है वह बुद्धिमान् गौदानकरै और गौओंके अभावमें उनका मूल्यदे इसमें संशय नहीं इस न्यायसे प्रत्येक प्राजापत्यमें एक २ धेनु दी जायगी तो धेनुभी तीनसौ साठ होंगी–और सहस्र न होंगी इससे पूर्वोक्त विषयही युक्त है–और जो शंखको वचन है पूर्वके समान अज्ञानसे चारों वर्णोंमें ब्राह्मणको मारकर बारह वर्ष छः–तीन–डेढ वर्ष व्रतोंको बतावे–और उनके अंतमें सहस्र–पांचसौ–अढाईसौ–सवासौ–गौ वर्णोंके क्रमसेदे– बारहवर्ष और सहस्र गौ के समुच्चयका बोधक है वह आचार्य आदिकी हत्याके विषयमें देखने योग्य है क्योंकि प्रायश्चित्त अत्यंत गुरु है–सोई दक्षने यह कहा ब्राह्मणसे भिन्नको देना समान है–ब्राह्मणब्रुव–(नाममात्र ब्राह्मण) को देनेका फल दूना है आचार्यको लक्षगुना और वेदपाठीको देनेका फल अक्षय होता है–सम दूना सहस्रगुना अनंत फल दानमें और हिंसामें होता है–तैसेही आपस्तंब ने द्वादश वर्षके प्रायश्चित्तको कह कर इसी विषयमें कहा है कि गुरु और श्रोत्रियको हतकर यही व्रत उत्तम उत्साहसे करै–उसमें जीवन पर्यंत व्रतकी आवृत्ति करनेसे जब तिगुने वा चौगुनेकी संभावनाहो तहां समर्थ और बहुत

१ गवां सहस्रं विधिवत्पात्रेभ्यः प्रतिपादयेत् । ब्रह्महा विप्रमुच्येत सर्वपापेभ्य एव च ।

२ द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् ।

१ प्राजापत्यक्रियाशक्तो धेनुं दद्याद्विचक्षणः । गवामभावे दातव्यं तन्मूल्यं वा न संशयः ।

२ पूर्ववदमतिपूर्वं चतुर्षु वर्णेषु विप्रं प्रमाप्य द्वादशवत्सरान् षट् त्रीन् सार्द्धसंवत्सरं च व्रतान्यादिश्ते्तेषामन्ते गोसहस्रं तदर्धं तदर्धं तदर्धं दद्यात्तेषां वर्णानामानुपूर्व्येण ।

३ सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे । आचार्ये शतसाहस्रं श्रोत्रिये दत्तमक्षयम् । समं द्विगुणसाहस्रमानन्त्यं च यथाक्रमं । दाने फलविशेषस्स्याद्धिंसायां तद्वदेव हि ।

४ गुरुं हत्वा श्रोत्रियं वा एतदेव व्रतमुत्तमोत्तमादुच्छ्वासाचरेत् ।

स्वयंभी स्नान करके ब्रह्महत्यासे शुद्धिको प्राप्त होता है- और स्नानभी अपने पापको विदित करके करै-क्योंकि मनु (अ. ११ श्लो.८२)नें कहा है कि भूमिदेव (ब्राह्मण) ऋत्विज इनके और राजा नरदेवके समुदायमें अपने पापको विदित करके अश्वमेधके अवभृथमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है यदि वे ब्राह्मण आज्ञा देदें क्योंकि शंखकी स्मृति है कि अश्वमेधके अवभृथमें जाकर और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे स्नान करके शीघ्रही पवित्र होता है-यहां अश्वमेधके अवभृथका ग्रहण-अग्निष्टोमके मध्यके पंचदशरात्र आदि जो अन्ययज्ञ है और अग्निष्टोमकी समाप्ति करनेवाले जो सर्वमेध आदि हैं उनकाभी उपलक्षण है-क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि अश्वमेधके अवभृथमें वा अग्निष्टोमके अंतर्गत अन्ययज्ञमें स्नानसे शुद्ध होता है-यह अवभृथस्नान-उस ब्रह्महाके व्रत समाप्तिकी अवधि कही है जिसने द्वादश वर्षके प्रायश्चित्तका प्रारंभ कररक्खाहो और यथा कथंचित् जो ब्राह्मणों के प्राणोंकी रक्षाकर रहाहो-जैसे-सारस्वत सत्रमें पिलखनका प्रस्रवण (सुवा) प्राणोंकी रक्षा-एक बैल-सौंगो-सहस्र गौओंके न होने परदे-वा गृहपति (स्वामी) के मरनेमें सर्वस्वको दे-यहां है- कुछ स्वतंत्र दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है सोई शंखनें कहा है कि बारह वर्षमें शुद्धिको प्राप्त होताहै वा ब्राह्मण बारह गौओंके प्राणोंकी रक्षा करनेसे बीचमें ही-और अश्वमेधके अवभृथस्नानसे शीघ्रही शुद्ध होता है इसीसे मनु (अ० ११ श्लो ७८।७९।८१)ने बारह वर्षके प्रायश्चित्तकी गुणविधि प्रकरणमें ब्राह्मणकी रक्षा आदिको कहकर बारह वर्षके प्रायश्चित्तकाही उपसंहार (समाप्ति) किया है कि मुंडन कराकर वनमें वसे-ब्राह्मण और गौके लिए शीघ्र प्राणोंको त्यागे वा गौ ब्राह्मणकी रक्षा करै तो शीघ्र ब्रह्महत्यासे छुटता है-इस प्रकार सदैव दृढ है व्रत जिसका ऐसा ब्रह्मचारी बारह वर्षकी समाप्तिपर ब्रह्महत्याको नष्ट करता है-कदाचित् कोई शंका करै कि ब्रह्महत्यासे शुद्धिको प्राप्त होताहै यह फल ब्राह्मणकी रक्षा और बारह वर्षके प्रायश्चित्तका एकही है-इससे दोनोंकी स्वतंत्रता युक्त है अंग नहीं-और प्रधानका विरोधी होनेसेभी अंग नहीं कह सक्ते क्योंकि प्रधानका अनुग्राहक अंग होता है-और यह प्रारंभ किए हुए बारह वर्षके प्रायश्चित्तका विधान नहीं-जिससे उसके कार्यमें निधानजाना जाय-जैसे सत्र (समाज) को अवगुरण (नष्ट) करके विश्वजित् यज्ञ करे इस वाक्यमें सत्रके प्रयोगमें प्रवृत्त हुए उस मनुष्यको जो सत्रकी समाप्ति करनेमें असमर्थ है विश्वजितका विधान है-इससे अग्निप्रवेश लक्ष्य भाव-आदिके समान स्वतंत्रताही युक्त है-कदाचित् शंका करोकि वेभी बारह वर्षके प्रायश्चित्त और उपसंहारके मध्यमें पढे हैं इससे उसके अंग हैं-सो ठीक नहीं-जिससे मध्यमें पाठ होनेपरभी

१ शिष्टा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे । स्वमेनोऽवभृथे स्नात्वा हयमेधे विमुच्यते ।

२ अश्वमेधावभृथं गत्वा तत्रानुज्ञातः स्नातः सद्यः पूतो भवति ।

३ आश्वमेधावभृथे यान्यत्रोऽप्यग्निष्टुदन्तश्च ।

४ द्वादशे वर्षे शुद्धिं प्राप्नोत्यंतरा वा ब्राह्मणं मोचयित्वा गवां वा द्वादशानां परित्राणात्सद्य एवाश्वमेधावभृथस्नानाद्वा पूतो भवति ।

१ कृतवापनो वा निवसेद्ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेद्वा मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च । एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः । समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।

२ सत्रायावगुरं विश्वजिता यजेत् ।

प्रयोजनका ज्ञान होनेसे प्रयोजनकी आकांक्षाका अभाव है इससे परस्पर अंगांगिभाव युक्त नही जैसे सामिधेनी प्रकरणके मध्यमें वर्तमान जो अग्निके ज्ञाता हैं उनको अग्निके भली प्रकार ज्वलनके प्रकाश होनेसे और सामधेनीके साथ एक कार्यके कारक होनेसे सामधेनीके अंग नही-और अग्निप्रवेश आदि निश्चयसे बारह वर्षके प्रायश्चित्तके मध्यमें पढेभी नहीं-क्योंकि वसिष्ठ गौतम आदिकोंने ये सब बारह वर्षके प्रायश्चित्तसे पूर्वही पढे हैं-यही स्वातंत्र्य प्रकट करनेको मनुने वाक्य२ में वा शब्द पढा है (अ०११ श्लो० ७३) कि वा शस्त्रधारीका लक्ष्य होय वा अपने देहको अग्निमें डाल दे-तैसेही मनु (अ०११ श्लो० ८६) ने प्रायश्चित्तकाही उपसंहारकिया है कि इनमें कोईसी विधिमें टिककर सावधान हुआ विप्र ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्महत्याके पापको दूर करता है- इसीसे अग्निप्रवेश आदिकी स्वतन्त्रताही युक्त है-इससे ब्राह्मणकी रक्षा आदिके अंग होनेसे एक फल नही इस शंकाका समाधान करते हैं कि इसका परिहार यह है ब्राह्मणको मृत्युसे छुटाकर बीचमेंही छुटता है इत्यादि पूर्वोक्त शेष वचनसे अंगता प्रतीत होती है विद्यमान अंगकोही प्रधानके द्वारा फलका संबंध होता है कदाचित कहो प्रधानका विरोध है सोभी नही जिससे ब्राह्मणकी रक्षापर्यंत व्रत का करना फलका साधन विधान किया है-इससे विरोध नही ॥

भावार्थ-ब्राह्मण और बारह गौओंकी रक्षा और अश्वमेधके अवभृथ स्नानसे ब्रह्महत्यारा शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २४४ ॥

१ लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्यादग्नौ वेशात्मानमात्मना।

२ अनेन क्रमयोगेन तिथि विप्रः समाहितः। ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया।

दीर्घतीव्रामयग्रस्तंब्राह्मणंगामथापिवा ॥
दृष्टापथिनिरातंकंकृत्वातुब्रह्महाशुचिः ॥ २४५ ॥

पद-दीर्घतीव्रामयग्रस्तं २ ब्राह्मणं २ गां २ अथऽ-अपिऽ-वाऽ- दृष्टाऽ-पथि ७ निरातंकं २ कृत्वाऽ- तुऽ-ब्रह्महा १ शुचिः १ ॥

योजना-दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं अथ गां दृष्ट्वा तुपुनः पथि निरातंकं कृत्वा ब्रह्महा शुचिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-दीर्घ अर्थात् बहुत दिनतक, देहमें व्यापक और दुःसह जो कुष्ठ आदि व्याधि उससे ग्रस्त (पीडित) वा उसी प्रकारकी गौको मार्गमें देखकर और उसके रोगको दूर करके ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता है कदाचित् शंका करोकि ब्राह्मणकी रक्षासे शुद्ध होता है यहां कही हुई ब्राह्मणकी रक्षाको यहां फिर क्यों कहते हैं कि ब्राह्मण और गौकी रक्षासे शुद्ध होता है यह बात सत्य है पिछले वचनमें अपने प्राणोंके त्यागसे ब्राह्मणकी रक्षा कही और अब औषध आदिसे कही यह विशेष है इसी अभिप्रायसे मनु (अ० ११ श्लो ८०)ने कहा है कि ब्राह्मण वा ब्राह्मणके निमित्त प्राणोंकी रक्षासे शुद्ध होता है ॥

भावार्थ-दीर्घ और महाकठिन रोगसे ग्रसे हुए ब्राह्मण और गौको देखकर उने अच्छा करके ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता है ॥ २४५ ॥

आनीयविप्रसर्वस्वंहृतंघातितएववा ॥
तन्निमित्तंक्षतःशस्त्रैर्जीवन्नपिविशुद्धचति ॥

पद-आनीयऽ-विप्रसर्वस्वं २ हृतं २ घातितः १ एवऽ-वाऽ-तन्निमित्तं २ क्षतः १ शस्त्रैः३ जीवन् १ अपिऽ- विशुध्यति क्रि- ॥

योजना-हृतं विप्रसर्वस्वं आनीय वा...

१ विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते।

घातितः वा तन्निमित्तं शस्त्रैः क्षतः पुरुषः जीवन् अपि विशुध्यति ॥

तात्पर्यार्थ-सर्वस्वकी चोरीसे दुःखी हुए ब्राह्मणके भू-सुवर्ण आदि चुराए हुए संपूर्ण द्रव्यको लाकर जो रक्षा करता है वह शुद्ध होता है-अथवा-धनके लानेमें प्रवृत्त हुआ चोरोंने मार दिया हो वा ब्राह्मणोंके सर्वस्व लानेके लिये चोरोंसे युद्ध करता हुआ शस्त्रोंसे क्षत (मृतककी तुल्य) होजाय तो जीता हुआभी शुद्ध होता है-यहां शस्त्रैः यह बहुवचन बहुत क्षत (घाव) की प्राप्तिके लिये है इसीसे मनुने (अ० ११ श्लो०८०) तीन बार यह ग्रहण किया है कि तीनवार रोकनेवाला वा सर्वस्वको जीत कर शुद्ध होता है- इन दो श्लोकोंमें जो ये पांच कल्प कहे हैं वे ब्राह्मणकी रक्षा रूप हैं-इससे ब्राह्मणको छुटाकर बीचमेंही शुद्ध होता है इस शेष वचनके संग क्रोडीकरण (मेल) होनेसे बारह वर्षकी अवधिमें विनियोग होनेसे स्वतंत्रता नहीं है ॥

भावार्थ-चुराये हुये ब्राह्मणके सर्व धनको लाकर वा लौटानेके समय चोरोंके सकाशसे मरनेसे-वा धनके लौटानेके निमित्त शस्त्रोंके अनेक घाव होनेसे बारह वर्षके मध्यमेंभी पवित्र होता है ॥ २४६ ॥

लोमभ्यःस्वाहेत्येवंहिलोमप्रभृतिर्वैतनुम् ।
मज्जांतांजुहुयाद्वापिमन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ॥

पद-लोमभ्यः ४ स्वाहा-इति-एवं-हि-लोमप्रभृति-वा-तनुम् २ मज्जांतां २ जुहुयात् क्रि-वा-अपि-मंत्रैः३ एभिः ३ यथाक्रमम्-॥

योजना-लोमभ्यः स्वाहा इत्येवं लोम प्रभृति मज्जांतां तनुं एभिः मंत्रैः यथाक्रमं जुहुयात् ॥

तात्पर्यार्थ-लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे लोमोंसे लेकर मज्जापर्यंत अपने देहका होम करै-इस वचनमें इति शब्द करणत्व दिखानेके लिये है और एवं शब्द प्रकारके सूचनार्थ है और हि शब्द अन्य स्मृतियोंमें प्रसिद्ध त्वचा आदिका जो प्रभृति शब्दसे लिये हैं उनके द्योतन (जताना)के लिये है फिर वे लोम आदि होमके द्रव्य चतुर्थी विभक्तिसे दिखाये हैं स्वाहाको अंतमें पढकर उनमंत्रोंसे होम करै और वे होम करनेके द्रव्य जो लोम त्वचा लोहित मांस मेदा स्नायु अस्थि मज्जा आठ हैं इससे आठही मंत्र होते हैं सोई वसिष्ठने कहा है कि ब्रह्महा वा भ्रूणहा अग्निका स्थापन करके होम करै कि लोमोंको मृत्युके निमित्त होमताहूं और लोमोंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह प्रथम आहुति है १ त्वचाको मृत्युके लिये होमताहूं त्वचाके संग मृत्युको मिलाता हूं यह दूसरी २ लोहितको मृत्युके निमित्त होमताहूं लोहितके संग मृत्युको मिलाताहूं यह तीसरी ३ मांसको मृत्युके निमित्त होमताहूं मांसके संग मृत्युको मिलाताहूं यह चौथी ४ मेदाको मृत्युके निमित्त होमताहूं मेदाके संग मृत्युको मिलाताहूं यह पांचवी१५

१ त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ।
२ अंतरा वा ब्राह्मणं मोक्षयित्वा ।

१ ब्रह्महाग्निमुपसमाधाय जुहुयाल्लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय इति प्रथमाम् १ त्वचंमृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति द्वितीयाम्-२ लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयाम् ३ मांसानि मृत्योर्जुहोमि मांसैर्मृत्युं वासय इति चतुर्थीम् ४-मेदोमृत्योर्जुहोमि मेदसामृत्युं वासय इति पंचमीम् ५-स्नायूनि मृत्योर्जुहोमि स्नायुभिर्मृत्युं वासय इति षष्ठीम् ६-अस्थीनि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय-इति सप्तमीम् ७ मज्जांमृत्योर्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इत्यष्टमीम् ८।

स्नायुओंको मृत्युके निमित्त होमताहूं स्नायुओंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह छठी ६ अस्थियोंको मृत्युके निमित्त होमताहूं अस्थियोंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह सातवी ७ मज्जाको मृत्युके निमित्त होमताहूं मज्जाओंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह आठमी-आहुती है-यहां लोम आदि देहका होमकरे यह कहनेसे लोम आदि-होमके द्रव्य जाने गये-लोमभ्यः स्वाहा यह चतुर्थीका निर्देश होने परभी लोम आदिकोंको देवताओंकी कल्पना नहि करते हैं क्योंकि द्रव्यके नाम लेनेसेही मंत्र होम के साधन हो सकते हैं-किंतु लोमभिर्मृत्युं वाशये इत्यादि वसिष्ठके मंत्रोंके देखनेसे मृत्युकोही हविःका संबंध प्रतीत होता है इससे मृत्युकोही देवताकी कल्पना करते हैं-इससे लोम आदिकोंको सामर्थ्यसे अपने खड्गसे काटकर मृत्युके निमित्त आठ आहुतियोंसे होम करके अंतमें देहको अग्निमें फेंकदे-इससे जो किसीने कहा है कि जहां हविः नही कहा वहां होम घीकी हविसे होते हैं वह विना विचारे कहा इससे त्यागने योग्य है-जुहुयात (होमकरे) इससे अग्नि आजाता-भ्रूणहा अग्निका स्थापन करके- यहां जो पुनः अग्निका ग्रहण है वह लौकिक अग्निकी प्राप्तिके लिये है और यह युक्तभी है क्योंकि पतितोंकी अग्निकी प्रतिपत्ति (गति) कही है क्योंकि उशनाकी स्मृति है कि जो आहिताग्नि ब्राह्मण महापातकी हो जाय और प्रायश्चित्तोंसे शुद्ध न होय तो उसकी अग्नियोंकी क्या गति करे-बुद्धिमान् मनुष्य वैतानको जलमें फेंकदे और अग्निको शांत कर दे-तैसेही कात्यायेनकी स्मृति है कि यदि दैवसे अग्निहोत्री महापातकी हो जाय तो उसके पापोंके नाशतक युक्त होकर पुत्र आदि अग्नियों की रक्षाकरे-जो प्रायश्चित्त न करे वा करताहुआ मरजाय तो गृह्याग्निको शांत करदे और सामग्री सहित श्रौताग्निको जलमें फेंकदे-और देहका अग्निमें फेंकना तो तीन वार उठ २ कर नीचेको मुखकरके करना-सोई मनु (अ० ११ श्लो० ७३)ने कहा है अथवा अपने देहको तीनवार नीचेको शिर किये जलती अग्निमें फेंकदे-गौतमनेभी यहां विशेष दिखाया है तीनवार भोजनके अभावसे कृश है देह जिसका ऐसे ब्रह्महाका अग्निमें गिरनाही प्रायश्चित्त है-सोई काठक श्रुति है कि भोजनके त्यागसे कृश ब्रह्महा अग्निमें प्रवेश करे-यह मरणांत प्रायश्चित्त जानकर करनेके विषयमें है सोई मध्यम अंगिराने कहा है कि बुद्धिमानोंने जो प्राणांत प्रायश्चित्त कहा है वह जानकर करनेमें जानना इसमें संशय नही-तैसे हो जो मनुष्य किसी प्रकार जानकर महापाप करे उसकी शुद्धि पर्वतसे और अग्निमें पडनेके विना नही देखी-यह प्रायश्चित्त स्वतंत्र है-ब्राह्मणकी रक्षा आदिके समान बारह व-

१ अनादिष्टद्रव्यत्वादाज्यहविष्का होमाः-

२ आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकभाग्भवेत् प्रायश्चित्तैर्न शुद्धयेत तदग्नीनां तु का गतिः । वैतानं प्रक्षिपेत्तोये शालाग्निं शमयेद्बुधः—

१ महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादग्निमान्यदि । पुत्रादिःपालयेदग्नीन्युक्तश्चादोषसंक्षयात्। प्रायश्चित्तं नकुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि। गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम्।

२ प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ।

३ प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवस्यातस्य ।

४ अनशनेन कर्शितोऽग्निमारोहेत् ।

५ प्राणांतिकं च यत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः । तत्कामकारविषयं विज्ञेयं नात्रसंशयः । यः कामतो महापापं नरः कुर्यात्कथंचन । न तस्य शुद्धिर्निर्दिष्टा भृग्वग्निपतनादृते ।

र्षके प्रायश्चित्तके अंतर्गत नहीं-यह पहिले कह आये ॥

भावार्थ-लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे लोम आदि मज्जा पर्यंत अपने देहको क्रमसे अग्निमें होम करे ॥ २४७ ॥

संग्रामेवाहतोलक्ष्यभूतः शुद्धिमवाप्नुयात्॥ मृतकल्पः प्रहारार्तोजीवन्नपिविशुद्ध्यति ॥

पद-संग्रामे ७ वा०-हतः १ लक्ष्यभूतः १ शुद्धिं २ अवाप्नुयात् क्रि-मृतकल्पः १ प्रहारार्तः १ जीवन् १ अपि०-विशुध्यति क्रि-

योजना-वा संग्रामे शस्त्रभृतां लक्ष्यभूतः हतः सन् शुद्धिं अवाप्नुयात्-प्रहारार्तः मृतकल्पः जीवन् अपि विशुध्यति-

तात्पर्यार्थ-संग्राम (युद्धभूमि) में दोनों दलोंने प्रेरे हुये बाणोंके पडनेका लक्ष्य (निशाना) हो कर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है-अथवा बडोभारी वेदना (दुःख) मर्मके प्रहारसे जिससे ऐसा मृतकके तुल्य मूर्छित होकर जीवता हुआ शुद्धिको प्राप्त होता है और लक्ष्य होनाभी-मैं प्रायश्चित्ती हूं-यहकहकर बुद्धिमान् धनुष विद्याके जाननेवालोंके संग्राममें अपनी इच्छासे करना राजा अपने बलसे लक्ष्य उसको न बनावे सोई मनु (अ० ११ श्लो० १७) ने कहा है कि वा अपनी इच्छासे बुद्धिमान् शस्त्रधारियोंका लक्ष्य हो जाय-यहभी मरणांतिक होनेसे साक्षात् महापापके कर्ताको जानकर करनेके विषयमें है-अपि शब्दके देनेसे अश्वमेध आदिसेभी शुद्ध होता है सोई मनु (अ० ११ श्लो० ७४)ने कहा है कि वा अश्वमेध-स्वर्जित-गोसव-अभिजित्-विश्वजित् त्रिवृत्-अग्निष्टुत् इन यज्ञोंसे यजन (पूजन) करै अश्वमेध यज्ञका करना सार्वभौम (चक्रवर्ती) क्षत्रियको है-क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि महीपति क्षत्रिय, अश्वमेध यज्ञकरे-और असार्वभौम उक्त यज्ञको न करे इस वचनमें सार्वभौमसे भिन्नको अश्वमेध करनेका निषेधभी है-और सार्वभौमको अश्वमेधका करना-जानकर करनेमें मरणांतिकके स्थानमें जानना-क्योंकि इस वचनसे यमने-मरण कालमें अग्निप्रवेशके तुल्य महाक्रतु अश्वमेधको दिखाया है कि महा पातकके कर्ता चार जानकर अग्निमें प्रवेश करके वा महाक्रतुमें स्थित होकर शुद्ध होते हैं-और स्वर्जित आदि यज्ञोंका जिसने प्रथम यज्ञ किया और जो अग्निहोत्री हो-उस त्रैवर्णिक (द्विज) के लिये विकल्प हो दश वर्षके प्रायश्चित्तके संग है अर्थात् चाहे बारह वर्षका प्रायश्चित्त करै चाहे स्वर्जित आदि यज्ञ करे-और वह स्वर्जित आदिके लिये आधान वा प्रथम यज्ञको न करे क्योंकि पतितका द्विजातियोंके कर्मोंमें अधिकार नहीं है-कदाचित् कहोकि संध्योपासनके समान कुछ विरोध नहीं यह युक्त नहीं है क्योंकि आधान आदि उत्तर क्रतुके शेष नहीं हैं वे आधान आदि दक्षिणाकी न्यूनता वा अधिकताके आश्रयणसे बारह वर्षके प्रायश्चित्तके योग्य जो साक्षात् मारनेवाले हैं उनके लिये समझने योग्य हैं ॥

भावार्थ-अथवा संग्राममें शस्त्र धारियोंका लक्ष्य होकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है और शस्त्रोंके प्रहारोंसे दुःखी हुआ मृतकके समान मूर्छित होनेसे जीवता हुआभी शुद्धिको प्राप्त होताहै ॥ २४८ ॥

१ लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः।

२ यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेनच । अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ।

१ यजेत वाश्वमेधेन क्षत्रियस्तु महीपतिः ।

२ नासार्वभौमो यजेत ।

३ महापातककर्तारश्चत्वारो मतिपूर्वकम् । अग्निं प्रविश्य शुध्यति स्थित्वा वा महति क्रतौ ।

अरण्येनियतोजस्वात्रिर्वैवेदस्यसंहिताम् ॥
शुद्ध्येतवामिताशीत्वाप्रतिस्रोतःसरस्वतीम्

पद-अरण्ये ७ नियतः १ जप्त्वाऽ-त्रिःऽ-वैऽ-वेदस्य ६ संहिताम्२ शुध्येत क्रि- वाऽ-मिताशी१ इत्वाऽ- प्रतिस्रोतःऽ- सरस्वतीम् २

योजना-अरण्ये नियतः वेदस्य संहिताम् त्रिः जप्त्वा वा प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् मिताशी सन् इत्वा शुद्ध्येत ॥

तात्पर्यार्थ-अरण्य (निर्जन प्रदेश) में नियतभोजन करता हुआ तीन वार मंत्र ब्राह्मणरूप वेदकी संहिताका पाठ करके ब्रह्महा शुद्ध होताहै क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ७७) ने कहा है कि नियताहार होकर जपे यहां संहिताका ग्रहण पद क्रमके निषेधार्थ है अथवा परिमित भोजन करता हुआ प्लाक्ष प्रस्रवण (झरना)से लेकर पश्चिमके समुद्रतक स्रोत स्रोतके प्रति सरस्वती नदीमें गमन करनेसे शुद्ध होताहै और भोजनभी हविष्यका करे क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ७७) की स्मृति है कि हविष्यका भोजन करता हुआ प्रतिस्रोत सरस्वती नदीमें विचरै-यह वेदका जप मारनेवाले विद्वान्को और निर्धन अत्यंतगुणवान्को प्रमादसे निर्गुणके मारनेमें जानना और सरस्वतीका गमन तो पूर्वोक्त विषयमें विद्यासे रहितको समझना निमित्तीके लिये तो यह सुमंतुके वचनसे दिखा आये हैं कि तिरस्कार करनेसे निर्गुण ब्राह्मण मरजाय तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै और जो मनु (अ. ११ श्लो ७५)का वचन है कि अन्यतम वेदको जपकर सौ योजन गमन करै वहभी वनमें नियत होकर इस वचनमें उक्तके करनेमें जो असमर्थ है उसको करनेका बोधक है ॥

भावार्थ-वनमें प्रमित भोजन करता हुआ तीन वार वेदकी संहिताको जपकर वा परिमित भोजी सरस्वती नदीमें प्रतिस्रोत गमन करके ब्रह्महा शुद्ध होता है ॥ २४९ ॥

पात्रेधनंवापर्याप्तंदत्त्वाशुद्धिमवाप्नुयात् ॥
आदातुश्चविशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरीतथा ॥

पद-पात्रे७ धनं२ वाऽ- पर्याप्तम्२ दत्त्वाऽ- शुद्धिं २ अवाप्नुयात् क्रि- आदातुः ६ चऽ- विशुद्ध्यर्थ२ इष्टिः १ वैश्वानरी १ तथाऽ- ॥

योजना-पात्रे पर्याप्तं धनं दत्त्वा शुद्धिं अवाप्नुयात् चपुनः आदातुः विशुद्ध्यर्थं वैश्वानरी इष्टिः कथिता-प्रायश्चित्तं भवतीतिशेषः ॥

तात्पर्यार्थ-विद्या और आचरणसे युक्त पूर्वोक्त लक्षणवाले सुपात्रको गौ भूमि सुवर्ण आदि जीविकाके लिए पूर्णधन देकर ब्रह्महा शुद्धिको प्राप्त होताहै और जो उस धनका प्रतिग्रह लेता है वह वैश्वानर देवताके निमित्तयज्ञ करनेसे शुद्ध होता है यहभी आहिताग्नि (अग्निहोत्री) के विषयमें समझना और अनाहिताग्निको उसी देवताके निमित्त चरु होताहै आहिताग्निका जो धर्म है वही औपासन अग्निवालेका है वा शब्दके कहनेसे सर्वस्व या सामग्रीसहित घरका दान करै-सोई मनु (अ०११ श्लो०७६) ने कहा है कि वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको सब धन वा सामग्री सहित घरदे और यह पात्रको धनका दान उसको है जो निर्गुण धनवान्ने निर्गुणको माराहो और ऐसेही विषयमें जिसके संग कुछ संबंध न हो उसको सर्वस्वका दान और जिसके संग संबंध हो उसको सामग्री सहित घरका

१ जपेद्वा नियताहारः ।

२ हविष्यभुग्वानुचरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ।

३ जीपत्वान्यतम वेद योजनानां शतं व्रजेत् ।

१ सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत् । धनंवा-जीवनायालं गृहं वासप/रिच्छदम् ।

दान दे यह व्यवस्था है जो पराशरने कहाहै कि चार विद्याओंसे युक्त ब्राह्मण विधिपूर्वक ब्रह्महत्यारेको समुद्रसेतुका गमन और प्रायश्चित्त बतावै सेतुबंधके मार्गमें चार-वर्णोंसे भिक्षाको मांगे और विकर्मीयोंको वर्जे दे और छत्र उपानहको त्यागदे और यह कहे कि मैं निंदित कर्मी महापातकी भिक्षाके लिए द्वारपर खडाहूं और गोकुल गोष्ठ ग्राम नगर तपोवन तीर्थ नदीयोंके झरने इनमें अपने पापोंको प्रकट करै फिर वह ब्रह्महा सागरमें जाकर और स्नान करके पातकसे छुटता है फिर पवित्र हुआ घर आनकर ब्राह्मणभोजन और वस्त्रोंका दान पवित्र मंत्रोंके जपसे पवित्र हुआ गृहमें प्रवेश करै चार विद्यावाले ब्राह्मणको सो गौ दक्षिणा दे ऐसे चातुर्विद्यकी अनुमतिसे शुद्धि को प्राप्तहोता है यह पराशरका कथनभी पात्रको पर्याप्त धन देकर इसके-ही विषयमें है और जो यह सुमन्तुका वचन है कि ब्रह्महा वर्षदिनतक कृच्छ्र करै–नीचे सोवै–तीन वार स्नान करै–और अपने कर्मको कहे भिक्षाका भोजन करै–दिव्य नदीयोंके संगम–तट–आश्रम–गोष्ठ–पर्वत–झरने–तपोवन–इनमें विचरै–स्थानपर वीरासनसे बैठे ऐसे वर्षदिनके पूरण होनेपर स्वर्ण- मणि-गौ-अन्न- तिल-भूमि-घी ब्राह्मणोंको देकर पवित्र होताहै–यह वचनभी मूर्ख धनवाले हन्ताको जानना–जो यह वसिष्ठका वचन है कि बारह दिन जलका भक्षण और बारह दिन उपवास करै वहभी उसके लिये है जिसके मनमें ब्रह्महत्याका निश्चय हुआ हो और मारनेकी इच्छाकी निवृत्ति हो–और जो यह षट्त्रिंशत्का वचन है कि नपुंसक ब्राह्मणको मारकर शूद्र हत्याका व्रत करै वा चांद्रायण वा दोपराक व्रत करै–वहभी उस नपुंसकके विषयमें जानना जिसका पुंस्त्व फिर न लौटसकै और जो जानकर मारा हो–और इसी विषयमें अज्ञानसे मारनेमें बृहस्पतिने कहाहै कि जगत्में विख्यात अरुणा और सरस्वतीके संगममें तीन काल स्नान और तीन कालके उपवाससे शुद्ध होताहै–इसी प्रकार अन्यभी स्मृतियोंके वचनको ढूंढकर विषयकी व्यवस्था जाननी–और समान वचनोंका तो विकल्प समझना–और द्वादश वर्षके प्रायश्चित्तसे धन धान्य पर्यंत प्रायश्चित्त ब्राह्मणके लियेहीहैं–क्षत्रिय आदिको तो द्विगुण आदिक है–सोई अंगिराने कहाहै कि जो ब्राह्मणोंका प्रायश्चित्तहै वह क्षत्रियोंको दुगुना और वैश्योंको तिगुना और पर्षत्के समान

१ चातुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके । समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् । सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाहरेत् । वर्जयित्वा विकर्मस्थाञ्छत्रोपानद्विवर्जितः । अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः । गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः । गोकुलेषु च गोष्ठेषु ग्रामेषु नगरेषु च । तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च । एतेषु ख्यापयेदेनः पुण्यं गत्वा तु सागरं । ब्रह्महा विप्रमुच्येत स्नात्वा तस्मिन्महोदधौ । ततः पूतो गृहं प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणभोजनं । दत्वा वस्त्रं पवित्राणि पूतात्मा प्रविशेद्गृहं । गवां चापि शतं दद्याच्चातुर्विद्याय दक्षिणां । एवं शुद्धिमवाप्नोति चातुर्विद्यानुमोदितः ।

२ ब्रह्महा संवत्सरं कृच्छ्रं चरेदधःशायी त्रिषवणी कर्मावेदको भैक्षाहारो दिव्यनदीपुलिनसंगमाश्रमगोष्ठपर्वतप्रस्रवणतपोवनविहारी स्थानवीरासनी संवत्सरे पूर्णे हिरण्यमणिगोधान्यतिलभूमिसर्पींषि ब्राह्मणेभ्यो दत्वा पूतो भवति ।

१ द्वादशरात्रमब्भक्षो द्वादशरात्रमुपवसेत् ।

२ षण्ढं तु ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्या व्रतं चरेत् । चांद्रायणं वा कुर्वीत पराकद्वयमेव च ।

३ अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते । शुद्धे त्रिषवणस्नायी त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ।

४ पर्षद्या ब्राह्मणानां तु सा एषां द्विगुणा मता । वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्षद्वच्च व्रतं स्मृतं ।

व्रत कहाहै अर्थात् ब्राह्मणकी सभाके अनुसार व्रत करै–इससे मारने और मरनेवालेके गुण विशेषसे ब्राह्मणोंको जो प्रायश्चित्त कहाहै वही उस गुणसे युक्त क्षत्रियको दुगुना तिगुना जानना–इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य आदिकोंमेंभी हीनसे उत्तमके वधसे दोषके गौरवसे प्रायश्चित्तकी द्विगुणता आदिकी कल्पना करनी–और दोषका गौरव दण्डके गौरवसे जाना जाताहै–सोई कहाहै कि प्रतिलोम अपवादोंमें दूना तिगुना दंड–और वर्णोंके अनुलोमसे उससे आधे २ की हानिसे दंड होताहै–और जो चतुर्विंशतिके वचनहैं कि जो बुद्धिमानोंने ब्राह्मणको प्रायश्चित्त कहाहै उसका पादोन क्षत्रिय और आधा वैश्य और एक पाद शूद्र सब पापोंमें करै–वहभी प्रतिलोम वर्णोंके किए च्यार प्रकारके साहसोंसे भिन्न विषयोंके विषयमें है–तैसेही अनुलोमसे पैदा हुए मूर्द्धाभिषिक्तोंका प्रायश्चित्त कल्पना करने योग्यहै और दण्डका न्यूनाधिक भाव वर्ण और जातिके ऊंच नीचसे दण्डका दान करै इस वचनसे कह आयेहैं तिससे मूर्द्धाभिषिक्तको ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणसे अधिक और क्षत्रियसे न्यून आधा अधिक बारह (१८) वर्षका प्रायश्चित्त होताहै–इसी रीतिसे प्रतिलोमसे पैदा हुओंके प्रायश्चित्तके गौरवकी कल्पना करनी, तैसेही आश्रमियोंको अंगिराने विशेष दिखायाहै कि यदि आश्रमवाले गृहस्थोंको उक्त पापोंको करैं तो ब्रह्मज्ञानसे पहिले शौचके समान प्रायश्चित्तको करैं–जैसे गृहस्थीयोंके शौचसे दूना ब्रह्मचारियोंको तिगुना वानप्रस्थोंको और चौगुना संन्यासीयोंको–इस वचनसे दुगुण आदि क्रमसे शौचकी वृद्धि होती है इसी प्रकार प्रायश्चित्तकी वृद्धि होती है–ब्रह्मचारीको तो दुगुना प्रायश्चित्त सोलह वर्षसे पूर्व २ समझना–क्योंकि सोलह वर्षसे न्यून बालकको आधा प्रायश्चित्त इस वचनसे कह आयेहैं–कदाचित् शंका करो कि बारह वर्षके प्रायश्चित्तको चौगुना होनेपर मध्यमें विपत्तिकी शंकासे समाप्ति न होगी और इससे किसीकी प्रवृत्ति ही न होगी सो ठीक नहीं–क्योंकि प्रायश्चित्तके प्रारंभ कर्ताकी मध्यमें भी पापका नाश होताही है–सोई हारीतने कहाहै कि प्रायश्चित्तके निश्चयपर जिस दिन कर्ता मरजाय उसी दिन इस लोक और परलोकमें पवित्र होताहै–व्यासने भी कहाहै कि धर्मके लिए यत्न करता हुआ मनुष्य यदि न कर सके तो वह उसके पुण्यको प्राप्त होताहै इसमें संशय नहीं॥

भावार्थ–सुपात्रको पूर्ण धन देकर पातकी शुद्धिको प्राप्त होता है और धनके लेनेवाला शुद्धिके लिए वैश्वानरी यज्ञ करै ॥ २५० ॥

यागस्थक्षत्रविड्घातीचरेद्ब्रह्महणिव्रतम् ।
गर्भहाचयथावर्णतथात्रेयीनिषूदकः॥२५१॥

पद–यागस्थक्षत्रविड्घाती १ चरेत् क्रि–ब्रह्महणि ७ व्रतम् २ गर्भहा १ चऽ–यथा वर्णं २ तथाऽ–आत्रेयीनिषूदकः १ ॥

योजना–यागस्थक्षत्र विड्घाती ब्रह्महणि

१ प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणस्त्रिगुणोदमः। वर्णानामानुलोम्येतु तस्मादर्द्धार्द्धहानितः ।

२ प्रायश्चित्तं यदाम्नातं ब्राह्मणस्य। महर्षिभिः। पादोनं क्षत्रियः कुर्यादर्द्धंवैश्यः समाचरेत् । शूद्रः समाचरेत्पादमशेषेष्वपि पाप्मसु ।

३ गृहस्थोक्तानि पापानि कुर्वन्त्याश्रमिणो यदि।शौचवच्छोधनं कुर्युरर्वाग् ब्रह्मनिदर्शनात् ।

१ एतच्छौच गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणां।त्रिगुण वानप्रस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ।

२ प्रायश्चित्ते व्यवसिते कर्ता यदि विपद्येत । पूतस्त दहरेवासाविहलोके परत्र च ।

३ धर्मार्थे यतमानस्तु न चेच्छक्नोति मानवः। प्राप्तोभवति तत्पुण्यमत्रवै नास्ति संशयः ।

व्रतं चरेत् चपुनः गर्भहा तथा आत्रेयीनिषूदकः यथावर्णं व्रतं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–दीक्षणीय और उदवसानीय पर्यंत सोमयाग करनेमें वर्तमान क्षत्रिय वैश्यको जो मारे वह उस व्रतको करे जो ब्रह्महा पुरुषको बारह वर्षका कहा है यद्यपि याग शब्द सामान्य यागका वाची है तथापि यहां सोम यागको कहता है क्योंकि सवनमें गत क्षत्रिय वैश्यको मारे इसे वचनमें वसिष्ठनें तीन सवनोंसे उत्पन्न सोमयागकोही दिखाया है यहां गुरु और लघु जो द्वादश वर्ष आदि ब्रह्महत्याके व्रतहैं उनकी व्यवस्था जाति और गुरु आदिकी अपेक्षासे पूर्वके समान जाननी इसी प्रकार गर्भवध आदिमेंभी समझना–मरणांतिक प्रायश्चित्तका तो उपदेश व्रतके ग्रहणसे नहीं है–इससे जानकर यज्ञ आदिमें स्थित क्षत्रिय आदिके वधमें दूना व्रत होता है–और यह व्रत संपूर्णही करना–पहिले दोनो वर्णोंमें वेद पाठीको मारकर इस प्रकरणमें बारह वर्षकाही व्रत कहा है–और विनाही स्त्रीयोंके गर्भको हतकर वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करे अर्थात् जिस वर्णके पुरुषके वधमें जो प्रायश्चित्त कहा है उस वर्णकेही गर्भवधमें वही प्रायश्चित्त करे–यहभी उस गर्भमें है जिसके स्त्री–पुरुष नपुंसकके चिन्ह प्रतीत न हुयेहों–क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ८७) नें अविज्ञात गर्भको हतकर यह विशेष दिखाया है कि–यहां यद्यपि ब्राह्मणका गर्भ ब्राह्मणही होगा–इससे ब्राह्मणके वधनिमित्त वधकीही प्राप्ति है तथापि गर्भमें स्त्रीभी हो सक्तीहै और स्त्री–शूद्र–वैश्य–क्षत्रिय–इनका वध उपपातक होता है–इससेभी उसकी प्राप्ति हो जायगी–इससे स्त्री-पुरुष–नपुंसकरूपसे विना जानेभी ब्राह्मणके गर्भमात्रसे पाए ब्रह्महत्याके व्रतको करे इससे यह उपदेशका वचन सार्थक है और स्त्री पुरुष आदिके चिन्ह प्रकट होनेपरही यथायोग्य प्रायश्चित्त होता है और जो आत्रेयी (रजस्वला)का वध करे तो वहभी आत्रेयीके वर्णानुकूल प्रायश्चित्तव्रत करे और रजस्वला ऋतुस्नाताको आत्रेयी कहतेहैं क्योंकी अत्र एतत्–अपत्यं भवति (इसमें यह संतान होती है) यह वसिष्ठकी स्मृति है कि और अग्निगोत्रकी स्त्रीकोभी आत्रेयी कहते हैं क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि अथवा अत्रिगोत्रा नारीको हतकर पूर्वोक्त व्रतको करे यहां यह युक्त समझो कि ब्राह्मणके गर्भ वा ब्राह्मण आत्रेयीके वधमें ब्रह्महत्याका व्रत क्षत्रिया आत्रेयीके वधमें क्षत्रियहत्याका व्रत करे इसी प्रकार अन्यत्रभी समझना चकारसे साक्षीमें झूट बोलनेमेंभी यही व्रत समझना सोई मनु (अ० ११ श्लो० ८८) नें कहा है कि झूटी साक्षी कहकर और गुरुके प्रति क्रोध होकर और निक्षेपको चुपकर स्त्री और मित्रको मारकर ब्रह्महत्याका व्रत करे–यहभी वहां समझना जिस वचनमें झूट बोलनेसे प्राणीयोंका वधहो–क्योंकि प्रायश्चित्त अत्यन्त गुरु है–यहां निक्षेप ब्राह्मणका लेना और स्त्रीभी आहिताग्निकी भार्या वह लेनी जो पतिव्रताहो और अथवा जो यज्ञमें स्थित हो सोई अंगिरा और पराशरका वचन है कि आहिताग्नि ब्राह्मणकी

१ सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ ।

२ हत्वा गर्भमविज्ञात ।

१ अत्रिगोत्रां वा नारीं ।

२ उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा । अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधं ॥

३ आहिताग्नेर्द्विजाग्र्यस्य हत्वापत्नीमनिंदिताम् । ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यादात्रेयीघ्नस्तथैव च ॥ सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।

पतिव्रता पत्नीको और अत्रेयीको मारकर ब्रह्महत्याका व्रत करै–सवनमें स्थित स्त्रीको मारकर ब्रह्महत्याका व्रत करै इससे सवनमें स्थित अग्निहोत्रिणी–आत्रेयी इनके वधमें ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्त कहनेसे इनसे भिन्न स्त्रियोंके वधका–स्त्री–शूद्र–विट्–क्षत्र–वधे–इन उपपातकोंके मध्यमें पाठ होनेसे उपपातकका प्रायश्चित्तहै–कदाचित् कोई शंका करै कि ब्राह्मणो न हन्तव्यः अर्थात् ब्राह्मणको न मारै इस वचनमें लिंग और वचन नही पढे और ब्राह्मणको जाति स्त्री पुरुष दोनोंमें है–उन दोनोंके अपराधके निमित्त प्रायश्चित्त ब्रह्महा द्वादशाब्दानि–अर्थात् ब्रह्महा बारह वर्षके व्रतसे शुद्ध होता है–यह वचन दोनोंमें प्राप्त है तो किस लिए तथात्रेयी निषूदकः–यह अतिदेशका वचन किया–इसका समाधान कहते हैं कि आत्रेयी ब्राह्मणी रहो तोभी अनात्रेयीके वधमें जो महापातकका प्रायश्चित्त है उसकाही अतिदेश (विधान) है. पातित्य (पतितपना) का नही–इससे पतितका त्याग आदि जो कार्य है वह यहां नही होता ॥

भावार्थ–यज्ञमें स्थित क्षत्रिय वैश्यका घाती ब्रह्महत्याके व्रतको करै गर्भ और अत्रेयीका घाती वर्णके अनुसार प्रायश्चित्तको करै ॥ २५१ ॥

चरेद्व्रतमहत्वापि घातार्थं चेत्समागतः ।
द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् २५२

पद–चरेत् क्रि–व्रतम् २ अहत्वा ऽ–अपि ऽ–घातार्थं २ चेत् ऽ– समागतः १ द्विगुणं २ सवनस्थे ७ तु ऽ– ब्राह्मणे ७ व्रतं २ आदिशेत् क्रि– ॥

योजना–चेत् यदि घातार्थं समागतः तर्हि अहत्वा अपि व्रतं चरेत्–सवनस्थे ब्राह्मणसति द्विगुणं व्रतं आदिशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–इसमेंभी यथावर्णका संबंध है ब्राह्मण आदिके मारनेमें निश्चय करके मारनेके लिए आया मनुष्य और शस्त्र आदिके प्रहार करनेपरभी किसीप्रकार प्रतिघात आदिके प्रतिबंधवश वह ब्राह्मण न मरा होय तोभी वर्णके अनुसार ब्रह्महत्या आदि व्रतको करै–सोई गौतमनें कहा है कि ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त विना मारेभी प्रायश्चित्त करै–कदाचित् कोई शंका करै कि मारने और उसके अभावमें एक प्रायश्चित्त युक्त नही–यह बात सत्य है इसीसे औपदेशिकों (प्रधान)से न्यून होनेसे अतिदेशिक (जो तुल्य मानेहो)कोंमें पादोनहीं ब्रह्महत्या आदि द्वादश वार्षिक व्रत होते हैं इसका विस्तार पहिले कह आए और जो सवनसे होनेवाले–सोमयाग करते हुए ब्राह्मणको नष्ट करै उसको द्वादशवार्षिक आदि व्रत दूना उपदेश करै–और उन गुरु लघु व्रतोंकी–जाति–शक्ति–गुण–आदिकी अपेक्षासे सवनमें स्थित आदि विशेषके एकरूप होनेपरभी पूर्वके समान ही व्यवस्था जाननी–ब्रह्महत्याके समान जो गुरुकी निंदा आदि हैं उनको आतिदेशिकोंसेभी न्यून होनेसे आधा न्यून द्वादशवार्षिक आदि प्रायश्चित्त है यह कह आए हैं ॥

भावार्थ–मारनेके लिए आया हुआ मनुष्य विनामारेभी पूर्वोक्त व्रतको करै और सवनमें स्थित ब्राह्मणके मारनेमें दूने व्रतका उपदेश करै॥२५२॥इति ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसंनिभम् ।
सुरापोन्यतमंपीत्वामरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥

पद–सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसां ६ अग्नि-

१ सत्यश्चेद्ब्राह्मणवधेऽहत्वापि ।

संनिभं २ सुरापः १ अन्यतमं २ पीत्वा-मरणात् ९ शुद्धिम् २ ऋच्छति कि ॥

योजना-सुरापः सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसां अन्यतमं अग्निसंनिभं पीत्वा मरणात् शुद्धिं ऋच्छति (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ-अब क्रमसे प्राप्त सुरापानके प्रायश्चित्तका प्रारंभ करते हैं-सुरा-जल-घी गोमूत्र-दूध-इनमें अन्यतम (कोईसा) अग्निके तुल्य दाह करनेवालेको पीकर सुरा पीनेवाला मरकर शुद्धिको प्राप्त होता है-यहां गोमूत्रके साहचर्यसे गौकेही घी दूध लेने और घी दूधके साहचर्यसे स्त्रीलिंग गौकाही गोमूत्र लेना बैलका नहीं-और यह गोमूत्रका पानभी गीले वस्त्रको पहनकर करना-क्योंकि पैठीनसिकी स्मृति है कि गीलेवस्त्र पहनकर सुरापीने वाला-अग्निवर्ण सुराको पीवे-तैसेही लोहेके पात्रमें पीवे क्योंकि प्रचेताकी स्मृति है कि सुरा पीनेवाला लोहे वा तांबेके पात्रसे अग्निवर्ण सुराको पीवे यह प्रायश्चित्तभी एकवार मदिराके पानमें है क्योंकि अंगिराकी स्मृति है कि एकवार सुराको पीकर अग्निवर्ण सुराको पीवे जो यह वसिष्ठका वचन है कि सुराके अभ्यासमें द्विज अग्निवर्ण सुराको पीवे वह सुरासे भिन्न मद्यपानके विषयमें समझना-यहभी जानकर सुरापानके विषयमें समझना-क्योंकि बृहस्पतिका वचन है कि जानकर किए सुरापानमें जलती हुई सुराको मुखमें गेरकर उससे मुख जलकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है जो द्विज मोहसे सुराको पीकर अग्निवर्ण सुराको पीवे यह मनु (अ० ११ श्लो० ९०)में मोहका ग्रहण किया है-वह शास्त्रके तात्पर्यको न जानकर है-यहां यह चिंता (विचार) करने योग्य है कि क्या सुराशब्द मद्यमात्रमें रूढ है वा-गौडी-माध्वी-पैष्टी-इन तीनोंमें अथवा केवल पैष्टीमें-उसमें-कोई मद्यमात्रमें रूढ वर्णन करते हैं क्योंकि सुराके अभ्यासमें इस पूर्वोक्त वसिष्ठके वचनमें पैष्टी आदि तीनोंसे भिन्नमेंभी सुराशब्दका प्रयोग देखते हैं-कदाचित् कहो यह गौण प्रयोग है सो ठीक नहीं क्योंकि मदके पैदा करनेवाली शक्तिरूप उपाधि होनेसे सबको मुख्यता होसक्ती है इससे गौणकी कल्पना अन्याय्य है यह अयुक्त है अर्थात् किसीका कहना ठीक नहीं क्योंकि पुलस्त्यनें सुराको इन वचनोंमें मद्य विशेष कहा है कि पानस द्राक्ष माधूक खार्जूर ताल ऐक्षव मधूत्थ सैर आरिष्ट मैरेय नालिकेरज इन ग्यारह मदिराओंको समान जाने और बारहभी जो सुरा मद्य है वह सबसे अधम कही है इससे मद्य मात्रमें सुराशब्दका प्रयोग गौण है और अन्य तो पैष्टी आदि तीनोंमें सुराशब्दको रूढ मानते हैं-सोई दिखाते हैं कि यद्यपि अनेकोंमें सुराशब्दका प्रयोग देखते हैं तथापि किसमें अनादि प्रयोग है यह संदेह होनेपर गौडी माध्वी पैष्टी तीन प्रकारकी सुरा जाननी इस वचनसे गुड पिष्ट मधुके विकारोंमेंही

१ सुराप आर्द्रवासाश्च अग्निवर्णं सुरामिपबेत् ।

२ तथा लौहेन पात्रेण सुरापोग्निवर्णां सुरामायसेन पात्रेण ताम्रेण वा पिबेत् ।

३ सुरापानं सकृत्कृत्वाग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।

४ अभ्यासे तु सुरायाश्चाग्निवर्णां सुरां पिबेद्द्विजः ।

५ सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीं तां विनिक्षिपेत् । मुखे तया विनिर्दग्धे मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ।

१ सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।

२ पानसंद्राक्षमाधूकखार्जूरं तालमैक्षवं । मधूत्थं सैरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजं ॥ समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु ॥ द्वादशं तु सुरामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् ।

३ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।

अनादि प्रयोगका निश्चय मनुनें कहा है इससे उन्हींमें मुख्यता युक्त है कदाचित् कहोकि अनेकोंमें शक्तिकी कल्पना करनीही दोष है सो ठीक नहीं क्योंकि उसका परिहार मद शक्तिको उपाधि मानकर होसक्ता है कदाचित् कहो कि उपाधि ताल आदिके रसमेंभी विद्यमान है इससे दोष होगा पंकज आदिके समान योगरूढ मानकर कुछ दोष नहीं जैसे पंकसे पैदा बहुत होते है परंतु पंकज शब्द कमलमें रूढ है इससे जैसी एक तैसी सब है इससे द्विजोत्तमोंके पीने योग्य नहीं यह वचन तीनों सुराओंके समान दोषके कहनेका बोधक नहीं कुछ गौडी माध्वी सुराओंको पैष्टी सुराके समानता बोध करनेके लिए नहीं द्विजोत्तमका ग्रहण द्विजातिके ग्रहणका उपलक्षण है यह अन्योंका कथनभी अयुक्त है क्योंकि बारमी सुरारूप मद्य सबसे अधम है इस पूर्वोक्त पुलस्त्यके वचनमें गौडी और माध्वीसे भिन्नभी सुरारूप मद्य दिखाई है-तैसेही सुरा-अन्नोंका मल है और पापको मल कहते हैं इस मनुके वचन (अ० ११ श्लो० ९३) में अन्नके विकारमेंभी सुरा दिखाई है और अन्नशब्दका प्रयोगभी व्रीहि आदि विकारमेंही देखते है-और गुड-और मधुरस रूप है-तैसेही सौत्रामणीग्रहमें अन्नके विकारमेंही सुरा शब्दके ग्रहणको सुनते है-तिससे पैष्टीही सुरा मुख्य कही है-गौडी और माध्वीमें तो सुराशब्द गौण है-जो किसीनें कहा है कि गौडी माध्वी-इस पूर्वोक्त मनुवचनसे तीनोंमें ही स्वाभाविक मनुवचनका निश्चय है सोभी युक्त नहीं-जिससे यह मनुका वचन व्याकरणके समान शब्द और अर्थके संबंधका बोधक नहीं किंतु कार्यका बोधक है-इससे गुरु प्रायश्चित्तका निमित्त होनेसे गौडी और माध्वीमें सुरा शब्द गौण है-इससे अनेक शक्तिकी कल्पनारूप दोष नहीं और उपाधिरूपका आश्रयणभी नहीं-और न यहां द्विजोत्तम ग्रहण द्विजातिका उपलक्षण हैं-इससे सुरा अन्नोंका मल है-पापको मल कहते हैं-इस पूर्वोक्त मनुके कहनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सुराको न पीवें-इस वचनसे पैष्टीकाही तीनों वर्णोंको निषेध है-गौडी-माध्वी मदिराका निषेध तो ब्राह्मणको है क्षत्रिय वैश्यको नहीं-क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ९५) के इस वचनमें ब्राह्मणेन यह विशेष पद पढा है कि यक्ष राक्षस-पिशाचोंका अन्न जो-मद्य मांस-सुरासव-है उनको देवताके हविका भोजी ब्राह्मण न खाय-बृहद्विष्णुनेंभी ब्राह्मणकोही मद्यका निषेध दिखाया है कि माधूक-ऐक्षव-सैर-ताल-खार्जुर-पानस-मधूत्थ-माध्वीक- मैरेय-नालिकेरज-ये दशों मद्य ब्राह्मणके लिये अपवित्र हैं-बृहद्याज्ञवल्क्यनेंभी क्षत्रिय और वैश्यको दोषका अभाव दिखाया है कि-क्षत्रिय-वैश्य-कथंचित् जानकरभी मदिराको पीकर दोषको प्राप्त नहीं होते व्यासनेंभी क्षत्रिय-वैश्यको-माध्वीका पानकी आज्ञादी है-कि केशव और अर्जुन दोनोंमें मध्वासवसे उन्मत्त चंदनसे चर्चित-एक शय्यापर बैठे देखे-इस प्र-

---

१ सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।

१ यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांस सुरासवं। तद्ब्राह्मणेन नात्तव्य देवानामश्नता हविः॥

२ माधूकमैक्षवं सैरन्तालं खार्जूरपानसं। मधूत्थं चैव माध्वीकं मैरेयं नालिकेरजं॥ अमेध्यानि दशैतानि मद्यानि ब्राह्मणस्य तु।

३ कामादपि हि राजन्यो वैश्यो वापि कथंचन। मद्यमेव सुरां पित्वा न दोष प्रतिपद्यते।

४ उभौ मध्वासवक्षीबौ उभौ चन्दनचर्चितौ। एकपर्यंकशयिनौ दृष्टौ मे केशवार्जुनौ॥

कार ब्राह्मणकोही मद्यमात्रका निषेध होनेपरभी-मनु (अ० ११ श्लो० ९४)में गौडी-माध्वी-पैष्टी जैसी एक तैसी सब इससे जो द्विजातियोंको न पीनी-गौडी और माध्वीका पृथक् २ निषेध कहा है वह दोषको गुरु होनेसे सुराकी समानताका प्रतिपादक है और यह सुराका निषेध अनुपनीत बालक और विना विवाही कन्याकोभी है क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ९३)में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये मदिराको न पीवें इस वचनसे जातिमात्रकोही निषेध कहा है इससे द्विज मोहसे सुराको पीकर अग्निवर्ण सुराको पीवे इस प्रायश्चित्तके वाक्यमें जो मनुनें द्विज ग्रहण किया है वह तीनों वर्णोंके उपलक्षणार्थ है क्योंकि कार्यका विधाननिमित्त जो निषेध उसकी अपेक्षा करता है और निषेधमें वर्णमात्र (सब वर्ण)का ग्रहण है जैसे जिसके निमित्त हवि दिया है वह चंद्रमा सन्मुख उदय होता है-इस निमित्त वाक्यमें संपूर्ण हवि अभ्युदयका निमित्त जानी गयी उसके सापेक्ष जो तीनवार तंदुलोंका विभाग करै यह नैमित्तिक वाक्य है उसमें श्रूयमाण जो तंदुलका ग्रहण वह तंदुल आदिस्वरूप हविमात्र (सब)का उपलक्षण है इतनातो विशेष है कि बालकोंको पाद प्रायश्चित्त बताना यह सब पापोंमें विधि है इसे वचनसे जानकर करनेमेंभी मरणान्त प्रायश्चित्त नहीं किन्तु पाद (चौथाई) कोही दूना करके छः वर्षका प्रायश्चित्त बालकोंसे कराना क्योंकि अंगिराका वचन है कि जो अज्ञानियोंको प्रायश्चित्त कहा है वह ज्ञानसे करनेमें दूना हो जाता है इसी प्रकार वृद्ध आतुर आदिमेंभी समझना तैसेही देवताओंकी हवि खाता हुआ ब्राह्मण उस मदिराको न पीवे-इसे मनु (अ० ११ श्लो० ९५) के वचनसे सब जातियोंको मद्यका निषेध होनेसे जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वहभी न पीवे कदाचित् कोई शंका करै कि अनुपनीतको किस प्रकार दोष है क्योंकि गौतमका वचन है कि यज्ञोपवीतसे पहिले बालकोंको आचरण-बोलना और भक्षण ये इच्छाके अनुसार होते हैं अर्थात् इनके अन्यथा करनेमें कुछ दोष नही होता-तैसेही यह कुमारोंका वचन है कि मदिरा मूत्र पुरीष इनके भक्षणमें पांचवर्षसे पहिले दोष नही उसके अनंतर माता पिता वा गुरु ये प्रायश्चित्त करें-इन दोनों वचनोंसे बालकोंको दोषका अभाव प्रतीत होता है-इस शंकाका समाधान कहते हैं कि सुरा और मद्यके निषेधके वचनमें जातिमात्रके पढनेसे निषेधकी प्रवृत्ति नही हट सकती-इसीसे अन्य स्मृतिमें निषेधका वचन है कि सुरापीनेका निषेध जातिके आश्रयसे है यह मर्यादा है इससे बालकोंको पाद प्रायश्चित्त सब पापोंमें देना यह विधि है इस पूर्वोक्त वचनसे सुराके पीनेमें पादही प्रायश्चित्त है तैसेही जातूकर्ण्यने मद्यपीनका प्रायश्चित्त कहा है-कि जो अनु-

पनीत बालक मोहसे मद्यको पीवे उसके निमित्त तीन कृच्छ्र माता भ्राता पिता करें-इससे पूर्वोक्त गौतमका वचन सुरा आदिसे भिन्न शुक्त पर्युषित आदिके विषयमें है और कुमारका वचन तो स्वल्प दोषका बोधक है इसीसे मनुने (अ० २ श्लो० २७) उपनयनसे पूर्व किये दोषका प्रायश्चित्त उपनयनही कहा है कि गर्भके समयके और जातकर्म मुंडन उपनयनके होमोंसे बीज और गर्भका जो पाप है वह द्विजोंका दूर होजाता है यहां यह अर्थ है कि तीनों वर्णोंको जन्मसे लेकर पैष्टीका निषेध है और ब्राह्मणको तो जन्मसे लेकर मद्यमात्रका निषेध है-और क्षत्रिय और वैश्यको तो कदाचित्भी गौडीका प्रतिषेध नहीं है और शूद्रको तो न-सुराका निषेध है न मद्यमात्रका निषेध है ॥

भावार्थ-सुरापीनेवाला सुरा जल घी गोमूत्र दूध इनमेंसे किसीको अग्निके समान तपाकर पीकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २५३ ॥

वालवासाजटीवापिब्रह्महत्याव्रतंचरेत् ॥
पिण्याकंवाकणान्वापिभक्षयेत्रिसमानिशि॥

पद-वालवासाः १ जटी १ वा०-अपि०-ब्रह्महत्याव्रतं २ चरेत् क्रि-पिण्याकं २ वा०-कणान् २वा०-अपि०- भक्षयेत् क्रि-त्रिसमाः २ निशि ७ ॥

योजना-सुरापः वालवासाः जटी सन् ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् वा पिण्याकं वा कणान् त्रिसमाः निशि भक्षयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-गौ वा बकरीके वालोंसे बुने हुये वस्त्रको धारकर वा जटाओंको धारण किये सुरापीनेवाला ब्रह्महत्याके व्रतको करे यहां वालोंका वस्त्र चीर और वल्कलकाभी उपलक्षण है-क्योंकि प्रचेताकी स्मृति है कि सुरापीनेवाला और गुरुतल्पका गामी चीर और वल्कलोंको धारकर ब्रह्महत्याका व्रत करें-और जटाओंका धारण मुंडत्वके निराकरणार्थ है-ब्रह्महत्याके व्रतको कर इतनाही कहनेसे सिद्धथा वालोंके वस्त्र आदिका जो ग्रहण है वह अन्यत्र (हत्यामें) संभव होनेपर स्वयं धारण किये शिरः कपाल आदिकी निवृत्तिके लिये हैं-यहभी उसके विषयमें है जो अज्ञानसे जलकी बुद्धिसे सुराको पीवे-क्योंकि पूर्वोक्त (अ० ११ श्लो० ८९) मनुके (यह शुद्धि अज्ञानसे द्विजके मारनेकी कही) वचनमें अज्ञानकी उपाधिसे विधान किये बारह वर्षके प्रायश्चित्तका ही अतिदेश (बोधक) है-और यहां सुरापानको महापातक होनेसे अतिदेश (माना हुआ) से प्राप्तभी पादोन है तौभी बारह वर्षकाही प्रायश्चित्त करे-पादोन न करे इसीसे वृद्ध हारीतनें कहा है-कि महापातकी बारह वर्षमें पवित्र होते हैं-अथवा पिण्याक (पिंडित वा खल) वा कण (कणकी)को तीन वर्षपर्यंत रात्रिमें भक्षण करें-यह भक्षणभी एकवारही करे क्योंकि मनुं (अ०११ श्लो०९२) की स्मृति है कि कण वा पिण्याकको वर्षदिन पर्यंत रात्रिमें एकवार भक्षण करे और यह पिण्याक आदिका भक्षण भोजनके कार्यमें कहा है इससे अन्य भोजनको त्यागदे-यहभी जलकी बुद्धिसे सुरापीनेमें छर्दके उत्तर (पीछे)

१ गार्भैर्होमैर्जातकर्मचूडामौञ्जीनिबन्धनैः । बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥

१ सुरापगुरुतल्पगौ चीरवल्कलवाससौ ब्रह्महत्याव्रतं चरेयाताम् ।

२ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।

३ द्वादशभिर्वर्षैर्महापातकिनः पूयते ।

४ कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।

समझना–क्योंकि व्यासका वचन है कि छर्दके करनेपर मद्य पीनेवाला इसी व्रतको करै और उसकी कायाका शोधन प्रतिदिन पंचगव्यका पीना कहा है और उस जलके पीनेमें नही जो सुराके पात्रकी सुगंधवाला हो क्योंकि संसर्गमेंभी सुरापना दूर नही होता जैसे आज्य (घी)पना पृषदाज्यमें रहता है–इसीसे न्यायके ज्ञाताओंने यह कहा है कि आज्य पीनेवाले ऐसे निगम करने और पृषदाज्यपा ऐसे न करने अर्थात् घीको पीवे ऐसे कहना पृषत् (सदधि) घीको पीवें ऐसे न कहना–और जो तो यह आपस्तंबका वचन है कि चोरी–सुरापान गुरुस्त्रीगमन–ब्रह्महत्या–इनको करके चौथे समयमें नियमसे भोजन करता हुआ सवनानुकल्प यज्ञमें जाय और पूर्वोक्त स्थान और आसनसे विचरता हुआ तीन वर्षोंमें पापको नष्ट करता है–जो तो अंगिराका वचन है कि महापातकोंसे संयुक्त, तीन वर्षोंमें पवित्र होते हैं–ये दोनों वचन उसी विषयमें हैं जो पिण्याक वा कणोंको भक्षण करे इस वचनका विषय है–और जो यमने दो प्रायश्चित्त कहे हैं कि सुरापीनेवाला ब्राह्मण बृहस्पतिसव नामके यज्ञको करके फिर ब्राह्मणोंके समान होता है यह वेदकी श्रुति है–जो द्विजोंमें उत्तम सुरापीकर भूमिका दान करै और फिर सुरापान न करै वह संस्कार करके शुद्ध होता है–वेभी दोनों पूर्व वचनके ही विषयमें हैं–अथवा अन्य दक्षिणाके कल्प (प्रकार) के माननेसे बारह वर्षके प्रायश्चित्तके संग इन दोनों प्रायश्चित्तोंका विकल्प है–यहांभी बालवृद्ध आदिकोंको डेढ वर्ष प्रायश्चित्तकी और अनुपनीतोंको तो नौ मासके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी–जो तो मनु (अ० ११ श्लो० ९२) का पूर्वोक्त वचन है कि बालोंके वस्त्र और जटा ध्वजा ओंको धारकर सुरापानके दोष निवारणार्थ कणोंको वा पिण्याकको एकवार रात्रिमें वर्ष दिनतक भक्षण करै–वहभी उस सुराके पीनेमें जानना जिसका अज्ञानसे तालुमें संयोग हो गया हो–कदाचित् कोई शंका करै कि द्रव (बहता) द्रव्यके भोजनको पान कहते हैं और कंठसे नीचे गमनको भोजन कहते हैं तालु आदिके संयोग मात्रको नही–इससे वहां कैसे पानका प्रायश्चित्त होगा–इसका समाधान कहते हैं कि जिस तालु आदिके संयोगके विना पानक्रियाकी निवृत्ति न हो उसकाभी पान क्रियाके निषेधसे निषेध है–इससे यद्यपि मुख्य पान नही होनेसे महापातक नही है–तथापि उसके निषेधसे उसका अंग जो आवश्यक तालु आदिमें मदिराका संयोग उसकाभी निषेध होनेसे दोष विद्यमान है इससे प्रायश्चित्त हो सक्ता है जैसे यहां कि मारनेके लिये जो आया हो

---

१ एतदेव व्रतं कुर्यान्मद्यपश्छर्दने कृते । पंचगव्यं तु तस्योक्तं प्रत्यहं कायशोधनम् ॥

२ आज्यपा इति निगमाः कार्याः न पृषदाज्यपाः ।

३ स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरुदारान् गत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा चतुर्थे काल मितभोजनो योऽभ्युपयोसवनानुकल्पः स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिभिर्वर्षैः पाप न्यपनुदति ।

४ महापातकसंयुक्ताः वर्षैः शुध्यन्ति ते त्रिभिः ।

५ बृहस्पतिसवेनेष्ट्वा सुरापो ब्राह्मणः पुनः । समत्वं ब्राह्मणैर्गच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः । भूमिप्रदानं यः कुर्यात्सुरां पीत्वा द्विजोत्तमः । पुनर्नच पिबेत्तां तु संस्कृतः स विशुध्यति ।

१ कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि । सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ।

२ घोरेऽग्निमहत्वापि घातार्थं चेत्समागतः ।

वह विनामारेभी ब्रह्महत्याका व्रत करै हत्याके निषेधसे उसके अंगरूप मारनेके निश्चयके भी निषेधसे प्रायश्चित्त कहा है, जो बौधायन यम, बृहस्पतिके ये वचन हैं कि तीन मासतक विना जाने सुरापान करनेमें कृच्छ्राब्दका चौथाई प्रायश्चित्त करके फिर उपनयन करै–सुरापीकर, ब्राह्मणको मारकर, ब्राह्मण के सुवर्णको चुराकर, और पतितोंके संग संयोग करके द्विज चांद्रायण करै–और द्विज, गौडी माध्वी पैष्टी–सुराको पीकर क्रमसे तप्त कृच्छ्र पराक–और चांद्रायण करै–ये तीनों वचन उस सुरापीनेके विषयमें जानने जो ऐसी व्याधिमें पी हो जो रोग किसी औषधसे न गई हो क्योंकि यह प्रायश्चित्त अल्प है और जो सुरारसके मिले सूके अन्नको भक्षण करै तौ फिर उपनयन करै सोई मनुनें कहा है (अ० ११ श्लो० १५०) कि अज्ञानसे विष्ठा मूत्र और सुरा मिले अन्नको खाकर तीनों द्विजाति वर्ण फिर संस्कारके योग्य होते हैं और जो सुराके सूके पात्रमें रक्खे हुये जलको पीवै तो शातातपके कहे छर्द घृत भक्षण और अहोरात्र उपवासको करै, जो बौधायनका वचन है कि जो मनुष्य सुरापीनेवालेके पात्रमें वासी जलको पीवै वह शंखपुष्पीमें पकाये दूध और घीको तीन दिनतक पीवै, वह प्रायश्चित्त वासीजलके पीनेसे अधिक है अज्ञानसे पीनेमें तो मनु (-अ० ११ श्लो० १४७)नें यह प्रायश्चित्त कहा है कि सुरा और मद्यके भांडमें स्थित जलोंको पीकर पांचरात्रतक शंखपुष्पीमें पकाये दूधको पीवे जो विष्णुनें कहा है कि सुराके पात्रमें स्थित जलको पीकर सातरात्रतक शंखपुष्पीसे पकाये दूधको पीवै यह जानकर पीनेमें समझना जानकर पीनेमेंतो बृहत् यमनें कहा है कि सुराके भांडमें स्थित जलको जो द्विज पी ले तो वह बारह दिनतक दूधके संग ब्राह्मी और सुवर्चलाको पीवे–सुरापीनेवालेके मुखकी गंधके सुंघनेमें तो मनु (अ० ११ श्लो० १४९)ने कहा है कि सुरापीनेवाले ब्राह्मणके मुखकी गंधको सूंघकर सोमको पीनेवाला, जलोंमें तीन प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है यह प्रायश्चित्त सोमयज्ञ करनेवालेकोही अज्ञानसे पीनेमें है और जानकर पीनेमें तो दूना और जिसने सोम न पी हो उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी जो साक्षात्सुराके गंधको सूंघता है उसको तो सूंघनेके अयोग्यका और मदिराका सूंघना जातिभ्रंशकर है इससे यह मनु (अ० ११ श्लो० १२४)का कहा प्रायश्चित्त समझना कि जाति भ्रंशकर

१ त्रैमासिकममत्या सुरापाने कृच्छ्राब्दपाद चरित्वा पुनरुपनयतं-सुरां पीत्वा द्विजं हत्वा रुक्म हत्वा द्विजन्मनः॥संयोग पतितैर्गत्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् । गौडीं माध्वीं सुरां पैष्टीं पीत्वा विप्रः समाचरेत् तप्तकृच्छ्रं पराकं च चान्द्रायणमनुक्रमात् ।

२ अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रसुरासंसृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हंति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥

३ सुराभाण्डोदकपाने छर्दनं घृतप्राशनमहोरात्रोपोषणं च ।

४ सुरापानस्य यो भाण्डेष्वपः पर्युषिताः पिबेत् । शंखपुष्पी विपक्वं तु क्षीरं सर्पिः पिबेत्त्र्यहं ॥

१ अपः सुराभाजनस्था मद्यभांडस्थितास्तथा । पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीशृतं पयः ।

२ अपः सुराभाजनस्थाःपीत्वा सप्तरात्रं शंखपुष्पीश्रृतं पयः पिबेत् ।

३ सुराभांडस्थित तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । स द्वादशाहं क्षीरेण पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ।

४ ब्राह्मणस्य सुरापस्य गंधमाघ्राय सोमपः। प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥

५ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया । चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥

कोईसे कर्मको जानकर करके सांतपन कृच्छ्र करे और अज्ञानसे करे तो प्राजापत्य करे ॥

भावार्थ-वालोंका वस्त्र जटा इनको धारकर ब्रह्महत्याके व्रतको करे वा पिण्याक और कणोंको तीनवर्षतक रात्रिमें भक्षण करे ॥ २५४ ॥

अज्ञानात्तुसुरांपीत्वारेतोविण्मूत्रमेवच ।
पुनःसंस्कारमर्हंतित्रयोवर्णाद्विजातयः ॥

पद-अज्ञानात् ५ तु ऽ- सुरां २ पीत्वाऽ- विण्मूत्रं २ एवऽ-चऽ- पुनःऽ-संस्कारं २ अर्हंति क्रि- त्रयः १ वर्णाः १ द्विजातयः १ ॥

योजना-द्विजातयः त्रयः वर्णाः अज्ञानात् सुरां चपुनः रेतः विण्मूत्रं पीत्वा पुनः संस्कारं अर्हंति ॥

तात्पर्यार्थ-अब मद्यपानका प्रायश्चित्त कहते हैं जो ब्राह्मण अज्ञानसे जलकी बुद्धिसे मद्यरूप सुराको पीवे और जो ब्राह्मण आदि वीर्य विष्ठा मूत्र इनका भक्षण करें वे तीनोंभी द्विजाति वर्ण तप्तकृच्छ्रको करके फिर उपनयनरूप प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं यहां मद्यपानमें जो पुनः संस्कार है वह ब्राह्मणको ही है क्षत्रिय और वैश्यको तो मद्यकी आज्ञा दिखा आये हैं यहां सुरा शब्दभी मद्यका बोधक है क्योंकि प्रायश्चित्त अत्यंत लघु है और अज्ञानसे मुख्य सुराके पीनेमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है इसीसे गौतमने यहां मद्यशब्दका प्रयोग किया है कि अज्ञानसे मद्यके पीनेमें प्रतिदिन दूध, घी, जल, वायु, इनको तपाकर पीवे वही तप्तकृच्छ्र कहाता है फिर इसका संस्कार करे और मूत्र विष्ठा मांस इनके भक्षणमेंभी यही प्रायश्चित्त है और जोइसी विषयमें मनु (अ० ११ श्लो० १५०) में कहा है कि अज्ञानसे वारुणीको पीकर संस्कारसे शुद्ध होताहै वहभी तप्तकृच्छ्रके अनंतर करना क्योंकि उसमें गौतमका वचन अनुकूल है और पुनः संस्कारसे उपनयन लेना और वहभी आश्वलायन आदिके कहे क्रमसे करना सोई कहा है कि जिसका उपनयन हो चुका हो उसके किये और न किये मुंडन और मेधाजनन नहीं कहे परिदान और काल (मुहूर्त) भी नहीं और उसको तत्सवितुर्वृणीमहे इस गायत्रीका उपदेश कहा है जानकर मद्यके पीनेमें तो वसिष्ठका कहा हुआ प्रायश्चित्त जानना कि जानकर मद्यके पीनेमें और सुरासे भिन्न वा सुराके अज्ञानसे पीनेमें कृच्छ्र अतिकृच्छ्र घृतभक्षण और पुनःसंस्कार प्रायश्चित्त है अथवा शंखका कहा चान्द्रायण है कि सुरासे भिन्न मद्यका पीनेवाला चान्द्रायण करे मद्यके मुखमें प्रवेशमात्रमेंभी आपस्तंबका कहा षड्गत्र प्रायश्चित्त है कि भक्षण पान चाटना इनके अयोग्य वीर्य मूत्र विष्ठाओंके भक्षणमें प्रायश्चित्त कैसे हो पद्म, गूलर, बेल, ढाक, कुशा, इनके जलको पीकर छ रात्रमें शुद्ध होताहै यहभी ताल आदिकी

मद्यके विषय समझना गौडी और माध्वीके अज्ञानसे पीनेमें तो वसिष्ठका कहाहुआ पूर्वोक्त कृच्छ्र अतिकृच्छ्र पुनःसंस्कार और घृतभक्षण प्रायश्चित्त जानना और उनके जानकर पीनेमें तो खल और कर्णोंको भक्षण करके पूर्वोक्त तीन वर्षका प्रायश्चित्त जानना और जानकर उनके पानके अभ्यासमें तो अग्निवर्ण सुराको पीकर मरणसे पवित्र होता है यह वसिष्ठका कहा[1] मरणांतिक प्रायश्चित्त जानना—यहां सुरा शब्द पैष्टीके अभिप्रायसे नहीं क्योंकि उसके एकवार पीनेमें मरणांतिक प्रायश्चित्त दिखाय आये मदिराकी सुगंधिवाले सूके पात्रके जलको अज्ञानसे पीनेमें बृहत् यमनें कहा है कि यदि कोई द्विज मदिराके भाण्डमें स्थित जलको पीवै तो कुशाकी जडसे पके हुए दूधसे तीनदिन व्यतीत करे[2] और अज्ञानसे अभ्यासमें तो वसिष्ठनें[3] कहा है कि मदिराके पात्रमें स्थित जलको यदि कोई द्विज पीवै तो पद्म—गूलर—बेल—ढाक—कुशा इनके जलको पीकर तीन रात्रमें शुद्ध होता है जानकर पीनेमें तो विष्णुनें[4] कहा है कि मदिराके भाण्डमें स्थित जलको पीकर पांच रात्र तक शंखपुष्पीसे पकाये दूधको पीवै ज्ञानसे अभ्यासमें तो शंखने[5] कहा है कि मदिराके पात्रमें स्थित जलको पीकर सात रात्रतक गोमूत्र और जौंको पीकर रहै—अत्यंत अभ्यासमें तो हारीतनें[1] कहा है कि मदिराके पात्रमें स्थित जलको यदि कोई द्विज पीवै तो बारह दिनतक दूधके संग ब्राह्मी और सुवर्चलाको पीवै—इन पूर्वोक्त वचनोंमें द्विजका ग्रहण ब्राह्मणके अभिप्रायसे है क्योंकि क्षत्री और वैश्यको निषेध नहीं यह पहिले दिखाय आये यह गौडी और माध्वीके पात्रके जल पीनेमें समझना क्योंकि प्रायश्चित्त गुरु है ताल आदि मदिराके पात्रके जल पीनेमें तो प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ—अज्ञानसे सुराको पीकर और वीर्य विष्ठा मूत्र इनको भक्षण करके तीनो द्विजाति वर्ण फिर संस्कारके योग्य होते हैं ॥

पतिलोकंनसायातिब्राह्मणीयासुरांपिबेत् ॥
इहैवसाशुनीगृध्रीसूकरीचोपजायते २५६॥

पद—पतिलोकं २ नऽ—सा १ याति क्रि—ब्राह्मणी १ या १ सुरां २ पिबेत् क्रि—इहऽ—एवऽ— सा १ शुनी १ गृध्री १ सूकरी १ चऽ—उपजायत क्रि— ॥

योजना—या ब्राह्मणी सुरां पिबेत् सा पतिलोकं न याति इह एव सा शुनी गृध्री चपुनः सूकरी उपजायते ॥

तात्पर्यार्थ—जो ब्राह्मणी अर्थात् द्विजातियोंकी भार्या सुराको पीवै वह पुण्य करनेपरभी पतिलोकमें नहीं जाती किंतु इस लोकमेंही कुत्ती—गीधनी—सूकरी इन तिरछी योनीयोंको क्रमसे प्राप्त होती है यहां ब्राह्मणीका ग्रहण जिस द्विजातिकी जितनी भार्या हों उन सबका उपलक्षण है और वे भार्या ब्राह्मणको वर्णके क्रमसे तीन कह आये हैं

१ अभ्यासे तु सुराया अग्निवर्णां सुरां पिबेन्मरणात्पूतो भवति ।

२ मद्यभाण्डस्थित तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । कुशमूलविपक्केन त्र्यहं क्षीरेण वर्त्तयेत् ॥

३ मद्यभाण्डस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । पद्मोदुम्बरबिल्वानां पलाशस्य कुशस्य च ॥ एतेषामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ।

४ मद्यभाण्डस्थित तोयं पीत्वा पंचरात्र शंखपुष्पीशृतं पयः पिबेत् ।

५ मद्यभाण्डस्थितं तोयं पीत्वा सप्तरात्रं गोमूत्रयावकं पिबेत् ।

१ मद्यभाण्डस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । द्वादशाहं तु पयसा पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥

इसीसे मनुने कहाहै जिसकी भार्या सुराको पीवे जिसका आधा शरीर पतित हो जाता है पतित है आधा शरीर जिसका ऐसे उसकी निष्कृति (गति) नहीं कही क्योंकि धर्म-अर्थ-कामोमें स्त्री पुरुषकी संग अधिकार होनेसे दोनोंका एक शरीर होता है इससे जिस द्विजातिकी भार्या सुराको पीवे उसका भार्यारूप आधा शरीर पतित होजाता है फिर उसकी गति नहीं होती तिससे ब्राह्मणी आदि द्विजातियोंकी भार्या सुराको न पीवे तिससे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य सुराको न पीवें इस पूर्वोक्त निषेधकी विधिमें पुल्लिंगको अविवक्षित होनेसे तीनों वर्णोंकी भार्याओंको निषेध सिद्ध था पुनः वचन इसलिये है कि शूद्राभी द्विजातियोंकी भार्या सुराको न पीवे इससे द्विजातियोंकी भार्या सुरा पीनेमें आधा प्रायश्चित्त करै शूद्रकी भार्या जो शूद्रा है उसको तो शूद्रके समान सुरा पीनेका निषेध नहीं है सुरापानके तुल्य जो निषिद्ध भक्षण आदिहैं उनमें सुरापानका आधा प्रायश्चित्त यह लेकर आये हैं॥

भावार्थ-जो ब्राह्मणी सुराको पीवै वह पतिलोकको नहीं जाती किंतु इसी लोकमें कुत्ती गीधनी और सूकरी उत्पन्न होतीहै ॥२५६॥

इति सुरापानप्रायश्चित्तप्रकरणम्

ब्राह्मणस्वर्णहारीतुराज्ञेमुशलमर्पयेत् ।
स्वकर्मख्यापयंस्तेनहतोमुक्तोपिवाशुचिः ॥

पद-ब्राह्मणस्वर्णहारी १ तु-राज्ञे ४ मुशलं २ अर्पयेत् क्रि-स्वकर्म २ ख्यापयन् १ तेन ३ हतः १ मुक्तः १ अपि- वा- शुचिः १॥

योजना-ब्राह्मणस्वर्णहारी स्वकर्म ख्यापयन् सन् राज्ञे मुशलं अर्पयेत् तेन हतः वा मुक्तः अपि शुचिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ-जो ब्राह्मणके सुवर्णको चुराता है वह सुवर्णकी चोरी मैंकी ऐसे अपने कर्मको प्रसिद्ध करता हुआ राजाको मुसलका अर्पण करै मुसलका अर्पण करना दृष्ट अर्थके लिये होनेसे उस मुसलसे राजा उसको हते उससे मरनेसे वा बचनेसे शुद्ध होताहै यहां हरण शब्दसे प्रत्यक्ष वा परोक्ष बलसे वा चोरीसे खलके हेतु क्रय आदिके विना ब्राह्मणके सुवर्णका ग्रहण लेना यद्यपि मुसलका अर्पण करै यह सामान्यसे कहा है तोभी उस मुसलको मारनेके लिये होनेसे मारनेमें समर्थ लोहे आदिका मुसल लेना इसीसे मनु (अ० ८ श्लो० ३१५) में कहा है कि कांधेपर मुसलको वा खैरके लकुट (लट्ठ)को वा दोनों तरफसे पैने खड्ग वा बनछी वा लोहेके दंडको लेकर राजाके समीप जाय- शंखनेभी यहां विशेष कहा है कि सुवर्णका चोर केशोंको खोलकर गलितवस्त्र पहिने लोहेका मुसल लेकर जाय और कहै कि मैं यह पाप किया है इस मुसलसे मुझे मारो- फिर वह राजाकी शिक्षा देनेसे पवित्र होता है यहां मारनाभी मुसलसे वारंवार शास्त्रमें नहीं कहा इससे एकवारही करना इसीसे मनु (अ० ११ श्लो० १००) में कहा है कि राजा मुसल लेकर उसे एकवार स्वयं मारै एकवारकी ताडनासे मरजाय तो शुद्ध होता है और मरनेसे बचजाय तो जीताहुआभी शुद्ध होता है सोई संवर्तने

१ पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् । पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।

२ ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ।

१ स्कंधेनादाय मुसलं लकुटं वापि खादिरम् । अ-सिंचोभयतस्तीक्ष्णमायसं दण्डमेव वा ।

२ सुवर्णहर्तेनः प्रकीर्णकेश आर्द्रवासा आयसं मुशलमादाय राजानमुपतिष्ठेदिदं मया पापं कृतमनेन मुशलेन मां घातयस्वेति स राज्ञा शिष्टः सन्पूतो भवति ।

३ ततो मुशलमादाय सकृद्धन्यात्तु तं स्वयं ।

कहा है कि फिर राजा मुसल लेकर उसे स्वयं हते यदि वह चोर जीजाय तो यह चोरीके दोषसे शुद्ध होता है सोई ब्रह्मवधमें कहा है कि प्रहारोंकी ताडनासे मृतककी तुल्य होनेपर जीता हुआभी शुद्ध होता है कदाचित् कोई शंका करे कि ताडनाके बिनाभी राजाका छोडाहुआ चोर शुद्ध होता है यह अर्थ क्यों नहीं मानते इसका समाधान कहते हैं कि न मारनेसे राजा पापी होता है इस गौतमके वचनमें ताडना न करते हुये राजाको दोष कहा है कदाचित् कहो कि राजाको दोष रहो शास्त्रके निषेधको न मानकर राजा स्नेह आदिसे छोडदे तो चोरकी शुद्धि कैसे न होगी- इसका समाधान कहते हैं कि ऐसा मानोगे तो विनाकारण शुद्धि हो जायगी, कदाचित् कहो कि छोडनेके पीछे बारह वर्षका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्धि मानी है इससे विनाकारण शुद्धि नहीं वहभी सुंदर नहीं क्योंकि (मुक्तः शुचिः) यह कहनेसे छोडनाही शुद्धिका हेतु कहा है इससे पहिलाही अर्थ ठीक है- यह मरणांतिक प्रायश्चित्त सब वर्णके चोरको है केवल ब्राह्मणके ही चोरको नहीं क्योंकि (ब्राह्मणस्वर्णहारी) इस नैमित्तिक वचनमें सुवर्णका चोर यह सामान्यसे पढा है और क्षत्री आदिभी महापातकी होसकते हैं उनका दूसरा प्रायश्चित्तशास्त्रमें नहीं कहा जो तो मनुके वचन (अ० ११ श्लो० ९९) में कहा है कि सुवर्णका चोर विप्र (ब्राह्मण) पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै उसमें विप्रका ग्रहण नरमात्रका उपलक्षण है क्योंकि (प्रायश्चित्तीयते नरः) यह नरमात्रका ही उपलक्षण है और मनुके (अ० ११ श्लो० ५४) ब्रह्महत्या-सुरापान-चोरी-और गुरुस्त्रीगमन ये चार महापातक हैं इस निमित्तवाक्यमें विशेषका ग्रहण नहीं किया उसकी है अपेक्षा जिसको ऐसे (सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः) इस नैमित्तिक वाक्यमें सुनेहुये विप्रपदकोभी उपलक्षण मानना युक्त है जैसे अभ्युदित इष्टि (यज्ञ) में जिसकी हवि तंडुल है इसे वाक्यमें तंडुलका ग्रहण संपूर्ण हविका उपलक्षण है और यह राजाका मारना ब्राह्मण भिन्नके विषयमें समझना क्योंकि सब पापोंमें टिकेभी ब्रह्मणको न मारे इस वचनसे मनुनें ब्राह्मणके वधका निषेध किया है (अ० ८ श्लो० ३८०) यदि किसीप्रकार निषेधको न मानकर राजा ब्राह्मणको हते तोभी पवित्र होता है क्योंकि चोर ब्राह्मण वधसे वा तपसे शुद्ध होता है इसे वचनमें मनु (अ० ११ श्लो० १००) नें ब्राह्मणकी भी वधसे शुद्धि कही है कदाचित् कहो (तपसेव वा) इस एव पदसे वधका निषेध है सो ठीक नहीं क्योंकि वह केवल तपसेभी शुद्धिका बोधक है यदि वधका निषेध है तो वा तपसे शुद्ध होता है यह विकल्पका कहना सिद्ध न होता कदाचित् कहोकि विकल्पका कहना दंडके लिये है सोभी ठीक नहीं क्योंकि वचनमें दंड नहीं दिखाया-और उनका ही विकल्प होता है जिनका एक अर्थ हो इसें न्यायसे व्रीहि और यवके समान एकार्थोंकाही विकल्प होता है-दण्ड और तप ये दोनों एकार्थ नहीं, क्योंकि दण्ड दमन

१ ततो मुसलमादाय सकृद्धन्यात्तु तं स्वयं। यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विशुद्ध्यते।

२ मृतकल्पः प्रहारार्त्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति।

३ अघ्नन्नेनस्वी राजा।

४ सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः प्रायश्चित्तीयते नरः।

१ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः

२ अभ्युदितेष्टयां यस्य। हविः।

३ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितं।

४ वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा।

५ एकार्थानां विकल्पेन।

करनेके लिये, और तप पापक्षयके लिये होताहै कदाचित् शंका करोकि चोरवधसे शुद्ध होता है इस सामान्य विषयक बधके संग ब्राह्मण तपसे ही शुद्ध होता है इस विशिष्ट विषयक तपका विकल्प हो जायगा सो ठीक नहीं क्योंकि ब्राह्मणोंको दधि दो और कोंडिन्यको तक्रदो ऐसे विषयमें विकल्प नहीं होता तिससे दोनोका सामान्य विषय माननाही युक्त है अथवा क्षत्रियकोभी निषेध नहीं क्योंकि मनुनें सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण यह कहकर राजा मूसलको लेकर उसको एकवार स्वयं मारे इस वैचनमें (अ० ११ श्लो० १००) तं इस सर्वनामसे इस प्रकरणमें पढे ब्राह्मणकाही हनन कहा है कि ब्राह्मणको कदाचित् न मारे यह पूर्वोक्त वचन प्रायश्चित्तसे भिन्न दण्डरूप हननके विषयमें चरितार्थ होजायगा, और यह मरणांतिक प्रायश्चित्त जानकर सुवर्णकी चोरीमें समझना क्योंकि मध्यम अंगिराका वैचन है कि बुद्धिमानोंनें जो मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा है वह जानकर किये पापमें समझना इसमें संशय नहीं और यहां सुवर्ण शब्द सुवर्णरूप तोलसे तुले सुवर्णका वाची है जातिमात्रका वाचक नहीं क्योंकि इन वैचनोंसे सोलह मासे सोनेमें सुवर्ण शब्दको कहा है कि झरोखेमें सूर्यकी किरणोंमें टिकेहुये रजको त्रसरेणु कहते हैं, आठ त्रसरेणुओंकी एक लिक्षा, और तीन लिक्षाओंकी एक राई तीन राईओंका एक गौर सर्षप छ गौरसर्षपों (सरसों) का एक मध्ययव तीन मध्ययवोंका एक कृष्णल, पांच कृष्णलोंका एक मासा होता है और सोलहमासेका एक सुवर्ण कहाता है इससे ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी महापातक होती है इत्यादि प्रयोगोंमें किया हुआ है परिमाण जिसका ऐसे सुवर्णका ही ग्रहण युक्त है परिमाण (तौल) का करना दृष्टके लिये है अदृष्ट (परलोक) के लिये नहीं और न लोकव्यवहारके लिये है क्योंकि इनके लिये स्मृतिकारोंकी प्रवृत्ति नहीं हुआ करती इसीसे न्यायके ज्ञाताओंनें कहा है कि कार्यके समयमें संज्ञा और परिभाषाओंकी उपस्थिति होती है-तैसे ही नामभी गुण और फलके संबंधसें काममें आता है पंचदश (१५) याज्य यहां तो दण्ड मात्रके उपयोगी परिमाणका स्मरण नहीं है उतनाही अर्थ माननेमें प्रमाण नही इससे विशेषके अभावसे सबका शेष माननाही युक्त है किंच (और) दण्ड दमनके लिये है दमन परिमाण विशेषके विनाभी होसकता है इससे परिमाण विशेषका अत्यंत उपयोग नहीं केवल शब्दसे जाने हुये महापातकी आदिकोंमें निश्चयसे परिमाणके स्मरणका उपयोग है इससे सोलह मासेभर सुवर्णके हरनेमेंही महापातकी होता है और उसके निमित्त मरणांतिक प्रायश्चित्तका विधानभी उसमेंही है और दो तीन मासे आदि सुवर्णकी चोरीतो क्षत्री आदिका जो सुवर्ण उसकी चोरीके समान उपपातकही है और सुवर्णसे न्यून सोनेकी चोरीमें तो अन्य प्रायश्चित्त कहा है इससे सुवर्ण भर सोनेके हरणमें मरणान्तिक प्रायश्चित्तही

१ ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौंडिन्याय वा ।

२ गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।

३ मरणान्तिकं हि यत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः । तत्तु कामकृते पापे विज्ञेयं नात्र संशयः ।

४ जालसूर्यमरीचिस्थं त्रसरेणूरजः स्मृतम् । तेऽष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते । गौरस्तु ते त्रयः षड्भिर्यवोमध्यस्तु ते त्रयः । कृष्णलः पञ्च ते माषास्ते सुवर्णस्तु षोडश ।

युक्त है सोई षट्त्रिंशतके मतमें कहा है कि वालके अग्रभागभर सोनेकी चोरीमें एक प्राणायाम करे-लिक्षामात्रकी चोरीमें तीन प्राणायाम, राई भरकी चोरीमें चार प्राणायाम करे और पापकी शुद्धिके लिये आठ सहस्र गायत्री जपे और गोरसर्षप (सरसों) भरकी चोरीमें दिनभर सावित्री जपे, जौंभर सोनेको चुराकर दो दिन प्रायश्चित्त करे, कृष्णलभर सोनेको चुराकर द्विजोंमें उत्तम उस पापकी शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करे सुवर्णकी चोरीमें वर्ष दिनतक जौं पीवे इसके ऊपर मरणांतिक प्रायश्चित्त वा ब्रह्महत्याका व्रतभी प्रायश्चित्त जानना, और यह वर्षदिनतक जौंका भोजन कुछ कम सुवर्णभर सोनेकी चोरीमें जानना क्योंकि सुवर्णभरकी चोरीमें मनु आदि बडी बडी स्मृतियोंमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है जो यह वचन है कि जो मनुष्य जानकर पण्य धनको बलसे ग्रहण करते हैं उन बलसे हरनेवालोंको प्राणांतिक प्रायश्चित्त कहा है यह प्रायश्चित्त सुवर्णसे न्यूनमेंभी समझना और यह चोरीका प्रायश्चित्त चुराये धनको स्वामीको देकरही करना क्योंकि यह स्मृति है कि ब्राह्मणके सुवर्ण आदिको चुराकर चुरानेवाला ग्यारह अधिक सुवर्ण धनके स्वामीको दे तैसेही मनुका (अ० ११ श्लो० १६४) वचन है कि उस धनको देकर अपनी शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करे दण्डके प्रकरणमें भी कहा है कि शेषपापोंमें ग्यारह गुना दण्ड दे और स्वामीको धन दिवादे और जब राजा अशक्तिसे नमारसके तो वसिष्ठका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि चोर केशोंको खोले राजाकी याचना करे फिर राजा उसको तांबेका शस्त्र दे उससे अपनी आत्माको हते तो मरणसे पवित्र होता है यह शास्त्रसे जानते हैं और जो उसनें दूसरा प्रायश्चित्त कहा है कि विना समयके भी गौके घी को देहमें मलकर गोमयकी अग्निसे पादसे लेकर अपने देहको मारकर पवित्र होता है यह शास्त्रसे जानते हैं वह प्रायश्चित्तभी गुरु वेदपाठी यज्ञमें स्थित ब्राह्मणके द्रव्य चुरानेमें वा क्षत्रिय आदि चोरके विषयमें, समझना और निष्कालक पदसे केश श्मश्रु लोम इनका मुण्डन कहा है तैसे ही अश्वमेधके करनेसे शुद्धि होती है क्योंकि प्रचेतानें मरणांतिक प्रायश्चित्तको कहकर कहा है कि अश्वमेध वा गोसव यज्ञको करके शुद्ध होता है यहभी वैश्य और क्षत्री चोरको समझना ॥

१ वालाग्रमात्रेऽपहृते प्राणायामं समाचरेत्।लिक्षामात्रेपि च तथा प्राणायामत्रयं बुधः ॥ राजसर्षपमात्रे तु प्राणायामचतुष्टय । गायत्र्यष्टसहस्रं च जपेत्पापविशुद्धये ॥ गौरसर्षपमात्रे च सावित्रीं वै दिनं जपेत् । यवमात्रे सुवर्णस्य प्रायश्चित्तं दिनद्वयं॥सुवर्णकृष्णलं ह्येकमपहृत्य द्विजोत्तमः । कुर्यात्सांतपनं कृच्छ्रं तत्पापस्यापनुत्तये ॥ अपहृत्य सुवर्णस्य माषमात्रं द्विजोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारस्त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति । सुवर्णस्यापहरणे वत्सरं यावकी भवेत् ॥ ऊर्ध्वं प्राणान्तिकं ज्ञेयमथवा ब्रह्महव्रतम् ।

२ बलाद्ये कामकारेण गृह्णंति स्वं नराधमाः । तेषां तु बलहर्तॄणां प्राणांतिकमिहोच्यते ।

१ स्तेये ब्रह्मस्वभूतस्य सुवर्णादिः कृते पुनः । स्वामिनेऽपहृतं देय हर्त्रा त्वेकादशाधिकम् ॥

२ चोरःसांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये । शेषेष्वेकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥

३ स्तेनः प्रकीर्णकेशो राजानमभियाचयेत् ततस्तस्मै राजौदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेत् मरणात्पूतो भवति इति विज्ञायते ।

४ निष्कालको गोघृताक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतो भवति इति विज्ञायते।

५ इष्ट्वा वाश्वमेधेन गोसवेन वा विशुद्ध्येत् ।

भावार्थ-ब्राह्मणके सुवर्णका चोर अपने कर्म (अपराध)को कहता हुआ राजाको मुसल दे उससे मरने वा बचनेसे शुद्ध होता है ॥ २५७ ॥

अनिवेद्यनृपेशुध्येत्सुरापव्रतमाचरन् ।
आत्मतुल्यंसुवर्णवादद्याद्वाविप्रतुष्टिकृत् ॥

पद-अनिवेद्य-नृपे७ शुध्येत् क्रि-सुरापव्रतं २ आचरन् १ आत्मतुल्यं २ सुवर्ण २ वा-दद्यात् क्रि-वा-विप्रतुष्टिकृत् १ ॥

योजना-नृपे अनिवेद्य सुरापव्रतं आचरन् शुध्येत् आत्मतुल्यं सुवर्ण वा विप्रतुष्टिकृत् दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अपनी चोरीको राजाके यहां निवेदन न करके बारह वर्षके सुरापव्रतको करता हुआ शुद्ध होता है यहां सुरापव्रतका कथन शवके शिरकी ध्वजा और कपाल, इनके धारणके निषेधार्थ है यहभी अज्ञानसे करनेके विषयमें है क्योंकि मनु(अ०११श्लो० ८९) में अज्ञानसे विधान किये बारह वर्षके प्रायश्चित्तकाही अतिदेश किया है कि[1] अज्ञानसे द्विजको मारनेवालेकीही यह शुद्धि कही है कदाचित् शका करोकि अज्ञानसे चोरी ही नहीं होसकती इससे उसका विषय कैसे हो सकता है इसका समाधान कहते हैं कि जब वस्त्रके प्रान्तमें बंधे हुये सुवर्ण आदिको अज्ञानसे चुरावे अथवा रजत आदिकी बुद्धिसे चुरावे और चुरानेके अनंतरही किसी अन्यको दे देवा नष्ट करदे और स्वामीके प्रति फिर न देतो अपहारहो सकता है और जो ताम्र आदि धातु रसवेध आदिसे सुवर्णके रंगकीहो उसके अपहार (चोरी)में यह प्रायश्चित्त नहीं क्योंकि उसमें मुख्य जातिका संबंध नहीं है और मुख्यकी तुल्यता मात्रसे गौणमें मुख्यके धर्म नहींहोसकते यद्यपि सुवर्णके सदृश सुवर्ण भिन्न द्रव्यकी भ्रांतिसे चुराता है तोभी यह प्रायश्चित्त नहीं होता क्योंकि सुवर्णसे भिन्नका चोर है कदाचित् कहो ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त हुआ विना मारेभी प्रायश्चित्त करे इसके समान यहांभी दोष है सोठीक नहीं क्योंकि सुवर्णसे भिन्नमें प्रवृत्त होनेसेही पूर्वोक्त वचनका यह विषय नहीं, जो यह वचन[1] है कि मनसे पापका ध्यानकरके ओंकार पूर्वक व्याहृति मनसे जपे और तीन प्राणायाम करके आचमन करे पापमें प्रवृत्त होजायतो द्वादशरात्रका कृच्छ्र करे वहभी यथार्थ धनकी प्रवृत्तिके विषयमें है इससे ऐसा सुवर्णका अपहार प्रायश्चित्तका निमित्त नहीं होसकता किंतु पूर्वोक्त रजत बुद्धिसे सुवर्णका अपहारही हो सकता है यदि पूर्वोक्त सुवर्णका चोर अत्यंत महा धनी होयतो अपने देहकी तुल्य सुवर्ण दे यदि उतना धन नहो और तपकोभी न-कर सके तो ब्राह्मणके संतोषकारी अर्थात् जीवनभर कुटुंबपालनके योग्य धनको दे यदि निर्गुण स्वामीके द्रव्यको चुरावे तो इसी व्रतको वह चोर पादसे न्यून करे[2] इसे व्यासके वचनसे कहा नव वर्षका प्रायश्चित्त जानना और जब पूर्वोक्तही द्रव्यको क्षुधासे दुखी कुटुंबकी रक्षाके लिये चुरावे तो अग्निके

१ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।

१ मनसा पापं ध्यात्वा प्रणवपूर्वकं व्याहृतीर्मनसा जपेत् व्याहृत्य प्राणायामं त्रिराचमेत् प्रवृत्तौ कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् ।

२ एतदेव व्रतं स्तेनः पादन्यूनं समाचरेत् ।

३ षडब्दं वा चरेत् कृच्छ्रं यजेद्वा क्रतुना द्विजः तीर्थानि वा भ्रमन्विद्वांस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ।

कहे छ वर्षके प्रायश्चित्त स्वर्जित आदि यज्ञ और तीर्थयात्राको करे कि द्विज छ वर्षका कृच्छ्र प्रायश्चित्त वा यज्ञ करे वा तीर्थोंमें भ्रमता हुआ विद्वान् चोरीसे छुटता है यदि चुरानेके अनन्तरही मैं बडा कष्ट किया यह पश्चात्ताप करके स्वामीको देदे या त्यागदे तो आपस्तंबके कहे चौथे कालमें प्रमित भोजनसे तीन वर्षका प्रायश्चित्त, अथवा अंगिराका कहा वज्रनामका तीन वर्षका प्रायश्चित्त जानना, कदाचित् कोई शंका करे कि स्वामीको लौठाने वा त्यागनेमें अपहार हो चुका तो अल्प प्रायश्चित्त कैसे होसकताहै यदि अपहार नहीं हुआ तो प्रायश्चित्तका अभावही होगा प्रायश्चित्तकी न्यूनता न होगी ऐसा मत कहो क्योंकि अपहार उपभोग आदि फल पर्यंत होता है इससे उपभोगसे पहिले निवृत्त होनेमें पुष्कल (पूरा) अपहारके अर्थका अभाव है इससे प्रायश्चित्तकी न्यूनता इस प्रकार युक्त है जैसे पीनेके अयोग्य द्रव्यको पीकर वमनमें होती है अर्थात् मरण आदि फल नहीं होता कदाचित् शंका करोकि चोरके हाथसे बलसे छीनकर ग्रहण करनेमेभी उपभोग (वर्तना) रूप फलका अभाव है वहांभी अल्प प्रायश्चित्त हो जायगा सो ठीक नहीं क्योंकि चोरकी उसके त्यागमें स्वयं प्रवृत्ति नहीं है और फलपर्यंत स्वयं प्रवृत्ति है और जो रजत ताम्र आदिसे मिले सुवर्णका अपहार है उसमें यह लघु प्रायश्चित्त नहीं क्योंकि संसर्गमेभी सुवर्ण इस प्रकार दूर नहीं हो सकता जैसे पृषदाज्यमें आज्य इससे वहां बारह वर्षका प्रायश्चित्तही युक्त है कदाचित् कहो कि वह सुवर्णके सदृश दूसराही द्रव्य है इससे लघु प्रायश्चित्त कहा है सोठीक नहीं क्योंकि वहां तीन वर्ष आदि लघु प्रायश्चित्तका विषय सुवर्णसे भिन्न होनेसे नहीं किंतु उपपातकके प्रायश्चित्तकाही विषय है और जो आपस्तंबने अन्य कुछ कहा है कि चोरी और मदिराको पीकर सांवत्सर कृच्छ्र करे वह सुवर्णसे कम और माससे अधिक परिमाणके द्रव्यमें समझना जो तो सुमंतुने कहा है कि सुवर्णका चोर मासतक आठ सहस्र गायत्रीसे घीकी आहुति प्रतिदिन दे तीन रात्र उपवास और तप्त कृच्छ्रसे पवित्र होता है उसका पूर्वोक्त मासेभर सुवर्णकी चोरीका जो प्रायश्चित्त उसके संग विकल्प समझना, और जो उसीने अन्य कहा है कि सुवर्णका चोर बारह दिन तक वायुके भक्षणसे पवित्र होता है वहभी उसको समझना जो मनसे चोरीमें प्रवृत्त हुआ हो और स्वतः ही हट गया हो यहांभी बालवृद्ध आदिकोंको आधा प्रायश्चित्त जानना और सुवर्णकी चोरीके समान कही जो अश्व, रत्न, मनुष्य, स्त्री, भूमि, धेनु, इनकी चोरी है उनमेंभी आधाही प्रायश्चित्त करना और जो चतुर्विंशति मतकी वचन है कि द्विज अज्ञानसे चांदीको चुराकर चान्द्रायण व्रत करे दश गद्याणकसे आगे और सौ तक दूना, और सहस्र

१ स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा कृच्छ्रं सांवत्सरं चरेत्।

२ सुवर्णस्तेयी मासं सावित्र्याष्टसहस्रमाज्याहुतीर्जुहुयात्। प्रत्यहं त्रिरात्रमुपवासं तप्तकृच्छ्रेण च पूतो भवति।

३ सुवर्णस्तेयी द्वादशरात्रं वायुभक्षः पूतो भवति

४ रूप्यं हृत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चान्द्रायणव्रतम्। गद्याणदशकादूर्ध्वमा शतादूद्विगुणं चरेत्। आसहस्रात्तु त्रिगुणमूर्ध्वं हेम विधिः स्मृतः। सर्वेषां धातुलोहानां पराकं तु समाचरेत्। धान्यानां हरणे कृच्छ्रं तिलानामैन्दवं स्मृतम्। रत्नानां हरणे विप्रश्चरेच्चांद्रायणं व्रतम्।

तक तिगुना, प्रायश्चित्त करै उससे आगे सुवर्णकी चोरीका प्रायश्चित्त कहा है संपूर्ण धातु और लोहेकी चोरीमें पराक व्रत करै धान्योंकी चोरीमें कृच्छ्र और तिलोंकी चोरीमें ऐंदव कहा है और रत्नोंकी चोरीमें ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करै-वहभी सहस्र गद्याणकसे अधिक चांदीकी चोरीमें सुवर्णकी चोरीके समान प्रायश्चित्त कहनेके लिये है कुछ प्रायश्चित्तकी निवृत्तिके लिये नहीं और जो रत्नोंकी चोरीमें चान्द्रायण कहा है वहभी सहस्र गद्याणकसे हीन मूल्यके रत्नकी चोरीमें जानना उसके आगे सुवर्णकी चोरीके समान प्रायश्चित्त है ॥

भावार्थ-अपनी चोरी राजाके यहां न कहकर पुण्य व्रत (१२ वर्ष) को करता हुआ शुद्ध होता है अथवा अपने देहके तुल्य सुवर्ण वा ब्राह्मणके संतोष योग्य धनका दान करै ॥ २५८ ॥

इति सुवर्णस्तेयप्रायश्चित्तप्रकरणम्-

तप्तेयःशयनेसार्धमायस्यायोषितास्वपेत् ॥ गृहीत्वोत्कृत्यवृषणौनैर्ऋत्यांचोत्सृजेत्तनुम्

पद-तप्ते ७ अयःशयने ७ सार्द्धऽ-आयस्या ३ योषिता ३ स्वपेत् क्रि-गृहीत्वाऽ-उत्कृत्यऽ- वृषणौ २ नैर्ऋत्यां ७ चऽ-उत्सृजेत् क्रि-तनुम् २ ॥

योजना-गुरुतल्पगः आयस्या योषितासार्द्ध तप्ते अयःशयने स्वपेत् चपुनः वृषणौ उत्कृत्य गृहीत्वा नैर्ऋत्यां तनुं उत्सृजेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब गुरुतल्पगमनका प्रायश्चित्त कहते हैं (समा वा गुरुतल्पगः) इस अग्रिम श्लोकके गुरु तल्पग पदका यहां संबंध होता है गुरुकी स्त्रीका गामी तपाई हुई लोहेकी स्त्रीकी प्रतिमाके संग तपाई हुई लोहेकि ऐसी शय्या पर सोवै कि जिस पर सोनेसे मरजाय इस प्रकार शयन करके देहको त्यागदे अर्थात् मरजाय और शयन भी मैं गुरुकी स्त्रीके संग गमन किया ऐसे अपने कर्मका विदित करके करना क्योंकि मनुकी स्मृतिमें गुरु तल्पग (अ० ११ श्लो० १०३)को पापको कहकरही यह प्रायश्चित्त कहा है तैसेही स्त्रीका आलिंगन करके शयन करै क्योंकि वृद्धहारीतकी स्मृति है कि गुरुतल्पग मिट्टि वा लोहे कि प्रतिमाको अग्निके समान तपाकर लोहेकी उस प्रतिमाके संग स्पर्श करके पवित्र होता है तैसे ही लोम और केशोंका मुंडन और देहमें घीको मलकर यह प्रायश्चित्त करै क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि मुंडन, और घीको मलकर तपाई हुई लोहेको वा मिट्टीकी स्त्रीके संग स्पर्श करके मरनेसे पवित्र होता है कदाचित् कोई शंका करै कि गुरुतल्पका गामी अपने पापको कहकर तपाई हुई लोहेकी शय्यापर सोवै अथवा जलती हुई प्रतिमाका स्पर्श करके मरनेपर वह शुद्ध होता है इस मनु (अ० ११ श्लो० १०३) वाक्यके अनुरोधसे तपाये लोहेपर शयन और तपाई स्त्रीके संग स्पर्श ये दोनों पृथक् पृथक् प्रायश्चित्त हैं सो ठीक नहीं क्योंकि लोहेकी स्त्रीके संग सोवै, कहा सोवै इस आकांक्षा पर तपाई हुई लोहेकी शय्या पर सोवै इस वचनसे आकांक्षा पूर्ण होती है इससे परस्पर

१ गुरुतल्प्यभिभाष्यैनः ।

२ गुरुतल्पगो मृन्मयीमायसीं वा स्त्रियः प्रतिकृतिमग्निवर्णां कृत्वा कार्ष्णायसशयने अयोमय्या स्त्रीप्रतिकृत्या समालिंग्य पूतो भवति ।

३ निष्कालको घृताभ्यक्तस्तप्तां तां सूर्मीं मृन्मयीं वा परिष्वज्य मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ।

४ गुरुतल्पोऽभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये । सूर्मीं ज्वलन्तीं वाश्लिष्य मृत्युना स विशुध्यति ।

सापेक्ष होनेसे एकही प्रायश्चित्त है निरपेक्ष दो नहीं यह युक्त है अथवा लिंग सहित वृषणोंको अपने हाथसे काटकर और अंजलिमें लेकर दक्षिण और पश्चिमके मध्यकी नैर्ऋति दिशामें मरण पर्यंत सीधी गतिसे गमन करके देहको त्यागदे सोई मनु (अ० ११ श्लो० १०४)ने कहा है कि स्वयं लिंग और वृषणोंको काटकर अञ्जलिमें लिये मरण पर्यंत सीधी गतिसे गमन करे और गमनभी पीछेको न देखकर करे क्योंकि शंखलिखितकी स्मृति है कि छुरीसे लिंग और वृषणोंको काटकर न देखता हुआ गमन करे इस प्रकार गमन करते हुयेको जहां कुड्य (भीत) आदिका प्रतिबंध (रोक) हो जाय तो मरण पर्यंत वहां ही टिका रहे क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि वृषण और लिंगको काटकर और अञ्जलीमें लेकर दक्षिणदिशाको गमन करे और जहां रुक जाय वहां ही मरण पर्यंत टिका रहे सोई नारदने कहा है कि इनमें किसी स्त्रीके संग गमन करता हुआ गुरुतल्पग कहाता है और लिंगके काटनेसे अन्य उसमें दंड नहीं कहा है इस प्रकार दंडके लिये कियाभी लिंगका छेदन पाप नाशके लियेभी होता है इसी मरणांतिक दण्डके अभिप्रायसे मनुने कहा है (अ० ११ श्लो० ३१८) कि राजाओंने दिया है दंड जिनको ऐसे मनुष्य पापोंको करकेभी निर्मल हुये स्वर्गको उस प्रकार जाते हैं जैसे पुण्यात्मा संतजन, धनके दंडसेभी प्रायश्चित्त होता है क्योंकि मनुने ही कहा है (अ० ९ श्लो० २४०) कि शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तको करते हुये मनुष्योंके मस्तक पर राजा चिन्ह (दाग) न करे किंतु उत्तम साहस दण्डदे इनदोनों मरणांतिक प्रायश्चित्तोंके मध्यमें एकभी प्रायश्चित्तके करनेसे गुरुतल्पग शुद्ध होता है यहां गुरु शब्द मुख्यवृत्तिसे पितामें वर्त्तता है क्योंकि निषेक (वीर्यका सेचन) आदि कर्मोंको जो विधिसे करे और अन्नसे पालना करे वह ब्राह्मण गुरु कहाता है मनु (अ० २ श्लो० १४२)के इस गुरुत्वके बोधक वाक्यमें निषेक आदिका कर्त्ता जनक (पिता) ही गुरु कहा है और योगीश्वर(याज्ञवल्क्य)नें निषेक आदि कर्मके अभिप्रायसे कहा है कि जो कर्मको करके इसको वेद पढावे वह गुरु होता है कदाचित् कोई शंका करे कि गुरु शब्दका प्रयोग अन्यत्रभी देखते हैं गुरु शिष्यका उपनयन कराकर इसे वचनमें आचार्यमें, थोडा वा बहुत वेदका जो उपकार करे उसकोभी गुरु जाने इस मनु (अ०२ श्लो० १४९)के वचनमें उपाध्यायमें प्रयोग देखते हैं व्यासनेभी अन्यत्र गुरु शब्दका प्रयोग दि-

१ स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ । नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदा निपातादजिह्मगः ।

२ क्षुरेण शिश्नवृषणावुत्कृत्यानवेक्षमाणो व्रजेत् ।

३ सवृषणं शिश्नमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्यत्रैव प्रतिहतस्तत्रैव तिष्ठेदा प्रलयात् ।

४ आसामन्यतमां गच्छन्गुरु तल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्त्तनात्तत्र नान्यो दण्डो विधीयते ।

५ राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः निर्मलाःस्वर्गमायान्ति संतः सुकृतिनो यथा ।

१ प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम् । नांक्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ।

२ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधिः संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ।

३ स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।

४ उपनीय गुरुः शिष्यम् ।

५ स्वल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः तमपीह गुरुं विद्यात् ।

६ गुरवो मातृपितृपत्न्याचार्यविद्यादातृज्येष्ठभ्रातृऋत्विजो भयत्रातारश्च ।

खाया है कि माता, पिता, पति, आचार्य, विद्याका दाता, ज्येष्ठ भ्राता, ऋत्विज, भयसे त्राता और अन्नका दाता ये सब गुरु होते हैं कदाचित् कोई शंका करे कि गुरु शब्दके अनेक अर्थकी कल्पना रूप दोष होगा सो ठीक नहीं क्योंकि गुरु शब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त पूजाकी योग्यता सबमें विद्यमान है और पूजाकी योग्यताको योगीश्वरने प्रवृत्तिनिमित्त दिखाया है कि ये पूर्व २ क्रमसे मान्य है और इन सबसे माता श्रेष्ठ है अर्थात् मान्य है यह प्रारम्भ करके माता अत्यंत श्रेष्ठ है यह उपसंहार (समाप्ति) करके सबको पूजाके योग्य कहा है कदाचित् कोई शंका करे कि उपाध्यायसे दशगुना आचार्य और आचार्यसे सौगुना पिता होता है इस मनु (अ० २ श्लो० १४५) ने उपाध्यायसे अधिक आचार्यको और आचार्यसे अधिक पिताको ही अत्यंत श्रेष्ठ कहनेसे वही मुख्य गुरु है सो ठीक नहीं क्योंकि पैदा करने वाले और वेद देनेवाले पिताओंमें ब्रह्म (वेद) देनेवाला पिता अत्यंत श्रेष्ठ है इस वचनसे मनु (अ० २ श्लो० १४६) ने आचार्यकोभी अत्यंत श्रेष्ठ कहा है गौतमने भी कहा है कि गुरुओंमें आचार्य श्रेष्ठ होता है और अत्यंत श्रेष्ठ मातासेही मुख्यता कहोगे तो सहस्र गुना कहनेसे माताकोही गुरुत्व होगा तिससे यही युक्त है कि सब गुरु हैं और उनकी पत्नीके गमनकोही गुरुतल्पगमन कहते हैं, इस शंकाका समाधान कहते हैं कि (निषेकादीनि) यह पूर्वोक्त मनुका वचन निषेक आदिके कर्ता जनककोही गुरुत्वका बोधक है क्योंकि वहां अन्यका बोधक गुरु शब्द नहीं हो सकता और जो व्यासका वचन है यह सेवा और पूजाकी विधिसे स्तुतिके लिये अन्य माता आदिका बोधक है-इससे गुरुके प्रतिपादनमें तत्पर (निषेकादि) इस मनुके वचनसे पिताकोही मुख्य गुरुत्व स्थित भया-इसीसे वसिष्ठने आचार्य पुत्र शिष्य इनकी भार्याओंमें भी ऐसेही करे इस वचनसे आचार्य आदिकोंकी स्त्रियोंमेंभी अतिदेशसे गुरुतल्प प्रायश्चित्त कहाहै तैसेही जातूकर्ण्य आदिकोंनेभी आचार्य आदिकोंकी भार्याओंके गमनमें गुरुतल्पव्रत करना कहाहै यदि आचार्य आदि मुख्य गुरु होते तो गुरुके कहनेसेही व्रतकी प्राप्ति हो जाती अतिदेश मानना अनर्थक हो जाता और संवर्त्तने तो स्पष्टही पितृदार पद पढाहै कि पिताकी दारा जो मातासे भिन्नहैं उनके संग गमन करके उक्त प्रायश्चित्त करे-यह त्रिंशतके मतमें भी जानकर पिताकी सवर्णाके संग जो गमन करे वह उक्त प्रायश्चित्त करे यह कहाहै इन वचनोंसेभी निषेक आदिका कर्त्ता पिताही मुख्य गुरुहै और वह गुरुत्व चारों वर्णोंमें समानहै क्यों कि चारोंवर्ण निषेक आदिके कर्त्ताहो सकते हैं इससे उस विप्रको गुरु कहतेहैं इस वचनमें विप्र पद उपलक्षणहै इससे पिताकी पत्नीका गमनही महापातकहै और गमन (भोग) भी वीर्यके त्याग पर्यंत कहलाहै उससे पहिले निवृत्तिमें तो महापातकी नहीं होता उसमें तपाई लोहेकी शय्यापर और तपाई लोहेकी प्रतिमाके संग सोवे ये जो मर-

१ एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ।
२ उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
३ उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ।
४ आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणाम् ।

१ आचार्यपुत्रशिष्यभार्यासु चैवम् ।
२ आचार्यादेस्तु भार्यासु गुरुतल्पव्रतं चरेत् ।
३ पितृदारान् समारुह्य मातृवर्ज्यं नराधमः ।
४ पितृभार्यां तु विज्ञाय सवर्णां योषिगच्छति ।
५ स विप्रो गुरुरुच्यते ।

णांतिक दो प्रायश्चित्त हैं वे दोनों अज्ञानसे जननीके गमनमें और जननीकी सवर्णा और उत्तम वर्ण जो सपत्नी (सौत) है ज्ञानसे उसके गमनमें जानने क्योंकि षट्त्रिंशन्मत-में यह कहाहै कि जो मनुष्य ज्ञानसे पिताकी सवर्णा स्त्रीके संग और अज्ञानसे जननीके संग गमन करताहै वह विना मरे शुद्ध नहीं होता जानकर जननीके गमनमें तो वसिष्ठ ने कहाहै कि मुण्डन और घीका उबटना करके गोमयकी अग्निमें चरणोंसे लेकर देहको दग्धकर दे कदाचित् कोई शंका करे कि माताकी सपत्नी और भगिनी आचार्यकी पत्नी और पुत्री और अपनी पुत्री इनके संग गमनका कर्त्ता गुरुतल्पग कहाताहै इस वचनमें अति देशके कहनेसे माताकी सपत्नीके गमनमें औपदेशिक (मुख्य) प्रायश्चित्त कहना युक्तहै इसका समाधान कहते है कि (पितृभार्या सवर्णा) यहां सवर्णाके ग्रहणसे हीनवर्ण पिताकी सपत्नीके विषयमें यह अतिदेशका वचनहै इससे कुछ विरोधनहीं यह प्रायश्चित्तभी मुख्य पुत्रकोंहीहै अन्य पुत्र तो पुत्रके कार्यकारीहैं मुख्य नहीं सोई मनु (अ० ९ श्लो० १८०)ने कहाहै कि क्षेत्रज आदि क्रमसे कहे ग्यारह ये पुत्र बुद्धिमानोंनें क्रियाके लोपसे पुत्रके प्रतिनिधि कहेहैं-उसमें दोनोंकी इच्छासे गमन (भोग) में प्रवृत्ति होय तो तपाई हुई लोहेकी शय्याका शयन रूप पहिला प्रायश्चित्त करे यदि पुत्र स्वयं प्रोत्साहन (फुसलाना) करके गमन करे तो स्वयं वृषणोंको काट और अञ्जलीमें लेकर यह दूसरा प्रायश्चित्त करे क्योंकि संबंधकी अधिकतासे प्रायश्चित्त गुरु कहाहै यदि माताही पुत्रका प्रोत्साहन करे तो तपाई हुई लोहेकी शय्यामें शयन और जलती हुई लोहेकी स्त्रीकी प्रतिमाका स्पर्श इन दोनोंमें कोईसा प्रायश्चित्त जानना जो तो शंखने बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहाहै कि सुवर्णका चोर सुराप ब्रह्महा गुरुतल्पग ये महापातकी भूमिपर सोना जटा धारण पत्ते मूल फलका एक काल भोजन करें इस प्रकार बारह वर्षके व्रतसे शुद्ध होते हैं-यह शंखका प्रायश्चित्त सजातीय वा उत्तम वर्णकी दाराके गमनमें वा अज्ञानसे गमनमें जानना और वहांही जान कर प्रवृत्ति और वीर्य सींचनेसे पहिले छः वर्षका और अज्ञानसे प्रवृत्तिमें तीन वर्षका प्रायश्चित्त जानना और जननीमें जानकर प्रवृत्ति और वीर्य सींचनेसे पहिले निवृत्तिमें बारह वर्षका और अज्ञानसे प्रवृत्तिमें छः वर्षका प्रायश्चित्त कल्पना करना और जो संवर्त्तने (पितृदारान्) इस पूर्वोक्त वचनसे पिताकी भार्याकी शय्यापर चढने मात्रसे तप्तकृच्छ्र कहाहै वह हीनवर्ण गुरुकी दाराओंमे वीर्य सींचनेसे पहिले जानना ॥

भावार्थ-गुरुकी स्त्रीका गामी तपाई हुई लोहेकी शय्यापर तपाई हुई लोहेकी स्त्रीके संग सोवै अथवा लिंग और वृषणोंको काटकर और अञ्जलीमें लेकर नैर्ऋति दिशामें गमन करके देहको त्याग दे- ॥ २५१ ॥

१ पितृभार्यां तु विज्ञाय सवर्णां योधिगच्छति । जननीं चाप्यविज्ञाय नामृतः शुद्धिमाप्नुयात् ।

२ निष्कालको घृताभ्यक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत् ।

३ मातुः सपत्नीं भगिनीं आचार्यतनयां तथा, आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ।

४ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ।

१ अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः । एककालं समश्नीत वर्षे तु द्वादशे गते । रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । व्रतेनैतेन शुध्यन्ति महापातकिनस्त्विमे ।

प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रंसमावागुरुतल्पगः ॥
चांद्रायणंवात्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम् ॥

पद-प्राजापत्यं २ चरेत् क्रि- कृच्छ्रं २ समाः २ वाऽ-गुरुतल्पगः १ चांद्रायणं २ वाऽ-त्रीन् २ मासान् २ अभ्यसेत् क्रि- वेदसंहिताम् २-

योजना-गुरुतल्पगः प्राजापत्यं कृच्छ्रं समाः चरेत् वा चांद्रायणं- वेदसंहितां त्रीन्मासान् अभ्यसेत्-

तात्पर्यार्थ-अथवा आगे जो कहेंगे उस प्राजापत्य कृच्छ्रको तीन वर्षतक गुरुतल्पग करे यहभी ब्राह्मणीके पुत्रको शूद्र जातिकी गुरु भार्याके जानकर गमनमें समझना-और जब व्यभिचारिणी (वेश्या) गुरुपत्नीके संग अज्ञानसे गमन करे तब तो वेदसंहिताके जप सहित तीन चांद्रायण करे और उसके संग जानकर गमन करे तो उशनाके कहे इस प्रायश्चित्तको करे कि गुरुतल्पका गामी संवत्सरतक ब्रह्महाका व्रत-वा छः मासतक तप्तकृच्छ्र करे-और जानकर क्षत्रियाके गमनमें तो याज्ञवल्क्यका कहा नव वर्षका प्रायश्चित्त करे क्योंकि माताकी सपत्नी और आचार्यकी पुत्रीके गमनमें गुरुतल्पव्रत करनेका ही अतिदेश है-और यह अतिदेशका प्रायश्चित्त सवर्णा गुरुभार्याके गमनमें नहीं होता क्योंकि वहां जानकर मरणांतिक और अज्ञानसे बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है इससे क्षत्रियाके विषयमें मानना ही युक्त है-उसकेही जानकर अभ्यासमें तो मरणांतिक प्रायश्चित्त है क्योंकि कण्वकी स्मृति है कि क्षत्रिया गुरुकी भार्याके संग जानकर गमन करके द्विज अंडकोशोंके विनालिंगको काटकर मारनेसे शुद्ध होता है-इसी विषयमें यदि वह प्रायश्चित्त न करना चाहे तो प्रायश्चित्तके स्थानमें याज्ञवल्क्यका कहा यह वधका दंडही जानना कि उसक और कामना सहित स्त्रीका लिंगको छेदन करके वधकरे-और वैश्य जातिकी गुरु भार्याके संग जानकर गमनमें छः वर्षका प्रायश्चित्त है इसीसे अन्य स्मृतिका वचन है कि ब्राह्मणीका पुत्र क्षत्रिया माताके संग गमनमें एक पादसे न्यून बह वर्ष (९ वर्ष) का प्रायश्चित्त करे इसी प्रकार अन्य वर्णोंमें जानना-अर्थात् यदि वही ब्राह्मणीका पुत्र माताकी सपत्नी वैश्यामें गमन करे तो छः वर्षका और शूद्रामें गमन करे तो तीन वर्षका प्रायश्चित्त करे-इसी प्रकार क्षत्रियाके पुत्रको वैश्या माताके गमनमें नौवर्षका और शूद्रामें छः वर्षका प्रायश्चित्त है-इसी प्रकार वैश्याके पुत्रकोभी समझना-और वैश्यामें जानकर गमनके अभ्यासमें तो मरणांतिकही प्रायश्चित्त है क्योंकि लौगाक्षिकी स्मृति है कि जो मनुष्य गुरुकी भार्या वैश्याके संग जानकर वारंवार गमन करे वह लिंगके अग्रभागको छेदन करके पापसे शुद्ध होता है-और शूद्रामें जानकर अभ्यास करनेमें तो बारह वर्षका प्रायश्चित्त है क्योंकि उपमन्युकी स्मृति है कि यदि विप्र सावधानीमें गुरुकी शूद्रा भार्याके संग जान-

१ गुरुतल्पाभिगामी सवत्सरं ब्रह्महव्रत षण्मासान्वा तप्तकृच्छ्रं चरेत् ।

२ मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ।

३ मत्या गत्वा पुनर्भार्यां गुरोः क्षत्रसुतां द्विजः । अंडाभ्यां रहितं लिंगमुत्कृत्य स मृतः शुचिः ।

१ छित्वा लिंग वधस्तस्य सकामायाः स्त्रियास्तथा ।

२ ब्राह्मणीपुत्रस्य क्षत्रियायां मातरि गमने पादहान्या द्वादशवार्षिकमेवमन्यवर्णास्वपि ।

३ गुरोर्भार्यां तु यो वैश्यां मत्या गच्छेत्पुनःपुनः । लिंगाग्रं छेदयित्वा तु ततः शुद्धयेत्स किल्बिषात् ।

४ शूद्रायां तु कामतोऽभ्यासे द्वादशवार्षिकं । पुनः शूद्रां गुरोर्गत्वा शुद्धया विप्रः समाहितः । ब्रह्मचर्यमदुष्टात्मा संचरे द्वादशाब्दिकम् ॥

कर गमन करे तो शुद्ध मनसे बारह वर्षका ब्रह्मचर्यरूप प्रायश्चित्त करे और क्षत्रिया गुरुभार्याके अज्ञानसे गमनमें यमका कहा प्रायश्चित्त जानना कि आठमें कालमें भोजन ब्रह्मचर्य और व्रतको स्थान और आसनसे विहार और दिनमें तीनवार जलपान, और भूमिमें शयन करता हुआ तीन वर्षमें उस पातकको दूर करता है और क्षत्रियामें गमनके अभ्यासमें जातूकर्ण्यनें कहा है कि गुरुकी क्षत्रिया भार्यामें अज्ञानसे गमन करनेसे अण्डमात्रको काटकर जीनेसे वा मरनेसे शुद्ध होता है और वैश्यामें तो अज्ञानसे करनेमें याज्ञवल्क्यका कहा प्राजापत्य कृच्छ्र कहा है सोई वृद्ध मनुनें कहा है कि अज्ञानसे गुरुकी और पिताकी भार्याके गमनमें तीन वर्षतक कृच्छ्र करे उसीके अभ्यासमें हारीतनें कहा है कि अज्ञानसे मोहित हुआ ब्राह्मण गुरुकी वैश्या भार्यामें अभ्याससे गमन करके जीवन पर्यंत षढंग ब्रह्मचर्य करे शूद्रा गुरुभार्याके अज्ञानसे गमन करनेमें मनु (अ० ११ श्लो० १०५)के वा सुमंतुके कहे प्रायश्चित्तको करे कि खट्वांग धारे और चीर वस्त्र. और श्मश्रु दाढी मूछ धारण किये विजन वनमें एक वर्षतक सावधानीसे प्राजापत्य कृच्छ्र करे–अथवा गुरुदाराका गामी कंटकी वृक्षकी शाखाका स्पर्श, भूमिमें शयन, त्रिकाल स्नान भिक्षाका भोजन करता हुआ पवित्र होताहै उसकेही अभ्यासमें मनुने (अ. ११ श्लो. १०६) कहा है कि अभ्यास करके इंद्रियोंको वशमें करके तीन मासतक चान्द्रायण करे और क्षत्रियामें जानकर प्रवृत्त हुआ जो मनुष्य वीर्य सींचनसे पूर्व निवृत्त हुआ होयतो व्याघ्रके कहे इस प्रायश्चित्तको करे कि ब्राह्मण गुरुकी क्षत्रिया स्त्रीके संग गमनमें तीन मासतक कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे यहां यह व्यवस्था है कि स्त्रीने प्रोत्साहन किया होयतो तीन मासतक प्राजापत्य करे दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें तीनमासतक अति कृच्छ्र करे और स्वयं गुरुपत्नीका प्रोत्साहन करा होयतो तीन मासतक कृच्छ्रातिकृच्छ्र करे और उसीमें जानकर प्रवृत्त हुआ हो और वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिमें कण्वका कहा प्रायश्चित्तजानना कि एकवार क्षत्रिया गुरुकी भार्याके अज्ञानसे गमनमें द्विज चांद्रायण तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करे स्त्रीने प्रोत्साहन किया होयतो अतिकृच्छ्र और दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्ति हुयी होयतो तप्तकृच्छ्र, और स्वयं पुरुषने प्रोत्साहन किया होयतो चांद्रायण करे और वैश्यामें जानकर प्रवृत्ति और वीर्य सींचनेसे

१ कालेऽष्टमे वा भुंजानो ब्रह्मचारी सदा व्रती।स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः । अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपोहेत पातकं ।

२ गुरोः क्षत्रसुतां भार्यां पुनर्गत्वा त्वकामतः।अण्ड मात्रं समुत्कृत्य शुद्ध्येद्वाप्यन्मृतोऽपि वा ।

३ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं ।

४ गमने गुरुभार्यायाः विप्रभार्यागमे तथा । अब्दत्रयमकामात्तु कृच्छ्रं नित्यं समाचरेत् ।

५ अभ्यासे विप्रो वैश्यायां गुरोरज्ञानमोहितः । षढंगं ब्रह्मचर्यं च चरेद्यावदायुषं ।

६ खट्वांगी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ।

७ गुरुतल्पाभिगामी मासमेकं कन्टकिनीं शाखां परिष्वजन्नधःशायी त्रिषवणी भैक्षाहारः शुद्धो भवति ।

१ चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्य नियतेन्द्रियः ।

२ कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं च तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्रकम् । चरेन्मासत्रयं विप्रः क्षत्रियागमने गुरोः ।

३ चांद्रायणं तप्तकृच्छ्रमतिकृच्छ्रं तथैव च । सकृद्गत्वा गुरोर्भार्यामज्ञानात्क्षत्रियां द्विजः ।

पूर्व निवृत्तिमें कण्वका कहा यह प्रायश्चित्त है कि गुरुकी वैश्या भार्यामें जानकर एकवार गमन करनेमें तप्त कृच्छ्र, पराक, और सांतपन कृच्छ्र एक मासतक द्विज करे-यहांभी दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें तप्त कृच्छ्र स्वयं प्रोत्साहन करनेमें पराक और गुरुकी भार्याने प्रोत्साहन किया होयतो सांतपन करना इसीमें अज्ञानसे प्रवृत्त हुआ होयतो प्रजापतिने कहा है कि द्विज अज्ञानसे एकवार गुरुकी वैश्या भार्यामें गमन करके पांच सात वा आठ दिनतक भोजन न करे स्त्रीने प्रोत्साहन किया होयतो पांचरात दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें सातरात स्वयं प्रोत्साहन किया होय तो आठ राततक भोजन न करे शूद्रामें जानकर प्रवृत्त हुआ हो और वीर्य सींचनेसे पूर्वनिवृत्तिमें जाबालिने कहा है कि ब्राह्मण गुरुकी शूद्रा भार्यामें जानकर एकवार गमन करके अतिकृच्छ्र तप्त कृच्छ्र और पराक व्रतको करे स्त्रीने प्रोत्साहन किया होयतो अतिकृच्छ्र दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें तप्तकृच्छ्र और स्वयं प्रोत्साहन करनेमें पराक करे और उसीमें अज्ञानसे प्रवृत्तिमें दीर्घतमाने कहा है-गुरुकी शूद्रभार्यामें सावधानीसे एकवार गमन करके प्राजापत्य सांतपन और सातरात्रतक उपवास करे-स्त्रीने प्रोत्साहन किया होयतो प्राजापत्य-दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें सांतपन और स्वयं प्रोत्साहनकरनेपर सात रात्रका उपवास करे इति-इसी मार्गसे अन्यभी स्मृतियोंके वचनोंकी विषयव्यवस्था कल्पना करनी-पुरुषोंके समान स्त्रियोंकोभी यहां महापातकता, अविशेषसे है-सोई कात्यायनेनें कहा है कि यह दोष और शुद्धि पतितोंकी जो कही प्रसक्त स्त्रियोंकोभी यही विधि कही है-इससे उसकीभी जानकर प्रवृत्तिमें अविशेषसे मरणांतिक प्रायश्चित्त है-इसीसे पुरुषको मरणांतिक प्रायश्चित्त कहकर स्त्रीकोभी, योगीश्वरनें लिंगका छेदन करके पुरुषका और सकाम स्त्रीका वधरूप मरणांतिक प्रायश्चित्त दिखाया है और अकामसे तो मनु (अ० ११ श्लो० १८८) का कहा जो पतित स्त्रीभी यही व्रत करे बारह वर्षका प्रायश्चित्त है वही आधा कल्पना करके करना और जो मित्रकी भार्या सजातीय कुमारी, अन्त्यज, सगोत्रा, पुत्रकी स्त्री, इनका गमन गुरुतल्पके समान है इसे वचनसे गुरुतल्पके समपाप है और जो इसे वचनसे अतिदेशके विषय कहे है कि पिता और माताकी भगिनी, मातुलकी स्त्री, पुत्रकी वधू, माताकी सपत्नी और अपनी भगिनी, आचार्यकी पुत्री और स्त्री और अपनी पुत्री इनमें गमनका कर्त्ता गुरुतल्पग कहाता है इनमें एक रात्रसे आगे जानकर अभ्यास किया होय तो क्रमसे छः वर्षका और नव वर्षका प्रायश्चित्त जानना इसी विषयमें

---

१ तप्तकृच्छ्रं पराकं च तथा सांतपनं गुरोः। भार्यां वैश्यां सकृद्गत्वा बुद्ध्या मासं चरेद्द्विजः।

२ पंचरात्रं तु नाश्नीयात्सप्ताष्टौ वा तथैव च। वैश्यां भार्यां गुरोर्गत्वा सकृदज्ञानतो द्विजः।

३ अतिकृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं पराकं वा तथैव च। गुरोः शूद्रां सकृद्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाचरेत्।

४ प्राजापत्यं सांतपनं सप्तरात्रोपवासकम्। गुरोः शूद्रां सकृद्गत्वा प्रवेदिनः समाहितः।

१ एष दोषश्च शुद्धिश्च पतितानामुदाहृता। स्त्रीणामपि प्रसक्तानामेष एव विधिः स्मृतः।

२ छित्त्वा लिंगं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रियास्तथा।

३ एतदेव व्रतं कार्यं योषित्सु पतितास्वपि।

४ सखिभार्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च। सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम्।

५ पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा। आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः।

जानकर अभ्यासमें मरणांतिक प्रायश्चित्त है सोई बृहत् यमने कहा है कि सजातीय कुमारी, और अंत्यजा, सपिण्डकी स्त्री और पुत्रकी स्त्री इनमें वीर्यको सींचकर प्राणोंका त्याग करे मद्दा अंत्यज मध्यम अंगिरा के कहे ये जानने कि चाण्डाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहिक, आयोगव, ये सात अंत्यावसायी होते हैं रजक और चर्मकार आदि नहीं, क्योंकि उनमें लघु प्रायश्चित्त कहा है तैसेही मनु (अ. ११ श्लो. १७५) ने चाण्डाल, अंत्यज, इनकी स्त्रियोंमें गमन और इनका भोजन और इनका प्रतिग्रह अज्ञानसे करे तो पतित होता है और ज्ञानसे करनेमें इनकी तुल्य हो जाता है इस वचनसे चाण्डाल आदिकी तुल्यता कह कर जानकर अत्यंत अभ्यास में मरणांतिक प्रायश्चित्त दिखाया है अर्थात् अज्ञानसे चाण्डालीगमनके अभ्याससे पतित होता है इससे पतितको कहा द्वादश प्रायश्चित्त करे और जानकर अत्यंत अभ्यास करे तो चाण्डालोंके तुल्य होजाता है इस से बारह वर्षसे अधिक मरणांतिक प्रायश्चित्त करे यहभी बहुत कालके अभ्यासमें है एक-रात्रके अभ्यासमें तो तीन वर्षका प्रायश्चित्त है सोई मनु (अ. ११ श्लो. १७८) ने कहा है कि एकरात्रभर वृषलीके सेवनसे जो पाप द्विज करता है उस पापको भिक्षाका भोजन और जप इनको करता हुआ तीन वर्षमें नष्ट करताहै यहां वृषली शब्द चाण्डालीको कहता है क्योंकि अन्य स्मृतिमें वृषलीशब्दका प्रयोग इनमें देखा है कि चाण्डाली, बन्धकी, वेश्या, रजस्वला, कन्या, और विवाही हुई सगोत्रा ये पांच वृषली कही हैं बन्धकी स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) को कहते हैं कदाचित् शंकाकरो कि यहां अभ्यासका ज्ञान कैसे होगा, इसका समाधान कहते हैं कि (यत्करोत्येकरात्रेण) इस पूर्वोक्त मनुके वचनमें एकरात्रेण यह अत्यंतसंयोगमें तृतीया है, अत्यंतसंयोग गमनके अभ्यास विना नहीं हो सकता इससे गमनका अभ्यास जाना जाता है इसीसे एक रात्रसे अधिक कालके अभ्यासमें पूर्वोक्त बारह वर्ष आदिका गुरुतल्प व्रत और अतिदेशसे पाया मरणांतिक प्रायश्चित्त जानना और यदि चाण्डाली आदि स्त्रियोंके संग ज्ञानसे एकवार गमन करे तो यमआदिका कहा वर्ष दिनतक कृच्छ्र करे और अज्ञानसे दो चान्द्रायण करे कि चाण्डाल और पुल्कस इनका भोजन और इनकी स्त्रियोंसे गमन जानकर करनेसे कृच्छ्राब्द और अज्ञानसे दो चान्द्रायण करे और (स्वयोनिष्वंत्यजासु च) इस एक वाक्यके समभिव्याहार (कथन) से यही व्यवस्था जाननी मरणांतिक अग्निप्रवेशको कहते हैं क्योंकि कात्यायनकी स्मृति है कि जननी, भगिनी, अपनी पुत्री, पुत्रकी वधू इन का गमन अतिपातक जानना ये अतिपातकी अग्निमें प्रवेश करें यहां जननीके संग

---

१ रेतः सिक्त्वा कुमारीषु स्वयोनिष्वंत्यजासु च । सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते ।

२ चाण्डालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहिकस्तथा । मागधायोगवौ चैव सप्तैतेऽन्त्यावसायिनः ।

३ चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ।

४ यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः । तद्भैक्ष्यभुग् जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ।

१ चाण्डाली बन्धकी वेश्या रजस्था या च कन्यका । ऊढा या च सगोत्रा स्याद्वृषल्यः पञ्च कीर्तिताः ।

२ चाण्डालपुक्कसानां तु भुक्त्वा गत्वा च योषितम् । कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयं ।

३ जनन्यां च भगिन्यां च स्वसुतायां तथैव च । स्नुषायां गमनं चैव विज्ञेयमतिपातकं । अतिपातकिनस्त्वेते प्रविशेयुर्हुताशनं ।

एकवार गमनमें और भगिनीआदिके संग वारंवार गमनमें अग्निमें प्रवेश जानना क्योंकि जननीका गमन महापातक है और भगिनीआदिका गमन महापातकके अतिदेशका विषय अतिपातक है उन दोनोंकी तुल्यता नहीं होसकती और जो बृहत् यमने कहा है कि चाण्डाली पुल्कसी म्लेच्छी पुत्रकी वधू भगिनी सखी मातापिताकी भगिनी निक्षिप्त (सौंपी हुई) शरणागत मातुलानी संन्यासिनी अपने गोत्रकी और राजा शिष्य और गुरु, इनकी स्त्री इनके संग गमन करके चान्द्रायण करे और जो अंगिराका वचन है कि पतित और अंत्यजों की स्त्रीके संग गमन और भोजन और प्रतिग्रह लेकर मासोपवास वा चान्द्रायण करे बृहद्यम और अंगिराके यह दोनों वचन गुरु तल्पके अतिदेश (तुल्य) के विषयोंमें जानकर जो प्रवृत्त हुआ हो उसकी वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिमें जानने—और जो यह संवर्तका वचन है कि भगिनी माताकी बहिन और अन्य मातासे पैदाहुयी भगिनी इन स्त्रियोंके संग मोहसे गमन करके तप्तकृच्छ्र करे—यह वचनभी पूर्वोक्त विषयमें अज्ञानसे प्रवृत्त हुआ हो और वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्ति होगई हो वहां ही जानना—जो अत्यंत व्यभिचारिणी इन (पूर्वोक्त) के संग जानकर वा अज्ञानसे गमन करे तोभी येही चांद्रायण तप्तकृच्छ्र रूप प्रायश्चित्त क्रमसे जानने और गुरुकी भोगी हुई भी साधारण स्त्रियोंके गमनमें गुरुतल्पत्वका दोष नहीं है क्योंकि व्याघ्रकी स्मृति है कि जातिमें कहा, और पराई दाराका भोगरूप पारदार्य और कन्याका दूषण और गुरुतल्पगमन का दोष ये सब साधारण स्त्रियोंमें नहीं होते— इसी प्रकार अन्य भी छोटे बडे प्रायश्चित्तोंके वचनोंको ढूंढकर उनकी विषय व्यवस्था समझनी—हम ग्रंथके विस्तार भयसे नहीं लिखते— ॥

भावार्थ—गुरुतल्पग वर्ष दिनतक प्राजापत्य कृच्छ्र करे वा चांद्रायण और वेदकी संहिता का तीन मासतक अभ्यास करे २६०

इति गुरुतल्प प्रायश्चित्त प्रकरणम् ।

एभिस्तुसंवसेद्योवैवत्सरंसोपितत्समः ॥
कन्यांसमुद्वहेदेषांसोपवासामकिंचनाम् ॥

पद—एभिः ३ तु॰— संवसेत्—क्रि—यः १ वै॰—वत्सरं २ सः १ अपि॰— तत्समः १—कन्यां २ समुद्वहेत् क्रि—एषां ६—सोपवासां २ अकिंचनाम् २ ॥

योजना—एभिः (महापातकिभिः) सह यः वत्सरं संवसेत् सः अपि तत्समः भवति एषां (महापातकिनां) सोपवासां अकिंचनां कन्यां समुद्वहेत्— ॥

तात्पर्यार्थ—अब संसर्गीके प्रायश्चित्तको कहते हैं—इन पूर्वोक्त ब्रह्मह आदिकोंके संग जो मनुष्य वर्ष दिनतक अत्यंत संवास (संग आचरण) करे वहभी उनकेही समान हो जाता है अर्थात् जो जिसके संग आचरण करे वह उसकेही प्रायश्चित्तको करे ऐसे उसके प्रायश्चित्तके अतिदेशके लियेही तत्सम पदका ग्रहण किया है कुछ पातकके

१ चाण्डालीं पुल्कसीं म्लेच्छां स्नुषां च भगिनीं सखीम् । मातापित्रोः स्वसारं च निक्षिप्तां शरणागताम् । मातुलानीं प्रव्रजितां स्वगोत्रां नृपयोषितम् । शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।

२ पतितान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । मासोपवासं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ।

३ भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् । एता गत्वा स्त्रियो मोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।

१ जात्युक्तं पारदार्यं च कन्यादूषणमेव च । साधारणस्त्रियो नास्ति गुरुतल्पत्वमेव च ।

अतिदेशार्थ नहीं–क्योंकि वह तो जो उनके संग संवास करे इतने कहनेसेही सिद्धथा यहां यद्यपि अतिदेश है तो भी संपूर्ण ही बारह वर्षका प्रायश्चित्त करे क्योंकि संसर्गी साक्षात् महापातकी है–अपि शब्दसे यह दिखाया कि केवल महापातकी का संयोगी ही उसके समान नहीं होता किंतु अतिपातकी, पातकी, उपपातकी आदिकोंके मध्यमें जो जिसके संग संसर्ग करै वह भी उसके समान होनेसे उसके ही प्रायश्चित्तकोकरे-इसीसे संपूर्ण प्रायश्चित्तको कहकर मनु (अ० ११ श्लो० १८१)ने कहा है कि जो मनुष्य इनके मध्यमें जिस पतितके संग संसर्ग करै वह संसर्गके पापकी शुद्धिके लिये उसके ही व्रतको करै–विष्णुने भी सामान्यसे उपपातकी आदि पापियोंके संसर्ग में उसकेही प्रायश्चित्तका भागी दिखाया है कि जिस पापात्माके संग संसर्ग करै वह उसके ही व्रतको करै इसीसे मनु (अ ११ श्लो १८९)ने सामान्यसे सब पापियोंका निषेध कियाहै कि पापियोंके संग प्रायश्चित्त करनेसे पहिले किसी अर्थको न करै और पापीभी प्रायश्चित्त किये विना सज्जनोंका संसर्ग न करै–यहभी बारह वर्षतक जो पतित हैं उनकेही जानकर संसर्गके विषयमें है-क्योंकि देवलकी स्मृति है कि जानता हुआ नर पतितके संग वर्ष दिनतक वसकर उसके मेलसे वहभी वर्षके अंतमें पतित होता है–

अज्ञानसे संसर्गमें तो वसिष्ठने कहा है कि ब्राह्म (पठनपाठन) यौन (विवाह आदि) स्रौव (होम आदि) से पतितके संग जो व्यवहार किया होय तो पतितोंसे जो धन मिलाहो उसको त्यागदे और उनके संग न वसै और उत्तर दिशामें जाकर भोजनका त्याग और संहिताका पाठ करता हुआ पवित्र होता है यह शास्त्रसे जानते हैं–तैसेही वचन है कि ब्रह्महा–मद्यप–चोर और गुरुतल्पग और जो उनके संग वसै ये महापातकी होते हैं इससे सब निर्दोष है–(तैः) इस तृतीयांत सर्वनामसे परामर्श (जाने) किये ब्रह्महा आदि चारका संसर्गीही महापातकी कहाहै उस संसर्गीका जो संसर्गी है वह महापातकी नहीं होता–कदाचित् कोई शंका करै कि महापातकीका संसर्गही महापातकी होनेमें हेतु है कुछ ब्रह्महा आदि विशेषोंका संसर्ग महापातकी होनेमें हेतु नहीं है क्योंकि उनके संसर्गमें एकन एकका व्यभिचार है इससे यहां ब्रह्महा आदिका जो संसर्गीका संसर्गी उसकोभी महापातकीका संसर्ग हैही–उसकोभी महापातकित्व हो जायगा क्योंकि न होनेमें निषेध कोई नहीहै–इस शंकाका समाधान कहतेहैं कि यह बात होजाय यदि अन्य प्रमाणसे महापातकित्व होजाय और शब्दसेही महापातकित्व मानोगे तो तिस शब्दसे ऐसे महापातकित्व नहीं हो सकता क्योंकि तैः इस प्रकृत (प्रकरणके) विशेषोंके बोधक सर्वनामसे ब्रह्महा आदि विशेषोंके संसर्गकोही महापातकित्वके हेतुत्वकी

१ यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः । तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ।

२ पापात्मना येन सह संसृज्येत स तस्यैव व्रतं कुर्यात् ।

३ एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं कंचित्समाचरेत् ।

४ पतितेन सहोषित्वा जानन्संवत्सरं नरः । मिश्रितस्तेनसोऽब्दांते स्वयं च पतितो भवेत् ।

१ पतितसम्प्रयोगे तु ब्राह्मेण यौनेन वा स्रौवेण वा यास्तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदुदीच्यां दिशि गत्वाऽनश्नन्संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ।

२ ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः । एते महापातकिनः यश्च तैः सह संवसेत् ।

प्रतीति हुयी है-इसीसे प्राप्तिके अभावसेही प्रतिषेधका अभावभी हेतु नही है-इससे संसर्गीके संसर्गीयोंको द्विजातिके कर्मोंसे हानि नही होती प्रायश्चित्त तो होताही है कदाचित् कहो कि संसर्गीका संसर्गी पतित नही तो प्रायश्चित्त कैसा-सो ठीक नही क्योंकि प्रायश्चित्त करनेसे पहिले किसी पापीके संग व्यवहार न करै इस पूर्वोक्त मनु (अ. ११ श्लो. १८९) वचनमें सामान्यसे पापी मात्रके निषेधसे महापातकीके संसर्गीका संसर्गभी निषिद्ध है इससे पतित न भी हो तोभी पादहीन (कम) प्रायश्चित्त युक्तही है क्योंकि व्यासको वचन है कि जो मनुष्य जिनके संग वर्ष दिनतक वसै वहभी उसके तुल्य हो जाता है और वहभी तिस[१]पापीके व्रतको पादहीन करै-इसी प्रकार चौथे और पांचवें कोभी जानकर संसर्गमें आधा और चौथाई प्रायश्चित्त जानना-इससे यह सिद्ध भया कि साक्षात् ब्रह्महा आदिके संसर्गी हीको ब्रह्महा आदिके प्रायश्चित्तकी प्राप्ति है संसर्गीके संसर्गीको नही यहां यद्यपि जानकर करनेमें ब्रह्महा आदिकोंको मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा है तोभी संसर्गीको उसका अतिदेश नही है क्योंकि वह उसकेही व्रतको करै इस पूर्वोक्त वचनसे व्रतकाही अतिदेश है और मरण व्रतरूप नही है इससे यहां जानकर कियेभी संसर्गमें बारह वर्षका और अज्ञानसे किये संसर्गमें उसका आधा प्रायश्चित्त है और संसर्ग अपने निबंधन कर्मोंके भेदसे अनेक प्रकारका होता है-सोई वृद्ध बृहस्पतिनें कहा है कि एक शय्या पर बैठना-पंक्ति भांड पाक अन्नमिश्रण याजन अध्यापन-यौन-सहभोजन-यह नव ९ प्रकारका संकर कहाहै वह[२] अधमोंके संग न करना-देवलनेभी कहा है कि संलाप स्पर्श निःश्वास-संग यान आसन और अशन (भोजन) याजन अध्यापन योनि इनके करनेसे मनुष्योंको पापका संक्रम (प्राप्ति) होता है-अर्थात् एक शय्यापर बैठने एक पंक्तिमें भोजन-एक पात्रमें पाक-अन्नका मिश्रण (संसर्ग उसके अन्नका भोजन) पतितको वा पतितसे यज्ञ कराना-पतितको पढाना वा पतितसे पढना-यौन पतितको कन्या देना वा पतितसे कन्या लेना-सह भोजन (एक पात्रमें भोजन) संलाप (भाषण) देहका स्पर्श-निःश्वास (पतितके मुखकि वायुका स्पर्श) सहयान (एक अश्व आदि पर चढना)-इन सबके मध्यमें जिस किसी कर्मसे कितने कालमें पतित होता है वह तो वृद्धविष्णुने[१] कहा है कि पतितके संग एकयान भोजन आसन शयन इनको करे तो वर्ष दिनमें और यान स्रौव मुख्य कर्मोंसे सद्यः (उसी समयमें) पतित होता है-यहां एक भोजनसे एक पंक्तिमें भोजन लेना-क्योंकि एक पात्रमें भोजन तो सद्यःही पतित करता है क्योंकि देवलकी स्मृति है कि याजन-योनि संबंध-स्वाध्याय (पढना) सह भोजन इनको पतितके संग करके सद्यःही पतित होता है और स्रौव शब्दसे याजन और मुख्य शब्दसे अध्यापन लेना-यद्यपि (यौनस्रौवमुख्यैः),

१ यो येन सवसेद्वर्षं सोपि तत्समतामियात्। पादहीनं चरेत्सोपि तस्यतस्य व्रतं द्विज ।

२ एकशय्यासन पंक्तिर्भाण्डपक्त्यन्नमिश्रणम् । याजनाध्यापने योनिस्तथा च सहभोजनम्। नवधा संकरः प्रोक्तो न कर्तव्योऽधमैः सह ।

१ संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानासनाशनात् । याजनाध्यापनाद्यौनात्पाप संक्रमते नृणाम् ।

२ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्। एकयानभोजनासनशयनैर्यौनस्रौवमुख्यैस्तु सद्यः सद्यएव ।

३ याजन योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम्। कृत्वासद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ।

यह द्वंद्व समासका निर्देश है तोभी वे पृथक् २ ही सद्यः पतनके हेतु हैं क्योंकि सुमंतु की स्मृति है कि जो पतितोंके संग यौन स्रौव मुख्य संबंधोंके मध्यमें अन्यतम (कोईसा) संबंधको जो करे उसकोभी वही प्रायश्चित्त है–एक यान आदि तो चारों मिल करही पतनके हेतुहैं–क्योंकि (एकयानभोजनासनशयनैः) यह इतरेतरयोग द्वंद्व समासका निर्देश है–प्रत्येकका करना पतनका हेतु तो नही तोभी दोषका हेतु तो है ही–क्योंकि इस पराशरके वचनसे निरपेक्षभी पापके हेतु कहेहैं–कि आसन शयन यान संभाषण सहभोजन इनसे इस प्रकार पाप लगते हैं जैसे जलमें तेलकी बूंद–संलाप स्पर्श निःश्वास ये तीनों यान आदि चारोंमें प्रसंगसे होतेहैं अर्थात् संग बैठेगा तो संभाषण होहीगा–इससे समुच्चित (मिले हुये सब) ही पापके हेतुहैं पृथक् २ नही क्योंकि ये सब अल्प दोषहैं और पापके हेतु तो हैंही–क्योंकि (संलापस्पर्शनिःश्वास) यह देवलका वचन दिखाआयेहैं इससे संलाप आदिके विना सहयान आदि चारोंके करनेमें पंचम भागसे कम बारह वर्षका प्रायश्चित्त करै और संलाप भी करै तो पूर्ण प्रायश्चित्त करै ऐसे कहनेसे इनके संग वर्ष दिनतक जो वसै वहभी उनकी तुल्य होता है इस योगीश्वरके वचनमें भी सहयान आदि चारही लेने युक्त हैं इससे संलाप आदि पृथक् पतित करनेके हेतु नहीं है इससे मनु (अ. ११ श्लो. १८०) ने यान आदि चारही पतितके हेतु कहे हैं कि पतितके संग वर्ष दिनतक यान आसन भोजन करता हुआ वर्ष दिनमें पतित होता है और याजन अध्यापन यौनसे वर्ष दिनमें पतित नहीं होता किंतु शीघ्रही पतित होता है यहां आसनका ग्रहण शयनका भी उपलक्षण है और यहां पूर्वोक्त विष्णुवचनके अनुरोधसे और तैसेही इस वचनसे (यानासनाशनात्) इस व्यवहित (चौथा) पदके संग पहिले दोपदोंका संबंध है और तीसरे पदके संग नहीं पतितके संग सदैव वर्ष दिनतक भोजन आसन शय्या आदि करता हुआ एक वर्षमें पतित होता है कदाचित् कहो कि मनुके वचनमें अनन्वय दोष होगा अर्थात् (यानासनाशनात्) यह पंचमी (पतितेन सहाचरन्) इसके संग नहीं घटसकती सो ठीक नहीं क्योंकि यान आसन और) अशन आदिके हेतु आचरन् नाम आचार करता हुआ पतित होता है ऐसे भेदकी विवक्षासे संबंध होजायगा जैसे इस आधेय संमतिसे यज्ञ करके ईस श्रुतिमें तृतीया का अन्वय होता है अथवा आचरन् इस शत्र प्रत्ययसे हेतुका अर्थ प्रतीत है इससे (यानासनाशनात्) यह पंचमी द्वितीयाके अर्थमें है और याजन अध्यापन यौनसे तो वर्ष दिनमें पतित नहीं होता किंतु शीघ्र होता है यह अर्थभी पूर्वोक्त वचनोंके अनुरोधसेही जानना इससे यान आदि चारोंके करनेसे शीघ्रही पतित होता है और यान आदि चारोंके अभ्यासको वर्ष दिनतक निरंतर करनेसे पतित होता है यह युक्त है और (वत्सरं सोपि तत्समः) इस श्लोकमें वत्सरं यह अत्यंत संयोगमें द्वितीया देखते है इससे

१ यः पतितैः सह येनमुख्यसंबंधानां सर्वेषामन्यतमं संबंधं कुर्यात्तस्याप्येतदेव प्रायश्चित्तम् ।

२ आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सहभोजनात् । संक्रामन्ति हि पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि ।

३ एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः ॥

४ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥

१ एतया पुनराधेयसंमितयेष्ट्वा ॥

व्यवहित दिनोंकी गिनती करनी जब तीनसौ साठ ३६० दिन संसर्गके पूरे होजाय तो पतितका प्रायश्चित्त होता है और उससे न्यूनमें तो अन्यही प्रायश्चित्त है सोई पराशरने कहा है कि अज्ञानसे पतित आदिकीका संग पांचदिन दश वा बारह दिन मासार्द्ध एक मास वा तीन मास आधा वर्ष वा एक वर्ष करे तो पहिले पक्षमें त्रिरात्र दूसरेमें कृच्छ्र तीसरेमें सांतपन कृच्छ्र चौथेमें दशरात्र पांचवेमें पराक छठेमें एक चान्द्रायण सातवेमें दो चान्द्रायण और आठमें पक्षमें छः मासतक कृच्छ्र करै और वर्ष दिनसें अधिक संसर्गमें तो उनके समान होता है. जानकर संसर्गमें तो विशेषकर अन्य स्मृतिमें कहा है सुमंतुका वचन है कि पांच दिनके संसर्गमें कृच्छ्र दशदिनके संसर्गमें तप्तकृच्छ्र आधमासमें पराक और एक मासके संसर्गमें चान्द्रायण करै तीन मासके संसर्गमें कृच्छ्र और चांद्रायण करै छः मासके संसर्गमें षाण्मासिक कृच्छ्र करै वर्ष दिनके संसर्गमें मनुष्य वर्ष दिनतक चान्द्रायण करै यहां वर्ष दिनका संसर्ग कुछ न्यून (कम) लेना क्योंकि पूरे वर्षके संसर्गमें मनुआदिकोंने बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है जो बृहस्पतिका वचन है कि याजन अध्यापन आदिसे एक आसन और शय्यासे पतितके संग छः मासतक संसर्ग करै तो आधा प्रायश्चित्त करै, याजन अध्यापन यौन एक पात्र भोजनोंको छः मासमें पतित करनेके हेतु कहताहै, वह वचन अज्ञानसे अत्यंत आपत्ति पंच महायज्ञ आदिका याजन और व्याकरण आदि अंगोंका पढाना और दुहिता और भगिनीके संग संबंधसे भिन्न संबंधमें जानना क्योंकि उत्तम उत्तम याजन आदिकोंसे तो शीघ्रही पतित होना कह आये हे इसी प्रकार पुत्री भगिनी पुत्रवधू उनके गामी जो अति पातकी हैं उनके संसर्गियोंको ज्ञानसे नव वर्षकी और अज्ञानसे साढेचार वर्षकी कल्पना करनी सखी पितृव्यदारा (चाची) आदिकोंके गामी जो पातकी हैं उनके संसर्गियोंको जानकर छः वर्षका और अज्ञानसे तीन वर्षका और उपपातकी आदिके संसर्गियोंकोभी जानकर तीनमासके और अज्ञानसे डेढ मासके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी–पुरुषोंके समान स्त्रीभि महापातकी आदिकोंके संसर्गसे पतित होती हैं सोई शौनकने कहा है कि जो पुरुषोंके पतनके निमित्त हैं वही स्त्रियोंके भी हैं और ब्राह्मणी हीन वर्णकी सेवामें अधिक पतित होती है इससे स्त्रियोंको भी जिन महापातकी आदिकोंके मध्यमें जिसके संग संसर्ग हो उसकेही प्रायश्चित्तको आधा करके करावे इसी प्रकार बालक वृद्ध और आतुरोंको जानकर आधा और अज्ञानसे चौथाई तैसेही अनुपनीत बालकोंको जानकर चौथाई अज्ञानसे उसका आधा प्राय-

१ संसर्गमाचरन्विप्रः पतितादिष्वकामतः । पचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । मासार्द्धं मासमेकं वा मासत्रयमथापि वा । अब्दार्द्धमेकमब्दं वा भवेदूर्ध्वं तु तत्समः । त्रिरात्रं प्रथमेपक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरन् । चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तृतीये पक्ष एव तु । चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंचमे ततः । षष्ठे चान्द्रायणं कुर्यात्सप्तमे चैन्दवद्वयम् । अष्टमे च तथा पक्षे षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ।

२ पञ्चाहे तु चरेत्कृच्छ्रं दशाहे तप्तकृच्छ्रकम् पराकस्त्वर्धमासे स्यान्मासे चान्द्रायणं चरेत् । मासत्रये प्रकुर्वीत कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम्–षाण्मासिके तु संसर्गे कृच्छ्रं त्वब्दार्धमाचरेत् । संसर्गेत्वाब्दिके कुर्याद-ब्दं चान्द्रायणं नरः ।

१ षाण्मासिके तु संसर्गे याजनाध्यापनादिना । एकासनशय्याभिः प्रायश्चित्तार्धमाचरेत् ।

२ पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामधिकं पतति ।

श्चित्त जानना–इति दिक्–अर्थात् यही मार्ग है अब पतितके संसर्गके निषेधसे निषिद्ध जो यौन संबंध उसका कहीं२ प्रतिप्रसव (विधि) कहते हैं–इन पतितोंकी पतित अवस्थामें उत्पन्न जो कन्या, वह यदि सोपवास हो अर्थात् संसर्ग कालका उचित प्रायश्चित्त करचुकी हो और अकिंचन हो अर्थात् जिस ने वस्त्र अलंकार आदि पिताका धन ग्रहण न कियाहो उसेभी भली प्रकारसे विवाह ले कन्याको विवाह ले यह कहनेसे यह सूचित किया है कि त्यागा है पतितका संसर्ग जिसने ऐसी कन्याको स्वयंही विवाहे पतितके हाथसे ग्रहण न करे–ऐसे होनेसे पतितके संग यौन संबंधके निषेधका विरोध भी होगा–यही अर्थ वृद्ध हारीतेने स्पष्ट कियाहै कि पतितकी ऐसी कुमारीको तीर्थमें वा अपने घरमें विवाह ले जो वस्त्रोंसे रहितहो–जिसने अहोरात्र उपवास किया हो और जिसको प्रातःकालके समय शुक्ल नवीन वस्त्र धारण कराये हो–और जिसने ऊंचे स्वरसे तीनवार यह कह दिया हो कि न मैं इनकी हूं और न ये मेरे हैं–तैसेही इनकी कन्याको विवाह ले यह कहनेसे यह दिखायाकि कन्यासे भिन्न इन पतितोंकी संतान संसर्गके अयोग्य है–इसीसे वसिष्ठने कहा है कि स्त्रीको छोडकर पतितसे उत्पन्न पतित होता है क्योंकि वह स्त्री परगामिनी (परघर जानेवाली) है अरिक्था (जो पतितका धन न हो) है उसको विवाह ले ॥

भावार्थ–इन पतितोंके संग वर्ष दिनतक जो वसे वहभी पतितोंके तुल्य होता है–और किया है उपवास जिसने ऐसी इनकी अकिंचन कन्याको विवाह ले॥२६१॥ इति संसर्गप्रायश्चित्तप्रकरणम्– ॥

चांद्रायणंचरेत्सर्वानवकृष्टान्निहत्यतु ।
शूद्रोऽधिकारहीनोपिकालेनानेनशुद्ध्यति ॥

पद–चांद्रायणं ६ चरेत् क्रि–सर्वान् २ अवकृष्टान् २ निहत्यऽ– तुऽ– शूद्रः १ अधिकारहीनः १ अपिऽ– कालेन ३–अनेन ३ शुद्ध्यति क्रि–॥

योजना–सर्वान् अवकृष्टान् निहत्य चांद्रायणं चरेत्–अधिकारहीनः अपि शूद्रः अनेन कालेन शुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ–अब प्रतिलोमोंके वधका प्रायश्चित्त कहते हैं–प्रतिलोमसे उत्पन्न सूत मागध आदि प्रत्येकको हतकर चांद्रायण करे सोई शंखने कहा है कि संपूर्ण अवकृष्टोंके प्रत्येकके वधमें चांद्रायण करे–अथवा अंगिराने कहे पराकको करे–कि संपूर्ण अत्यंजोंके गमन भोजन संप्रमापण (मारना) में पराकसे शुद्धि होती है यह अंगिराका कथन है–उसमेंभी जानकर सूत आदिके वधमें चांद्रायण और अज्ञानसे सूतके वधमें पराक–वैदेहिकके वधमें पादोन पराक–चांडालके वधमे द्विपाद पराक–मागधके वधमें पादोन पराक–क्षत्ताके वधमें द्विपाद पराक–आयोगवके वधमें द्विपाद पराक करे–इसी प्रकार चांद्रायणकेभी तारतम्य (न्यून अधिक) की कल्पना करनी–जो प्रद्मगर्भका वचन है कि प्रतिलोमसे पैदा

१ पतितस्य तु कुमारीं विवस्त्रामहोरात्रोपोषितां प्रातःशुक्लेनाहतेन वाससाच्छादितां नाहमेतेषां न ममैते इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत् ।

२ पतितैरुत्पन्नः पतितो भवति अन्यत्र स्त्रियाः सा हि परगामिनी तामरिक्थामुपेयात् ।

१ सर्वेषामवकृष्टानां वधे प्रत्येकं चांद्रायणम् ।

२ सर्वेषामन्त्यजानां गमने भोजने संप्रमापणे । पराकेण विशुद्धिः स्यादित्यांगिरसभाषितम् ।

३ प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणां मासावधिः स्मृतः । अन्तरप्रभवानां च सूतादीनां चतुर्विधम् ।

हुयी स्त्रियोंको मासकी अवधि कही है और अंतमें उत्पन्न सूत आदिकी च्यार दो छः मास प्रायश्चित्तकी अवधि कही है–वह वचन आवृत्ति (वारंवार) के विषयमें है–उसमें सूतके वधमें छः मास–वैदेहिकके वधमें चारमास–चांडालके वधमें दो मास होते हैं इस प्रकार योग्यतासे अन्वय समझना–तैसेही मागधके वधमें चारमास–क्षत्ताके वधमें दो मास–आयोगवके वधमें तीन मासका प्रायश्चित्त जानना यह व्यवस्था है–अब आधे श्लोकसे शूद्रोंकी शुद्धिको कहते हैं–यद्यपि शूद्र जप आदि संस्कारसे हीन है तथापि बारह वर्षके समयका जो प्रायश्चित्तरूप व्रत उससे शुद्ध होता है यहां शूद्रका ग्रहण स्त्री और प्रतिलोमसे उत्पन्नोंकाभी उपलक्षण है यद्यपि शूद्रको गायत्रीके जपका असंभव है तथापि नमस्कार मंत्रका जप होता है–इसीसे स्मृत्यंतरमें कहा है कि शूद्रको उच्छिष्ट भोजन और नमस्कार मंत्रकी आज्ञा शास्त्रकारोंकी है–अथवा वचनके बलसे जप आदिसे रहित ही व्रतको करै–क्योंकि अंगिराकी तिससे शूद्रको प्राप्त (देख) हो कर–धर्मका ज्ञाता–धर्म मार्गमें स्थित शूद्रको जप और होमसे विवर्जित प्रायश्चित्त दे (बताये)–तैसे औरभी अंगिरानेही कहा है कि गो और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर शूद्र काल (१२ वर्ष) से वा दान देनेसे वा उपवासोंसे–अथवा द्विजोंकी सेवासे शुद्ध होता है–जो मनु (अ० ४ श्लो० ८०) का वचन कि शूद्रको न धर्मका उपदेश करै और न व्रत करनेको कहै–शूद्रको व्रतके निषेधका बोधक है वह उस शूद्रके विषयमें है जो शरण न आया हो–और जो स्मृत्यंतरका वचन है कि इन कृच्छ्रोंको सदैव तीन वर्षमें करै और इन कृच्छ्रोंमें शूद्रका अधिकार नही कहा है–वह वचन उन कृच्छ्रों के विषयमें है जो कामनाके लिये किये हों–इससे स्त्री और शूद्रोंको और प्रतिलोमजोंको तीन वर्षके समान व्रतका अधिकार है यह सिद्ध भया–जो गौतमका वचन है कि प्रतिलोम धर्मसे हीन होते हैं–वह उपनयन आदि विशिष्ट धर्मके अभिप्रायसे है ॥

भावार्थ–संपूर्ण प्रतिलोमोंको मारकर चांद्रायण करै–और अधिकारसें हीनभी शूद्र इसी बारह वर्षके कालसे शुद्ध होता है ॥२६२॥

इति पंचमहापातकप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

पंचगव्यंपिबेद्गोघ्नोमासमासीतसंयमः ॥
गोष्ठेशयोगोऽनुगामीगोप्रदानेनशुद्ध्यति ॥

पद–पंचगव्यं २ पिबेत् क्रि– गोघ्नः १ मासं २ आसीत क्रि– संयमः१ गोष्ठेशयः १ गोऽनुगामी १ गोप्रदानेन ३ शुद्ध्यति क्रि–॥

कृच्छ्रंचैवातिकृच्छ्रंचचरेद्वापिसमाहितः ।
दद्यात्त्रिरात्रंचोपोष्यवृषभैकादशास्तुगाः ॥

पद–कृच्छ्रं २ च॰ एव॰ अतिकृच्छ्रं २ च॰ चरेत् क्रि–वा॰ अपि॰ समाहितः१दद्यात् क्रि–त्रिरात्रं २ च॰ उपोष्य॰ वृषभैकादशाः२ तु॰ गाः २ ॥

योजना–गोघ्नः पंचगव्यं पिबेत् संयमः सन् मासं आसीत–गोष्ठेशयः गोऽनुगामी, सः गोप्रदानेन शुध्यति–च पुनः समाहितः

---

१ उच्छिष्टं पात्रं भोजनमनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः ।

२ तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितम्। प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम् ।

३ शूद्रः कालेन शुद्ध्येत्तु गोब्राह्मणहिते रतः। दानैर्वाप्युपवासैर्वा द्विजशुश्रूषया तथा ।

१ न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ।

२ कृच्छ्राण्येतानि कार्याणि सदा वर्षत्रयेण कृच्छ्रेष्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते ।

३ प्रतिलोमा धर्महीनाः ।

सन् कृच्छ्रं चपुनः अतिकृच्छ्रं चरेत्–चपुनः त्रिरात्रं उपोष्य वृषभैकादशाः गाः दद्यात्–

तात्पर्यार्थ–अब उपपातकोमें प्रथम गोवधके प्रायश्चित्तको कहते हैं–गौको जो हते उसे गोघ्न कहते हैं यहां 'हन् हिंसायां' इस धातुसे 'मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' इस वार्तिकसे क प्रत्यय होता है–वह गोघ्न मास भर सावधानीसे बैठा रहे क्या करता हुआ इस अपेक्षामें कहते हे पंचगव्यको अर्थात् गौके जो गोमूत्र गोमय दधि दूध घृत पांच हैं उनको शास्त्रोक्त विधिसे मिलाकर पीवे अन्य भोजनके त्यागसे भोजनके कार्यमें उनकाही विधान है–गोष्ठेशय रहे प्राप्त हुये शयनके अनुवादसे गोष्ठ की विधिसे और दिनमें शयनका निषेध हे इससे रात्रिमें गोशालामें सोवे–और गोनुगामी गौओंके जो अनु (पीछे) गमन करे उसे गोनुगामी कहते हैं–अर्थात् गौओंके पीछे गमन करना ही जिसका व्रत है यहां 'व्रते' इस सूत्रसे णिनि प्रत्यय होता है–इससे जिन गौओंके गोष्ठमें सोवे प्रातःकाल वनमें जाती हुई उन्ही गौओंके पीछे गमन करे–(अनुगच्छेत्) अनुकूल गमन करे यह कहनेसे जब वे गौचलैं तभी पीछे २ आपचल दे जब वे खडी हो जाय तब चले तो पीछे गमन नही हो सकता इससे आपभी खडा हो जाय यह अर्थात् जानागया–और अनुगमनके विधानसेही जब सायंकालको वे गोष्ठमें चलें तब इनके संग पीछे २ गोष्ठमें प्रवेश करे यहभी अर्थात् सिद्ध है–ऐसे करता हुआ मासके अंतमें एक गौके दान करनेसे शुद्ध होता है अर्थात् गोहत्याका दोष निवृत्त हो जाता है यहां तक एक व्रत हुआ–गोष्ठमें शयन और गौओंका अनुगमन यहां भी (दूसरे मतमें) लेते हैं और कृच्छ्रकी विधिसे पंचगव्यके आहार (भोजन) की तो निवृत्ति होती है इससे मासभर निरंतर सावधान होकर कृच्छ्र करे और गोष्ठमें सोवे और गौओंका अनुगमन करे–यह दूसरा व्रत है–इसीसे जाबालने[1] मासभर प्राजापत्य पृथक् प्रायश्चित्त कहा है–कि अज्ञानसे गौको हते तो मासभर प्राजापत्य करे और गौओंका हितकारी और गौओंका अनुगामी वह गोदान करनेसे शुद्ध होता है–अथवा तिसी प्रकार अति कृच्छ्र करे यह तीसरा व्रत है–कृच्छ्र और अतिकृच्छ्रका लक्षण आगे कहेंगे–अथवा तीन रात्र उपवास करके वृषभ (बैल) है ग्यारहवां जिनमें ऐसी दश गौ दे यह चौथा व्रत है–ये चार व्रत हैं उनमें अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणकी गौका वध करे तो उपवास करके एक वृषभ-दश गौओंका दान तीनरात्र उपवास जानना क्योंकि श्रेष्ठ स्वामीकी और उत्तम गुणवाली गौके वधमें गुरु प्रायश्चित आगे कहेंगे क्षत्रियकी गौके उसी प्रकार वधमें मास भर पंचगव्यका भोजनरूप प्रथम प्रायश्चित्त है यहां मास भर पंचगव्यका भोजन अत्यंत स्वल्प है इससे मासोपवासके तुल्य है तिससे छः छः उपवासोंसे एक एक प्राजापत्यकी कल्पना करने पर पांच कृच्छ्रोंके प्रत्याम्नायसे पांच गौ और एक गोदान मासके अंत में इस प्रकार छः गौ होती हैं और पूर्वोक्त ब्राह्मणकी गौके वधमें एक बैल दश गौ और तीन रात्रका उपवास है इससे यह प्रायश्चित्त उससे लघु है–कदाचित् कहो कि ब्राह्मणकी गौओंको गुरुत्व कैसे है इसका उत्तर यह है कि नारदने[2] देवता, ब्राह्मण, राजा, इनका द्रव्य उत्तम जानना इस वचनसे ब्राह्मणके द्रव्यको उत्तम कहा है और (गोपु-

१ प्राजापत्यं चरेन्मासं गोहंता चेदकामतः। गोहितो गोनुगामी स्याद्गोप्रदानेन शुद्ध्यति।

२ देवब्राह्मणराज्ञां तु विज्ञेयं द्रव्यमुत्तमम्।

ब्राह्मण संस्थासु) इस वचनसे दंडभी अधिक दिखाय आये हैं और वैश्यकी उसी प्रकार गौके वधमें मासभर अति कृच्छ्र करे पहिले आद्य अति कृच्छ्रमें नव दिनतक पाणिपूरान्न (अंजलिभर) भोजन कहा है अंतके कृच्छ्रमें तीनरात्र उपवास कहा है इस प्रकार अतिकृच्छ्रके धर्मसे मास व्रत करने पर छः रात्र उपवास होता है और चौवीस दिन पाणिपूरअन्नका भोजन तिससे कृच्छ्रके प्रत्याम्नाय (बदला) की कल्पनासे किंचित् न्यून पांच गौ होती हैं इससे पहिले दोनो व्रतोंसे यह लघु है तिससे वैश्यकी गौके वधमें यही व्रत युक्त हैं उसी प्रकार शूद्रकी गोहत्यामें मासभर दूसरा प्राजापत्य व्रत है वहां सार्द्ध दो प्राजापत्य (अढाई)के प्रत्याम्नायसे किंचित् अधिक दो गौ होती है इससे इसको पहिलें तीनोसे अत्यंत लघु होनेसे शूद्रकी गोहत्याके विषयमें मानना उचित है और ये चारों प्रायश्चित्त साक्षात् तो वध कर्ताके अनुग्राहक, प्रयोजक, अनुमंताओंमें गुरु लघु भावके तारतम्यकी अपेक्षासे पूर्वोक्त विषयमें ही युक्त करने जो विष्णुने[1] तीन व्रत कहे हैं कि गोघ्न (गौका हंता) मासभरतक तीनपल पंचगव्य भक्षण करे अथवा पराक व्रतको करे वा चान्द्रायण करे और जो कश्यपका[2] वचन है कि गौको मारके उसके चर्मको ओढे हुये गोष्ठमें सोवे त्रिकाल स्नान और नित्य पंचगव्यका भोजन करे और जो शातातपका[3] वचन है कि मासभर पंचगव्यका भोजन करे ये पांचों प्रायश्चित्त याज्ञवल्क्यके कहे पंचगव्य भोजनके समान विषयमें समझने और जो शंख और प्रचेताओंने[1] कहा है कि गौकाहंता पंचगव्यका भोजन और पचीस रात्रतक उपवास करे और शिखा सहित मुण्डन करके गौके चर्मको धारण करे और गौओंका अनुगमन करे गोष्ठमें सोवे और एक गोदान करे यह प्रायश्चित्त याज्ञवल्क्यके कहे मासातिकृच्छ्र व्रतके विषयमें समझना, और पूर्वोक्त तीन रात्र उपवास करके एक बैल दश गौ देना अत्यंत गुणवाले हंताको जानना इसी विषयमें जो पंचगव्य पीनेको असमर्थ है उसको कश्यपका[2] कहा हुआ दूसरा प्रायश्चित्त जानना कि छठे कालमें दूधको पीवे गमन करती हुई गौओंके पीछे गमन करे और वे सुखसे बैठी होयतो बैठ जाय और अत्यंत कूद कर न चले और न अत्यंत विषम (कठिण) भूमिमें उतारे अल्प जल जिसमें होय वहां जल न पिलावे अंतमें ब्राह्मणोंको भोजन कराके तिलधेनु दे और इसमेंभी जो असमर्थ है उसको पैठीनसीका[3] कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि गौका हंता मासतक अंजली भर तण्डुलोंकी पकाई यवागू (लपसी) का भोजन और गौओं का प्यार करता हुआ शुद्ध होता है, जो सुमन्तुका[4] वचन है कि गोहंताको गौका दान

---

१ गोघ्नस्य पचगव्येन मासमेक पलत्रयम्। प्रत्यहस्यात्पराको वा चान्द्रायणमथापि वा ।

२ गां हत्वा तच्चर्मणा प्रावृतो मास गोष्ठेशयस्त्रिषवणस्नायी नित्यं पंचगव्याहारः ।

३ मास पंचगव्याहारः ।

१ गोघ्नः पंचगव्याहारः पचविंशतिरात्रमुपवसेत्सशिख वपन कृत्वा गोचर्मणा प्रावृतो गाश्चानुगच्छन् गोष्ठेशयो गां च दद्यात् ।

२ मास पचगव्येनेति षष्ठे काले पयोभक्षो वा गच्छन्तीष्वनुगच्छेत्तासु सुखोपविष्टासु चोपविशेन्नातिप्लुतं गच्छेन्नाति विषमेणावतारयेन्नाल्पोदके पाययेदन्ते ब्राम्हणान्भोजयित्वा तिलधेनुं दद्यात् ।

३ गोघ्नो मास यवागूं प्रसृतितन्दुलशृता भुञ्जानो गोभ्यः प्रियं कुर्वन् शुद्ध्यति ।

४ गोघ्नस्य गोप्रदान गोष्ठे शयनं द्वादशरात्रं पंचगव्यप्राशनं गवानुगमन च ।

गोष्ठमें सोना द्वादश रात्र पंचगव्य भोजन और गौओंका अनुगमन, प्रायश्चित्त है और जो संवर्त्तने कहा है कि सक्तु यावक भिक्षाका अन्न दूध दही घी इनको एकवार क्रमसे आधे मासभर तक सावधान होकर भोजन करै, फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपनी शुद्धिके लिये गोदान करे–जो बृहस्पतिने कहा है कि द्वादश रात्रतक पंचगव्य भोजन करै ये तीनों प्रायश्चित्तभी याज्ञवल्क्यके कहे मासभर प्राजापत्यके विषयमें वा मृतक तुल्य गोहत्याके विषयमें वा विषम देशके दुःखसे पैदा हुई व्याधिसे जो मरी हो उसके विषयमें जानने, यह पूर्वोक्त संपूर्ण प्रायश्चित्त अज्ञानके विषयमें जानना और जब ऐसीही तुच्छ ब्राह्मणकी तुच्छ गौको मारे तो मनु (अ. ११ श्लो. १०५ से ११६) ने मास भर यवागूका पीना दो मास तक चौथे कालमें हविष्यका भोजन, तीन मास तक शाक आदिका भोजन, एक बैल और दश गौओंका दान, करै ये तीन व्रत कहे हैं कि उपपातकसे युक्त गौका हंता मासभर जौंको पीवै–मुंडन करके गोष्ठमें वसै–गीले चर्मसे ढका रहै और चौथे कालमें खारे और लवणको छोडकर प्रमित भोजन करै–और इंद्रियोंको वशमें करके दो मास तक गोमूत्रसे स्नान करै और दिनमें उन गौओंके पीछे चले–ऊर्ध्व (सीधा) खडा हुआ रजको पीवै और गौओंकी सेवा और नमस्कार करके रात्रिमें वीरासनसे वसै–और गौओंके खडे होने पर खडा होजाय और चलती हुईयोंके पीछे चलै और जब बैठे तब बैठा जाय और सावधान रहै और मत्सरको त्यागदे और आतुर और अभिशस्त (हिंसित) चौर व्याघ्र आदिके भयसे पतित वा पंकमें धसीको संपूर्ण उपायोंसे छुटावे और उष्णकाल–वर्षा शीत अत्यंत पवनके चलने पर यथा शक्ति गौकी रक्षा विना किये अपनी रक्षा न करै और अपनी अथवा अन्यकी गृह, खेत, खलीयानमें भक्षण करती गौ को न बतावै और न पीते हुये वत्सको बतावै–इस विधिसे जो मनुष्य गौ ओंका अनु गमन करता है वह गोहत्याके पापको तीन मासमें नष्ट करता है और भली प्रकार इस व्रतको करके एक बैल, दश गौदे–गौ न होंयतो वेदके ज्ञाताओंको सर्वस्वका दान करै–ये तीनों व्रत याज्ञवल्क्यके कहे मासभर प्राजापत्य–मासभर पंचगव्यका भक्षण और एक बैल दश गौ ओंके दान सहित तीन रात्र उपवास–इन तीनों व्रतोंके विषयमें क्रमसे जानने–और जो अंगिराने मनुके कहे कर्तव्य सहित

१ सक्तुयावकभैक्षाशी पयोदधिघृत सकृत् । एतानि क्रमशोऽश्नीयान्मासार्द्धं च समाहितः । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गां दद्यादात्मशुद्धये ।

२ द्वादशरात्र पंचगव्याहारः ।

३ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् । कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणार्द्रेण संवृतः । चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् । गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौमासौ नियतेन्द्रियः । दिवानुगच्छेत्ता गास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् । शुश्रूषित्वा नमस्कृत्वा रात्रौ वीरासनं वसेत् । तिष्ठंतीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् । आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः । आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः । पतितां पंकलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् । उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् । न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः । आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथ वा खले । भक्षयतीं न कथयेत्पिबतं चैव वत्सकम् । अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गा अनुगच्छति । स गोहत्या कृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति । वृषभैकादशागाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः । अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ।

१ अक्षार लवणं रूक्षं षष्ठ कालेऽस्य भोजनम् गोमती वा जपेद्विद्यामोंकारं वेदमेव च । व्रतवद्धारयेद्दंडं समन्त्रां चैव मेखलाम् ।

तीन मासके व्रतको कहकर अधिक कहाहै कि खारा और लवण जिसमें नहो ऐसा रूखा अन्न भोजन, छटे कालमें करे-वा गोमती विद्या-ओंकार-वेद इनका जप करे और यज्ञोपवीतके समान दंड और मंत्रोंसहित मेखलाका धारण करे-वह वचन मनुके कहे विषयमें जानना-इसी प्रकार पुष्ट-तरुण आदि किंचित् विशेष गुणोंसे युक्त गौकी हत्यामें प्रायश्चित्त जानना-क्योंकि पुष्ट और तरुणसे भिन्न गौमें आधा प्रायश्चित्त इस वचनसे देखते हैं कि अत्यंत बालक,अत्यंत कृश-अत्यंत वृद्ध-रोगिन-गौको मारकर पूर्व विधिसे द्विज आधे व्रतको करे और जब याज्ञवल्क्यके कहे मास अतिकृच्छ्र व्रत जिससे करना पड़े ऐसी तुच्छ स्वामीकी जातिमात्र(नामकी)गौको जानकर नष्ट करता है तब जो अज्ञानियोंको कहाहै वह ज्ञानसे दूना करे इस न्यायसे अज्ञानियोंको कहा पूर्वोक्त ही मासातिकृच्छ्र व्रत द्विगुण करे और जो हारीतने गौ चर्मके धारणको और मनुके कहे कर्तव्यको कहकर कहाहै कि एक बैल दश गौ देकर तेरहवें१३मासमें पवित्र होताहै वह वचन सवनमें स्थित जो वेद पाठी उसकी गौके अज्ञानसे वधमें जानना-औरजो वसिष्ठने षाण्मासिक कृच्छ्र तप्तकृच्छ्र करना कहा है कि गौ को हते तो उसके गीले चर्मको ओढ कर छः मासतक कृच्छ्र तप्तकृच्छ्र करे वृषभ और वेहत (जिसके गर्भ नरहे)

गौका दान करे-और जो देवलने कहा है कि गोघ्न पुरुष छः मासतक गौके चर्मसे आच्छादित रहे गो व्रजमें निवास करे-गौओंके संग विचरे तो पापसे छूटता है-ये दोनों प्रायश्चित्त हारीतके कहे प्रायश्चित्तके विषयमें हैं-यदि वही जानकर किया होय तो कात्यायनने का कहा त्रैवार्षिक प्रायश्चित्त जानना कि गोघ्न (गोहत्यारा) गौके चर्मको ओढकर गोष्ठमें वसे और निरंतर गौओंका अनुगमन करे और मौन धारे वीर आसन आदिसे वर्षा-शीत-धूप-क्लेश-अग्नि-भय-पंक इनसे पीडित गौओंको सब प्रकारके यत्नोंसे छुडावे-ऐसे करनेसे तीन वर्षमें पवित्र होता है और जो शंखने त्रैवार्षिक कहा है कि शूद्रहत्या-रजस्वलाका गमन-इनमें पाद (चौथाई)प्रायश्चित्त करे-वहभी कात्यायनके कहे विषयके समान विषयमें हैं-और जो यमने अंगिराके कहे कर्तव्यको कहकर सहस्र गोदान-शत गोदान युक्त दो मासके दो व्रत कहे हैं कि भली प्रकार किया है व्रत जिसने ऐसा गोघ्न-सहस्र गौ वा सौ गौ दे-गौ न होय तो वेद पाठियोंको सर्वस्वका निवेदन (दान) करदे-उनदोनों प्रायश्चित्तोंमें जब-सवनमें स्थित वेदपाठी-अत्यंत दुर्गति-बहुत कुटुंबी-ब्राह्मणकी कपिला कर्म (होम आदि) के योग्य-गर्भिणी बहुत दूधवाली तरुण-आदि गुणवाली गौको, निर्गुण-धन-

१ अतिबालामतिकृशामतिवृद्धां च रोगिणीम्। हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्द्धं व्रतं द्विजः।

२ विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं चरेत्।

३ वृषभैकादशाश्च गा दत्त्वा त्रयोदशे मासे पूतो भवति।

४ गां चेद्धन्यात्तस्याश्चर्मणार्द्रेण परिवेष्टितः षण्मासान्कृच्छ्रतप्तकृच्छ्रौ वा तिष्ठेद्वृषभवेहतौ दद्यात्।

१ गोघ्नः षण्मासांस्तच्चर्मपरिवृतो गोव्रजनिवासी गोभिरेव सहचरन् प्रमुच्यते।

२ गोघ्नस्तच्चर्मसंवीतो वसेद्गोष्ठेऽथवा पुनः। गाश्चानुगच्छेत्सततं मौनी वीरासनादिभिः। वर्षशीतातपक्लेशवह्निपंकभयार्दिताः। मोक्षयेत्सर्वयत्नेन पूयते वत्सरैस्त्रिभि।

३ पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा। गोवधे च तथा कुर्यात् परस्त्रीगमने तथा।

४ गोसहस्रं शतं वापि दद्यात्सुचरितव्रतः। अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्।

वान्-मनुष्य बडे यत्नसें खड्ग आदिसे मारै तब तो सहस्र गोदान युक्त दो मासके व्रतको करै क्यों कि बृहस्पति के इस वचनसे विशिष्ट गौमें विशेषही प्रायश्चित्त देखा है कि गर्भवती-कपिला-दूध देती-होम धेनु-सुशील-गौको जो खड्ग आदिसे मारै वह द्विगुण व्रतको करै-इसीसे प्रचेतानें ऐसेही गोवधके विषयमें ब्रह्महत्याका व्रत कहा है कि-गर्भिणी स्त्री, और गर्भिणी गौ, बालक, वृद्ध, इनके वधमें भ्रूणहा होता है-दूसरा तो यमका कहा सौ गोदानसे युक्त दो मासका व्रत-कात्यायनके कहे व्रतके विषयमें धनवानको जानना-और जो गौतमने एक बैल सौ गौओंके दान सहित तीन वर्षके पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यको वैश्यके वधमें कहकर उसकाही अतिदेश (मानना) गोवधमें किया है कि गौकोभी मारकर वैश्यकी हत्याके समान प्रायश्चित्त करै-यह व्रत-तीन वर्षके व्रतका प्रत्याम्नाय जो नव्वे ९० धेनु, उन सहित-एक बैल सौ गौ एकसौ इक्कानवें(१९१) होती हैं इससे सहस्र गोदानसे युक्त दो मासके व्रतसे न्यून (कम) होनेसे-पूर्वोक्त विषयमें जानकर किये गोवधमें समझना-अथवा पूर्व विषयमें गर्भरहित गौके जानकर वधमें समझना और वैसीही गर्भरहित गौके अज्ञानसे हतनेमेंभी कात्यायनका कहा तीन वर्षका प्रायश्चित्त कल्पना करना-और जो यमने कहा है कि काठ, ढेला, पत्थर, वा शस्त्रोंसे गोहत्या की होय तो शस्त्र शस्त्रका प्रायश्चित्त कैसे करना कहा है-काठसे मारै तो सांतपन करै लोष्टसे मारै तो प्राजापत्य करै पत्थरसे मारै तो तप्तकृच्छ्र-शस्त्रसे मारै तो अतिकृच्छ्र करै-प्रायश्चित्त करनेपर ब्राह्मणभोजन करावे और उनको तीस ३० गौ एक बैल दक्षिणादे-यह यमका वचन पूर्वोक्त सहस्र वा शतगोदान और त्रैवार्षिक व्रतके विषयोंमेंही काठ आदि विशेष साधन (कारण) से उत्पन्न वधके लिये इस अर्थ है कि सांतपन आदिको करकेही करै उनके विना न करै क्योंकि प्रायश्चित्त लघु है-तिससे जो विशेषतासे प्रायश्चित्तविशेष कहा है कि अतिवृद्ध-अतिकृश-अतिबाला रोगिणी-ऐसी गौको हतकर पूर्वोक्त विधिसे आधा प्रायश्चित्त द्विज करै शक्तिसे ब्राह्मणोंको जिमावे सुवर्ण और तिल दान करै-नीरोग गौके वधमें जो कहा है उसका आधा प्रायश्चित्त करै-बृहत्प्रचेतानेभी यहां विशेष कहा है कि एक वर्षके वत्सको हताहोय तो कृच्छ्रका पाद कहा है अज्ञानसे दो वर्षके वत्समें दोपाद कृच्छ्र-तीन वर्षकेमें तीन पादकृच्छ्र करै इससे परे प्राजापत्य होता है तैसेही गर्भिणी गौके वधमें यदि गर्भभी नष्ट होजाय तो निमित्त २ के प्रति नैमित्तिक कर्मकी आवृत्ति होती है इस न्यायसे द्वि-

१ गर्भिणीं कपिलां दोग्ध्रीं होमधेनुं च सुव्रताम्। खड्गादिना घातयित्वा द्विगुणं व्रतमाचरेत्।

२ स्त्री गर्भिणी गौ गर्भिणी बालवृद्धवधेषु भ्रूणहा भवति।

३ गां च हत्वा वैश्यवत्।

४ काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि। प्रायश्चित्तं कथं तत्र शस्त्रे शस्त्रे विधीयते। काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके। तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम्। प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। त्रिंशद्गा वृषभं चैकं दद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणाम्।

१ अतिवृद्धामतिकृशामतिबालां च रोगिणीम्। हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्द्धव्रतं द्विजः। ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्धेम तिलांस्तथा।

२ एकवर्षे हते वत्से कृच्छ्रपादो विधीयते। अबुद्धिपूर्वे पुंसः स्याद्द्विपादस्तु द्विहायने। त्रिहायने त्रिपादः स्यात्प्राजापत्यमतः परम्।

३ प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्तते।

व्यापार का योग करते हैं वे निमित्ती हैं उन को संपूर्ण व्रतका संबंध नहीं किंतु कृच्छ्र के पाद और द्विपाद आदि का संबंध है उसनें भी रोकने आदि संपूर्ण अविशेषसे यद्यपि दूर के व्यापार हैं तो भी वचन से कहीं पाद कहीं द्विपाद, और कहीं पादोन, प्रायश्चित्त करना युक्त है यहां पराशरे नें यह कहा है कि गौओंके बांधने वा संयोग करने से अज्ञानसे मृत्यु होजाय तो अज्ञानसे किये पापके लिये प्राजापत्य बतावे और प्रायश्चित्त करनेपर ब्राह्मण भोजन करावे और ब्राह्मण को बैल सहित गौकी दक्षिणादे और यह प्राजापत्य उसको जानना जो रोकने आदिको करके रोकने आदि से पैदाहुये प्रमादके परिहारकी बाट देखता हो, क्यों कि, अज्ञानसे किये पापका, यह विशेषण श्लोकमें पडा है और यदि प्रमादका अनुसरण करै तब अंगिरा के कहे त्रैमासिक का पाद वा कुछ अधिक, वा वीसदिन का गोवध व्रत करे कि रोकने में एक पाद, बांधने में दो पाद, योजन में तीन पाद, गिराने में संपूर्ण व्रत करे–आपस्तंबने भी विशेष कहा है कि अत्यंत दुहने, अत्यंत वाहन-नासिकाका छेदन, नदी और पर्वत में रोकने से गौ मरजाय तो पादोन प्रायश्चित्त करे, और लक्षण मात्रके उपयोगी दाह (दाग) में दोष नहीं क्यों कि पराशरकी स्मृति है कि अंकन और लक्षण को छोड़कर वाहन और मोचन में और रक्षा के लिये सायंकाल के रोकने और बांधने में दोष नहीं, स्थिर चिन्हको अंकन कहते हैं और तत्काल के चिन्ह को लक्षण, और वाहन भी शास्त्रोक्त मार्गसे लेना और रक्षा के लिये भी नालिकेर आदिसे बांधने में दोष होता है क्यों कि व्यासकी स्मृति है कि नारियल, सण, वाल, मूंज, बांधने की सांकल, इनसे गौओंको न बांधे और गौओंको बांधकर रक्षार्थ फरसा लिये खडा रहै और कुश और काससे ऐसे स्थान में बांधे जहां कुछ भय नहो तैसेही अन्यभी विशेष व्यासेनें ही कहा है कि घंटाभार के दोपसे गौ मर जाय तो कृच्छ्रार्द्ध प्रायश्चित्त होता है क्यों कि वह भूषण के लिये कहा है अति दुहनें अत्यंत दमन, समूह में योजन, शृंखल और पाशों से बांधने में, गौ मर जाय तो पादोन कृच्छ्र करे और रक्षा करनें आदिकी उपेक्षा में व्यासेनें ही कहीं प्रायश्चित्तका विशेष कहा है कि जलका है वेग जिसमें ऐसे पल्वल (छोटा तलाव) में

१ गवांबंधनयोक्त्रैस्तु भवेन्मृत्युरकामतः । अकामकृतपापस्य प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् । प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।

२ पादमेकं चरेद्रोधे द्वौपादौ बन्धने चरेत् । योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ।

३ अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाछेदने तथा । नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ।

१ अन्यत्रांऽकनलक्ष्माभ्यां वाहने मोचने तथा । सायं संगोपनार्थे च न दुष्येद्रोधबंधने ।

२ न नालिकेरेण न शाणवालैर्नचापि मौंजेन न बन्धश्रृंखलैः । एतैस्तु गावो न निबन्धनीया बद्ध्वातु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा । कुशैः काशैश्च बध्नीयात्स्थाने दोषविवर्जिते ।

३ घण्टाभरणदोषेण विपत्तिर्यत्र गोर्भवेत् । गोकृच्छ्रार्धं भवेत्तत्र भूषणार्थं हि तत्स्मृतम् । अतिदोहातिदमने संघाते चैव योजने । बद्धाश्रृंखलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ।

४ जलौघपल्वले मग्ना मेघविद्युद्धतापि वा । श्वभ्रे वा पतिता कस्माच्छ्वापदेनापि भक्षिता । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोस्वामी व्रतमुत्तमम् । शीतवाताहता वा स्याद् द्वधनहतापि वा । शून्यागार उपेक्षाया प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ।

डूबी और मेघ और बिजलीसे हती और अकस्मात् गड्ढेमें पडी और अकस्मात् श्वापद (भिडा) ने भक्षण की-ऐसी गौके मरनेमें गौका स्वामी प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करे-और शीत पवन धूप इनसे मरी हो-वा उद्बंधन (बांधना) से हती हो-शून्य घरमें उपेक्षासे (बेखबरी) से मरी होय तो प्राजापत्य करे-यहभी कार्यांतरकी व्यग्रता (लगना) के अभावसे उपेक्षामें जानना-और अन्य कार्यमें व्यग्रता होयतो आधा प्रायश्चित्त करे क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि पल्वलका वेग-मृग-व्याघ्र-श्वापद आदिसे मरनेमें-गड्ढामें गिरना सर्प आदिसे मरनेमें आधा कृच्छ्र करे-पाल (ग्वाल) न होय और शून्य घरमें मरजाय तो कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है-और पूर्वोक्त मरण होभी जाय तोभी कहीं २ वचनसे दोषका अभाव है सोई संवर्तने कहा है कि चिकित्साके लिये गौके यंत्रण और मरे गर्भके निकासनेमें यत्न करनेपर गौ मरजाय तो वह मनुष्य पापसे लिप्त नहीं होता-व्याधिके दूर करणार्थ तीक्ष्ण अंकुश आदिके प्रवेशको यंत्रण कहते हैं-तैसेही वचन हैं कि औषध घी भोजन इनको गौ ब्राह्मणोंको द्विज देता हो और देनेसे मरण होजायतो वह पापसे लिप्त नहीं होता- ग्रामके घात (दुःख वा मरण) बाणोंसे मरण हुआ हो-घरके भंग (गिरना) से मरनेमें और गौओंके हितार्थ दाहका छेदन शिराकोभेद (फस्त) आदि प्रयोगोंसे गौओंका उपकार करते हुये द्विजोंको प्रायश्चित्त नहीं है-यहां पराशरने भी कहा है कि अतिवृष्टिसे हती हुई गौओंका-और धर्मार्थ कूपके खोदनेमें घरके दाहमें-ग्रामके दाहमें और घोर उपद्रवमें जो गौ मरीहो-तो प्रायश्चित्त नहीं है-यह वचन तो उस विषयमें है जहां बंधनरहित (खुला) पशु घरके दाह आदिसे मरगया हो-ऐसा न होयतो आपस्तंबने कहा है कि वन-दुर्ग (किला) घरका दाह-खल-इनमें गौका मरण हो जाय तो एक पाद प्रायश्चित्त कहा है-तैसेही अस्थि आदिका भंग होनेपर मरणके अभावमेंभी कहीं प्रायश्चित्त कहा है कि गौओंका अस्थिभंग और लांगूलका छेदन-दांत और सींगोंका तोडना इनको करके मास-तक जौंको पीवै-जो तो अंगिराका वचन है कि सींग दांत अस्थि इनके भंग-चर्मके निर्मोचन (छुटाना) में यदि गौ स्वस्थभी हो जाय तोभी दशरात्रतक वत्रको पीवै-वत्र शब्दसे क्षीर आदिका वर्तना कहा है-वह व्रत अशक्तके विषयमें है-यह प्रायश्चित्तभी तब करना जब मृतक गौके समान गौ गौके स्वामी देदी हो-सोई पराशरने

१ पल्वलौघमृगव्याघ्रश्वापदादिनिपातने । श्वभ्रप्रपातसर्पाद्यैर्मृते कृच्छ्रार्द्धमाचरेत् । अपालत्वात्तु कृच्छ्रं स्याच्छून्यागार उपप्लवे ।

२ यन्त्रणे गोचिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने । यत्ने कृते विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ।

३ औषधं स्नेहमाहारं ददद्गोब्राह्मणे॰ द्विजः । दीयमाने विपत्तिश्चेन्न स पापेन लिप्यते। ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभंगान्निपातने । दाहच्छेदशिराभेदप्रयोगैरुपकुर्वताम्। द्विजानां गोहितार्थं च प्रायश्चित्तं न विद्यते।

१ अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते। कूपखाते च धर्मार्थं गृहदाहे च या मृता। ग्रामदाहे तथा घोरे प्रायश्चित्तं न विद्यते।

२ कांतारेष्वथ दुर्गेषु गृहदाहे खलेषु च। यदि तत्र विपत्तिः स्यात्पाद एको विधीयते।

३ अस्थिभंगं गवां कृत्वा लांगूलच्छेदनं तथा। पाटनं दंतशृंगाणां मासार्द्धं तु यवान्पिबेत्।

४ शृंगदंतास्थिभंगे वा चर्मनिर्मोचने पिबा। दशरात्रं पिबेद्व्रजं स्वस्थापि यदि गौर्भवेत्।

५ प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम्। तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीद्यमः।

कहा है कि प्राणधारियोंके मारनेमें उसका प्रतिरूपक(बदला)दे वा उसका मूल्य दे यह यमने कहा है–मनु (अ०८श्लो०२८८) नेभी कहाहै कि जानकर वा विना जाने जो जिसके द्रव्योंकी हिंसा करे वह उसका संतोष करे और उसके समान राजाको दे–यह पूर्वोक्त संपूर्ण प्रायश्चित्त–मारनेवाले ब्राह्मणकोही जानना–क्षत्रिय आदि मारनेवालेको तो बृहद्विष्णुने विशेष कहा है कि ब्राह्मणको संपूर्ण प्रायश्चित्त देना–क्षत्रियको पादोन–वैश्यको आधा और शूद्र जातियोंमें पाद (चौथाई) श्रेष्ठ कहा है–और जो अंगिराका वचन है कि जो ब्राह्मणोंकी सभा है वह क्षत्रियोंकी दूनी वैश्योंकी तिगुनी और पर्षत् (सभा)के उक्त समान व्रत कहा है–वह प्रतिलोम रीतिसे कठोर वाणी और कठोर दंडके विषयमें जानना, तैसेही स्त्री वृद्ध बाल आदिकोंको आधा और अनुपनीत बालकको भी पूर्वोक्त आधा समझना–स्त्रियोंको पराशरने विशेष कहा है कि स्त्रियोंका मुंडन–अनुगमन–जप आदि–गोष्ठमें शयन और गोचर्मका धारण नहीं होता और संपूर्ण केशोंको ऊपरको दो अंगुल छेदन करे–सब कर्मोंमें स्त्रियोंका यही मुंडन कहा है–पुरुषोंमें विशेष संवर्तने कहा है–कि पाद प्रायश्चित्तमें अंगके रोमोंका मुंडन–द्विपादमें श्मश्रुकाभी–और त्रिपादमें शिखाको छोडकर, और मारनेमें शिखा सहित मुंडन कहा है अर्थात्पाद-प्रायश्चित्तके योग्यके कंठसे नीचे अंगके रोमोंका मुंडन करना–आधे प्रायश्चित्तके योग्यके श्मश्रु सहित पूर्वोक्त अंगरोमोंका और पादोन प्रायश्चित्तके योग्यका शिखाको छोडकर–चारोंपाद प्रायश्चित्तके जो योग्य है उसके शिखा सहित संपूर्ण केशोंका, मुंडन करावे–इसी मार्ग (रीति) को स्वीकार करके स्मृतिके वचनोंका विषय निरूपण करना (कहना)

भावार्थ–गौका हत्यारा पंचगव्यको पीवे और मासभर संयमसे बैठा रहै–गोष्ठमें सोवै और गौओंका अनुगमन करे और गौके दान करनेसे शुद्ध होता है और सावधानीसे कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करे और तीन रात्र उपवास करके एक बैल दश गौओंका दान करे ॥ २६३॥२६४ ॥

इति गोवधप्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

उपपातकशुद्धिःस्यादेवंचांद्रायणेनवा ॥
पयसावापिमासेनपराकेणाथवापुनः २६५

पद–उपपातकशुद्धिः १ स्यात् क्रि– एवंऽ– चांद्रायणेन ३ वाऽ–पयसा ३ वाऽ– अपिऽ– मासेन ३ पराकेण ३ अथवाऽ– पुनःऽ–

योजना–एवं वा चांद्रायणेन, वा मासेन पयसा, अथवा पराकेण, उपपातकशुद्धिः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–अब अन्य उपपातकोंका प्रायश्चित्त कहते हैं इसी प्रकार उक्त रीतिसे गोवधके–मासभर पंचगव्य भक्षण आदि–व्रतसे अन्यभी व्रात्यता आदि उपपातकोंकी शुद्धि होती है–अथवा चांद्रायण (जो आगे कहेंगे)से

---

१ यो यस्य हिंस्याद्द्रव्याणि ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा । स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ।

२ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम् । वैश्येऽर्द्धं पाद एकस्तु शस्यते शूद्रजातिषु ।

३ पर्षद्या ब्राह्मणानां तु सा राज्ञां द्विगुणा मता । वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्षद्वच्च व्रतं स्मृतम् ।

४ वपनं नैव नारीणां नानुव्रज्या जपादिकम् । न गोष्ठे शयनं तासां न वसीरन् गवाजिनम् । सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् । सर्वत्रैव हि नारीणां शिरसोमुंडनं स्मृतम् ।

५ पादेंगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोपि च । त्रिपादे तु शिखावर्ज्यं सशिखं तु निपातने ।

वा मासभर पयो (दूध) व्रतसे–वा पराक व्रतसे शुद्धि होती है–यहां अतिदेश (तुल्यता) के सामर्थ्यसे–गोचर्म धारण–गौकी सेवा–आदि जो गोवधमें असाधारण व्रत हैं उनमें कतिपय (कितनेक) व्रतोंकी न्यून ता जानी जाती है ये इसी वचनमें कहे चारों व्रत–अज्ञानसे किये पापमें शक्तिकी अपे क्षासे विकल्पसे जानने–जानकर करनेमें तो यह मनु (अ. ११ श्लो ११७) का कहा तीन मासका व्रत जानना कि उपपातकी द्विज इसी व्रतको करें अथवा अवकीर्णीको छोडकर चांद्रायण करें–इसी वचनसे यह प्रायश्चित्तका अतिदेश–उपपातकगणमें पढे हुये सबको चाहे प्रायश्चित्त उनका कहा हो वा न कहाहो अवकीर्णीको छोडकर अविशेषसे जानना–अवकीर्णीको तो प्रतिपदोक्त (जुदा) ही प्रायश्चित्त है–कदाचित् कोई शंका करे कि उनकाही अतिदेश युक्त है जिनका प्रायश्चित्त न-कहा हो–ऐसे न मानोगे तो प्रतिपदोक्त प्रायश्चित्तके बाधकी अपेक्षाका प्रसंग हो जायगा–ऐसा मतकहो क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त प्रायश्चित्तोंका पाठ उपपातक गणमें अनर्थक हो जायगा–यदि उपपातकके मध्यमें सामान्यसे पढे हुये काभी अन्यत्र प्रायश्चित्त अन्यही विशेष कर कहते हैं (जैसे अयाज्योंको यज्ञ करावे तो तीन कृच्छ्र करे और व्रात्योंका याजक और अभिचारके कर्ताभी यही करें) वही नियम केवल न्यून होगा और विशेषसे पठितका अन्यत्रभी जहां विशेषही प्रायश्चित्त कहा है–वहभी न्यून न होगा जैसे यह की ईंधनके लिये वृक्षोंका छेदन–वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुत् इनके छेदनमें सौ ऋचाओंका जो जप उसके समान है इससे व्रात्यता आदिमें इस शास्त्रमें वा अन्य शास्त्रोंमें देख जो प्रायश्चित्त उन प्रायश्चित्तोंके संग, उपपातककी शुद्धि इस पूर्वोक्त प्रकारसे होती है इस श्लोकमें पढे (स्यादेवं) इत्यादिसे कहे चार व्रतोंका तुल्य और विषयकी कल्पनासे विकल्प वा विषयविभाग मानना, वे अन्य स्मृतियोंमें कहे प्रायश्चित्त व्रात्य आदिकोंमें पाठके क्रमसे हम युक्त करेंगे उनमें. व्रात्य होने पर मनुने यह कहा है (अ. ११ श्लो० १९१) कि जिन द्विजोंको विधिसे गायत्रीका उपदेश न हुआ होय तो उनसे तीन कृच्छ्र कराकर विधिसे यज्ञोपवीत करावे, और जो यमने कहाहै कि जिसकी गायत्री पन्द्रह वर्षतक पतित होजाय वह शिखा सहित मुण्डन कराकर सावधानीसे व्रत करे इक्कीसदिनतक अंजलीभर जौं पीवे और सात वा पांच ब्राह्मण हविष्य अन्नसे जिमावे फिर जौंसे शुद्ध हुये उसका यज्ञोपवीत करावे ये दोनों व्रत याज्ञवल्क्यके कहे मासभर पयोव्रतके विषयमें समझने, और जो वसिष्ठने कहा है कि जिसकी सावित्री

---

१ एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः । अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चांद्रायणमथापि वा ।

२ अयाज्यानां च याजनं । त्रीन्कृच्छ्रानाचरेत् व्रात्ययाजको ऽभिचरन्नपि ।

१ इंधनार्थं द्रुमच्छेदः वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम् ।

२ येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि। तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान् यथाविध्युपनाययेत् ।

३ सावित्री पतिता यस्य दशवर्षाणि पंच च । सशिखं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितः । एकविंशतिरात्रं तु पिबेत्प्रसृतियावकम् । हविषा भोजयेच्चैव ब्राह्मणान्सप्तपंच च । ततो यावकशुद्धस्य तस्योपनयनं स्मृतं ।

४ पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेन्मासं पयसा पक्षमामिक्षयाऽष्टरात्रं घृतेन षड्रात्रमयाचितेन त्रिरात्रमब्भक्षोऽहोरात्रमुपवसेदश्वमेधावभृथं गच्छेद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत ।

पतित हो गई हो वह उद्दालक व्रतकरे कि दो मासतक जौंको भक्षण करे एक मास दूधसे, एक पक्ष आमिक्षा (सिकरन) से, आठ रात्र घीसे, छः रात्र अयाचितसे, तीन रात्र जलके भक्षणसे बितावे, अहोरात्र उपवास करे, अश्वमेधके अवभृथमें स्नान करे अथवा व्रात्यस्तोम यज्ञ करे यहां यह व्यवस्था है कि जिसके यज्ञोपवीतका समय उपनयन करानेवालेके अभावसे वीत गया होयतो वह याज्ञवल्क्यके कहे व्रतोंमेंसे कोईसे व्रतको शक्तिके अनुसार करे विना आपत्तिके समय वीतगया होयतो मनुका कहा त्रैमासिक व्रत करे और विना आपत्तिके पंद्रह वर्षसे अधिकभी कुछ काल वीत जाय तो उद्दालक व्रत वा व्रात्यस्तोम यज्ञ करे और जिनके पिता, आदि अनुपनीत होंय तो उनको आपस्तंबका कहा ब्रह्मचर्य है कि जिसके पिता, पितामह दोनों अनुपनीत होंय उसको वर्ष दिनतक त्रैविद्यक ब्रह्मचर्य करना और जिसके प्रपितामह आदिके यज्ञोपवीतका स्मरण न होय उसको उपनयन करावे और वह बारह वर्षका त्रैविद्यक ब्रह्मचर्य करे, तैसेही चोरीमेंभी साधारण उपपातकमें प्राप्त चार व्रतोंका अपवादरूप प्रायश्चित्त मनुने कहा है (अ० ११ श्लो० १६२) कि धान्य, अन्न, धन, इनकी चोरी सजातीय घरसे जानकर करे तो आधा कृच्छ्रव्रत करे– द्विजोत्तमका सजातीय, ब्राह्मण ही होता है इससे ब्राह्मण की चोरीमें ब्राह्मण चोरको ही यह प्रायश्चित है–क्षत्रिय आदिको तो अल्प प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी क्यों कि इस वचनने क्षत्रिय आदि चोरको अल्पदंड देखते हैं कि चोरीका पाप शूद्रको अष्टापाद्य (आठ पाद) होता है और इतर वर्णोंको क्रमसे दूना होता है और विद्वान्को तो अतिक्रम (चोरी आदि) में प्रतिवर्ण अधिक दंड होता है–तैसेही पादहानि(कमी) से प्रायश्चित्त इस वचनसे देखते हैं कि ब्राह्मणको पूरा–क्षत्रिय को पादोन प्रायश्चित्त, कहा है–तैसेही क्षत्रिय आदिकी चोरीमेंभी दंड के अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी–इससे क्षत्रियकी चोरीमें छः मासतक, वैश्यकी चोरीमें तीन मासतक गोवध व्रत करे और शूद्रकी चोरी में चांद्रायणकी कल्पना करे–इसी प्रकार आगेभी समझना–यहभी दश कुंभ धान्यकी चोरी में है अधिक में तो इस वचनसे वध देखते हैं कि दश कुंभ धान्यकी जो चोरी करे उसको उत्तम साहस दंड होताहै और सहस्र पलसे अधिक चुरावे तो वध दंड दे-पांच सहस्र पलको कुंभ कहते हैं-धान्यके साहचर्यसे अन्न और धनभी इतने ही परिमाणके जानने–अन्न शब्दसे तंडुल आदि और धन शब्दसे ताम्र रजत आदि कहते हैं–यह प्रायश्चित्तभी जानकर करनेके विषयमें समझने–अज्ञानसे करनेमें तो तीन मासका गोवध व्रत प्रायश्चित्त है तैसेही मनुष्य स्त्री क्षेत्र घर कूप और वापी का जल-

१ यस्य पितापितामहावनुपनीतौ स्यातां तस्य संवत्सरं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यम् यस्य प्रपितामहादिर्नानुस्मर्यते तस्य उपनयनं तस्य द्वादश वर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यम् ।

२ धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः। सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति ।

१ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दंडभूयस्त्वम् ।

२ निमित्तं सकलं देयं पादोन क्षत्रिये स्मृतम् ।

३ धान्य दशभ्यः कुंभेभ्यो हरतो दम उत्तमः । पलसहस्रादधिके वधः ।

इनके हरनेमें चांद्रायणसे शुद्धि होती है यह चांद्रायण अढाईसौ २५० पण द्रव्य जीससे पैदा हो ऐसे जलकी चोरीमें प्राप्तभीथा तोभी अन्यजो गोवधके व्रतहैं उनकी निवृत्तिके लिये कहाहै-और अढाई सौ पण है मूल्य जिसका ऐसे जलकी चोरीमें तो पानी और तृणकी चोरीमें उसके मूल्यसे दूना दंड होताहै इसे वचनसे चांद्रायणके विषयमें पांचसौ ५०० पण दंडके विधानसे उक्त परिमाणका दंड और चांद्रायण इन दोनोंको गोवध आदिमें सहचरित होनेसे, तैसेही कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और ऐंदव (चांद्रायण) इनमें भी पांचसौ पण दंड है इसे वचनसे चांद्रायणके विषयमें पांचसौ पण दंडका विधान है-इससे पूर्वोक्त प्रायश्चित्त अज्ञानसे करनेमें है यह ठीकहै-और यह क्षत्रिय आदिके द्रव्यकी चोरीमें जानना-ब्राह्मणके द्रव्यकी चोरीमें तो यह मनु (अ. ११ श्लो. ५७) का कहा प्रायश्चित्त जानना कि निक्षेप (धरोर) नर, अश्व, चांदी, भूमि, वज्र, मणि इनकी चोरीमें सुवर्णकी चोरीके समान दंड कहाहै-तैसेही मनु (अ. ११ श्लो. १६४) के इस वचनसे कि पराये घरसे अल्पसार (तुच्छ) द्रव्यों की चोरी करे तो उनको लौटाकर अपनी अपनी शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करे-अल्प प्रयोजन वाले त्रपु सीस आदि द्रव्योंकी चोरीमें उपपातक रूप सामान्य चोरीका जो प्रायश्चित्त उसका अपवाद है-और यह प्रायश्चित्त, चान्द्रायण का निमित्त जो द्रव्य उससे आध तीनसौ है मोल जिसका उससे पंद्रहवे अंशसे आधे त्रपु सीस आदि की चोरीमें, जानना क्योंकि यह चांद्रायणके पन्द्रहवे भाग रूप है-तैसेही द्रव्य विशेषमें सामान्य उपपातकों में पाये व्रतका अपवाद है, मनु (अ. ११ श्लो. १६५) ने कहा है कि भक्ष्य, भोज्य, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल, फल, इनकी चोरीमें पंचगव्य पीनेसे शुद्धि होती है, यहभी एक वार भोजन के योग्य भक्ष्य, भोज्यकी चोरीमें समझना दो तीन वारके भोजन की चोरीमें तो त्रिरात्र उपवास है, सोई पैठीनसी ने कहाहै कि उदरके भरनेभर भक्ष्य, भोज्य, अन्नकी चोरीमें तीन रात्र वा एक रात्र उपवास और पंचगव्यका भोजन प्रायश्चित्त हैं और भक्ष्य भोज्यके साहचर्यसे इतने ही मोलके यान आदि की चोरीमें यह पूर्वोक्त प्रायश्चित्त समझना, सब जगह चोरीके द्रव्यके न्यून अधिक भावसे गुरु और लघु प्रायश्चित्त की कल्पना करनी, तैसे ही मनु (अ. ११ श्लो. १६६) का वचनहै कि तृण, काठ, वृक्ष, शुष्क अन्न, गुड़, तेल, चर्म, मांस इन की चोरीमें तीन रात्र भोजन न करे इन तृण आदि की चोरीमें भक्ष्य आदिसे तिगुने त्रिरात्र प्रायश्चित्त के देखनेसे उनसे तिगुने मोलके तृण आदि की चोरीमें ही

---

१ मनुष्याणां च हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च । कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ।

२ पानीयस्य तृणस्य च तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्ड इति वचनं तथा ।

३ कृच्छ्रातिकृच्छ्रैन्दवयोः पणपञ्चशतं तथा ।

४ निक्षेपस्यापहरणे नराश्वरजतस्य च । भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ।

५ द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मनः । चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ।

१ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानां च पंचगव्य विशोधनम् ।

२ भक्ष्याभोज्यान्नस्योदरपूरणमात्रहरणे त्रिरात्रमेकरात्रं वा पंचगव्याहारश्च ।

३ तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनं ।

यह प्रायश्चित्त जानना तैसेही मनु (अ. ११ श्लो. १६७) ने कहाहै कि मणि, मोती, मूगा, तांबा, चांदी, लोहा, कांसी, पत्थर, इनकी चोरीमें बारह दिनतक कुत्सित अन्न, भक्षण करै–यहांभी भक्ष्य आदिके समान बारह गुना प्रायश्चित्त देखनेसे उनके मूल्यसे बारह गुना मूल्य है जिनका ऐसे मणि, मोती, आदि की चोरीमें यही प्रायश्चित्त जानना, तैसेही मनु (अ. ११ श्लो. १६८) ने कहा हैकि कपास, रेसम, ऊंन, दो और एक खुरवाले पशु, पक्षि, गंध, ओषधि, रस्सी, इनकी चोरीमें तीन दिनतक दूध पीवै यहांभी भक्ष्य आदिसे तिगुना प्रायश्चित्त देखनेसे तिगुने मोलके कपास आदि की चोरीमें यह प्रायश्चित्त जानना, चुराये हुये द्रव्यके न्यून अधिक भावसे अल्प और महान् प्रायश्चित्त-की कल्पना करनी योग्य है,यह चोरीका प्राय-श्चित्त चुराये द्रव्यके पीछे दिये भी जानना सोई विष्णुने कहा है कि चुराया हुआ द्रव्य स्वामीको देकर व्रत करै– ऋणका दूर करना पुत्र पौत्र ऋणको दें इस वचनसे पुत्र पौत्रोंको कहा है उसके न दूर करनेमें तैसेही उत्पन्न होता ही ब्राह्मण तीन ऋणवाला होताहै इस वाक्यसे स्तुति की है जिनकी ऐसे वेदोक्त यज्ञादिके न करनेमेंही (उपपातक शुद्धिः स्यादेवं) इस वचनसे सब उपपातकोंमें कहे जो चार व्रत वे,शक्तिकी अपेक्षासे समझने क्यों कि ऋणका दूर न करना भी उपपातक है इस विषयमें मनु (अ० ११ श्लो० २७)ने कहा है कि पशु और सोम यज्ञ न किये होंय तो उनके प्रायश्चित्तके लिये वर्षदिनके अंतमें वैश्वानरी यज्ञ करै–तिसी प्रकार यज्ञका अधिकारी अग्निहोत्री न होय तो भी यही चारों व्रत वर्षदिनके अनंतर आपत्तिके समय शक्तिके अनुसार करने आपत्ति न होय तो मनुका कहा त्रैमासिक व्रत करावे और वर्षदिनसे पहिले तो कार्ष्णाजिनिने विशेष कहा है कि ब्राह्मण अग्निका आधान करके कर्मोको विधि पूर्वक समयपर करै, उनको न करै तो मास मासमें त्रिरात्र व्रतसे शुद्ध होता है यदि पिता अग्निहोत्री न होय और पुत्र यज्ञ कियाचाहै तो वह प्रायश्चित्तके लिये व्रात्य पशु यज्ञ करै, एकाग्निके लिये विशेष उसनेही कहा है कि जो गृहस्थी ज्येष्ठ होकर घरमें उपासन अग्निका आधान न करै वह वर्षभर चांद्रायण करै अथवा प्रतिमास एक उपवास करै–तैसेही विक्रय करनेके अयोग्यके विक्रय करनेमें प्रायश्चित्तका विशेष अन्यस्मृतिमें कहा है, सोई हारीतने कहा है कि गुड, तिल, पुष्प,

१ मणिमुक्ताप्रवालाना ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कदन्नता ।

२ कार्पासकीटजोर्णानांद्विखुरैकखुरस्य च । पक्षिगंधौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ।

३ दत्त्वैवापहृत द्रव्यं स्वामिने व्रतमाचरेत ।

४ पुत्रपौत्रैऋणं देयम् ।

५ जायमानो वै ब्राह्मणः० ।

१ इष्टिं वैश्वानरीं चैव निर्वपेदब्दपर्यये । हृप्तानांपशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभव इति ।

२ काले त्वाधाय कर्माणि कुर्याद्विप्रो विधानतः । तपःकुर्वन् त्रिरात्रेण मासि मासि विशुध्यति ।अनाहिताग्नौ पित्रादौ यक्ष्यमाणः सुतो यदि । सहि व्रात्येन पशुना यजेत्तन्निष्क्रयाय तु ।

३ कृतदारो गृहे ज्येष्ठो योनादध्यादुपासनम् । चान्द्रायण चरेद्वर्ष प्रतिमासमहोपि वा ।

४ गुडतिलपुष्पमूलफलपक्वान्नविक्रये सोमपानं सौम्यः कृच्छ्रःलाक्षालवणमधुमांसतैलक्षीरदधिघृतगंधतक्रचर्मवाससामन्यतमविक्रये चांद्रायणम् ।ऊर्णाकेशकेशरीभूघेनुत्रेरयारमशस्त्रविक्रयेच भक्ष्यमांसस्नाय्वस्थिशृंगनखशुक्तिविक्रयेतप्तकृच्छ्रः । हिंगुगुग्गुलहरितालमनःशिलांजनगैरिकक्षारलवणमणिमुक्ताप्रवालवैणववेणुमृन्मयेषुच तप्तकृच्छ्रः । आरामतडागोदपानपुष्करिणीषु कृत विक्रये त्रिषवणस्नाय्यधःशायी चतुर्थकालाहारो दशसहस्रं जपन् संवत्सरेण पूतो भवति हीनमानोन्मानसंकर संकीर्णविक्रये च ।

मूल, फल, पक्वान्न इनको बेचकर सोमपान और सौम्यकृच्छ्र करै-और लाख, लवण, मधु, मांस, तेल, दूध, दही, घृत, गंध, मठा, चर्म, वस्त्र, इनमें-अन्यतम (कोईसा) के बेचनेमें चांद्रायण करै-तैसेही ऊन केश केशरी भू धेनु घर पत्थर शस्त्र भक्ष्य मांस स्नायु अस्थि शृंग नख शुक्ति (सीप) इनके विक्रयमें तप्तकृच्छ्र करै-और हींग-गुग्गल-हरिताल-मनासिल-अंजन-गेरु-खारालवण मणि मोती मूंगा बांसकी वस्तु, बांस, मिट्टीके पात्र इनके बेचनेमें तप्तकृच्छ्र करै-और आराम (बाग) तलाव-उदपान (चोवचा आदि) पुष्करिणी-पुण्य इनके विक्रयमें त्रिकाल स्नान-भूमिमें शयन-चौथेकाल भोजन-दश सहस्र जप करता हुआ वर्षदिनमें पवित्र होता है और जिनका तोल कम हो और संकर संकीर्ण (मिलावटी) इनके बेचनेमें भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तही करै-इसी प्रकार अन्यभी शंख विष्णु आदिके वचनोंमें जहां प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा वहां उपपातकोंमें साधारण मनुका कहा त्रैमासिक व्रत आपत्ति न होय तो करै और आपत्तिमें तो याज्ञवल्क्यके कहे चारोंव्रत शक्तिके अनुसार करने-तैसेही परिवेत्तामें वसिष्ठ नें प्रायश्चित्त विशेष कहा है कि परिवेत्ता कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करके और ज्येष्ठ भ्राताको वही विवाही हुई कन्या देकर फिर गृहस्थमें प्रवेश और अपनी विवाही हुई उसी कन्याको जो ज्येष्ठ भ्राताको निवेदनकीथी ज्येष्ठ भ्राताकी आज्ञासे विवाहले-यहां ज्येष्ठको उसका दान भोगके लिये नहीं समझना किंतु ब्रह्मचर्यमें मांगी हुई भिक्षाके समान इसलिये निवेदन है कि ज्येष्ठ भ्राता क्रुद्ध न रहै कि इसने हमसे पहिले विवाह क्यों किया-परिवेत्ताका लक्षण पहिले कह आये हैं-और जो हारीतने कहा है कि ज्येष्ठके निवेश (विवाह) किये विना छोटा भ्राता निवेश करै तो परिवेत्ता होता है और ज्येष्ठ भ्राता परिवित्ति और कन्या परिवेदिनी कन्याका दाता परिदायी और याजक परियष्टा-होता है-ये सब पतित होते हैं और वर्ष दिनके कृच्छ्रसे पवित्र होते हैं-और जो शंखने कहा है कि परिवेत्ता और परिवित्ति वर्ष दिनतक ब्राह्मणोंके घरोंमे भिक्षाटन करै-ये पूर्वोक्त दोनों वचन ज्ञानसे और कन्याके पिताकी आज्ञाके विना विवाहके विषयमें समझने-क्यों कि प्रायश्चित्त गुरु (भारी) है-और जब जानकर पिता आदिकी दी हुई कन्याको विवाहे तब मनुका कहा त्रैमासिक व्रत करै-और पूर्वोक्त कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और याज्ञवल्क्यके कहे चारों व्रत अज्ञानके विषयमें समझने-यमनें भी यहां विशेष कहा है कि परिवेदमें दोनोंको कृच्छ्र और कन्याको भी कृच्छ्र है-और दाता अतिकृच्छ्र करै और होता चांद्रायण करै-यह प्रायश्चित्त पर्याहिताग्नि (जिसने ज्येष्ठ भ्रातासे पहिले अग्निहोत्र ग्रहण कियाहो) आदिकोंकोभी एक योगमें पढनेसे समान है सोई गौतमने कहा है कि परिवित्ति, परिवेत्ता, पर्याहित, पर्याधाता, अग्रे-

---

१ परिविविदानः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निविशेत तां चैवोपयच्छेत ।

१ ज्येष्ठेऽनिर्विष्टे कनीयान्निर्विशमानः परिवेत्ता भवति परिवित्तिर्ज्येष्ठः परिवेदिनी कन्या परिदायी दाता परियष्टा याजकस्ते सर्वे पतिताः संवत्सरं प्राजापत्येन कृच्छ्रेण पावयेयुः

२ परिवित्तिः परिवेत्ता च संवत्सरं ब्राह्मणगृहेषु भैक्ष्यं चरेयाताम् ।

३ कृच्छ्रौ द्वयोः परिवेदे कन्यायाः कृच्छ्र एव च। अतिकृच्छ्रं चरेद्दाता होता चान्द्रायणं चरेत् ।

४ परिवित्तिपरिवेतृपर्याहितपर्याधात्रग्रेदिधिषूदिधिषूपतीनां संवत्सरं प्राकृतं ब्रह्मचर्यम् ।

दिधिषू, दिधिषूपति, ये संवत्सरतक प्राकृत ब्रह्मचर्य करें इसीसे वासिष्ठने अग्रेदिधिषूपति आदिकोंको यही प्रायश्चित्त कहा है कि अग्रेदिधिषूकापति द्वादश रात्र कृच्छ्र करके निवेश करे और उसीको विवाह ले, दिधिषूकापति कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करके उसीको दी हुई दिधिषूको फिर विवाहले अग्रे दिधिषू आदिका लक्षण अन्य स्मृतिमें कहा है कि जेठी कन्याका विवाह न होने पर छोटी कन्या जो विवाही जाय वह अग्रेदिधिषू और जेठी दिधिषू होतीहै उनमें अग्रेदिधिषूकापति प्राजापत्य व्रतको करके उसी जेठी को तब विवाहे जब उसका अपने विवाहसे पीछे किसी अन्य पुरुषके संग विवाह(संबंध) हो चुका हो और दिधिषूकापति कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करके अपनी विवाही जेठी कन्याको छोटी कन्याके पतिको देकर किसी अन्य कन्याके संग विवाह करले–इति परिवेदनम्–तैसेही भृतकाध्यापक और भृतकाध्यापित इन दोनोंको, दूधसे सुवर्चलाको पीवे इस अधिकारमें विष्णुने कहा है कि भृतक (नौकरी) से अध्यापन (पढाना) करके और भृतकसे पढके अनुयोगके प्रदानसे तीन पक्षतक नियमसे दूधके संग ब्रह्म सुवर्चलाको पीवै बडाईके लिये पढते हुये तैने नाश किया ऐसे कथनको अनुयोग प्रदान कहते हैं इसीसे अन्यस्मृतिमें पढनेवालेको जिन अध्यापकोंने अनुयोग दिया है उनको मनुने पतित कहा है यह कथन है–यहांभी पूर्वोक्त व्रतोंके संग शक्तिकी अपेक्षासे इसका विकल्प समझना, तैसेही पराई दाराके गमनमें सब उपपातकोंमें प्राप्त मनुके कहे त्रैमासिक व्रतका, और याज्ञवल्क्यके कहे पूर्वोक्त चारों व्रतोंका गुरुकी स्त्रीमें अपवाद (निषेध) कहा है–तिसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंमेंभी गौतम आदिकोंने किसी २ परदाराके गमनमें अपवाद कहा है सोई गौतमने कहा है कि पर दारामें दो वर्ष और वेदपाठीकी दारामें तीन वर्ष ब्रह्मचर्य है–तैसेही वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्यके प्रस्तावमें गौतमने ही कहा है कि उपपातकोंमेंभी ऐसेही समझना, उनका यह व्यवस्था है कि ऋतुकालमें जानकर जातिमात्र ब्राह्मणीके गमनमें वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है और ऋतु कालमेंही कार्यके साधक गुणवाली ब्राह्मणीके गमनमें दो वर्ष तक प्राकृत ब्रह्मचर्य करे और वैसीही वेदपाठीकी भार्याके गमनमें तीन वर्षतक प्राकृत ब्रह्मचर्य करे अथवा यह व्यवस्था है कि वेदपाठीकी गुणवती, ब्राह्मणी, पत्नीमें तीन वर्षका और वैसीही क्षत्रिया पत्नीमें दो वर्षका और वैसीही वैश्या पत्नीमें एक वर्षका ब्रह्मचर्य करे इसी रीतिसे शूद्रामें छः मासके प्राकृत ब्रह्मचर्य की कल्पना करनी इसीसे शंखने वर्णके क्रमसे प्रायश्चित्तकी न्यूनता दिखाई है कि वैश्यामें अवकीर्ण

१ अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत तां चैवोपयच्छेत् दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्वा पुनर्निविशेत ।

२ ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामुह्यतेऽनुजा । या साऽग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृता ।

३ भृतकाध्यापनं कृत्वा भृतकाध्यापितस्तथा । अनुयोगप्रदानेन त्रीन्पक्षान्नियतः पिबेत् ।

१ दत्तानुयोगानध्येतुः पतितान्मनुरब्रवीत् ।

२ द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य ।

३ उपपातकेषु चैवम् ।

४ वैश्यामवकीर्णः संवत्सरं ब्रह्मचर्यं त्रिषवणं चानुतिष्ठेत् क्षत्रियायां द्वे वर्षे त्रीणि ब्राह्मण्यां वैश्यायां शूद्रायां ब्राह्मणपरिणीतायां ।

(वीर्यसेचन करने वाला) होयतो वर्ष दिन ब्रह्मचर्य और त्रिकाल स्नान करे, क्षत्रियामें दो वर्ष, ब्राह्मणीमें तीन वर्ष, करे, वैश्या, और शूद्रा, ब्राह्मणकी विवाही होयतो उक्त प्रायश्चित्त समझना इसी प्रकार क्षत्रियकोभी क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें दो वर्षका एक वर्षका, छः मासका ब्रह्मचर्य पूर्वोक्तही विषयमें समझना, और वैश्यको वैश्या और शूद्राके गमनमें एक वर्षका और छः मासका प्रायश्चित्त करे–और शूद्र पराई शूद्राके गमनमें छः मासका ब्रह्मचर्य करे–और जो आपस्तंबका वचन है जिसने अन्यका संग न किया हो ऐसी सवर्णा स्त्रीके गमनमें पाद प्रायश्चित्त कहाहै– और अभ्यासमें पतित होताहै– और चौथे गमनमें संपूर्ण प्रायश्चित्त होताहै यह वचन गौतमके कहे तीन वर्षके प्रायश्चित्तका जो विषय उसमें समझना, जिसका अन्य पुरुषके संग संयोग न हुआ हो उस स्त्रीके चार वार अभ्यासमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहाहै– इससे एक स्त्रीके विषय गमनके अभ्यासमें यह प्रायश्चित्त नहीं किंतु गमन २ के प्रति एक २ पाद न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी– यह सब प्रायश्चित्त ज्ञानसे करनेमें समझना अज्ञानसे करनेमें तो यह प्रायश्चित्त पूर्वोक्त विषयमें आधा समझना ऋतुसे भिन्न कालमें तो ज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणीके गमनमें मनुका कहा त्रैमासिक व्रतहै–और क्षत्रिया आदि जाति मात्र स्त्रियोंके पूर्वोक्त समयके ज्ञानसे गमनमें उनको कहेही दो मासका चान्द्रायण और मासिक व्रत समझने और क्षत्रिय आदिकोंको तो क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें द्वैमासिक आदि व्रत समझने– और अज्ञानसे इनके गमनमें तीन वर्षका जो प्रायश्चित्त उसके स्थानमें याज्ञवल्क्यका कहा जो एक बैल दश गौओंका दान, मासभर प्राजापत्यका करना क्रमसे जानना शूद्राके गमनमें तो ज्ञानसे गमनमें कहा जो मासव्रत वही आधा समझना–इसीसे संवर्त ने कहा है कि मास वा आधे मास तक ब्राह्मण शूद्राका गमन करके गोमूत्र और जौ को पीकर उस पापकी मुक्तिके अर्थ टिका रहे–इस वचनमें अज्ञानसे गमनमें आधा मास समझना–और यदि ब्राह्मण जानकर ब्राह्मणकी दाराओंके संग गमन करे तो जिसका धर्म कर्म निवृत्त हो चुकाहो वह कृच्छ्र और जो धर्म कर्म में निष्ठहो वह अति कृच्छ्र करे–ये वचन ब्राह्मणकी भार्या जो शूद्रा उसमें समझने अथवा दो तीन वार किया है व्यभिचार जिन्होंने ऐसी ब्राह्मणकी विवाही हुयी द्विजाति स्त्रियों में अज्ञानसे गमनमें समझने–सोई संवर्तने कहाहै कि नहीं है स्वजन (पति) जिसके ऐसी ब्राह्मणीके संग गमन करके प्राजापत्य करे–ज्ञानसे करे तो यह यमका कहा प्रायश्चित्त जानना कि राज्ञी-संन्यासिनी-धात्री (धाय) साध्वी–और उत्तम वर्णकी और सगोत्रा इन का गमन करके दो कृच्छ्र करे–यदि व्यभिचार का चारसे अधिक अभ्यास होजाय तो शंखे का कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि

१ सवर्णागमनेऽप्रसूतायां महत्त्वनिपाते पादः पतत्येवमभ्यासे पादन्यायश्चतुर्थे सर्वम् ।

१ शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा । गोमूत्रयावकाहारस्तिष्ठेत्तत्पापमुक्तये ।

२ विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ।

३ राज्ञीं प्रव्रजितां साध्वीं धात्रीं वर्णोत्तमामिति । कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ।

४ स्वैरिण्यां वृषल्यामवकीर्णः सचैलस्नात उदकुंभं दद्याद् ब्राह्मणाय वैश्यायां च चतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेद्यवसमारं च गोभ्यो दद्यात् क्षत्रियायां त्रिरात्रोपोषितो घृतपात्रं दद्यात् ब्राह्मण्यां षड्रात्रोपोषितो गां दद्यात् गोष्ववकीर्णः प्राजापत्यं चरेत् मनुष्यामवकीर्णः पलालभारं सीसमाषकं च दद्यात् ।

व्यभिचारिणी शूद्रामें गमन करे तो सचैलस्नान करके जलका घट ब्राह्मणको दे–और वैश्यामें करे तो चौथेकाल भोजन करे ब्राह्मणोंको जिमावे–भूसका भार गौओंको दे–क्षत्रियामें करे तो तीनरात्र उपवास करके घीका पात्र दे–और ब्राह्मणीमें गमन करे तो छः रात्र उपवास करके गौ दान करे–गौओं का गमन (भोग) करे तो प्राजापत्य करे–विना विवाही कन्याके संग गमन करे तो पलालका भार और मासे भर सीसा दे–यह भी चार आदि अभ्यासके विषयमें इससे जानना कि चौथे व्यभिचारमें स्वैरिणी और पांचमें में बंधकी मानीहै यह अन्य वचने में कहाहै–इस विषयमें षट्त्रिंशत् के मतमें भी कहाहै कि बंधकी ब्राह्मणीके संग गमन करके ब्राह्मणको कुछ दे–क्षत्रियामें गमन करके धनुष दे–वैश्याके गमनमें वस्त्र दे–शूद्राके गमनमें ब्राह्मण ब्राह्मणको जलका घट दे–वा एक दिन उपवास करके ब्राह्मणको भोजन दे–अनुलोमके व्यवाय (भोग) में गर्भ रह जाय तो दूना प्रायश्चित्त तभी होताहै यदि वह स्त्री अतिदूषित नहो और प्रतिलोम (नीचावर्ण) के संग उसने गमन न कियाहो–अन्य जातिके गमनमें दूना प्रायश्चित्त होताहै–प्रतिलोम गमनसे दूषित–अंत्यावसायी–और चांडालीके गर्भ रहने में गुरुतल्पके समान व्रत समझना–तैसेही किंचित् न्यून तारतम्यकी कल्पना करनी–चांडालीके गमनमें वार्षिक और गर्भ रहने पर गुरुतल्प व्रत जानना–यह प्रायश्चित्तका समूह गर्भकी उत्पत्तिसे प्रथम २ जानना गर्भ की उत्पत्ति होजाय तो जिस विषय में जो प्रायश्चित्त कहा है वही वहां दूना करना क्योंकि उशना की स्मृति है कि गमनमें जो व्रत होता है वह गर्भमें दूना करे–शूद्रामें गर्भाधान करते हुये पुरुषको चतुर्विंशति के मतमें विशेष कहाहै कि शूद्रामें गर्भाधान करे तो तीन वर्षतक चौथे समय भोजन करे और जो मनुका वचन है (अ. ३ श्लो. १७) कि शूद्राको शय्यापर बैठाकर ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है–और उसमें पुत्रको उत्पन्न करके ब्राह्मणही नहीं रहता यह वचन पापकी अधिकता जतानेके लिये है–और प्रतिलोम (उंचेवर्णकी स्त्री) गमनमें तो सब जगह पुरुषका वधही प्रायश्चित्त है क्योंकि यह वचन है कि प्रतिलोम में पुरुषका वध और स्त्रीके कान आदिका छेदन कहा है–और जो वृद्धप्रचेता का वचन है कि मोहसे ब्राह्मणीका गमन करते और शुद्धि चाहते हुये शूद्रको यह व्रत दे क्योंकि वह उसकी माता है और अन्य वर्णकी स्त्रियोंमें गमन करते हुये शूद्रको एक २ पादसे न्यून व्रत वर्णों के क्रमसे दे–यह बारह वर्षके अतिदेश का वचन अपनी भार्याकी भ्रांतिसे गमन के कर्त्ताको जानना–क्योंकि वचनमें मोहसे यह विशेषण दियाहै–

१ चतुर्थे स्वैरिणी प्रोक्ता पंचमे बधकीमता ।

२ ब्राह्मणीं बंधकीं गत्वा किंचिद्दद्याद्द्विजातये । राजन्यां चेद्धनुर्दद्याद्वैश्यां गत्वा तु चैलकम् शूद्रां गत्वा तु वै विप्र उदकुंभं द्विजातये । दिवसोपोषितो वास्य दद्याद्विप्राय भोजनम् ।

१ गमनेतु व्रतं यत्स्याद्गर्भे तद्द्विगुणं चरेत् ।

२ वृषल्यामभिजातस्तु त्रीणि वर्षाणि चतुर्थकालसमये नक्तं भुंजीत ।

३ शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिं । जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ।

४ प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्तनम् ।

५ शूद्रस्य ब्राह्मणीं मोहाद्गच्छतः शुद्धिमिच्छतः । पूर्णमेतद् व्रतं देयं माता यस्माद्धि तस्य सा । पादहान्यन्यवर्णासु गच्छतः सार्ववर्णिकम् ।

और जो संवर्त्तका वचनहै कि क्षत्रिय वा वैश्य कथंचित् ब्राह्मणीसे गमन करै तो शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करै-और कामसे मोहित शूद्र ब्राह्मणीके संग गमन करै तो गोमूत्र और जौंको खाता हुआ एक मासमें शुद्ध होता है-यह अत्यंत व्याभिचारिणी ब्राह्मणीके विषयमें जानना-अंत्यजा के गमनमें प्रायश्चित्त बृहत्संवर्त्तने कहाहै कि रजक व्याध शैलूष (नट) और जो वांस और चर्मसे जीवै इनकी स्त्रियोंके संग गमन करके ब्राह्मण दो चान्द्रायण करै, यह भी ब्राह्मणको जान कर एक वार गमनके विषयमें समझना और क्षत्रिय आदिकों तो क्रमसे पाद २ न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी-इसी विषयमें आपस्तंबने कहाहै कि म्लेच्छी, नटी, चर्मकारी, रजकी, बुरुडी इनमें गमन करके दो चान्द्रायण करै-अंत्यजभी आपस्तंबने ये दिखाये हैंकि रजक चर्मकार, नट, बुरुड, कैवर्त्त, मेद भील, ये सात अंत्यज कहे हैं और जो चाण्डाल आदि अंत्यावसायी हैं उनकी स्त्रियोंके गमन में महान् प्रायश्चित्त गुरुतल्पप्रकरणमें दिखाय आये-इन अंत्यजोंकी स्त्रियोंके मध्यमें एकके गमनमें जो प्रायश्चित्त कहा है वह सबके गमनमें होता है क्यों कि वे सब-तुल्य हैं, सोई उशनोने कहा है कि एक धर्मवाले बहुतोंके मध्यमें जो एकको कहा हो वह कार्य सबको होता है क्यों कि वे एक रूप कहे हैं-अज्ञानसे गमनमें तो यह आपस्तंबका कहा जानना कि चाण्डाल, मेद, श्वपच, कपाल व्रतके कर्त्ता अज्ञानसे इनकी स्त्रियोंमें गमन करके पराक व्रत करै-और जो संवर्त्तका वचन है कि रजक, व्याध, शैलूप, वांस और चर्मसे जो जीवै इनकी स्त्रियोंके संग ब्राह्मण गमन करै तो कृच्छ्र चान्द्रायण करै यहभी अज्ञानके विषयमें समझना-और जो शातातपने कहा है कि कैवर्त्ती रजकी वांस और चर्मसे जीने वाली इनके गमनमें प्राजापत्य कृच्छ्रसे शुद्ध होता है-वहभी वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिके विषयमें समझना-और जो उशनाने कहा है कि कापालिकोंके अन्नके भोक्ता और उनकी स्त्रियोंके गामी जो हैं उनको ज्ञानसे वर्षभर कृच्छ्र और अज्ञानसे चान्द्रायण कहा है येभी अभ्यासके विषयमें समझना, और जब चाण्डाली आदिके गमनसे गर्भ होजाय तब चाण्डालीमें गर्भ धारण करके गुरुतल्प व्रत करै यह उशनाका कहा बारह वर्षका प्रायश्चित्त जानना और आपस्तंबका यह

वचन है कि अंत्यजामें जो पैदाहुआ उसका प्रायश्चित्त नहीं उसको अंकित करके देशसे निकाल दे इसमें संशय नहीं, यहभी जानकर करनेमें समझना, स्त्रियोंको भी सवर्ण और अनुलोमके गमनमें वही प्रायश्चित्त होता है क्यों कि मनुकी स्मृति है (अ० ११ श्लो० १७६) कि परदाराके गमनमें जो पुरुषको है वही व्रत स्त्रीसे करावे प्रतिलोमके गमनमें ही स्त्री और पुरुषको प्रायश्चित्तका भेद है-सोई वसिष्ठने कहा है कि यदि शूद्र ब्राह्मणी में गमन करे तो वीरणों (तृण) से लपेटकर शूद्रको अग्निमें फेंकदे और ब्राह्मणीके शिरका मुंडन कराकर और खरपर चढाकर महापथ (सडक) में गमन करावे तो पवित्र होती है-यदि वैश्य ब्राह्मणीके संग गमन करे तो-शलकुशाओंसे लपेटकर वैश्यको अग्निमें फेंकदे और ब्राह्मणी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त (मुंडन आदि) से शुद्ध होती है-यदि क्षत्रिय ब्राह्मणीमें गमन करे तो शरकेपत्ते लपेटकर क्षत्रियको अग्निमें फेंकदे-और ब्राह्मणी मुंडन आदि पूर्वोक्त प्रायश्चित्तसे शुद्ध होती है-यह शास्त्रसे जानते हैं-इसी प्रकार वैश्य क्षत्रियामें और शूद्र क्षत्रिया वैश्यामें गमन करे तो प्रायश्चित्त जानना-पवित्र होती है यह कहनेसे यह दिखाया है कि राजमार्गका गमनही दंडरूप अन्य प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षाको छोडकर शुद्धिका कारण है-ब्राह्मणीके प्रतिलोम द्विजातियोंके संग भोग करनेमें अन्य प्रायश्चित्त भी संवर्त्तने कहा है कि ब्राह्मणी अज्ञानसे क्षत्रिय और वैश्यके संग गमन करे तो गोमूत्र और जौंका भक्षण करनेसे एक मास और अर्ध मासमें क्रमसे शुद्ध होती है जानकर गमनमें तो दूना प्रायश्चित्त इस वचनसे होता है-षट्त्रिंशतके मतमें भी कहा है कि क्षत्रिय और वैश्यकी सेवा (भोग) में ब्राह्मणी अतिकृच्छ्र और कृच्छ्रातिकृच्छ्र क्रमसे करे-क्षत्रिया-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके भोगमें-कृच्छ्रका अर्ध प्राजापत्य-अतिकृच्छ्र क्रमसे करे-वैश्या, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके भोगमें कृच्छ्रपाद-कृच्छ्रार्ध-प्राजापत्य क्रमसे करे-शूद्रा शूद्रके भोगमें प्राजापत्य करे-और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके भोगमें तो क्रमसे अहोरात्र त्रिरात्र कृच्छ्रार्ध करे-शूद्रकी सेवामें तो विशेष बृहत्प्रचेताने कहा है-कि ब्राह्मणी शूद्रकी सेवामें यदि

१ यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ।

२ शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्य ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्रजयेत्पूता भवतीति । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूताभवतीति विज्ञायते ।

१ ब्राह्मण्यकामा गच्छेद्वैत्क्षत्रियं वैश्यमेव वा। गोमूत्रयावकैर्मासात्तदर्धाच्च विशुद्ध्यति ।

२ कामात्तद्द्विगुणं भवेत् ।

३ ब्राह्मणी क्षत्रियवैश्यसेवायामतिकृच्छ्रं कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरेत् । क्षत्रिययोषित् ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवाया कृच्छ्रार्द्धं प्राजापत्यमतिकृच्छ्रं वैश्ययोषित् ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्रपादं कृच्छ्रार्धं प्राजापत्यं शूद्रायाः शूद्रसेवने प्राजापत्यं ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां त्वहोरात्रं त्रिरात्रं कृच्छ्रार्द्धम् ।

४ विप्रा शूद्रेण संपृक्ता न चेत्तस्य त्वसूयते । प्रायश्चित्तं स्मृतं तस्याः कृच्छ्रं चांद्रायणत्रयम् । चांद्रायणे द्वे कृच्छ्रश्च विप्राया वैश्यसेवने । कृच्छ्रचांद्रायणे स्यातां तस्याः क्षत्रियसंगमे । क्षत्रियाशूद्रसंपर्के कृच्छ्रचांद्रायणद्वयम् । चान्द्रायणं सकृच्छ्रं तु चरेद्वैश्येन संगता । शूद्रं गत्वा चरेद्वैश्या कृच्छ्रं चांद्रायणोत्तरं । आनुलोम्ये प्रकुर्वीत कृच्छ्रं पादावरोपितम् ।

प्रसूता न होय तो उसका प्रायश्चित्त तीन चांद्रायण कृच्छ्र कहा है—यह प्रायश्चित्त इच्छाके अभावमें वा अपने पतिके भ्रमसें गमनमें जानना—और वैश्यकी सेवामें ब्राह्मणीको चांद्रायण और दो कृच्छ्र हैं—और ब्राह्मणीको क्षत्रियके संगममें—कृच्छ्र और चांद्रायण है—और क्षत्रियाको शूद्रके संसर्गमें कृच्छ्र और दो चांद्रायण हैं—और क्षत्रियाको वैश्यके संगममें कृच्छ्र और चांद्रायण करे—और वैश्या शूद्रका संगम करके चांद्रायण और कृच्छ्र करे—और—अनुलोम गमनमें एक २ पाद अधिक कृच्छ्र क्रमसे करे—और प्रसूताको तो चतुर्विंशतिके मतमें विशेष कहा है कि अज्ञानसे ब्राह्मणके गर्भमें पराक—क्षत्रियके गर्भमें ऐंदव (चांद्रायण) और वैश्यके गर्भमें ऐंदव और पराक और शूद्रके गर्भमें त्याग होताहै क्योंकि वह चाण्डाल होता है और धातुओंके दोषोंसे गर्भका स्राव हो जायतो तीन चांद्रायण करे अज्ञानसे यह विशेषण देनेसे पराक आदि व्रत द्विगुण करे और जब गर्भके न गिरने पर दश मासतक स्थित रहनेसे बालक होयतो प्रायश्चित्तका अभावहै क्योंकि वासिष्ठकी स्मृति है कि ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी भार्या शूद्रका संगम करें तो बालकके जन्मसे पहिलेही प्रायश्चित्तसे शुद्ध होती है अन्य नहीं और यदि गर्भ रहनेके पीछे शूद्र आदिके संग व्यभिचार करे तो तब गर्भपात होनेकी शंकासे प्रसवके अनंतरही प्रायश्चित्त करे क्योंकि यह अन्य स्मृतिमें देखतेहैं कि जो गर्भवती नारी बलात्कारसे किसीकाभी पुरुषका संग करे तो वह गर्भ निकसनेसे पहिले प्रायश्चित्त न करे—बालक पैदा होने पर मासतक यावक व्रत करे उसको गर्भका दोष नहीं उस बालकका विधिसे संस्कार करे और जो उद्धत हुयी प्रायश्चित्त न करे तो नारीके पूर्वोक्त कान आदिका छेदन करे—अंत्यज आदिके गमनमेंभी स्त्रियोंका प्रायश्चित्त अन्य स्मृतिमें दिखाया है कि रजक—व्याध—नट—वांस और चर्मसे जो जीवें इनके संग अज्ञानसे ब्राह्मणी गमन करे तो तीन ऐंदव व्रत करे—तैसेही चांडाल आदि अंत्यजोंके गमनमेंभी यह है कि चांडाल-पुल्कस-म्लेच्छ-श्वपाक और पतित इनके संग अज्ञानसे गमन करके ब्राह्मणी चार चांद्रायण करे—अज्ञानसे यह कहनेसे जानकर गमनमें दूने प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी—तैसेही वचन है कि चांडालके संग

१ विप्रगर्भे पराकः स्यात्क्षत्रियस्य तथैंदवम्। ऐंदवपराकश्च वैश्यस्याकामकारतः । शूद्रगर्भे भवेत्त्यागश्चांडालो जायते यतः। गर्भस्रावे धातुदोषैश्चरेच्चांद्रायणत्रयम् ।

२ ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः । अप्रजाता विशुद्ध्यंति प्रायश्चित्तेन नेतराः ।

१ अंतर्वत्नी तु या नारी समेताक्रम्य कामिना । प्रायश्चित न कुर्यात्सा यावद्गर्भो न निःसृतः । गर्भे जाते व्रत पश्चात्कुर्यान्मासं तु यावकम् । न गर्भदोषस्तस्यास्ति संस्कार्यः स यथाविधि ।

२ रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः । ब्राह्मण्येतान्यदगच्छेदकामादैंदवत्रयम् ।

३ चांडालं पुल्कसं म्लेच्छं श्वपाकं पतितं तथा । ब्राह्मण्यकामतो गत्वा चांद्रायणचतुष्टयम् ।

४ चांडालेन तु संपर्कं यदि गच्छेत्कथंचन । सशिखं वपनं कुर्याद्भुंजीयाद्यावकौदनम् । त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् । आत्मना सम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे । तत्र स्थित्वा निराहारा सा त्रिरात्रं ततः क्षिपेत् । शंखपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलं । क्षीरे सुवर्णमभिश्र क्वाथयित्वा ततः पिबेत् । एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् । बहिस्तावच्च निवसेद्यावच्चरति तद्व्रतम् । प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । गोद्वय दक्षिणा दद्याच्छुद्ध्यै स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।

कीसी प्रकार गमन करे तो शिखा सहित मुंडन करावे और जौ ओदनको भक्षण करे तीनरात्र उपवासकरे एकरात्र जलमें वसे और अपने तुल्य कूपमें-गोमयके जलके कीचमें निराहार टिक कर तीन रात्र वितावे-फिर शंखपुष्पीलताका मूल पत्र, फूल, फल इनको दूधमें सुवर्णको मिलाकर पका कर पीवे-फिर जबतक पुष्पवतहि एक समय भोजन करे और इतने उस व्रतको करे घरसे बाहिर रहे और प्रायश्चित्त करनेके अनंतर ब्राह्मणोंको जिमावे और दो गौ दक्षिणा शुद्धिके लियेदे यह स्वायंभुवमनुनें कहा है-यहभी अज्ञानके विषयमेंही समझना क्योंकि किसी प्रकार गमन करे यह वचनमें कहा है ऋष्यशृंगनेभी अंत्यजाके मैथुनमें अन्य प्रायश्चित्त कहा है कि जो अत्यंजोंके संग संपर्क करे वह स्त्री कृच्छ्राब्द करे-यह जानकर एकवार गमनमें समझना और यदि गर्भवतीकाही पीछेसे चांडाल आदिके संग संगम हो जायतो उसनेही विशेष कहा है कि गर्भवती युवति अत्यंयोनिकि संग संपर्क करे तो वह गर्भके निकसने तक प्रायश्चित्त न करे और घरमें भी न फिरे और न अपने अंगोंका प्रसाधन करे न भर्ताके संग सेवे-न बांधवोंके संग भोजन करे और गर्भके पैदा होने पर कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त करे सुवर्ण वा गौ ब्राह्मणको दक्षिणादे और जब जानकर अत्यंत संपर्क करे तो उशनाका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि अंत्यजके संग मैथुन संपर्क भोजन करेतो जलती हुयी अग्निमें प्रवेश करके वह मृत्युसे शुद्ध होती है और यदि उक्त प्रायश्चित्त न करे तो स्त्रीके देहमें पुरुषका चिन्ह करदे वा वंध्या होजाय-क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि जिस स्त्रीको हीनवर्णने भोगीहो उसके चिन्ह करदे अथवा वह वंध्या होजाय तैसेही परिवित्तिके प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्थाभी परिवेत्ताके प्रायश्चित्तोंके समान जाननी-इतना तो विशेष है कि परिवेत्ताको जिस विषयमें कृच्छ्र अतिकृच्छ्र हैं उसमें परिवित्तिको प्राजापत्य होता है क्योंकि यह वासिष्ठ की स्मृति है परिवित्ति- द्वादश रात्र कृच्छ्र कर फिर निवेश करे और उसकोही विवाहले-वार्धुष्य (व्याज लेना) लवणका विक्रय इन दोनोंमें तो मनु और योगीश्वर ने कहे जो सामान्य उपपातकोंके प्रायश्चित्त वेही जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे युक्त करने (समझने)-

भावार्थ-इसी पूर्वोक्त प्रकारसे उपपातक की शुद्धि होती है वा चांद्रायणसे-वा मास भर दूध पीनेसे-अथवा पराक व्रतसे सब उपपातकोंकी शुद्धि होतीहै ॥ २६५ ॥

ऋषभैकसहस्रागादद्यात्क्षत्रवधेपुमान् ।
ब्रह्महत्याव्रतंवापिवत्सरत्रितयंचरेत्॥२६६॥

पद-ऋषभैकसहस्राः २ गाः २ दद्यात् क्रि-क्षत्रवधे ७ पुमान् १ ब्रह्महत्याव्रतं २ वा॰-अपि॰-वत्सरत्रितयं २ चरेत् क्रि-

वैश्यहाब्दंचरेदेतद्दद्याद्वैकशतंगवाम् ।
षण्मासाच्छूद्रहाप्येतद्धेनूर्दद्याद्दशाथवा ॥

१ संपृक्ता स्याद्यथांत्येर्या सा कृच्छ्राब्दं समाचरेत् ।

२ अंतर्वत्नी तु युवतिः संपृक्ता चान्त्ययोनिना । प्रायश्चित्तं न सा कुर्याद्यावद्गर्भो न निःसृतः । न प्रचारए है कुर्याच्च चांगेषु प्रसाधनम् । न शयीत समं भर्त्रा न वा भुंजीत बांधवैः । प्रायश्चित्त गते गर्भे विधिं कृच्छ्रादिकं चरेत् । हिरण्यमथवा धेनुं दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।

३ अंत्यजेन तु संपर्के भोजने मैथुने कृते । प्रविशेत्संप्रदीप्तेग्नौ मृत्युना सा विशुद्ध्यति ।

१ हीनवर्णोपभुक्ता या सांक्या वंध्याथवा भवेत् ।

२ परिवित्तिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्निविशेत तां चैवोपयच्छेत् ।

पद-वैश्यहा १ अब्दं २ चरेत् क्रि-एतत् २ दद्यात् क्रि- एकशतं २ गवाम् ६ षण्मासान् २ शूद्रहा १ अपि-एतत् २ धेनूः २ दद्यात् क्रि-दश ३ २ अथवा-

योजना-पुमान् क्षत्रवधे ऋषभैकसहस्रा गाः दद्यात् वा वत्सरत्रितयं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्-वैश्यहा एतत् अब्दं चरेत् वा गवां एकशतं दद्यात्-शूद्रहा अपि एतत् षण्मासान् चरेत् अथवा दश धेनूः दद्यात्-

तात्पर्यार्थ-ऋषभ (बैल) है एक अधिक जिनमें ऐसी सहस्र गौ क्षत्रियके वधको करके पुरुष दे- अथवा बडा प्रायश्चित्तरूप ब्रह्महत्याका व्रत तीनवर्षतक करै वैश्यका घाती-इस ब्रह्महत्याके व्रतको एकवर्षतक करै और ऋषभ है एक जिनमें ऐसी सौ गौ दान करै-और शूद्रका घाती तो छःमासतक ब्रह्महत्याका व्रत करै-वा तत्काल प्रसूता-और सवत्सा दश गौओंका दान करै-यह प्रायश्चित्त अज्ञानसे जातिमात्र क्षत्रिय आदिके वधमें समझना-कि अज्ञानसे राजाको मारकर इस प्रकरणमें येही प्रायश्चित्त मनुने कहे हैं और दान और तपकी व्यवस्था शक्तिकी अपेक्षासे जाननी-अल्पवृत्तमें स्थित वैश्य और शूद्रके विषयमें तो यह मनु (अ. ११ श्लो. १२६)का कहा जानना कि ब्रह्महत्याका चौथा भाग क्षत्रियके वधमें कहा है और वैश्यके वधमें आठवां भाग और शूद्रकी हत्यामें सोलहवां भाग जानना और सदाचारी क्षत्रियके वधमें तो साढेचार वर्षके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी-यहां वृत्त शब्दसे गुण आदि लेने क्योंकि मनुकी स्मृति है कि गुरुपूजा-घृणा-शौच-सत्य इन्द्रियोंका रोकना-हित करना-यह सब वृत्त कहाता है-और जो वृद्ध हारीतका वचन है कि ब्राह्मण क्षत्रियको मारकर छः वर्ष व्रत करै-और द्विज वैश्यको मारकर इसी व्रतको तीनवर्षतक करै-वैश्यको मारकर वर्षभर व्रतको करै और एक वृषभ दशगौओंका दान करै-यह ज्ञानसे करनेमें समझना वेदपाठी क्षत्रिय आदिके वधमें तो यह वृद्ध हारीतका कहा जानना कि क्षत्रियके वधमें एकपाद न्यून ब्रह्महत्याका व्रत करै-वैश्यके वधमें आधा और शूद्रके वधमें चौथाई करै-और जो वसिष्ठका वचन है कि ब्राह्मण क्षत्रियको मारकर आठ वर्ष व्रत करै-वैश्यको हतकर छः वर्ष-और शूद्रको मारकर तीन वर्ष व्रत करै वहभी हारीतके कहे विषयमें ही समझना-और ईषत्न्यून गुणवाले क्षत्रियमें तो इतना विशेष है कि जब क्षत्रिय वेदपाठी और वृत्तमें स्थित हो तब तो पूर्वके दोनों वर्णोंमें वेदपाठीको मारकर यह आपस्तंबका कहा बारह वर्षका प्रायश्चित्त जानना-जिसने यज्ञका प्रारंभ कर रक्खा हो ऐसे वेदपाठीसे भिन्न क्षत्रिय आदिके मारनेमें तो यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यका घाती ब्रह्महत्याका व्रत करै-यह व्रत जानना-और यज्ञमें स्थित वेदपाठी क्षत्रिय आदिमें ब्राह्मण क्षत्रियका वध करै तो छः व-

१ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः । वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ।

२ गुरुपूजा घृणा शौचं सत्यमिंद्रियनिग्रहः । प्रवर्तनं हितानां च तत्सर्वं वृत्तमुच्यते ।

१ ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा षड्वर्षाणि व्रतं चरेत् । वैश्यं हत्वा चरेदेवं व्रतं त्रैवार्षिकं द्विजः । शूद्रं हत्वा चरेद्वर्षं वृषभैकादशाश्च गाः ।

२ तुरीयेण क्षत्रियस्य वधे ब्रह्महणि व्रतम् । अर्द्धं वैश्यवधे कुर्यात्तुरीयं वृषलस्य तु ।

३ ब्राह्मणो राजन्यं हत्वाष्टौ वर्षाणि व्रतं चरेत् । षट् वैश्यं त्रीणि शूद्रम् ।

४ पूर्वयोर्वर्णयोर्वेदाध्यायिनं हत्वा द्वादशवार्षिकं चरेत् ।

र्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य करै और एक बैल सहस्र गौ दे, वैश्यके वधमें तीन वर्ष ब्रह्मचर्य एक बैल सौ गौ दे, शूद्रके वधमें वर्षदिनका ब्रह्मचर्य करै एक बैल दश गौ दे–यह गौतमके कहा दान और तपका समुच्चय जानना यहभी अज्ञानके विषयमें जानना क्योंकि शंखकी स्मृति है कि अज्ञानसे चारों वर्णोंको मारकर बारह छः तीन एक वर्षतक ब्रह्मचर्य करै और उनके अंतमें सहस्र, पांचसौ अढाइसौ सवासौ गौ वर्णोंके क्रमसे दे–यह बारह वर्षका व्रतभी गौतमकेही कहे विषयमें है किंचित् न्यून गुणवाले क्षत्रियमें और अधिक गुणवाले वैश्य और शूद्रमेभी जानना क्योंकि (स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधे) स्त्री शूद्र वैश्य क्षत्री इनके वधमें इस वचनमें विशेष कर उपपातकके मध्यमें पढनेसे उत्सर्ग अपवादन्यायका विषय नहीं इससे सामान्य उपपातकोंके प्रायश्चित्तभी यहां समझने उनमें दुराचारी क्षत्रिय आदिके जानकर वधमें मनुका कहा तीन मास तीन वर्ष और दो मास व्रत और चान्द्रायण वर्णके क्रमसे जानना और अज्ञानसे तो योगीश्वरका कहा तीन रात्र उपवास सहित एक बैल दश गौ दान–मासभर पंचगव्य भोजन और–मासभर तक पयोव्रत क्रमसे जानना–यह पूर्वोक्त व्रतोंका समूह ब्राह्मणके किये क्षत्रिय आदिके वधमें जानना–क्योंकि इन मनु गौतम हारीतके वचनोंमें ब्राह्मणका ग्रहण है (अ० ११ श्लो० १२७) कि ब्राह्मण अज्ञानसे क्षत्रियको मारकर ब्राह्मण और क्षत्रियके वधमें ब्राह्मण क्षत्रीको मारकर पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै–और क्षत्रिय आदिके किये क्षत्रिय आदिके वधमें तो एक पाद न्यून प्रायश्चित्त है क्योंकि वृद्धविष्णुकी स्मृति है ब्राह्मणको संपूर्ण प्रायश्चित्त देना क्षत्रियको एकपादन्यून वैश्यको आधा शूद्रको एकपाद कहा है–और जो पूर्वोक्त अंगिराका यह वचन है कि जो ब्राह्मणोंकी पर्षत (मार्ग) है वह क्षत्रियोंका दूना वैश्योंका तिगुना कहा है और पर्षद्के समान व्रत कहा है वह वचन कठोर वाणी और कठोर दंडके विषयमें समझना यह गोवध प्रकरणमें कह आये मूर्द्धावसिक्त आदिके वधमें यह प्रायश्चित्तका समूह नहीं होता–क्योंकि वे क्षत्रिय आदि नहीं हैं इससे इनके वधमें दंडके अनुसारही पूर्वोक्त व्रतोंकी वृद्धि और न्यूनता कल्पना करनी वह दंडकी वृद्धि और न्यूनता वर्ण और जातिके ऊंच नीचके अनुसार दंड देना इस वचनमें दिखाय आये हैं ॥

भावार्थ–मनुष्य क्षत्रीके वधमें एक बैल सौ गौ दे वा तीन वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करै वैश्यका हत्यारा एक वर्षतक ब्रह्महत्या का व्रत करै और एक सौ एक गौ दे शूद्रका हत्यारा भी छः मासतक ब्रह्महत्याका व्रत करै और दूध देती हुई सवत्सा दश गौ दे ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

इति क्षत्रियादिवधप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

---

१ ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यमृषभैकसहस्राश्च गा दद्याद्वैश्यवधे त्रिवार्षिकमृषभैक शताश्च गा दद्यात् । शूद्रवधे सांवत्सरिकमृषभैकादशाश्च गादद्यात् ।

२ पूर्ववदमतिपूर्वं चतुर्षु वर्णेषु प्रमाप्य द्वादश षट् त्रीन् संवत्सरं च व्रतान्या दिशेत् । तेषामन्ते गोसहस्रं च ततोऽर्धं तस्यार्धमर्धं दद्यात् सर्वेषां मानुपूर्व्येण ।

१ अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः । तथा ब्राह्मणराजन्यवधे षड्वार्षिकं तथा । ब्राह्मणः क्षत्रिय हत्वा ।

२ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम् । वैश्येऽर्धमेकपादस्तु शूद्रजातिषु शस्यते ।

३ दंडप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरे ।

दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाःप्रमाप्यतु ॥
दृतिंधनुर्बस्तमविंक्रमाद्द्याद्विशुद्धये २६८

पद–दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाः २–प्रमाप्य–तु–दृतिं २–धनुः २–बस्तं२–अविं२–क्रमात्५–दद्यात्–क्रि.–विशुद्धये४ ॥

योजना–दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाः प्रमाप्य दृतिं धनुः बस्तम्, अविम् विशुद्धये क्रमात् दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–अब स्त्रीके वधका प्रायश्चित्त कहते हैं दुर्वृत्त (व्यभिचारिणी) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी स्त्रियोंको मारकर क्रमसे दृति अर्थात् जलाधार चर्मकोश (मसक) धनुष, बस्त (बकरा) आवि (भेड) इनको क्रमसे शुद्धिके लिये दे यह प्रायश्चित्त प्रतिलोम क्रमसे अंत्य जातिसे पैदाहुई ब्राह्मणी आदिके अज्ञानसे वधमें समझना ज्ञानसे वधमें तो ब्रह्मगर्भने यह कहा है कि प्रतिलोमसे पैदा हुई स्त्रियोंके वधमें एक मासकी अवधि कही है–और जो अंतरप्रभव सूत आदि हैं उनकी अवधि चार दो छः मासकी है यहां योग्यतासे यह अन्वय समझना कि ब्राह्मणीके वधमें छः मास क्षत्रियाके वधमें चार और वैश्याके वधमें दो और जब वैश्यके कर्मसे जीविका करती हुई को मारे तब, कुछ दान करे–क्योंकि गौतमकी कही स्मृति है कि वैशिक (वैश्यका कर्म) से जीविका करती हुई को मारे तो किंचितही दे और वह किंचित् जल लेना–क्योंकि अंगिराकी यह स्मृति है कि ब्राह्मणीके वधमें ब्राह्मणको कोश और कूपका दान करे–और क्षत्रियाके वधमें धेनु, वैश्याके वधमें बस्त और शूद्राके वधमें अवि दे यदि वह वैश्यवृत्ति करती होय तो मनुष्यं जल दे–यदि प्रतिलोम क्रमसे क्षत्रिय आदिके संग व्यभिचार करती हुई ब्राह्मणी आदिको मारे तो गौवधके प्रायश्चित्तही तथा योग्य समझने ॥

भावार्थ–दुष्टाचारिणी जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्रोंकी स्त्री हैं उनको मारकर क्रमसे दृति (मसक) धनुष– बस्त (बकरा) अवि (भेड) इनको शुद्धिके लिये दे २६८

अप्रदुष्टांस्त्रियंहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत् ॥
अस्थिमतांसहस्रंतुतथानस्थिमतामनः ॥

पद–अप्रदुष्टां २ स्त्रियं२ हत्वा–शूद्रहत्याव्रतं २ चरेत् क्रि–अस्थिमतां ६– सहस्रं २ तु– तथा– अनस्थिमताम् ६ अनः २ ॥

योजना–अप्रदुष्टां स्त्रियं तु पुनः अस्थिमतां सहस्रं तथा अनस्थिमतां अनः (शकटं) हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–यदि अत्यंत दुष्ट नहों और किंचित् व्यभिचारिणी हों ऐसी ब्राह्मणी आदिकोंको नष्ट करे तो शूद्रहत्याका पाण्मासिक व्रत करे अथवा दशधेनु दे यह छः मासका व्रत अज्ञानसे ब्राह्मणीके वधमें और जानकर किये क्षत्रियाके वधमें जानना–और जानकर वैश्याके वधमें दशधेनु दे–और जानकर शूद्राके वधमें तो सब उपपातकोंमें साधारण जो मासभर पंचगव्यका भक्षण उसको करे–यदि जानकर ब्राह्मणीको मारे तो द्वादशमासिक व्रत करे–और क्षत्रिया आदिके तो अज्ञानसे मारनेमें त्रैमासिक–डेढमास–साढेबाईसदिन व्रत करे सोई प्र-

१ प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणां मासावधिः स्मृतः । अंतरप्रभवाणां च सूतादीनां चतुर्द्विषट् ।

२ वैशिकेन किंचित् ।

३ कोशं कूपे च विप्रे वा ब्राह्मण्यां प्रतिपादयेत् । वधे धेनुः क्षत्रियाया बस्तो वैश्यावधे स्मृतः । शूद्राया-मात्रिक वैश्यां हत्वा दद्याज्जलं नरः ।

चेतों ने कहा है कि जिसके ऋतु न हो ऐसी ब्राह्मणीको मारकर वर्षभर वा छः मासतक कृच्छ्र करे-क्षत्रियाको मारकर छः मास वा तीन मासतक वैश्याको मारकर तीनमास वा डेढ मासतक और शूद्राको मारकर डेढमास वा साढेबाईस दिनतक कृच्छ्र करे-और जो हारीतने छः वर्ष क्षत्रियमें प्राकृत ब्रह्मचर्य और तीनवर्ष वैश्यमें और डेढवर्ष शूद्रमें है यह कहकर कहा है कि क्षत्रियके समान ब्राह्मणीमें, और वैश्यके समान क्षत्रियामें-और शूद्रके समान वैश्यामें है और शूद्राको हतकर नवमास ब्रह्मचर्य है-वहभी उन स्त्रियोंके मारनेमें जानना जो कर्मके साधन गुणोंसे युक्तहों-अज्ञानसे तो सब जगह आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी रजस्वलाके विषयमें तो पहिली कहआये ॥

इति स्त्रीवधप्रायश्चित्तप्रकरणम्-

अस्थि है जिनमें ऐसे कृकलास (करकेंटा) आदि उन प्राणियोंके मध्यमें जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा सहस्रको मारकर और जिनमें अस्थि नहीं ऐसे यूका मत्कुण दंश मशक आदियोंका शकट (गाडा) अर्थात् जितनेमें शकटभरे उतने मारकर शूद्र हत्याका व्रत (छः मासका ब्रह्मचर्य) करे वा दशधेनु दे-यहां सहस्र इस नियमसे सहस्रसे अधिकके वधमें अन्य प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी और उससे पूर्व २ प्रत्येकके वधमें तो अस्थिवालोंके वधमें किंचित् दे- और जिनमें अस्थि नहीं उनके वधमें प्राणायाम करे यह आगे कहेंगे-तैसेही अनास्थिवालों का अनः (गाडा) यह वचनभी क्षुद्रजंतुओंके विषयमें है स्थूल और अनस्थि घुण आदि जीवोंके वधमें तो-कृमिकीट पक्षी इनकी हत्या मलिनीकरण है और मलिनीकरणोंमें तप्तयावक (तपाये जौं) तीन दिनतक होताहै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना-

भावार्थ-जो अत्यंत दुष्ट नहो ऐसी स्त्री को और अस्थिवाले सहस्र जीवोंको और जिनमें आस्थ नहो ऐसी शकट (गाडा) भर जीवोंको मारकर शूद्रहत्याके व्रत अर्थात् षाण्मासिक प्राकृत ब्रह्मचर्य करे ॥ २६९ ॥

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्वपतत्रिणः ॥
हत्वात्र्यहंपिबेत्क्षीरंकृच्छ्रंवापादिकंचरेत् ॥

पद-मार्जारगोधानकुलमंडूकान् २ च-पतत्रिणः२ हत्वा-त्र्यहं २ पिबेत् क्रि-क्षीरं२ कृच्छ्रं २ वा- पादिकं २ चरेत् क्रि-

योजना-मार्जारगोधानकुलमंडूकान् च पुनः पतत्रिणः हत्वा त्र्यहं क्षीरं पिबेत् वा पादिकं कृच्छ्रं चरेत्-

तात्पर्यार्थ-मार्जार, नकुल, गोह, मेंडक, और पतत्रि (पक्षी) इनको मारकर तीन रात्रतक दूध पीवे वा पादकृच्छ्र करे और वा शब्दके पढनेसे योजन गमन आदिको करे सोई मनु (अ० ११ श्लो० १२२) ने कहाहै कि तीनरात्र दूध पीवे वा एक योजन मार्गमें गमन करे वा बहतीनदीमें जलका स्पर्श (स्नान) करे वा जलहै देवता जिनको

१ अनृतुमतीं ब्राह्मणीं हत्वा कृच्छ्राब्दं षण्मासान्वेति। क्षत्रियां हत्वा षण्मासान्मासत्रयं वेति । वैश्यां हत्वा मासत्रयं सार्धमासं वेति शूद्रां हत्वा सार्धमासं सार्द्धद्वाविंशत्यहानि वा ।

२ षड्वर्षाणि राजन्ये प्राकृतं ब्रह्मचर्यं त्रीणि वैश्ये सार्द्धं शूद्रे । क्षत्रियवद्ब्राह्मणीषु वैश्यवत् क्षत्रियायां शूद्रा हत्वा नवमासान् ।

३ किंचित्सास्थिवधे देयं प्राणायामस्त्वनस्थिके ।

१ कृमिकीटवयोहत्या । मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्यायावकस्त्र्यहम् ।

२ पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाध्वनो व्रजेत् । अपः स्पृशेत्स्रवत्या वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ।

ऐसे मंत्रोंका जप-यहभी प्रत्येकके वधमें है समुदाय (इकट्ठे) के वधमें तो यह मनु (अ० ११ श्लो० १३१) का कहा पाण्मासिक व्रत जानना कि मार्जार, नकुलको और चाष, मेंडक को- कुत्ता, गोह, उल्लूक काक इनको मारकर शूद्रहत्याका व्रत करे और जो वसिष्ठने, कहाहै कि कुत्ता, मार्जार, नोला, मेंडक, सर्प, दहर (छोटा मूसा वा छुछुंदरी) मूसा-इनको मारकर द्वादशरात्र कृच्छ्र करे और कुछ दान करे-वह जानकर अभ्यासके विषयमें जानना ॥

भावार्थ-मार्जार-गोह-नोला-मेंडक और काक आदि पक्षी इनको मारकर तीनदिन दूध पीवे वा पादकृच्छ्र करे ॥ २७० ॥

गजेनीलवृषाःपंचशुकेवत्सोद्विहायनः ॥ खराजमेषेषुवृषोदेयःक्रौंचेत्रिहायनः॥२७१॥

पद-गजे ७ नीलवृषाः १ पंच १ शुके ७ वत्सः १ द्विहायनः १ खराजमेषेषु ७ वृषः १ देयः १ क्रौंचे ७ त्रिहायनः १

योजना-गजे हते सति पंच नीलवृषा देयाः शुके हते द्विहायनः वत्सः खराजमेषेषु हतेषु वृषः देयः क्रौञ्चे हते त्रिहायनः वत्सः देयः-

ता०भावार्थ-हाथीको मारे तो पांच नील वृषदे, शुक (तोता) पक्षी को मारे तो दो वर्षका बछड़ा दे, खर, बकरी, भेड, इन प्रत्येकको हत्यामें एक बैलदे मनुनेभी यहां (अ० ११ श्लो० १३६) विशेष कहा है कि अश्वको मारकर वस्त्र दे हाथीको मारकर पांच नीले बैलदे बकरी, भेड, खर, बैल इनको मारकर एक वर्षका बछडादे ॥ २७१ ॥

हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखंडिनः । भासंचहत्वादद्याद्गामक्रव्यादस्तुवत्सिकाम्

पद-हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखंडिनः २ भासं २ च० हत्वा० दद्यात् क्रि- गां २ अक्रव्यादः २ तु० वत्सिकां २

योजना-हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखंडिनः च पुनः भासं हत्वा गां दद्यात् तु पुनः अक्रव्यादः हत्वा वत्सिकां दद्यात्-

तात्पर्यार्थ-हंस श्येन (शिकरा) कपि (वानर) क्रव्यात् अर्थात् कच्चे मांसके खाने वाले व्याघ्र शृगाल आदि मृगविशेष वानर के साहचर्यसे लेना तैसेही हंस और श्येन के साहचर्यसे कक और गृध्र आदि पक्षी विशेषभी क्रव्यात् पदसे लेने और जल शब्दसे बगला आदि जलचर और स्थल शब्दसे (कबूतर आदि) स्थलचर लेने शिखंडी (मोर) और भास (पक्षिविशेष) इन प्रत्येकके वधमें एक गौका दान करे-और अक्रव्याद् अर्थात् कच्चे मांसके न खाने वाले हरिण आदि मृग और खजर आदि पक्षियोंको मारकर एक बछियाका दान करे-सोई मनुने कहाहै (अ० ११ श्लो० १३५-१३७) कि हंस, बलाका, बक, मोर, वानर, श्येन, भास, इनको मारकर ब्राह्मण को गौ दे-कच्चे मांसके भक्षक मृगोंको मारकर दूध देती गौ दे और जो कच्चे मांसको नहीं खाते उनको मारकर बछिया दे-ऊटके मारकर कृष्णल दे ॥

१ मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च । श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।

२ श्वमार्जारनकुलमण्डूकसर्पदहरमूषिकान् हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् किंचिद्दद्यात् ।

३ वाजी दद्याद्वयं हत्वा पञ्चनीलान्वृषान्गजम् । अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनं ।

१ हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च । वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् । क्रव्यादस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् । अक्रव्यादो वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ।

भावार्थ-हंस, शिकरा, वानर, कच्चे मांस के भक्षक जलस्थलके जीव, मोर, भास इनको मारकर गौ दे जो कच्चे मांसके भक्षक नहीं उनको मारकर बछिया दे ॥ २७२ ॥

उरगेष्वयसोदंडोपंडकेत्रपुसीसकम् ॥
कोलेघृतघटोदेयउष्ट्रेगुंजाहयेंशुकम् २७३॥

पद-उरगेषु ७ अयसः ६ दण्डः १ पण्डके ७ त्रपु १ सीसकं १ कोले ७ घृतघटः १ देयः १ उष्ट्रे ७ हये ७ अंशुकम् २ ॥

योजना-उरगेषु हतेषु अयसः दंडः-पंडके हते त्रपुसीसकं-कोले घृतघटः देयः उष्ट्रे हते गुंजा, हये हते अंशुकं देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-सर्पोंको मारै तो तीक्ष्णहै धार जिसकी ऐसा लोहेका दंडदे पण्डक (नपुंसक) को हते तो मासेभर त्रपु वा सीसा अथवा पलालका भारदे-क्योंकि अन्य स्मृतिमें यह कहा है कि पण्डकको मारकर पलालका भार त्रपु, वा सीसा, दे-यद्यपि लिंगसे हीन पण्डक होता है और वह संस्कारके योग्य नहीं होता-इसे देवलके वचनसे सामान्यरूपसे रहित पंडक दिखाया है तथापि यहां गौ ब्राह्मण रूप पण्डककी विवक्षा नहीं क्योंकि गौ और ब्राह्मणके वधका निषेध जाति मात्रके विषयमें है और लिंगसे रहित पंडकमेंभी वह जाति है उससेही लघु प्रायश्चित्त कहा है-तिसरो यहां मृग और पक्षीही पंडक लेने और मृग और पक्षियोंका सहचारभी होनेसेभी पक्षिरूप पण्डकका लेनाही उचित है-और कोल (शूकर) को हतकर घृतसे भरा घट दे ऊंटको हतकर गुंजाओंको दे अश्वको हतकर वस्त्र दे सोई मनु (अ० ११ श्लो० १३३)ने कहा है कि ब्राह्मण सर्पको मारकर काले लोहेका शस्त्र दे और नपुंसकको मारकर पलालका भार और मासेभर सीसा दे ॥

भावार्थ-सर्पोंको मारकर लोहेका दंड-नपुंसकको मारकर त्रपु और सीसा दे और शूकरको मारकर घीका घडा-ऊंटको मारकर गुंजा-और घोडेको मारकर वस्त्रदे॥ २७३ ॥

तित्तिरौतुतिलद्रोणंगजादीनामशक्नुवन् ।
दानंदातुंचरेत्कृच्छ्रमेकैकस्यविशुद्धये२७४

पद-तित्तिरौ ७ तु॰-तिलद्रोणं २ गजादीनां ६ अशक्नुवन् १ दानम् २ दातुं॰- चरेत् क्रि- कृच्छ्रं २ एकैकस्य ६ विशुद्धये ४ ॥

योजना-तित्तिरौ हते तिलद्रोणं दद्यात् गजादीनां दानं दातुं अशक्नुवन् पुरुषः एकैकस्य विशुद्धये कृच्छ्रं चरेत्-

तात्पर्यार्थ-तित्तिर पक्षीके मारनेमें तिलोंका द्रोण दे यहां द्रोणशब्दसे वह परिमाण लेते हैं जो इस वचनमें कहा है कि आठ मुष्टिभर अन्नको किंचित् और आठ किंचितोंका एक पुष्कल चार पुष्कलोंका एक आढक और चार आढकोंका एक द्रोण होता है यह मानका लक्षण है-यदि पूर्वोक्त गज आदिके मारनेमें निर्धन होनेसे पांच नीलवृष आदिका दान करनेको मनुष्य असमर्थ होय तो शुद्धिके लिये प्रत्येकके वधमें कृच्छ्र करै-यहां कृच्छ्र शब्द लक्षणासे क्लेशसे होनेवाले तपमा-

---

१ षण्ढकं हत्वा पलालभारन्त्रपु सीसकं वा दद्यात् ।
२ षण्ढश्च लिंगहीनः स्यादसंस्कार्यश्च एव सः ।

१ अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः । पलालभारकं षण्ढे सीसकं चैव माषकम् ।

२ अष्टमुष्टि भवेत्किंचित्किंचिदष्टौ तु पुष्कलम् । पुष्कलानि तु चत्वारि आढकः परिकीर्तितः । चतुराढो भवेद्द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ।

त्रका बोधक जानना वे तप गौतमने दिखाये हैं कि एक वर्ष छः चार तीन दो एक मास–चौवीस बारह छः तीन दिन और अहोरात्र यह तपका काल है जहां प्रायश्चित्त नहीं कहा वहां येही विकल्पसे गुरुपापमें गुरु और लघु पापमें लघु किये जाते हैं यदि कृच्छ्र शब्दसे मुख्य अर्थ लेते तो गज और शुककी हत्यामें विशेष कर *प्राजापत्यही होता, वह युक्त नहीं,* और जब कृच्छ्र शब्द तपमात्रका बोधक है तबतो दानके गुरु और लघु भावको देखकर तपकाभी गुरु और लघुभाव युक्त होजाता है तिससे गजकी हत्यामें दो मासतक जौंका भोजन, और शुककी हत्यामें उपवास करना–इसी प्रकार *अन्यत्रभी* दानके अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ–तित्तिरकी हत्यामें तिलोंका द्रोण दे और गजादिकोंकी हत्यामें दान देनेको असमर्थ मनुष्य एक २ की शुद्धिके लिये कृच्छ्र करे ॥ २७४ ॥

फलपुष्पान्नरसजसत्ववाते घृताशनम् ।
चिकित्सास्थिवधे देयं प्राणायामस्त्व नस्थिके

पद–फलपुष्पान्नरसजसत्वघाते ७ घृताशनं १ किंचित्‌ऽ–सास्थिवधे ७ देयं १ प्राणायामः १ तुऽ– अनस्थिके ॥ ७ ॥

योजना–फलपुष्पान्नरसजसत्वघाते घृताशनं शुद्धिसाधनं भवति सास्थिके किंचित् देयं तु पुनः अनस्थिके हते सति प्राणायामः कर्तव्यः–

तात्पर्यार्थ–गूलर आदिका फल मधूक आदिका पुष्प और चिरकालके भात और सक्तु आदि अन्न और गुड आदि रस इनमें जो जीव पैदा होता है उनकी हत्यामें घृतका भक्षण साधन है और यह घृतका भक्षण भोजनके कार्यमें कहा है क्योंकि प्रायश्चित्त *तपरूप होता है और वह प्रायश्चित्तका तप* रूप आंगिरसने प्रायश्चित्त पदके अर्थके वर्णनेसे दिखाया है कि प्रायः नाम तप कहता है उसके निश्चयको चित्त कहते हैं तप और निश्चयसे जो युक्त उसे प्रायश्चित्त कहते हैं अब सामान्यसे प्रायश्चित्त कहते हैं–कृकलास (करकेंटा) आदि अस्थिवाले प्राणियोंमें सहस्रसे न्यून प्रत्येकके मारनेमें अत्यल्पही धान्य हिरण्य आदि दे–और जिनमें अस्थि नहीं उनके वधमें तो एक प्राणायाम करे–उसमें जब किंचित् सुवर्ण दिया जाय तब पणभर सुवर्ण दे–क्योंकि सुमंतु की स्मृति है कि अस्थिवालोंके वधमें पणभर सुवर्ण देना और जब धान्य दे तो आठ मुष्टि दे क्योंकि यह स्मृति है कि अष्टमुष्टि किंचित् होता है–यहभी उन प्राणियोंके वधमें समझना जिनके वधमें प्रायश्चित्त नहीं कहा–और जहां विशेष प्रायश्चित्त सुना जाता है वहां तो वही होता है–सोई पराशरने

१ संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंश यहोद्वादशाहः षड्त्र्यहोहोरात्र इति कालः एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्नेनसि गुरूणि गुरूणि लघूनि लघूनि ।

१ प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्त तदुच्यते ।

२ अस्थिमतां वधे पणो देयः ।

३ अष्टमुष्टि भवेत् किंचित् ।

४ हंससारसचक्राह्वक्रौञ्चकुक्कुटघातकः । मयूरमेवं हत्वा च एकभक्तेन शुद्ध्यति । मद्गु च टिट्टिभं चैव शुकं पारावतं तथा । आडिकां च बकं हत्वा शुद्ध्येद्वै नक्तभोजनात् । चाषकाककपोतानां सारीतित्तिर घातकः । अंतर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति–गृध्रश्येनविहंगानामुलूकस्य च घातकः । अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत्रीन् कालान् मारुताशनः । हत्वा मूषिकमार्जार सर्पाजगरडुण्डुभान् । प्रत्येकं भोजयेद्विप्रान् लोहदंडश्च दक्षिणा । सेधाकच्छपगोधानां शशशल्यकघातकः । वृंताकफलभुक्चापी अहोरात्रेण शुद्ध्यति । मृगरोहिदवराहाणामविकायस्तु घातने । वृकजम्बूकऋक्षाणां तरक्षूणां च घातकः । तिलप्रस्थं तु सो दद्यात् वायुभक्षो दिनत्रयम् । गजमेषतुरंगाणां महिषाणां निपातने । प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्य चावगाहनम् । स्वरवानरसिंहानां चित्रकव्याघ्रघातकः । शुद्धिमेति त्रिरात्रेण ब्राह्मणानां च भोजनैः ।

कहा है कि हंस सारस-चकवाक-क्रौंच-कुक्कुट-मोर-भेड इनको मारकर एकभक्तसे शुद्ध होता है-मद्गु-टिट्टिभ-तोता-कबूतर-आडिबक-इनको मारकर नक्तभोजनसे शुद्ध होता है-चाष, काक, कपोत, सारी, तित्तिर इनका घातक दोनो संध्याओंके समय जलके मध्यमें प्राणायामसे शुद्ध होता है गृध्र-श्येन-विहंग (पक्षी) उलू-इनका घातक अपक्व (फलआदि)का भोजन वा मारुत (पवन)का भोजन करके एक दिन टिके-मूसा मार्जार-सर्प-अजगर-डुंडुभ-इन प्रत्येकके वधमें ब्राह्मणोंको जिमावे और लोहका दंड दक्षिणा दे-सेह-कछुआ-गोह-शशा-शल्यक-इनका घाती-बेंगन गुंजा इनका भक्षण करके अहोरात्रमें शुद्ध होता है-मृग रोही-वराह-भेड-बकरा-वृक-जंबूक (गीदड) ऋक्ष-तरक्षु-इनका घातक तीनदिन वायुका भक्षण करके प्रस्थभर तिल दे-हाथी-मेष-अश्व-उंट-गवय (नीलगाय) इनके मारनेमें त्रिकालस्नान और अहोरात्र प्रायश्चित्त होता है- खर, वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र-इनका घातक तीन रात्रमें ब्राह्मणोंको भोजन कराकर शुद्ध होता है-इसी प्रकार अन्यभी स्मृतियोंके वचनोंकी देशकाल आदिकी अपेक्षासे विषयव्यवस्था कल्पना करनी ॥

भावार्थ-फल पुष्प अन्न रस इनमें उत्पन्न हुये जीवोंकी हत्यामें घृतकाही भक्षण करे-और अस्थिवाले जीवोंके वधमें किंचित् ही दे-और जिनमें अस्थि नहीं उनके वधमें प्राणायाम करे ॥ २७५ ॥

इति हिंसाप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृक्शतम् ॥
स्यादोषधिवृथाच्छेदेक्षीराशीगोनुगोदिनं ॥

पद-वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने७ जप्यम्१ ऋक्शतम् १ स्यात् क्रि- ओषधिवृथाच्छेदे ७ क्षीराशी १ गोनुगः१ दिनम् ॥ २ ॥

योजना-वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने ऋक्शतं जप्यं स्यात्-ओषधिवृथाच्छेदे क्षीराशी सन् दिनं गोनुगः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फल देनेवाले आम्र पनस आदि वृक्ष और गुल्म आदि इनका यज्ञ आदि अदृष्ट अर्थके विना छेदन करके-गायत्री आदि सौ ऋचाओंका जप करे-और ग्राम और वनकी ओषधियोंको प्रयोजनके विना वृथा छेदन करे तो दिनभर गौओंका अनुगमन करके दूध पीवे अन्य कुछ भोजन न करे-पंच यज्ञके लिये तो दोष नहीं-यह प्रायश्चित्त उनमें जानना जो वृक्ष फल आदिके द्वारा उपयोगी हैं क्योंकि मनु (अ. ११ श्लो. १४२) की स्मृति है कि फल देनेवाले वृक्षोंके छेदनमें सौ ऋचाओंको जपे और गुल्मलता-वल्ली और पुष्पवाले वीरुध इनके छेदनेमें भी पूर्वोक्त जप करे-दृष्टार्थ (लोकमें प्रयोजन) मेंभी कृषिके अंग हल आदिके अर्थ दोष नहीं-क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि फलपुष्पवाले वृक्षोंकी हिंसा न करे कर्षण (खेती) आदिके लिये तो हिंसा करे और जहां स्थानकी विशेषतासे दंडकी अधिकता है वहां प्रायश्चित्तकीभी अधिकता कल्पना करनी सोई कहा है कि चैत्य (चबूतरा) श्मशान- सीमा- पवित्रस्थान-देवालय इनमें उत्पन्न और प्रसिद्ध वृक्षोंके छेदनमें दूना दंड होता है-और यह सौऋचाओंका

१ फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् । गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधां ।

२ फलपुष्पोपगान्पादपान्नहिंस्यात्कर्षणकारणार्थं चोपहन्यात् ।

३ चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये । जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेष विश्रुते ।

जप द्विजातियोंके विषयमें है शूद्र आदिके विषयमें नहीं-क्योंकि उनका जपमें अधिकार नहीं-इससे उनको दंडके अनुसार द्विरात्र आदि प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी-उपपातकोंके मध्यमें पढे हुयेकी अनर्थकता दूर करनेके लिये उपपातकोंका जो साधारण प्रायश्चित्त है वहभी यहां होता है-यह प्रायश्चित्तभी गुरु होनेसे अभ्यासके विषयमें समझना-

भावार्थ-वृक्ष गुल्म लता वीरुध इनके छेदनमें गायत्री आदि सौ ऋचाओंको जपे औषधियोंके वृथा छेदनमें दिनभर गौअनुगमन करके दूध पीवे ॥ २७६ ॥

पुंश्चलीवानरखरैर्दष्टश्चोष्ट्रादिवायसैः ॥
प्राणायामंजलेकृत्वाघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति॥

पद-पुंश्चलीवानरखरैः ३ दष्टः १ च-उष्ट्रादिवायसैः३प्राणायामं २ जले ७ कृत्वाऽ-घृतं २ प्राश्यऽ-विशुद्ध्यति क्रि-

योजना-पुंश्चलीवानरखरैः उष्ट्रादिवायसैः दष्टः पुरुषः जले प्राणायाम कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ-पुंश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री) वानर-खर-उष्ट आदि- वायस (काक) इन्होंने जो डसा हो वह जलमें प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होताहै-यहां आदिपदसे सृगाल आदिका ग्रहण है-सोई मनु (अ. ११ श्लो. १९९) ने कहा है कि कुत्ता-सृगाल-खर-ग्रामके और कच्चे मांसके भक्षक जीव-नर-अश्व-उंट वराह इनका डसा मनुष्य प्राणायामसे शुद्ध होताहै-यहां घृतका भक्षण भोजनके स्थानमें समझना-क्योंकि तपरूप प्रायश्चित्त-शरीरके संतापके अर्थ होते हैं-यहभी अशक्तके विषयमें समझना और कुत्ता सृगाल-मृग-भैंसा-बकरी-भेड-खर-करभ (हाथीकाबचा) नोला-मार्जार, मूसा-प्लुव (मुरगा) बगला-काक-पुरुष-इनका जो डसा हो वह आपोहिष्ठा०इत्यादि मंत्रोंसे स्नान और तीन प्राणायाम करे-यह सुमंतुका वचन नाभिसे नीचे अल्प डसनेके विषयमें समझना और जो अंगिराका वचन है कि ब्रह्मचारीको कुत्ता डस ले तो तीन दिन सायंकालके समय दूध पीवे-गृहस्थीको डसै तो दो रात्र और अग्निहोत्रीको डसै तो एक दिन दूध पीवे-नाभिसे ऊपर डसै तो वही व्रत दूना होजाता है और मुखमें तिगुना और मस्तकमें डसै तो चतुर्गुण (चौगुना) होता है-यह वचन अधिक डसनेमें समझना-क्षत्रिय और वैश्यको तो एक २ पाद न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी और शूद्रको तो बृहत्अंगिराका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि शूद्रोंकी उपवास वा दानसे शुद्धि होतीहै अथवा शुद्धिके लिये एक गौ और एक बैल ब्राह्मणको दे और जो वसिष्ठका वचन है कि कुत्तेका डसा ब्राह्मण-समुद्रमें जानेवाली नदीमें जाकर सौ प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होताहै-यह वचन उत्तम

१ श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति।

१ श्वसृगालमृगमहिषाजाविकखरकरभनकुलमार्जारमूषिकप्लवकबककाकपुरुषदष्टानामापोहिष्ठेत्यादिभिः स्नानं प्राणायामत्रयं च।

२ ब्रह्मचारी शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पिबेत्पयः। गृहस्थश्चेद्द्विरात्रं तु एकाहं योऽग्निहोत्रवान्। नाभेरूर्ध्वं तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत्। स्यादेतत्त्रिगुणं वक्त्रे मस्तके तु चतुर्गुणम्।

३ शूद्राणां चोपवासेन शुद्धिर्दानेन वा पुनः। गां वा दद्याद्वृषं चैकं ब्राह्मणाय विशुद्धये।

४ ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति।

अंगमें डसनेके विषय समझना–स्त्रियोंका तो यह पराशरका कहा प्रायश्चित्त जानना कि ब्राह्मणीको कुत्ता जंबुक–वृक (भिडा) ये डसलें तो उदय हुये ग्रह और नक्षत्रोंको देखकर शीघ्रही शुद्ध होतीहै और जो स्त्री कृच्छ्र आदि व्रतको करती हो उसके लिये उसनेही विशेष दिखायो है कि यदि व्रतवाली स्त्रीको कुत्ता डसै तो तीन रात्र उपवास करै और घी सहित जौंको खाकर शेष व्रतको समाप्त करै–रजस्वलाके लियेभी विशेष पुलस्त्यने दिखाया है कि रजस्वलाको कुत्ता जंबुक रासभ (गधा) डसें तो पांच रात्र निराहार रहकर पंचगव्यसे शुद्ध होती है और नाभिसे ऊपर डसै तो दुगुना मुखमें डसै तो तिगुना और मस्तकपर डसै तो चौगुना, यही प्रायश्चित्त होता है और रजस्वलासे भिन्न अवस्थामें डसै तो स्नानमात्रसेंही शुद्ध होती है और जिस मनुष्यको कुत्ता आदि सूंघले उसको शाता तपने विशेष कहा है कि कुत्ता जिसको सूंघले वा चाटले वा नखोंसे खोद दे तो जलोंसे प्रक्षालन (धोना) और अग्निसे उपकूलन (तपाना) करै और जो कुत्ते आदिके डसने और शस्त्रके लगनेसे पैदा हुये घावमें कृमि (कीट) होजांय तो मनुने विशेष कहा है कि ब्राह्मणके व्रणमें पूय और शोणितके संभवसे कीट पैदा हो जांय तो प्रायश्चित्त कैसे हो–गौओंके गोबर और गोमूत्रसे त्रिकाल स्नान करै और त्रिकाल पंचगव्यका भोजन करै तो नाभिसे नीचेके व्रणकी शुद्धि होती है और नाभि और कण्ठके मध्यके व्रणमें कृमि होंय तो छः रात्र वा तीन दिन पंचगव्यका भक्षण करना कहा है–और कुत्ते आदिके दंशका व्रण होय तो डसनेका प्रायश्चित्त करके यही प्रायश्चित्त करना और शस्त्र आदिके घावमें तो यही तीन दिन तक पंचगव्यका भक्षण आदि प्रायश्चित्त है–क्षत्रिय आदिकोंमें तो वर्ण २ के प्रति एक २ पाद न्यून प्रायश्चित्त की कल्पना करनी ॥

भावार्थ–व्यभिचारिणी स्त्री वानर खर ऊंठ काक इनके डसने पर जलमें प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होताहै२७७

यन्मेद्यरेतइत्याभ्यांस्कन्नंरेतोभिमंत्रयेत् ॥
स्तनांतरंभ्रुवोर्मध्यंतेनानामिकयास्पृशेत् ॥

पद–यन्मेद्यरेत इति– आभ्याम् ३स्कन्नं२ रेतः २ अभिमंत्रयेत् क्रि– स्तनांतरं २ भ्रुवोः ६ मध्यं २ तेन ३ अनामिकया ३ स्पृशेत् क्रि–

योजना–स्कन्नं रेतः यन्मेरेत इति॰ आभ्यां मंत्राभ्यां अभिमंत्रयेत् तेन (रेतसा) अनामिकया स्तनांतरं–भ्रुवोः मध्यं स्पृशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–अब वीर्यके स्कंदन (पटना) का प्रायश्चित्त कहते हैं–यदि किसीप्रकार

---

१ ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा। उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ।

२ त्रिरात्रमेवोपवसेच्छुना दष्टा तु सुव्रता । सघृतं यावकं भुक्त्वा व्रतशेषं समापयेत् ।

३ रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बुकरासभैः । पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति । ऊर्ध्वं तु द्विगुणं नाभेर्वक्त्रे तु त्रिगुणं तथा। चतुर्गुणं स्मृतं मूर्ध्नि दष्टेऽन्यस्मात्शुचिर्भवेत् ।

४ शुना घ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।अद्भिः प्रक्षालनं शौचमग्निना चोपचूलनम् ।

१ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे । कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् । गवां मूत्रपुरीषेण त्रिसंध्यं स्नानमाचरेत् ।त्रिरात्रं पंचगव्याशी नाभेरधो विशुद्ध्यति । नाभिकण्ठान्तरोद्भूते व्रणे चोत्पद्यते कृमिः । षड्रात्रं तु त्र्यहं पंचगव्याशनमिति स्मृतम् ।

स्त्रीके संयोग विनाभी हठसे वीर्यरूप चरमधातु निकस जाय तो उस निकसे हुये रेत (वीर्य) को लेकर यन्मेरेतः पृथिवी० पुनर्मामैत्विंद्रियं० इन दो मंत्रोंसे अभिमंत्रित करे अर्थात् ये दो मंत्र पढे–और उस अभिमंत्रित वीर्यका अनामिका अंगुलिसे स्तन और भ्रुकुटीके मध्य स्पर्श करे–अन्य तो यह कहते हैं कि निकासा हुआ वीर्य अशुद्ध है इससे स्पर्शके अयोग्य होनेसे तेन (तिससे) इस पदसे अनामिका पदके साहचर्यसे अपनी बुद्धिमें स्थित अंगुष्ठ लेते हैं तिससे अंगूठा और अनामिकासे स्पर्श करे और श्लोकमें अंगुष्ठ पद पढते तो छंदका भग होता–यह उनका कहना ठीकनहीं क्यों कि अंगुष्ठ बुद्धिमें स्थित नहीं है और शब्दकी संनिधि(समीपता)को छोडकर अर्थात् बुद्धिमें स्थितका अन्वयभी युक्त नहीं सोई कहा है कि गम्यमान (प्रतीत हुये) अर्थका विशेषण शब्दांतर विभक्तिसे, यह धूम जलता है (प्रकाशित है) इसके समान कहीं नहीं देखा–और वीर्यको अशुद्ध होनेसे स्पर्शकी अयोग्यताभी नहीं क्योंकि विधिसेही प्रायश्चित्तके लिये जो स्पर्श उसमें ऐसे योग्यता जानी जाती है जैसे प्रायश्चित्तके लिये मदिरा पीनेकी–और यह प्रायश्चित गृहस्थको ही अज्ञानसे वीर्यके पातमें है क्योंकि ब्रह्मचारीको तो स्वप्न और जागरण अवस्थामें गुरु प्रायश्चित्त देखते हैं–और तो मनु का वचन है कि गृहस्थ जानकर वीर्यका पात भूमिमें करे तो तीन प्राणायामोंसहित एक सहस्र गायत्री जपे–यह वचन जानकर वीर्यके पातमें है ॥

१ गम्यमानस्य चार्थस्य नैव दृष्टं विशेषणम् । शब्दांतरैर्विभक्त्या वा धूमोयं ज्वलतीतिवत् ।

२ गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्कंदनं भुवि । सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ।

भावार्थ–यन्मेरेतः० पुनर्मा० इन दोऋचाओंसे स्कन्न (गिराहुआ) वीर्यका अभिमंत्रण करे और मंत्र पढे हुये उसवीर्यसे अनामिका अंगुलिसे स्तन और भ्रुकुटीके मध्यका स्पर्श करे ॥ २७८ ॥

**मयितेजइतिच्छायांस्वांदृष्ट्वांबुगतांजपेत् ॥
सावित्रीमशुचौदृष्टेचापल्येचानृतेपिच २७९**

पद–मयि ७ तेजः १ इति ऽ- च्छायां २ स्वां २ दृष्ट्वा ऽ-अंबुगतां २ जपेत् क्रि-सावित्रीं २ अशुचौ ७ दृष्टे ७ चापल्ये ७ च ऽ- अनृते ७ अपि ऽ–च ऽ– ॥

योजना–अंबुगतां स्वां छायां दृष्ट्वा मयितेजः० इतिमंत्रं जपेत् अशुचौ दृष्टे चापल्ये चपुनः अनृते अपि सावित्रीं (गायत्रीं) जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ–यदि अपनी छायाको जलमें देखले तो मयितेजः० इस मंत्रको जपे–और अशुद्ध द्रव्यके देखने, वाणी हाथ चरण इनकी चपलता करने, और झूठ बोलनेमें सावित्री (गायत्री) का जप करे–यहभी जानकर करनेमें जानना अज्ञानसे करनेमें तो मनुका कहाहुआ आचमन जानना। कि शयन भोजन छींकना थूकना झूठ बोलना जल पीना और पढना इनमें सावधान होकर आचमन करे–और जो संवर्त्तका वचन है कि छींकना थूकना दांतोंमें अन्नका लगना झूठ बोलना पतितोंके संग बोलना इनमें दक्षिण कानका स्पर्श करे–यह वचन अल्पप्रयोजन वा अभावमें जानना–स्त्री शूद्र वैश्य क्षत्री इनके वधके अनन्तर उपपातकोंमें

१ सुप्त्वा भुक्त्वा च क्षुत्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च । पीत्वापोध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोपि सन् ।

२ क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तश्लिष्टे तथानृते । पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।

निन्दित धनसे जीविका करनी पडी है- उसमें मनु और योगीश्वरने कहे जो उपपातकोंके प्रायश्चित्त वेही जाति शक्ति और गुण आदिके अनुसार जानने-और नास्तिकतासेभी वेही प्रायश्चित्त वैसेही समझने-और नास्तिकतासे वेदकी निन्दा लेते हैं उन दोनोंमें वसिष्ठने अन्य प्रायश्चित्तभी कहा है कि नास्तिक द्वादश रात्र तक कृच्छ्र करके नास्तिकताको छोड दे-और नास्तिकसे जिसकी जीविका हो वह अतिकृच्छ्र करे, यह भी एकवार करनेमें समझना-क्यों कि उपपातकोंके प्रायश्चित्त अभ्यासके विषयमें हैं और जो शंखने कहा है कि नास्तिक, और नास्तिकसे जिसकी जीविका होय वह, कृतघ्न झूठा व्यवहारी, मिथ्या दोष लगानेवाला, ये पांचों वर्ष दिनतक ब्राह्मणके घरमें भिक्षा मांगें और जो हारीतने नास्तिक और नास्तिक वृत्ति, यह कहकर कहा है कि ग्रीष्म वर्षा और हेमंतऋतुओंमें क्रमसे पंचाग्नि तपना, वर्षामें नग्न खडा रहना जलमें सोना, इनको करे ये दोनों वचन अत्यंत आग्रहसे बहुत कालके अभ्यासमें समझने ॥

भावार्थ-जलमें अपनी छायाको देखकर मयितेजः० इस ऋचाको जपे और अशुद्ध पदार्थके देखने, चपलता करने, और झूठ बोलनेमें गायत्रीको जपे ॥ २७९ ॥

अवकीर्णीभवेद्गत्वाब्रह्मचारीतुयोषितम् ॥
गर्दभंपशुमालभ्यनैर्ऋतंसविशुद्धयति २८०

पद-अवकीर्णी १ भवेत् क्रि-गत्वाऽ-ब्रह्मचारी १ तुऽ-योषितं२ गर्दभं २ पशु २ आलभ्यऽ-नैर्ऋतं २ सः १ विशुद्धयति-क्रि ॥

योजना-ब्रह्मचारी योषितं गत्वा अवकीर्णी भवेत् स नैर्ऋतं गर्दभं पशुं आलभ्य विशुद्धयति-

तात्पर्यार्थ-अब अवकीर्णिका लक्षण और उसका प्रायश्चित्त कहते हैं-उपकुर्वाणक और नैष्ठिक ये दोनों ब्रह्मचारी स्त्रीका संग करके अवकीर्णी होजाते हैं-चरम धातु (वीर्य) के विसर्ग (गिरना) को अवकीर्ण कहते हैं-वह जिसके हो वह अवकीर्णी कहाता है-वह ब्रह्मचारी निर्ऋतिहै देवता जिसका ऐसे गर्दभ पशुसे यज्ञ करके शुद्ध होता है-यद्यपि गर्दभको पशुत्व सिद्ध था तोभी पुनः पशुग्रहण (अथ पशुकल्पः) अब पशुके कल्प(प्रतिनिधि) कहतेहैं इस आश्वलायन आदि गृह्यसूत्रमें कहे पशुधर्मकी प्राप्तिके लिये पशुपदका ग्रहणहै-यह यज्ञ, वनके विषय, चौराहेमें, लौकिक अग्निमें, करना क्योंकि वसिष्ठकी स्मृतिहै कि ब्रह्मचारी स्त्रीका संग करे तो वनके विषय चौराहेमें लौकिक अग्निमें रक्षाहै देवता जिसका ऐसे गर्दभ पशुका आलंभन करे अर्थात् यज्ञ करे और तैसेही काणे गर्दभसे रात्रिमें करे-सोई मनुने कहाहै (अ० ११ श्लो० ११८) कि अवकीर्णी काणे रासभसे चौराहेमें पाक यज्ञकी विधिसे रात्रिमें निर्ऋतिके निमित्त यज्ञ करे-पशु न मिले तो चरुसे यज्ञ करे..

१ नास्तिकः कृच्छ्रं द्वादशरात्र चरित्वा विरमेन्नास्तिक्यान्नास्तिकवृत्तिस्त्वतिकृच्छ्रम् ।

२ नास्तिको नास्तिकवृत्तिः कृतघ्नः कूटव्यवहारी मिथ्याभिशंसी इत्येते पचसंवत्सरं ब्राह्मणगृहे भैक्षं चरेयुः ।

३ नास्तिको नास्तिकवृत्तिरिति प्रक्रम्य पंचतापो ऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुरिति ग्रीष्मवर्षाहेमंतेषु ।

१ ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेग्नौ रक्षोदैवतं गर्दभपशुमालभेत ।

२ अवकीर्णी तु काणेन रासभेन चतुष्पथे। पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ।

क्योंकि वसिष्ठकी स्मृतिहै कि निर्ऋति-पशु वा चरुको दे-और उसका होम इन मंत्रोंसे करै काम-काम काम-निर्ऋति रक्षोदेवता इनके निमित्त स्वाहा है-यहभी असमर्थके विषयमें है-समर्थको तो यह गोतमका कहा वार्षिक तप सहित पशुयज्ञ वा चरु, जानना कि अवकीर्णी निर्ऋतिका चौराहेमें यज्ञ करै और ऊपरको है बाल जिसके ऐसे उसके चर्मको ओढकर अपने कर्मको कहता हुआ लोहित (रक्त) पात्रमें सात घरोंसे भिक्षा मांगे तो वर्षदिनमें शुद्ध होताहै-तैसेही त्रिकाल स्नान और एककाल भोजन जानना-क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० १२२-१२३)की स्मृतिहै कि इस पापके करने पर गधेके चर्मको धारणकर अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंसे भिक्षा मांगे उनसे मिली हुई भिक्षासे एक काल भोजन करै और त्रिकाल स्नान करै तो एक वर्षमें शुद्ध होता है-और यह वार्षिक प्रायश्चित्त वेदपाठीसे भिन्न ब्राह्मणकी पत्नीमें वा वेदपाठीकी वैश्या पत्नीमें जानना और यदि गुणवाली ब्राह्मणी और क्षत्रिया जो वेदपाठीकी पत्नी है उनमें वीर्य डारेतो क्रमसे तीन वर्षका वा दोवर्षका प्रायश्चित्त जानना-सोई शंख और लिखितने कहा है कि वैश्यामें अवकीर्ण होय तो एक वर्षतक त्रिकाल स्नान करै-और क्षत्रियामें दो वर्षतक और ब्राह्मणीमें तीन वर्षतक त्रिकाल स्नान करै-और जो अंगिराका वचन है कि अवकीर्णके निमित्त ब्रह्महत्याका व्रत करै और छः मास तक चीर (जो मार्गमें पडे और फटे मिलें) वस्त्रोंको धारण करै तो पापसे छुटता है वह अज्ञानसे किये और मनुके कहे वार्षिक प्रायश्चित्तके विषयमें अथवा अल्प व्यभिचारिणीके विषयमें समझना और जो अत्यंत व्यभिचारिणी हैं उनमें तो शंख लिखितके कहे ये प्रायश्चित्त जानने कि व्यभिचारिणी शूद्रामें गमन करै तो सचैल स्नान करके जलका घट ब्राह्मणको दे, और वैश्यामें करै तो चौथे काल भोजन करै, ब्राह्मणोंको जिमावै, भूसका भार गौओंको दे-क्षत्रियामें करै तो तीन रात्र उपवास करके घीका पात्र दे-और ब्राह्मणीमें गमन करै तो छः रात्र उपवास करके गोदान करै-गौओंका गमन (भोग) करै तो प्राजापत्य करै-नपुंसकीके संग गमन करै तो पलालका भार और मासे भर सीसा दे-यह अवकीर्णीका प्रायश्चित्त तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारियोंको समान है क्योंकि शांडिल्यकी स्मृति हैकि अवकीर्णी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये खरपशु यज्ञ करके भिक्षाका

१ नैर्ऋतं वा चरुं निर्वपेत् तस्य जुहुयात् ।

२ कामायस्वाहा कामकामाय स्वाहा निर्ऋत्यै-स्वाहा रक्षोदेवताभ्यः स्वाहा ।

३ गर्दभेनावकीर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत् तस्याजिनमूर्द्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्ध्यति ।

४ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम्। सप्तागारं चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन्। तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् । उपस्पृशंस्त्रिषवणमब्देन स विशुद्ध्यति ।

५ गुणवत्यां वैश्यायामवकीर्णः संवत्सरं त्रिषवणमनुतिष्ठेत् क्षत्रियायां तु द्वे वर्षे ब्राह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि ।

१अवकीर्णनिमित्तं तु ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । चीरवासास्तु षण्मासांस्तथा मुच्येत किल्बिषात् ।

२ स्वैरिण्यां वृषल्यामवकीर्णी सचैलं स्नात्वा उदकुंभं दद्याद् ब्राह्मणाय वैश्यायां चतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेत् यवसभारं च गाभ्यो दद्यात् क्षत्रियायां त्रिरात्रमुपोषितो घृतपात्रं दद्यात्-ब्राह्मण्यां षड्रात्रमुपोषितो गां च दद्यात् गोष्ववकीर्णः प्राजापत्यं चरेत् षण्ढायामवकीर्णः पलालभारं सीसमाषकं च दद्यात् ।

३ अवकीर्णी द्विजो राजा वैश्यश्चापि खरेण तु । इष्ट्वा भैक्षाशिनो नित्यशुद्ध्यन्त्यब्दात्समाहिताः ।

भोजन सावधानीसे करते हुये वर्ष दिनमें शुद्ध होतेहैं और जब स्त्रीके भोग विना जान कर वीर्यका त्याग करै, दिनमें वा स्वप्नमें करै तब नैर्ऋतिके निमित्त यज्ञमात्रही प्रायश्चित्त जानना क्योंकि वसिष्ठने[1] यत्नसे वीर्यके दिन *वा स्वप्नमें त्यागनेमें यही गर्दभयज्ञमात्र* प्रायश्चित्त कहा है और कृच्छ्रचांद्रायण आदि जो ऐसे व्रतहैं जिनमें ब्रह्मचर्य रखना पडता है उनमेंभी इस वचनसे यही[2] यज्ञ मात्र प्रायश्चित्त कहा है-स्वप्नमें वीर्यके त्यागनेमें सो मनुकों कहा प्रायश्चित्त (अ. २ श्लो. १८१) जानना कि ब्रह्मचारी द्विज, स्वप्नमें वीर्यको सींचकर स्नान और सूर्यका पूजन करके तीन वार पुनर्मां॰इस ऋचाको जपै, और वानप्रस्थ आदिकोंकोभी ब्रह्मचर्यके खंडनमें यही अवकीर्णी व्रत तीन कृच्छ्र अधिक होता है क्योंकि शांडिल्यकी स्मृति है कि वानप्रस्थ और संन्यासी जान कर वीर्यका पात करै तो तीन पराक सहित अवकीर्णी व्रत करैं और जब फिर गृहस्थी होकर संन्याससे पतित होजाय अर्थात् संन्याससे फिर गृहस्थमें आजाय तब संवर्त्तका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जो कोई दुर्मति संन्यास लेकर लौट आवे वह विश्रामको छोडकर छः *मासतक कृच्छ्र करै-यहां लौटना* गृहस्थका स्वीकार लेना इसीसे वसिष्ठने कहा है कि जो संन्यासी होकर फिर मैथुनको सेवै वह साठहजार वर्ष तक विष्ठामें कृमि होता है-सोई पराशरने कहा है कि जो संन्यासी ब्राह्मण संन्याससे वा अनशन व्रतसे निवृत्त होकर गृहस्थकी इच्छा करै तो तीन कृच्छ्र और तीन चांद्रायण करै और यह *जातकर्मआदि संस्कार करनेसे शुद्ध होता* है उसमें ब्राह्मणको छः मासका कृच्छ्र और फिर संस्कार, क्षत्रियको तीन चांद्रायण, और वैश्यको तीन कृच्छ्र, यह व्यवस्था है अथवा शक्ति, एक वार और अभ्यास, आदिकी अपेक्षासे ब्राह्मणकोही ये तीनों प्रायश्चित्त जानने तैसेही मरण संन्यासिओंकोभी *यमने प्रायश्चित्त कहा है कि संन्यस्तके* नाशसे और जल, अग्नि, बंधनसे, और विष पर्वत आदिसे पतन इनसे जो नष्ट हुये हैं ये सब जगतसे बहिष्कृत संन्यासी नहीं हैं, और वे चान्द्रायण वा दो तप्तकृच्छ्रोंसे शुद्ध होते हैं ये चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र रूप दोनों प्रायश्चित्त शक्ति आदिकी अपेक्षा से व्यवस्थित जानने और जब (शस्त्रघातहताः) यह पाठ है तब देहका त्याग आदि अशास्त्रोक्त मरणके निमित्त उस संन्यासीके पुत्र आदिको उपदेश जानना और जो वसिष्ठने[3] कहा है कि जीता हुआ जो देहको त्यागै वह द्वादशरात्र कृच्छ्र और त्रिरात्र उपवास करै वह वचनभी उसकेलिये जानना

१ एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे दिवा स्वप्ने च ।

२ व्रतान्तरेषु चैव ।

३ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः । स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ।

४ वानप्रस्थो यतिश्चैव स्कंदने सति कामतः । पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णिव्रतं चरेत् ।

५ संन्यस्य दुर्मतिः कश्चित्प्रत्यापत्तिं व्रजेद्यदि । स कुर्यात्कृच्छ्रमश्रांतः षण्मासान्प्रत्यनन्तरं ।

६ यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनं । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।

१ यः प्रत्यवसितो विप्रो प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यंचेच्चिकीर्षति । स चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि च । जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ।

२ जलाग्न्युद्बंधनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः । विषप्रपतनप्रायःशस्त्रघातच्युताश्च ये । नैव ते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः । चान्द्रायणेन शुद्ध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ।

३ जीवन्नात्मत्यागी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् त्रिरात्रं चोपवसेत् ।

कि जिसने अशास्त्रीय मरणका निश्चय कर लिया हो और जीवनकी शक्ति हो, अथवा यह व्यवस्था जाननी कि मरणके निश्चय करनेमें त्रिरात्र, और शस्त्र आदिके घाव लगानेमें द्वादशरात्र जानना, और यह अवकीर्णीका प्रायश्चित्त गुरुकी स्त्री उसके समान स्त्रियोंसे भिन्न जो गमन करनेके अयोग्य स्त्रीहैं उनमें जानना, क्योंकि गुरुपत्नी आदिकोंमें गुरु प्रायश्चित्त देखते हैं और लघु अवकीर्णी व्रत बारह वर्षके प्रायश्चित्तसे दूर करने योग्य महापातकके दोषको दूरभी नहीं कर सकता कदाचित् कहो कि ब्रह्मचारी होनेसे लघुप्रायश्चित्तकी विधि युक्त है सो ठीक नहीं क्योंकि गृहस्थसे भिन्न आश्रमोंको दूने प्रायश्चित्तकी विधि ब्रह्महत्याके प्रकरणमें दिखाय आयेहैं और यहां गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके गमनका प्रायश्चित्तभी पृथक् न करना क्योंकि ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषय ब्रह्मचर्यका स्खलन, अगम्यागमन तुल्य है, इससे जिस निमित्तमें जो दूसरा निमित्त सम, वा न्यून होय तो अवश्य होने वाले उसमें वह दूसरे प्रायश्चित्तका प्रयोजक नहीं होता जैसे मनुके इस वचनमें (अ.११ श्लो. २०८) कि शस्त्रको उठाकर कृच्छ्र गिरानेमें अतिकृच्छ्र, और रुधिरके गिरनेमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र, और चर्मके भीतर रुधिर रहनेमें कृच्छ्र, करै रुधिरकी उत्पत्तिके निमित्तमें शस्त्र उठाना और गिराना ये दोनों अवश्य होंयगे तोभी अपने कृच्छ्र अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्तके प्रयोजक नहीं होते इसी प्रकार अन्यत्रभी जानना और जहां निमित्तोंके अंतर्भाव (बीचमें आना) का नियम नहीं वहां नैमित्तिक प्रायश्चित्त पृथक् २ होते हैं वे निमित्त ऐसेहैं कि जब पर्वमें परभार्या, रजस्वला, इनके संग तैल लगा कर दिनमें और जलमें गमन करे तो अवकीर्णी होता है, कदाचित् कोई शंका करे कि ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषयमें जो ब्रह्मचर्यको स्खलन है वह अगम्यमें गमन रूप नहीं क्योंकि पुत्रिकि गमनमें अगम्यागमनका दोष नहीं सोई दिखाते हैं कि पुत्रिका योनिके क्षत होनेसे कन्या नहीं, और दानका अभाव होनेसे परभार्या नहीं, और व्यभिचारसे जीविका न करनेसे वेश्याभी नहीं, और पतिके न मरनेसे विधवाभी नहीं इससे पुत्रिकाका किसीमें अंतर्भाव न होनेसे निषेधभी नहीं उसमें जो वीर्यपात करै उसकोही केवल अवकीर्णीका व्रत है और अन्यमें जो वीर्यपात करै उसमें तो अन्यभी निमित्त मिल सक्ते हैं इससे अवकीर्णीव्रत और तिस २ का अन्यभी प्रायश्चित्त करने वह किसीकी शंका ठीक नहीं क्योंकि पुत्रिकाकाभी पराई भार्यामें अंतर्भाव है अर्थात् वह पराई स्त्री है और दानका अभावभी होय तो उसका विवाह संस्कार तो हुआ है जैसे गांधर्वविवाहसे विवाही स्त्री पराई होती हे कदाचित् कोई शंका करे कि जिस कन्याके भ्राता न होय और पिता न होय बुद्धिमान पुरुष पुत्रिका धर्मसे उसे न विवाहे इस निषेधसे पुत्रिकामें इसप्रकार भार्यात्व पैदा नहीं होता जैसे सगोत्रामें,सो ठीक नहीं क्योंकि वह निषेध दृष्टअर्थके लिये ऐसेहे जैसे व्यंजनासे जाने व्यंगाका होताहै और उसको दृष्टार्थ होना, पुत्रिकाधर्मकी शंकासे, इस हेतुके कहनेसे है–कदाचित् कहोकि केवल पुत्रके लियेही विवाह नहीं अपितु धर्मार्थभी है इससे जिसके पुत्रहो और भार्या मरगई हो वह धर्मके लिये विवाह करै तो क्या विरोध

१ अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमति कृच्छ्रंनिपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ।

१ यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता। नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ।

है इसको विस्तारसे पहिले कह आये अब अत्यंत प्रसंगके कथनसे अलंहुये तिससे ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषय जो ब्रह्मचर्यका स्खलन (वीर्यका पात) वह अगम्याका जो गमनरूप नहीं इससे पृथक् प्रायश्चित्तका प्रयोजक नहीं यह ठीक कहा–

भावार्थ–ब्रह्मचारी स्त्रीका संगम करके अवकीर्णी होता है वह गर्दभ पशुका आलंभ (मारकर यज्ञ) निर्ऋति देवताके लिये करके शुद्ध होता है–२८०

भैक्षाग्निकार्येत्यक्त्वातुसप्तरात्रमनातुरः ।
कामावकीर्णइत्याभ्यांजुहुयादाहुतिद्वयम् ॥

पद–भैक्षाग्निकार्ये २ त्यक्त्वा-तु ऽ- सप्तरात्रं ऽ– अनातुरः १ कामावकीर्णः इत्या–आभ्यां ३– जुहुयात् क्रि– आहुतिद्वयम् २–

उपस्थानंततःकुर्यात्समासिंचंत्वनेनतु ।
मधुमांसाशनेकार्यःकृच्छ्रःशेषव्रतानिच ॥

पद–उपस्थानं २-ततः ऽ-कुर्यात् क्रि-समासिंचंतु क्रि–अनेन ३ तु ऽ–मधुमांसाशने ७-कार्यः १–कृच्छ्रः १ शेषव्रतानि २–च ऽ–

योजना–अनातुरः ब्रह्मचारी सप्तरात्रं भैक्षाग्निकार्ये त्यक्त्वा कामावकीर्ण०इति आभ्यां ऋग्भ्यां आहुतिद्वयं जुहुयात् ततः समासिंचंतु० अनेन मंत्रेण उपस्थानं कुर्यात् मधुमांसाशने कृते सति कृच्छ्रःकार्यः च पुनः शेषव्रतानि कार्याणि–

तात्पर्यार्थ–अब ब्रह्मचारीके प्रसंगसे अन्यभी उपपातकका प्रायश्चित्त कहते हैं–जो ब्रह्मचारी अनातुर (विनारोग) अवस्थामें निरंतर सात रात्रतक भिक्षा वा अग्निके कार्यको त्याग दे वह कामावकीर्ण० इन दो मंत्रोंसे दो आहुति देकर समासिंचतु० इस मंत्रसे अग्निका उपस्थान करे–यह प्रायश्चित्तभी तब जानना जब गुरुसे वा आदि-गुरु (वडे) कार्यमें व्यग्र होकर भिक्षा और अग्निका कार्य न कियाहो–और जब अव्यग्र होकरही भिक्षा और अग्निकार्य दोनोंको त्यागता है तब मनुका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि भिक्षाटन और अग्निका प्रज्वलन इनको सात दिन न करके अनातुर ब्रह्मचारी अवकीर्णीके व्रतको करे यज्ञोपवीतके नाशमें तो हारीतने यह प्रायश्चित्त कहा है कि मनोव्रतपतीभिः० ऋचाओंसे चार घीकी आहुति देकर फिर यथार्थ यज्ञोपवीतमें कहे मार्गसे मंत्रसहित यज्ञोपवीतको धारण करे- मनोव्रतपती ऋचा वे होती हैं जिनमें मनका चिह्न वा व्रतका चिह्न हो जैसे मनोज्योतिः० यह और त्वमग्ने व्रतपा आसि० यह है–और निंदित भिक्षाके भोजन, अभ्युदित और अभिनिर्मुक्त अर्थात् सूर्योदयपर सोना और युद्धसे छुटे सूर्यके समयमें पढनेमें–वमन, दिनमें सोना–नग्नस्त्रीका देखना–नग्न होकर सोना–श्मशानमें जाना–अक्षपर चढना–पूजाके योग्य पिता आदिका अवलंघन, इनमेंभी प्रज्वलित अग्निमें इन्हीं मंत्रोंसे होम करे और स्थावर और सर्प आदिके

१ कामावकीर्णोस्म्यवकीर्णोस्मिकामकामायस्वाहा कामावपन्नोस्म्यवपन्नोस्मिकामकामायस्वाहा ।

१ समासिंचंतु मरुतः समिंद्रः संबृहस्पतिः । समायमग्निः सिंचंतु यशसा ब्रह्मवर्चसेन च ।

२ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिद्ध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ।

३ मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनर्यथार्थं प्रतीयादसद्भैक्षभोजनेऽभ्युदितेऽभिनिर्मुक्ते वांते दिवास्वप्ने नग्नस्त्रीदर्शने नग्नस्वापे श्मशानमाक्रम्य हयादीनारुह्य पूज्यातिक्रमे चैताभिरेव जुहुयात्समिद्धे स्थावरसरीसृपादीनां वधे यद्देवा देवहेडनमिति कूष्माण्डीभिराज्यं जुहुयात् मणिवासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं जपेत् ।

वधमें यद्देवादेवहेडनं इत्यादि कूष्मांडी ऋचा ओंसे होम करै और मणि वस्त्र गौ आदिके प्रतिग्रहमें आठ सहस्र गायत्री जपै-और यज्ञोपवीतके विना भोजन आदिके करनेमें तो यह मरीचिका कहा प्रायश्चित्त जानना कि यज्ञोपवीतके विना भोजन करै वा मल मूत्रको त्यागै तो आठ सहस्र गायत्रीके जप और प्राणायामसे शुद्ध होता है-और ब्रह्मचारी अज्ञानसे मधु मांसका भक्षण करले तो कृच्छ्र करै फिर शेष अपने व्रतोंको समाप्त करै-यहभी शिष्टोंके भोजन योग्य शश आदिके मांसके भक्षणमें समझना क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि ब्रह्मचारी शिष्टोंके भोजनयोग्य मांसका भक्षण करै तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके शेष व्रतको समाप्त करै-यहां द्वादशरात्र पदका ग्रहण जानकर और अभ्यासकी अपेक्षासे अतिकृच्छ्र और पराक आदिकी प्राप्तिके लिये है-और जब ऐसीही व्याधिसे अभिभूत (तिरस्कृत) हो जो मांसभक्षणसेही निवृत्त होय तो गुरुके उच्छिष्ट मांसका भक्षण करै क्योंकि वसिष्ठनेही कहा हैकि जो ब्रह्मचारी रोगी होय तो औषधिके लिये गुरुकी उच्छिष्ट सब वस्तुओंको इच्छाके अनुसार भक्षण करै यहां सर्वका ग्रहण मांस लशुन आदि संपूर्ण अभक्ष्योंके ग्रहणके लिये है और जब मांसके भक्षणसे व्याधि दूर हो जाय तब सूर्यकी स्तुति करै सोई बौधायनने कहा हैकी जिससे चिकित्सा करनेकी इच्छा करै उससे जब रोगसे रहित हो जाय तब हंसःशुचिषत्० इस मंत्रसे खडा होकर सूर्यकी स्तुति करै मधु (सहत वा मदिरा) काभी अज्ञानसे भक्षण हो जाय तो दोष नहीं क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति हैकी अज्ञानसे मिला मधु वाजसनेयी संहितामें दूषित नहीं है-अन्य जो सूतकके अन्न आदिका भक्षण है उसका प्रायश्चित्त अभक्ष्य प्रायश्चित्तके प्रकरणमें कहेंगे ॥

भावार्थ-विनारोग सात रात्रतक भिक्षा और अग्निकार्यको त्यागकर कामावकीर्णः० इन दोऋचाओंसे दो आहुतियोंसे होम करै फिर समासिंचंतु०इस मंत्रसे अग्निकी स्तुति करै-और मधु मांसका भक्षण ब्रह्मचारी करै तो कृच्छ्र करके शेष व्रतोंको समाप्त करै-२८१-२८२ ॥

प्रतिकूलंगुरोःकृत्वाप्रसाद्यैवविशुद्धचति ।
कृच्छ्रत्रयंगुरुःकुर्यान्म्रियतेप्रहितोयदि ॥

पद-प्रतिकूलं २-गुरोः ६-कृत्वाऽ-प्रसाद्यऽ-एवऽ- विशुद्धचति क्रि-कृच्छ्रत्रयं २-गुरुः १ कुर्यात् क्रि-म्रियते क्रि-प्रहितः १-यदिऽ-॥

योजना-गुरोः प्रतिकूलं कृत्वा प्रसाद्य एव विशुद्धचति-यदि गुरुणा प्रहितः शिष्यः म्रियते तदा गुरुः कृच्छ्रत्रयं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-गुरुकी आज्ञाके प्रतिघात (न-मानना) आदिसे गुरुके प्रतिकूल (विरुद्ध) आचरण करै तो चरणोंमें प्रणिपात (दंड-वत्) आदिसे गुरुकी प्रसन्नता करके शुद्ध होता है अर्थात् अन्य प्रायश्चित्तकी अपेक्षा नहीं है-जो गुरु चौर सर्प व्याघ्र आदिके भयसे आकुल (युक्त) देशमें और सघन अंधकार है जिसमें ऐसे अर्द्धरात्रके अव-

१ यज्ञसूत्र विना भुंक्ते विण्मूत्र कुरुतेथवा। गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्धयति ।

२ ब्रह्मचारीचेन्मासमश्नीयाच्छिष्टभोजनीय कृच्छ्र द्वादशरात्र चरित्वा व्रतशेषं समापयेत ।

३ सचेद्व्याधितः कामंगुरोरुच्छिष्टं भैषज्यार्थं सर्वं प्राश्नीयात् ।

४ येनेच्छेत्तु चिकित्सितुं स यदाऽगदो भवति तदोत्थायादित्यमुपतिष्ठेत् हंसःशुचिषदिति ।

१ अकामोपनत मधु वाजसनेयकेन दुष्यति ।

सर (समय) में कार्यके लिये शिष्यको प्रेरै (भेजै) और गुरुका प्रेराहुआ वह शिष्य दैवसे मरजाय तो वह गुरु प्राजापत्य आदि तीन २ कृच्छ्र करै–और यह अर्थ नहीं कि तीन प्राजापत्य कृच्छ्र करै ऐसा मानोंगे तो पृथक् निवेश (योग) वाली संख्या (त्रित्व ३) की उपपत्ति न होगी अर्थात् जितने कृच्छ्र हैं उन सबमें उक्त संख्याका अन्वय न होगा कदाचित् कोई शंका करै एकादश (ग्यारह)[1] प्रयाजोंसे यज्ञ करता है इसके समान आवृत्तिकी अपेक्षासे संख्याका अन्वय हो जायगा अर्थात् त्रय पदकी आवृत्ति करके प्रत्येकमें त्रित्व संख्याका अन्वय हो जायगा यह ठीक है–सोभी यथार्थ नहीं क्यों कि जब स्वरूपसेही पृथक्त्व (भिन्नता) प्रतीत होय तो आवृत्तिकी अपेक्षा अन्याय है–और जो यह संख्या उत्पन्नमें स्थित होती तो कथंचित् आवृत्तिकी अपेक्षा होभी जाती सो हैनहीं किंतु यह संख्या उत्पत्तिमें स्थित है इससे तीन घीकी आहुति होमता है इसके समान स्वरूपके[2] पृथक्त्वकी अपेक्षासेही त्रित्व संख्याकी घटना युक्त है–२८३ ॥

भावार्थ–गुरुके प्रतिकूल आचरण करै तो गुरुकी प्रसन्नता करके शुद्ध होता है–गुरुका प्रेरा हुआ शिष्य मरजाय तो गुरु तीन २ कृच्छ्र (प्राजापत्य आदि) करै ॥

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् ।
मिथ्याभिशंसिनोदोषोद्विःसमोभूतवादिनः।
मिथ्याभिशस्तदोषंचसमादत्तेमृषावदन् ।

- दप–क्रियमाणोपकारे७तु।–मृते ७ विप्रे७ न।– पातकं १ मिथ्याभिशंसिनः ६ दोषः १ द्विः।– समः १ भूतवादिनः ६– मिथ्याभिशस्तदोषं २ च।- समादत्ते क्रि- मृषा।- वदन्१॥

योजना–क्रियमाणोपकारे विप्रे मृते सति पातकं न भवति मिथ्याभिशंसिनः दोषः द्विः (द्विगुणः) भूतवादिनः समः भवति च पुनः मृषावदन् पुरुषः मिथ्याभिशस्तदोषं समादत्ते

तात्पर्यार्थ–आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) के अनुसार औषध पथ्य देने आदि चिकित्सा करनेसे किया है उपकार जिसका ऐसा ब्राह्मण कथंचित् दैवसे मरजाय तो पातक नहीं होता यहां ब्राह्मणका ग्रहण सब प्राणियोंका उपलक्षण है इसीसे संवर्त्त आदिकोंने यह कहा है कि चिकित्साके लिये गौके बांधने, और भीतर रहे गर्भके निकासनेमें यत्न करनेपर गौ मरजाय तो वह वैद्य पापसे लिप्त नहीं होता[1]–इसका विस्तार पहिले कह आये–जो मनुष्य पराई बडाईकी ईर्ष्यासे पैदा हुये क्रोधसे मलीन अंतःकरण होकर संपूर्ण जनोंके सन्मुख मिथ्याभिशापका आरोप करता है–अर्थात् इसने ब्रह्महत्या की, यह वृथा करता है, उस कहनेवालेको ब्रह्महत्याका दोष दूना होता है और जो भूतवादी है अर्थात् जगतमें विदित न हुये विद्यमानही दोषको जनोंके सन्मुख प्रकाश करता है उसकोभी पातकीके समान दोष होता है–सोई आपस्तंबने[2] कहा है कि दोषको जानकर, अन्यको पतितके दोषोंको न कहै और जो कहै उसे धर्मोंसे त्याग दे–और वह मिथ्याभिशंसी केवल दूने दोषका भागी नहीं होता किंतु जिसे मिथ्याभिशाप दिया है उसका जो अन्यभी पापोंका समूह है उसकोभी प्राप्त होता है–यह वचन जो आगे प्रायश्चित्त कहेंगे उसका अर्थवाद है

१ एकादशप्रयाजान्यजति ।
२ तिस्रआज्याहुतीर्जुहोति ।

१ यत्ने कृते विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ।
२ दोषं बुद्ध्वा न पूर्वः परेभ्यः पतितस्य समाख्याता स्यात्परिहरेचैनं धर्मेषु ।

यहां कुछ दूने पापका कहना विवक्षित नहीं क्यों कि निमित्त (दोष) लघु है और उसका लघु प्रायश्चित्त कहेंगे अन्यथा कियेका नाश और न कियेका आगमन हो जायगा अर्थात् जिसने किया उसको दोष होगा और जिसने न किया उसको होगा ॥

भावार्थ-उपकार करनेपर ब्राह्मण मरजाय तो पातक नहीं होता मिथ्या दोष लगानेवालेको दोष दूना और यथार्थ कहने वालेको तुल्य होता है और मिथ्या दोषोंको कहता हुआ पुरुष जिसे मिथ्या दोष लगाया हो उसके किये अन्यभी पापोंको प्राप्त होता है-२८४ ॥

महापापोपपापाभ्यांयोभिशंसेन्मृषापरम्
अब्भक्षोमासमासीतसजापीनियतेंद्रियः ॥

पद-महापापोपपापाभ्यां ३ यः १ अभिशंसेत् क्रि-मृषा-परं २ अब्भक्षः १ मासं २ आसीत क्रि सः १ जापी १ नियतेन्द्रियः १॥

योजना-यः महापापोपपापाभ्यां परं मृषा अभिशंसेत् सः अब्भक्षः जापी नियतेन्द्रियः सन् मासं आसीत ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य ब्रह्महत्यादि महा पाप और गोवधादि उप पापोंसे वृथाही अन्य पुरुषको दोष लगावे वह मास भर जलका भक्षण और जप करे और जितेन्द्रिय रहे और जपभी शुद्धवती ऋचाओंका करे क्यों कि वसिष्ठकी[1] स्मृतिहै कि ब्राह्मण को झूठा पातक वा उपपातक दोष लगावे तो मास भर जलका भक्षणकरे शुद्धवती ऋचाओंक पाठ करे अथवा अश्वमेधके अवभृथमें स्नान करे-महापाप और उपपापोंका ग्रहण अन्यभी अतिपातक आदिकोका उपलक्षण है

१ ब्राह्मणमनृतेनाभिशस्य पतनीयेनोपपातकेन वा मासमब्भक्षः शुद्धवतीरावर्तयेदश्वमेधावभृथं वा गच्छेत् ।

यह प्रायश्चित्तभी ब्राह्मणको ब्राह्मणकेही दोष लगानेमें जानना यदि ब्राह्मण क्षत्रिय आदिको दोष लगावे वा क्षत्रियआदि ब्राह्मण को दोष लगावे तो प्रतिलोम निन्दाओंमें दूना और तिगुना दंड होता है और वर्णोंकी अनुलोम निन्दामें उससे आधा २ न्यून दंड होता है इस[1] दंड के अनुसार प्रायश्चित्तकोभी वृद्धि और न्यूनताकी कल्पना करनी छोटा वर्ण बडे वर्णकी निन्दा करेतो प्रतिलोम और बडा छोटे वर्णकी निंदा करे तो अनुलोम क्रम होता है और यथार्थ दोषके वक्ताको तो पूर्वोक्त अर्थवादके और दंडके अनुसार उससे आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी तैसेही अति पातक दोष लगानेवालेको यही व्रत पादोन और पातकका दोष लगाने वालेको आधा और उपपातक को दोष लगाने वालेको चौथाई करना, क्यों कि मनुके इस वचनमें (अ० ११ श्लो-१२६ उपपातकरूप क्षत्रियके वधमें[2] महापातकका चौथाई प्रायश्चित्त देखते हैं कि ब्रह्महत्याका चौथाई भाग कहाहै इसी प्रकार प्रकीर्णका दोष लगानेवालेकोभी उपपातकसे न्यूनप्रायश्चित्तकी कल्पना करनी क्योंकि शक्ति[3] और पापको देखकर प्रायश्चित्तकी कल्पनाकरे यह स्मृति है और जो शंखलिखितने[4] गुरु प्रायश्चित्त कहाहै वह अभ्यासके न्यून अधिककी अपेक्षासे समझना कि नास्तिक, कृतघ्न

१ प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणत्रिगुणो दमः। वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्धार्धहानितः ।

२ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।

३ शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ।

४ नास्तिकः कृतघ्नः कूटव्यवहारी ब्राह्मणवृत्तिघ्नो मिथ्याभिशंसी चेत्येते पञ्चवर्षाणि ब्राह्मणगृहेषु भैक्षं चरेयुः संवत्सरं धौतभैक्षमश्नीयुः षण्मासान्वा गा अनुगच्छेयुः ।

कपटसे व्यवहारी, ब्राह्मणकी जीविकाका नाशक मिथ्या दोष लगाने वाला, ये छःवर्ष-तक ब्राह्मणोंके घरमें भिक्षाटन करे और वर्षदिन तक धोई हुई भिक्षाका भोजन करे वा छः मासतक गौओंका अनुगमन करे

भावार्थ–जो किसी अन्यको महा पाप और उपपापका झूठा दोष लगावे वह जिते न्द्रिय होकर मासभर तक जलका भक्षण और जप करे ॥ २८५ ॥

अभिशस्तोमृषाकृच्छ्रंचरेदाग्नेयमेववा ।
निर्वपेत्तुपुरोडाशंवायव्यंपशुमेववा॥२८६॥

पद–अभिशस्तः१ मृषा। कृच्छ्रं २ चरेत् क्रि–आग्नेयं २ एव।-उवा–निर्वपेत् क्रि–तु। पुरोडाशम् २ वायव्यं २ पशुं २ एव।–वा।–

योजना–मृषा अभिशस्तः कृच्छ्रं चरेत् वा आग्नेयं वायव्यं पुरोडाशं वा पशुं एव निर्वपेत्–

तात्पर्यार्थ–जिसको मिथ्या दोष लगायाहै वह प्राजापत्य कृच्छ्र करे अथवा अग्नि है देवता जिसका ऐसे वा वायु है देवता जिस-का ऐसे पुरोडाशसे अथवा वायु है देवता जिसका ऐसे पशुसे यज्ञ करे इन सबपक्षोंकी व्यवस्था शक्ति और संभवकी अपेक्षासे जाननी और जो वसिष्ठने[1] मासभर जलका भक्षण–यही प्रायश्चित्त अभिशस्तको समझना इस वचनसे कहा है वह उस अभिशस्तको है कि जिसने कुछ कालतक प्रायश्चित्त न कियाहो क्योंकि वर्ष दिनके[2] अभिशस्त दुष्टको दूना दंड होता है इस वचनसे अ-धिक दंड देखते हैं और जो पैठीनसी[3]ने कहा है कि जिसे झूठका दोष लगा हो वह पातकोंमें मास तक और महा पातकोंमें दो मास तक कृच्छ्र करे वह वसिष्ठके कहे विषयमेंही समझना और बौधायनने कहा है कि पातकका दोष[1] लगावे तो कृच्छ्र करे और जिसे लगावे वह आधाकृच्छ्र करे वह वचनभी उपपातकके विषयमें, वा अशक्त के विषयमें समझना इसी प्रकार अभिश-स्तके विषयमें जो अन्यभी छोटे बडे प्राय-श्चित्त हैं उनकी व्यवस्था काल और शक्ति-की अपेक्षासे जाननी–सोई मनुने कहा है (अ० ११ श्लो० २७७) कि जो अपांक्त (पंक्तिमें भोजन करनेके अयोग्य)हैं उनका शोधन, छठे कालमें भोजनवा[2] मासभर संहिताका जप, और शाकलशाखामें इस सूक्तसे कहे मास भर तक होम होते हैं और अभिशस्त आदि, अपांक्तोंके मध्यमें पढे हैं य-द्यपि जिसे झूठा दोष लगाया होय उस अभि-शस्तका कोई निषिद्धाचरण नहीं दीखता तथापि मिथ्याभिशाप (दोष)लगने रूप लिंगसे पूर्वजन्मके निषिद्ध आचरणका अनुमान होता है उसके लिये यह प्रायश्चित्त उस-प्रकार जानना जैसे कृमि (कीट)से डसे मनुष्यको होता है इससे कुछ विरोध नहीं॥

भावार्थ–जिसको मिथ्यादोष लगाया हो-य वह कृच्छ्र करे अथवा अग्नि और वायु है देवता जिसका ऐसे पुरोडाशसे वा वायु है देवता जिसका ऐसे पशुसे यज्ञ करे–२८६॥

अनियुक्तोभ्रातृजायांगच्छंश्चांद्रायणंचरेत्।
त्रिरात्रांतेघृतंप्राश्यगत्वोदक्यांविशुद्ध्यति

पद–अनियुक्तः १–भ्रातृजायां २–ग-

१ एतेनैवाभिशस्तो व्याख्यातः ।

२ संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।

३ अनृतेनाभिशस्यमानः कृच्छ्रं चरेन्मासं पातकेषु महपातकेषु द्विमासम् ।

१ पातकाभिशंसिने कृच्छ्रस्तदर्धमभिशस्तस्य ।

२ षष्ठान्नकालतामासं संहिताजप एव वा । होमाश्च शाकला नित्यमपांक्तानां विशोधनम् ।

३ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसीत्यादिकम् ।

च्छंन् १–चांद्रायणं २–चरेत् क्रि-त्रिरात्रांते ७–घृतं २ प्राश्य ऽ– गत्वाऽ– उदक्यां ७– विशुद्ध्यति क्रि ॥

योजना–अनियुक्तः पुरुषः भ्रातृजायां गच्छन् सन् चांद्रायण चरेत्–उदक्यां गत्वा त्रिरात्रांते घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य नियोगके विना जेठे वा कनिष्ठ भ्राताकी वधूके संग मैथुन करता है वह चांद्रायण करै–यहभी अज्ञानसे एकवार गमनके विषयमें जानना–और जो शंखका वचन है कि परिवित्ति और परिवेत्ता वर्ष दिनतक ब्राह्मणोंके घरोंमें भिक्षा मांगें और जेठे वा छोटे भाईकी भार्यामें नियोगके विना गमन करनेवालाभी यही प्रायश्चित्त करै वह वचन जानकर गमनमें समझना–और जो उदक्या (रजस्वला) हुई अपनी भार्यामेंभी गमन करता है वह तीनरात्र उपवास करके और अंतमें घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है–यह अज्ञानसे एक वार गमनके विषयमें है–उसमेंही गमनके अभ्यासमें–रजस्वलाके गमनमें सातरात्र उपवास करै यह शातातपका कहा प्रायश्चित्त जानना–जानकर एकवार गमनमेंभी यही प्रायश्चित्त है–और जो बृहत्संवर्तने कहा है कि जो रजस्वला-गर्भिणी-पतित-इनमें गमन करता है उसके पापकी शुद्धिके लिये अतिकृच्छ्रही शोधन है–वह वचनभी जानकर अभ्यासके विषयमें है और जो शंखने तीन वर्णका प्रायश्चित्त कहा है कि शूद्रहत्या और रजस्वलाके गमनमें ब्रह्महत्याका पाद प्रायश्चित्त होता है–वहभी जानकर निरंतर अभ्यासके विषयमें समझना–और रजस्वलाको रजस्वला आदिके स्पर्शमें अन्यस्मृतिमें कहा प्रायश्चित्त जानना–सोई बृहद्वसिष्ठने कहा है कि एक है भर्ता जिनका ऐसी सवर्णा रजस्वला जानकर वा अज्ञानसे परस्पर स्पर्श करलें तो शीघ्रही स्नानसे शुद्ध होती हैं और असपत्नी सवर्णाओंके अज्ञानसे स्पर्शमें तो स्नानमात्र है–क्यों कि मार्कंडेयकी स्मृति है कि सवर्णा रजस्वलाको सवर्णा रजस्वला स्पर्श करले तो उसीदिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है–इसमें संशय नहीं–जो कि कश्यपका यह वचन है कि यदि रजस्वला ब्राह्मणी–रजस्वलाही ब्राह्मणीसे स्पर्श करले तो एक दिन निराहार रहकर पंचगव्य पीवै तब शुद्ध होती है वह वचन काम (ज्ञान)से किये स्पर्शके विषयमें है–असवर्ण रजस्वलाके स्पर्शमें तो बृहद्वसिष्ठने विशेष दिखाया है कि रजस्वला ब्राह्मणी और शूद्रकी कन्या ये यदि परस्पर स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी कृच्छ्र व्रतसे और शूद्रा दानसे शुद्ध होती है–यहां दानेन–इस पदका यह अर्थ है कि पादकृच्छ्रका प्रतिनिधिरूप जो निष्क सुवर्णका चतुर्थांश (चौथाहिस्सा) उससे शुद्ध होती है–येभी उसी स्मृतिके

१ परिवित्तिः परिवेत्ता च संवत्सरं ब्राह्मणगृहेषु भैक्षं चरेयाता ज्येष्ठभार्यामनियुक्तो गच्छंस्तदेव कनिष्ठभार्यां च ।

२ रजस्वलागमने सप्तरात्रम् ।

३ रजस्वलां तु यो गच्छेद्गर्भिणीं पतितां तथा । तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनम् ।

४ पादस्तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ।

१ स्पृष्टे रजस्वलेऽन्योन्य सवर्णे त्वेकभर्तृके कामादकामतो वापि सद्यः स्नानेन शुद्ध्यतः ।

२ उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया । तस्मिन्नेवाहनि स्नात्वा शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥

३ रजस्वला तु संस्पृष्टा ब्राह्मण्या ब्राह्मणी यदि । एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।

४ स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजापि च । कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्री दानेन शुद्ध्यति

व चैन हैं कि ब्राह्मणी और शूद्रा ये परस्पर स्पर्श करलें तो-ब्राह्मणी पादहीन (तीन हिस्से) कृच्छ्रव्रतको करे और शूद्रा एकपाद कृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होती है-तिसी प्रकार रजस्वला ब्राह्मणी और क्षत्रिया ये परस्पर स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी आधे कृच्छ्र और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्रसे शुद्ध होती है और रजस्वला क्षत्रिया और शूद्रकी कन्या परस्पर स्पर्श करे तो क्षत्रिया तीन उपवास और शूद्रकी कन्या अहोरात्रके व्रतसे शुद्ध होती है-और क्षत्रिय और वैश्यकी कन्या यदि परस्पर स्पर्श करलें तो क्षत्रिया तीन रात्रका उपवास और वैश्यकी कन्या दोदिनका उपवास करे तो शुद्ध होती है और रजस्वला वैश्यकी कन्या और शूद्रा ये यदि परस्पर स्पर्श करें तो वैश्या तीन रात्र और शूद्रा दोदिनमें शुद्ध होती है-इस प्रकार-इच्छासे स्पर्श करनेमें वर्णोकी सनातनी (सदैव) शुद्धि समझनी- और जो अकामसे स्पर्श किया हो उसमें तो बृहद्विष्णुने स्नान मात्रही कहा है कि यदि रजस्वलाको हीनवर्णकी रजस्वला स्पर्श करले तो शुद्ध होनेतक भोजन न करे और सवर्णा वा अधिक वर्णाका स्पर्श करके स्नान करनेसे सद्यः (शीघ्र) शुद्धि होती है-चांडाल आदिके स्पर्शमें तो बृहद्वसिष्ठने विशेष दिखायाहै कि पतित अंत्यज श्वपाक ये रजस्वलाका स्पर्श करलें तो उन रजोधर्मके दिनोंको वितायकर प्रायश्चित्त करे पहिले दिनके स्पर्शमें त्रिरात्र-दूसरे दिनके स्पर्शमें दोदिन-और तीसरे दिनके स्पर्शमें अहोरात्र-और उससे परे नक्त व्रतको करे और उच्छिष्ट शूद्रा और श्वान रजश्वलाका स्पर्श करले तो दो दिन उपवास करे-और यहां उनदिनोंका विताना अनाशक (भोजनका त्याग) व्रतसे समझना-यहभी जानकर स्पर्शके विषयमें है अज्ञानसे स्पर्शमें तो यह बौधायनका कहा जानना कि रजस्वलाका स्पर्श चांडाल, अंत्यज, कुत्ता, काक करलें तो इतने निराहार रहे जबतक रजोधर्मकी शुद्धि हो-और जो उसनेही कहाहै कि ग्रामके मुरगे सूकर कुत्ता रजस्वलाका स्पर्श करलें तो चंद्रमाके दर्शनतक स्नान करके बैठी रहै-वह वचन अशक्तके विषयमेंहै-और जब भोजन करती हुयीको कुत्ता आदिका स्पर्श होजाय तो अन्यस्मृतिमें विशेष कहाहै कि यदि भोजन करती हुयी रजस्वला कुत्ता अंत्यज आदिका स्पर्श करले तो गोमूत्र और जौका भोजन करके छः रात्रमें शुद्ध

१ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजापि च । पादहीनं चरेत्पूर्वा पादकृच्छ्रं तथोत्तरा । स्पृष्टा रजस्वलान्योन्य ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा । कृच्छ्रार्द्धाच्छुद्धयते पूर्वा तूत्तरा च तदर्धतः । स्पृष्टा रजस्वल न्योन्यं क्षत्रिया शूद्रजापि च । उपवासैस्त्रिभि पूर्वा त्वहोरात्रेण चोत्तरा । स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं क्षत्रिया वैश्यजापि च । त्रिरात्राच्छुध्यते पूर्वा त्वहोरात्रेण चोत्तरा । स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं वैश्या शूद्रीतथैव च । त्रिरात्राच्छुद्धयते पूर्वा तूत्तरा च दिनद्वयात् । वर्णानां कामतः स्पर्शे शुद्धिरेषा पुरातनी ।

२ रजस्वला हीनवर्णा रजस्वला स्पृष्टा न तावदश्नीयाद्यावन्न शुद्धा स्यात् सवर्णामधिकवर्णां वा स्पृष्ट्वा सद्यः स्नात्वा विशुद्धयति ।

१ पतितांत्यश्वपाकेन संस्पृष्टा चेद्रजस्वला । तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् । प्रथमेह्नि त्रिरात्र स्या । द्वितीये द्व्यहमेव तु-अहोरात्रं तृतीये तु परतो नक्तमाचरेत् । शूद्रयोच्छिष्टया स्पृष्टा शुना चेद्व्यहमाचरेत् ।

२ रजस्वला तु संस्पृष्टा चांडालांत्यश्ववायसैः । तावत्तिष्ठेन्निराहारा यावत्कालेन शुद्धयति ।

३ रजस्वलातु सस्पृष्टा ग्रामकुक्कुटसूकरैः । श्वभिः स्नात्वा क्षिपेत्तावद्यावच्चन्द्रस्य दर्शनम् ।

४ रजस्वला तु भुंजाना श्वांत्यजादीन्स्पृशेद्यदि गोमूत्रयावकाहारा षड्रात्रेण विशुध्यति । अशक्तौ कांचनं दद्याद्विप्रेभ्यो वापि भोजनम् ।

होती है और असमर्थ होय तो ब्राह्मणोंको सुवर्ण व भोजन दे—और जब दोनों उच्छिष्टोंका परस्पर स्पर्श होय तो अत्रिका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि उच्छिष्ट रजस्वला स्त्री उच्छिष्ट रजस्वलाको स्पर्श करले तो पहिली कृच्छ्रसे शुद्ध होती है और दूसरी शूद्रा दान और उपवाससे शुद्धिको प्राप्त होती है—और जब उच्छिष्ट द्विजोंका स्पर्श रजस्वला करले तो मार्कंडेयका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि रजस्वला स्त्री उच्छिष्ट ब्राह्मणोंको किसी प्रकार छूले तो नाभिसे नीचेके स्पर्शमें अहोरात्र और ऊपरके स्पर्शमें तीन दिन निराहार रहकर व्यतीत करे—इस प्रकार अवकीर्णिके प्रसंगसे कोई २ उपपातकका प्रायश्चित्तभी कहकर अब प्रकरणके विषयमें कहते हैं—वहां अवकीर्णके पीछे (सुतानां चैव विक्रयः) संतानका बेचना—यह कहा है उसमें मनु और योगीश्वरके कहे त्रैमासिकआदिही प्रायश्चित्त—ज्ञान, अज्ञान, शक्ति, आदिकी अपेक्षासे पूर्वके समान व्यवस्थासे समझने—और जो शंखका वचन है कि देवताका घर, प्रतिश्रय (आश्रय), उद्यान, आराम, सभा, प्रपा (प्याऊ), तलाव, पुण्य, पुल, पुत्र, इनको बेचकर तप्तकृच्छ्र करे—और जो पराशरने कहा है कि कन्या और गौको बेचकर सांतपन कृच्छ्र करे—वे दोनोंभी वचन आपत्कालमें अज्ञानके विषयमें समझने और जानकर तो यह चतुर्विंशति मतमें कहा जानना कि नारीका विक्रय करके चांद्रायण करे और पुरुषको बेचकर दूना व्रत बुद्धिमानोंने कहा है—और जो पैठीनसि ने कहा है कि आराम (बाग) तलाव उदपान (चौबचा) पुष्करिणी (तलैय्या) पुण्य पुत्र इनके विक्रयमें त्रिकाल स्नान भूमि पर शयन चौथे काल भोजन करता हुआ वर्षदिनमें पवित्र होता है—यह वचन एक पुत्रके विषयमें समझना—उसके पीछे (धान्यकुप्यपशुस्तेयम्) अन्न धन पशु इनकी चोरी उपपातक कहा है उसके प्रायश्चित्त चोरीके प्रकरणमें विस्तारसे कह आये।

भावार्थ—नियोगके विना भ्राताकी पत्नीमें जो गमन करे वह चांद्रायण करे—और रजस्वलामें गमन करके त्रिरात्र उपवासके अनंतर केवल घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है—२८७। २८८॥

त्रीन्कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजकोभिचरन्नपि।
वेदप्लावीयवाश्यब्दंत्यक्त्वाचशरणागतम् ॥

पद—त्रीन् २ कृच्छ्रान् २ आचरेत् क्रि- व्रात्ययाजकः १ अभिचरन् १ अपि-वेदप्लावी १ यवाशी १ अब्दं २ त्यक्त्वाऽ-चऽ- शरणागतम् २॥

योजना—व्रात्ययाजकः अभिचरन् अपि द्विजः त्रीन् कृच्छ्रान् आचरेत् वेदप्लावी च पुनः शरणागतं त्यक्त्वा अब्दं यवाशी भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ—अब अयाज्योंके याजनका प्रायश्चित्त कहते हैं—जो मनुष्य सावित्री (गायत्री) से पतितोंको यज्ञ कराता है वह

१ उच्छिष्टोच्छिष्टया स्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला। कृच्छ्रेण शुद्धचते पूर्वा शूद्रा दानैरुपोषिता ।

२ द्विजान्कथंचिदुच्छिष्टान् रजस्या यदि संस्पृशेत्। अधोच्छिष्टे त्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत्।

३ देवगृहप्रतिश्रयोद्यानारामसभाप्रपातडागपुण्यसेतुसुतविक्रयं कृत्वा तप्तकृच्छ्रं चरेत्।

४ विक्रीय कन्यकां गां च कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्।

१ नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेच्चांद्रायणव्रतम्। द्विगुणं पुरुषस्यैव व्रतमाहुर्मनीषिणः ।

२ आरामतडागोदपानपुष्करिणीपुण्यसुतविक्रये त्रिषवणस्नाय्यधःशायी चतुर्थकालाहारः संवत्सरेण पूतो भवति।

प्राजापत्य आदि तीन कृच्छ्रोंको करै और उन गुरु लघुभूत तीन कृच्छ्रोंकी कल्पना निमित्त (पाप)के गुरुलघुभावसे करनी तैसेही अभिचार (शत्रुका मरण) करता हुआभी यही प्रायश्चित्त करै-यहभी अग्नि लगानेवाले आदि आततायीसे भिन्नमें समझना क्योंकि छः ओंमें अभिचार करता हुआ पतित नहीं होता यह वसिष्ठ की स्मृति है-अपिशब्द ही नके याजक और अंत्येष्टिके याजकोंके परिग्रहके लिये है-इसीसे मनु (अ० ११ श्लो० १९७) ने कहा है कि व्रात्योंका याजन और अन्योंका अंत्यकर्म और अभिचार अहीन, इनको करके तीन कृच्छ्रोंमें दोषको करता है-और अन्योंका अंत्यकर्म, यह अत्यंत अभ्यासके विषयमें वा शूद्रके अंत्यकर्ममें समझना क्योंकि प्रायश्चित्त गुरु है, अहीन दोरात्रसे बारह रात्रपर्यंत दिनोंके यज्ञको कहते हैं-जो शातातप ने कहा है कि जिनको सावित्रीका उपदेश नहीं हुआ उनको यज्ञोपवीत न दे न पढावे जो यज्ञोपवीत दे वा पढावे वा यज्ञ करावे , उद्दालकव्रत करै यह जानकर करनेमें है ... व्रत पहिले दिखाय आये ये तीनों ...च्छ्र साधारण उपपातकोंका जो प्रायश्चित्त उसका अपवाद है-इससे उपपातकोंका साधारण प्रायश्चित्त शूद्र आदि जो अयाज्य-उनके यज्ञ करानेमें समझना-उसमेंभी जानकर त्रैमासिक और अज्ञानसे योगीश्वरके कहे मास व्रत समझने-और जो शूद्रयाजका दिकोंको बढकर प्रचेता ने कहा है कि पंचाग्नि तपना-वर्षामें खडा रहना-जलमें सोना-इनको ग्रीष्म-वर्षा-हेमंत ऋतुमें क्रमसे करै-और मासभर गोमूत्र जौंको भोजन करै-यह जानकर अभ्यासके विषयमें है-और जो यम ने कहा है कि जो ब्राह्मण शूद्रका पुरोहित होता है-अर्थात् स्नेह वा धनके लोभसे शूद्रको यज्ञ कराता है-उसकी कृच्छ्रसे शुद्धि होती है-यहभी अशक्तके विषयमें है-और जो पैठीनसि ने कहा हैकि शूद्रका याजक सब द्रव्यके त्यागनेसे और दश सहस्र १०००० प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है-यहभी अज्ञानसे अभ्यासके विषयमें है-जो गौतम ने कहा हैकि निषिद्ध (पतित आदि) को यज्ञ कराने-और पढानेरूप मंत्र प्रयोग आदिका बहुत दिनतक अभ्यास करै तो सहस्रवाक् (सरस्वती) की स्तुति करै यह प्राकृत ब्रह्मचर्य का उपदेशभी जानकर अभ्यासके विषयमें है-जो अपने वेदका विप्लव करै-अर्थात् पर्वमें-चाण्डालको सुनाकर और अनध्यायोंमें जो पढे उसको, और जो शिष्य बडाईके लिये पढे और उसको गुरु-तुं क्या पढता है तुझनें नाश किया-ऐसे पर्यनुयोग-देदे उसको विप्लव कहते हैं-और जो रक्षाकरनेमें समर्थभी चौरसे भिन्न शरणागतकी उपेक्षा करै वहभी वर्ष दिनतक जौं ओदनको भोजन करके शुद्ध होता है-इसीसे

१ षट्स्वभिचरन्न पतति ।

२ व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामंत्यकर्मच । अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ।

३ पतितसावित्रीकान्नोपनयेत्--नाध्यापयेत् य एतानुपनयेदध्यापयेद्याजयेद्वा स उद्दालकव्रतं चरेत् ।

१ एते पञ्चतपोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुः क्रमेण ग्रीष्मवर्षाहेमन्तेषु मासं गोमूत्रयावकमश्नीयुः ।

२ पुरोधाः शूद्रवर्णस्य ब्राह्मणो यः प्रवर्तते स्नेहार्थप्रसंगाद्वा तस्य कृच्छ्रो विशोधनम् ।

३ शूद्रयाजकः सर्वद्रव्यपरित्यागात्पूतो भवति प्राणायामसहस्रेषु दशकृत्वोऽभ्यस्तेषु ।

४ निषिद्धमंत्रप्रयोगे सहस्रवागुपतिष्ठेत् ।

अन्यस्मृतिमें कहा है कि जिनको अनुयोग दिया हो वे मनुने पतित कहे हैं–और जो वासिष्ठ ने कहा है कि पतित चांडाल शव इनको वेद सुना कर–त्रिरात्र मौन रहे भोजन न करें सहस्रवार गायत्रीका अभ्यास करके पवित्र होते हैं यह शास्त्रसे जानते हैं यही प्रायश्चित्त निंदितोंके अध्यापक और याजकोंका है और दक्षिणाके त्यागसेभी पवित्र होते हैं यहभी अज्ञानसे करनेमें समझना और जो षट्त्रिंशतके मतमें कहा है कि चाण्डालके कर्णके समीप श्रुति वा स्मृतिको पढे तो एक रात्र भोजन न करे वहभी अज्ञानके विषयमें है और जब सर्प आदि गुरु और शिष्यके बीचमें निकल जांय वहां फिर न पढे और उसका प्रायश्चित्त यमे ने कहा है कि सर्प, नकुल, अजा, मार्जार, ऊंट, मैडक, पुरुष भेड, कुत्ता, अश्व, खर, इनके मध्यमें गमनका शीघ्र यह प्रायश्चित्त सुनो तीन दिन तक उपवास अभिषेक करे अथवा जानु टेक टेक दूसरे ग्राममें चलाजाय और पिता माता पुत्र इनका त्याग,तडाग आराम इनका विक्रय इनमें मनु और योगीश्वरके कहे जो उपपातकोंके साधारण प्रायश्चित्त हैं–वेही पूर्वके समान जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे समझने उनमें माता पिताके त्यागी इसवचनसे अपांक्तों (पंक्तिबाह्य) में पढेहैं कि विनाकारण माता पिता गुरु इनके त्याग अपांक्त होते हैं उसका भी प्रायश्चित्त उसको होताहै–सोई मनु (अ० ११–श्लो० २००) में कहाहै कि छठे काल भोजन मासभर संहिताका जप और शाकल मंत्रोंसे होम–यह अपांक्तोंका शोधनहै और वे अपांक्त श्राद्धकाण्डमें–स्तेन–पतित–क्लीब–इत्यादि वचनसे दिखाये हैं–तडाग–आराम–इनके विक्रयमें–कितनेक विशेष प्रायश्चित्त–उनके विषय–सुतविक्रयके प्रायश्चित्तके समयमें कह आये–उसके आगे कन्याका दूषण कहा है–उसमें त्रैमासिक द्वैमासिक–चांद्रायण आदि सब वर्णोंकी सवर्णा कन्याके विषयमें समझने–और अनुलोमोंमें तो दूधका–भक्षण वा प्राजापत्य समझना–क्योंकि सकाम अनुलोम कन्याओंमें दोष नहीं अन्यथा दण्ड है इस वचनसे अल्प दण्ड दिखा आये हैं और जो शंखने कहा है कि कन्याका दोषी, सोमका विक्रयी, अवभक्षण कृच्छ्र करे और जो हारीतका वचन है कि कन्या दूषक, सोमका विक्रयी, वृषलीपति, बालक दार इनका त्यागी, सुरा, और

१ दत्तानुयोगानध्येतुः पतितान्मनुरब्रवीत् ।

२ पतितचाण्डालशवश्रवणे त्रिरात्रं वाग्यता अनश्नन्त आसीरन् सहस्रपरम वा तदभ्यस्यत· पूता भवति इति विज्ञायते ।

३ चाण्डालश्रोत्रावकाशे श्रुतिस्मृतिपाठे एक रात्रमभोजनम् ।

४ सर्पस्य नकुलस्याथ अजमार्जारयोस्तथा । मूषकस्य तथोष्ट्रस्य मण्डूकस्य च योषितः । पुरुषस्यैडकस्यापि शुनोऽश्वस्य खरस्य च । अंतरा गमने सद्यः प्रायश्चित्तमिदं शृणु । त्रिरात्रमुपवासश्च त्रिरद्धश्चाभिषेचनम् । ग्रामांतरं वा गतव्यं जानुभ्या नात्र संशयः ।

१ अकारणे परित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।

२ षष्ठान्नकालता मास संहिताजप एव वा । होमाश्च शाकला नित्यमपांक्तानां विशोधनम् ।

३ येस्तेनपतितक्लीबाः ।

४ सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः ।

५ कन्यादोषी सोमविक्रयी च कृच्छ्रमब्भक्षं चरेयाताम् ।

६ कन्यादूषी सोमविक्रयी वृषलीपतिः कौमारदारत्यागी सुरामद्यपः शूद्रयाजको गुरोः प्रतिहन्ता नास्तिको नास्तिकवृत्तिः कृतघ्नः कूटव्यवहारी मित्रध्रुक् शरणागतघाती प्रतिरूपकवृत्तिरित्येते पच तपोभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुर्मोघमवर्षाहेमतेषु मासमर्धमूत्रयावकमश्नीयुः ।

मद्यका पीनेवाला, शूद्रयाजक, गुरुका प्रतिहंता, नास्तिक, नास्तिकवृत्ति, कृतघ्न कपटव्यवहारी, मित्रका द्रोही, शरणागतका घाती, प्रतिरूपक वृत्ति, (विद्यापिया) ये सब पंचाग्नि ताप, वर्षामें स्थिति, जल शयन इनको ग्रीष्म, वर्षा, हेमंतोंमें करै और मास भर गोमूत्र और जौंका भक्षण करै ये पूर्वोक्त दोनोंभी वचन क्षत्रिय और वैश्यको प्रतिलोम वर्णकी कन्याके दूषणमें समझने और शूद्रका तो वध ही है—क्योंकि इसे वचनसे वधकोही देखते हैं कि कन्याके दूषणमें करका छेदन, और उत्तम वर्णकी कन्याके दूषणमें शूद्रका वध करै परिविंदकको यज्ञकराना औरकन्या देना, कुटिलता, और शिष्टोंने जिसका निषेध न कियाहो उसका लोप, अपने लिये पाक क्रियाका प्रारंभ, मद्यप कीस्त्रीका सेवन, इन सबमें पूर्वके समान साधारण उपपातकका प्रायश्चित्त समझना और पहिले दोनोंमें तो विशेष प्रायश्चित्त परिवेदन और अयाज्य याजनके प्रायश्चित्त कथनके प्रस्तावमें दिखाय आये—उसके आगे स्वाध्यायका त्याग कहा है—उसमें [illegible] होकर त्यागनेमें तो " अधी-[illegible] " अधीतका नाश इस वचनसे ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त कह आये यदि शास्त्रश्रवण आदिमें व्याकुल होकर स्वाध्यायको त्यागै तो त्रैमासिक आदि उपपातकके प्रायश्चित्त जाति और शक्तिकी अपेक्षासे समझने और जो वसिष्ठने[२] कहा है कि वेदका त्यागी द्वादश रात्र कृच्छ्र करके फिर आचार्यसे वेदको पढे वह अत्यंत आपत्तिके विषयमें समझना, अग्निके त्यागमें तो उसने ही विशेष दिखाया है कि जो अग्नियोंको त्याग देवै वह द्वादशरात्र कृच्छ्र करके फिर अग्न्याधान करै—यहां द्वादश रात्रका ग्रहण त्यागके समयकी अपेक्षासे प्राजापत्य आदि गुरु लघु कृच्छ्रोंकी प्राप्तिके लिये है—इनमें दो मासके त्यागमें प्राजापत्य, चार मासके त्यागमें अतिकृच्छ्र,और छः मासके त्यागमें पराक करै और छः मासके अनंतर योगीश्वरके कहे उपपातकके सामान्य प्रायश्चित्त काल आदिकी अपेक्षासे समझने वर्ष दिनके पीछे तो मनुका कहा त्रैमासिक और द्वैमासिक समझना येभी नास्तिकतासे त्यागमें समझना सोई त्यागी ने कहा हैकि जो द्विज नास्तिकतासे अग्निको त्यागे वह द्विज प्राजापत्य करै और जब प्रमादसे त्यागे तब भारद्वाज गृह्यमें विशेष कहा है कि तीन रात्रके त्यागमें सौ १०० प्राणायाम बीस २० रात्रतक उपवास उससे आगे साठ रात्र तक तीन रात्र उपवास उससे आगे वर्ष दिन तकके त्यागमें प्राजापत्य करै—उससे आगे अधिक कालके त्यागमें दोषभी अधिक होता है यदि आलस्य आदिसे त्यागै तो उसनेही विशेष कहा है कि बारह दिनके त्यागमें तीन दिन उपवास, मासके त्यागमें बारह दिन उपवास और वर्ष दिनके त्यागमें मासभर उपवास वा दूधका भक्षण करै—सं-

१ दूषणेतु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा ।

२ ब्रह्मोज्झः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयंजीत वेदमाचार्यात् ।

१ योऽग्नीनपविध्येत्स कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनराधेयं कारयेत् ।

२ योऽग्नित्यजीतनास्तिक्यात्प्राजापत्यं चरेद्विजः ।

३ प्राणायामशतमात्रिरात्राद्उपवासः स्याद्वाविंशतिरात्रात् अत ऊर्ध्वमाषष्टिरात्रात् त्रिरो रात्रीरुपवसे दतऊर्ध्वमासंवत्सरात् प्राजापत्यं चरेत् अतऊर्ध्वे कालबहुत्वे दोषगुरुत्वम् ।

४ द्वादशाहातिक्रमे त्र्यहमुपवासो मासातिक्रमे द्वादशाहमुपवासः संवत्सरातिक्रमे मासोपवासः पयोभक्षणं च ।

वत्सरके आगे तो वृद्ध हारीतने विशेष कहा है कि संवत्सर तक अग्निहोत्रके त्यागमें चांद्रायण करके फिर आधान करे दो वर्षके त्यागमें चांद्रायण और सोमायन करे तीन वर्षके त्यागमें संवत्सरका कृच्छ्र करके फिर आधान करे सोमायनको कृच्छ्रकाण्डमें कहेंगे–शंखनेभी विशेष कहा है कि अग्निका त्यागी संवत्सरका प्राजापत्य और गोदान करे सुत और बंधुके जानकर त्यागमें त्रैमासिक गोवधका व्रत करे अज्ञानसे त्यागमें तो योगीश्वरके कहे चारों व्रत शक्ति आदिकी अपेक्षासे समझने वृक्षके छेदनका प्रायश्चित्त पहिले कह आये और स्त्री और प्राणियोंका वध, और वशीकरण आदिसे जीवन, तिल और ईखके यंत्र (कोलू) का प्रवर्त्तन, इनमेंभी वेही प्रायश्चित्त तिसी प्रकार समझने और द्यूत, मृगया आदिव्यसनोंमेंभी वेही प्रायश्चित्त तिसीप्रकार समझने और जो बौधायननें कहा है कि अब अशुद्ध करने वाले कर्म कहते हैं द्यूत अभिचार अनाहिताग्निकी उंछवृत्ति, समावृत्त (गृहस्थी) का भिक्षाटन और उसकाही गुरुकुलमें वास चार माससे अधिक उसको पढाना, और नक्षत्रका सूचन, ये कर्म अशुचि करनेवाले हैं इनमें क्रमसे बारह मास, छः मास, बारह दिन, बारह दिन, छः दिन, बारह दिन, तीन दिन, तीन दिन, एक दिनका व्रत करे इस वचनसे द्यूतमें वार्षिक व्रत कहा है वह अभ्यासके विषयमें समझना और जो प्रचेताने कहा है कि मिथ्यावादी, तस्कर, राजाका भृत्य वृक्षोंके लगानेसे जो जीवे विष और अग्निका दाता, अश्व, रथ, और हाथी, इनपर चढकर जो जीवे और रंगोपजीवी, श्वागणिक (जो बहुतसे कुत्ते रक्खे) शूद्रका उपाध्याय, वृषलीका पति, भाण्डिक, अर्थात् बंदीजनोंसे भिन्न राजाओंको तूरी आदिकोंके शब्दोंसे जो जगावे, नक्षत्रोपजीवी अर्थात् पत्रमें नक्षत्र बताकर जो जीवे–कुत्तोंसे जो जीवे–अथवा श्ववृत्ति (सेवक)–ब्रह्मजीवी मूल्यलेकर ब्राह्मणका सेवक–चिकित्सक (वैद्य) देवलक (मूल्यसे देवताका पूजारी)–पुरोहित–कितव (कपटी) मदिरा पीनेवाला–कूट (छल) का कर्त्ता–अपत्य (संतान) का विक्रयी–मनुष्य और पशुओंका विक्रेता–इन पातकियोंका उद्धार इकट्ठा होकर न्यायसे वा ब्राह्मणोंकी व्यवस्थासे करे–सब द्रव्यके त्यागसे चौथे काल भोजन करते हुये वर्ष दिनतक त्रिकाल स्नान करै–उसके पीछे देवता पितरोंका तर्पण और गौओंको आह्निक (भोजन व घास) दे इसप्रकार व्यवहार करनेके योग्य हैं–यहभी बौधायनके वचनका जो विषय है उसमेंही है–

१ संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रे चांद्रायण कृत्वा पुनरादध्यात् द्विवर्षोत्सन्ने चान्द्रायणं सोमायनंच कुर्यात् त्रिवर्षोत्सन्ने संवत्सरं कृच्छ्रमभ्यस्य पुनरादध्यात् ।

२ अग्न्युत्सादी संवत्सरं प्राजापत्यं चरेद्गां च दद्यात् ।

३ अथाशुचिकराणि द्यूतमभिचारोऽनाहिताग्नेरुंछवृत्तिः समावृत्तस्य भैक्षचर्या तस्यच गुरुकुले वास ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो यश्च तमध्यापयति नक्षत्रनिर्देशनं चेति द्वादश मासान्द्वादशार्धमासान्द्वादशाहान्द्वादशाहान्षडहान्द्वादशान्यहांश्च त्र्यहमेकाहमित्यशुचिकरनिर्देशः ।

१ अनृतवाक् तस्करो राजभृत्यो वृक्षारोपकवृत्तिः गरदोऽग्निदोऽश्वरथगजारोहणवृत्ती रंगोपजीवी श्वागणिकः शूद्रोपाध्यायो वृषलीपतिर्भांडिको नक्षत्रोपजीवी श्ववृत्तिः ब्रह्मजीवी चिकित्सको देवलकः पुरोहितः कितवो मद्यपः कूटकारकोऽपत्यविक्रयी मनुष्यपशुविक्रेता चेति तानुद्धरेत्समेत्य न्यायतो ब्राह्मणव्यवस्थया सर्वद्रव्यत्यागे चतुर्थकालाहाराः संवत्सरं त्रिषवणमुपस्पृशेयुस्तस्यान्ते देवपितृतर्पणं गवाह्निकचेत्येवं व्यवहार्याः

मनुके कहे मासभर छठे कालमें भोजन आदि अपांक्तियों (पंक्तिसे बाह्य) के प्रायश्चित्त जाति आदिकी अपेक्षासे समझने क्यों कि मनुके कहे-अपांक्तियोंके मध्यमेंभी कितव आदि पढे हैं-आत्म (अपना) विक्रय और शूद्रकी सेवामें पूर्वके समानही सामान्य प्रायश्चित्त समझने-और जो बौधायनने[1] कहा है कि समुद्रका गमन-ब्राह्मणके न्यास (धरोर) का हरना-संपूर्ण अपण्यों (वेचनेके-अयोग्य) का व्यवहार-भूमिके निमित्त अनृत (झूठ) बोलना-शूद्रकी सेवा और जो शूद्रामें पैदा हो उसकी संतान-और उनका निर्देश (आज्ञाकरना)इनके कर्ता सब, चौथे काल प्रमित भोजन और जलोंसे आचमन करें त्रिकाल स्नान और स्थान आसनसे विहार इस प्रकार करतेहुये तीन वर्षसे उसपापको नष्ट करते हैं-वह वचन बहुतकालकी सेवाके विषयमें समझना-हीन जातिके संग मित्रतामें तो उपपातकोंके सामान्य प्रायश्चित्तही समझने-और जो प्रचेता[2] ने कहा है कि मित्रके भेदको करके अहोरात्र भोजनको न करके होम करे और दूध पीवे वह उत्तमकी मित्रताके भेदमें समझना हीनयोनिकी सेवामेंभी उपपातकके जो सामान्य प्रायश्चित्त वेही समझने-और जो शातातप[3] ने कहा है कि ब्राह्मण पहिले क्षत्रियकी कन्याको विवाहे तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके निवेश करे अर्थात् कृच्छ्रके अनंतर सवर्णाको विवाहे और अनंतर उस क्षत्रियाकोभी विवाह ले वैश्याको पहिले विवाहे तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र करे शूद्राको पहिले विवाहे तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र करे-और क्षत्रिय, वैश्याकोही पहिले विवाहे तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके निवेश करे और उस वैश्याकोही पुनः विवाहले और शूद्राको पहिले विवाहे तो अतिकृच्छ्र करे और वैश्य, शूद्राको पहिले विवाहे तो बारह दिनका अतिकृच्छ्र करके उस शूद्राको पुनः विवाहले-यहां यह अर्थ है कि निवेश करे और उसको विवाहले यह कहनेसे कृच्छ्र करनेके अनंतर सवर्णा कन्याके विवाह करनेके, अनंतर उस क्षत्रिया आदिकी कन्याकोभी विवाहले यहभी अज्ञानके विषयमें है-और जानकर तो उपपातक सामान्यका प्रायश्चित्त हैही, यह जानना-साधारणस्त्रीकी सेवामें हीन योनिका सेवन (भोग) कहा है उसमेंभी पशु, वेश्याके गमनमें प्राजापत्य कहा है यह संवर्त[1]का कहा प्रायश्चित्त अज्ञानसे करनेमें समझना-जानकर करनेमें तो यम[2]का कहा जानना-कि वेश्यागमनसे पैदा हुये पापको द्विजाति सातरात्रतक एक २ वार तपाये कुशाओंके जलको पीकर नष्ट करते हैं-और उपपातक सामान्योंके जो प्रायश्चित्त हैं वे ज्ञानसे, अज्ञानसे और अभ्यासकी अपेक्षासे समझने-उसमें जानकर अभ्यासमें निमित्त २ के प्रति नैमित्तिककी आवृत्ति होती है इस[3] न्यायसे निमित्त २ के प्रति नै-

१ समुद्रयानं ब्राह्मणस्य न्यासापहरणं सर्वापण्यैर्व्यवहरणं भूम्यनृतम् शूद्रसेवा यश्च शूद्रायामभिजायते तदपत्यं च भवति तेषां तु निर्देशश्चतुर्थकाले मितभोजिनः स्युरपोभ्युपेयुः सवनानुकल्प स्थानासनाभ्यां विहरंतस्त्रिभिर्वर्षैस्तदपघ्नंति पापम् ।

२ मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्नन् हुत्वा पयः पिबेत् ।

३ ब्राह्मणो राजकन्यापूर्वां कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तां तु चोपयच्छेत्—वैश्यापूर्वां कृच्छ्रातिकृच्छ्रं—शूद्रापूर्वां तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रं-राजन्यश्चेद्वैश्यापूर्वां कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तां चोपयच्छेत् शूद्रापूर्वां त्वतिकृच्छ्रं-वैश्यश्चेच्छूद्रापूर्वां त्वतिकृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा तां चोपयच्छेत् ।

१ पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ।

२ वेश्यागमनजं पापं व्यपोहंति द्विजातयः । पीत्वा सकृत्सकृत्तप्तं सप्तरात्रं कुशोदकम् ।

३ प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्तते ।

मित्तिककी आवृत्ति पाई, परंतु लौगाक्षिने विशेष कहा है कि माससे पूर्व २ के अभ्यासमें दिनोंको दुगुने आदि करके वृद्धि होती है फिर वर्षदिनतक अभ्यासमें मासगुनी-फिर जबतक पाप करे वर्षगुनी वृद्धि होती है-यहभी जानकर विषयमें है-अज्ञानसे करनेमें तो चतुर्विंशतिके मतमें विशेष कहा है कि एकवार करनेमें जो पाप है वह तीन दिनमें तिगुना मासभरमें पंचगुना-छः मासमें दशगुना-वर्षदिनमें पंद्रहगुना-तीन वर्षमें बीसगुना होता है उसके आगेभी शातातपके वचनानुसार इसी प्रकार कल्पना करनी-और जो यह वचन प्रति निमित्त आवृत्तिका विधायक है कि पहिली आवृत्तिसे दूसरीमें दुगुना करे वह महापातकके विषयमें है यह पहिले कह आये और जो यमने साधारणी (वेश्या) गमनके अधिकारमें गुरुतल्प व्रतका अतिदेश किया है कि कोई गुरुतल्प व्रतको कोई चांद्रायणको कोई गोहत्याके व्रतको और कोई अवकीर्णीके व्रतको कहते हैं-यह वचन जन्मसे लेकर प्रतिज्ञासे निरंतर अभ्यासके विषयमें है-उसके आगे तैसेही आश्रमके विना बसना (रहना) कहा है-उसमें हारीतने विशेष कहा है कि वर्ष दिनतक अनाश्रमी अर्थात् जो गृहस्थ आदि किसी आश्रममें नहो वह प्राजापत्य कृच्छ्र करके आश्रममें आवे-दूसरे वर्षमें अतिकृच्छ्र, तीसरे वर्षमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र करे उसके आगे चांद्रायण करना कहा है-यहभी असंभवके विषयमें है-संभवमें तो सामान्यसे उपपातकोंके प्रायश्चित्त ज्ञान और अज्ञानकी व्यवस्थासे समझने परपाकमें रुचि निषिद्ध शास्त्रको पढना आकर (खजाना) का अधिकार भार्याका विक्रय इनमें मनु और योगीश्वरके कहे उपपातक सामान्यके प्रायश्चित्त जाति, शक्ति आदिकी व्यवस्थासे समझने-

भावार्थ-व्रात्योंका यज्ञ कराने वाला और अभिचारका कर्ता तीन कृच्छ्रोंको करे वेद्का नाशक और शरणागतका त्यागी वर्षभर जौंको भक्षण करे-२८९

गोष्ठेवसन्ब्रह्मचारीमासमेकंपयोव्रतः ॥
गायत्रीजाप्यनिरतःशुध्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्

पद-गोष्ठे ७ वसन् १ ब्रह्मचारी १ मासं २ एकं २ पयोव्रतः १ गायत्रीजाप्यनिरतः १ शुद्ध्यते क्रि- असत्प्रतिग्रहात् ५-

योजना-ब्रह्मचारी गोष्ठे वसन् एकं मासं पयोव्रतः गायत्रीजाप्यनिरतः सन् असत्प्रतिग्रहात् शुद्ध्यते-

तात्पर्यार्थ-अब निंदित प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त कहते हैं जो ब्रह्मचारी निंदित प्रतिग्रह करता (लेता) है वह गोशालामें बसता और गायत्री जपता हुआ एक मासतक पयोव्रत (दूध पीना) से शुद्ध होता है और दाताकी जाति और कर्मसे प्रतिग्रह निषिद्ध होता है जैसे चाण्डाल और पतितका प्रतिग्रह तैसेही देश और कालसेभी प्रतिग्रह निषिद्ध होता है जैसे कुरुक्षेत्र और ग्रहनमें, तैसेही प्रतिग्रहके योग्य द्रव्यसेभी प्रतिग्रह निषिद्ध होता है जैसे

---

१ अभ्यासेऽह्वर्गुणाद्वृद्धिर्मासादर्वाग्विधीयते । ततो मासगुणा वृद्धिर्यावत्संवत्सरं भवेत् । ततः संवत्सरगुणा यावत्पापं समाचरेत् ।

२ सकृत्कृते तु यत्प्रोक्तं त्रिगुणं तत्त्रिभिर्दिनैः । मासात्पंचगुणं प्रोक्तं षण्मासाद्दशधा भवेत् । संवत्सरात्पंचदशं त्र्यब्दाद्विंशगुणं भवेत् । ततोप्येवं प्रकल्प्यं स्याच्छातातपवचो यथा ।

३ विधेः प्राथमिकादस्माद्द्वितीये द्विगुणं चरेत् ।

४ गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिच्चान्द्रायणव्रतम् । गोघ्नस्येच्छन्ति केचिच्च केचिदेवावकीर्णिनः ।

५ अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यं कृच्छ्रं चरित्वाश्रममुपेयात् द्वितीयेतिकृच्छ्रं तृतीये कृच्छ्रातिकृच्छ्रमत ऊर्ध्वं चान्द्रायणम् ।

सुरा भेड मृतककी शय्या और उभयतोमुखी (अर्थात् जब व्यानेके समय बच्चे का मुख योनिमें हो) गौ इनका प्रतिग्रह और जब पतित आदिसे भेड आदिका प्रतिग्रह ले तब यह प्रायश्चित्त गुरु समझना क्योंकि दो व्यतिक्रमके देखनेसे, अर्थात् दाता और द्रव्य इन दोनोंको निषिद्ध होनेसे निमित्त (दोष) भी गुरु है वहां जपमें मनु ने संख्या की विशेषता कही है (अ० ११ श्लो० १९४) कि मास भर तीनसहस्र गायत्रीको गोशालामें जपकर और दूध पीकर निषिद्ध प्रतिग्रहके दोषसे छुटता है यहां प्रतिदिन तीन सहस्र जप जानना क्योंकि (मासं) इस अत्यंत संयोगमें द्वितीयासे तीन सहस्र जप प्रतिदिन व्यापक प्रतीत होता है और जब न्यायवर्त्ती ब्राह्मण आदिके सकाशसे निषिद्ध मेष आदिको ग्रहण करता है अथवा पतित आदिके सकाशसे अनिषिद्ध भूमि आदिका प्रतिग्रह लेताहै तब षट्त्रिंशन्मतका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि पवित्र यज्ञके करनेसे सब घोर प्रतिग्रह शुद्ध होते हैं और ऐंदव, मृगारेष्टि, मित्रविंदा, गायत्रीका लक्ष जप इनके करनेसे दुष्टप्रतिग्रहोंकी शुद्धि होती है और जो वृद्ध हारीतका वचन हैकि राजाका प्रतिग्रह लेकर मासभर सदैव जलमें वसे छठे कालमें दूधको पीकर और ब्राह्मणोंकी कामनाको पूर्ण करे इसप्रकार निरंतर व्रत करके पूरा मास होने पर शुद्ध होता है यह वचन पूर्वोक्त विषयके अभ्यासमें समझना अथवा पतित आदिसे कुरुक्षेत्रके ग्रहण आदिमें काले मृगचर्मके प्रतिग्रह आदिमें समझना तैसेही प्रतिग्रह द्रव्यकी अल्पतासेभी अल्प प्रायश्चित्त होता है सोई हारीतने कहा है कि मणि, वस्त्र, गौ, आदिके प्रतिग्रहमें आठ सहस्र गायत्री जपे तैसेही षट्त्रिंशन्मतमें कहा है कि भिक्षा मात्रको लेकर पुण्यमंत्रको पढे सब प्रतिग्रहोंमें छठा अंश दान करदे यह संपूर्ण प्रायश्चित्तका समूह द्रव्य त्यागनेके अनंतर समझना क्योंकि मनुकी स्मृति है कि (अ० ११ श्लो० १९३) जो ब्राह्मण निंदित कर्मसे धनका संचय करते हैं वे उसके त्यागसे और जपतपसे शुद्ध होते हैं इस प्रकार अन्य स्मृतियोंके वचनोंकोभी द्रव्यका सार अल्पता और अधिकतासे सब विषयोंमें व्यवस्था समझनी इति उपपातकप्रायश्चित्त प्रकरणम् ॥

जाति और आश्रय आदिके दोषसे और निंदित अन्न आदिके शब्दसे योगीन्द्र (याज्ञवल्क्य) ने जो व्रतोंका समूह कहा है अब उसको विस्तारसे कहते हैं उसमें जातिसे दुष्ट पलाण्डु (सलजम) आदिका भक्षण जानकर एकवार करे तो इस वचनसे चान्द्रायण कहा है और जानकर अभ्यासमें तो इसे वचनसे सुरापान के समान प्रायश्चित्त कहा है और अज्ञानसे एकवार भक्षणमें सांतपन और अज्ञानसे अभ्यासमें

१ जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः । मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ।

२ पवित्रेष्ट्या विशुद्ध्यन्ति सर्वे घोराः प्रतिग्रहाः । ऐंदवेन मृगारेष्ट्या कदाचिन्मित्रविंदया । देव्या लक्षजपेनैव शुद्ध्यते दुष्प्रतिग्रहात् ।

३ राज्ञः प्रतिग्रहं कृत्वा मासमप्सु सदा वसेत् । षष्ठे काले पयोभक्षः पूर्णेमासे विशुद्ध्यति । तर्पयित्वा द्विजान्कामैः सततं नियतव्रतः ।

१ मणिवासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्र जपेत् ।

२ भिक्षामात्रं गृहीत्वा तु पुण्यं मन्त्रमुदीरयेत् । प्रतिग्रहेषु सर्वेषु षष्ठमंशं प्रकल्पयेत् ।

३ यद्गर्हितेनार्जयंति ब्राह्मणाः कर्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यंति जप्येन तपसैव च ।

४ पलाण्डु विड्वराहं च ।

५ निषिद्धभक्षणे जैह्मयं ।

यतिचान्द्रायण करे क्योंकि मनुका वचन है (अ० ५ श्लो० २०) कि अज्ञानसे इन छः का भक्षण करके सांतपन कृच्छ्र वा यति चांद्रायण करे और शेष निषिद्धोंके भक्षणमें एक दिन उपवास करे और जो बृहत् यमने कहा है कि खट्व (पक्षी वा कुसुंभ) बैंगन, कूंभी (तरबुज) काटनेसे पैदा हुये गोंद भूतृण शिग्रू खखंड कवक (राईके शाक) इनका भक्षण करके प्राजापत्य करे वह वचन जानकर अभ्यासके विषयमें समझना क्यों कि मत्स्योंको जानकर भक्षण करके भोजनके विना तीनदिन व्यतीत करे अर्थात् उपवास करे इस वचनसे योगीश्वरने ज्ञानसे एकवार भक्षणमें तीन दिन कहे हैं-यहां खट्व पदसे पक्षी वा कुसुंभ-कवक पदसे राई और खुखंड पदसे राईका भेद लेना वह गोबलीवर्द न्यायसे पृथक् लिखा है और शिग्रु पदसे सोहंजना लेना और जो यमने कहा है कि तंदुलीयक (चौराईका शाक) कुंभीक (तरबुज) व्रश्चन (काटना) से उत्पन्न (गोंद) नालिका (नरसल) नालिकेरी शाकका भेद श्लेष्मातकका फल (भोंकर) भूतृण शिग्रू खट्वपक्षी कवक इनका भक्षण करके प्राजापत्य व्रत करे वहभी जानकर अभ्यासके विषयमें है अज्ञानसे एकवार भक्षणमें तो शेष पापोंमें एकदिन उपवास करे यह मनु का कहा प्रायश्चित्त जानना और अज्ञानसेभी अभ्यास होजाय तो प्रायश्चित्तकीभी आवृत्ति कल्पना करनी और अत्यंत अभ्यासमें तो यह प्रचेताका कहा जानना कि संसर्गसे वा अज्ञानसे क्रियासे वा स्वभावसे दुष्ट जो अन्न है उसका भक्षण करके तप्तकृच्छ्र करे नीलके तो अज्ञानसे एकवार भक्षणमें चांद्रायण करे क्यों कि आपस्तंबे का वचन है कि यदि ब्राह्मण प्रमाद (अज्ञान) से कदाचित् नीलका भक्षण करे तो चांद्रायणसे शुद्धि होती है यह आपस्तंब मुनिने कहा है, जानकर अभ्यासमें तो आवृत्तिकी कल्पना करनी और जो षट्त्रिंशत्के मतमें कहा है कि शणका पुष्प शाल्मली (सेंभल) हाथसे मथी दधि वेदिसे बाहिर पुरोडाश इनको भक्षण करके एक रात्रिदिन भोजन न करे वहभी अज्ञानके विषयमें है और जो सुमंतु ने कहा है कि लहसुन पलांडु गाजर कवक-इनके भक्षणमें आठसहस्र गायत्रीको जपकर मस्तकपर जलको डारे वह नही चाहतेहुये को बलात्कारसे भक्षणके विषयमें है अथवा ऐसे रोगकी निवृत्तिके लिये भक्षणमें है जो इनकेही भक्षणसे निवृत्त होता हो इसीसे उससे आगे उसनेही कहा

१ अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्। यतिचांद्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः।

२ खट्वार्त्ताककुंभीकव्रश्चनप्रभवाणि च। भूतृणं शिग्रुकं चैव खुखंडं कवकानि च। एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद्द्विजः।

३ मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं क्षिपेत्।

४ तंदुलीयककुंभीकव्रश्चनप्रभवांस्तथा। नालिकां नालिकेरीं च श्लेष्मातकफलानि च। भूतृणं शिग्रुकं चैव खट्वाख्यं कवकं तथा। एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यं व्रतं चरेत्।

५ शेषेषूपवसेदहः।

१ संसर्गदुष्टं यच्चान्नं क्रियादुष्टमकामतः। भुक्त्वा स्वभावदुष्टं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्।

२ भक्षयेद्यदि नीलीं तु प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित्। चांद्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।

३ शणपुष्पं शाल्मलं च करनिर्मथितं दधि। बहिर्वेदि पुरोडाशं जग्ध्वा नाद्यादहर्निशम्।

४ लशुनपलाण्डुगृंजनकवकभक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्नि संपातान्नयेत्।

५ एतान्येव व्याधितस्य भिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानि भवंति यानि चैवं प्रकाराणि तेष्वपि न दोषः

है कि यही पदार्थ रोगीको वैद्यकी क्रियामें निषिद्ध नहीं हैं औरभी जो ऐसे हैं उनके भक्षणमेंभी दोष नहीं है–अब जातिसे दुष्ट संधिनी आदिके दूधका जो भक्षण उसका प्रायश्चित्त कहते हैं–तहां अकामसे एकवार संधिनीका दूध पीया होय तो यह मनुका कहा समझना कि-(अ० ५श्लो० ८–१०-) जिसको प्रसवसे दशदिन न व्यतीत हुएहों ऐसी गौका और उष्ट्र एकशफ (अश्वआदि) अवि (भेड) संधिनी–(जो ग्याभन दूध देती हो) जिसका बछडा नहो ऐसी गौ और सब वनके जीव इनका दूध और सब शुक्त विकारसे (खट्टेहों) इनको भोजनमें वर्जे दे और शुक्तोंमेंभी दधि और दधिसे पैदा हुए तक्र आदि पदार्थ ये भक्ष्य हैं उनसे अन्य सब अभक्ष्य पदार्थोंमें इस वचनसे मनुका कहा उपवासकर कामसे करनेसें तो यह योगीश्वरका कहा तीन रात्रका उपवास समझना जो कि पैठीनसिने यह कहा है कि अवि–खर–उष्ट्र–और स्त्री इनके दूधके पीनेमें तप्तकृच्छ्र और फिर उपनयन कर्म करावे–और अनिर्दशाह (ब्यावनेके पीछे दश दिनके बीतने विना) गौ और भैंसके दूध पीनेमें छः रात्रि भोजन न करे समस्त दोस्तनवालीयोंके दूध पीनेमेंभी–अजाको छोडकर–यही प्रायश्चित्त समझना–और जो शंखने यह यावकव्रत कहा है कि जितने क्षीर अभक्ष्य हैं उनके विकारोंके भक्षणमें बुद्धिमान् मनुष्य सावधानी और प्रयत्नसे सात रात्रतक व्रत करे–ये दोनोंभी वचन जानकर अभ्यासके विषयमें है–और जो शंखने कहा है कि संधिनी और अपवित्रोंके भक्षणमें पक्षव्रत करे–वह अभ्याके विषयमें है क्योंकि सकृत्पीनेमें विष्णुने यह उपवास कहा है कि गौ बकरी भैंस इनको छोडकर समस्त दूधोंको एकवार पीकर उपवास करे और दश दिनके भीतर और संधिनी–यमसू (जिसके दो बच्चे हुये हो) स्यंदिनी (रजस्वला) बछडासे हीन इनका दूधभी अभक्ष्य है और उसके पीनेवाले अपवित्र होते हैं–तैसे ही वर्णोंके आश्रसेभी निषेध है कि सदाचारमें स्थित जो क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कपिलाका दूध पीवे तो उससे अधिक कोई पापी नहीं है–इत्यादि पदार्थोंमें जहां प्रति पदोक्त प्रायश्चित्त (नाम लेकर) न दीखे शेषोंमें एक दिन उपवास करै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना–उसके अनंतर स्वभावसे दुष्ट मांस आदिके भक्षणमें प्रायश्चित्त कहा है उनके जानकर एकवार भक्षणमें तो शेषोंमें एक दिन उपवास करे यह मनुका कहा साधारण प्रायश्चित्त जानना और जान कर तो चाष रक्तपाद (हंस) सौन (कसाईके घरका) वल्लूर मत्स्य इनको भक्षण करके तीन दिन उपवास करे यह

---

१ अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा । आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः । आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां महिषीं विना । स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ।

२ शेषेषूपवसेदहः ।

३ अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरप्राशने तप्तकृच्छ्रः पुनरुपनयनं च अनिर्दशाहगोमहिषीक्षीरप्राशने षड्रात्रमभोजनम् सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरपानेऽप्यजावर्ज्यमेतदेव ।

---

१ क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रव्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः ।

२ संधिन्यमेध्यभक्षयोर्भुक्त्वा पक्षव्रतं चरेत् ।

३ गोजामहिषीवर्ज्यं सर्वाणि पयांसि प्राश्योपवसेत् अनिर्दशाह तान्यपि संधिनीयमसूस्यंदिनीविवत्साक्षीरं चामेध्यभुजश्च ।

४ क्षत्रियश्चापि वृत्तस्थो वैश्यः शूद्रोथ वा पुनः । यः पिबेत्कापिलाक्षीरं न ततोन्योस्त्यपुण्यकृत् ।

योगीश्वरका कहा प्रायश्चित्त जानना-जानकर अभ्यासमें तो अभक्ष्य मांसको खाकर सातरात्र जौंको पीवै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना (अ० ११ श्लो० १५६) यहभी विष्ठाके भक्षक सूकर आदिक मांससे भिन्नमें समझना क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० १५६)ने जातिके भेदसे यह प्रायश्चित्त कहा है कि कच्चे मांसके भक्षक, विष्ठाके-सूकर, कुक्कुट, नर, काक, खर, इनके भक्षणमें तप्तकृच्छ्रसे शुद्धि होती है और इनके मूत्र और विष्ठाके भक्षणमेंभी यही प्रायश्चित्त है-क्योंकि बृहद्यमकी यह स्मृति है कि वराह अश्व आदि एकशफ काक कुक्कुट और संपूर्ण कच्चे मांसके भक्षक और जो शास्त्रमें अभक्ष्य कहे हैं इनके मांस मूत्र विष्ठाको और गौ कुत्ता गीदड वानर इनके मांसको खाकर तप्तकृच्छ्र, करै अथवा बारह दिन उपवास करके कुश्मांडी ऋचाओं से घीका होम करै-उसमेंभी यह व्यवस्था है कि जानकर भक्षणमें तप्तकृच्छ्र, और अभ्याससे कूश्मांड सहित पराक करै-तैसेही प्रचेतानेभी कहा है कि कुत्ता शृगाल काक कुक्कुट पार्षत वानर चीता चाक क्रव्याद् (कच्चे मांसके भक्षक) खर ऊंट गज वाजी विड्वाह (विष्ठाका भक्षक) गौ मनुष्य इनके मांस भक्षणमें तप्तकृच्छ्र करै-और इनके मूत्र-और विष्ठाके भक्षणमें अतिकृच्छ्र करै यहभी जानकर करनेमें समझना और जो उशनाको वचन है कि नर कुत्ता गौ अश्व और पंचनख इनके मांसको खाकर महासांतपन करै वह अज्ञानसे करनेमें समझना और जो अंगिराका वचन है कि बलाका भास गीध मूसा खर वानर सूकर इनके मलमूत्रको देखकर और स्पर्श करके आचमनसे शुद्ध होता है और इच्छासे मल मूत्रको भक्षण करके सांतपन और जानकर भक्षण करे तो तीनों द्विजातीय प्राजापत्य कृच्छ्र करै वह वचन भक्षितके वमन करने पर समझना और सांतपन शब्दसे महासांतपन लेना क्योंकि अज्ञानमें प्राजापत्य कहा है और जो अंगिराका वचन है कि नर काक खर अश्व गज इनके मांस मल और मूत्रको खाकर द्विज चांद्रायण करै और जो बृहद्यमने कहा है कि शुष्क मांसके भक्षणमें ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करै ये दोनों वचन जानकर अभ्यासके विषयमें हैं और जो शंखने कहा है कि जिनके दोनों तरफ दांत हैं और जिनके एक शफ है इनको और ऊंट और गौके मांसको खाकर

१ चाषांश्च रक्तपादांश्च सौनं वल्लूरमेव च। मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्॥

२ जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं तु सप्तरात्रं यवान्पिबेत्॥

३ क्रव्यादिविड्वराहोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे। नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्॥

४ वराहैकशफानां तु काककुक्कुटयोस्तथा। क्रव्यादानां च सर्वेषामभक्ष्या ये च कीर्त्तिताः। मांसमूत्रपुरीषाणि प्राश्य गोमांसमेव च। श्वगोमायुकपीनां च तप्तकृच्छ्रं विधीयते। उपोष्य वा द्वादशाहं कूष्मांडैर्जुहुयाद्घृतम्॥

५ श्वशृगालकाककुक्कुटपार्षतवानरचित्रकचाषक्रव्यादखरोष्ट्रगजवाजिविड्वराहगोमानुषमांसभक्षणे तप्तकृच्छ्रमादिशेत् एतेषां मूत्रपुरीषभक्षणेत्यतिकृच्छ्रं॥

१ नरमांसं श्वमांसं वा गोमांसं चाश्वमेव वा। भुक्त्वा पंचनखानां च महासांतपनं चरेत्॥

२ बलाकामासगृध्राखुखरवानरसूकरान्। दृष्ट्वा चैषामभेध्यानि स्पृष्ट्वाचम्य विशुद्ध्यति। इच्छयैषाममेध्यानि भक्षयित्वा द्विजातयः। कुर्युः सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया॥

३ नरकाकखराश्वानां जग्ध्वा मांसं गजस्य च। एषां मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चांद्रायणं चरेत्॥

४ शुष्कमांसाशने विप्रो व्रतं चांद्रायणं चरेत्॥

५ भुक्त्वा चोभयतोदंतांस्तथा चैकशफानपि। औष्ट्रं गव्यं तथा जग्ध्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत्॥

छः मासतक व्रत करै वह जानकर अत्यंत अभ्यासके विषयमें समझना और जो स्मृत्यंतरमें कहा है कि मनुष्योंका मांस विड्वराह खर गौ अश्व हाथी ऊंठ और सब पंचनख क्रव्याद् ग्रामका कुक्कुट इनको भक्षण करके संवत्सरव्रत करै वह अत्यंत और निरंतर अभ्यासके विषयमें समझना इस प्रकरणमें मूत्र और पुरीष (मल) का ग्रहण वसा शुक्र मज्जा इनकाभी उपलक्षण है कर्णके मल आदि छः के भक्षणमें तो आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी केश आदिके भक्षणमें तो षट्त्रिंशन्मतमें विशेष कहा है कि अजा भेड महिष मृग इनके कच्चे मांसके और केश नख रुधिर इनके जानकर भक्षणमें त्रिरात्र और अज्ञानसे भक्षणमें उपवास होता है और जो प्रचेताने कहा है कि नख केश मिट्टी इनके भक्षणमें अहोरात्र भोजनके अभावसे शुद्धि होती है वहभी अज्ञानसे एक वार भक्षणके विषयमें समझना और जो स्मृत्यंतरका वचन है कि केश कीट नख मत्स्यका कांटा इनको भक्षण करै तो सोनेसे तपाये घीको पीकर उसी क्षणमें शुद्ध होता है वहभी मुखमात्रके प्रवेशमें समझना और जब पात्रमें परसा हुआ अन्न केश आदिसे दूषित होजाय तो प्रचेताका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि भोजनके समयमें अन्न, मक्षिकाकेशोंसे दूषित होजाय तो जलका स्पर्श करके उस अन्नमें भस्मका स्पर्श करै यह श्लोक प्रसंगसे लिखा है अत्यंत सूक्ष्म कृमि कीट अस्थि इनके भक्षणमें तो हारीतने विशेष कहा है कि कृमि कीट पिपीलिका (चेंटी) जलौका (मजौंक) पतंग (पक्षी) इनके अस्थियोंके भक्षणमें गोमूत्र और गोमयको भक्षण करके त्रिरात्रमें शुद्ध होता है इस प्रकार पशुपक्षी जलचरोंके मांस भक्षणके प्रायश्चित्त संक्षेपसे दिखाये ग्रंथ गौरवके भयसे व्यक्ति २ के प्रति नहीं लिखते अब अशुद्धसे स्पर्श किये पदार्थ भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं उसमें पहिले उच्छिष्ट जो अभक्ष उसके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं उसमें मनुका वचन है (अ. ११ श्लो. १५५) कि बिडाल, काक, मूसा, कुत्ता, नकुल, इनके उच्छिष्टको और केश कीटसे युक्त अन्नको भक्षण करके ब्राह्मी और सुवर्चलाको एकरात्र पीवै यहभी जानकर भक्षणमें समझना और जो विष्णुने कहा है कि पक्षी श्वापद इनके भक्षित बहुतसे रस और अन्न जो संस्कार रहितभी है उनके भोजनमें कृच्छ्रपाद करै वह जानकर करनेमें समझना और अन्न आदिका संस्कार (देव द्रोण्यां०) इस वचनसे देवद्रव्य शुद्धि प्रकारणमें कहाहुआ जानना और जो शातातपने कहा है कि श्वा, काक आदिके चाटे और शूद्रके उ–

१ जग्ध्वा मांसं नराणां च विड्वराहं खरं तथा। गजाश्वकुंजरोष्ट्राणां सर्वं पांचनखं तथा । क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ।

२ अजाविमाहिषमृगाणां आममांसभक्षणे केशनखरुधिरप्राशने बुद्धिपूर्वं त्रिरात्रमज्ञानादुपवासः ।

३ नखकेशमृल्लोष्टभक्षणेऽहोरात्रमभोजनाच्छुद्धिः ।

४ केशकीटनखं प्राश्य मत्स्यकंटकमेव च । हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ।

१ अन्ने भोजनकाले तु मक्षिकाकेशदूषिते । अन्तरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ।

२ कृमिकीटपिपीलिकाजलौकापतंगास्थिप्राशने गोमूत्रगोमयाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ।

३ बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च । केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ।

४ पक्षिश्वापदजग्धस्य रसस्यान्नस्य भूयसः । संस्काररहितस्यापि भोजने कृच्छ्रपादकम् ।

५ श्वकाकाद्यवलीढशूद्रोच्छिष्टभोजने स्वतिकृच्छ्रम् ।

च्छिष्ट भोजनमें अतिकृच्छ्र करे वह अज्ञानसे अभ्यासके विषयमें समझना और जो शंखने यावक व्रत कहा है कि कुत्तेके उच्छिष्टको खाकर एक मासतक और काकके उच्छिष्ट गौके सूंघे अन्नको खाकर एक पक्षतक व्रत करे वह जानकर अभ्यासके विषयमें है ब्राह्मण आदिके उच्छिष्ट भोजनमें तो बृहद्विष्णुने कहा है कि ब्राह्मण शूद्रके उच्छिष्ट भक्षणमें सात रात्र पंचगव्य पीवै वैश्यके उच्छिष्टमें पंचरात्र क्षत्रियके उच्छिष्टमें त्रिरात्र और ब्राह्मणके उच्छिष्टमें त्रिरात्र पंचगव्य पीवै वहभी ज्ञानसे भक्षणमें समझना और जो यमको वचन है कि ब्राह्मणके संग भोजन करके प्राजापत्यसे क्षत्रियके संग अन्नको भोजन करके तप्तकृच्छ्रसे और वैश्यके संग भोजन करके अतिकृच्छ्रसे शुद्ध होता है और शूद्रके संग अन्नको खाकर चांद्रायण करै वह जानकर अभ्यासके विषयमें है और जो शंखको वचन है कि ब्राह्मणके उच्छिष्ट भोजनमें महाव्याहृतियोंसे जलोंका अभिमंत्रण (पढना) करके पीवै क्षत्रियके उच्छिष्ट भक्षण में ब्राह्मीके रससे पकाये दूधको तीन दिन पीवै वैश्यके उच्छिष्ट भक्षणमें तीनरात्र उपवास करके ब्राह्मी और सुवर्चलाको पीवै और शूद्रके उच्छिष्ट भक्षणमें छः रात्रतक भोजन न करै वह अज्ञानसे करनेमें है और अज्ञानसे अभ्यास होजाय तो दूने आदि प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी यहभी पिता आदिसे भिन्नमें समझना क्योंकि आपस्तंबकी स्मृति है कि पिताका और ज्येष्ठ भ्राताका उच्छिष्ट भोजन करने योग्य है और जो बृहद्यमकी का वचन है कि माता भगिनी भार्या और अन्यस्त्री इनके संग भोजन न करे यदि करे तो चांद्रायण करे वह वचन संगभोजन के विषयमें है उच्छिष्ट मात्रके भोजनमें तो यह आपस्तंबका कहा जानना कि शूद्र और स्त्रियोंके उच्छिष्ट भोजनमें सात रात्र तक भोजन न करे और जो अंगिराका वचन है कि ब्राह्मणीके संग वा ब्राह्मणीके उच्छिष्टको जो कदाचित् भक्षण करे तो उसमें संपूर्ण पंडित जन दोषको नहीं मानते वह विवाह वा आपत्तिके विषयमें है और अंत्यजोंके उच्छिष्ट भोजनमें तो यह आपस्तंबको कहा जानना कि अंत्योंके भोजनसे शेष अन्नको खाकर द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य क्रमसे चांद्रायण कृच्छ्र अर्द्ध कृच्छ्र करें अंत्यावसायियोंके उच्छिष्ट भक्षणमें तो यह अंगिराका कहा महा

---

१ शुनामुच्छिष्टकं भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत् । काकोच्छिष्टं गवाघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ।

२ ब्राह्मणः शूद्रोच्छिष्टाशने सप्तरात्रं पंचगव्यं पिबेद्वैश्योच्छिष्टाशने पंचरात्रं राजन्योच्छिष्टाशने त्रिरात्रं ब्राह्मणोच्छिष्टाशने त्वेकाहम् ।

३ भुक्त्वा सह ब्राह्मणेन प्राजापत्येन शुद्ध्यति भूभुजा सह भुक्त्वान्नं तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति । वैश्येन सहभुक्त्वान्नमतिकृच्छ्रेण शुद्ध्यति । शूद्रेण सह भुक्त्वान्नं चान्द्रायणमथाचरेत् ।

४ ब्राह्मणोच्छिष्टाशने महाव्याहृतिभिरभिमन्त्र्यापः पिबेत्क्षत्रियोच्छिष्टाशने ब्राह्मीरसविपक्वेन त्र्यहं क्षीरेण वर्तयेत्—वैश्योच्छिष्टाशने त्रिरात्रोपोषितो ब्राह्मीं सुवर्चलां पिबेत् शूद्रोच्छिष्टभोजने षड्रात्रमभोजनम् ।

१ पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यम् ।

२ माता वा भगिनी वापि भार्या वान्याश्च योषितः । न ताभिः सह भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।

३ शूद्रोच्छिष्टभोजने सप्तरात्रमभोजनं स्त्रीणां च ।

४ ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन । तत्र दोषं न पश्यन्ति सर्व एव मनीषिणः ।

५ अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः । चांद्रं कृच्छ्रं तदर्धं च ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ।

६ चाण्डालपतितादीनामुच्छिष्टान्नस्य भक्षणे । चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् । षड्रात्रं च त्रिरात्रं च वर्णयोरनुपूर्वशः ।

सांतपन जानना कि चांडाल पतित आदिके उच्छिष्ट अन्नके भक्षणमें ब्राह्मण चांद्रायण-क्षत्री सांतपन-वैश्य छः रात्र व्रत और शूद्र त्रिरात्र व्रत करै-आपत्कालमें तो यह पराशरको कहा जानना कि यदि विपत्तिमें ब्राह्मण शूद्रके घर भोजन करै तो मनके पश्चातापसे शुद्ध होता है और सौ १०० द्रुपदा मंत्रको जपै-और जो बृहत् शातातपने कहा है कि पीत जलका शेष जो पात्रमें मुखसे गिराहो उसको भोजनके अयोग्य जाने और उसको खाकर चांद्रायण करै-वह वचन अभ्यासके विषयमें है क्योंकि निमित्त (दोष) अत्यंत लघु है; और जो यहै वचन है-कि पीनेसे शेषपानीको ब्राह्मण कदाचित् पीकर वा वामहस्तसे पीनेसे त्रिरात्र व्रत करै-यहभी ज्ञानसे पीनेके विषयमें समझना-अज्ञानसे तो आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी-दीपकके उच्छिष्टमें तो षट्त्रिंशत् मतमें कहा जाननौ कि दीपकका उच्छिष्ट तैल और रात्रिमें रथ्या (गली) का लाया पदार्थ-और अभ्यंग (उवटना) का शेष इनको भक्षण करके नक्तव्रतसे शुद्ध होता है-अब अशुद्ध द्रव्यसे स्पर्श कियेके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं-उसमें संवर्त्तको यह वचन है कि केशकीटसे युक्त-और नील और लाखसे संयुक्त-और स्नायु अस्थि चर्मसे स्पृष्ट (छूआ) इनका भोजन करके एक दिनका उपवास करै सोई शातातपने कहा है कि केश कीटसे युक्त और रुधिर मांस आदि स्पर्शके अयोग्योंसे स्पर्श किया-और भ्रूणहत्यारेका देखा-पक्षीका चाटा कुत्ता सूकर गौ इनका सूंघा-शुक्त (खट्टा) पर्युषित (बासी) वृथापकाया-देवताका अन्न-हविः (साकल्य) इनके भोजनमें उपवास और पंचगव्यका भक्षण करै-ये दोनों वचन अज्ञानके विषयमें है-जानकर तो यह विष्णुका कहा समझना कि मिट्टीमिलाजल-कुसुम (फूल) फल कंद ईख मूली विष्ठा मूत्रसे दूषित इन सबका भक्षण करके कृच्छ्र पाद करै और इनके संसर्गमें अर्धकृच्छ्र और कृच्छ्रसे शुद्धि होती है-यहां यह व्यवस्था है कि अल्प संसर्गमें पादकृच्छ्र और महासंसर्गमें अर्द्ध कृच्छ्र करै और जो व्यासने कहा है कि संसर्ग और क्रियासे दुष्ट और स्वभावसे जो दुष्ट हैं उनको जानकर भक्षण करके तप्तकृच्छ्र करै यहभी वहां जानना जहां पृथक् अपवित्र रस प्रतीत होता हो, रजस्वला आदिके स्पर्शमें तो शंखका कहा जानना कि अपवित्र पतित-चांडाल-पुल्कस-रजस्वला-अवधूत-कुणि-कुष्ठी-कुनखी इनके स्पर्श कियेको

१ आपत्कालेतु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि। मनस्तापेन शुद्ध्येत्तु द्रुपदानां शतं जपेत्।

२ पीतशेषं तु यत्किंचिद्भाजने मुखनिःसृतं। अभोज्यं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्।

३ पीतोच्छिष्टं तु पानीयं पीत्वा तु ब्राह्मणः क्वचित्। त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्वामहस्तेन वा पुनः

४ दीपोच्छिष्टं तु यत्तैलं रात्रौ रथ्याहृतं तु यत्। अभ्यंगाच्चैव यच्छिष्टं भुक्त्वा नक्तेन शुद्ध्यति।

५ केशकीटावपन्नं तु नीलीलाक्षोपघातितम्। स्नाय्वस्थिचर्मसंस्पृष्टं भुक्त्वा तूपवसेदहः।

१ केशकीटावपन्नं च रुधिरमांसास्पृश्यसंस्पृष्टभ्रूणघ्नावेक्षितपतत्र्यवलीढश्वसूकरगवाघ्रातशुक्तपर्युषितवृथापक्वदेवान्नहविषां भोजने उपवासः पंचगव्याशनं च।

२ मृद्वारिकुसुमादींश्च फलकंदेक्षुमूलकान्। विण्मूत्रदूषितान्प्राश्य कृच्छ्रपादं समाचरेत्। संस्पृष्टेऽर्द्धमेव स्यात् कृच्छ्रः स्याच्छुचिशोधनम्।

३ संसर्गदुष्टं यच्चान्नं क्रियादुष्टं च कामतः। भुक्त्वा स्वभावदुष्टं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्।

४ अभोज्यपतितचाण्डालपुल्कसरजस्वलावधूतकुणिकुष्ठिकुनखिसंस्पृष्टानि भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेत्।

खाकर कृच्छ्र करै–जिसके हाथ नहीं उसे कुणि कहते हैं–यह जानकर भक्षणमें जानना–अज्ञानसे करनेमें आधा समझना–और स्पर्शके अयोग्योंसे और अशौची–केश कीट इनसे दूषितको खाकर कुशा, गूलर, बेल पनस, कमल, शंखपुष्पी, सुवर्चला, इनके काथको पीकर शुद्ध होता है–यह जो विष्णुने कहा है वह अशक्तके विषयमें है अथवा रजक आदिके स्पर्श कियेके विषयमें है–शूद्रआदिके स्पर्श कियेमें तो हारीतका कहा जानना कि शूद्रका उपहत (स्पृष्ट) भोजनके अयोग्य है और शुद्ध पदार्थके कीटोंसे जो युक्तहै वहभी भोज्यहै–और ब्राह्मणोंके भोजन करते हुये जहां शूद्र स्पर्श करले वा अयोग्य होनेसे भोजन करते हुये ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें उठकर उच्छिष्ट परस दे वा आचमन करले वा जहां निंदा करके ब्राह्मणोंको अन्न दें वहां भोजन करनेमें अहोरात्रका प्रायश्चित्तहै–उच्छिष्ट पंक्तिमें भोजनकाभी यही प्रायश्चित्त है क्योंकि ऋतुकी स्मृति है कि जो द्विज कदाचित् उच्छिष्ट पंक्तिमें भोजन करै वह अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यसे शुद्ध होताहै–और वाम हाथसे दिये भोजनके विषै तो षट्त्रिंशतके •मतका कहा हुआ जानना–कि जो खडा होकर वा फूटे पात्रमें भोजन करै तो सान्तपन करै यह वैवस्वतने कहाहै–तिसी प्रकार इसमें पाराशरनेभी कहाहै कि भोजनके लिये एक पंक्तिमें बैठे हुए ब्राह्मणोंके मध्यमें यदि एकभी ब्राह्मण भोजनके पात्रको त्याग दे तो ब्राह्मण शेष अन्नको न खांय–यदि उस पंक्तिमें जो कोई उस उच्छिष्ट भोजनको खाले वह प्रायश्चित्त और कृच्छ्र सान्तपन व्रतको करै–शव आदिसे छूए हुए कूप आदिके जलके पीनेमें तो विष्णुने यह कहा है कि जिस कूपमें पडकर पांचनख वाला (वानर आदि) जन्तु मर गयाहो–वा अत्यन्त स्पर्श जिसके साथ हुआहो ऐसे कूपके जलको पीकर ब्राह्मण तीन दिन–क्षत्रिय दो दिन–वैश्य एक दिन–और शूद्र एकरात्र उपवास करै–ये सब उपवासके अन्तमें पंचगव्यको पीवें–" अत्यंतोपहताद्वा " इस पदसे यह समझना कि मूत्र पुरीष आदिसे स्पर्श हो गया हो और जब शव (मुर्दा) उच्छून (गलना) होकर उस कूपमें भिन्न हो जाय तो हारीतने विशेष कहा है कि शवके गलने और भेदन हुये कूप आदिके जलको यदि पीवे तो शुद्धिकेलिये चांद्रायण वा तप्तकृच्छ्र करै, और जो कोई ब्राह्मण प्रमादसे उसमें स्नान करै तो जप और त्रिकाल स्नान करता

१ भुक्त्वाऽस्पृश्यैस्तथाशौचिकेशकीटैश्च दूषितं । कुशोदुम्बरबिल्वाद्यैः पनसाम्बुजपत्रकैः । शंखपुष्पीसुवर्चादिक्वाथं पीत्वा विशुद्ध्यति ।

२ शूद्रेणोपहतं भोज्यं कीटैर्वा मेध्यसेविभिः । भुञ्जानेषु तु वा यत्र शूद्र उपस्पृशेत् । अनर्हत्वात्स पङ्क्तौ तु भुञ्जानेषु वा यत्रोत्थायोच्छिष्टं प्रयच्छेदाचामेद्वा कुत्सित्वा वा यत्रान्नं दद्युस्तत्र प्रायश्चित्तमहोरात्रं ।

३ यस्तु भुंक्ते द्विजः कश्चिदुच्छिष्टायां कदाचन । अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।

४ समुत्थितस्तु यो भुंक्ते यो भुंक्ते भुक्तभाजने । एवं वैवस्वतः प्राह भुक्त्वा सान्तपनं चरेत् ।

१ एकपङ्क्त्युपविष्टाना विप्राणां सह भोजने । यद्येको पि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् । मोहाद्भुञ्जीत यस्तत्र पंक्त्यामुच्छिष्टभोजने । प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।

२ मृतपञ्चनखात्कूपादत्यन्तोपहताद्वोदकं पीत्वा ब्राह्मणस्त्र्यहमुपवसेत् द्व्यहं राजन्य एकाहं वैश्यः शूद्रो नक्तं सर्वे चान्ते पंचगव्यं पिबेयुः ।

३ क्लिन्ने भिन्ने शवे तोयं तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् शुद्ध्यै चांद्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा । यदि कश्चित्ततः स्नायात्प्रमादेन द्विजोत्तमः । जपंस्त्रिषवणस्नायी अहोरात्रेण शुद्ध्यति ।

हुआ शुद्ध होता है यह चांद्रायण जानकर उस कूपके जल पीनेमें हैं जो मनुष्यशवसे उपहत हो और अज्ञानसे तो छः रात्र समझना क्योंकि देवल कि यह स्मृति है कि यदि कूपमें स्थित शव छिन्न (गलजाय) भिन्न (फूटना) हो जाय तो त्रिरात्रतक दूध पीवे और मनुष्यशव होय तो दूना कहा है और चांडाल आदिके कूपके जलको पीवे तो आपस्तंबका कहा जानना कि चांडालके कूप वा पात्रके जलको जो मनुष्य प्रमादसे पीता है तो वहां वर्ण २ का प्रायश्चित्त कैसे बतावें ब्राह्मण सांतपन करे क्षत्री प्राजापत्य वैश्य आधा प्राजापत्य और शूद्र चौथाई प्राजापत्य करे यह जानकर पीनेमें है अज्ञानसे तो यह देवलका कहा जानना कि चांडालकूप और पात्रके जलको जो पीवे वह तीन दिनमें और शूद्र एक दिनमें शुद्ध होता है और चांडाल आदिके संबंधवाले अल्प जलाशयोंमेंभी कूपके समान शुद्धि है क्योंकि यह विष्णुकी स्मृति है अल्प २ जलके स्थान और स्थावर जो पृथिवी पर हैं उनकी शुद्धि कूपके समान है और जो महान् (बडे) हैं उनमें दूषण नहीं है और पुष्करिणी (बावडी) आदिमें यह आपस्तंबका कहा जानना कि पुष्करिणी वा कुंडमें म्लेच्छ आदिके जलको पीकर जानुतक जो गहरा हो वह शुद्ध जानना और उससे जो न्यून होय तो अशुद्ध होता है उस जलको जो ब्राह्मण ज्ञानसे वा अज्ञानसे पीवे तो, अज्ञानसे पीनेमें नक्त भोजन और जानकर पीनेमें अहो रात्र करे रजक आदिके पात्रके जल पीनेमें तो यह पराशरको कहा जानना कि जो अंत्यजोंके पात्रके जल, दधि, दूध, को ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र प्रमादसे पीवे तो द्विजातियोंकी ब्रह्मकूर्च उपवाससे, और शूद्रकी उपवास वा यथाशक्ति दान करनेसे, शुद्धि होती है और जानकर पीनेमें तो दूना प्रायश्चित्त होता है और अंत्यजोंके खुदवाये जो कूप तलाव बावडी हैं उनमें स्नान और जलपान करके प्राजापत्यसे शुद्धि होती है यह आपस्तंबको वचन अभ्यासके विषयमें समझना और जो यह आपस्तम्बने चांडालके कूप आदिके जलपानमें पंचगव्य पीना कहा है वह अशक्तके विषयमें समझना कि प्याऊ वनका घट सौरद्रोणि (छोटीतलैय्या) और कोशसे निकसा जल श्वपाक और चांडालके होंय तो जल पीकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है प्याऊ पर जाकर जो जलके विना (धूल आदिसे) शरीरको सींचता है वह एक दिन उपवास करके सचैल•

१ छिन्नभिन्नं शवं चैव कूपस्थं यदि जायते । पयः पिबेत्त्रिरात्रेण मानुषे द्विगुणं स्मृतम् ।

२ चांडालकूपभांडस्थं नरः कामाज्जलं पिबेत् । प्रायश्चित्तं कथं तत्र वर्णेवर्णे विनिर्दिशेत् । चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं च भूमिपः । तदर्धं तु चरेद्वैश्यः शूद्रे पादं विनिर्दिशेत् ।

३ चांडालकूपभांडस्थमज्ञानादुदकं पिबेत् । स तु त्र्यहेण शुद्ध्येत शूद्रस्त्वेकेन शुद्ध्यति ।

४ जलाशयेष्वथाल्पेषु स्थावरेषु महीतले । कूपवत्कथिता शुद्धिर्महत्सु तु न दूषणम् ।

५ म्लेच्छादीनां जलं पीत्वा पुष्करिण्यां ह्रदेपि वा । जानुदघ्नं शुचि ज्ञेयमधस्तादशुचि स्मृतम् । तत्तोयं यः पिबेद्विप्रः कामतोऽकामतोऽपि वा । अकामान्नक्तभोजी स्यादहोरात्रं तु कामतः ।

१ भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः । ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः । शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ।

२ अंत्यजैः खानिताः कूपास्तडागा वाप्य एव च । एषु स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।

३ प्रपास्वरण्यघटके च सौरद्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च । श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्ध्येत् । प्रपागतो विना तोयं शरीरं यो निषिंचति । एकाहक्षपणं कृत्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ सुराघटप्रपातोये पीत्वा भाण्डे जलं तथा । अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्यं जलं पिबेत् ।

स्नान करै सुराका घट और प्याऊ नवका इनके जलको पीकर अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यसे शुद्धि होती है, अब भावदुष्टका जो भक्षण उसका प्रायश्चित्त कहते हैं वर्णका आकार विसदृश (भिन्न रूप) होकर जो शरीरके मल आदिकी वासनाको पूरी करै वा शत्रुके दिये विषकी शंकाको करै वह भावदुष्ट कहाता है उसके भक्षणमें पाराशरने यह कहा है कि वाग्दुष्ट भावदुष्ट और भावसे दुष्ट पात्रके अन्नको ब्राह्मण खाकर त्रिरात्रमें शुद्ध होता है यह वचन जानकर भक्षणमें समझना और जो गौतमने पंचनखोंसे भिन्न भाव दुष्टके भक्षणमें वमन और घृतका भक्षण कहा है वहभी अज्ञानके विषयमें समझना शंकामें तो वासिष्ठका कहा प्रायश्चित्त यह जानना कि अभोज्य और अभक्ष्यकी शंका पैदा हो जाय तो भोजन शुद्धिको, कहते हुए मुझसे सुनो जिसमें खारा लवण न हो ऐसी सूखी सुवर्चला(ब्राह्मी) व शंखपुष्पीको ब्राह्मण तीन दिन पीवै अथवा ढाक बेलके पत्ते कुशा पद्म गूलर इनका क्वाथ करके जल पीवै तो त्रिरात्रमें शुद्ध होता है मनुनेभी अभोज्यके भोजनकी शंकामें कहा है (अ. ५ श्लो. २१) कि ब्राह्मण अज्ञानसे और विशेष कर जानकर भोजनकी शुद्धिके लिये वर्ष दिनमें एकही कृच्छ्रको करै अब कालसे दुष्टके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं पर्युषित अन्न और दश दिनके भीतर गौ आदिका दुग्ध कालदुष्ट कहाता है अज्ञानसे उसके भक्षणमें शेषोंमें एक दिनका उपवास करै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना-जानकर भक्षणमें तो यह शंखका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जिनमें घी आदि न हो ऐसे केवल शुक्त और पर्युषित (बासी) अन्न और ऋजीष (लोहपात्र)में पका हुआ अन्नको खाकर तीन रात्र व्रत करे दश दिनके भीतर गौके दुग्ध आदिके पीनेका प्रायश्चित्त पहिले दिखाय आये नवीन जलके पीनेमें तो पंचगव्य पीवै क्योंकि बृहद्याज्ञवल्क्यकी स्मृति है कि सींग अस्थि दांत शंख शुक्ति कपर्दिका (कौडी) इनके पात्रोंमें और नवीन जलको पीकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है जानकर पीवै तो उपवास करै क्योंकि स्मृत्यन्तरमें यह देखतेहैं कि वर्षाकालका नवीन जल शुद्ध है उसे तीन दिन न पीवै और वर्षासे भिन्न कालमें दश दिन न पीवै, पीवै तो अहोरात्र भोजन करै ग्रहण कालके भोजनमें तो चांद्रायण करै क्योंकि शातातपकी स्मृति है कि नवश्राद्ध ग्रामयाजकका अन्न ग्रहण स्त्रीयोंके प्रथम गर्भका भोजन इनको करके चांद्रायण करै और जो ग्रहणसे भिन्न निषि-

१ वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते। भुक्त्वान्नं ब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति।

२ प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनं च।

३ शंकास्थाने समुत्पन्ने अभोज्याभक्ष्यसंज्ञिते। आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु। अक्षारलवणां रूक्षां पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलां। त्रिरात्रं शंखपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह। पलाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्ममुदुम्बरम्। अपः पिबेत्क्वाथयित्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति

४ संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः। अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञानस्य तु विशेषतः।

१ शेषेषूपवसेदहः।

२ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत्। ऋजीषपक्वं भुक्त्वा तु त्रिरात्रं तु व्रती भवेत्।

३ शृंगास्थिदंतजैः पात्रैः शंखशुक्तिकपर्दकैः। पीत्वा नवोदकं चैव पंचगव्येन शुद्ध्यति।

४ काले नवोदकं शुद्धं न पिबेच्च त्र्यहं हि तत्। अकाले तु दशाहं स्यात्पीत्वा नाद्यादहर्निशम्।

५ नवश्राद्धं ग्रामयाजकान्नं ग्रहभोजनं। नारीणां प्रथमे गर्भे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्।

द्ध कालमें भोजन करे तो मार्कण्डेयने यह कहा है कि चंद्रमा और सूर्यका जिस दिन ग्रहण हो उसदिन ग्रहणसे पूर्व भोजन न करे और सूर्योदयसे पहिले तारागणोंके दीखते और सूर्यके अस्त होनेसे भोजन न करे और न उदयसे पूर्व भोजन करे चंद्रमाका ग्रहण प्रहरके अनंतर होय तो आवर्तन (मध्यान्ह) से पूर्व भोजन न करे प्रथम प्रहरमें ग्रहण होयतो प्रथम प्रहरसे पहिले भोजन न करे और अपराह्न मध्याह्न सायाह्न संगवमें भोजन न करे और संगवमें ग्रहण होय तो पहिले भोजन न करे जो मनुने कहा है कि संधिके समय अत्यंत प्रभात अत्यंत सायंकाल में भोजन न करे इत्यादि और जो वह बृहत् शतातपने कहा है कि धान दधि सक्तु इनको लक्ष्मीका अभिलाषी रात्रिमें वर्ज दे और न तील मिला भोजन न तिलोंसे स्नान बुद्धिमान् मनुष्य करे इत्यादि जो ऐसे हैं जिनका प्रायश्चित्त नही कहा उनमें योगीश्वरके कहे सौ प्राणायाम जानने कि सबपापोंके दूर करनेके और उपपातक और प्रायश्चित्त न कहा हो उस पापकी निवृत्तिके लिये सौ प्राणायाम करे और अज्ञानसे करनेमें तो मनुको कहा उपवास जानना कि शेष पापोंमें

१ चद्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव । ग्रहणं तु भवेत्तस्मिन्न पूर्वं भोजनक्रिया । नाचरेत् सग्रहे चैव तथैवास्तमुपागते । यावत् स्यान्नोदयस्तस्य नाश्नीयात्तावदेव तु । ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथमादधियामतः । भुंजीतावर्तनात्पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः । अपराह्णे न मध्याह्ने सायाह्ने नतु संगवे । भुंजीत संगवे चेत् स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया ।

२ नाश्नीयात्संधिवेलायां नातिप्रगे नातिसायं ।

३ धाना दधि च सक्तूंश्च श्रीकामो वर्जयेन्निशि । भोजनं तिलसंयुक्तं स्नानं चैव विचक्षणः ।

४ प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये । उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि ।

५ शेषेषूपवसेदहः ।

एक दिन उपवास करे अब गुणसे दुष्ट शुक्त आदिके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं उसमें मनु (अ. ११ श्लो. १५३) नें कहा है कि शुक्त और कषाय और अपवित्र वस्तु इनको पीकर इतने अप्रयत (असावधान) होता है इतने वह नीचे नही निकसता अज्ञानसे तो जो एकदिन उपवास मनुका कहा है वह जानना—जानकर करनेमें तो शंखका कहा जानना कि केवल शुक्त पर्युषित अन्न ऋचीषपक्क (लोहपक्क) इनको खाकर तीन रात्रव्रत करे यहभी आमलक आदि फलसे युक्त कांजी आदिसे भिन्नके विषयमें जानना क्यों कि यह स्मृति है कि जो कुंडी फलसहित घरमें रक्खी हो उसकी कांजी ग्रहण करनी अन्य पात्रकी कदाचित् ग्रहण न करनी और जिनका स्नेह निकास लिया हो उनमें तो यह गौतमको कहा प्रायश्चित्त जानना कि जिनमेंसे स्नेह निकास लिया हो ऐसे विलयन (घीका मल) पिण्याक (खल) मथित (मठा) इनको तब न भक्षण करे जब इनका सारांश निकल गया हो और पंचनखोंसे जो पूर्व कहे हैं उनके भक्षणमें वमन कर दे और घृतका भक्षण करे नही होमे हुये अन्नके भक्षणमें तो लिखितने कहा है

५ शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वामेध्यान्यपि द्विजः । तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ।

६ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत् । ऋचीषपक्वं भुक्त्वा च त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ।

७ कुंडिका सफला येषु गृहेषु स्थापिता भवेत् । तस्यास्तु कांजिकं ग्राह्यं नेतरस्याः कदाचन ।

८ उद्धृतस्नेहविलयनपिण्याकमथितप्रभृतीनि चात्तवीर्याणि नाश्नीयात्—प्राक्पंचनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनं च ।

९ यस्य चाग्नौ न क्रियते यस्य चाग्रं न दीयते । न तद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वा चोपवसेदहः । वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः । आहिताग्निर्द्विजो भुक्त्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ।

कि जिसमेंसे, होम न किया हो, वा दिया न हो वह अन्न द्विजातियोंके भोजनयोग्य नहीं यदि भोजन करै तो एकदिन उपवास करै कृसर संयाव पायस शष्कुली वृथा (देवताके निमित्त न होवे) जो येहैं उनको खाकर अग्निहोत्री द्विज प्राजापत्य करै और अग्निहोत्रीसे भिन्नको तो पूर्वोक्त मनुका कहा उपवास जानना और भिन्न (फूटे) पात्रमें भोजन करै तो संवर्तने[1] कहा है कि शूद्रोंके वा फूटे पात्रोंमें भोजन करके अहोरात्र उपवास और पंचगव्य पीनेसे शुद्धि होती है तैसेही अन्यस्मृतिमेंभी कहा है कि वड आख पीपल इनके और कुंभी (तरबूज) तेंदू कोविदार कदंब इनके पत्तोंमें भोजन करके चांद्रायण करै औ ढाक पद्म इनके पत्तोंमें खाकर गृहस्थी ऐंदव करै और वानप्रस्थ और संन्यासी चांद्रायणके फलको प्राप्त होते हैं अर्थात् उनको इन पत्तोंमें भोजनका निषेध न हीं है अब हाथसे दिये आदि क्रियादुष्ट अभोज्य अन्नके भक्षणमें प्रायश्चित्त कहते हैं उसमें पराशरका वचन है कि माक्षिक (सहत) फाणित (ईखके रसका विकार) शाक गोरस लवण घृत हाथसे दिये इनको खाकर एकरात्र भोजन न करै जानकर भक्षण करनेमें तो यह हारीतका कहा जानना कि हाथमे दिये भोजनमें ब्राह्मणसे भिन्नके समीपमें भोजनमें दुष्टोंकी पंक्ति और पंक्तिसे प्रथम भोजनमें और उबटना किये मलमूत्र करनेमें और मृतक सूतकमें, शूद्रान्नके भोजनमें और शूद्रोंके संग सोनेमें त्रिरात्र भोजन न करै और पर्यायका अन्न देनेमें तो यह वृद्धयाज्ञवल्क्यका कहा जानना कि ब्राह्मणके अन्नको शूद्र परसे और शूद्रके अन्नको ब्राह्मण परसे तो ये दोनों अन्न अभोज्य हैं इनको खाकर एक दिन उपवास करै शूद्रके हाथसे भोजनमें तो यह क्रतुका कहा जानना कि शूद्रके हाथसे जो भोजन करै वा कदाचित् पानी पीवै तो अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यसे शुद्ध होता है धमन (फूक मारना) से दुष्टमें तो यह उसनेही कहा है कि आसनपर आरूढ पाद (ऊकडू) होकर वा आधी धोतीको ओढकर वा मुखसे धमन करके जो भोजन करता है वह सांतपन कृच्छ्र करै पिता आदिके निमित्त दिये अन्न (श्राद्ध) के भोजनमें तो यह भारद्वाजका कहा जानना कि पार्वणश्राद्धमें भोजन करै तो छः प्राणायाम करै त्रिमास और वर्षी पर्यंतके भोजनमें उपवास करै वृद्धिश्राद्ध (नांदीमुख) में तीन प्रा-

---

१ शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने। अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति।

२ वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः। कोविदारकदम्बेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्। पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्त्वैन्दवं चरेत्। वानप्रस्थो यतिश्चैव लभते चान्द्रिकं फलम्।

३ माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं लवणं घृतम्। हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिनमेकमभोजनम्।

४ हस्तदत्तान्नभोजने ब्राह्मणान्तिकभोजने दुष्टपंक्तिभोजने [illegible] पंक्तावग्रभोजनेऽभ्यक्तमूत्रपुरीषकरणे सूतकमृतकान्नभोजने शूद्रैः सह शयने त्रिरात्रमभोजनम्।

१ ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत्। द्वयमेतदभोज्यं स्याद्भुक्त्वा तूपवसेदहः।

२ शूद्रहस्तेन यो भुंक्ते पानीयं वा पिबेत्क्वचित्। अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति।

३ आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावृतोऽपि वा। मुखेन धमितं भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्।

४ भुक्ते पैतृकश्राद्धे प्राणायामान् षडाचरेत्। [illegible] सर्वादिनः। प्राणायाम-त्रयं वृद्धश्राद्धेषु कीर्तितम्। [illegible] तथा। [illegible] त्रिरात्रं [illegible]। [illegible] भोजने। [illegible] द्विजाः। [illegible] भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।

णायाम और सपिंडीमें अहोरात्र उपवास करे और असरूप (भिन्न वर्णका वा विधिसे हीन) में नक्त और तैसेही व्रतकी पारणामें भोजन करे तो नक्तव्रत करे यही प्रायश्चित क्षत्रियकेमें दूना वैश्यकेमें तिगुना और साक्षात् शूद्रके भोजनमें चौगुना कहा है और अतिथिके द्वारपर टिकनेके समय जो द्विज जल पीते हैं वह जल रुधिर होता है उसको पीकर चांद्रायण करे और हारीतनेभी कहा है कि एकादशाह और अस्थिसंचयनमें अन्नको खाकर विधिसे स्नान और उपवास करके कूष्मांडीमंत्रसे घी की आहुति दे विष्णुनेभी कहा है कि नवश्राद्धमे प्राजापत्य आद्यमासिक श्राद्धमें पादोन प्राजापत्य और त्रिपक्षमें आधा प्राजापत्य करे द्विमासिक श्राद्धमें पंचगव्य पीवे यहभी आपत्तिके विषयमें है विना आपत्तिमें तो यह हारीतका कहा जानना कि नवश्राद्धमें चांद्रायण और मिश्रकमें प्राजापत्य और पुराणे श्राद्धोंमें एक दिन उपवास और प्राजापत्य करे यहां मिश्रक शब्दसे आद्यमासिक लेते हैं- द्वितीय मासिक आदिमें तो यह षट्त्रिंशन्मतमें कहा जानना कि नव श्राद्धमें प्राजापत्य-आद्यमासिकमें पादोन-त्रिपक्षकेमें उसका आधा-द्वैमासिकमें प्राजापत्यका पाद और छः मास और वार्षिकमें पादोनकृच्छ्र-और अन्यमासोंमें त्रिरात्र और नित्यके श्राद्धमें एक दिन उपवास करे-क्षत्रीआदिके श्राद्धमें विना आपत्ति भोजनमें तो यहांही विशेष कहा है कि नवश्राद्धमें चांद्रायण-मासिकमें पराक त्रैपक्षिकमे सांतपन द्वैमासिकमें कृच्छ्र करना क्षत्रियके नवश्राद्धमें यह व्रत कहा है और वैश्यके श्राद्धमें क्षत्रियोंसे आधा अधिक बुद्धिमानोंने कहा है-शूद्रके तो नवश्राद्धमें दो चांद्रायण और मासमें डेढ चांद्रायण और त्रिपक्षमें ऐंदवव्रत-दोमासमें पराक उसके आगे सांतपन कहा है-और जो शंखका वचन है कि नव श्राद्धमें चांद्रायण-मासिकमें पराक त्रिपक्षमें अतिकृच्छ्र छः मासमें कृच्छ्र-वार्षिकमें पादकृच्छ्र-पुनः आब्दिक(दूसरा वर्ष) में एक दिन उपवास इससे आगे शंखके वचनानुसार दोष नहीं- वह वचन उस मनुष्यके श्राद्धोंमें है जो सर्प आदिसे मराहो-अथवा जो चोर पतित क्लीब आदि पंक्तिबाह्य हैं उनके विषयमें है क्यों कि इन वचनोंसे भरद्वाजनें गुरु प्रायश्चित्त कहा

१ एकादशाहे भुक्त्वान्नं भुक्त्वा संचयने तथा। उपोष्य विधिवत् स्नात्वा कूष्मांडैर्जुहुयाद्घृतम्।

२ प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं तु पंचगव्यं द्विमासिके।

३ चांद्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके। एकाहस्तु पुराणेषु प्राजापत्यं विधीयते।

४ प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं स्यात्पादो द्वैमासिके तथा। पादोनकृच्छ्रं निर्दिष्टं षण्मासे च तथाब्दिके। त्रिरात्रं चान्यमासेषु प्रत्यहं चैकहः स्मृतम्।

१ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः त्रैपक्षिके सांतपनं कृच्छ्रो मासद्वये स्मृतः। क्षत्रियस्य नवश्राद्धे व्रतमेतदुदाहृतम्। वैश्यस्यार्धाधिकं प्रोक्तं क्षत्रियात्तु मनीषिभिः। शूद्रस्य तु नवश्राद्धे चरेच्चांद्रायणद्वयम्। सार्धं चांद्रायणं मासे त्रिपक्षे त्वैन्दवं मतम्। मासद्वये पराकः स्यादूर्ध्वं सांतपनं स्मृतम्।

२ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः। पक्षत्रयेतिकृच्छ्रः स्यात्षण्मासे कृच्छ्र एव तु। आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके। अत ऊर्ध्वं न दोषः स्याच्छंखस्य वचनं यथा।

३ चांडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्। पतनानाशकैश्चैव विषोद्बंधनकैस्तथा। भुक्त्वैषां षोडशश्राद्धे कुर्यादिंदुव्रतं द्विजः। अशक्तियान्यनुद्दिश्य श्राद्धमेकादशेऽहनि। ब्राह्मणस्तत्र भुक्त्वान्नं शिशुचांद्रायणं चरेत्। आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति संकल्पिते तथा भुक्त्वा त्रिरात्रक्षपणं भवेत्।

है कि चांडाल जल सर्प ब्राह्मण बिजली दाढवाले पशु-इनसे पापियोंका मरण होता है-पतन (गिरना) अनशन-विष-उद्बंधन (कूद) इनसे जो मरे हों-इनके श्राद्धमें भोजन करके द्विज इंदुव्रतको करै तैसेही अपांक्तियोंसे अन्योंके उद्देश (निमित्त) से एकादशाहके दिन ब्राह्मण श्राद्धको खाकर शिशुचान्द्रायण करै- आमश्राद्धमें भोजन करके तप्तकृच्छ्रसे शुद्धि होती है और संकल्प किये श्राद्धमें भोजन करके भोजनके विना तीनरात्र वितावै-ब्रह्मचारियोंमें तो बृहद्यमने विशेष कहा है कि जो द्विज व्रतनकी समाप्तिसे पहिले मासिक आदि श्राद्धोंमें भोजन करै उसको तीनरात्र उपवास प्रायश्चित्त कहा है-और तीन प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है-यह अज्ञानके विषयमें है जानकर भोजनमेंभी उसनेही कहा है तो जो मधु मांसका श्राद्ध और सूतकमें भोजन करै वह प्राजापत्य व्रत करके शेष व्रतको समाप्त करै-आमश्राद्धमें तो सर्वत्र आधा प्रायश्चित्त है क्योंकि पट्त्रिंशत् मतमें आमश्राद्धमें सर्वत्र आधा प्रायश्चित्त कहा है-और जो उशनानें कहा है कि श्राद्धका भोक्ता द्विज-गायत्री पढकर दशवार जल पीवै-फिर संध्या करने से शुद्ध होता है-वह वचन उस श्राद्धके विषयमें है जिसका प्रायश्चित्त नहीं कहा-संस्कारका अंग जो श्राद्ध उसके भोजनमें तो व्यासनें विशेष कहा है कि जिसका चूडाकर्म होचुकाहो उसके और नाम करणसे प्रथमके और जातकर्मके श्राद्धमें-भोजन करके सान्तपन करै-इससे अन्य संस्कारोंमें भोजन करता हुआ निषिद्धभोजी द्विज-गुरुकी आज्ञाके अनुसार शुद्ध होताहै सीमन्तोन्नयन आदिमें तो धौम्यने विशेष कहा है-ब्रह्मौदन-सोम-सीमन्तोन्नयन-जातश्राद्ध-नवश्राद्ध-इनमें भोजन करता हुआ द्विज चांद्रायण करै-यहां ब्रह्मौदन पदसे सोमके साहचर्यसे यज्ञका अंगकर्म लेना-अब परिग्रह-अशुचि अन्नके भोजनका प्रायश्चित्त कहते हैं-जो स्वरूपसे निषिद्ध न हो और किसी विशेष पुरुषके सम्बधसे अभोज्य कहा जाय-उसमें योगीश्वरने अग्निहीनके विना दिये अन्नको आपत्तिके विना भोजन न करै-इस श्लोकसे लेकर-साढेपांच ५॥श्लोकतक जिनका अन्न भोजन नहीं करना वे कहे हैं और मनु (अ. ४ श्लो. २०५-२१७) नेभी कुछ अधिक वेही कहे हैं कि वेदपाठीसे भिन्नके किये यज्ञमें-ग्रामयाजक-स्त्री नपुंसक

१ मासिकादिषु योऽश्नीयादसमाप्तव्रतो द्विजः। त्रिरात्रमुपवासोऽस्य प्रायश्चित्तं विधीयते। प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति।

२ मधु मांसं च योऽश्नीयाच्छ्राद्धं सूतकमेव वा। प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत्॥

३ आमश्राद्धे तदर्द्धं तु प्राजापत्यं तु सर्वदा।

४ दशकृत्वः पिबेच्चापो गायत्र्या श्राद्धभुग् द्विजः। ततः संध्यामुपासीत शुध्येत्तु तदनन्तरं।

५ निवृत्तचूडाहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा। चरेत्सान्तपनं भुक्त्वा जातकर्मणि चैव हि। अतोऽन्येषु तु भुक्त्वान्नं संस्कारेषु द्विजोत्तमः। नियोगादुपवासेन शुद्ध्येत निन्द्यभोजनः।

१ ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। जातश्राद्धे नवश्राद्धे द्विजश्चांद्रायणं चरेत्।

२ नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिहुते तथा। स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुंजीत ब्राह्मणः क्वचित्। मत्तक्रुद्धातुराणान्तु न भुंजीत कदाचन। गणान्नं गणिकान्नं च विदुषा च जुगुप्सितं। स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च। दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च। अभिशस्तस्य षंढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च। चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः। उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम्। अनर्चितं वृथा मांसमवीरायाश्च योषितः। द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतं। पिशुनानृतिनोश्चैव क्रतुविक्रयिणस्तथा। शैलूषतंतुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च। कर्मारस्य निषादस्य रंगावतारकस्य च। सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा। श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च। रजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे। मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः। अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च।

इनके किये होममें ब्राह्मण कदाचित् भोजन न करे–मत्त क्रोधी रोगी इनके यहां भोजन न करे–गण (समुदाय–चंदा–) का और वेश्याका अन्न और बुद्धिमानोंने निंदित जो कहा वह अन्न–चोर–गानेवाला–बढई वार्धुषिक (जो व्याजसे जीवे)–दीक्षित–कदर्य बंधा हुआ (जिसके बेडी पडीहों) अभिशस्त (जिसे हिंसाका दोष लगाहो) षंढ (नपुंसक) पुंश्चली (व्यभिचारिणी) दांभिक (डिंभधारी) चिकित्सक (वैद्य) मृगयु (हेंडी) क्रूर स्वभाव–उच्छिष्टका भोजी–उग्र (प्रचंड) सूतिका–पर्यायका–दशदिनसे प्रथम सूतकका और अनर्चित वृथामांस (जो देवताके निमित्त न पकाया हो) और जिसके पति न हो ऐसी स्त्रीका अन्न–शत्रु, नगरी, इनका अन्न पतितका अन्न अवक्षुत (जिसपर छिंका हुयी हो) अन्न–पिशुन (चुगल) झूठा इनका अन्न–यज्ञ विक्रय करनेवालेका अन्न–नट तंतुवाय (जुलाहा वा कोली) कृतघ्न–कर्मार (लुहार) निषाद्–रंगरेज–सुनार वेण–शस्त्र बेचनेवाला–कुत्तेवाले, शौंडिक (हिंसक) धोबी–रजक–नृशंस (क्रूर) जिसके घरमें जार रहता हो और जारको सहतेहों– जिनको स्त्रीनें जीत लिया हो इन सबका अन्न और दश दिनसे पहिले प्रेतका अन्न और जिससे मनकी प्रसन्नता न हो ऐसा अन्न–इतने अन्न भोजनके अयोग्य है–इस विषयके पदार्थ अभक्ष्य कांडमें कह आये हैं–इसमें प्रायश्चित्त मनु (अ० ४ श्लो० १२२) नें कहा है कि अज्ञानसे इनमेंसे किसीके अन्नको भक्षण कर तीन दिन उपवास करे–और जानकर पूर्वोक्तोंका भोजन, और वीर्य विष्ठा मूत्रको खाकर कृच्छ्र करे–पैठीनसिनेभी अज्ञानसे तीन रात्रही कहा है कि–कुनखी श्यामदंत–पिताके संग विवादी–स्त्रीजित–कुष्ठी–पिशुन–सोमका विक्रयी–वाणिजक (व्यापारी) ग्रामका याजक–अभिशस्त–शूद्रका पुत्र–परिवित्ति–परिवेत्ता-दिधिषूका पति–पुनर्भूका पुत्र–चोर–कांडपृष्ठ–सेवक–ये सब अभोज्यान्न हैं अपांक्तिय, श्राद्धके अयोग्य, हैं इनका अन्न खाकर–देकर–अज्ञानसे त्रिरात्र होता है–शंखनें तो कुछ अधिक इनकोही पठकर चांद्रायण कहा है वह अभ्यासके विषयमें समझना–गौतमनें तो उच्छिष्ट पुंश्चली अभिशस्त इत्यादिसे अभोज्य है अन्न जिनका उनको पठकर पंचनखोंसे पूर्व २ के भक्षणमें वमन और घृतका भक्षण प्रायश्चित्त कहा है वह आपत्तिके विषयमें है जो बलात्कारसे खाता है उसके लिये आपस्तंबने विशेष कहा है कि जिनको म्लेच्छ चांडाल चोरोंनें

१ भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहं । मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ।

१ कुनखी श्यावदंतः पित्रा विवदमानः स्त्रीजितः कुष्ठी पिशुनः सोमविक्रयी वाणिजको ग्रामयाजकोऽभिशस्तो वृषल्यामभिजातः परिवित्तिः परिविन्दानो दिधिषूपतिः पुनर्भूपुत्रश्चौरः कांडपृष्ठः सेवकश्चेत्यभोज्यान्ना अपांक्तेया अश्राद्धार्हाः एषां भुक्त्वा दत्त्वा वा अज्ञानात्त्रिरात्रम् ।

२ प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनं च ।

३ बलाद्दासीकृता ये तु म्लेच्छचांडालदस्युभिः । अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् । उच्छिष्टमार्जनं चैव तथोच्छिष्टस्य भोजनम् । खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणम् । तत्स्त्रीणां च तथा संगस्ताभिश्च सह भोजनम् । मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् । चांद्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथवा भवेत् । चांद्रायणं पराकं चाब्दोत्संवत्सरोषितः । संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्द्धं यावकं पिबेत् । मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुद्ध्यति । ऊर्ध्वं संवत्सरात्कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः । संवत्सरैश्चतुर्भिस्तु तद्भावं स निगच्छति ।

बलसे दासकर लिये हैं और उनसे गोहिंसा आदि अशुभकर्म करा दिया है और उच्छिष्टका मार्जन वा भोजन करा दिया है वा खर-ऊंट-विड्वाह इनके मांसका भक्षण करायाहो-और उनकी स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संग भोजन किया होय तो, द्विजातियोंका शोधन उनके संग एकमासके वासमें प्राजापत्य है-और आहिताग्निका चांद्रायण वा पराक होता है-और वर्षदिनतक वास करके चांद्रायण वा पराकको करै-और शूद्र वर्षदिन वास करके पक्षभर जौं पीवै वा शूद्र मासभर वास करके कृच्छ्रपादसे शुद्ध होता है-और वर्ष दिन अधिक वास करनेमें तो द्विजोंमें उत्तम प्रायश्चित्तकी कल्पना करै-और तीन वर्ष चांडाल आदिकोंके संग वसै तो उनकेही भाव (जाति) को प्राप्त हो जाता है-आशौच जिसको है उसके ग्रहण किये अन्नमें तो छागलने कहा है कि अज्ञानसे सूतक वा मृतकका भोजन करनेमें सौ प्राणायाम करके शूद्रके सूतकमें-ब्राह्मण शुद्ध होते हैं-वैश्यके सूतकमें साठि ६० और क्षत्रियके सूतकमें वीस-और ब्राह्मणके सूतकमें दश प्राणायाम करै और ब्राह्मण आदि क्रमसे एक-तीन-पांच-सात रात्र भोजन न करै फिर इनकी शुद्धि पंचगव्य पीनेसे होती है-यहभी अज्ञानके विषयमें समझना-जानकर भक्षणमें तो मार्कंडेयने कहा है-कि ब्राह्मणके अशौचमें भोजन करके द्विज सांतपन करै-क्षत्रियके अशौचमें तप्तकृच्छ्र-वैश्यके अशौचमें महा सांतपन-और शूद्रके अशौचमें भोजन करके तीन मासका व्रत करै-और जो शंखने कहा है कि शूद्रके सूतकमें भोजन करके छः मासतक व्रत करै-और वैश्यके सूतकमेंभी तीन मासतक व्रत और क्षत्रियके अशौचमें दो मासका व्रत और ब्राह्मणके अशौचमें भोजन करके एक मास व्रत करै-यह वचन अभ्यासके विषयमें है-और यह प्रायश्चित्त अशौचके अनंतर जानना क्योंकि विष्णुकी यह स्मृति है कि जो ब्राह्मण आदिकोंके अशौचमें एक वारभी भोजन करता है उसको उतनाही अशौच है जितना उनको होता है और अशौचके बीतने पर प्रायश्चित्त करै-जिसके पुत्र न हो उस आदिके अन्न भक्षण करनेमें तो लिखितने कहा है कि व्याजलेनेवाला व्रतहीन और पुत्रहीन और शूद्र इनके अन्नको खाकर तीन रात्र भोजन न करै तैसेहि जो पराये पाकसे निवृत्त है और जो पराये पाकमें तत्पर है और अपच इनके अन्नको खाकर द्विज चांद्रायण करै यहभी अभ्यासके विषयमें है परपाकनिवृत्त आदि

१ अज्ञानाद्भोजने विप्रः सूतके मृतकेऽपि वा । प्राणायामशतं कृत्वा शुद्ध्यते शूद्रसूतके । वैश्ये षष्टिर्भवेदत्र विंशतिर्ब्राह्मणे दश । एकाहं च त्र्यहं पंच सप्तरात्रमभोजनम् । ततः शुद्धिर्भवेत्तेषां पंचगव्यं पिबेत्ततः ।

२ भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत्सांतपनं द्विजः । भुक्त्वा तु क्षत्रियाशौचे तप्तकृच्छ्रो विधीयते । वैश्याशौचे तथा भुक्त्वा महासांतपनं चरेत् । शूद्रस्यैव तथा भुक्त्वा त्रिमासान्व्रतमाचरेत् ।

१ शूद्रस्य सूतके भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् । वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत् । क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् । ब्राह्मणस्य तथाशौचे भुक्त्वा मासं व्रती भवेत् ।

२ ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचं व्यपगमे तु प्रायश्चित्तं कुर्यात् ।

३ भुक्त्वा वार्धुषिकस्यान्नमव्रतस्यासुतस्य च । शूद्रस्य च तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं स्यादभोजनम् । परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च । अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ।

का लक्षणभी उसनेही कहा हैकि जो अग्निको ग्रहण करके और समारोप (स्थापन) करके पंचयज्ञोंको न करे वह मुनि योंने परपाकनिवृत्त कहा है और जो पंच यज्ञ करके पराये अन्नसे नियमसे प्रातः काल उठकर जीवे वह परपाकरत है जो गृहस्थ धर्ममें स्थित होकर दानसे रहित है धर्मतत्त्वके ज्ञाता ऋषियोंने वह अपच कहा है और जो ब्रह्मचारी आदिके अन्न भोजनमें वृद्धयाज्ञवल्क्यने कहा है कि यति और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्वान्नके स्वामी हैं अर्थात् अन्यका किया पाक खाते हैं उनका अन्न न खाय और खावे तो चांद्रायण करे और जो पार्वणश्राद्ध न करने वालेके भोजन में भरद्वाजने कहा हैकि पक्ष वा मासमें जिसके यहां देवता नहीं खाते उस दुरात्मा का भोजन करके द्विज चांद्रायण करे ये दोनोंभी वचन अभ्यासके विषयमें हैं पहिले गिने हुयोंसे भिन्न जो निषिद्धाचारी हैं उनके अन्न भोजनमें तो षट्त्रिंशन्मतको कहा प्रायश्चित्त जानना कि आचारसे रहित और निषिद्धाचारीजो द्विज उसके अन्नको खाकर चांद्रायण करे इसकेही वर्षभरके अभ्यासमें षट्त्रिंशतमतमेंही कहा है कि उपपातकसे युक्तके अन्नको एक वर्षतक निरंतर भक्षण करके द्विज शुद्धिके लिये परपाक करे यह अभक्ष्यभक्षणके समुदायका विशेष और दिनोंके व्रतोंका समूह ब्राह्मणको है क्षत्रिय आदिकोंको तो एक २ पाद कम होता है क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि ब्राह्मणको संपूर्ण क्षत्रियको पादोन वैश्यको आधा और शूद्रजातियोंको एक पाद प्रायश्चित्त देना इति अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

निमित्तोंकी गिनतीके समय उपपातकके अनंतर जातिभ्रंशकर गिने हैं अब उनके प्रायश्चित्तोंको कहते हैं उसमें मनु (अ०११ श्लो०१२४–१२५) ने कहा है कि जातिभ्रंश करनेवाले किसी एकभी कर्मको जानकर करके सांतपन कृच्छ्र और अज्ञानसे करके प्राजापत्य करे और संकर अपात्रकृत्या इनमें मासभर ऐंदवसे शुद्धि होती है और मलिनीकरणीयोंमें तीन दिन तप्तयावक भक्षण प्रायश्चित्त है यहां अन्यतम (कोईसा) इसका सर्वत्र संबंध है और यहां विशेष यमने कहा हैकि संकरीकरण कर्मको करके मासभर जौं भक्षण करे अथवा कृच्छ्रातिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे अपात्रीकरण कर्मको करके तप्तकृच्छ्रसे शुद्ध होता है वा शीतकृच्छ्रसे वा महासांतपनसे शुद्धि

१ गृहीत्वाग्निं समारोप्य पंचयज्ञान्न निर्वपेत् । परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः । पंचयज्ञांस्तु यः कृत्वा परान्नादुपजीवति सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः । गृहस्थधर्मवृत्तो यो ददाति परिवर्जितः । ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः संप्रकीर्तितः ।

२ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।

३ पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्नन्ति देवताः । भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ।

४ निराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च । अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥

५ उपपातकयुक्तस्य अब्दमेकं निरंतरम् । अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्यात्परपाकं तु शोधनम् ॥

१ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतं । वैश्येऽर्धं पाद एकस्तु शूद्रजातिषु दृश्यते ॥

२ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया । चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया । संकरापात्रकृत्यासु मासः शोधनमैंदवः । मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकस्त्र्यहम् ।

३ संकरीकरणं कृत्वा मासमश्नाति यावकं । कृच्छ्रातिकृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तं समाचरेत् । अपात्रीकरणं कृत्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति । शीतकृच्छ्रेण वा शुद्धिर्महासांतपनेन वा । मलिनीकरणीयेषु तप्तकृच्छ्रं विशोधनं ।

होती है मलिनीकरणीय कर्मोंमें तप्त कृच्छ्र से शुद्धि होती है बृहस्पतिनेभी जाति-भ्रंशकरमें विशेष कहा है कि ब्राह्मणकी पीडा और रासभ आदिका प्रमापण (हिंसा) और निंदितोंसे धनका ग्रहण करके आधा कृच्छ्र शोधन होता है मनु आदिकोंके कहे जो ये जातिभ्रंशकर आदि कर्मोंके प्रायश्चित्त हैं उनके विषयका विभाग जाति शक्ति आदिकी अपेक्षासे जानना इस पूर्वोक्त प्रकारसे योगीश्वरके हृदयमें स्थित अभक्ष्य-भक्षण आदिका प्रायश्चित्त संक्षेपसे दिखाया अब प्रकरणमें अनुसरण करते हैं अर्थात् प्रकरणकी बात कहते हैं ॥

भावार्थ-गोष्ठमें बसता, और मासभर केवल दूधको पीता और गायत्री जपको करता हुआ, ब्रह्मचारी निंदित प्रतिग्रह लेनेसे शुद्ध होता है ॥ २९० ॥

प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्रयानगः ।
नग्नःस्नात्वाचभुक्त्वाचगत्वाचैवदिवास्त्रियम् ॥

पद-प्राणायामी १- जले ७- स्नात्वा-खरयानोष्ट्रयानगः १-नग्नः १-स्नात्वा-च-भुक्त्वा-च-गत्वा-च-एव-दिवा-स्त्रियम् २-

योजना-खरयानोष्ट्रयानगः च पुनः नग्नः स्नात्वा च पुनः दिवा स्त्रियं गत्वा जले स्नात्वा प्राणायामी शुद्ध्येत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब प्रकीर्णकका प्रायश्चित्त कहते हैं खर और ऊंटसे युक्त रथ आदि यानमें जो गमन करै और नग्न होकर जो स्नान वा भोजन करै और दिनमें अपनी स्त्रीके संग जो भोग करै वह तडाग और तरंगिणी आदिमें स्नान और प्राणायाम करके शुद्ध होता है यहभी जानकर करनेमें है क्योंकि यह मनु की स्मृति है (अ० ११ श्लो० २०१) कि उष्ट्रयानमें और खरके यानमें जानकर बैठे तो सचैल स्नान करके सदैव शुद्ध होता है अज्ञानसे बैठनेमें तो स्नानमात्रकी कल्पना करनी और साक्षात् खरपर चढे तो दूने प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी क्योंकि उसके चढनेमेंका पाप गुरु है ।

भावार्थ-खर और ऊंटके यानपर चढकर और नग्न होकर स्नान और भोजन करके और दिनमें स्त्रीसे गमन करके जलमें स्नान और प्राणायामसे शुद्ध होता है-२९१

गुरुंहुंकृत्यत्वंकृत्य विप्रंनिर्जित्यवादतः ।
बद्ध्वावावाससाक्षिप्रंप्रसाद्योपवसेद्दिनम् ॥

पद-गुरुं२-हुंकृत्य-त्वंकृत्य-विप्रं २-निर्जित्य-वादतः-बध्वा-वा-वाससा ३-क्षिप्रं-प्रसाद्य-उपवसेत् क्रि-दिनम् २-

योजना-गुरुं त्वंकृत्य विप्रं हुं कृत्य, वादतः निर्जित्य वा वाससा बद्ध्वा क्षिप्रं प्रसाद्य दिनम् उपवसेत् ॥

तात्पर्यार्थ-पिता आदि गुरुको तुं करके अर्थात् तू इस प्रकार मत कहै तैंने इस प्रकार किया इस प्रकार युष्मच्छब्दको एक वचनान्त कहके झिडकर घडे वा अपने समान वा छोटे ब्राह्मणको क्रोधसे हुं करके अर्थात् हुं तूर्णीरहो हुं ऐसे मतकहो इस प्रकार आक्षेप करके और जयके फल, जो जल्प और वितण्डा इनसे ब्राह्मणको जीतकर और कोमल वस्त्रसेभी कंठमें बांधकर शीघ्रही चरणोंमें नमस्कारसे प्रसन्न करके अर्थात् उसके क्रोधको दूर कराकर एकदिन

१ ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा रासभादि प्रमापण निन्दितेभ्यो धनादानं कृच्छ्रार्धमाचरेत् ।

१ उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानन्तु कामतः । सवासा जलमाप्लुत्य प्राणायामेन शुद्ध्यति ।

उपवास करे और जो यमने कहा है कि वादसे ब्राह्मणको जीतकर प्रायश्चित्त किया चाहे तो तीनरात्र उपवास और स्नान करनेके अनन्तर प्रणाम करके ब्राह्मणकी प्रसन्नता करै वह वचन अभ्यासके विषयमें समझना।

भावार्थ-गुरुको तुं और ब्राह्मणको हुं और वादसे जीतकर वा वस्त्रसे बांधकर शीघ्र प्रसन्न करके एक दिन उपवास करे ॥ २९२

विप्रदंडोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रोसृक्पाते कृच्छ्रोभ्यंतरशोणिते ॥ २९३

पद-विप्रदंडोद्यमे ७-कृच्छ्रः १-तु ऽ-अतिकृच्छ्रः७-निपातने १-कृच्छ्रातिकृच्छ्रः१-असृक्पाते७-कृच्छ्रः१-अभ्यन्तरशोणिते७-

योजना-विप्रदंडोद्यमे कृच्छ्रः तु पुनः निपातने अतिकृच्छ्रः असृक्पाते कृच्छ्रः अभ्यन्तरशोणिते कृच्छ्रः शुद्धिहेतुः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दण्डको उठावे तो कृच्छ्र करनेसे शुद्धि होती है और दंडसे ताडना करे तो अति कृच्छ्र और रुधिर निकस आवे तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र और अभ्यन्तर (भीतर) शोणित होय तो कृच्छ्र शुद्धिका हेतु होता है बृहस्पतिनेभी यह विशेष कहा है कि काठ आदिकी ताडनासे त्वचा फट जाय तो कृच्छ्र अस्थि टूटजाय तो अतिकृच्छ्र करे अंग कोई कट जाय तो पराक करे पादके प्रहारमें तो यमने कहा है कि ब्राह्मणका चरणसे स्पर्श करके प्रायश्चित्त किया चाहे तो एक दिन उपवास और स्नान करनेके अनन्तर ब्राह्मणको प्रणाम करके उसको प्रसन्न करै मनु (अ. ११ श्लो. २०२) ने तो अन्यभी प्रकीर्णकके प्रायश्चित्त दिखाये हैं कि जलोंके विना अर्थात् समीपमें जलको न रखकर अथवा जलोंमें जो दुःखी मनुष्य मलमूत्रको त्यागता है वह सचैल स्नान और गौका स्पर्श करके शुद्ध होता है यह वचन अज्ञानके विषयमें है जान कर तो यहयमको कहा प्रायश्चित्त जानना कि जो आपत्तिके समय जलके विना मल मूत्र करे वह एक दिन उपवास करके जलमें सचैल स्नान करे और जो सुमंतुका वचन है कि जल और अग्निमें जो मलको त्यागे वह तप्तकृच्छ्र करे वह रोगीसे भिन्नके विषयमें वा अभ्यासके विषयमें समझना और नित्य जो वेदोक्त कर्म हैं उनके लोपमें तो मनु(अ.११ श्लो. २०३) ने कहा है कि वेदोक्त नित्य कर्मोंके और स्नातकके व्रतोंके लोपमें भोजन न करनाही प्रायश्चित्त है वेदोक्त दर्शपौर्णमास आदि कर्मोंमें और स्मृतियोंमें उक्त नित्य होम आदिकोंमें जो प्रतिपदोक्त (प्रति कर्ममें नाम लेकर कहे) जो प्रायश्चित्त हैं उनके संग उपवासका समुच्चय है अर्थात् वे और उपवास दोनों करने और धन होने परभी जीर्ण और मलीन वस्त्र धारण करै इत्यादि पूर्वोक्त स्नातकके व्रत समझने स्नातक व्रतोंके अधिकार (प्रकरण)में ऋतुं

१ वादेन ब्राह्मणं जित्वा प्रायश्चित्तविधित्सया । त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् ।

२ काष्ठादिना ताडयित्वा त्वग्भेदे कृच्छ्रमाचरेत् । अस्थिभेदेऽतिकृच्छ्रः स्यात्पराकस्त्वगकर्तने ।

३ पादेन ब्राह्मणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तविधित्सया । दिवसोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् ।

१ विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निषेव्य तु । सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ।

२ आपद्गतो विना तोयं शारीरं यो निषेवते । एकाहं क्षपणं कृत्वा सचैलो जलमाविशेत् ।

३ अप्स्वग्नौ वा मेहतस्तप्तकृच्छ्रम् ।

४ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ।

५ एतेषामाचाराणामेकैकस्य व्यतिक्रमे गायत्र्यष्टशतं जप्यं कृत्वा पूतो भवति ।

नेभी कहा है कि इन आचरणोंमें एक २ के अवलंबनमें आठसौ गायत्री जप करके पवित्र होता है पंच महायज्ञोंके न करनेमें तो बृहस्पतिने कहा है कि जो गृहस्थी अनातुर और धनी होकरभी पांच महायज्ञोंके प्रतिदिन किये विना भोजन करता है वह कृच्छ्रार्धसे शुद्ध होता है जो आहिताग्नि होकर अग्निका उपस्थान (सेवा) पर्वके समय नहीं करता और ऋतुके समय भार्याका गमन नहीं करता वहभी कृच्छ्रार्द्ध करै दूसरी भार्या आदिके मरनेमें तो देवलने कहा है कि पहिली भार्याके जीवते हुये जो दूसरी भार्याको वैतानिक अग्नियोंसे दग्ध करता है वह कर्म सुरा पीनेके समान है अपनी भार्याके अभिशंसन (निंदा) में तो यमने कहा है कि जो मनुष्य अपनी भार्याको क्रोधसे ऐसे कहता है कि तू गमनके योग्य नहीं वह ब्राह्मण होय तो प्राजापत्य करै क्षत्री नौ दिन, वैश्य छः दिन, शूद्र तीन दिन, व्रत करै स्नानके विना भोजनमें तो यमने कहा है कि रिक्त (खाली) कमंडलुको धारण और विना स्नान भोजन करै तो अहोरात्र उपवास और एक दिनके जपसे शुद्धि होती है एक पंक्तिमें बैठे हुयोंके मध्यमें जो स्नेह आदिसे विषम (न्यून अधिक) परसता है तो यमने कहा है कि न पंक्तिमें विषम दे न मांगे न दिवावे क्योंकि याचक दायक और दाता ये तीनों स्वर्गमें नहीं जाते और प्राजापत्य करनेसे उस कर्मसे छुटते हैं और नदीके संक्रम (मार्ग वा पुल) को जो नष्ट करै और जो कन्याके विवाहमें विघ्न करै और जो पूजा आदि सममें विषम करै इनका प्रायश्चित्त नहीं है इन तीनों कर्मोंका प्रायश्चित्त ढूंढने योग्य है अर्थात् नहीं है और ब्राह्मण भिक्षासे मिले अन्नसे चांद्रायण करै- इंद्रधनुषके दर्शन आदिमें तो ऋष्यशृंगने कहा है कि जो इंद्रका धनुष और पलाश (ढाक) की अग्नि यदि अन्यको दिखावै तो अहोरात्र प्रायश्चित्त और धनुषका दंड दक्षिणा प्रायश्चित्त है पतित आदिके संभाषणमें तो गौतमने कहा है कि म्लेच्छ अशुचि अधार्मिक इनके संग संभाषण न करै. करै तो पुण्यात्माओंका मनसे ध्यान करै वा ब्राह्मणके संग संभाषण करै शय्या अन्न धन इनका लाभ और वधमें तो पृथक् २ वर्षोंका प्रायश्चित्त है अर्थात् भार्याके अन्न धनको लेना और नष्ट (विघ्न) करनेमें प्रत्येक कर्ममें वर्ष दिनका प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है तैसेही यज्ञोपवीतके विना मलमूत्र करनेमें स्मृत्यंतरमें

१ अनिवर्त्य महायज्ञान्यो भुंक्ते त्वन्वहं गृही। अनातुरः सति-धने कृच्छ्रार्धेन विशुद्ध्यति। आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि। ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोपि कृच्छ्रार्धमाचरेत्।

२ मृतां द्वितीयां यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः। जीवत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं हि तत्।

३ स्वभार्यां तु यदा क्रोधादगम्येति नरो वदेत्। प्राजापत्यं चरेद्विप्रः क्षत्रियो दिवसान्नव। षड्रात्रं तु चरेद्वैश्यस्त्रिरात्रं शूद्र आचरेत्।

४ यद्यन्वकमंडलुं रिक्तमस्नातोऽन्नंश्च भोजनम्। अहोरात्रेण शुद्धिः स्याद्दिनजप्येन चैवहि।

१ न पंक्त्यां विषमं दद्यान्न याचेत न दापयेत्। याचको दायको दाता न वै स्वर्गस्य गामिनः। प्राजापत्येन कृच्छ्रेण मुच्यते कर्मणस्ततः। नदीसंक्रमहंतुश्च कन्याविघ्नकरस्य च। समे विषमकर्तुश्च निष्कृतिर्नोपपद्यते। ब्राह्मणानामपि चैतेषां प्रत्यापत्तिस्तु मार्गिताम्। भैक्षलब्धेन चान्नेन द्विजश्चांद्रायणं चरेत्।

२ इंद्रचापं पलाशाग्निं यद्यन्यस्य प्रदर्शयेत्। प्रायश्चित्तमहोरात्रं धनुर्दंडश्च दक्षिणा।

३ न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् ब्राह्मणेन सह वा संभाषेत तल्पान्नधनलाभवधे पृथक् वर्षाणि।

प्रायश्चित्त कहा है कि यज्ञोपवीतके विना जो द्विज उच्छिष्ट होता है तो अहोरात्र उपवास और आठसौ गायत्रीका जप प्रायश्चित्त है उसमेंभी नाभिसे ऊपर उच्छिष्टमें उपवास और नाभिसे नीचे उच्छिष्ट होकर जलपान आदिको करै तो गायत्रीका जपकरै यह व्यवस्था जाननी अज्ञानसे करनेमें तो स्मृत्यंतरमें कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि जो यज्ञोपवीतके विना जल पीवे वा मलको त्याग वह तीन वा छः प्राणायाम, और तीन नक्तव्रत, क्रमसे करै भोजन करके उत्तरापोशन किये विना उठनेमें तो यह स्मृत्यंतरमें कहा प्रायश्चित्त जानना कि भोजन करके विना आचमन और विना जलपान जो उठता है वह शीघ्र स्नान करै अन्यथा (न करै तो) पतित होता है चोर आदिके उत्सर्ग (त्याग) में तो वसिष्ठने कहा है कि दंड देनेके योग्यके त्यागमें राजा एकरात्र, पुरोहित तीनरात्र, उपवास करै और दंड देनेके अयोग्यको दंड देनेमें पुरोहित कृच्छ्र, और राजा त्रिरात्र, उपवास करै, और कुनखी और श्यामदंत ये दोनों द्वादश रात्र कृच्छ्र करै और निंदित नख और दांतोंको उखडवाय दें चोर पतित आदिकी पंक्तिके भोजनमें तो मार्कंडेयने कहा है कि पंक्तिसे बाह्यकी पंक्तिमें जो ब्राह्मण भोजन करता है वह अहोरात्र उपवास और पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है नीलके विषयमें तो आपस्तंबने कहा है कि नीलसे रंगे वस्त्रको ब्राह्मण अंगमें धारण करे तो अहोरात्र उपवासके अनंतर पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है और जो नीलका रस रोमकूपोंमें चलाजाय तो तीनों वर्णोंमें सामान्यरीतिसे तप्तकृच्छ्र शोधन है नीलकी रक्षा विक्रय और नीलकी वृत्तिसे जीवे तो ब्राह्मण पातकी होता है और तीन कृच्छ्रोंसे पापको दूर करता है नीलका काठ ब्राह्मणके शरीरको बींध दे और रुधिर दीख पडे तो द्विज चांद्रायण करै और स्त्रियोंके क्रीडार्थ भोगकी शय्यापर नीलका दोष नहीं है–भृगुनेभी कहाहै कि स्त्रीका धारण किया नील ब्राह्मणोंमें दूषित नहीं है–और क्षत्रियोंके यहां वृद्धिमें अर्थात् पुत्रोत्सव आदिमें और वैश्यके यहां पर्वोंको छोडकर धारण करना युक्तहै– तैसेही वस्त्र विशेषमेंभी नीलका दोष नहीं क्योंकि यह स्मृति है कि कंबल और पट्टसूत्र (रेशम) में नीलका रंग दूषित नहीं–वृक्ष विशेषसे बनाये खट्टाके

१ विना यज्ञोपवीतेन यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः । प्रायश्चित्तमहोरात्रं गायत्र्यष्टशतं तु वा ।

२ पिबतो मेहतश्चैव भुंजतोऽनुपवीतिनः । प्राणायामात्रिकं षट्कं नक्तं च त्रितयं क्रमात् ।

३ यद्युत्तिष्ठत्यनाचांतो भुक्त्वा वानशनात्ततः । सद्यः स्नानं प्रकुर्वीत सोऽन्यथा पतितो भवेत् ।

४ दंड्योत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत्त्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदंड्य दंडने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा कुनखीश्याव दंतश्च कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वोद्धरेयाताम् ।

५ अपांक्तेयस्य यः कश्चित् पंक्तौ भुंक्ते द्विजोत्तमः अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।

१ नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोंऽगेषु धारयेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति । रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कस्यचित् । त्रिषु वर्णेषु सामान्यं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् । पालनं विक्रयश्चैव तद्वृत्त्या तूपजीवनम् । पातकी च भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणस्य शरीरतः । शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् । स्त्रीणां क्रीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति ।

२ स्त्रीधृता शयने नीली ब्राह्मणस्य न दुष्यति । नृपस्य वृद्धौ वैश्यस्य पर्ववर्ज्यं विधारणम् ।

३ कंबले पट्टसूत्रे च नीलीरागो न दुष्यति ।

ऊपर चढनेमें तो शंखने कहा है कि द्विज ढाकके वृक्षकी शय्या यान आसन खडाऊं इनपर चढकर त्रिरात्र व्रत करे-प्राणोंकी रक्षाका अभिलाषी क्षत्रिय रणमें पीठ दे कर और फलके दाता वृक्षको काटकर-संवत्सरतक व्रतको करे दो ब्राह्मणोंके और ब्राह्मण अग्निके-स्त्री पुरुषके-गौ ब्राह्मणके बीचमेंको निकसे तो सांतपनकृच्छ्र करे होमके समय और तैसेही दुहने और पढनेके समय और विवाहके समयमें द्विज बीचको निकसे तो चांद्रायण करे यहां दुहना सान्नाय्य (हविर्विशेष) का अंग लेना यहभी अभ्यासके विषयमें है छिद्र सहित सूर्य आदि अरिष्टोंके दीखनेमें तो शंखने कहा है कि दुष्टस्वप्न और अरिष्ट आदिके दर्शनमें घृत और सुवर्णका दान करे किसी देशविशेषके गमनमेंभी देवलने कहा है कि सिंधुसौवीर सौराष्ट्र और इनके प्रत्यंतवासी अंग वंग कलिंग आंध्र इन देशोंमें जाकर पुनः संस्कारके योग्य होता है यहभी तीर्थ यात्राके विना समझना अपने विष्ठाके देखनेमें तो यमने कहा है कि सूर्यके सन्मुख मल को न त्यागै और अपने मलको न देखै और देखै तो सूर्य गौ अग्नि ब्राह्मण इनका दर्शन करले शंखनेभी कहा है कि अग्निमें चरणोंको तपाकर और अग्निको नीचे करके और कुशोंसे चरणोंका मार्जन करके एक दिन व्रत करे क्षत्रिय आदिको नमस्कार करनेमें तो हारीतने कहा है कि क्षत्रियको नमस्कार करनेमें अहोरात्र वैश्यके नमस्कारमें दो रात्र और शूद्रके नमस्कारमें तीन रात्र उपवास करे तैसेही शय्यापर बैठे खडाऊं उपानह इनको धारण किये उच्छिष्ट अंधकारमें स्थित श्राद्ध करनेके समय जप देवपूजा इनमें जो तत्पर इन सबको नमस्कार करनेमेंभी तीन रात्र उपवास होता है और अन्यके निमंत्रणको स्वीकार करके अन्यत्र भोजन करे तो त्रिरात्र उपवास करे और जिसके हाथमें समिध पुष्प आदि हों उसकेभी नमस्कारमें यही प्रायश्चित्त है क्योंकि इस आपस्तंबके वचनमें जप आदिके संग यहभी पढा है कि समिध पुष्प कुशा घी जल मिट्टी अन्न अक्षत ये जिसके हाथमें हों और जो जप होम करता हो उस द्विजको नमस्कार न करै और नमस्कार करनेवालेकोभी यही प्रायश्चित्त है क्योंकि शंखने इस वचनसे उसकोभी निषेध किया है कि जलका घट हाथमें लिये, भिक्षाटन करते, पुष्प घृत हाथमें लिये, अशुद्ध, जप करते, देव पितरोंका कर्म करते, और शयन करते समयमें नमस्कार न करै इसी प्रकार अन्यभी वचन

१ अध्यस्य शयन यानमासन पादुके तथा । द्विजः पलाशवृक्षस्य त्रिरात्र तु व्रती भवेत् । क्षत्रियस्तु रणे पृष्ठ दत्त्वा प्राणपरायणः । संवत्सर व्रतं कुर्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रद । द्वौ विप्रौ ब्राह्मणाग्नी वा दंपती गोद्विजोत्तमौ॥अतरेण यदा गच्छेत्कृच्छ्र सांतपन चरेत् । होमकाले तथा दोहे स्वाध्याये दारसंग्रहे । अतरेण यदा गच्छेद्द्विजश्चांद्रायण चरेत् ।

२ दुःस्वप्नारिष्टदर्शनादौ घृत सुवर्णं च दद्यात् ।

३ सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यंतवासिन. । अग वंगकलिंगाध्रान् गत्वा संस्कारमर्हति ।

४ प्रत्यादित्य न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् । दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत गामग्निं ब्राह्मणं तथा ।

१ पादप्रतापन कृत्वा कृत्वा वह्निमधस्तथा कुशैः प्रमृज्य पादौ तु दिनमेक व्रती भवेत् ।

२ क्षत्रियाभिवादनेऽहोरात्रमुपवसेत् । वैश्याभिवादने द्विरात्र शूद्रस्याभिवादने त्रिरात्रमुपवासः ।

३ समित्पुष्पकुशाज्याम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकम् । जपं होम च कुर्वाण नाभिवादेत वै द्विजम् ।

४ नोदकुंभहस्तोऽभिवादयेत् न भैक्ष चरन्पुष्पाज्यादिहस्तो नाशुचिर्न जपन्न देवपितृकार्यं कुर्वन्न शयानः ।

अन्य स्मृतियोंमेंसे ढूंढने ग्रंथके गौरवके भयसे यहां नहीं लिखते ॥

भावार्थ-ब्राह्मणकी हिंसाके लिये दंड उठानेमें कृच्छ्र और दंडके मारनेमें अतिकृच्छ्र रुधिर निकासनेमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र और रुधिरके भीतर रहनेमें कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है ॥

इति प्रकीर्णकप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

देशंकालंवयःशक्तिंपापंचावेक्ष्ययत्नतः । प्रायश्चित्तंप्रकल्प्यंस्याद्यत्रचोक्तानानिष्कृतिः ॥ २९४ ॥

पद-देशं २-कालं २-वयः २-शक्तिं २-पापं २-चऽ- अवेक्ष्यऽ- यत्नतःऽ- प्रायश्चित्तं १-प्रकल्प्य १-स्यात् क्रि-यत्रऽ- चऽ- उक्ता १ नऽ- निष्कृतिः १-

योजना-देशं कालं वयः च पुनः शक्तिं यत्नतः अवेक्ष्य-तथा यत्र निष्कृतिः न उक्ता तत्र प्रायश्चित्तं प्रकल्प्य स्यात्-

तात्पर्यार्थ- निमित्त अनन्तहैं इससे शरीर के प्रति प्रायश्चित्तके निमित्त नहीं कह सक्ते-जो सामान्य रीतिसे निमित्त पूर्व कह आए और जो नहीं कहे उसमें प्रायश्चित्त विशेषके जाननेके लिये यह प्रकरण कहते हैं ॥

जो पूर्व प्रायश्चित्त कह आये और जो आगे कहेंगे वह प्रायश्चित्त देश-काल शक्ति और अवस्था इनको देखकर उस विशेष विषयमें समझना कि जिसमें करनेवालेके प्राणोंपर कुछ विपत्ति न हो अन्यथा प्रधान प्रायश्चित्तकी निवृत्ति हो जायगी-जैसे कि आगे यह कहेंगे कि दिनमें वायुको खाता हुआ और रात्रिको सूर्यके दर्शन पर्यंत जलमें बैठकर कालको व्यतीत करै सो इस प्रायश्चित्तमें रात्रिके समय जलमें निवास करनेका उपदेश यदि हिमाचल पर्वतके समीप रहने वालोंको किया जाय-अथवा अत्यन्त शीत (जाडा) जिसमें पडताहो ऐसे शिशिर आदि कालमें किया जाय तो-उस करनेवालेके प्राणोंकी विपत्ति हो जायगी इससे यह जलमें निवासकी कल्पना उस देश कालको छोडकर करनी-तिसी प्रकार कहीं अवस्था विशेषसेभी प्रायश्चित्तकी कल्पना होती है जैसे कि बारह वर्षका प्रायश्चित्त यदि नब्बे ९० वर्ष आदिकेको अथवा बारह वर्ष जिसकी अवस्था पूर्ण नहो-उसको बताया जाय तो अवश्य प्राणोंकी विपत्ति होजायगी इससे उस प्रायश्चित्तकी कल्पना अन्य अवस्था वालेके विषय करनी-इसीसे स्मृत्यन्तरमें वृद्ध आदिके विषयमें कहीं-आधा और कहीं चौथाई प्रायश्चित्त कहा है-वह पूर्वमें विस्तारसे कह आये-तिसी प्रकार धन दान और तप-येभी शक्तिकी अपेक्षासेही समझने-क्योंकि पात्रको पूर्ण धनदे इत्यादिसे जो पूर्व प्रायश्चित्त कहा है वह निर्धनके विषय संभव नहीं हो सक्ता-तिसी प्रकार जिसके पित्त आदिकी अधिकता हो उसको पराक आदि और स्त्री शूद्रको जप आदि संभव नहीं हो सक्ते-इसीसे यह कहा है कि गज आदिके दान करनेमें असमर्थ एक एककी शुद्धिके लिए कृच्छ्र व्रतको करै-तिसी प्रकार तप करनेमें जो असमर्थ है उसको स्मृत्यंतरमें पूर्व प्रायश्चित्तका ह्रास-(न्यूनता) इस वचनसे दिखाई है कि स्त्री और रोगी ये आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं[1]-महापातक आदिरूप है-वा ज्ञानपूर्वक है-अज्ञान पूर्वक किया है-वा एकवार किया है-वा अभ्याससे (वारंवार) किया है-इस प्रकार महापातक आदि रूपसे पापको देखकर-फिर समस्त धर्म शास्त्रोंकी पर्यालोचना

१ प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ।

करके उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करे-तिसमें जो प्रायश्चित्त अकामसे किये पापके विषयमें लिखा है वही प्रायश्चित्त कामकृत पापमें दुगुणा-और जो कामसे वारंवार पाप किया है उसमें चौगुणा-इस प्रकार अन्य स्मृतियोंके अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना है-तिसी प्रकार महापाप और उपपाप इनको करके जो दूसरेसे मिथ्या कहते हैं-वह जलमात्रको खाता हुआ महीनेतक बैठे यह जो प्रायश्चित्त कहा है इसमें महापाप और उपपातकका समान (तुल्य) प्रायश्चित्त कहना अयुक्त (ठीक नहीं)है-इससे पापकी अपेक्षासे मासिक व्रतको ह्रासकी कल्पना करनी-और जो-हसना-जंभाई लेना-स्फोटन-इनको अकस्मात् न करे-समुद्रके जलमें स्नान न करे-श्मश्रु (डाढी मुंछ) को न कटवावे-गर्भवाली स्त्रीका पति इनको करता हुआ प्रजाहीन हो जाता है-इत्यादिमें जो प्रायश्चित्तका उपदेश नहीं किया है यहांभी देश आदिकी अपेक्षासे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी-कदाचित् कोई यहां यह शंका करे कि कोईभी पाप ऐसा नहीं है कि जिसका प्रायश्चित्त न मिलता हो क्योंकि आगे जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उनकाभी इस वचनमें प्रायश्चित्त कहेंगे कि सब पापोंकी तथा उपपातक और जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है उन पापोंकी निवृत्तिके लिये सौ १०० प्राणायाम करे तिसी प्रकार गौतमनेभी इस वचनसे एक दिन आदि प्रायश्चित्त कहे हैं कि इनको ही जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उन पापोंमें विकल्पसे करे-उस शंकाका समाधान करते हैं कि यद्यपि सामान्यरीतिसे जो प्रायश्चित्त कहा है वह सत्य है तथापि सबमें देशकाल आदिकी अपेक्षा होती है इससे कल्पना करनेका अवसर अवश्य होता है क्योंकि निमित्तको लघु (थोडा) होनेसे सब हंसने जृंभण आदि निमित्तमें सौ १०० प्राणायामरूप प्रायश्चित्त युक्त नहीं है इससे पापकी अपेक्षासे ह्रासकी कल्पना करनी वा अन्य प्रायश्चित्त करना कदाचित् कोई शंका करे कि अकस्मात् हंसने आदि पापको लघुत्व किस प्रकार है जिसकी अपेक्षासे तुम प्रायश्चित्तके ह्रासकी कल्पना करते हो वहां प्रायश्चित्तकी अल्पता तो निष्कृति (प्रायश्चित्त)के न कहनेसेही सिद्ध है सो ठीक नहीं क्योंकि अर्थवादके कहनेसे बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक और अनुबंध आदिकी अपेक्षासे पापमें गुरु लघुभाव साक्षात् प्रतीत होता है तिसी प्रकार दण्डके ह्रास और वृद्धिकी अपेक्षा सेभी प्रायश्चित्तमें गुरुलघु भाव समझना जैसे कि ब्राह्मणके अवगोरण(दंड उठाना) आदिकरने पर सजातीयको प्राजापत्य आदि कहा है तिसमें यदि अनुलोम वा प्रतिलोम वा जिनका राज्याभिषेक हुआहै ऐसे क्षत्रिय आदि ब्राह्मणका अवगोरण करै तो उसमें दण्डका तारतम्य (अधिक वा न्यून) देखनेसे उस दण्डके अनुसार दोषकी अल्पता (थोडा)और महत्त्व (बहुत) समझना उसकेही अनुसार प्रायश्चित्तकाभी गुरुलघु भाव समझना दण्डका गुरुलघुभाव इसवचनसे दिखाया है कि प्रतिलोमको कुत्सित बोलनेपर दुगुना वा तिगुना दण्ड दे ।

भावार्थ-देश काल अवस्था शक्ति और पाप इनको यत्नसे देखकर और जिसमें

१ प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये । उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि ।

२ एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन् ।

१ प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुण त्रि गुणो दमः ।

प्रायश्चित्त न कहा हो वहां प्रायश्चित्तकी कल्पना करे-२९४-

दासीकुंभंबहिर्ग्रामान्निनयेरन्स्वबांधवाः ।
पतितस्यबहिःकुर्युःसर्वकार्येषुचैवतम् २९५

पद-दासीकुंभं२-बहिर्ग्रामात्ऽ-निनयेरन् क्रि-स्वबांधवाः १-पतितस्य६-बहिःऽ-कुर्युः क्रि-सर्वकार्येषु ७-चऽ-एवऽ-तम् २-

योजना-पतितस्य स्वबांधवाः दासीकुंभं ग्रामात् बहिः निनयेरन् च पुनः तं पतितं सर्वकार्येषु बहिः कुर्युः-

तात्पर्यार्थ-जीते हुए पतितके जो मातृ पक्ष और पितृपक्षके जातिके बांधव हैं वे सब इकट्ठे होकर सपिण्ड आदिने प्रेरी हुई दासी (धीमरी) के लाये हुए जलसे भरे घटको ग्रामसे बाहिर लिवा लेजाय यह घट निस्सारण चतुर्थी आदि रिक्ता तिथिके विषें दिनके पांचमें भागमें करना क्योंकि यह मनु (अ० ११ श्लो० १८२) का वचन है कि सपिण्ड बांधव पतित मनुष्यकी उदकक्रिया निन्दित दिनके विषें सायंकालके समय ज्ञाति-मनुष्य ऋत्विज और गुरु इनके समीप करैं अथवा सपिण्ड आदिकी प्रेरी हुई दासीही उस घटको लेजाय जैसे कि मनु (अ० ११ श्लो० १८३) ने कहा है कि दासी जलसे भरे घटको प्रेतके समान चरणसे औंधा मारदे और वे प्रेतके बांधव अहोरात्र उपवास करैं और दासीको प्रेतके बांधवोंके समान अशौच नहीं है यह वचन दक्षिणकी तरफ मुख करके और अपसव्य होकर इस विधिकी प्राप्तिके लिये है यह घटका लेजाना जलदान पिण्डदान आदि प्रेतक्रियाके किये पीछे करना क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि उस पतितके विद्यागुरु और सपिण्ड सब इकट्ठे होकर सब जलदान आदि प्रेतक्रियाको करैं इसके पात्रको औंधा मारैं अथवा दास (धीमर) वा कर्म करनेवाला अबकर (आवा) से पात्रको लाकर और दासीसे उस पात्रको भरवाकर और हाथमें लेकर दक्षिणाभिमुख होकर पांवसे पात्रको उलटा करदें वे सब इस पात्रको जलसे रहित करताहूं इस प्रकार नाम लेते हुए उसको सम्मति दें और प्राचीनावीति (सव्य) होकर और शिखाकी ग्रंथिको खोलकर विद्यागुरु और योनिसंबंधी सब उसे देखें फिर जलसे आचमन करके ग्राममें प्रवेश करैं यह पतित का त्याग जब समझना कि जब पतित, बांधवोंकी प्रेरणासेभी प्रायश्चित्तको न करै क्योंकि शंखकी स्मृति है कि उसके दोषोंको गुरु बांधव और राजा इनके आगे प्रकट करके फिर इसको कहा जायकि तू पुनः (फिर) सदाचारमें प्राप्त हो इस प्रकार कहने परभी यदि इसकी मति सदाचारमें अवस्थित नहो तब इसके पात्रको विपर्यस्त (उलटा) करैं फिर जलदान किएपीछे उस पतितको संभाषण और एक आसनपर बैठना इत्यादि कार्योंसे बहिर्भूत करैं सोई मनु (अ० ११

१ पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः। निन्दितेहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ।

२ दासी घटमपाम्पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बांधवैस्सह ।

१ तस्य विद्यागुरुयोनिसंबंधाश्च सन्निपत्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः कर्मकरो वाऽवकरात्पात्रमानीय दासी घटात् पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः पदा विपर्यस्येदिदम् अमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं त सर्वेऽन्वालभेरन्प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिसंबंधाश्च वीक्षेरन् अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः ।

२ तस्य गुरोर्बांधवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्यायानुभाष्य पुनः पुनराचारं लभस्वेति स यद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत् ।

योजना–पतितानां स्त्रीणां एष एव विधिः प्रकीर्तितः तासां स्त्रीणां वासः गृहान्तिके देयः तथा–सरक्षणं अन्नं–वासः देयम् ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्योंके परित्यागमें पिण्डदान और जलदानकी विधि है–जिनोंने प्रायश्चित्त कर लिया है उनके ग्रहण करनेमें परिग्रहकी विधि कही है वही विधि पतित स्त्रियोंके त्याग–और परिग्रहमेंभी समझनी–परन्तु इतनीही विशेष विधि है कि–जो पतित स्त्री है जिनका घटस्फोट आदि कर–चुके हैं उनको तृण और पत्तोंकी बनाये हुए कुटीरूप गृहमें निवास–अपने प्रधान गृहके समीप देना–और प्राणोंकी धारणा मात्र अन्न–और मलीन वस्त्र देना–और फिर अन्य मनुष्यसे उपभोग आदिमें प्रवृत्त हुई उनको निवारण आदि रक्षा करे–

भावार्थ–जो पतित मनुष्योंको पूर्व घटस्फोट आदि विधि कही है वही विधि पतित स्त्रियोंके विषयभी समझनी–उन स्त्रियोंको घरके समीप वसावे–अन्न और वस्त्र आदिसे रक्षा करे और अन्य पुरुषमें फिर आसक्त न होने दे ॥ २९७ ॥

नीचाभिगमनंगर्भपातनंभर्तृहिंसनम् ।
विशेषपतनीयानिस्त्रीणामेतान्यपिध्रुवम् ॥

पद–नीचाभिगमनं१ गर्भपातनं १ भर्तृहिंसनं १ विशेषपतनीयानि १ स्त्रीणां ६ एतानि १ अपि–ध्रुवम्–

योजना–नीचाभिगमनं–गर्भपातनं भर्तृहिंसनं–एतानि अपि स्त्रीणां ध्रुवं विशेषपतनीयानि–सन्ति– ॥

तात्पर्यार्थ–हीन वर्णके साथ भोग ब्राह्मणीसे भिन्नकोभी–गर्भका पातन–और ब्राह्मण से अतिरिक्तभी भर्त्ताका हिंसन (मारना) ये स्त्रियोंके पतित होनेमें असाधारण निमित्त हैं–और अपि शब्दसे जो–महापातक–अतिपातक–और वारंवार अभ्यास किए जो उपपातक पुरुषके पतित होनेमें निमित्त कहे हैं वेभी निश्चयसे स्त्रियोंके पतित होनेमें कारण हैं–इसीसे शौनेकने कहा है कि जो पुरुषके पतनमें निमित्त हैं वेही स्त्रियोंकेभी पतनमें निमित्त हैं–और ब्राह्मणी हीन वर्णके साथ गमन करनेसे अधिक पतित हो जाती है–जो कि वसिष्ठने यह कहा है कि धर्मके जाननेवाले लोकमें स्त्रियोंको भर्ताका वध भ्रूणहत्या अपने गर्भका पतन करना ये तीन पातक कहे हैं और इनमें जो भ्रूणहत्याका ग्रहण किया है वह दृष्टान्तके लिये है कुछ अन्यमहापातक आदिकोंको स्त्रियोंके पतनमें कारणताकी निवृत्तिके लिये नहीं और जो कि फिर वसिष्ठने हीं शिष्य गुरु इनसे भोग करने वाली और पतिके मारनेवाली और जो निन्दितसे विषय करे ये चार स्त्री परित्यागके योग्य होती हैं इस वचनमें चार स्त्रियोंकाही परित्याग लिखा है उसकाभी वह अभिप्राय है कि प्रायश्चित्त को न करती हुई पतित स्त्रियोंके मध्यमें ये चार शिष्यगा आदि स्त्रीही वस्त्र अन्न गृहमें निवास आदि जीवनवृत्ति को न देकर त्यागने योग्य होती हैं अन्य नहीं अर्थात् इन स्त्रियोंको अन्न आदि न दे और इनसे अन्य स्त्रियोंको तो अन्न आदि देकर वसावे इससे यह बात जानी गई कि प्रायश्चित्तको न करती हुई अन्य पतित स्त्रियोंको गृहके समीप

---

१ पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामधिकं पतति ।

२ त्रीणि स्त्रियाः पातकानि लोके धर्मविदो विदुः। भर्तुर्वधो भ्रूणहत्या स्वस्य गर्भस्य पातनं ।

३ चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या । पतिघ्नी च विशेषेण जुङ्गितोपगता च या ।

वास (वासो गृहान्तिके देयः) इत्यादिसे जो कहा है वह करने योग्य है ॥

भावार्थ-नीच पुरुषके साथ गमन गर्भका पातन पतिका मारना ये स्त्रियोंको अवश्यही पतित करने वाले हैं ॥ २९८ ॥

शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संवसेन्नतु ।
चीर्णव्रतानपिसतःकृतघ्नसहितानिमान् ॥

पद-शरणागतबालस्त्रीहिंसकान् २ संवसेत् क्रि-नऽ-तुऽ-चीर्णव्रतान् २ अपिऽ-सतः २ कृतघ्नसहितान् २ इमान् २ ॥

योजना-शरणागतबालस्त्रीहिंसकान् कृतघ्नसहितान् चीर्णव्रतान् अपि सतः इमान् न संवसेत् ॥

ता० भा०-शरण आयेको बालक और स्त्री इनको मारनेवाले और जो कृतघ्न हैं इनके दोष यदि प्रायश्चित्तसे क्षीण होगये हों तोभी इनके साथ व्यवहार न करे ये वाचनिक प्रतिषेध है इससे वचनको न मानना चाहिये ये बात न करनी क्योंकि वचनका बडा भार होता है-इससे यद्यपि व्यभिचारिणी स्त्रीके वधमें थोडाही प्रायश्चित्त कहा है तथापि उसके साथभी व्यवहारका प्रतिषेध इस वचनसे सिद्ध है ॥ २९९ ॥

घटेऽपवर्जितेज्ञातिमध्यस्थोयवसंगवाम् ।
प्रदद्यात्प्रथमंगोभिःसत्कृतस्यहिसत्क्रिया॥

पद-घटे७ अपवर्जिते ७-ज्ञातिमध्यस्थः१ यवसं २-गवां ६-प्रदद्यात् क्रि प्रथमं२-गोभिः ३ सत्कृतस्य ६- हिऽ-सत्क्रिया१ ॥

योजना-घटे अपवर्जिते सति ज्ञातिमध्यस्थः गवां यवसं प्रथमं दद्यात् हि यतः प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य सत्क्रिया भवति ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार प्रसंगसे स्त्रियोंको विषे विशेष विधिको कहकर प्रकरणवशसे फिर जिसने प्रायश्चित्तरूपी व्रत करलिया हो उसके विषे विशेष विधिको कहते हैं-कुण्डसे जलके भरे घटको निकालनेके पीछे प्रायश्चित्त करने वाला मनुष्य सपिण्ड आदिके मध्यमें स्थित होकर गौओंको यवस (भुस) दे जब गौ उस पतितका सत्कार करलें उसके अनंतर फिर ज्ञातिबांधव उसका सत्कार करें गौका सत्कार यह होता है कि उस पतितके दियेहुए यवसको निरशंक होकर भक्षण करना यदि गौ उसके दिये यवसको न खाय तो वह पतित फिर उस प्रायश्चित्तको करे जैसेकि हारीतनें कहा है कि अपने शिरसे यवसको लेकर गौको दे यदि वे गौ उसको ग्रहण करले तो बांधव उसके साथ यथावत् व्यवहार करें अन्यथा नहीं इस प्रमाणको स्वीकार करना ॥

भावार्थ-घटके दूर करने पर पतित अपने बांधवोंके मध्यमें स्थित होकर गौओंको यवस दे क्योंकि पूर्व उस गौके सत्कार किये हुएका सत्कार होता है ॥ ३०० ॥

विख्यातदोषःकुर्वीतपर्षदोनुमतंव्रतम् ।
अनभिख्यातदोषस्तुरहस्यंव्रतमाचरेत् ॥

पद-विख्यातदोषः१-कुर्वीत क्रि-पर्षदः६-अनुमतं२- व्रतं २- अनभिख्यातदोषः १-तुऽ-रहस्यं २- व्रतं २-आचरेत् क्रि-

योजना-विख्यातदोषः पर्षदः अनुमतं व्रतं कुर्वीत तु पुनः अनभिख्यातदोषः रहस्यं व्रतं आचरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जितना पाप जिसने कियाहो उस सबको यदि अन्य पुरुष जानलें तो पर्षद सभाके बताये हुए व्रतको करे यद्यपि आप संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थके विचारमें चतुर

1 स्वशिरसा यवसमादाय गोभ्यो दद्यादि हारीतगृह्यपुरुषैन व्यवहरेयुः

हो तथापि पर्षद्के समीप जाकर और उसके साथ विचार करके उसकी अनुमति के अनुसार व्रतको करे-तिसके समीप जानेके विषय अंगिराने विशेष कहा है कि निःसंशय पाप करनेके अनंतर जबतक पर्षद्के समीप न जाले तबतक भोजन न करे क्योंकि पर्षद्के समीप पापके विख्यात किये विना भोजन करताहुआ मनुष्य पापको बढाता है वह पतित सचैल, मौन, होकर स्नान करे और आर्द्र (गीले) वस्त्रोंसेही सावधान हो पर्षद्के समीप जाकर उसकी अनुमतिसे अपने पापको विख्यात करे और व्रतको लेकर फिरभी स्नान करके व्रतको करे यह पापका विज्ञापन दक्षिणा देनेके अनंतर करना क्यों कि पैराशरने कहा है कि पापी मनुष्य अपने पापको गौ वा वृषको देकर विख्यात करे यह दान उपपातकके विषय समझना महापातक आदिमें तो अधिक दानकी कल्पना करनी जो कि यह वचन है कि पापको प्राप्तहुआ मनुष्य एक वार जलमें कूदकर और पर्षदोंसे पापको विख्यात करके और कुछ देकर व्रतको करे यह प्रकीर्णक पापके विषयमें समझना पर्षद्का स्वरूप मनुने यह दिखाया है कि तीनोंवेद न्याय निरुक्त और मीमांसा आदिके अर्थके जाननेवाला और तीनों आश्रमी ये न्यूनसे न्यून दश जिसमें हों वह पर्षद् कहाती है तिसीप्रकार अन्यभी दो पर्षद् दिखायें हैं कि ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद इनके जाननेवाला धर्ममें संशयके निर्णय करनेमें यह दूसरा पर्षद् कहा है तिसीप्रकार एकभी वेदके जाननेवाला सावधान होकर जिस धर्मको निश्चय करले वहही परम धर्म समझना और अज्ञ (मूर्ख) दशसहस्रभी हों तथापि उनका कहा नहीं और इन पर्षदोंकी व्यवस्था संभवकी अपेक्षासे वा महापातक आदिकी अपेक्षासे समझनी जो कि स्मृत्यन्तरमें कहा है कि पातकोंमें सौ १०० मनुष्योंकी पर्षद् महापातकोंमें सहस्रकी और उपपातकोंमें पचासकी पर्षद् होते है और तिसीप्रकार अल्पपापमें अल्पपर्षद् समझनी यह वचन महापातक आदि दोषोंके अनुसार पर्षदोंका गुरु और लघुभाव होता है इस बातके प्रतिपादन (कहने) के विषयमें है संख्याके नियमके लिये नहीं क्यों कि नियम मानोंगे तो मनु आदि महास्मृतियोंके साथ दोष आवेगा तिसीप्रकार देवलने भी यहां विशेष दिखाया है कि अल्पपापोंके प्रायश्चित्तको तो ब्राह्मण शास्त्र आदिके विनाही स्वयं कहदें और महापापोंकी निष्कृति (प्रायश्चित्त) को तो राजा और ब्राह्मण शास्त्रसे परीक्षा करके कहें पर्षद्को व्रतका उपदेश अवश्यही करना चाहियें क्यों कि अंगिराकी

१ कृते निःसंशये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः । भुञ्जानो वर्धयेत्पापं यावन्नाख्याति पर्षदि । सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः । पर्षदोनुमतस्तस्य सर्वं विख्याप येन्नरः । व्रतमादाय भूयोपि तथा स्नात्वा व्रतं चरेत् ।

२ पापं विख्यापयेत्पापी दत्त्वा धेनुं तथा वृषं ।

३ तस्माद्द्विजः प्राप्तपापः सकृदाप्लुत्य वारिणि । विख्याप्य पापं पर्षद्भ्यः किंचिद्दत्त्वा व्रतं चरेत् ।

४ त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे पर्षदेषा दशावरा ।

१ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च । अपरापर्षद्विज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये । एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येत्समाहितः । स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामुदितोयुतैः ।

२ पातकेषु शतं पर्षत्सहस्रं महदादिषु । उपपापेषु पंचाशत्स्वल्पे स्वल्पं तथा भवेत् ।

३ स्वयन्तु ब्राह्मणा ब्रूयुरल्पदोषेषु निष्कृतिं । राजा च ब्राह्मणश्चैव महत्सु च परीक्षिताम् ।

४ आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः । जानन्तो न प्रयच्छन्ति ते यान्ति समतां तु तैः ।

स्मृति है कि जो दुःखी मनुष्य प्रायश्चित्तका मार्गण (ढूंढना) करते फिरते हैं उनके प्रायश्चित्तको जानतेहुए द्विज जो प्रायश्चित्तको नहीं बताते वे उनी पापियोंके समान होजाते हैं तिसीप्रकार पर्षद् जानकरही व्रतका उपदेश करे क्यों कि वसिष्ठकी स्मृति है कि जो पर्षद् धर्मशास्त्रके विना जाने प्रायश्चित्तको देती है उस प्रायश्चित्तसे पापी शुद्ध होजाता है और पर्षद् उसके पापको प्राप्त होती है पापके करनेवाले क्षत्रिय आदिको धर्मके उपदेश करनेमें तो अंगिराने यह विशेष दिखाया है कि ब्राह्मण जिन क्षत्रिय आदिने पाप किया है उनके मध्यमें (आगे) ब्राह्मणको करके संपूर्ण व्रतका उपदेश करे तिसीप्रकार धर्मपूर्वक शूद्रको सदा प्रायश्चित्तका उपदेश जप होम आदिसे अतिरिक्त करे तिसमें याग आदि अनुष्ठानके करने वालोंको जो जप आदिका और अन्य सबको तपका उपदेश करना क्यों कि यह वचन है कि अपने कर्म और तपके बीचमें सावधान जो मनुष्य है वे कदाचित् पापको प्राप्त होजाय तो उनको विशेषतः जप होम आदिका उपदेश करे-और जो नाममात्रके धारण करने वाले विप्र हैं अर्थात् अपने धर्मसे शून्य हैं और जो-मूर्ख-और धनसे रहित हैं उनको विशेषसे कृच्छ्रचांद्रायण आदिका उपदेश करे-

इति प्रकाशप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

१ अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः। प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदं व्रजेत्।

२ न्यायतो ब्राह्मणः क्षिप्रं क्षत्रियादेः कृतैनसः। अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा व्रतं सर्वं समादिशेत्। तथा शूद्रं समासाद्य सदा धर्मपुरःसरं। प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम्।

३ कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः कदाचित्पापमागताः। जपहोमादिकं तेभ्यो विशेषेण प्रदीयते। ये नामधारका विप्रा मूर्खा धनविवर्जिताः। कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि तेभ्यो प्रदीयते।

अब रहस्य प्रायश्चित्तको कहते हैं कि श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि विख्यात (ज्ञात) पापके नाश करनेवाली व्रतकी सन्तति (समूह) को कहकर-अब एकान्तमें किए अप्रसिद्ध पापके नाश करनेवाली निष्कृति (प्रायश्चित्त)को कहते हैं-तिसमें प्रथम सकल रहस्यव्रतके साधारण धर्मको कहते हैं-

कर्त्तासे व्यतिरिक्त (भिन्न) पुरुषोंने जिसका पाप न जाना हो ऐसा मनुष्य रहस्य (किसीको ज्ञात न हो) प्रायश्चित्तको करे कर्तृव्यतिरिक्तैः ऐसा कहनेसे स्त्रीसंभोग आदिमें उस पापके करनेमें स्त्रीभी कर्ता है-इससे उससे भिन्न पुरुषोंने जिसको दोषको न जानाहो ऐसे पुरुषको रहस्य व्रतका-अधिकार है यह समझना-इसमें यदि कर्त्ता स्वयंही धर्मशास्त्रमें कुशल होय तो अन्यको उस दोषको प्रकट किये विना अपने पापके नाश करनेमें उचित प्रायश्चित्तको स्वयं ही करे-और स्वयं उस प्रायश्चित्तको न जानता होय तो किसीने एकान्तमें ब्रह्महत्या आदि पाप किया है उसमें रहस्य प्रायश्चित्त क्या है इस प्रकार अन्य पुरुषके इस प्रकार कहनेसे पूछकर रहस्य प्रायश्चित्तको करे-इसीसेही स्त्री-शूद्रकोभी इसी मार्गसे रहस्य व्रतके ज्ञानकी सिद्धि होनेसे रहस्य व्रतका अधिकार सिद्ध है-कदाचित् कोई शंका करे कि रहस्य व्रतमें जप आदि प्रधान होते हैं और स्त्री शूद्रको विद्याके न होनेसे उन जप आदिके अधिकार न होनेसे-रहस्य व्रतका अधिकार नहीं-सो ठीक नहीं क्योंकि-रहस्य व्रतोंमें जप आदिकी प्रधानता एकान्ततः (सर्वथा) नहीं- क्योंकि-उनमें दान आदिकाभी उपदेश है-और गौतमके कहे हुए प्राणायाम आदिभी हैं-और

इतर जप आदिके अधिकारमेंभी-देवता-मंत्र-ऋषि-छन्द-इनका परिज्ञानही उपयोगी है-कुछ स्त्री शूद्रसे अन्यका विषय नहीं जैसे कि तडाग आदिके बनानेमें यह विप्रतिपत्ति नही होती कि इसको ज्योतिष्टोम आदिका अधिकार है-वा नही-किन्तु-केवल देवताके परिज्ञानमात्रकीही अवश्य अपेक्षा होती है-क्योंकि व्यासकी स्मृति है कि ऋषि-छन्द-देवता-और योग इनको विना जाने जो पढावे वा जपे है वह अत्यंत पापी होता है-इससे स्त्री शूद्रकोभी रहस्य व्रतका अधिकार है-इसमें जहां आहार विशेष नहीं कहा वहां दुग्ध आदि-और जहां काल विशेष नहीं कहा वहां संवत्सर आदि-देश विशेष नही कहा वहां शिलोच्चय आदि गौतम आदिके कहे हुए प्रकाश प्रायश्चित्तकी समान अन्वेषण (ढूंढना) करले ॥

भावार्थ-जिसका पाप प्रसिद्ध हो गयाहो-वह पर्षदकी अनुमतिसे व्रतको करै-और जिनका दोष विख्यात नहीं है वे रहस्यव्रतको करें ॥ ३०१ ॥

त्रिरात्रोपोषितोजप्त्वाब्रह्महात्वघमर्षणम् ।
अंतर्जलेविशुद्ध्येतदत्त्वागांचपयस्विनीम् ॥

पद-त्रिरात्रोपोषितः१ - जप्त्वा-ब्रह्महा१-तु-अघमर्षणम् २-अन्तर्जले ७-विशुद्ध्येत क्रि-दत्त्वा-गां २ च- पयस्विनीं २ ॥

योजना-ब्रह्महा त्रिरात्रोपोषितः सन्-अन्तर्जले अघमर्षणं जप्त्वा च पुनः पयस्विनीं गां दत्त्वा विशुद्ध्येत ॥

तात्पर्यार्थ-तीन रात्र उपवास करके जलके भीतर अघमर्षणऋषि है जिसका-अनुष्टुप् छन्द है भाववृत्त जिसका देवता है ऐसे 'ऋतं च सत्यं' इत्यादि तृच सूक्तको जप कर और तीन रात्रके अन्तमें एक दूध देती हुई गौको दे कर ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता है जप जलके भीतर तीन वार करना-जैसे कि सुमंतुने कहा है कि-देवता-द्विज-और गुरु इनको मारकर जलके भीतर तीनवार अघमर्षण सूक्तको जपे-माता-भगिनी-मौसी-पुत्रवधू-सखी-इनको और जो अगम्य हैं उनके साथ गमन करके जलके भीतर तीनवार अघमर्षणका जप करै तो शुद्ध होता है-यह प्रायश्चित्त काम (जानकर) से जो किया है-उसके विषयमें समझना-और जो कि यह मनु (अ० ११ श्लो० २४८) का वचन है कि व्याहृति-और ॐकार सहित षोडश प्राणायाम मासपर्यंत प्रतिदिन करै तो भ्रूणहा पवित्र होता है-वह वचनभी इसी विषयमें उसको समझना-जो गौके देनेमें असमर्थ है-जो कि-गौतमनें छत्तीस ३६ दिनके व्रतको कहकर यह कहा है कि ब्रह्महत्या-सुरापान-सुवर्णकी चोरी-गुरुकी स्त्रीके साथ गमन-इन पापोंमें उस व्रतके ही करै-प्राणायामोंसहित स्नान करके अघमर्षणको जपै-यह प्रायश्चित्त अकाम (अज्ञानसे) वधके विषयमें है-और जो

१ अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च । योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः ।

१ देवद्विजगुरुहन्ताप्सु निमग्नोऽघमर्षणं सूक्तं त्रिरावर्तयेत् मातरं भगिनीं गत्वा मातृष्वसारं स्नुषां सखीं चान्यदागम्यागमनं कृत्वाऽघमर्षणमेवान्तर्जले त्रिरावर्त्य तदेतरमात्पूतो भवति ।

२ सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश । अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ।

३ तद्व्रत एव ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नातोऽघमर्षणं जपेत् ।

कि बौधायनने कहा है कि ग्रामसे पूर्व दिशा उत्तरदिशाको निकलकर स्नान और शुद्धहो शुद्ध वस्त्रोंको धारणकर जलके समीप स्थलकी भूमिको लीपकर एकवार आर्द्र किये वस्त्रोंसे युक्त और एकवार पवित्र किये पाणिसे (हाथ) अघमर्षण और वेद इनको सूर्याभिमुख होकर पढे और प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकालके समय सौसौ और नक्षत्रोंके उदय होनेपर एक पस यावकको खाय इस प्रकार करता हुआ पापी ज्ञानसे किये वा अज्ञानसे किये उपपातकोंसे सात रात्रिमें और महापातकोंसे बारह रात्रिमें मुक्तहो जाता है और जोकि यह कहा हैकि ब्रह्महत्या सुरापान सुवर्णस्तेय इनको वर्जकर उन महापातकोंकोभी इकीस रात्रिमें तर जाता है वह कामसे करनेवाले पतितके विषयमें है अथवा अकामसे किये श्रोत्रिय आचार्य और वानप्रस्थके विषयमें है जोकि मनुने यह कहा हैकि (अ० ११ श्लो० २५८) वनके विषे प्रयत्नसे तीनवार वेदकी संहिताको पढकर तीन पराकों (कृच्छ्रका भेद) से शुद्ध हुआ सब पातकोंसे मुक्त होजाता है वह कथन कामसे श्रोत्रिय आदिके वधके विषयमें है और अन्यत्र कामसे जो अभ्यास (वारंवार) से पाप कियाहो उसके विषयमें है जोकि बृहद्विष्णु ने यह कहा हैकि ब्रह्महत्याको करके पुरुष ग्रामसे पूर्वदिशा वा उत्तरदिशामें जाकर बहुतसे ईंधनमें अग्निको प्रज्वलित करके उसमें अघमर्षण मंत्रसे आठ सहस्र ८००० घीकी आहुति दे तिसके अनंतर इसकर्मसे पूत (पवित्र) होजाता है वह बृहद्विष्णुका वचन निर्गुण ब्राह्मणके मारनेके विषयमें वा अनुग्राहकके विषयमें समझना जोकि यमने कहा हैकि युक्त होकर तीन दिन उपवास करे तीन दिन जलपीकर रहे और तीनवार अघमर्षणको जपे तो सब पातकोंसे छूटता है वह वचन गुणवाले हंतासे यदि निर्गुण ब्राह्मण मारा जाय तो उसके विषयमें वा प्रयोजक और अनुमंताके विषयमें समझना जोकि हारीतने कहा हैकि महापातक अतिपातक और उपपातक इनमें किसीके होनेमें अथवा तीनोंके होनेमें तीनवार अघमर्षणको जपे वह वचन निमित्त (पाप) के कर्ताके विषयमें समझना इसी प्रकार अन्यभी स्मृतिओंके वचन देख देखकर इसी प्रकार तिसर विषयकी विषयता पृथक् पृथक् समझना ग्रंथके बढनेके भयसे हम नहीं लिखते यही मत यागस्थ स्त्री क्षत्रिय वैश्य आत्रेयी अग्निहोत्रीकी स्त्री गर्भिणी और विना जाने गर्भ इनके मारनेमें चौथाई कम करके करना

भावार्थ—ब्रह्महत्यामें त्रिरात्र उपवास और अघमर्षणको जलके भीतर जपकर और पयस्विनी गौ देकर शुद्ध होता है—॥ ३०२॥

---

१ ग्रामात्प्राचीं वोदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य स्नातः शुचिः शुचिवासाः उदकान्ते स्थण्डिलमुपलिप्य सकृत्क्लिन्नवासाः सकृत्पूतेन पाणिनादित्याभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्यायमधीयीत प्रातः शतं मध्याह्ने शतमपराह्णे शतं परिमितं वोदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतियावकं प्राश्नीयात् ज्ञानकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते द्वादशरात्रान्महापातकेभ्यो ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयानि वर्जयित्वा एकविंशतिरात्रेण तान्यपि तरति।

२ ऋचां वा संहितां त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् । मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥

१ ब्रह्महत्यां कृत्वा ग्रामात्प्राचीं उदीचीं वा दिश- [illegible] पावकैः सर्वैर्विमुक्तस्त्वघमर्षणम् ।

२ महापातकातिपातकोपपातकानामेकतमेन सं- नियतो वाऽघमर्षणमेव त्रिर्जपेत् ।

४२

लोमभ्यःस्वाहेत्यथवादिवसंमारुताशनः ॥
जलेस्थित्वाभिजुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुतीः ॥

पद–लोमभ्यः ४–स्वाहा०–इति०–अथवा०–दिवसं २– मारुताशनः १–जले७ स्थित्वा०–अभिजुहुयात् क्रि– चत्वारिंशत्२ घृताहुतीः२

योजना–अथवा दिवसं अभिव्याप्य मारुताशनः लोमभ्यःस्वाहा इति चत्वारिंशत् घृताहुतीः जले स्थित्वा अभिजुहुयात्–

ता० भा०–अथवा अहोरात्रका उपवास करके रात्रिमें जलमें वसकर प्रातःकाल जलसे निकल कर लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्रों से एक २ सेपांच २ आहुति इस प्रकार चालीश घीकी आहुति अग्निमें दे इस प्रायश्चित्तका विषय पूर्वोक्त प्रायश्चित्तके समान समझना क्योंकि जलमें वसनेमें क्लेश बहुत होता है ॥ ३०३ ॥

त्रिरात्रोपोषितोहुत्वाकूश्मांडीभिर्घृतंशुचिः।
ब्राह्मणस्वर्णहारीतुरुद्रजापीजलेस्थितः ॥

पद–त्रिरात्रोपोषितः १–हुत्वा०– कूश्मांडीभिः ३ घृतं २ शुचिः १ ब्राह्मणः १स्वर्णहारी १तु०–रुद्रजापी १जले ७स्थितः१

योजना–त्रिरात्रोपोषितः कूश्माण्डीभिः घृतं हुत्वा शुचिः भवति तुपुनः स्वर्णहारी जले स्थितः रुद्रजापी शुचिः भवति–

तात्पर्यार्थ–तीन रात्र उपवास करके अनुष्टुप् जिनका छंद है और मंत्रलिंग जिनका देवता है ऐसी यद्देवादेवहेडनम् इत्यादि कूश्मांडी ऋचाओंसे अग्निमें चालीश घीकी आहुति देकर सुरा पीनेवाला शुद्ध होता है तिसी प्रकार बौधायनने भी कहा है कि जो अपनी आत्माको पापसे अपवित्र मानता है वह कूश्मांडी ऋचाओंसे होम करै तिससे जितनें भ्रूण हत्यासे कम पाप हैं उन सबसे छुटता है अथवा स्वप्नसे अन्यत्र अयोनिमें वीर्यको गेर कर इसी होमसे शुद्ध होता है जो कि मनुने यह कहा है (अ. ११ श्लो. २६२) आपोहिष्ठा इत्यादि वसिष्ठ जिनका देवता है ऐसी तीन ऋचा माहित्र्य और शुद्धवती ऋचाओंको जपकर सुरापानवालाभी शुद्ध होता है इत्यादि श्लोकसे जो एक मासतक प्रति दिन षोडश १६ वार इस वासिष्ठे ऋचा और महित्रीणामवोस्तु । एतोन्विद्रंस्तवाम इस माहित्री और शुद्धवती इनमें एकका ऋचाका जप कहा है वह जप त्रिरात्र उपवास और कूश्माण्डी ऋचाओंसे होम करनेमें जो असमर्थ है उसके विषयमें समझना और यह वचन अकामसे जो पैष्टी मदिराका पान एकवार कियाहो उसके विषय और गौडी माध्वी मदिराका पान जो वारंवार किया हो उसके विषयमें समझना जो कि मनुने फिर (अ. ११ श्लो. २५६) कि शाकल होमके मंत्रोंसे वर्ष दिन घृतका होम वा नम इत्यादि ऋचाको जप करने वाला बडे भारी पापकोभी नष्ट करता है इस श्लोकमें एक वर्ष तक प्रति दिन (देवकृतस्यैनस) इत्यादि आठ ऋचाओंसे होम अथवा (नम इदुमं नम आविवास) इस ऋचाका जप जो कहा है वह कामसे पाप करने वाले पुरुषके विषयमें है और जो कि महापातकसे युक्त मनुष्य सावधान होकर गौओंका अनुगमन और पावमानी ऋचाओंका वर्षदिनतक

१ अथकूश्माण्डीभिर्जुहुयाद्योऽपूत इवात्मानं मन्येत यावदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यते अयोनौ वा रेतः सिक्त्वान्यत्र स्वप्नात्।

१ मासं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रति प्रति। माहित्र्यं शुद्धवत्यश्च सुरापोपि विशुद्ध्यति।

२ अपनः शोशुचदघं प्रतिस्तोमेभिरुषसं।

३ मंत्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः। स गुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचं।

जप और भिक्षाको भोजन करता है वह शुद्ध हो जाता है यह वचन है वहे अभ्याससे वारंवार किये पापके विषयमें वा जिसने सब महापातक किये हों उसके विषयमें है ॥

जो ब्राह्मण स्वर्णको चुरावे वह तीन रात्र उपवास करके जलके मध्यमें बैठ कर नमस्ते रुद्र मन्यव इत्यादि शत रुद्रीका जप करता हुआ शुद्ध होता है शातातपने इसमें विशेष दिखाया है कि मद्यपान गुरुकी स्त्रीसे गमन स्तेय और ब्रह्महत्या इनको करके भस्म शरीरसे लपेट और भस्मरूपी शय्या पर सोता हुआ मनुष्य रुद्रीके पठन करनेसे सब पापोंसे छुट जाता है रुद्रीका जप एकादश ११ बार करना क्योंकि अत्रि की स्मृति है कि धर्मके जाननेवाला एकादशवार रुद्रका जप करके बडे पापोंसे युक्तभी छुट जाता है इसमें संशय नहीं जो कि मनु (अ. ११ श्लो. २५०) ने एकवारभी शिवसंकल्पमस्तु इत्यादि ऋचाको जपता हुआ मनुष्य सुवर्ण चुरा करभी क्षण मात्रमें निष्पाप हो जाता है इस श्लोकमें वामन सूक्तकी ५२ ऋचा हैं संख्याकी जिसमें ऐसे (अस्य वामस्य पलितस्य होतुः) इस सूक्तका तथा (यज्जाग्रतो दूरमुदैतु दैवं) इत्यादि शिवसंकल्पकी हुई छः ऋचाओंका एकवार जप कहा है वह इस सुवर्णस्तेयके विषयमें है जिसका स्वामी अत्यन्त निर्गुण हो और हरनेवाला गुणवान् हो वा सुवर्ण न्यून परिमाण (थोडा) वाला हो अथवा अनुग्राहक वा प्रयोजकके विषयमें समझना और उस पापकी आवृत्ति अर्थात् वारंवार करनेमें तो (महापातकसंयुक्तोनुगच्छेत्) इत्यादि श्लोकमें कहा हुआ प्रायश्चित्त समझना–

भावार्थ–तीन रात्र उपवास करके कूष्माण्डी ऋचाओंसे अग्निमें घीका होम करके सुरापः शुद्ध हो जाता है और सुवर्णके चुरानेवाला ब्राह्मण जलमें बैठकर रुद्रके जप करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३०४ ॥

सहस्रशीर्षाजापीतुमुच्यतेगुरुतल्पगः ।
गौर्देयाकर्मणोस्यांतेपृथगेभिःपयस्विनी ॥

पद–सहस्रशीर्षाजापी १तुऽ–मुच्यते क्रि–गुरुतल्पगः १ गौः १ देया १ कर्मणः ६ अस्य६अन्ते ७ पृथक्ऽएभिः ३ पयस्विनी१–

योजना–तुपुनः गुरुतल्पगः सहस्रशीर्षाजापीसन् मुच्यते एभिः पापिभिः अस्य कर्मणः अन्ते पयस्विनी गौः पृथक् २ देया–

तात्पर्यार्थ–गुरुकी स्त्रीसे गमन करने वाला नारायणका देवता अनुष्टुप् जिसका छंद है पुरुष जिसका देवता है ऐसी षोडश ऋचा ओंके सूक्तको जप तो तिस पापसे मुक्त हो जाता है सहस्रशीर्षाजापी इस पदमें ताच्छील्यमें णिनिप्रत्यय है अर्थात् सहस्रशीर्षाके जप करनेमें जिसका शील (स्वभाव) हो वह सहस्रशीर्षाजापी होता है इससे सूक्तकी आवृत्ति प्रतीत होती है आवृत्तिमें संख्याकी अपेक्षा हुई तो इस श्लोकसे नीचले श्लोकमें जो चालीश संख्या कही है उसीका अनुमान होता है इससे वही संख्या समझनी इस श्लोकमेंभी पूर्व श्लोकमें कहे निराप्रोपापित इस पदका संबंध होता है इसीसे शुद्ध–

१ महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः। अभ्यस्यान्दं पापमारीभिशावरी विशुद्धयति ।

२ मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा । भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः ।

३ एकादशगुणान्वापि रुद्रानावर्त्य धर्मवित् । महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ।

४ सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च । सुवर्णमपहृत्यापि क्षणाद्भवति निर्मलः ।

हिष्णुने कहा है कि तीन रात्र उपवास करके गुरुतल्पग, पुरुषसूक्तका जप और होम करनेसे शुद्ध होता है. सुराप सुवर्णका चोर गुरुतल्पग ये तीनों इस तीन रात्रके व्रतके अंतमें बहुत दूध देनेवाली गौको दे यह अकामसे किये पापके विषयमें समझना जोकि मनु (अ० ११ श्लो० २५१) ने गुरुतल्पग हविष्पांती नतमंह इन दो ऋचा और पुरुषसूक्तको जपकर पापसे मुक्त होता है इस श्लोकमें हविष्पांतीमजरं स्वर्विदा इसका वा नतमंहो नदुरितं इसका वा इति मेमनः वा सहस्रशीर्षा इसका महीनेतक प्रतिदिन षोडश२ ऋचाओंका चालीस वार जप कहा है वह अकामसे किये पापके विषयमें समझना और जो काम (जानकर) कृतपाप है उसमें तो (मंत्रः शाकलहोमीयैः) इत्यादि ऋचासे जो प्रायश्चित्त कहा है वह समझना क्योंकि षट्त्रिंशत्के मतमें कहा है कि द्विजन्मा महाव्याहृतियोंको पढकर तिलोंसे होम करे उपपातककी शान्तिके लिये सहस्र आहुतियोंसे होम करे और जो महापातकसे युक्त होय तो लक्ष आहुतीसे शुद्ध होता है वह वारंवार किये पापके विषयमें समझना जोकि यमने कहा है कि अस्यवामीयं वा पावमानी वा कुन्ताप वा वालखिल्य निविन्मैष वृषाकपि होता वा रुद्र इनको जपकर सब पातकोंसे छुटता है वह वचन व्यभिचारिणी स्त्रीसे गमन करनेके विषयमें है और जो गुरुतल्पके अतिदेश (समान माने) के विषय वा उसके समान पातक और अतिपातक हैं उनमें क्रमसे इस प्रायश्चित्तका चतुर्थांश वा अर्ध अंश कमकरके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था समझनी अथवा इस हारीतका कहा प्रायश्चित्त समझना कि पातक अतिपातक उपपातक और महापातक इन एक२के वा समस्तोंके होनेमें अघमर्षणकोही तीनवार जपे महापातकका संसर्ग जिसे हुआ हो वहभी इस वचनसे उसीके प्रायश्चित्तको करे जिसके साथ संसर्ग हो कि वह संसर्गी उसीके प्रायश्चित्तको करे कदाचित् कोई शंका करे कि अध्यापन आदिके संसर्गमें अनेक कर्त्ता होते हैं इससे उसके प्रायश्चित्तमें रहस्यत्वकी अनुपपत्ति है. सो ठीक नहीं क्योंकि जैसे अनेक कर्त्ताओंसे होने परभी पराई स्त्रीके गमन रूप पापके प्रायश्चित्तमें रहस्यत्व है इसी प्रकार यहांभी कर्त्तासे व्यतिरिक्त तृतीय आदि (भिन्न) के न जानने मात्रसेही रहस्यता (गुप्त) है इससे अध्यापन आदि पापकाभी रहस्य प्रायश्चित होताहै इसी प्रकार अतिपातक आदिके संसर्गकोभी उसी अतिपातकीको कहा प्रायश्चित्त समझना ॥

भावार्थ–गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला सहस्रशीर्षा इस सूक्तके जपसे शुद्ध होताहै और ये गुरुतल्पग आदि प्रायश्चित्तके अंतमें गौको दे ॥ ३०५ ॥ इति महापातक रहस्य प्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

प्राणायामशतंकार्यंसर्वपापापनुत्तये ।
उपपातकजातानामनादिष्टस्यचैवहि ३०६.

---

१ त्रिरात्रोपोषितः पुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुद्ध्येत् ।

२ हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च । जपित्वा तु पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ।

३ महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैः कार्यो द्विजन्मना । उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया । महापातकसंयुक्तो लक्षहोमेन शुद्ध्यति ।

४ जप्त्वाऽस्यवामीयं पावमानीरथापि वा । कुन्तापं वालखिल्यांश्च निविन्मैषां वृषाकपिम् । होतॄन्रुद्रान्सकृज्जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ।

१ पातकातिपातकोपपातकानामन्यतमे सन्निपाते वा अघमर्षणमेव त्रिर्जपेत् ।

पद-प्राणायामशतं १-कार्यं १-सर्वपापापनुत्तये ४ उपपातकजातानां ६ अनादिष्टस्य ६ च-एव-हि-

योजना-गोवधादिसर्वपापापनुत्तये चपुनः उपपातकजातानां अनादिष्टस्य पापस्य अपनुत्तये प्राणायामशतं कार्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-गोवध आदि छप्पन ५६ उपपातक और जिनका रहस्य व्रत नहीं कहा ऐसे जातिभ्रंश करने वाले सब पापोंके दूर करनेके लिये सौ १०० प्राणायाम करने तथा महापातकसे लेकर प्रकीर्णपर्यंत जितने पाप हैं उन सबके दूर करनेके लिये प्राणायाम करने तहां महापातकके लिये चारसौ ४०० और अतिपातकोंके लिये तीन सौ ३०० और अनुपातकोंके लिये दो सौ२०० इस प्रकार संख्याकी विशेष वृद्धि समझनी उपपातकरूप पापोंमें महापातकके प्रायश्चित्तका चतुर्थांश रूप प्रायश्चित्त देखा जाता है इसीसे प्रकीर्णकरूप पापमें प्रायश्चित्तके ह्रास (कमी) की कल्पना करनी इसीसे यमने कहा है कि दश १० ओंकार सहित चार सौ ४०० प्राणायामोंके करनेसे ब्रह्महत्यासे छुटता है अन्यपातकोंकी तो क्या वार्ता है बौधायननेभी यहां विशेष दिखाया है कि वाणी चक्षु श्रोत्र त्वचा प्राण मन इनकेभी व्यतिक्रम (अन्यथा होना) में तीन प्राणायामोंसे शुद्ध हो जाता है शूद्रोंका गमन और अन्नके भोजनमें पृथक् २ सात दिन सात प्राणा यामोंको करै अभक्ष्य अभोज्य और अभक्ष्य वस्तुके भोजन करनेमें वा मधु मांस घी तेल लाख लवण इनसे अन्य अपण्य वस्तुके बेचनेमें और इसी प्रकारके जो अन्य पापहों उनमें बारह दिनतक बारह २ प्राणायामोंको करै और जो पातक उपपातकोंसे भिन्न अन्य पाप इसी प्रकार केहीं उनमें पन्द्रह दिनतक बारह२प्राणायामोंको करै और जिनसे पतितहो जाय ऐसे पातक उप पातकोंको छोडकर जो इसी प्रकारके अन्य पापहैं उनमें महीनातक बारह २ प्राणायामोंको करै और अन्यपातकोंको छोडकर जो इसी प्रकारके पाप हैं उनमें पन्द्रह दिनबारह२प्राणायामोंको करै और पातक रूप पापके होनेमें वर्ष दिनतक बारह २ प्राणायामोंको करै बौधायनके कहे विशेषमें१-वाक् चक्षुः इ-

१ दशप्रणवसंयुक्तैः प्राणायामैश्चतुःशतैः । मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किं पुनः शेषपातकैः ।

१ अपि वाक्चक्षुःश्रोत्रत्वक्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषु त्रिभिः प्राणायामैः शुद्ध्यति, शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेषु पृथक् पृथक् सप्ताहं सप्त प्राणायामान्धारयेत्, अभक्ष्याभोज्यामेध्यप्राशनेषु तथा चापण्यविक्रयेषु मधुमांसघृततैललाक्षालवणरसान्नवर्जितेषु, यच्चान्यदप्येवंयुक्तं स्यात् द्वादशाहं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्, अथ पातकोपपातकवर्ज्यं यच्चाप्यन्यदप्येवं युक्तं स्यादर्धमासं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् उपपातकपतनीयवर्ज्यं यच्चाप्यन्यदेवं युक्तं स्यान्मासं द्वादशार्धमासान् द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्, अथ पातकवर्ज्यं यच्चाप्यन्यदप्येवं युक्तं अर्धमासं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत् । अथ पातकेषु संवत्सरं द्वादशद्वादश प्राणायामान्धारयेत् ।

* इस बौधायनके वचनका जो अर्थ मिताक्षरामें लिखा है उसकेही अनुसार भावार्थ लिखा है परन्तु बौधायनके अनुसार वह संख्या प्राणायामोंकी नहीं मिलती जो मिताक्षरामें लिखी है क्योंकि नंबर ५ में द्वादशार्धमासान् इस पदके न होनेसे ३६० प्राणायामोंकी सख्या ठीक होसकती है नंबर ६में अर्ध मासमें प्रतिदिन बारह२के हिसाबसे दो सहस्र दोसौ साठ २२६० जो प्राणायाम लिखे हैं वे ठीक नहीं होसकते-इससे नंबर ६ मे 'अर्धमास'के स्थानमें 'षण्मासं'बौधायनके वचनमें और मिताक्षरामे षट्चत्वारिंशदधिकद्विसहस्र-संख्याका' २२६० के स्थानमें षट्चत्वारिंशद्दिद्विसहस्र संख्याकाः प्राणायामाः २१६० अर्थात् दो सहस्र एकसौ साठ प्राणायाम करने ठीकहै हमने इस लिये न बदलीक ऋषियोंकी उक्तिमें हस्ताक्षेप करना नहीं

त्यादि वचनसे जो तीन प्राणायाम कहे हैं वे प्रकीर्णक पापके अभिप्रायसे हैं और २-शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजन इत्यादि वचनोंसे जो उनंचास ४९ प्राणायाम कहे हैं वे उपपातक विशेषोंके अभिप्रायसे हैं-तिसी प्रकार ३-अभक्षाभोज्य इत्यादि वचनसे एक सौ चवालीस १४४ प्राणायाम जो कहे हैं वेभी उपपातक विशेषोंके अभिप्रायसेही समझने-४-अथ पातकोपपातकवर्ज्यं-इत्यादि वचनसे जो एकसौ अस्सी १८० प्राणायाम कहे हैं वे जातिभ्रंशकारक आदि पापोंके अभिप्रायसे समझने-और५-उपपातक पतनीयवर्ज्यं-इत्यादि वचनसें जो तीनसौ साठ ३६० प्राणायाम कहे हैं वे गोवध आदि उपपातकोंके अभिप्रायसे हैं६-अथपातक वर्ज्यं-इत्यादि वचनसे जो दो सहस्र दो सौ साठ २२६० प्राणायाम कहे हैं वे अतिपातक और अनुपपातक रूप पापोंके अभिप्रायसे हैं-और इसीप्रकार जो ७-अथपातकेषु-इत्यादि वचनसे चार सहस्र तीनसौ वीस ४३२० प्राणायाम कहे हैं वे महापातक रूप पापोंके विषयमें समझने जो कि मनु (अ. ११ श्लो. १५३) ने स्थूल (गुरु) और (लघु) पापोंको अपनोदन (दूरकरना) करनेकी इच्छा करताहुआ पुरुष अवेत्यृचं वा यत्किंचेदम् इस ऋचाका वर्ष दिनतक जप करे इस श्लोकसे वर्ष दिनतक प्रतिदिन अर्थान्तर (अन्यकार्य) का जिसमें विरोध न हो ऐसे कालमें अवते हेळोवरुण इसका वा यत्किंचेदम् वा इतिमें मनः शिवसंकल्पमस्तु इस ऋचाका जप कहा है वह अभ्याससे किये पापके विषयमें समझना ॥

योजना-सब गोवध आदि पाप उपपातक और जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा इन पापोंके दूर करनेमें शत प्राणायाम करे ॥३०६॥

१ एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनं । अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति च ।

ओंकाराभिप्लुतंसोमसलिलंपावनंपिबेत् ॥
कृत्वातुरेतोविण्मूत्रप्राशनंतुद्विजोत्तमः ॥

पद-ओंकाराभिप्लुतं २ सोमसलिलं २ पावनं २ पिबेत् क्रि-कृत्वाऽ-तुऽ- रेतोविण्मूत्रप्राशनं २ तुऽ-द्विजोत्तमः १ ॥

योजना-तुपुनः द्विजोत्तमः रेतोविण्मूत्रप्राशनं कृत्वा ओंकाराभिप्लुतं पावनं सोमसलिलं पिबेत् ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मण-वीर्य, विष्ठा, और मूत्र इनको खाकर ओंकारसे अभिमंत्रित किये शुद्धिका साधन रूप जो सोमलताका रस है उसको पीवै वह प्रायश्चित्त अज्ञानसें किये पापके विषयमें है ज्ञानसे किये पापमें तो सुमन्तुने यह कहा है कि लहसन, सलगम, गाजर, और कुम्भिका, (तरबूज) आदि तथा हंस ग्रामका कुक्कुट कुत्ता गीदड आदि का मांस इनको भक्षण करके कण्ठतक जलमें प्रविष्ट होकर शुद्धवती ऋचाओंसे प्राणायाम और महाव्याहृतियोंको पढकर उरस्थल (छाति) पर आये हुये जलको पीकर शुद्ध होता है मनु(अ. ११ श्लो१५३) नेभी सात सात प्रकारके अभक्ष्यके भक्षणमें अन्य प्रायश्चित्त कहा है कि कि प्रतिग्राह्य (ग्रहण करनेके योग्य) नहो ऐसे प्रतिग्रहको लेकर और निन्दित अन्नको खाकर जो मनुष्य तरत्समंदी ऋचाको जप

१ रेतोविण्मूत्रप्राशनं कृत्वा लशुनपलाण्डुगृञ्जनकुम्भिकादीनामन्येषां चामक्ष्यभक्षणं कृत्वा हंसग्रामकुक्कुटश्वशृगालादिमांसभक्षणं कृत्वा ततः कण्ठमात्रमुदकमवतीर्य शुद्धवतीभिः प्राणायामं कृत्वा अथ महाव्याहृतिभिरुरोगमुदकं पीत्वा तदेतस्मात्पूतो भवति ।

२ प्रतिग्राह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितं जपेत् तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ।

करता है वह तीन दिनमें शुद्ध होता है-अप्रतिग्राह्य (प्रतिग्रह लेने अयोग्य) शब्दसे विष शस्त्र सुरापान आदिसे जो पतित हैं उनका द्रव्य समझना जो मनुष्य जलमें वीर्य विष्ठा और मूत्र आदि शरीरके मलको छोडता है उसके विषयमेंभी मनुने कहा है कि जलोंके विषे मल आदिका पतन करके भिक्षाका भोजन करता हुआ महीनेतक स्थित रहै ॥

भावार्थ-द्विजोत्तम वीर्य विष्ठा और मूत्र इनको जलमें गेरकर ओंकारसे अभिमंत्रण किये शुद्ध सोमलताके जलको पीवे ॥३०७॥

निशायांवादिवावापियदज्ञानकृतंभवेत् ॥
त्रैकाल्यसंध्याकरणात्तत्सर्वंविप्रणश्यति ॥

पद-निशायां ७ वा ऽ- दिवा ऽ- वा ऽ-अपि ऽ-यत् १ अज्ञानकृतं १ भवेत् क्रि-त्रैकाल्यसंध्याकरणात् ५ तत् १ सर्वं १ विप्रणश्यति क्रि-

योजना-निशायां वा दिवा (दिनविषये) अपि यत् अज्ञानकृतं भवेत् तत् सर्वं त्रैकाल्यसंध्याकरणात् विप्रणश्यति ॥

तात्पर्यार्थ-रात्रि वा दिनमें जो प्रमादसे मानस और वाचिक पाप वा उपपातक रूप पाप किया है वह सब प्रातःकाल और मध्याह्न काल आदि तीनोंकालोंमें किये हुए नित्यसंध्योपासन रूप कर्मसे नष्ट हो जाता है सोई यमने कहा है कि जो दिनमें मनुष्य कर्म मन और वाणीसे पाप करता है वह सब पश्चिम (सायंकाल) संध्यामें स्थित हुआ मनुष्य प्राणायामोंसे नष्ट करता है-शातातपनेभी कहा है कि सायंकालमें उपासना की हुई संध्या झूंठ मद्यको गंध दिनमें मैथुनकर्म और शूद्रका अन्न इन सबको पवित्र करती है -

भावार्थ-रात्रि वा दिनके विषें जो मनुष्य अज्ञानसे पाप करता है, वह सब त्रिकाल संध्याके उपासनसे नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ३०८ ॥

शुक्रियारण्यकजपोगायत्र्याश्चविशेषतः ।
सर्वपापहराह्येतेरुद्रैकादशिनीतथा॥३०९॥

पद-शुक्रियारण्यकजपः १ गायत्र्याः ६ च ऽ- विशेषतः ऽ- सर्वपापहराः १ हि ऽ- एते १ रुद्रैकादशिनी १ तथा ऽ-

योजना-शुक्रियारण्यकजपः च पुनः विशेषतः गायत्र्याः जपः तथा रुद्रैकादशिनीजपः एते हि (निश्चयेन) सर्वपापहरा भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-विश्वानि देव सवितः इत्यादि वाजिसनेयकमें पढे हुए आरण्यकको शुक्रिय और उसी स्थानमें पढे यजुः ऋचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये इत्यादि ऋचाको आरण्यक कहते हैं उन दोनोंका जप सब पातकोंके हरनेवाला होता है तिसी प्रकार गायत्रीका महापातकोंके विषे लक्ष १००००० जप, और अतिपातक उपपातकके विषें दश सहस्र १०००० जप उपातकोंके विषें सहस्र १००० और प्रकीर्णक पापोंके विषे १०० शत जप इस प्रकार विशेषसे किया जप सब पापोंके हरनेवाला है तिसी प्रकार गायत्रीका अधिकार करके शंखने श्लोक कहा है कि सौवार जपी हुई गायत्री महापातकोंके नाश करने

१ अन्तर्जले तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ।
२ यदह्नात्कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा । आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैर्निहन्ति तत् ।
३ अनृतं मद्यगंधं च दिवा मैथुनमेव च । पुनाति वृषलान्नं च संध्याबहिरुपासिता ।

१ शतं जप्ता तु सावित्री महापातकनाशिनी । सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः प्रमोचिनी । दशसाहस्रजाप्येन सर्वकिल्बिषनाशिनी । लक्षं जप्ता तु सा देवी महापातकनाशिनी । सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः । सुरापश्च विशुद्ध्यन्ति लक्षं जप्त्वा न संशयः

वाली और सहस्रवार जपी हुई पातकोंसे छुड़ाने वाली, और दश सहस्र बार जपी हुई सब किल्बिषोंके नष्ट करने वाली, और लक्षवार जपी हुई महापातकोंके नष्ट करनेवाली, होती है-सुवर्णका चोर ब्रह्महत्यारा गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला विप्र, लक्ष गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध हो जाता है इस में संशय नही जो कि चतुर्विंशतिके मतसे कहा है कि किरोड गायत्रीको जप कर ब्रह्महत्यासे और अस्सी लक्ष वार जप करनेवाला सुरापानके पापसे और सत्तर लक्ष वार जप करनेवाला सुवर्णचोरी रूप पापसे और ६० लक्ष वार गायत्रीके जप करनेवाला गुरु स्त्रीके गमन रूपी पापसे छुटता है वह जप रूपी प्रायश्चित्त गुरु है इससे प्रकाश पापके प्रायश्चित्तके विषयमें समझना तिसी प्रकार एकादश रुद्रानुवाकोंके समूहको रुद्रैकादशिनी कहते हैं उसको विशेष कर जपे तो सब पाप दूर हो जाते हैं क्योंकि महापातकोंके विषे रुद्रीकी एकादश आवृत्ति इस श्लोकमें कही है कि धर्मके जाननेवाला पुरुष एकादश रुद्रीकी आवृत्ति करके महापापोंसे मुक्त हो जाता है इसमें संशय नही अति पातक आदिमें तो चतुर्थांशका ह्रास (न्यून) करके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी युक्त है इस श्लोकमें च शब्द अघमर्षण आदिके समुच्चयके लिये है जैसे कि वसिष्ठने कहा है कि इससे पेर सब वेदोंमें जो पवित्र करने वाली ऋचा है उनको कहता हुं जिनके जप और होम करनेसे सब प्राणी पवित्र होते हैं इसमें संशय नही देवताका किया अघमर्षण शुद्धवती तरत्समाः कौश्माण्डी पावमानी दुर्गा सावित्री अभिषङ्गा पदस्तोम साम व्याहृति भारदंडसाम गायत्र रैवत पुरुषव्रत भास देवव्रत आलिंग बार्हस्पत्य वाक्सूक्त मध्वृच शतरुद्रीय अथर्वशिर त्रिसुपर्ण महाव्रत गोसूक्त अश्वसूक्त इंद्र शुद्ध ये दोनों साम तीन आज्यदोह रथन्तर अग्निव्रत वामदेव्य बृहत् ये चौतीस ३४ गाई हुई ऋचा सब जन्तुओंको पवित्र करती हैं यदि इच्छा करे तो मनुष्य पूर्व जन्मकी जातिका स्मरणभी इनसे होजाता है-

भावार्थ-शुक्रिय आरण्यकका जप चपुनः विशेषकर गायत्रीका जप और रुद्रैकादशिनीका जप सबपापोंके हरनेवाला है-३०९

यत्रयत्रचसंकीर्णमात्मानंमन्यतेद्विजः ।
तत्रतत्रतिलैर्होमोगायत्र्यावाचनंद्विजः ॥

पद-यत्र१-यत्र१-च१-संकीर्णं२आत्मानं२ मन्यते क्रि-द्विजः १ तत्र१-तत्र१- तिलैः ३ होमः १ गायत्र्या ३ वाचनं २ द्विजः १

१ गायत्र्यास्तु जपेत्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते । पुनाति हेम हर्तारं गायत्र्या लक्षसप्ततिः । गायत्र्या लक्षषष्ट्या तु मुच्यते गुरुतल्पगः ।

२ एकादशगुणान्वापि रुद्रानावर्त्य धर्मवित् । महद्भ्यः स तु पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।

१ सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतःपर । येषां जपैश्च होमैश्च पूयन्ते नात्र संशयः । अघमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः । कूश्माण्ड्यः पावमान्यश्च दुर्गासावित्रिरेव च । अभिषंगाः पदस्तोमाः सामानि व्याहृतिस्तथा । भारदंडा निसामानि गायत्रं रैवतं तथा । पुरुषव्रतं च भासं च तथा देवव्रतानि च । आलिंगं बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तं मध्वृचस्तथा । शतरुद्रियाथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रत । गोसूक्तं चाश्वसूक्तं च इन्द्रशुद्धे च सामनी । त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निव्रतं वामदेव्यं बृहच्च । एतानि गीतानि पुनन्ति जन्तूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ।

योजना-द्विजः यत्र यत्र आत्मानं संकीर्णं मन्यते तत्र तत्र तिलैः गायत्र्या होमः तथा द्विजः वाचनं कार्यः-

तात्पर्यार्थ-जिस जिस ब्रह्मवध आदिसे उत्पन्न हुए पापसे आत्माको यदि द्विज लिप्त मानें तो तिस तिस पापकी शान्तिके लिये गायत्रीमंत्रसे तिलोंका होम करे तहां यह व्यवस्था हैकि महा पातकोंमें तो गायत्री मंत्रसे लक्ष होम करे क्योंकि यमकी स्मृति[1] हैकि गायत्रीमंत्रसे लक्ष होम किया जाय तो मनुष्य सब पातकोंसे छुटता है अतिपातक आदिमें तो पादपादके (चतुर्थांश) प्रायश्चित्तमेंसे ह्रासकी कल्पना करनी उचित है तथा तिलोंसे वाचन अर्थात् दान करना तिसी प्रकार रहस्याधिकारमें वसिष्ठने कहा हैकि वैशाखकी पौर्णमासीके दिन पांच वा सात ब्राह्मणोंके लिये सहतयुक्त काले वा शुक्ल तिलोंका दान करके यह कहै कि हे धर्मराज आप प्रसन्न हो ऐसे कहनेसे जो मनमें पापहों वे सब और यावज्जीव किये हुए पाप उसी क्षणमें नष्ट होजाते है अनियत कालमेंभी दान उसी वसिष्ठने कहा हैकि कृष्णमृगचर्मके ऊपर तिल सुवर्ण मधु और सर्पिः इनको रखकर जो ब्राह्मणको देता है वह सब पापोंको तरजाता है तिसी प्रकार व्यासेनभी कहा है कि आत्माको संयत (वश) में करके जो ब्राह्मणके लिये तिल धेनुको देता है वह ब्रह्महत्या आदि पापसे छुटता है इसमें संशय नहीं इसी प्रकार इत्यादि रहस्यकाण्डमें कहे हुए दान मूर्ख द्विजाति और स्त्री शूद्रके लिये समझने जोकि यमने कहा हैकि जो प्रातःकाल तिलोंका दान स्पर्श भक्षण स्नान और होम करता है वह सब पापोंको तरता है तथा इन्द्रियोंको जीतकर जो मनुष्य वर्ष दिनतक मास मासकी दो अष्टमी तथा चतुर्दशी अमावास्या पूर्णमासी सप्तमी और दोनों द्वादशी इनको भोजन नहीं करता वह सर्व पातकोंसे छूटकर स्वर्गलोकको जाता है और जो अत्रिने कहा हैकि आषाढकी पूर्णमासीके दिन विष्णु क्षीरसमुद्रके विषै शेषरूपी शय्यापर सोते हैं और कार्तिककी पौर्णमासीके दिन निद्राको त्यागते हैं उन दोनों पौर्णमासीयोंको जो हरिको पूजे वह शीघ्रही सब पापोंको नष्ट करता है उन सब यम आदिके कहे हुए वचनोंकी व्यवस्था विद्यासे रहित पुरुषोंके विषै ज्ञान अज्ञान सकृत् (एक वार) और अभ्यास आदिसे किये पापकी विशेषतासे समझनी-

भावार्थ-जिस जिस पापसे लिप्त आत्माको द्विज माने उसी २ पापकी शांतिके लिये गायत्री मंत्रसे तिलोंका होम और दान करे ॥ ३१० ॥

---

१ गायत्र्या लक्षहोमे तु मुच्यते सर्वपातकैः ।

२ वैशाख्यां पौर्णमास्यां च ब्राह्मणान् पञ्च सप्त च । क्षौद्रयुक्तैस्तिलैः कृष्णैर्वाचयेदथवेतरैः । प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते । यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।

३ कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी । ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ।

४ तिलधेनुं च यो दद्यात्संयतात्मा द्विजन्मने । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।

१ तिलान्ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति । तिलस्नायी तिलाञ्जुह्वन्सर्वं तरति दुष्कृतम् । द्वे चाष्टम्यौ मासस्य चतुर्दश्यां तथैव च । अमावास्या पूर्णमासी सप्तमी द्वादशीद्वय । संवत्सरमभुञ्जानः सततं विजितेन्द्रियः । मुच्यते पातकैः सर्वैः स्वर्गलोकं च गच्छति

२ क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद्धरिः । निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेद्धरिम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेव व्यपोहति ।

वेदाभ्यासरतंक्षांतंपंचयज्ञक्रियापरम् ॥
नस्पृशंतीहपापानिमहापातकजान्यपि ३११

पद-वेदाभ्यासरतं २ क्षान्तं २ पंचयज्ञ क्रियापरं २नऽ- स्पृशन्ति क्रि -इहऽ- पापानि १ महापातकजानि १- अपिऽ-

योजना-वेदाभ्यासरतं क्षांतं पंचयज्ञ क्रियापरं द्विजा इह लोके महापातकजानि अपि पापानि न स्पृशन्ति-

तात्पर्यार्थ-पूर्व वेदका स्वीकार-फिर विचार फिर अभ्यास-उसके अनंतर जप और फिर उसकाही शिष्यों के लियेदान इस प्रकार पांच प्रकारका वेदाभ्यास जो कहा है इसी क्रमसे जो वेदके अभ्यासमें तत्पर और तितिक्षासे युक्त और पंचमहायज्ञके अनुष्ठानमें तत्पर जो मनुष्य हैं उसको महापातकोंसे उत्पन्न हुएभी पाप स्पर्श नहीं करते प्रकीर्ण और वाणी और मनसे उत्पन्न हुए पाप तो क्या कर सक्ते हैं प्रकीर्ण इत्यादि अर्थ, यहां अपि-शब्दसे लब्ध होता है यह वचन अकामसे किये पापके विषयमें समझना इसीसे वसिष्ठ नें प्रकीर्णक आदिके अभिप्रायसे कहा है कि जो वेद और सैकडों अकार्योंको धारण करता है उसके किये सैकडों उत्कट अकार्यों (पाप) को उसकी वेदाग्नि ऐसे दाध कर देती है जैसे अग्नि इंधनको यह कहकर यह कहा हैकि वेदके बलको प्राप्त होकर पापमें रत नहो अर्थात् पाप नकरे क्योंकि अज्ञान वा प्रमादसे जो कर्म किया जाता है वही दाध होता है इतर नहीं-

१ यद्यकार्यशतं साग्रं कृत वेदश्च धार्यते । सर्वं तत्तस्य वेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेन्धनं । न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरतिर्भवेत् । अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्म नेतरत् ।

भावार्थ-वेदके अभ्यासमें तत्पर शान्त स्वरूप और पंचमहायज्ञोंमें तत्पर मनुष्य-को महापातकोंसे उत्पन्नहुएभी पाप स्पर्श नहीं करते ॥ ३११ ॥

वायुभक्षोदिवातिष्ठन्रात्रिंनीत्वाप्सुसूर्यदृक्॥
जप्त्वासहस्रंगायत्र्याःशुद्ध्येद्ब्रह्मवधादृते३१२

पद-वायुभक्षः १ दिवाऽ-तिष्ठन् १ रात्रिं नीत्वाऽ-अप्सु ७ सूर्यदृक् १ जप्त्वाऽ-सहस्रं २ गायत्र्याः ६ शुद्ध्येत् क्रि-ब्रह्मवधात्५ ऋतेऽ-

योजना-वायुभक्षः दिवा तिष्ठन् तथा रात्रिं अप्सुनीत्वा सूर्यदृक् सन् गायत्र्याः सहस्रं जप्त्वा ब्रह्मवधात् ऋते शुद्ध्येत् ॥

तात्पर्यार्थ-उपवास करता हुआ मनुष्य दिनको, और रात्रिको जलमें बैठकर व्यतीत करे फिर सूर्योदयके पीछे सहस्र (हजार) गायत्रीको जपकर ब्रह्महत्यासे अतिरिक्त सब महापातक आदि पापसे छुटताहै इससे यह वचन उपपातक आदिके अभ्यास वा अनेक पापोंके समुच्चयमें समझना क्योंकि जो विषयहैं ऐसे विषयका सम (समान) करना अन्याय होताहै इसीसे वृद्ध वसिष्ठ-ने महापातक और उपपातकोंके विषे व्रत-विशेष कालविशेषमें कहाहै कि यवोंकी प-

१ यवानां प्रसृतिमंजलिं वा श्रपयमाणं घृतं चाभिमंत्रयेत् यवोसि धान्यराजस्त्वं वारुणो मधुसंयुतः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृत इत्यनेन घृत यवा मधु यवाः पवित्रममृतं यवाः । सर्वं पुनंतु मे पापं वाङ्मनः कायसंभवमित्यनेन वा अभिकार्यं न कुर्वीत न भुतबलिं तथा । नाग्नं न भिक्षां नातिथ्यं न चोच्छिष्टं परित्यजेत् । ये देवा मनोजाता मनोयुजः सुदक्षाः दक्षपितरः ते नः पांतु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहेत्यात्मनि जुहुयात्त्रिरात्रमेवाभिहुते पापक्षयाय त्रिरात्रं सप्तरात्रं ब्रह्महत्यादिषु द्वादशरात्रं पतितोराद्रव ।

कीहुई प्रकृति वा अंजलिको और घृतको इस मंत्रसे अभिमंत्रित करे कि तू जौं है धान्योंका राजाहै और वरुण तेरा देवताहै मधुसे युक्तहै सब पापोंको दूर करनेवाला ऋषियोंने पवित्र कहाहै अथवा इस मंत्रसे कि घृत और जौं मधु और जौं पवित्र अमृत यवहैं मेरी वाणी मन कायासे पैदा हुये सब पापोंसे पवित्रकरो और अग्निकार्य न करे और तिससे भूतबलि न करे अग्रभिक्षा आतिथ्य उच्छिष्ट इनको न त्यागै जो देवता मनोजात, मनोयुज, सुदक्ष, दक्षपितर हैं वे हमारीरक्षाकरो २ तिनको नमस्कार है उनके लिये स्वाहा है इस मंत्रसे बुद्धिकी वृद्धि और पापके क्षयार्थ त्रिरात्र होम करे और ब्रह्महत्या आदिमें सप्त रात्र और पतितसे उत्पन्न होय तो द्वादश रात्र हवन करे इसी प्रकार अन्यभी स्मृतिके वचनोंका विवेक करना ॥

भावार्थ-दिनमें खडा होकर वायुको भक्षण करता और रात्रिको जलमें वस कर और प्रातःकाल सूर्यके दर्शन किये पीछे एकसहस्र गायत्रीको जपकर ब्रह्मवधसे अन्य जो पाप उनसे छुटता है ॥ ३१२ ॥

इति रहस्यप्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

ब्रह्मचर्यंदयाक्षांतिर्दानंसत्यमकल्कता ।
अहिंसास्तेयमाधुर्येदमश्चेतियमाःस्मृताः ॥

पद-ब्रह्मचर्यं १ दया १ क्षांतिः १ दानं १ सत्यं १ अकल्कता १ अहिंसा १ अस्तेयमाधुर्ये १ दमः १ च- इति- यमाः १ स्मृताः १-

स्नानंमौनोपवासेज्यास्वाध्या-
योपस्थनिग्रहाः । नियमागुरु-
शुश्रूषाशौचाक्रोधाप्रमादता ॥

पद-स्नानं १ मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः १ नियमाः १ गुरुशुश्रूषा १ शौचाक्रोधाप्रमादता १ ॥

योजना-ब्रह्मचर्यं दया क्षांतिः दानं सत्यं अकल्कता अहिंसा अस्तेयमाधुर्ये च पुनः दमः इति यमाः स्मृताः मन्वादिभिरिति शेषः स्नानं मौनोपवासेज्या स्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता एते नियमाः स्मृताः १ मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-अब व्रतके अंग धर्मोको कहते हैं ब्रह्मचर्य अर्थात् संपूर्ण इंद्रियोंको विषयोंसे रोकना दया क्षमा दान शठताका त्याग अहिंसा अस्तेय (चोरीन करना) मधुर वचन कहना और इंद्रियोंका दमन (दबाना) ये दश मनु आदिकोंने यम कहे हैं और जो मनुने यह कहा है कि अहिंसा सत्य अक्रोध आर्जव (कोमलता) इनको करे वहभी इनका उपलक्षण है कुछ गिनने केलिये नही और यहां दया क्षांति आदि पुरुषार्थ रूपसेही प्राप्त थे पुनः विधान प्रायश्चित्तके अंगजतानेके लिये है क्वचित् (कहीं) विशेषभी है जैसे विवाह आदिकोंमें अनुज्ञातभी अनृत (मिथ्या) वचनकी निवृत्तिके लिये सत्यका वचन है और पुत्र शिष्य आदिकोभी ताडना न करे इसके लिये अहिंसा का विधान है और स्नान मौन उपवास यज्ञ स्वाध्याय (वेदपाठ) और उपस्थ (लिंग)का निग्रह (वशमें रखना) यहभी ब्रह्मचर्यसेही आजाता पुनः पृथक् निर्देश (पढना) गोबलीवर्दन्यायसे है जैसे गामानयबलीवर्दं चानय इस वाक्यमें गौके कहनेसेही बैल आजाता पृथक् पाठ विशेषताके लिये है गुरुकी शुश्रूषा शौच क्रोध और प्रमादका त्याग ये दश नियम आचार्योंने कहे हैं ॥

भावार्थ-ब्रह्मचर्य दया क्षमा दान सत्य अकुटिलता अहिंसा अस्तेय मधुरस्वभाव दम ये दश यम और स्नान मौन उपवास यज्ञ

वेद (पढना) लिंग इंद्रियको रोकना गुरुकी शुश्रूषा शौच क्रोध और प्रमादका त्याग ये दश नियम आचार्योंने कहे हैं॥३१३॥३१४॥

गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् ।
जग्ध्वापरेह्न्युपवसेत्कृच्छ्रंसांतपनंपरम्॥३१५

पद–गोमूत्रं२ गोमयं२क्षीरं२दधि२सर्पिः२–कुशोदकम् २ जग्ध्वाऽ–परे ७ अह्नि ७ उपवसेत् क्रि–कृच्छ्रं १सांतपनं १–परम् १॥

योजना–- गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशो दकं पूर्वे अह्नि जग्ध्वा परे अह्नि उपवसेत् एतत् परं सांतपनं कृच्छ्रं स्मृतम्–

तात्पर्यार्थ– पहिले दिन अन्य भोजनको त्यागकर गोमूत्र गोमय दूध दधि घी इन पांचों द्रव्योंको और कुशाके जलको मिला कर पीवे और दूसरे दिन उपवास करे यह दो दिनका सांतपन कृच्छ्र होताहै– यहां मिलाकर पांचोंको पीना इससे जाना जाता है कि अगले श्लोकमें पृथक् २ पीना कहा है– कृच्छ्र जो कष्टसे हो यह अन्वर्थ संज्ञाहै क्योंकि यह सांतपनरूप व्रत क्लेशसे होता है अन्वर्थ संज्ञा वह होती है जिसका अर्थ भी संज्ञी (अर्थ) में घट जाय और जब पहिले दिन उपवास करके अगले दिन मंत्रोंसे पंचगव्योंको मिलाकर मंत्रोंसेही पंचगव्य पीया जाय तो वह ब्रह्मकूर्च कहाता है–सोई पाराशरने कहाहै कि गोमूत्र गोमय दूध दही घी और कुशाका जल यह पंचगव्य कायाका शोधन पवित्र कहा है ताम्र वर्णकी गौका गोमूत्र श्वेत गौका गोमय सुवर्णके समान वर्णकी का दूध– नीली गौका दधि– काली गौका घृत ग्रहण करे अथवा यदि सब वर्णोंकी गौ न मिलैं तो संपूर्ण गोमूत्र आदि कपिला गौके लेने पंचगव्योंके विषय यह विधि है– आठमासे गोमूत्र– सोलहमासे गोमय– बारह मासे दूध– दशमासे दधि– कहीहै और गोमूत्रके समान घृतकेभी आठभाग कहे हैं और उससे आधा कुशाका जल होताहै, गायत्री पढकर गोमूत्रको ले– और गंधद्वारा० इस मंत्रसे गोमयको और आप्यायस्व० इस मंत्रसे दूधको–और दधिक्राव्णो० इस मंत्रसे दहीको और तेजोसि० इस मंत्रसे घीको– और देवस्यत्वा० इस मंत्रसे कुशाजलको ग्रहण करे ऋचाओंसे पवित्र किये पंचगव्यको अग्निमें होम करे– सात पत्तोंके और अग्र भाग सहित और शुद्ध प्रकाशरूप कुशोंसे विधिपूर्वक पंचगव्यका होम करै और इरावती० इदंविष्णु० मानस्तोके० शंवती० इन मंत्रोंसे होम करै और होमके शेष पंचगव्यको द्विज पीवे– और ओंकारसे आलोडन (बिलौना वा चलाना) और ओंकारसेही अभिमंत्रण और ओंकारसे उद्धृत (उठाना वा लेना) करके ओंकारसेही

१ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं । निर्दिष्टं पंचगव्यं तु पवित्रं कायशोधनं । गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चापि गोमयं । पयः कांचनवर्णायाः नीलायाश्च तथा दधि । घृतं च कृष्णवर्णायाः सर्वं कापिलमेव वा । अलाभे सर्ववर्णानां पंचगव्येष्वयं विधिः । गोमूत्रे माषकास्त्वष्टौ गोमयस्य तु षोडश । क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दधस्तु दश कीर्तिताः । गोमूत्रवद्घृतस्याष्टौ तदर्धं तु कुशोदकं । गायत्र्यादाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयं । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि । तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकं । पंचगव्यमृचापूतं होमयेदग्निसन्निधौ । सप्तपत्राश्च ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुचित्विषः एतैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथाविधि । इरावती इदंविष्णुर्मानस्तोके च शंवती । एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्द्विजः । प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनाभिमंत्र्य च । प्रणवेन समुद्धृत्य पिबेत्प्रणवेन तु । मध्यमेन पलाशस्य पद्मपत्रेण वा पिबेत् । स्वर्णपात्रेण ताम्रेण ब्रह्मतीर्थेन वा पुनः । यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मानवे । ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ।

पीवे और ढाकके मध्यके पत्तेसे वा पद्मके पत्तेसे पीवे अथवा सुवर्णके पात्र वा तांबेके पात्रसे पीवे अथवा ब्रह्मतीर्थसे पीवे और पीनेके समय इस मंत्रको पढे कि जो मेरे शरीरके विषय त्वचा अस्थियोंमें पाप है उसको ब्रह्मकूर्च उपवास इस प्रकार दग्ध करो जैसे अग्नि इंधनको करताहै– और जब यही पंचगव्य मिलाकर तीन रात्र पीयाजाय तब यति-सांतपन कहाताहै– क्योंकि शंखेकी स्मृतिहै कि इसकाही तीन दिन अभ्यास किया जाय तो यतिसांतपन कहाहै– जाबालने तो सात दिनमें जो किया जाय वह सांतपन कहाहै कि गोमूत्र गोमय दूध दही घी कुशाका जल इन एक एकको प्रतिदिन पीकर अहोरात्र उपवास करे यह सांतपन कृच्छ्र सब पापोंका नाशक है और इन गुरु लघु कृच्छ्रोंकी व्यवस्था शक्ति आदिकी अपेक्षासे जाननी इसीप्रकार आगेभी व्यवस्था जाननी ॥

भावार्थ–पहिले दिन गोमूत्र गोमय दूध दही घी और कुशाका जल इनको पीकर अगले दिन उपवास करे यह श्रेष्ठ सांतपन कृच्छ्र कहाता है ॥ ३१५ ॥

पृथक्सांतपनद्रव्यैःषडहःसोपवासकः ।
सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयंमहासांतपनःस्मृतः ॥

पद–पृथक्सांतपनद्रव्यैः ३-षडहः १ सोपवासकः १ सप्ताहेन ३–तु अ कृच्छ्रः १ अयम् १ महासांतपनः १ स्मृतः–१ ॥

योजना–पृथक्सांतपनद्रव्यैः सोपवासकः षडहः चेत् गच्छति तर्हि सप्ताहेन अयं कृच्छ्रः महासांतपनः स्मृतः मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–सात दिनमें जो किया जाय वह महासांतपन कृच्छ्र जानना कैसे जानना इस अपेक्षामें कहा है कि पृथक् २ किये छओं गोमूत्र आदिको पीकर एक २ दिन व्यतीत करे और सातवें दिन उपवास करे यह महा सांतपन कृच्छ्र कहा है यमने तो पंद्रह दिनमें जो किया जाय वह महासांतपन कहा है कि तीन दिन गोमूत्र, तीन दिन गोमय, तीन दिन दही, तीन दिन दूध, तीन दिन घी पीनेसे शुद्ध होता है यह महासांतपन सब पापोंका नाशक है जाबाल ने तो इक्कीस रात्रमें जो हो वह महासांतपन कहा है कि इन गोमूत्र आदि छओंमेंसे एक २ को तीन २ दिन पीवै और पिछले तीन दिन उपवास करे और जब इन्ही सांतपनद्रव्योंमेंसे एक २ को दो २ दिन पीवै तो अतिसांतपन होता है सोई यमने कहा है कि इनको ही एक २ करके दो २ दिन पीवै तो यह अति सांतपन नामका कृच्छ्र श्वपाकको भी शुद्ध करता है यहां श्वपाकको भी शुद्ध करता है यह अर्थवाद है अर्थात् श्वपाककी शुद्धि नहीं हो सकती ॥

भावार्थ–इन छओं सांतपनके द्रव्योंको पृथक् २ छः दिन पीवै और सातवें दिन उपवास करे यह सात दिनमें करने योग्य महा सांतपन कहा है ॥ ३१६ ॥

पर्णोदुंबरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः ।
प्रत्येकंप्रत्यहंपीतैःपर्णकृच्छ्रउदाहृतः ३१७

१ एतदेव त्र्यहाभ्यस्तं यतिसांतपन स्मृतम् ।

२ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकैकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रमभोजनम् । कृच्छ्रं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।

१ त्र्यहं पिबेत्तु गोमूत्रं त्र्यहं वै गोमयं पिबेत् त्र्यहं दधि त्र्यहं क्षीरं त्र्यहं सर्पिस्ततः शुचिः । महासांतपनं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् ।

२ षण्णामेकैकमेतेषां त्रिरात्रमुपयोजयेत् । त्र्यहं चोपवसेदंत्यं महासांतपनं विदुः ।

३ एतान्येव यदा पेयाद्येकैकं तु द्व्यहं द्व्यहं । अतिसांतपनं नाम श्वपाकमपि शोधयेत् ।

पद-पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः ३ प्रत्येकं २ प्रत्यहं २ पीतैः ३ पर्णकृच्छ्रः १ उदाहृतः १-

योजना-प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पर्णोदुम्बर राजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः पर्णकृच्छ्रः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ-ढाक गूलर कमल बेल इन एक २ के पत्तोंके क्वाथके (जल)को प्रतिदिन पीवै और फिर एकदिन कुशाका जल पीवै यह पांचदिनमें करने योग्य पर्णकृच्छ्र कहा है और जब ढाक आदिके पत्तोंको इकट्ठे करके तीनरात्र उनका क्वाथ पियाजाय तब पर्णकूर्च होता है सोई यमने कहा है कि इन संपूर्णोंको तीनरात्र उपवास करनेके अनन्तर शुद्ध होकर क्वाथ करके पीवै तो यह जलोंका ब्रह्मकूर्च कहा है और जब बेल आदि प्रत्येक फलोंको क्वाथ करके मासभर पीवै तो उसकी फलकृच्छ्र संज्ञा होती है सोई मार्कण्डेयने कहा है कि एक मासभर फलोंके क्वाथको पीवै तो बुद्धिमानोंने फल कृच्छ्र कहा है श्रीफलोंसे श्रीकृच्छ्र पद्माक्षोंसे पद्मकृच्छ्र और इसीप्रकार आमलकोंके मासभर क्वाथको पीवै तो अन्यभी श्रीकृच्छ्र कहा है पत्तोंके पीनेसे पत्रकृच्छ्र पुष्पोंके पीनेसे पुष्पकृच्छ्र और मूलके पीनेसे मूलकृच्छ्र और जलके पीनेसे तोय कृच्छ्र कहा है ॥

भावार्थ-ढाक गूलर कमल, बेल इनके पत्ते और कुशाका जल इन प्रत्येकको प्रतिदिन पीवै तो पर्णकृच्छ्र कहा है ॥ ३१७ ॥

१ एतान्येव समस्तानि त्रिरात्रोपोषितः शुचिः । क्वाथयित्वा पिबेदद्भिः पर्णकूर्चोऽभिधीयते ।

२ फलैर्मासेन कथितः फलकृच्छ्रो मनीषिभिः । श्रीकृच्छ्रः श्रीफलैः प्रोक्तः पद्माक्षैरपरस्तथा । मासेनामलकैरेवं श्रीकृच्छ्रमपरं स्मृतं । पत्रैर्मतः पत्रकृच्छ्रः पुष्पैस्तत्कृच्छ्र उच्यते । मूलकृच्छ्रः स्मृतो मूलैस्तोयकृच्छ्रो जलेन तु ।

तप्तक्षीरघृतांबूनामेकैकंप्रत्यहंपिबेत् ।
एकरात्रोपवासश्चतप्तकृच्छ्रउदाहृतः ३१८

पद-तप्तक्षीरघृताम्बूनां ६- एकैकं २ प्रत्यहं २ पिबेत् क्रि-एकरात्रोपवासः १ च अ तप्तकृच्छ्रः १ उदाहृतः १ ॥

योजना-तप्तक्षीरघृताम्बूनां ६ एकैकं प्रत्यहं पिबेत् च पुनः एकरात्रोपवासः असौ तप्तकृच्छ्रः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ-तपाये हुए दूध घी जलोंमेंसे एक एकको प्रतिदिन पीवै-फिर एकरात्र उपवास करै यह चार दिनमें होने योग्य महातप्तकृच्छ्र कहा है और इन सबको एकदिन पीकर और एकदिन उपवास करै तो दोदिनमें होने योग्य वह तप्तकच्छ्र कहाता है मनुने तो बारह दिनमें जो किया जाय वह तप्तकृच्छ्र कहा है (अ० ११ श्लो० २१४) कि तप्तकृच्छ्रका आचरण करता हुआ ब्राह्मण जल घी दूध पवन इन प्रत्येकको उष्ण करके तीन २ दिन एकदिन स्नान करनेके अनन्तर सावधानीसे पीवै दूध आदिका परिमाण तो पराशरका कहा जानना कि तीन पल जल पीवै दोपल दूध एकपल घी और तीन रात्र तक उष्ण पवन पीवै अर्थात् त्रिरात्रतक उष्ण जलकी बाष्प पीवै और जब शीतलही दूध आदिको पीवै तो शीत कृच्छ्र कहाता है क्यों कि यमकी स्मृति है कि तीन दिन ठंढा जल-तीनदिन शीतल दूध-

१ तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् । प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः ।

२ अपां पिबेत्तु त्रिपलं पयः पिबेत् द्विपलं । पलमेकं पिबेत्सर्पिस्त्रिरात्रं चोष्णमारुतम् ।

३ त्र्यहं शीतं पिबेत्तोयं त्र्यहं शीतं पयः पिबेत् । त्र्यहं शीतं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ।

तीन दिन शीतल घी- और तीनदिन शीतल पवनको पीवे तो शीत कृच्छ्र होता है ॥

भावार्थ-तपाये हुए दूध घी जल इन प्रत्येकको एक २ दिन पीवे तो तप्तकृच्छ्र कहाताहै ॥ ३१८ ॥

एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच ॥
उपवासेनचैवायंपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥

पद-एकभक्तेन ३ नक्तेन ३ तथा- एव- अयाचितेन ३ च- उपवासेन ३ च-एव- अयं १ पादकृच्छ्रः १ प्रकीर्तितः १

योजना-एकभक्तेन नक्तेन चपुनः तथा अयाचितेन तथा उपवासेन अयं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः-

तात्पर्यार्थ-दिनमेंही एकवार भोजन करके एक अहोरात्रको व्यतीत करै क्योंकि नक्तेन इसपदसे रात्रिकोही भोजन करके नक्तव्रत का पृथक् उपादान है तिसमें दिनमेंही यह कहनेसे रात्रिभोजनका निषेध और एकवार कहनेसे दोवार भोजनका निषेध-भोजन यह कहनेसे उपवासका निषेध समझना-कृच्छ्र आदिकोंको व्रतरूप होनेसे पुरुषार्थभोजन के निषेधसे कृच्छ्रके अंग भोजनका विधान है सोई आपस्तम्बने कहा हैकि तीनदिन रात्रिमें भोजन नकरै और तीनदिन दिनमें नकरै और तीनदिन अयाचित व्रतको करै और तीनदिन कुछभी भोजन नकरै इस आपस्तम्बके वचनमें अनक्ताशी इस पदमें व्रत अर्थमें णिनि प्रत्यय करनेसे नक्त (रात्रि) भोजनके निषेधसे दिनमें भोजनका नियम प्रतीत होता है गौतमनेभी यही स्पष्ट किया है कि प्रातःकाल हविष्यका भोजन करके तीन रात्रि भोजन नकरै इसी प्रकार नक्त भोजनकी विधिमेंभी समझना-नहीं है याचित जिसमें उसे अयाचित कहते हैं उसमें विशेष कालका कथन नहीं इससे दिनरात्रिमें विना मांगे जो मिले उसे एकवार भोजन करै क्योंकि कृच्छ्र तपरूप है दूसरीवार भोजन करनेमें तप नहीं होसक्ता और अयाचित पदसे कुछ पराये अन्नकी याचनाका निषेध नहीं किन्तु अपनाभी अन्न सेवक और भार्या आदिकोंसे न मांगना क्योंकि यांचा प्रेषण और अध्येषणमें समान होती है इससे अपने घरमेंभी सेवक और भार्या आदि विना याचन करनेसे देदें तो लेले अन्यथा नहीं इसी अभिप्रायसे गौतमने कहा हैकि फिर तीनदिनतक किसीकी याचना नकरै इसमें ग्रास संख्याका नियम पराशरने दिखाया हैकि सायं कालको बारह ग्रास प्रातःकाल पंद्रह और याचनाके चौबीस २४ ग्रास कहे हैं और आपस्तम्बने तो अन्यथा कहा हैकि सायंकालको बत्तीस ग्रास प्रातःकाल छब्बीस और याचनाके चौबीस २४ और तीनदिन उपवासके होते हैं और कुक्कुट अंडेके प्रमाणका जैसा मुखमें सुखसे चला जाय तैसा ग्रास होता है इन तीनों कल्पोंका शक्तिकी अपेक्षासे विकल्प समझना, आपस्तंबने तो प्राजापत्य

१ त्र्यहमनक्ताशीदिवाशी ततस्त्र्यहंत्र्यहमयाचित व्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किंचन ।

२ हविष्यान्प्रातराशान्भुक्त्वातिस्रोरात्रीर्नाश्नीयात् ।

१ सायन्तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पञ्चदश स्मृताः। चतुर्विंशतिरायाच्याः परं निरशनं स्मृतं ।

२ सायंद्वात्रिंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिः स्मृताः। चतुर्विंशतिरयाच्याः परं निरशनात्रयः। कुक्कुटाण्डप्रमाणस्तु यथाचास्य विशेन्मुखं ।

३ त्र्यहं निरशनं पादः पादश्चायाचितंत्र्यहं । सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा त्र्यहं । प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् । अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणे स्मृतं ।

प्रायश्चित्तका चार प्रकार विभाग करके चार पादकृच्छ्र करनेके अनंतर वर्णोंके क्रमसे व्यवस्था दिखाई है कि तीनदिन उपवास न करना यह एकपाद और तीन दिन अयाचित और तीन दिन सायंकाल और तीन दिन प्रातःकाल भोजन करै यह एक २ पादकरै प्रातःकालके पादको शूद्र करै सायंकालके को वैश्य और अयाचितको क्षत्री और त्रिरात्रके उपवासको ब्राह्मण करै और जब अयाचित उपवास तीन २ दिन किये जाय तब तो अर्द्धकृच्छ्र और सायंकालको छोडकर तीनों कृछ्र किये जायतो पादोन कृच्छ्र जानना क्योंकि उसनेही यह कहा है कि सायंकाल प्रातःकालके विना अर्द्ध कृच्छ्र और सायंकालको छोडकर पादोन कृच्छ्र होता है अर्द्धकृच्छ्रका दूसरा प्रकारभी उसने दिखाया है कि एक २ दिन सायंकाल प्रातः काल भोजन करै और दो दिन अयाचित व्रत करै और दो दिन उपवास करै तो कृच्छ्रार्द्ध कहाता है ॥

भावार्थ-एक दिन एक भक्त, एकदिन नक्त एक दिन अयाचित भोजनको करै और एक दिन उपवास करै, इस प्रकार च्यारदिन करनेसे पादकृच्छ्र कहाहै ॥ ३१९॥

यथाकथंचित्रिगुणःप्राजापत्योयमुच्यते।
अयमेवातिकृच्छ्रःस्यात्पाणिपूरान्नभोजनः

पद-यथाकथंचित् १ त्रिगुणः १ प्राजापत्यः १ अयं १ उच्यते क्रि-अयं १ एव-अतिकृच्छ्रः१स्यात् क्रि-पाणिपूरान्नभोजनः१

योजना-यथाकथंचित् त्रिगुणः अयं प्राजापत्यः उच्यते अयं एव पाणिपूरान्नभोजनः चेत् अतिकृच्छ्रः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-यही पाद कृच्छ्र यथाकथंचित् दंड कलितके समान आवृत्ति वा अपने स्थानकी वृद्धि अनुलोम और प्रतिलोम क्रमसे किया जाय और वक्ष्यमाण जप आदिसे युक्त होय वा रहित होय और तीन वार किया जाय तो प्राजापत्य कहाता है उसमें दंड कलितके समान आवृत्तिका पक्ष वसिष्ठने दिखाया है कि एक दिन प्रातःकाल एक दिन नक्त एक दिन अयाचित भोजन करै और एक दिन पराक व्रत करै इसी प्रकार औरभी चार दिन व्यतीत करै धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ मनुने ब्राह्मणोंके अनुग्रहार्थ बालक वृद्ध आतुरोंके लिये यह शिशुकृच्छ्र कहा है अनुलोम क्रमसे स्वस्थानकी विशेष कर वृद्धिका पक्ष तो मनुने दिखाया है कि तीन दिन प्रातःकाल तीन दिन सायंकाल तीन दिन अयाचितका भोजन करै और फिर प्राजापत्यको करता हुआ ब्राह्मण तीन दिन कुछ भोजन न करै प्रातिलोम्यकी आवृत्ति तो वसिष्ठने दिखाया है कि ब्राह्मण प्रतिलोम्य क्रमसे कृच्छ्रको करै और उसके अनंतर चांद्रायण करै और जप आदिसे रहित पक्ष तो स्त्री शूद्र आदिके विषयमें अंगिराने दिखाया है कि तिससे धर्ममार्गमें स्थित शूद्रको जप और होमसे रहित प्रायश्चित्तदेना और जपआदिसे युक्त पक्ष तो परिशेषसे और योग्य होनेसे तीनों वर्णोंके विषयमें है

१ सायं प्रातस्तथैकैक दिनद्वयमयाचित दिनद्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्रार्धं तद्विधीयते।

१ अहः प्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितं। अहः पराकं तत्रैकमेवं चतुरहौ परौ। अनुग्रहार्थं विप्राणां मनुर्धर्मभृतां वरः। बालवृद्धातुरेष्वेवं शिशुकृच्छ्रमुवाच ह।

२ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्याद याचितं। त्र्यहं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरेद्द्विजः।

३ प्रातिलोम्यं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं चांद्रायणोत्तरम्।

४ तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितं। प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमादिवर्जितः।

और वह गौतम आदिने दिखाया है कि इसके अनंतर कृच्छ्रोंको कहते हैं प्रातःकाल हविष्योंको भोजन करके तीन रात्र भोजन करे फिर तीन दिन नक्त और तीन दिन अयाचित भोजन करे फिर तीन दिन उपवास करे. और शीघ्र प्रायश्चित्तका अभिलाषी दिन और रात बैठा रहे सत्य बोले अनार्योंके संग न बोले रौरवयोधा मंत्रको नित्य जपे त्रिकाल स्नान करे और पवित्र आपोहिष्ठा इन तीन ऋचाओंसे और हिरण्यवर्णाःशुचयःपावका इन आठ ऋचाओंसे मार्जन करे फिर इन मंत्रोंसे तर्पण करे यही सूर्यका उपस्थान है यही घृतकी आहुति है बारह दिनके अंतमें चरु को पका कर उन देवताओंके निमित्त आहुति दे[2] अग्नीषोम इंद्राग्नि इंद्र विश्वेदेवा ब्रह्मा प्रजापति और स्विष्टकृत् अग्निके निमित्त स्वाहा है उसमें दिनमें और रात्रिमें, क्षिप्र काम हुआ टिके इसका यह अर्थ है कि बडेभी पापसे एकही शीघ्र कृच्छ्रसे छुटजाऊं ऐसी जो कामना करे वह दिनमें कर्मके अविरोधी कालमें खडा रहे और रात्रिमें बैठजाय इसीप्रकार योगीश्वर आदिके नही कहेभी रौरवयोध नाम सामके जपको और नमोऽहमाय इत्यादि तर्पणको और सूर्यकी स्तुति और चरुके पाक आदिको शीघ्र कामनाका अभिलाषी करे इससे योगीश्वरके कहे दो प्राजापत्योंके स्थानमें गौतमके कहे अनेक कर्तव्यों सहित प्राजापत्य समझना इसी प्रकार अन्यस्मृतियोंमें कहे अन्यभी प्रायश्चित्त ढूंढने और यही एकभक्त आदि प्राजापत्य धर्मसे युक्त अतिकृच्छ्र होता है इतना तो विशेष है कि पहिले तीन दिनमें पाणिपूर (अंजलिभर) अन्नको भोजन करे बाईस ग्रास आदि न करे और यहां ग्रास भोजनके अनुवादसे अर्थात् रागसे प्राप्त भोजनके कथनसे अंजलिभर भोजनके विधानसे अंतके तीन दिनमें अति देशसे पाया उपवास अप्रतिपक्ष है अर्थात् उसे कोई नही हटासक्ता यहांभी पूर्वके समानही कृच्छ्रोंके पादोंकी व्यवस्था जाननी और जो मनु (अ. ११ श्लो० २१३) ने कहा है कि पूर्वके समान पहिले तीन २ दिन एक २ ग्रास खाय और अंतके तीन दिन उपवास अतिकृच्छ्र करता हुआ करे वह वचन पाणिपूरान्नकी अपेक्षा अल्प होनेसे समर्थके विषयमें है ॥ भावार्थ–जिस कीसीप्रकार तीनवार अभ्यास किया सान्तपन प्राजापत्य कहाता है और अंजलिभर अन्नका जिसमें भोजन हो ऐसा यह प्राजापत्य-अतिकृच्छ्र होता है ॥ ३२०॥

१ अथातःकृच्छ्रान्व्याख्यास्यामो हविष्यान्प्रातराशान्भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयादथापरं त्र्यहं नक्तं भुञ्जीताथापरं त्र्यहं न कंचन याचेताथापरं त्र्यहमुपवसेत्तिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेदनार्यैः सह न भाषेत रौरवयौधाजपे नित्यं प्रयुञ्जीतानुसवनमुदकोपस्पर्शनमापोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयीत हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः इत्यष्टाभिरथोदकतर्पण। नमोऽहमाय मोहमाय मंहमाय धन्वने तापसाय पुनर्वसवे नमो मौञ्ज्याय और्म्याय वसुविंदाय सर्वविंदायनमः।पाराय सुपाराय महापाराय परपाराय पारयिष्णवे नमः। रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यंबकायैकचरायाधिपतये हराय शर्वेशानाय उग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिनेनमः।नीलग्रीवाय शितिकंठायनमः। कृष्णाय पिंगलायनमः। ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेन्द्राय हरिकेशाय ऊर्ध्वरेतसेनमः।सत्याय पावकाय पावकवर्णायैकवर्णाय कामाय कामरूपिणे नमः। दीप्ताय दीप्तरूपिणेनमः तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणेनमः सौम्याय पुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषाय उत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणे नमः चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससेनमः।

२ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृते।

१ एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसादिवसानेकविंशतिम्।
द्वादशाहोपवासेनपराकःपरिकीर्तितः ॥

पद-कृच्छ्रातिकृच्छ्रः १ पयसा ३ दिवसान् २ एकविंशतिं २ द्वादशाहोपवासेन ३ पराकः १ परिकीर्त्तितः १ ॥

योजना-एकविंशतिदिवसान् पयसा अतिवर्तनं कृच्छ्रातिकृच्छ्रः स्यात् द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥

तात्पर्यार्थ-भावार्थ इक्कीस रात्रितक दूधको ही पीना वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र जानना गौतमने तो बारह दिन केवलजल पीनेको कृच्छ्राति कृच्छ्र कहा है कि तीसरा जलकाही भक्षण जिसमें हो वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र जानना और बारह दिनके उपवासको पराक कहते हैं ॥ ३२१ ॥

पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनांप्रतिवासरम् ।
एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रःसौम्योयमुच्यते ॥

पद-पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां ६ प्रतिवासरं०- एकरात्रोपवासः १ च०- कृच्छ्रः १ सौम्यः १ अयं १उच्यते क्रि- ॥

योजना-प्रतिवासरं पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां भोजनं चपुनः एकरात्रोपवासः अयं सौम्यः कृच्छ्रः उच्यते ॥

तात्प० भावार्थ-पिण्याक (खल) आचाम (भात) तक्र जल सत्तू इन पांचोंके मध्यमें एक २ को प्रतिदिन खाकर छठेदिन उपवास करै यह सौम्यकृच्छ्र कहाता है और द्रव्यका परिमाण तो प्राणयात्रा (पेटभरना) भर जानना जाबालने तो चार दिनमें . जो कियाजाय वह सौम्यकृच्छ्र कहा है कि पिण्याक सक्तु मठा इनको क्रमसे तीन दिन भक्षण करै और चौथे दिन भोजन न करै और वस्त्रकी दक्षिणा दे यह सौम्यकृच्छ्र कहा है ३२२ ॥

एषांत्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्ययथाक्रमम् ।
तुलापुरुषइत्येषज्ञेयःपंचदशाह्निकः॥ ३२३

पद-एषां ६ त्रिरात्रं २ अभ्यासात् ५ एकैकस्य ६ यथाक्रमम्०-तुलापुरुषः १इति०-एषः १ ज्ञेयः१ पंचदशाह्निकः १ ॥

योजना-एषां एकैकस्य यथाक्रमं त्रिरात्रं अभ्यासात् पंचदशाह्निकः एषः तुलापुरुषः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-इन पांचों पिण्याक आदिके मध्यमें एक २ के क्रमसे तीन २ रात्र अभ्याससे यह पंद्रह दिनका तुलापुरुष नामका कृच्छ्र कहा है यहां पंद्रह दिनको व्यापक कहनेसे उपवासकी निवृत्ति जाननी यमने तो इक्कीस दिनका तुलापुरुष कहा है कि आचाम पिण्याक मठा जल सक्तु इनको क्रमसे तीन २ दिन और छः दिन वायुका भक्षण करै तो यह इक्कीस रात्रका तुलापुरुष कहाता है इसमें हारीत आदि ऋषियोंने इतिकर्तव्यता (करनेका प्रकार) कही है उसको यहां ग्रंथगौरव (बढना) के भयसे नहीं लिखते ॥

भावार्थ-इन पिण्याक आदि पांचोंके मध्यमें एक २ को क्रमसे तीन २ दिन भक्षण करै तो यह पंद्रह दिनका तुलापुरुष कृच्छ्र जानना ॥ ३२३ ॥

तिथिवृद्ध्याचरेत्पिंडान्शुक्लेशिख्यंडसंमितान् ॥ एकैकंह्रासयेत्कृष्णे
पिंडंचांद्रायणंचरन् ॥ ३२४ ॥

पद-तिथिवृद्ध्या ३ चरेत् क्रि-पिण्डान् २ शुक्ले ७ शिख्यण्डसंमितान् २ एकैकं २ ह्रासयेत् क्रि-कृष्णे ७ पिण्डं २चांद्रायणं २ चरन् १ ॥-

योजना-चांद्रायणं चरन् द्विजः शुक्ले [१]शिख्यण्डसंमितान् पिंडान् तिथिवृद्ध्या चरेत् कृष्णे एकैकं पिंडं ह्रासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-चांद्रायण व्रतको जो करता है वह मोरके अंडेके समान पिंडों (ग्रास) को शुक्लपक्षमें तिथियोंकी वृद्धिके अनुसार भक्षण करै अर्थात् जैसे प्रतिपदा आदि तिथियोंमें एक २ चंद्रमाकी कला आधे मासमें बढती है तिसीप्रकार पिंडोंकोभी प्रतिपदामें एक ग्रास द्वितीयामें दो ग्रास इस प्रकार पूर्णिमा पर्यंत एक २ ग्रास बढाता हुआ भक्षण करे फिर पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भक्षण करके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको चौदह ग्रास और द्वितीयाको तेरह ग्रास इस प्रकार एक २ ग्रासको न्यून करता हुआ चतुर्दशी पर्यंत भक्षण करे फिर चतुर्दशीको एक ग्रास भक्षण करके अमावस्यामें अर्थात् पाये उपवासको करे सोई वसिष्ठने कहा है कि शुक्लपक्षमें एक २ पिंड बढावे और कृष्णपक्षमें एक २ न्यून (कम) करे और अमावस्याको भोजन न करे यह चांद्रायणकी विधि है चंद्रमाके अयन (गमन) के समान है अयन (चरण वा भक्षण) जिसमें अर्थात् चंद्रमाकी कलाके समान जिसमें ग्रासोंका ह्रास वृद्धि (न्यूनता अधिकता) हो उसे चांद्रायण कहते हैं यह एक व्रतकी अन्वर्थ संज्ञा है यहां "संज्ञायांदीर्घः" इससे दीर्घ होता है और यही चांद्रायण जब यवके समान आदि-अंतमें सूक्ष्म और मध्यमें दीर्घ हो तब यव मध्य कहाता है और यही व्रत जब कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको प्रारंभ करके पूर्वोक्त क्रमसे किया जाय तो तब पिपीलिका (चैंटी) के समान मध्यमें ह्रस्व (लघु) होता है तब पिपीलीका मध्य कहाता है सोई कहते हैं कि पूर्वोक्त क्रमसे कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको चौदह ग्रास भक्षण करके एक २ ग्रासके अपचय (न्यूनता) से चतुर्दशी तक भोजन करे फिर चतुर्दशीको एक ग्रासका भक्षण करके और अमावस्याको उपवासके अनंतर शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एकही ग्रास भक्षण करे फिर एक ग्रासकी वृद्धिसे पक्षके शेषके विताने पर पौर्णमासीको पंद्रह ग्रास होजाते हैं इससे इसका पिपीलिका मध्य होना ठीक है सोई वसिष्ठने कहा है कि [*]मासके कृष्णपक्षकी आदिमें चौदह ग्रास भक्षण करै एक२ग्रासकी न्यूनतासे भोजन करता हुआ शेष पक्षको समाप्त करै तैसेही शुक्लपक्षकी आदिमें एक ग्रासको भोजन करके फिर एक२ग्रास बढाकर शेषपक्षको समाप्त करदे और जब तिथिकी वृद्धि और हानिके होनेसे एकही पक्षमें सोलह वा चौदह दिन हो जातेहैं तब ग्रासोंकीभी वृद्धि और ह्रास समझने क्योंकि तिथिकी वृद्धिसे पिंडोंका भक्षण करनेका नियम है [२]गौतमने तो यहां विशेष दिखाया है कि अब चांद्रायणको

१ एकैकं वर्द्धयेत्पिंड शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् । इंदुक्षये न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ।

* मासस्य कृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश । ग्रासापचयभोजी सन्पक्षशेषं समापयेत् । तथैव शुक्लपक्षादौ ग्रासं भुंजीत चापरं । ग्रासोपचयभोजी सन्पक्षशेषं समापयेत् ।

२ अथातश्चान्द्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं च व्रतं चरेत् श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् आप्यायस्व, सं ते पयांसि, नवोनव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हविषश्चानुमन्त्रणमुपस्थानं च चंद्रमसः यद्देवादेवहेडनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयाद्देवकृतस्येति चान्ते समिद्भिः ।

कहते हैं उसकी यह विधि कही है कि कृच्छ्रमें मुण्डन और व्रत करे और प्रातःकाल जो पूर्णिमा आवेगी उसमें उपवास करे आप्यायस्व० संतेपयांसि० नवोनव० इन ऋचाओंसे तर्पण, घीका होम, और हविका अनुमंत्रण और चन्द्रमाकी स्तुति करे और यद्देवादेवहेडनं० इन चार ऋचाओंसे आज्य (घी) का होम करे और देवकृतस्य० इस मंत्रसे होमके अंतमें समिधोंसे होम करे और इन ओंभूः० इत्यादि मंत्रोंसे[1] ग्रासोंका अनुमन्त्रण करे और मंत्र२ के प्रति मनसे नमः स्वाहा० यह कहकर इन्हीं मंत्रोंसे संपूर्ण ग्रासोंका भोजन करे और ग्रासका प्रमाण जिससे मुखमें विकार नहो अर्थात् सुखसे मुखमें पहुंच जाय वह करना और चरु भिक्षाका अन्न सत्तु कण जौ शाक दूध दही घी मूल फल जल हविः ये उत्तरोत्तर (क्रमसे) श्रेष्ठ हैं पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास खाकर एक २ ग्रासकी न्यूनतासे कृष्णपक्षमें भोजन करे और अमावस्याको उपवास करके एक २ ग्रासको बढाता हुआ शुक्ल पक्षको समाप्त करे और किसीके मतमें यह चांद्रायणका मास विपरीत है और मुखमें जिसमें विकार न हो वह ग्रासका प्रमाण बालकोंके लिये है क्यों कि वे मोरके अण्डेके समान पन्द्रह ग्रास नहीं खासक्ते दूध आदि हवियोंमें तो, मोरके अण्डेका प्रमाण, पत्तोंके दोने आदिमें भरकर समझना तिसीप्रकार कुक्कुटके अण्डेका और आर्द्र आवलेभर जो ग्रासके प्रमाण अन्य स्मृतियोंमें कहे हैं वे शक्तिके अनुसार समझने क्योंकि वे मोरके अंडेसे लघु होते हैं और जो किसीने बत्तीस दिनका चान्द्रायण कहा है वह पक्षांतर दिखानेके लिये है सार्वत्रिक नहीं कि जो यहां पूर्णिमाको उपवास कहा है उसको चतुर्दशीमें करके पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास भोजन करे[1] इत्यादि, योगीश्वरके वचनानुरोधसे तीस दिनकाही प्रतीत होता है जो यह सार्वत्रिक अर्थात् सर्वत्र मानने योग्य होता तो वर्षदिनमें निरंतर बारह चान्द्रायण न होते और बत्तीस दिनके चान्द्रायणमें चंद्रमाकी गतिका अनुसारभी सिद्ध न होता–

भावार्थ–चान्द्रायणका अभिलाषी पुरुष शुक्लपक्षमें मोरके अण्डेके समान तिथियोंकी वृद्धिके अनुसार ग्रासोंका भक्षण करे और कृष्णपक्षमें एक२ ग्रास न्यून करके भक्षण करे ॥ ३२४ ॥

यथाकथंचित्पिंडानांचत्वारिंशच्छतद्वयम् ।
मासेनैवोपभुंजीतचांद्रायणमथापरम् ३२५

पद–यथाकथंचित्ऽ–पिण्डानाम्६चत्वारिंशच्छतद्वयम् २ मासेन ३ एवऽ–उपभुञ्जीत क्रि–चान्द्रायणम् १ अथऽ–अपरम् १ ॥

योजना–पिण्डानाम् चत्वारिंशच्छतद्वयं यथा कथंचित् मासेन एव उपभुञ्जीत एतत् अपरं चान्द्रायणम्–

तात्पर्यार्थ–दोसे चालीस २४० ग्रासोंको एक मासमें भोजन यथाकथंचित् प्रति-

---

1 ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं यशः श्रीः ऊर्क् इट् ओजः तेजः पुरुषः धर्मः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रणं प्रतिमंत्रणं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वानेतैरेव ग्रासान्भुञ्जीत तद्ग्रासप्रमाणमास्याविकारेण । चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींषि उत्तरोत्तरप्रशस्तानि पौर्णमास्यां पंचदशग्रासान् भुक्त्वा एकैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात् अमावास्यायामुपोष्यैकैकोपचयेन पूर्वपक्षे विपरीतमेकेषामेव चान्द्रायणो मासः ।

1 चतुर्दश्यामुपवासमभिधाय पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासान्भुक्त्वा ।

दिन करै कि मध्याह्नमें आठ ग्रास अथवा रात्रि और दिनमें चार ग्रास अथवा एक दिन चार ४ ग्रास दूसरे दिन बारह १२ ग्रासोंको भक्षण करै फिर एकरात्र उपवास करके दूसरे दिन सोलह ग्रास भोजन करै इन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे शक्तिके अनुसार भोजन करै यह पूर्वोक्त दोनों चान्द्रायणोंसे भिन्न चान्द्रायण है क्योंकि पूर्वोक्त दोनों चान्द्रायणोंमें ग्रासोंकी संख्याका यह नियम नहीं किं तु दोसौ पच्चीस २२५ ग्रास होते हैं और मनुने ये प्रकार दिखाये हैं (अ० ११ श्लो० २१८– २२०) कि मध्याह्नमें आठ २ ग्रास हविष्य अन्नके मनकी सावधानीसे वह मनुष्य भक्षण करै कि जो यतिचान्द्रायण करै और जो शिशुचान्द्रायण करै वह विप्र चार ग्रास प्रातःकालको और चार ग्रास सूर्यके अस्त होनेपर सावधानीसे भक्षण करै और यथा कथंचित् हविष्यके दोसौ चालीस २४० ग्रास भक्षण करता हुआ चंद्रमाके लोकको प्राप्त होता है तैसेही दोसौ चालीस २४० संख्यासे न्यून ग्रासोंसे जो होय उसके ग्रहण करनेके लियेभी इस योगीश्वरके वचनमें अपर पदका ग्रहण है सोई यमने कहा है कि दृढ है व्रत जिसका ऐसा मनसे सावधान पुरुष हविष्य अन्नके तीन २ ग्रासोंको भक्षण करै तो वह ऋषिचांद्रायण कहा है और इन यतिचान्द्रायण आदिकोंमें चंद्रमाकी गतिके अनुसारकी अपेक्षा नहीं इससे तीस दिनके मासको मानकर निरंतर चान्द्रायण किया जाय और यदि कथंचित् तिथिकी वृद्धि और हानिके वस पंचमी आदि तिथिमेंभी किसी चान्द्रायणका आरंभ होय तोभी दोष नहीं और जो मार्कंडेयने सोमायन नामका मासव्रत कहा है कि सात रात्र तक गौके चारों स्तनोंका दूध पीवे और सात रात्रतक तीन स्तनोंका और सात रात्रतक दो स्तनोंका और छः रात्र तक एक स्तनका दूध पीवे और तीन रात्र तक वायुका भक्षण करै यह सोमायन नामका व्रत पापोंको नष्ट करता है और स्मृत्यंतरमें यह कहा है कि सात दिन तक गौके संपूर्ण स्तनोंको पीवे फिर तीन फिर दो फिर एक स्तनको पीवे और तीन दिन उपवास करै तो वहभी मासमें सोमायन होता है वह सोमायनभी चान्द्रायण धर्मक है अर्थात् उसके करनेसेभी चान्द्रायणका फल मिलता है—क्योंकि हारीतने अब चान्द्रायण का प्रारंभ करते हैं इत्यादि ग्रंथसे करने के प्रकार सहित चान्द्रायणको कहकर इसी प्रकार सोमायन है यह अतिदेश कहा है— और जो हारीतने कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे

१ अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते । नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत् । चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणं चरेत् । यथाकथंचित्पिण्डाना तिस्रोऽशीतीः समाहितः मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ।

२ त्रींस्त्रीन्पिण्डान्समश्नीयान्नियतात्मा दृढव्रतः । हविष्यान्नस्य वै मासमृषिचान्द्रायणं स्मृतम् ।

१ गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिबेत्स्तनचतुष्टयात् । स्तनत्रयात्सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तनद्वयात् । स्तनेनैकेन षड्रात्रं त्रिरात्रं वायुभुक् भवेत् । एतत्सोमायनं नाम व्रतं कल्मषनाशनम् ।

२ सप्ताहं चैत्येतद्गोस्तनमखिलमथ त्रीन्स्तनान्द्वौ तथैकं कुर्यात्त्रींश्चोपवासान्यदि भवति तदा मासि सोमायनं तत् ।

३ चतुर्थीप्रभृति चतुःस्तनेन त्रिरात्रं त्रिस्तनेन त्रिरात्रं द्विस्तनेन त्रिरात्रं एकस्तनेन त्रिरात्रमेवमेकस्तनप्रभृति पुनश्चतुस्स्तनांत या ते सोमचतुर्थी तनूस्तया नःपाहि तस्यै नमः स्वाहा या ते सो म पचमी षष्ठीत्येवं यागार्थं स्थिति होमाः एतं स्तुत्वा एनोभ्यः पूतश्चंद्रमसः समानतां सलोकतां सायुज्य च गच्छति ।

लेकर शुक्लपक्षकी द्वादशीपर्यंत सोमायन कहा है कि चतुर्थीसे लेकर चारस्तनोंसे तीन रात्र और तीन स्तनोंसे तीनरात्र और दो स्तनोंसे तीनरात्र और एकस्तनसे तीन रात्र इसी प्रकार फिर एक स्तनसे तीन दिन दोस्तनोंसे तीन और तीनस्तनोंसे तीन और चारस्तनोंसे तीन दिन व्यतीत करे और हे सोम जो तेरी चौथी तनू है उससे हमारी रक्षाकर तिस तनूको नमस्कार और स्वाहा है इसी प्रकार जो तेरी पांचवी छठी आदि० इसी प्रकार यज्ञ है अर्थ जिनका ऐसे तिथियोंमें होम होते हैं इस प्रकार स्तुति करके पापोंसे पवित्र होकर चंद्रमाके लोकमें और सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है यह चौवीस दिनका सोमायन कहा है वह अशक्तके विषयमें है

भावार्थ-जिस तिस प्रकारसे दोसोचालीस ग्रास एकमासमें भोजनकरे यह अपर (अन्य) चांद्रायण है ॥ ३२५ ॥

कुर्यात्त्रिषवणस्नायीकृच्छ्रंचांद्रायणंतथा ॥
पवित्राणिजपेत्पिण्डान्गायत्र्याचाभिमंत्रयेत् ॥

पद-कुर्यात् क्रि-त्रिषवणस्नायी १ कृच्छ्रं २ तथाऽ-पवित्राणि २ जपेत् क्रि-पिण्डान् २ गायत्र्या ३ चऽ-अभिमंत्रयेत् क्रि- ॥

योजना-त्रिषवणस्नायी पुरुषः कृच्छ्रं तथा चांद्रायणं कुर्यात् पवित्राणि जपेत् चपुनः पिंडान् गायत्र्या अभिमंत्रयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-प्राजापत्य आदि कृच्छ्र वा चांद्रायणको त्रिकाल स्नान करके करै यह भी तप्तकृच्छ्रसे भिन्नमें है क्यों कि वह एक वार स्नान और सावधान होकर तप्तकृच्छ्र करै इसवचनसे मनुने विशेष विधान किया है और जो शंखने कृच्छ्रोंमें त्रिकाल स्नान कहा है वह अशक्तके विषयमें है कि तीन वार दिनमें और तीनवार रात्रिमें सचैल जलमें प्रवेश करै और जो वैशंपायनने द्विकाल स्नान कहा है वह उसको जानना जो त्रिकाल स्नान करनेमें असमर्थ हो कि द्विजातिका स्नान द्विकाल वा त्रिकाल होता है और जो गार्ग्यने कहा है कि एकवासा (गीले वा एक वस्त्र धारे) भिक्षाटन करै और स्नान करके वस्त्रोंको न निचोडै वहभी शक्तकोही है क्योंकि इस वचनसे शंखने एक वस्त्रभी पक्षमें विधान किया है और स्नानमें हारीतने विशेष कहा है कि कमसे कम तीनवार शुद्धवती ऋचाओंसे स्नान और जलके भीतर अघमर्षणको जपकर और धुले और नवीन वस्त्रोंको धारण करके सौम्य सामवेदसे सूर्यकी स्तुति करै स्नानके अनन्तर पवित्र ऋचाओंका जप करै वे पवित्र अघमर्षण देवकृतः-शुद्धवत्यः-तरत्समाः इत्यादिक हैं वसिष्ठ आदिके कहे हुओंमेंसे अन्यतमोंको अर्थके अविरोधी कालोंमें जलके भीतर जपे क्यों कि मनुकी स्मृति है कि (अ. ११ श्लो० २२२) गायत्री वा पवित्र ऋचाओंको शक्तिसे प्रतिदिन जपे और जो गौतमने कहा है कि रौरवयौधाओंका नित्य जप और प्रयोग करै वहभी पवित्र होनेके लिये है नियमके लिये नहीं नियमके लिये होता तो अन्य-

१ सकृत्स्नायी समाहितः

१ त्रिरह्नि त्रिनिशायां तु सवासा जलमाविशेत् ।

२ स्नानं द्विकालमेव स्यात्त्रिकालं वा द्विजन्मनः ।

३ एकवासाश्चरेद्भैक्षं स्नात्वा वासो न पीडयेत् ।

४ एकवासा आर्द्रवासा वा दध्याशीः स्वर्धिविशेषयः ।

५ त्र्यवरं शुद्धवतीभिः स्नात्वाघमर्षणमन्तर्जले जपित्वा धौतमहतं वासः परिधाय साम्ना सौम्येनादित्यमुपतिष्ठेत् ।

६ सावित्रीं वा जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।

७ रौरवयौधा जपेन्नित्यं प्रयुञ्जीत ।

श्रुतिमूलकी कल्पना करनी पडती इससे जिसने सामवेद न जपाहो वह गायत्री आदिकोही जपे और जो यह कहा है कि न॰ मीढ्वाय मीढमाय इत्यादि पढकर यही आज्याहुति हैं वहभी नियमके लिये नहीं किन्तु विधिके लिये हैं ही क्यों कि मनु (अ० ११-श्लो० २२२) ने द्विजाति महाव्याहृतियोंसे वा तिलोंसे होम करे इस वचनसे महाव्याहृतियोंसे होमकरना तैसेही षट्त्रिंशत् मतमेंभी कहा हैं कि कृच्छ्रमें जो जपहोम आदि कहा है वह न हो सके तो वह सब महाव्याहृतियोंसे वा गायत्री वा प्रणवसे करै आदिके ग्रहणसे जलतर्पण और सूर्योपस्थान आदि लेने इसीसे वैशंपायनने कहा है कि स्नान करके सूर्यकी ऋचाओंसे हाथ जोडकर सूर्यकी स्तुति करे इसीप्रकार अन्यभी विरोधी पदार्थमें विकल्पका अनुसंधान करना और जिसमें विरोध नही उनमें समुच्चय समझना और शाखान्तराधिकरणन्यायसे सब कर्म संपूर्ण स्मृतियोंकी साक्षीसे होता है और जप संख्यामें विशेषभी उसने दिखाया है कि ऋषभ-विरज-अघमर्षण वा वदोकी माता पवित्र गायत्रीका जप शत वा अष्टशत वा अधिकसे अधिक सहस्र करै उपांशु (मन २) में उच्चारण वा मनसे जप करै पितर देवता मनुष्य भूत इनको शिरसे प्रणाम करके तर्पण करै तैसेही गायत्रीसे ग्रासोंका अभिमंत्रण करै तैसेही यमनेभी विशेष कहा है कि अंगुलियोंके आगे स्थित गायत्रीसे अभिमंत्रित ग्रासको भक्षण और आचमन करके फिर अन्यग्रासका अभिमंत्रण करै इससे जो गौतमने भूर्भुवः स्वः इत्यादि ग्रासोंका अभिमंत्रण करनेके मंत्रोंके संग इनका विकल्प कहा है और आप्यायस्व सन्तेपयांसि इत्यादि मंत्रोंसे पिण्ड करनेसे पहिले हविका अभिमंत्रण कहा है उन दोनोंको भिन्नकार्य होनेसे उनका इनके संग समुच्चय है और जब ये कृच्छ्र आदि व्रत प्रायश्चित्तके लिये किये जाते हैं तब केश आदिके मुण्डन पूर्वक ग्रहण करने क्यों कि मुण्डन सहित व्रतको करै यह गौतमकी स्मृति है अभ्युदयके लिये जो कियाजाय उसमें मुण्डन नहीं करना वसिष्ठनेभी यहां विशेष कहा है कि व्रतरूप कृच्छ्रोंके मध्यमें कुक्षरोम शिखा इनको छोडकर श्मश्रुकेश आदिकोंका मुण्डन करावे यहां कृच्छ्रोंके व्रतरूप मुण्डन आदि अंग कहेंगे यह समझना पर्षद् (धर्मसभा) के कहे व्रतका ग्रहण व्रत करनेके दिनसे पहिले दिन संध्याके समय करना सोई वसिष्ठने कहा है कि सब पापोंके लिये स-

१ महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैः कार्यो द्विजन्मना।

२ जपहोमादि यत्किंचित्कृच्छ्रोक्तं संभवेन्न चेत्। सर्वं व्याहृतिभिः कुर्याद्गायत्र्याः प्रणवेन च।

३ स्नात्वोपतिष्ठेदादित्य सौरीभिस्तु कृताञ्जलिः।

४ ऋषभं विरजं चैव तथा चैवाघमर्षणं। गायत्री वा जपेद्देवीं पवित्रां वेदमातरं। शतमष्टशतं वापि सहस्रमथवा परं। उपांशु मनसा वापि तर्पयेत्पितृदेवताः। मनुष्यांश्चैव भूतानि प्रणम्य शिरसा ततः। तथा पिण्डांश्च मत्येकं गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्।

१ अगुल्यग्रस्थितं पिण्डं गायत्र्या चाभिमन्त्रितं प्राश्याचम्य पुनः कुर्यादन्यस्याप्यभिमंत्रणं।

२ वापनं व्रतं चरेत्।

३ कृच्छ्राणां व्रतरूपाणां श्मश्रुकेशादि वापयेत्। कुक्षिलोमशिखावर्ज्यम्।

४ सर्वपापेषु सर्वेषां व्रतानां विधिपूर्वकं। ग्रहणं संप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ते चिकीर्षिते। दिनान्ते नखरोमादीन् प्रवाप्य स्नानमाचरेत्। भस्मगोमयमृद्वारिपंचगव्यादिकल्पितैः। मलापकर्षणं कार्यं बाह्यशौचोपसिद्धये। दन्तधावनपूर्वेण पंचगव्येन संयुतं। व्रतं निशामुखे ग्राह्यं बहिस्तारकदर्शने। आचम्यातः परं मौनी ध्यायन्दुष्कृतमात्मनः। मनः संतापनं तीव्रमुद्वहेच्छोकमन्ततः।

म्पूर्ण व्रतोंका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा होय तो विधिपूर्वक ग्रहण कहता हूं दिनके अंतमें नखरोम आदिका मुण्डन कराकर स्नान भस्म गोमय मिट्टी गोबर पंचगव्य आदिसे करै और बाह्य शुद्धिके लिये शरीरके मलको दन्तधावन और पंचगव्यसे करै और तारागणोंके दीखनेपर सायंकालके समय व्रतको ग्रहण करै और आचमनके अनंतर मौन होकर अपने पापका ध्यान करै मनमें तीव्र (भारी) दुःखमाने और अंतःकरणमें शोक करै यहां बाह्य शौचसे ग्रामसे बाहिर मलका त्याग लेना स्त्रीभी इसीप्रकार व्रतको ग्रहण करै स्त्रीको केश श्मश्रु नखोंका मुण्डन तो नहीं है क्योंकि बौधायनकी स्मृति है कि स्त्रीभी केशोंके मुण्डनको छोडकर चांद्रायण आदिमें ऐसेही करै और जो मुण्डन न चाहता हो उसके लिये हारीतने विशेष कहा है कि राजा राजाका पुत्र वा बहुश्रुत ब्राह्मण केशोंको मुंडवा कर प्रायश्चित्त करै और केशोंकी रक्षाके लिये दुगुना व्रत करै और दूना व्रत करने पर दक्षिणाभी दूनी होती है यह महापातक आदि दोषोंके अभिप्रायसे जानना क्योंकि मनुकी यह स्मृति है कि विद्वान् ब्राह्मण राजा स्त्री इनके और महापातकी और गोहन्ता और अवकीर्णी इनके व्रतमें केशोंका मुण्डन इष्ट नहीं है जाबालिनेभी यहां विशेष कहा है कि सब कृच्छ्रोंके प्रारंभ और विशेष कर समाप्तिमें अन्यसेही शालाग्निमें व्याहृतियोंसे पृथक् २ होम करै और व्रतके अन्तमें श्राद्धकरै और गौ सुवर्ण आदिकी दक्षिणादे- और यमनेभी यहां विशेष कहा है कि पश्चात्ताप, पापसे निवृत्ति, स्नान ये व्रतके अंग कहे हैं और संपूर्ण नैमित्तिक कर्मोंका कथनभी व्रतका अंग है और तैसेही गात और सिरका उबटना तांबूल चंदन आदिका लेपन और जो अन्यभी बलकारि पदार्थ हैं उनकोभी व्रतमें स्थित मनुष्य वर्जदे ऐसे पूर्वोक्त आदि इति कर्त्तव्यता (करनेका प्रकार) का समूह अन्य स्मृतियोंसे ढूंढना इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे व्रतको ग्रहण करके अवश्य समाप्त करना अन्यथा प्रत्यवाय (पाप) होता है क्योंकि छागलेयकी स्मृति है कि जो काममोहित पुरुष पहिले व्रतको ग्रहण करके न करै वह जीवता हुआ चाण्डाल और मरकर श्वा होता है प्रपंचसे अलं हुये अर्थात् विस्तारको समाप्त करते हैं

भावार्थ–कृच्छ्र और चान्द्रायणको त्रिकाल स्नान करके करै और पवित्र मंत्रको जपै और गायत्रीसे ग्रासोंका अभिमंत्रण करै– २२६ ॥

---

१ केशश्मश्रुलोमनखवपनं तु नास्ति चांद्रायणादिष्वेतदेव स्त्रियाः केशवपनवर्ज्यम् ।

२ राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः । केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् । केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् । द्विगुणे तु व्रते चीर्णे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ।

३ विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणां नेष्यते केशवापनं । ऋते महापातकिनो गोहन्तुश्चावकीर्णिनः ।

१ आरंभे सर्वकृच्छ्राणां समाप्तौ च विशेषतः । अन्येनैव च शालाग्नौ जुहुयाद्व्याहृतीः पृथक् । श्राद्धं कुर्याद्व्रतान्ते तु गोहिरण्यादिदक्षिणा ।

२ पश्चात्तापो निवृत्तिश्च स्नानं चांगतयोदितं । नैमित्तिकानां सर्वेषां तथा चैवानुकीर्त्तनं । गात्राभ्यंगशिरोभ्यंगताम्बूलमनुलेपनं । व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यद्बलरागकृत् ।

३ पूर्वं व्रतं गृहीत्वा तु नाचरेत्काममोहितः । जीवन्भवति चाण्डालो मृतः श्वा चैव जायते ।

अनादिष्टेषुपापेषुशुद्धिश्चान्द्रायणेनच ॥
धर्मार्थयश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥

पद–अनादिष्टेषु ७ पापेषु ७ शुद्धिः १ चान्द्रायणेन ३ च–धर्मार्थ २ यः १ चरेत्–क्रि एतत् २ चंद्रस्य ६ एति कि- सलोकताम् २॥

योजना–अनादिष्टेषु पापेषु चान्द्रायणेन च शुद्धिर्भवति यः एतत् धर्मार्थं चरेत् सः चंद्रस्य सलोकताम् एति ॥

तात्पर्यार्थ–जो आदेश किया जाय उसे आदिष्ट कहते हैं नहीं है आदिष्ट (प्रायश्चित्त) जिनमें उन पापोंको अनादिष्ट कहते हैं- उनकी शुद्धि चान्द्रायणसे होती है–अर्थात् उन पापोंका प्रायश्चित्त चान्द्रायण है और च शब्दके पढनेसे ऐन्दव सहित प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंसे शुद्धि होती है सोई षट्त्रिंशन्मतमें तीनोंका समुच्चय कहाहै कि जो कोई गुरुसेभी गुरु पाप हैं वे कृच्छ्र अति कृच्छ्र और चान्द्रायणोंसे शुद्ध होते हैं– उशनाने तो दोका समुच्चय कहा है कि दुरित (उपपातक) दुरिष्ट (पातक) जो बडेभी पाप हैं उनमें उन सबका नाशक कृच्छ्र चान्द्रायण है गौतमने तो कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायण यह सब पापोंके प्रायश्चित्त हैं इस वचनमें समासके न करनेसे कृच्छ्रातिकृच्छ्रको चान्द्रायणकी और चान्द्रायणको उन दोनोकी निरपेक्षता सूचित कीई है और इतिशब्दसे तीनोंका समुच्चय कहा है और केवल प्राजापत्यका तो निरपेक्षता चतुर्विंशति मतमें कहा है कि जिसमें प्रायश्चित्त नहीं कहा ऐसे लघु दोषमें प्राजापत्य करे गौतमनेभी प्राजापत्य आदिकी निरपेक्षता कही है कि प्रथम प्राजापत्य करके शुद्ध और पवित्र होकर कर्मके योग्य होता है दूसरे प्राजापत्यको करके महापातकसे भिन्न जो पाप करता है उससे छुटता है और तीसरे प्राजापत्यको करके सब पापोंसे छुटता है अर्थात् महापातकसेभी निवृत्त होता है और मनुनेभी कहा है (अ. ११ श्लो. २१५) कि पराक नाम यह कृच्छ्र सब पापोंका नाश करनेवाला है हारीतनेभी कहा है कि चांद्रायण यावक तुलापुरुष और गौओंका अनुगमन सब पापोंको नष्ट करता है और गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशाका जल, और एक रात्रका उपवास ये श्वपाक कोभी शुद्ध करते हैं तैसेही तप्तकृच्छ्रके अधिकारमें उसनेही कहा है कि दो बार अभ्यास किया यह पातकोंसे छुटाता है और न्यायसे तीन वार अभ्यास किया यह शूद्र हत्याको दूर करता है और उशनानेभी कहा है कि जहां महापातकका नाश कहा हो वा न कहा हो वहां प्राजापत्य कृच्छ्रसे शुद्धि होती है इसमें संशय नहीं ये प्राजापत्य आदि कृच्छ्र जिन उप पातकोंमें प्राय-

१ यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराणि च । कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैः शोध्यते मनुरब्रवीत ।

२ दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि । कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ।

३ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तम् ।

४ लघुदोषे त्वनादिष्टे प्राजापत्यं समाचरेत् ।

१ प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति द्वितीयं चरित्वा यदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्प्रमुच्यते तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते ।

२ पराको नाम कृच्छ्रोयं सर्वपापापनोदनः ।

३ चान्द्रायणं यावकश्च तुलापुरुष एव च । गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ।

४ एष कृच्छ्रो द्विरभ्यस्तः पातकेभ्यः प्रमोचयेत् । त्रिरभ्यस्तो यथान्याय शूद्रहत्यां व्यपोहति

५ यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तं महापातकनाशनम् । प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शोधयेन्नात्र संशयः ।

श्चित्त नहीं कहा उनके एक बार अभ्यासस करनेकी अपेक्षासे व्यस्त (पृथक् २)वा समस्त युक्त करने और तैसेही जिनमें प्रायश्चित्त कहा है उन महापातक आदिमेंभी अभ्यासकी अपेक्षासे युक्त करने इसीसे यमने जहां प्रायश्चित्त कहा हो वा न कहा हो वहां प्राजापत्य कृच्छ्रसे शुद्धि होती है इसमें संशय नहीं गौतमनेभी कहा है सब प्रायश्चित्तोंके संग्रहके लिये सर्व प्रायश्चित्तोंका ग्रहण किया है तैसेही जो उसने कहा है कि दूसरे प्राजापत्यको करके महापातकसे भिन्न सब पापोंसे छुटता है यह कहकर तीसरे प्राजापत्यको करके सब पापोंसे छुटताहै वहभी महापातकके अभिप्रायसे है कुछ क्षुद्र पापोंके अभिप्रायसेनहीं है और महापातक ऐसा नहीं है जिसका प्रायश्चित्त शास्त्रमें न कहाहो तिससे उन पातकोंमेंभी प्राजापत्य आदि युक्त करने जिनका प्रायश्चित्त कहाहै तिससे बारह वर्षके व्रतरूप प्रायश्चित्तमें बारह २ दिनमें एक २ प्राजापत्यकी कल्पना करनेपर गिनेहुये प्राजापत्य तीनसौ साठ बारह वर्षके व्रतमें विकल्पसे करने होंगे उनको न करसकें तो उतनीही धेनु दे-वेभी न दे सकैतो तीनसौ साठ निष्क दे सोई स्मृत्यंतरमें कहा है कि प्राजापत्यके करनेमें अशक्त मनुष्य धेनुको दे-धेनुके अभावमें उसके तुल्य मोल दे-अथवा आधा मोल वा निष्क-अथवा आधानिष्क शक्तिके अनुसार दे क्योंकि यह स्मृति है कि गौओंके अभावमें निष्क आधानिष्क वा पादनिष्क दे मूल्यभी न देसकै तो उतनेही उदवास करने-वेभी न करसकें तो छत्तीस लाख गायत्रीका जप करें-क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि कृच्छ्र दश सहस्र गायत्रीका जप और उदवास (जलमें बसना) और धेनुका दान ये चारों समान हैं-और जो चतुर्विंशतिके मतमें कहा है कि एक कोटि गायत्रीको जपे तो ब्रह्महत्याको दूर करता है-अस्सी लाख जपे तो सुरापानसे छुटता है- सत्तर लक्ष गायत्री सुवर्णके चोरको पवित्र करती है और साठ लक्ष गायत्रीसे गुरुतल्पग छुटता है-यह वचन बारह वर्षके तुल्य विधानसे कहा है कुछ असमर्थके विषयमें नहीं है इससे विरोध नहीं-इसी प्रकार अन्यभी कृच्छ्र-दश सहस्र गायत्री-दो सौ प्राणायाम-सहस्र तिलोंसे होम और वेदका पारायण इत्यादि प्रत्याम्नाय (प्रतिनिधि) जो चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंमें कहे हैं उनको तीनसौ साठगुने करके महापातकोंमें जानने अतिपातकोंमें दोसौ सत्तर प्राजापत्य करने वा उतनेही प्रत्याम्नाय (बदलेकी) धेनु देनी और पातकोंमें एकसौ अस्सी १८० प्राजापत्य, वा उनकेही प्रत्याम्नाय, उतनीही धेनु-देनी-तैसेही चतुर्विंशतिके मतमें कहा है कि जन्मसे लेकर नाना प्रकारके ब्रह्महत्यासे

१ निष्कृतीनां संग्रहार्थं सर्वप्रायश्चित्तग्रहणं कृतम् ।

२ प्राजापत्यक्रियाशक्तो धेनुं दद्याद्विचक्षणः । धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यमसंशयम् ।

३ गवामभावे निष्कं स्यात्तदर्धं पाद एव वा ।

१ कृच्छ्रोऽयुत तु गायत्र्या उदवासास्तथैव च । धेनुप्रदान विभाय सममेतच्चतुष्टयम् ।

२ गायत्र्यास्तु जपन्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते । पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्या लक्षसप्ततिः । गायत्र्याः षष्टिभिर्लक्षैर्मुच्यते गुरुतल्पगः ।

३ कृच्छ्रो देव्ययुत चैव प्राणायामशतद्वयम् । तिलहोमसहस्रं तु वेदपारायणं तथा ।

४ जन्मप्रभृतिपापानि बहूनि विविधानि च । कृत्वार्वाग् ब्रह्महत्यायाः षडब्दं व्रतमाचरेत् । प्रत्याम्नाये गवां देयं साशीति धनिना शतम् । तथाष्टादशलक्षाणि गायत्र्या वा जपेद्बुधः ।

इतर बहुतसे इतर पापोंको करके छः वर्षका व्रत करै– अथवा धनी होय तो उसके प्रत्याम्नाय एकसौ अस्सी गौदे– अथवा अठारह लक्ष गायत्रीका जप बुद्धिमान् पुरुष करै– बारह वर्षके प्रायश्चित्तमें बारह २ दिनके एक २ प्राजापत्यकी कल्पनामें यही वचन प्रमाण है इसी प्रकार तीन वर्ष प्रायश्चित्तके विषय जो उपपातक हैं उनमें नव्वे ९० प्राजापत्य और उतनेही प्रत्याम्नाय जानने– और त्रैमासिकके विषयमें साढेसात प्राजापत्य और उतनेही धेनु उदवास आदि प्रत्याम्नाय होते हैं–मासिक व्रतके विषयमें तो अढाई प्राजापत्य और उतनाही प्रत्याम्नाय होता है और जिन उपपातकोंमें चान्द्रायण करना पडता है उनमें तीन प्राजापत्य और उनके करनेमें अशक्तको उतनाही प्रत्याम्नाय होता है– और जो चतुर्विंशतिके मतमें कहा है कि चान्द्रायणके प्रत्याम्नायमें सदैव आठ गौ देनी यहभी धनवान् पुरुषको पिपीलिकामध्य आदि चांद्रायणके प्रत्याम्नायमें समझना–और मासातिकृच्छ्र जिनमें करना पडता है उन पातकोंमें तो साढेसात प्राजापत्य और उतनेही धेनु आदि प्रत्याम्नाय होते हैं–क्योंकि चतुर्विंशतिमतमें यह कहा है कि प्राजापत्यमें एक गौ सांतपनमें दो और पराकमें और तप्तकृच्छ्र अतिकृच्छ्रोंमें तीन २ गौ दे, यहभी आमलकके समान एक २ ग्रासको भक्षण करै–इस वचनसे कहे आंवलेके समान ग्रास पक्षमें जानना– पाणिपूरान्नभोजन पक्षमें तो दो धेनुही प्रत्याम्नाय होती हैं–क्योंकि प्राजापत्य छः उपवासोंके तुल्य है और उससे दूना अतिकृच्छ्र होता है–यद्यपि नव दिनतक पाणिपूरान्न भोजन होता है तथापि निरंतर बारह दिनतक व्रत किया जायतो अधिक क्लेश होनेसे छः दिनके उपवासकी तुल्य जो दो प्राजापत्य उनकी तुल्यता ठीक है–और प्राजापत्यको छः उपवासकी तुल्यता युक्त ही है–सोई दिखाते हैं कि पहिले तीन दिनोंमें सायंकालके तीन भोजनकी निवृत्तिसे एक उपवास और दूसरे तीन दिनोंमें प्रातःकालके तीन भोजनोंकी निवृत्तिसे दूसरा उपवास और तैसेही अयाचित भोजनके तीन दिनोंमें सायंकालके तीन भोजनोंकी निवृत्तिसे तीसरा उपवास हुवा इस प्रकार नौ दिनोंमें तीन उपवास हुये और तीन उपवास अंतके इससे प्राजापत्यको छः उपवासके तुल्य मानना ठीक है बैल और दश गोदान सहित त्रिरात्र उपवासरूप गोवध व्रतमें तो साढे ग्यारह प्राजापत्य और उतनेही प्रत्याम्नाय समझने और मासभर पयोव्रतमें तो अढाई प्राजापत्य और पराकरूप मास व्रतमें तीन प्राजापत्य होते हैं क्यों कि षट्त्रिंशन्मतमें यह कहा है कि पराक तप्तातिकृच्छ्रके स्थानमें तीन कृच्छ्र करै और असमर्थ होय तो आधा सांतपन व्रत करै और तीन प्राजापत्य रूप द्वादश वार्षिक व्रतके स्थानमें चान्द्रायण पराक कृच्छ्रातिकृच्छ्र तो एकसौ बीस १२० करने और उनके प्रत्याम्नाय धेनु आदि तो तिगुने करने और अतिपातकोंमें नव्वह ९० चान्द्रायण आदि होते हैं और उनके तुल्य जो पातक हैं उनमें साठ ६० और जिनमें त्रैमासिक व्रत होता है उन उपपातकोंमें तीस चांद्रायण होते है और त्रैमासिक गोवध म-

१ अष्टौ चान्द्रायणे देयाः प्रत्याम्नायविधौ सदा ।

२ प्राजापत्ये तु गामेकां दद्यात्सांतपने द्वयम् । पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रे तिस्रस्तु गास्तथा ।

१ पराकतप्तातिकृच्छ्रस्थाने कृच्छ्रत्रयं चरेत् सांतपनस्य चाप्यर्धमशक्तो व्रतमाचरेत् ।

तके स्थानमें गोमूत्र स्थान आदिकोंकी कर्तव्यताकी अधिकतासे तीन चान्द्रायण करने और योगीश्वरके कहे मासिक व्रतमें तो एकही चान्द्रायण होता है और धेनु उदवास आदि प्रत्याम्नाय तो सर्वत्र तिगुनाही होता है और प्रकीर्णकोंमें तिस २ प्रायश्चित्तके अनुसार पाद आदिकी कल्पनासे प्राजापत्य समझना और आवृत्ति (अभ्यास) में तो चान्द्रायण आदि करने इसी रीतिसे अन्यत्र भी कल्पना करनी और जो बृहस्पतिने कहा है कि जन्मसे लेकर जो पातक और उपपातक किया है उसमें तबतक कृच्छ्रकी आवृत्ति करे जबतक साठगुणा हो वह वचन परस्त्री गमनमें दो वर्ष व्रत करे इस गौतमके कहे द्विवार्षिकके समान विषयमें अथवा उस उपपातककी आवृत्तिके विषयमें है जिसमें त्रैमासिक व्रत करना पडता है अथवा पातक रूप चाण्डाल आदि स्त्री गमनके दोवार अभ्यासके विषयमें समझना क्योंकि वहां एक वार जानकर गमनमें इस वचनसे कृच्छाब्द (वर्ष भरका कृच्छ्र)कहा है कि जानकर कृच्छ्राब्द और अज्ञानसे दो ऐंदव कहे हैं उसके अभ्यासमें द्विवर्षकी तुल्य साठ कृच्छ्रका विधान युक्तही है और जो सुमंतुने कहा है कि जो जानकर एकवार अभ्यास किया महापाप है वह महापातकको छोडकर अब्द कृच्छ्रसे शुद्ध होता है वहभी उपपातक आदिकी आवृत्तिके विषयमें और वा तैसे ही अज्ञानसे दो ऐंदव करे इस यमके कहे दो ऐंदवोंके विषय जो पातक उनकी आवृत्तिके विषयमें है और जो मनुष्य तप करनेमें असमर्थ है और धान्यसमृद्ध है वह कृच्छ्र आदि व्रतोंको मुख्य २ ब्राह्मणोंके भोजनद्वारा करे सोई स्मृत्यंतर में कहा है कि कृच्छ्रमें प्रतिदिन पांच अतिकृच्छ्रमें तिगुने पांच (१५) ऐसेही तीसरे (कृच्छ्रातिकृच्छ्रमें) तीस तप्त कृच्छ्रमें चालीस और पराकमें त्रिगुणित वीस (६०) और सांतपननामके कृच्छ्रमें वेही त्रिगुणित वीस छः अधिक (६६) और चांद्रायणमें उनसे दो हीन कम (६४) मुख्य २ ब्राह्मणोंको वह जिमावे जो तप करनेमें बलसे हीन हो यहां प्रतिदिनका सर्वत्र संबंध समझना यहां प्राजापत्यके दिनोंकी कल्पनासे साठि ब्राह्मणोंको भोजन होता है और जो चतुर्विंशति मतमें कहा है कि बारह ब्राह्मणोंको जिमावे अथवा पावकेष्टि (वैश्वानर यज्ञ) अथवा अन्यकोई पावनी यज्ञ इन सबको बुद्धिमानोंने समान कहा है इस वचनसे प्राजापत्यके स्थानमें बारह ब्राह्मणोंका भोजन कहा है वह निर्धनके विषयमें है और जो वहांही चांद्रायणका प्रत्याम्नाय कहा है कि चांद्रायण मृगारेष्टि पवित्रेष्टि मित्रविंदा पशु तीन मासका कृच्छ्र करे और नित्य नैमित्तिक और काम्यकर्मोंके और

१ जन्मप्रभृति यत्किंचित्पातकं चोपपातकं । तावदावर्तयेत्कृच्छ्रं यावत्षष्टिगुणं भवेत् ।

२ ज्ञानात् कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादैन्दवद्वयम् ।

३ यद्यप्यसकृदभ्यस्तं बुद्धिपूर्वमघं महत् । तच्छुद्ध्यत्यब्दकृच्छ्रेण महतः पातकादृते ।

१ कृच्छ्रे पञ्चातिकृच्छ्रे त्रिगुणमहरहस्त्रिंशदेवं तृतीये चत्वारिंशच्च तप्ते त्रिगुणितगुणिता विंशतिः स्यात्पराके । कृच्छ्रे सांतापनाख्ये भवति षडधिका विंशतिः सैव हीना द्वाभ्यां चांद्रायणे स्यात्तपसि कृशबलो भोजयेद्विप्रमुख्यान् ।

२ विप्रा द्वादश वा भोज्याः पावकेष्टिस्तथैव च । अन्या वा पावनी काचित्समान्याहुर्मनीषिणः ।

३ चांद्रायणं मृगारेष्टिः पवित्रेष्टिस्तथैव च । मित्रविंदापशुश्चैव कृच्छ्रं मासत्रयं तथा । नित्यनैमित्तिकानां च काम्यानां चैव कर्मणां । इष्टीनां पशुबंधानामभावे चरवः स्मृताः ।

पशुबंध इष्टियोंके अभावमें चरु कहे हैं-वहभी उसके लिये है जो चांद्रायण करनेमें असमर्थ हो और जो तीनमास कृच्छ्र करै इस वचनसे आठ कृच्छ्र कहे हैं वहभी वृद्ध और मूर्खके विषयमें है क्योंकि तीन कृच्छ्रोंसे चांद्रायणका फल मिलता है यह दिखा आये हैं अब ग्रंथके प्रपंच (विस्तार) को समाप्त करते हैं और प्रकृतका अनुसरण करते हैं अर्थात् प्रकरणके विषयमें कहते हैं और अभ्युदयका अभिलाषी धर्म अर्थ कामकी इच्छासे इस चांद्रायणको करै और प्रायश्चित्तके लिये नही करै तो वह चंद्रसालोक्य रूप स्वर्ग विशेषको प्राप्त होता है यह वर्ष दिनकी आवृत्तिके अभिप्रायसे है क्योंकि गोतमकी यह स्मृति है कि एक चांद्रायणको करके पापसे रहित होकर सब पापोंको नष्ट करता है दूसरेको करके दश पिछले और दश अगले पुरुषोंको और इक्कीसवें आत्माको और पंक्तिको पवित्र करता है और एक वर्षतक चांद्रायणको करके चंद्रमाके लोकको प्राप्त होता है-

भावार्थ-जिनका प्रायश्चित्त नही कहा उनकी शुद्धि चांद्रायणसे होती है और जो धर्मके लिये इस चांद्रायणको करता है वह चंद्रलोकको प्राप्त होता है ॥ ३२७ ॥

कृच्छ्रकृद्धर्मकामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात् ॥ यथागुरुक्रतुफलंप्राप्नोतिसुसमाहितः ३२८

पद-कृच्छ्रकृत् १ धर्मकामः १ तु-महतीं २ श्रियं २ आप्नुयात् क्रि-यथा-गुरुक्रतुफलं २ प्राप्नोति क्रि- सुसमाहितः १

योजना-धर्मकामः कृच्छ्रकृत् तथा महतीं श्रियं आप्नुयात् यथा गुरुक्रतुफलं सुसमाहितः प्राप्नोति-

तात्पर्यार्थ-जो अभ्युदयका अभिलाषी धर्मकेलिये प्राजापत्य आदिकृच्छ्रको करता है वह इस प्रकार राज्य आदि महती (बडी) लक्ष्मीको प्राप्त होता है जैसे राजसूय आदि बडी२ यज्ञोंको, भलीप्रकार सावधानीसे करनेसे उनका कर्ता स्वाराज्य आदि यज्ञोंके महान् फलको प्राप्त होता है तैसेही यहभी यथार्थ संपूर्ण अंगोंसे युक्त करता हुआ प्राप्त होता है इस प्रकार महिमाके प्रकाशनार्थ यज्ञका दृष्टांत दिया है सुसमाहितः इस पदसे अविकल (यथार्थ) शास्त्रोक्तके करनेको कहता हुआ योगीश्वर अंगसे हीन काम्य कर्ममें फलकी असिद्धिको द्योतन करता है इससे यहां प्रायश्चित्तोंके विषैही जितने संभव हों उतने अंगोका अनुष्ठान अंगीकार करना इस प्रत्याम्नायका उपादान दूरोत्सारित हुआ (दूर फेंका गया) कृच्छ्र आदि अनुष्ठानोंकी आवृत्तिमें तो अधिकारीके फलकी आवृत्ति कर्मके आरंभसे भावी होते हैं इस न्यायसे हो सकती ही है इससे वह विवक्षित नही-

भावार्थ-धर्मका अभिलाषी कृच्छ्र करता हुआ महती लक्ष्मीको इस प्रकार प्राप्त होता है जैसे भली प्रकार सावधानीसे करता हुआ मनुष्य गुरु (बडी२) यज्ञोंके फलको प्राप्त होता है ॥ ३२८ ॥

श्रुत्वैतानृषयोधर्मान्याज्ञवल्क्येनभाषितान् । इदमूचुर्महात्मानंयोगींद्रममितौजसम् ॥

पद-श्रुत्वा-एतान् २ ऋषयः १ धर्मान् २ याज्ञवल्क्येन ३ भाषितान् १ इदम् २

१ कृच्छ्र मासत्रय तथा।

२ चांद्रायण त्रिभिः कृच्छ्रैः।

३ एकमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हन्ति द्वितीयमाप्त्वा दशपूर्वान्दशापरान् आत्मानं चैकविंशं पंक्तिं च पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतामाप्नोति।

१ धर्मण्यारभमाण्यत्वात्।

ऊचुः क्रि- महात्मानं २ योगीन्द्रम् २ अमिताजसम् २-

योजना-ऋषयः याज्ञवल्क्येन भाषितान् एतान् धर्मान् श्रुत्वा महात्मानं अमिताजसं योगीन्द्रम् इदम् ऊचुः-

तात्प०भावार्थ-इस ग्रंथमें वर्ण और आश्रमसे भिन्न छःप्रकारके धर्म कहे हैं उन संपूर्ण, योगीश्वरके कहे धर्मोंको सुनकर आनंदसे प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके ऐसे ऋषि महिमा और गुणवाले अचिंतनीयशक्ति जिसकी ऐसे योगीन्द्रके प्रति यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥३२९॥

यइदंधारयिष्यंतिधर्मशास्त्रमतंद्रिताः ॥
इहलोकेयशःप्राप्यतेयास्यंतित्रिविष्टपम् ॥

पद-ये १ इदं २ धारयिष्यंति क्रि- धर्मशास्त्रं २ अतंद्रिताः १ इह- लोके ७ यशः २ प्राप्य- ते १ यास्यंति क्रि-त्रिविष्टपम् २ ॥

योजना-ये इदं धर्मशास्त्रं अतंद्रिताः धारयिष्यंति ते इह लोके यशः प्राप्य त्रिविष्टपं यास्यंति-

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य इन धर्मशास्त्रको आलस्य छोडकर धारण करेंगे अर्थात् पढेंगे वे इस लोकमें यशको प्राप्त होकर स्वर्गमें प्राप्त होते हैं- ॥ ३३० ॥

विद्यार्थीप्राप्नुयाद्विद्यांधनकामोधनंतथा ॥
आयुष्कामस्तथैवायुःश्रीकामोमहतींश्रियं॥

पद-विद्यार्थी १ प्राप्नुयात् क्रि- विद्याम् २ धनकामः १ धनं २ तथा- आयुष्कामः १ तथा- एव- आयुः २ श्रीकामः १ महतीं २ श्रियम् २

योजना-विद्यार्थी विद्यां तथा धनकामो धनं आयुष्कामः आयुः श्रीकामः महतीं श्रियं प्राप्नुयात् ॥

ता० भा०-विद्याका अभिलाषी विद्याको धनका कामी धनको और आयुका० लाषी आयुको और लक्ष्मीकी इच्छा महालक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥ ३३१ ॥

श्लोकत्रयमपिह्यस्माद्यःश्राद्धेश्रावयिष्यति
पितॄणांतस्यतृप्तिःस्यादक्षय्यानात्रसंशय

पद-श्लोकत्रयम् २ अपि- हि- अस्मात् यः १ श्राद्धे ७ श्रावयिष्यति क्रि-पितॄणां तस्य ६ तृप्तिः १ स्यात् क्रि-अक्षय्या १ न- अत्र- संशयः १ ॥

योजना-यः पुरुषः अस्मात् श्लोकत्रयं अपि श्राद्धे श्रावयिष्यति तस्य पितॄणां अक्षय्या तृप्तिः स्यात् अत्र संशयः नास्ति ॥

ता० भा०-जो मनुष्य इसके तीनभी श्लोक श्राद्धमें पितरोंको सुनाता है उसके पितर उन श्लोकोंके सुननेसे अक्षय तृप्तिको प्राप्त होते हैं इसमें संशय नही ॥ ३३२ ॥

ब्राह्मणःपात्रतांयातिक्षत्रियोविजयीभवेत् ॥
वैश्यश्चधान्यधनवानस्यशास्त्रस्यधारणात्

पद-ब्राह्मणः १ पात्रतां २ याति क्रि- क्षत्रियः १ विजयी १ भवेत् क्रि- वैश्यः १ च- धान्यधनवान् १ अस्य ६ शास्त्रस्य ६ धारणात् ५ ॥

योजना-अस्य शास्त्रस्य धारणात् ब्राह्मणः पात्रतां याति क्षत्रियः विजयी च पुनः वैश्यः धान्यधनवान् भवेत् ॥

ता० भा०-इस शास्त्रके धारण करनेसे ब्राह्मण पात्रतासे क्षत्रिय विजयसे और वैश्य धनधान्यसे युक्त होता है इस प्रकार इन प्रकट अर्थवाले श्लोकोंसे सामश्रवः आदि ऋषि अनेक प्रकार प्रार्थना करते भये ॥

यइदंश्रावयेद्विद्वान्द्विजान्पर्वसुपर्वसु ॥
अश्वमेधफलंतस्यतद्भवाननुमन्यताम् ३३४

पद-यः १ इदं २ श्रावयेत् क्रि-विद्वान् १ द्विजान् २ पर्वसु ७ पर्वसु ७ अश्वमेध- १

तस्य ६ तत् १ भवान् १ अनुमन्यतां क्रि–

योजना–यः विद्वान् इदं शास्त्रं द्विजान् पर्वसु पर्वसु श्रावयेत् तस्य अश्वमेधफलं भवति तत् भवान् अनुमन्यतां ॥

ता० भा०–जो विद्वान् इस धर्मशास्त्रको प्रतिपर्व ब्राह्मणोंको सुनावेगा उसको अश्वमेधका फल प्राप्त हो–इस वचनसे श्रवण करानेकी विधि कही–ऋषि कहते हैं कि इस हमारे प्रार्थना किये अर्थमें आप अपनी संमति दो ॥ ३३४ ॥

श्रुत्वैतद्याज्ञवल्क्योपिप्रीतात्मा-
मुनिभाषितम् ॥ एवमस्त्वितिहो-
वाचनमस्कृत्यस्वयंभुवे ॥ ३३५ ॥

पद–श्रुत्वाऽ– एतत् २ याज्ञवल्क्यः १ अपिऽ– प्रीतात्मा १ मुनिभाषितं २ एवंऽ– अस्तु क्रि–इतिऽ–हऽ– उवाच क्रि–नमस्कृत्यऽ स्वयंभुवे ४

योजना–याज्ञवल्क्यः अपि एतत् मुनिभाषितं श्रुत्वा प्रीतात्मा सन् स्वयंभुवे नमस्कृत्य एवम् अस्तु इति उवाच ॥

ता० भावार्थ–इस ऋषियोंके वचनको सुनकर योगीन्द्र–याज्ञवल्क्यभी–अपने रचे हुए धर्मशास्त्रकी धारणा आदिके फलकी प्रार्थनाके लिये–अपने मुख कमलको मींचकर स्वयंभू ब्रह्माको नमस्कार करके तुह्मारी संपूर्ण प्रार्थना इसीप्रकार हो इस प्रकार कहते भए ॥ ३३५ ॥

इस अध्यायमें ये प्रकरण हैं कि–प्रथमतो सूतिका प्रकरण-आपद्धर्म–वानप्रस्थ–अध्यात्मप्रायश्चित्त–कर्मविपाक–महापातक आदिके निमित्तोंकी गणना– आतिदेशिकसहित [उ]पातकप्रायश्चित्त–उपपातकप्रायश्चित्त–प्र[कीर्ण]कप्रायश्चित्त–पतितत्यागविधि–व्रतग्रहण-[वि]धि–रहस्यप्रायश्चित्ताधिकार– और कृच्छ्र-आदिके लक्षण-इति प्रकरणानि ॥

उत्तमात्मेश्वरके शिष्य विज्ञानेश्वर योगीका किया यह धर्मशास्त्रका विवरण है १ याज्ञवल्क्यमुनिके रचे शास्त्रकी विवृति (विवरण वा व्याख्या) और प्रमित अक्षरवालीभी होकर विपुल (अधिक) अर्थकी बोधक यह मेरी रची हुयी मिताक्षरा किस विद्वानके कानोंमे अमृतको न सींचेगी अपितु सबकेही श्रवणोंमें अमृतका सेचन करैगी २ गंभीर और प्रसन्न और अधिक अर्थकी बोधक और अल्पवाणीयोंसे यह मिताक्षरा विवृति रची है ३ क्षितितलमें कल्याणपुरके समान पुरी नहुई नहो–और सूर्यरूपश्रीविक्रमके समान कोई क्षितिपति (राजा) हुया नहो–और विज्ञानेश्वर पंडितभी अन्य पंडितोंके समान अन्य किसीको नही भजता तिससे ये तीनों कल्पपर्यंत स्थिर हो–४ संपूर्ण आश्चर्योंकी अवधि मधुर २ वाणीयोंका वक्ता–और अर्थि (याचक) योंकी प्रार्थनाके अनुसार धनोंका दाता और मुरके विजयी (श्रीकृष्ण) की मूर्तिका ध्याता और शरीरके संग जन्मे हुये (इंद्रिय रूप) शत्रुओंका जेता तत्त्वविज्ञाननाथ सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति पर्यंत

. . . .

ऐसा विक्रमादित्य देव इस संपूर्ण जगत्की रक्षाकरो–६–यदि इंद्रिय अंतर्मुख (वशमें) हैं तो तप क्या वस्तु है अर्थात् निष्फल है यदि इंद्रिय अंतर्मुखनही हैं तो तप क्याकर सकता है, और यदि हरि अन्तःकरणमें और बाहिर है तो तप क्या वस्तु है, और यदि हरि अंतःकरणमें और बाहिर नही है तो तप क्याकर सकता है–७ ॥

इति श्रीमद्विज्ञवरपंडितहरिसहायांगजपण्डितरामरक्षात्मजपं० मिहिरचन्द्रशास्त्रिकृतायां श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजश्रेष्ठिकारितमिताक्षरार्थदीपिकायां प्रायश्चित्ताध्यायस्तृतीयः पूर्णतामगमत् ॥ श्रीरस्तु ॥

संपूर्णश्चायं ग्रन्थः ।

समर्पण।

खबाणनन्देन्दुमिताख्यवत्सरे नभस्य मासस्य सिते समापिता । ग्राह्या बुधै केह्निकुजे नृणां गिरा मिताक्षरा गूढतमार्थदीपिका ॥ १ ॥ श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजगुप्तेरितैः श्रीमिहिरादिचंद्रैः ॥ नृणां गिरा दीपयती पदार्थान् स्थेयं चिरं विज्ञरणप्रसादात् ॥ २ ॥ मायापुर्यादक्षिणे दिङ्नितम्बे पूर्णक्षिति श्यामर्क्ष पूर्वभागे ॥ तत्राभूज्ज्ञो रामरक्षाभिधानस्तत्पुत्रोऽहं पुष्पवन्ताभिधेयः ॥ ३ ॥ श्री मद्राजारामशास्त्रिप्रसादात् तेनाप्तं यद्धर्मशास्त्रस्य तत्त्वम् ॥ तत्सर्वं मे नृगिरा विस्तृतं स्याद्धेत्यस्यां दीपिकायां निबद्धम् ॥ ४ ॥ मन्दाः किन्न वसन्ति भूमिपटले विज्ञा न सर्वे यतो ज्ञात्वा मन्दमतेः कृतिर्बुधजनैर्ग्राह्येति तानर्थये ॥ नेयं विज्ञकृते मयाऽकृत बुधा भाषाविदाम्प्रीतिदा । अस्त्वेतन्मनसा विचार्य भवतां पत्कञ्जयोरर्प्यते ॥ ५ ॥

इतिशम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना–बंबई